

श्री भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य विरचित-धवला-टीका-समन्वितः ।

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-मुलनात्मकटिप्पण-गणितोदाहरण-प्रस्तावनानेऋपरिशिष्टे सम्पादिता

क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगमाः ४

सम्पादक

अमरावतीस्य-किंगएडवर्डकाळेज-सस्कृताध्यापक, एम् ए, एल् एल् बी, इत्युपाधिधारी
हीरालालो जैनः

सहसम्पादक

पं. हीरालालः सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थः

सशोधने सहायकौ

भ्या. वा, सा सू, पं देवकीनन्दन. * डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः
सिद्धान्तशास्त्री उपाध्याय, एम् ए, डी लिट्.

प्रकाशक

श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फुड-कार्यालय

अमरावती (बरार)

वि स १९९८]

वीर-निर्वाण-संवत् २४६८

[ई स १९४२

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

प्रकाशक

श्रीमन्त सेठ शिवाराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय
अमरावती (नरार)



‘मुद्रक’—

टी एम् पाटील,
मॅनेजर,
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती (नरार)

THE
ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUSPADANTA AND BHŪTABALĪ

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VIRASENA

VOL IV

KṢETRA-SPARŚANA-KĀLĀNUGAMA

Edited

with introduction, translation, notes, and indexes

BY

HIRALAL JAIN, M A, LL B,

C P Educational Service, King Edward College Amraoti

ASSISTED BY

Pandit Hiralal Sidhānta Shastri Nyāyatārtha

With the cooperation of

Pandit Devakinandana
Sidhānta Shāstra

*

Dr A N Upadhye,
M A, D Litt

Publish by

Shrīmanta Seth Shitabrai Laxmīchandra,

Jaina Sāhitya Udhāraka Fund Karyālaya

AMRAOTI [Berar]

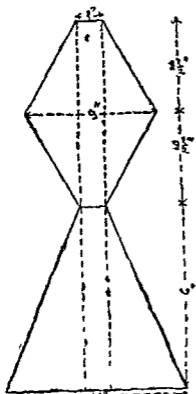
1942

Price rupees ten only

Published by—
Shrimant Seth Shitabral Laxmichandra,
Jaina Śāhitya Uddhāraka Fund Karyālaya,
AMRAOTI (Berar).

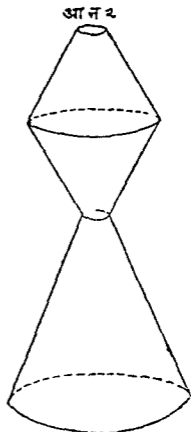


Printed by—
T M Patil, Manager,
Saraswati Printing Press
AMRAOTI (Berar,).

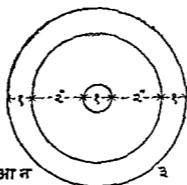


दृढ़ाकार लोह का सामान्य दृश्य
आ न १

(पृ १२)



दृढ़ाकार लोह का -
- यथादर्शन चित्र
(पृ १२)

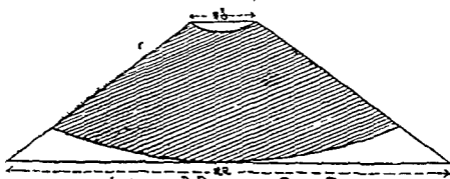


आ न

३

दृ लो का तलविन्यास

(पृ १२)



आ न ४ - अघोलोह का सूर्यकार विन्यास.

(पृ १३)

Published by—
Shrimant Seth Shitabhai Laxmichandra,
Jaina Sabha Uddhara Fund Karyalaya
AMRAOTI (Berar).



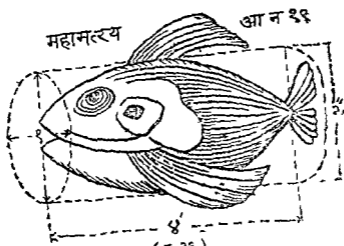
Printed by—
T. M. Patil, Manager,
Saraswati Printing &
AMRAOTI

विषय सूची

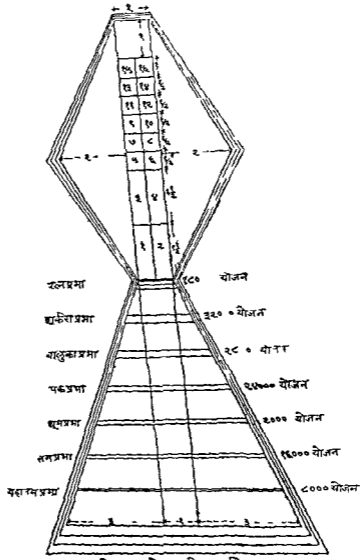
	पृष्ठ		पृष्ठ
प्राक् कथन	१-४	२	
१		मूल, अनुवाद और टिप्पण	१-४८८
प्रस्तावना		क्षेत्रानुगम	१-१३८
Introduction	1-1v	स्पर्शनानुगम	१३९-३०९
Mathematics of Dhavala	1-xxiv	कालानुगम	३११-४८८
(with index)		३	
(by Dr A N Singh)		परिशिष्ट	१-४२
१ सिद्धान्त और उनके अध्ययनका		१ क्षेत्रप्ररूपणा सूत्रपाठ	१
अधिकार	१	स्पर्शनप्ररूपणा सूत्रपाठ	५
२ शका-समाधान	१६	कालप्ररूपणा सूत्रपाठ	१३
३ नियम-परिचय	२३	२ अन्तरण-मायामूर्ची	२६
४ नियम-सूची	३०	३ न्यायोक्तिया	२७
५ शुद्धिपत्र	५९	४ प्रयोद्धेख	२८
६ क्षेत्र-स्पर्शन-कालप्रमाणदर्शक चार्ट	२९ अ-आ	५ पारिभाषिक शब्दसूची	३०-४२

चित्र सूची

	मुख पृष्ठ		मुख पृष्ठ
१ मृदगाकार लोकता सामान्य दृश्य	मुख पृष्ठ		
२ मृदगाकार लोकता यथादर्शन चित्र	"	११ खड न १, ३, ६ व ७ के यथादर्शन	
३ मृदगाकार लोकता तलनिन्यास	"	चित्रमें त्रिकोणाकार और चतुरस्राकार	
४ अपोलोकता सूर्पाकार निन्यास	"	खड "	
५ अधोलोक सूर्पाकार निन्यासका यथादर्शन	"	१२ मयखड न ४ का यथादर्शन चित्र	"
चित्र	"	१३ चतुरस्राकार लोकता पूर्व-पश्चिम दृश्य	"
६ अधोलोक सूर्पाकार निन्यासका (समीकृत)	"	१४ " " यथादर्शन चित्र	"
चित्र	"	१५ " " का तलनिन्यास	"
७ " " " का उपरितन दृश्य	"	१६ भ्रमर चित्र	"
८ अधोलोक सूर्पाकार निन्यासका खड-	"	१७ गोम्ही "	"
दर्शन चित्र	"	१८ शख "	"
९ खड न २ और ५ का यथादर्शन चित्र	"	१९ महामत्स्य "	"
१० खड न २ और ५ का एकरपर एक रख-	"	२० लोकताशर्म स्वर्ग-नरक विभाग	"
नेपर दृश्य	"		



(पृ ३६)



— लोकाकाशमे स्वर्गनरक विभाग —
(प्रमाण २०)

(पृ ८८-९९)

प्राक् कथन

पट्टखडागमका तीसरा भाग अप्रैल १९४१ में प्रकाशित हुआ था। नए पूरा होते होते उसका चौथा भाग भी तैयार होकर पाठकोंके हाथमें पहुच रहा है। इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका सतोप है। विद्वत्समाज अत्र इस ओर कितना उत्सुक और तपस्व हो उठा है इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसी अत्यन्तकालमें हमें इस सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें पंडिताचार्यवर्य भट्टारक चारुकीर्तिजी स्वामी तथा पचोंकी कृपासे मूडनिद्री सम्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जिससे अत्र सिद्धान्तप्रथका मूल पाठ वहाकी ताडपत्रीय प्रतियोंके मिलान परसे ही निश्चिन किया जाता है। इस कारण अत्र इतर प्रतियोंके मिलान प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसी बीच द्वितीय सिद्धान्तप्रथ कायाप्राभृत और उसकी टीका जयवनलके प्रकाशनके लिये भी एक नहीं अनेक सस्याए उत्सुक हो उठी हैं, और जैनसभ, मथुरा, ने उस ओर कार्य प्रारभ भी कर दिया है। उर शोलापुरवाले स्वर्गीय सेठ राजी सखारामजी दोशीके सरक्षणमें जो सिद्धान्तोद्धारसवधी फड था, उसकी उनके सुयोग्य उत्तगपिकारी सेठ गुलाबचन्द्रजीने सुव्यवस्था करके महाधनलके निमित्त एक समिति सुसगठित कर दी है। यही नहीं, श्रीयुक्त मजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताडपत्रीय प्रतियोंके अनुसार प्रकाशित करानेकी भी एक स्त्रीम प्रस्तुत की है। साहित्योद्धारके महत्तन और उसकी आवश्यकताको अनुभव करके शोलापुरके अत्यन्त धर्मानुरागी ब्रह्मचारी जीनराज गौतमचन्द्रजी दोगीने गम्भीर विचार और निद्वत्परामर्शके पश्चात् 'जेन ससृति सरक्षक सप' का आयोजन किया है, और उसके लिये अपनी ओरसे तीस हजारका दान भी दे दिया है। इस सवका ध्येय बहुत विशाल और सर्वांगव्यापी है, जिसकी पूर्ति धीरे धीरे ही हो सकती है तथा समाजके सहयोगपर अत्यन्तम्बित है। किन्तु उसके अन्तर्गत जो एक 'जीनराज जैन प्रथमाला' के सचालनका निश्चय किया गया था, उसका मेरे प्रियमित्र डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय और मेरे सम्पादकत्वमें कार्य प्रारभ होगया है, और उस मालका प्रथम पुष्प, उक्त सिद्धान्तग्रन्थोंकी ही कोटिका प्राचीन प्रामाणिक ग्रथ 'तिलोपपण्णत्ति' (त्रिलोचनप्रवृत्ति) मुद्रणाशीन है। इस प्रकार यह सिद्धान्तोद्धारका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अत्र अनेक कर्षोंद्वारा सम्हाला जा रहा है, जिससे हमें अत्र अपना जोश कुछ हलका हुआ प्रतीत होने लगा है। इसकी हमें प्रसन्नता है।

किन्तु गतिके साथ गति-असतोंके प्रयत्नोंका भी सर्षथा अभाव नहीं है। प्रकाशित मेद्वान्त ग्रन्थोंकी धार्मिक ज्ञानवृद्धिमें बडी भारी उपयोगिताका अनुभव करके ववर्दकी माणिकचन्द्र न परीक्षालय समितिने अपनी गत बैठकमें धनलसिद्धान्तके प्रथम भाग सप्ररूपणाको अपनी सर्षाच्च ाली परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित करना आवश्यक समझा। इसका अविनाश पाठकों और विद्यालयोंने बडा हर्ष मनाया। किन्तु, मोरेना जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान अध्यापक प. मन्खनलालजी

प्रस्तावना

हर्ष प्रकट किया, और आगे भी उसे नियत रखनेकी प्रेरणा दी। किंतु इस बार हमारे पास कोई विशेष शक़ाए नहीं आई। तब हमने इसके लिये पत्रोंमें एक सूचना निकाली, जिसके फलस्वरूप जो शक़ाए हमारे पास आईं उन्हीं हमने पूरा उपयोग किया है, और प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनाके अंतर्गत शक़ा-समाधान, एव शुद्धिपत्रमें पूर्वभागके पाठका संशोधन उसाकी सुपरिणाम है। इस ओर विशेषरूपसे रुचि दिखानेके लिये श्रायुक्त नानरुचदजी, रतौली, श्रीयुक्त रतनचदजा मुन्तार, सहानपुर, और श्रायुक्त नेमिचदनी वर्रीळ, सरारनपुर, को हम धन्यवाद देते हैं। यदि उनकी भजा गई कोई शक़ाए या शुद्धियां, यत्र सम्मिलित नहीं की गईं हैं ता समझना चाहिये कि उनका सकूलन पूर्वभागोंमें हो चुका है जिनका पाठकोंको संदेह ध्यान रखना चाहिये। कभी कभी शक़ाकार हमसे ऐसा प्रश्न भा का बैठने हैं कि अमुक ज्ञान अमुक प्रकार से क्यों नहीं बढ़ी या अमुक ज्ञान क्यों नहीं जोटा गई? इसके उत्तर में हम अपने पाठकोंको ध्यान केवल हमारे इस आदर्श की ओर आकर्षित करते हैं कि—

‘ नामूल लिख्यते किञ्चित्, नानपेक्षितमुच्यते ’

इस महान् कार्यमें हमें अब उत्तरोत्तर कठिनाइयांका अनुभव हो रहा है। जैसा कि हम पूर्व भागमें प्रकट कर चुके हैं, हमारे एक महयोगी प फलचदजी शास्त्री उस भागके सम्पूर्ण हो सभनेके पूर्व ही आरम्भिक निरासिके कारण यहासे चले गये थे। तबसे वे फिर वापिस नहीं आसके। अतएव इस भागका सम्पूर्ण कार्य केवल प. हीरानालजी मिद्धान्तगास्त्रीकी सहायतासे हुआ है। प्रफ. और प्रति मिलानमें तिगोपपण्णति-विभागके कार्यकर्ता प तालचदजी शास्त्रीका साहाय्य रहा है। इधर यूरोपीय युद्धके कारण कामज आदिका भाव बृद्ध वृत्ता गया। यथेष्ट कामज ठीक समय पर मिलना भी अशक्य हो गया। इतने पर अमरावती नगरमें साम्प्रदायिक झगडने कुछ समयके लिये ऐसा भीषणरूप कारण किया कि आफिम और प्रेसका कार्य बंद रखना पडा। पुस्तकोंकी विक्री भी इतना नहीं होखी जिसमें आगेका कार्य चलता जाये। इससे हमारा फंड भी कुछ कुछ कम होता जा रहा है। इन सिद्धांत धर्मोंके प्रचारको रोमनेका भी जो प्रयत्न हो रहा है उसका हम ऊपर उल्लेख कर हा आये हैं। किन्तु इन सब कठिनाइयोंके होने हुए भी किसी अज्ञात शक्तिके प्रभावसे कार्य अपसर होता ही गया। हम कहा तक अपने आदर्शको स्थिर रख सके हैं, इसका निर्णय करना हमारे मर्मज्ञ पाठकोंके अधिकारमें है।

विन शक़ा कालज,
अमरावती
194-12-29



प्रस्तावना

INTRODUCTORY

The present volume contains three prarūpaṇās, namely, Kshetra, Sparsana and Kāla, out of the eight prarūpaṇās of Jivatthāna, of which two, namely, Sat and Dravya-pramāna have already been published in the previous three volumes, while the last three, namely, Antara, Bhāva and Alpa-bahutva are going to be included in the next volume

The Kshetra prarūpaṇā contains 92 Sūtras and concerns itself with the determination of the volume of space that living beings occupy under the various conditions of life and existence. The Sūtras confine themselves to the treatment of the subject under the usual fourteen spiritual stages (Guṇasthānas) and the fourteen soul-quests (Mārgaṇā-sthānas). But the commentator introduces ten other conditions of life which have to be taken into consideration. These fall under three main classes, namely, the place of habitation of the beings (Svasthāna), their expansion (Samudghāta) and their journey for rebirth (Upapāda). The first of these includes the usual place of habitation (Svasthāna-avasthāna) and places of occasional visits (Vihāravat-svasthāna). The expansion of the soul-substance beyond its usual volume (Samudghāta) may be due to pain (Vedanā), or passion (Kashāya), or for a temporary transformation of personality (Vikriya), or for a visit to the next place of birth just before death (Mārṇāntika), or for effulgence of lustre for evil or good (Tajjasa), or for reaching a dead person for the removal of a doubt in knowledge in the case of saints (Mūrti-śaraka), or for getting rid of the remnant karmic bonds in the case of a knowing saint (Kevali-samudghāta). Thus, the commentator calculates the volume of space occupied by the living beings in these ten different conditions under the different spiritual stages and soul-quests.

The spatial units adopted for these measurements are five, namely, (1) the entire universe (Sarva-loka), (2) the lower universe (Adhloka), (3) the upper universe (Urdhva-loka), (4) the middle world (Madhyaloka), (5) the human world (Manusa-loka). To make these standards precise, the commentator divides the limitless space into two, Alokakaśa which is pure void and limitless, and the Lokakaśa situated in the middle of the former, where life and matter subsist. It is this Lokakaśa which has been adopted as the unit of measurement in the treatment of volumes. As regards the shape and

of periods of time rises on to a Muhurta (48 Minutes), a day, a fortnight, a month, a year, a Yuga a Purvanga, १ Purva, and so on to a Palyopama and a Sagaropama and ultimately to an Utsarpini and Avasarpini which constitute a Kalpa The longest period of time conceived and denominated is a Pudgala-parivartana (for which see p ३३० text and explanatory note)

In interpreting the mathematical part of these texts I again received very valuable assistance from my colleague Mr K D Panday, professor of mathematics in King Edward College, Amraoti Without his help here, as in the previous volume, it would have been almost an impossible task for me to explain adequately the mathematical portions As I mentioned in the previous volume, Dr Avadhesh Narain Singh, professor of Mathematics in the Lucknow University and author of the History of Hindu Mathematics, has taken a keen interest in the mathematical contents of these texts He has now studied the mathematical portions of the III volume and has obliged me by writing out a dissertation on the mathematical contents of that volume The same is being published here under the caption " Mathematics of Dhavala " It is expected that he would continue his valuable study of these texts and the readers might look forward to a very interesting note on the geometrics of the present volume in the volume to be issued next

Another topic dealt with in the Hindi Introduction of this volume is an answer to the objection raised in a certain quarter that Jaina traditions prohibit the study of these Sacred Texts by laymen, and therefore these texts should neither be published in a printed form, nor should they be taught in Jaina Pathasalas, nor should they be allowed to be read anywhere by any body except by the Jaina ascetics A critical examination of all the traditions bearing on this subject shows that an injunction against the study of Siddhanta by the laymer is found in a few books dealing with the duties of Jaina house-holders But all these books are found to have been written by a few obscure and insignificant writers belonging to a period subsequent to the 12th century A D Again, they either do not make clear what is meant by Siddhanta, or explain it in a manner so as to make the pre-ent texts, as well as all other available books, fall outside the sphere of Siddhanta The injunction is, moreover, in direct conflict with the statements of the most ancient and authoritative Jaina writers who have strongly recommended the study of the Jaina texts of the highest kind by all, laymen as well as ascetics The author of the Dhavala himself lays down in clear and unmistakable terms at every step of his commentary that the Sutras as well as the commentary are so designed

volume of this universe, the commentator is confronted with two divergent views. According to one view it is in the form of three conical frusta with a common circular section in the middle, while according to the other view it is in the form of three frusta of pyramids with a common rectangular base in the middle. Virasena with his philosophic insight, discriminating genius and mathematical skill ultimately rejects the former view and adopts the latter. His conclusions are that the entire universe (Lokakāśa) has a total height of 14 rajjus and is in its volume $7^3=343$ cubic rajjus, consisting of the lower universe which is 196 cubic rajjus and the upper universe which is 147 cubic rajjus. Between the lower and the upper universe is the rectangular section called the middle world which is $1 \times 7=7$ square rajjus, and which contains in its middle the human world which is a circular area of 45 lakhs of yojanas in diameter. The rajju is thus the standard unit of this spatial measurement and it is only determined as innumerable yojanas long, equal to the smaller side, and $\frac{1}{7}$ of the larger side of the rectangular middle world, $\frac{1}{7}$ of the height of the lower or upper world and $\frac{1}{14}$ of the total height of the entire universe. This discussion as well as similar others bring to light several geometrical problems that confronted our ancient thinkers, and their solutions throw a considerable light upon the evolution of mathematical processes and theories in this country. We have tried to illustrate some of these by twenty diagrams in addition to a large number of examples.

Under the Sparsana-prarupana which contains 185 Sutras, we find the volumes of space similarly considered from the point of view of the past as well as the future status of those beings, in addition to the present to which Kshetra-prarupana confines itself. The question here is the volume of space which beings of different spiritual stages and soul-quests ever happen to touch under one of the ten conditions mentioned above. In this connection the determination of the number of heavenly luminaries shining above the innumerable islands and seas gives rise to a number of interesting mathematical exercises, (see pp 150-161 of the text)

In the Kala-prarupana which contains 342 Sutras, the consideration is of the minimum and maximum periods of time spent by the souls, singly or in aggregates, in the various spiritual stages and soul-quests. The smallest period of time comprehended is an instant (Samaya) of which innumerable are included in an avart and a breath (Prana) which is equal to $\frac{2380}{8773}$ of a second (see Vol III, Introduction p. 34). The series

MATHEMATICS OF DHAVALĀ

Introductory Remarks

It has been known that in India the study of *Ganita*—arithmetic algebra mensuration etc—was carried on at a very early date. It is also well known that the ancient Indian mathematicians made substantial and solid contributions to mathematics. In fact they were the originators of modern arithmetic and algebra. We have been accustomed to think that amongst the vast population of India only the Hindus studied mathematics and were interested in the subject and that the other sections of the population of India e.g. the Buddhists and the Jains did not pay much attention to it. This view has been held by scholars because mathematical works written by Buddhist or Jaina mathematicians had been unknown until quite recently. A study of the Jaina canonical works however reveals that mathematics was held in high esteem by the Jainas. In fact the knowledge of mathematics and astronomy was considered to be one of the principal accomplishments of the Jaina ascetics¹.

We know now that the Jainas had a school of mathematics in South India, and at least one work—the *Ganita-sara-samgraha* by Mahāvīrācārya—of this school was in many ways superior to any other existing work of that time. Mahāvīrācārya wrote in 800 A.D. and his work although similar in general outline to the works of the Hindu mathematicians like Brahmagupta, Śrīdhara-cārya, Bhāskara and others, is entirely different in details e.g. the problems in the *Ganita-sara-samgraha* are almost all different from those in the other works.

From the mathematical literature available at present we can say that important schools of mathematics flourished at Pataliputra (Patna), Ujjain, Mysore, Malabar, and probably also at Benares, Taxila and some other places. Until further evidence is available, it is not possible to say precisely what the relation between these schools was. At the same time we find that works coming from the different schools resemble each other in their general outline although they differ in details. This shows that there was intercommunication between the various schools—that scholars and students travelled from one school to another and that discoveries made at one place were soon communicated throughout the length and breadth of India.

It seems that the spread of Buddhism and Jainism gave an impetus to the study of the various sciences and arts. The religious literature of India in general and of Buddhism and Jainism in particular is full of big numbers. The use of big numbers necessitated the development of a simple symbolism for writing those numbers and

1 Cf. *Bhagavati sūtra* with the commentary of Abharadeva Suri, edited by Āgamodayasamiti of Mehesana 1919. Sutra 90. English translation by Jacotot of the Uttarādhyayana sūtra Oxford 1890. Ch. 7, 8 33.

as to be useful to all mankind, dull as well as intelligent. The tradition is thus found to be a very late one invented by some man of narrow outlook and small brain during the age of decadence, and it is altogether incompatible with the whole spirit and ideology of Jainism and with the clear and definite recommendations of all other writers of far greater importance and authority

A number of queries concerning the meaning and significance of certain statements in the previous volumes have also been answered in the Hindi Introduction

to Aryabhata's either used the old type of numerals or were not good enough to stand the test of time. I think that Aryabhata's great popularity as a mathematician was in a great measure due to his being the first to write a good text book employing the place value numerals. Aryabhata was responsible for driving out and killing all previous text books. This explains why we get a series of works from 499 A D onwards while no works belonging to earlier times are available.

Thus we have practically no material to trace the development and growth of mathematics in India before 500 A D. It becomes a question of paramount importance to hunt and trace out works which may give information regarding the knowledge of mathematics in India anterior to Aryabhata. Mathematical works having been lost, we have to scan and analyse Hindu, Buddhist and Jaina literatures in general and their religious literatures in particular to find what material we can in order to reconstruct the history of mathematics in India before 500 A D. In several of the Puranas we have portions dealing with mathematics and astronomy. Likewise in most of the Jaina canonical works there is to be found some mathematical or astronomical material. This material represents the traditional mathematics of India, and such material is generally about three to four centuries older than the age of the work in which it is contained. Thus if we examine a religious or philosophical work written in the period 400 to 800 A D, its mathematical content will belong to O A D to 400 A D.

It is in the light of the above remarks that we regard the discovery of the *Dhavalā* a commentary on the *Satkhandagama*, written in the beginning of the ninth century as very important. Mr H L Jaina has placed scholars under a permanent debt of gratitude by editing the work and getting it published.

The Jaina school of mathematics

Since the discovery and publication of the *Ganita-sara-samgraha* by Rangacarya, in 1912 scholars¹ have suspected the existence of a school of mathematics run exclusively by Jaina scholars. A recent study of some of the Jaina canonical works has brought to light various references to Jaina mathematicians and mathematical works². The religious literature of the Jainas is classified into four groups called *anuyoga*, meaning 'the exposition of the principles (of Jainism)'. One of them is called *karananuyoga* or *ganitanuyoga*, i.e. the exposition of the principles dependent upon mathematics. This shows the high position accorded to mathematics in Jaina religion and philosophy.

Although the names of several Jaina mathematicians are known, their works have been lost. The earliest among them is Bhadrabāhu who died in 278 B C. He is known to be the author of two astronomical works: (1) a commentary on the

- 1 See the Introduction by D L Smith to the *Ganita sara samgraha* ed. by Rangacarya Madras, 1912.
- 2 B Datta *The Jaina school of Mathematics* Bulletin, Cal Math Soc Vol XXI (1929) pp 115-145.

has been responsible for the invention of the decimal place value notation. It is now established beyond doubt that the place value system of notation was invented in India about the beginning of the Christian Era – the brightest period of Buddhism and Jainism. The new notation was an instrument of great power and accelerated the development of mathematics from the crude Vedic stage – as found in the *Sulbasūtras* – to the finished stage of the fifth century – as found in the works of *Aryabhaṭa* and *Varāhamihira*.

One very significant fact which has escaped the notice of historians of mathematics is the following: whilst the general literature of the Hindus, the Buddhists and the Jains is continuous from the third or the fourth century B. C. right up to the middle ages in the sense that works representing each century are found, there is a gap in the mathematical literature. In fact there is hardly any mathematical text earlier than the *Aryabhaṭīya* which was composed in 499 A. D. The only exception is a fragmentary manuscript known as the *Bakhshali* manuscript, which probably belongs to the second or the third century A. D. This manuscript however, fails to give us any detailed information regarding the state of mathematical knowledge at the time of its composition for the reason that it is not strictly speaking a mathematical text as the treatises of *Aryabhaṭa*, *Brahmagupta* or *Sridhara* etc. It is of the nature of notes on some selected mathematical problems. All that we can infer from the manuscript is that the place value numerals as well as the fundamental operations of arithmetic with them were well known and that some types of problems treated by later mathematicians were also known.

It has already been pointed out that mathematics as found in the *Aryabhaṭīya* is highly developed for we find in it a treatment of the entire elementary arithmetic of today including the rules of proportion, interest, barter and exchange, and of algebra up to the solution of the simple and the quadratic equations, simple indeterminate equations etc. The question arises: Did *Aryabhaṭa* borrow from some foreign source or is the material contained in the *Aryabhaṭīya* indigenous and of Indian origin? *Aryabhaṭa* writes —

Having paid reverence to Brahman, the Earth, the Moon, Mercury, Venus, the Sun, Mars, Jupiter, Saturn and the asteroids, *Aryabhaṭa* sets forth the science which is honoured here at Kusumapura.¹ This shows that he did not borrow from a foreign source. The study of the history of mathematics in other countries leads to the same conclusion for the mathematics of the *Aryabhaṭīya* was far in advance of what was known at that time in any other country of the world. The possibility of borrowing from some foreign source having been ruled out, the question arises: How is it that practically no mathematical work anterior to that of *Aryabhaṭa* is available? The explanation is simple enough. The place value system of notation was invented some time about the beginning of the Christian Era. It must have taken four or five hundred years to come into general use. *Aryabhaṭa*'s work seems to be the first good text book employing the new arithmetic of the place value numerals. Works anterior

(i) 7999998 is expressed as a number which has 7 in the beginning 8 at the end, and 9 repeated six times in between¹

(ii) 4666664 is expressed as sixty-four, six hundreds, sixty-six thousands sixty-six hundred-thousands, and four kotis²

(iii) 22799498 is expressed as two kotis twenty-seven, ninety-nine thousands four and ninety-eight³

The method used in (i) is found elsewhere also in Jaina literature and at some places in the *Ganita-sara-samgraha*⁴ It shows familiarity with the place value notation In (ii) the smaller denominations are expressed first This is not in accordance with the general practice current in Sanskrit literature Likewise, the scale of notation is hundred and not ten as is generally found in Sanskrit literature⁵ In Pali and Prakrit however, the scale of hundred is generally used In (iii) the highest denomination is expressed first Quotations (ii) and (iii) are evidently from different sources

Big numbers—It is well known that big numbers occur frequently in Jaina literature In the *Dhavalā* also the various kinds of *jiva-raśi*: *dravya-pramana* etc. are discussed The biggest number that is definitely stated is the number of developable human souls In the *Dhavalā*⁶ it is stated to be between the sixth-square of two and the seventh square of two or to be more precise, between *koti-koti-koti* and *koti-koti-koti-koti*, i e ,

	6		7
	2		2
between	2	and	2

and more definitely, between (1 00,00 000)³ and (1 00 00 000)⁴

The actual number of such souls known from other works⁷ is 79 22,81,62 51,42,64,33,75 93,54 39,50,33b This number occupies twenty-nine notational places. It has the same, number of notational places as (1 00 00 000)⁴ but is greater This is known to the author of *Dhavalā* who calculates the area of the world inhabited by men and shows that the larger number of men can not be contained in it, and hence that view was wrong

The Fundamental Operations—Mention is found of all the fundamental operations—addition, subtraction division multiplication, the extraction of square and cube-roots the raising of numbers to given powers, etc These operations are mentioned

1 *Dhavalā* III p 98, quoted verse 51 cf *Gommatā sara Jiva kānda*, p 633

2 *Dhavalā* III p 99 quoted verse 52

3 *Dhavalā* III p 100 quoted verse 53

4 cf *Ganita sara samgraha* 1 27 See also *History of Hindu Mathematics* by Datta and Singh Vol. I, Lahore 1935 p 16

5 Datta and Singh, 1 c, 1 14

6 *Dhavalā* III, p 253

7 cf *Gommatasara, Jivakanda* S B J Series p 104

$$\text{3rd vargita-samvargita of } n \quad \left\{ \begin{array}{l} (n^n)^{n^n} \\ (n^n)^{n^n} \end{array} \right\}$$

The Dhavala does not contemplate the application of the above more than thrice. The third vargita samvargita has been used very often¹ in connection with the theory of very large or infinite numbers. That the process yields very big numbers can be seen from the fact that the 3rd vargita-samvargita of 2 is 255256 .

The laws of indices—From the above description it is obvious that the author of the Dhavala was fully conversant with the laws of indices viz.,

$$(i) a^m a^n = a^{m+n}$$

$$(ii) a^m a^n = a^{m-n}$$

$$(iii) (a^m)^n = a^{m \cdot n}$$

Instances of the use of the above laws are numerous. To quote one interesting case² it is stated that the 7th varga of 2 divided by the 6th varga of 2 gives the 6th varga of 2. That is—

$$2^7 / 2^6 = 2^1$$

The operations of *dublation* and *mediation* were considered important when the place value numerals were unknown. There is no trace of these operations in the Indian mathematical works. But these processes were considered to be important by the Egyptians and the Greeks and were recognised as such in their works on arithmetic. The Dhavala contains traces of these operations. The consideration of the successive squares of 2 or other numbers was certainly inspired by the operation of dublation which must have been current in India before the advent of the place value numerals. Similarly there are traces of the method of mediation. In the Dhavala we find generalisation of this operation into a theory of logarithms to the base 2, 3, 4, etc.

Logarithms—The following terms have been defined in the Dhavala³

(i) Ardhaccheda of a number is equal to the number of times that it can be halved. Thus the ardhaccheda of $2^m = m$. Denoting ardhaccheda by the abbreviation Ac, we can write in modern notation—

Ac of x (or Ac x) = $\log_2 x$, where the logarithm is to the base 2

(ii) Vargasalaka of a number is the ardhaccheda of the ardhaccheda of that number, i.e.,

Vargasalaka of $x = V_2 x = \text{Ac Ac } x = \log_2 \log_2 x$, where the logarithm is to the base two.

(iii) Tricaccheda of a number is equal to the number of times that it can be divided by 3. Thus—

¹ Dhavala's III, p. 20 ff. 2 Ibid p. 20 ff. 3 Ibid p. 21 ff. 4 Ibid p. 24.

Fractions— Besides the fundamental arithmetical operations with fractions, knowledge of which has been assumed in the *Dhavalā*,¹ we find a number of interesting formulae relating to fractions which are not found in any known mathematical work. Amongst these may be mentioned the following—

$$[1]^1 \quad \frac{n^2}{n \pm (n/p)} = n \mp \frac{n}{p \pm 1}$$

[2]² Let a number m be divided by the divisors d and d' , and let q and q' be the quotients (or the fractions). The following formula gives the result when m is divided by $d \pm d'$ —

$$\frac{m}{d \pm d'} = \frac{q'}{(q'/q) \pm 1}$$

$$\text{or} = \frac{q}{1 \pm (q/q')}$$

[3]³ If $\frac{m}{d} = q$ and $\frac{m'}{d} = q'$, then—

$$d(q - q') + m' = m$$

[4]⁴ If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + \frac{b}{n}} = q - \frac{q}{n + 1},$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - \frac{b}{n}} = q + \frac{q}{n - 1}$$

[5]⁵ If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + c} = q - \frac{q}{\frac{b}{c} + 1},$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - c} = q + \frac{q}{\frac{b}{c} - 1}$$

[6]⁶ If $\frac{a}{b} = q$ and $\frac{a}{b'} = q + c$, then—

1 *Dhavalā* p 46

2 *ibid* p 47 quoted verse 27

4 *ibid* p 46 quoted verse 24

5 *ibid* p 46 quoted verse 24

6 *ibid* p 46, quoted verse 25

2 *ibid* p 46

Trkaccheda of $x = Tc x = \log_3 x$ where the logarithm is to the base 3

(iv)¹ Caturthaccheda of a number is the number of times that it can be divided by 4. Thus—

Caturtha-ccheda of $x = Cc x = \text{Log } 4x$, where the logarithm is to the base 4

The following results regarding logarithms have been used in the Dhavala—

(1)² $\text{Log} (m n) = \log m + \log n$

(2) $\text{Log} (m n) = \log m + \log n$

(3)³ $2 \log m = m$ where the logarithm is to the base 2

(4)⁴ $\text{Log} (x^x) = 2x \log x$

(5)⁵ $\text{Log} \log (x^x) = \log x + 1 + \log \log x$
 (for the left side $= \log (2x \log x)$
 $= \log x + \log 2 + \log \log x$
 $= \log x + 1 + \log \log_2 x$
 as $\log_2 2$ to the base 2 is 1)

(6)⁶ $\text{Log} (x^x)^{x^x} = x^x \log x^x$

(7) Let a be any number then—

1st vargita-samvargita of $a = a^a = B$ [say]

2nd vargita-samvargita of $a = B^B = y$ [say]

3rd vargita-samvargita of $a = y^y = D$ [say]

The Dhavala gives the following results⁷—

(i) $\text{Log } B = a \log a$

(ii) $\text{Log} \log B = \log a + \log \log a$

(iii) $\log y = B \log B$

(iv) $\log \log y = \log B + \log \log B$
 $= \log a + \log \log a + a \log a$

(v) $\log D = y \log y$

(vi) $\log \log D = \log y + \log \log y$
 and so on

(8)⁸ $\text{Log} \log D < B$

This inequality gives the inequality—

$$B \log B + \log B + \log_2 \log B < B^2$$

1 ibid p. 56 2 ibid p 60 3 ibid p 60 4 ibid p 21 ff 5 i c

6 i c It should be mentioned here that nowhere in the text are these logarithms restricted to be integral. The number x is any number x^x is the first vargita samvargita rasi and $(x^x)^{x^x}$ is the second vargita samvargita rasi.

7 Dhavala III p 21-24

8 ibid p 24

places¹. The technical terms in connection with the process are *phala*, *iccha* and *pramana*, the same as found in the known mathematical works. This suggests that the rule of three was known and used in India even before the invention of the place-value notation.

The Infinite

Use of big numbers—The word infinite used in various senses is found in the literature of all ancient peoples. A correct definition and appreciation of the idea however came much later. It is natural that the correct definition was evolved by people who used big numbers or were accustomed to such numbers in their philosophy. The following will show that in India the Jaina philosophers succeeded in classifying the various notions connected with the term infinite, and in evolving the correct definition of the numerical infinite.

The evolution of suitable notation for expressing big numbers as well as of the idea of the infinite arise when abstract reasoning and thinking reach a certain high standard. In Europe Archimedes tried to estimate the number of sand particles on the sea-shore and the Greek philosophers speculated about the infinite and the limit. They, however, did not possess suitable symbols for the expression of big numbers. In India the Hindu, Jaina and Buddhist philosophers used very big numbers and evolved suitable symbolism for the purpose. In particular the Jainas tried to form an estimate of all living beings in the Universe of time instants, of locations [points or places] in the Universe and so on.

Three methods of expressing big numbers were employed —

(1) The place-value notation using the scale of ten. In this connection it may be noted that number-names based on the scale of ten² were coined to express numbers as large as 10¹⁴⁰.

(2) The law of indices (*varga-samvarga*) was employed to give compact-expressions for big numbers, e.g. —

$$(i) (2^2) = 4$$

$$(ii) (2^2)^{2^2} = 4^4 = 256,$$

$$(iii) \left\{ (2^2)^{2^2} \right\} \left\{ (2^2)^{2^2} \right\} = 256^{256} \quad \text{is called the third}$$

Vargita-samvargita of 2. This number is greater than the number of protons and electrons in the Universe.

1 See for example, Dhavala III, p. 69 and 100 etc.

2 For details of big numbers and numerical denominations see Datta and Singh, History of Hindu Mathematics (Published by Motilal Banarsī Dass, Lahore) Part I, pp. 11 L.

$$b = b - \frac{b}{\frac{q}{c} + 1},$$

and if $\frac{a}{b} = q - c$, then—

$$b = b + \frac{b}{\frac{q}{c} - 1}$$

[7] If $\frac{a}{b} = q$ and $\frac{a}{b'}$ is another fraction, then—

$$\frac{a}{b} - \frac{a}{b'} = q \left(\frac{b - b'}{b'} \right)$$

[8] If $\frac{a}{b} = q$ and $\frac{a}{b+x} = q - c$ then—

$$x = \frac{bc}{q - c}$$

[9] If $\frac{a}{b} = q$ and $\frac{a}{b-x} = q + c$, then—

$$x = \frac{bc}{q + c}$$

[10] If $\frac{a}{b} = q$ and $\frac{a}{b+c} = q'$, then—

$$q' = q - \frac{qc}{b+c}$$

[11] If $\frac{a}{b} = q$ and $\frac{a}{b-c} = q'$, then—

$$q = q' + \frac{qc}{b-c}$$

The above results are all found in quotations given in the Dhavalā. They are not found in any known mathematical work. The quotations are from Ardhā-Mādhya or Prakrit works. The presumption is that they are taken from Jaina works on mathematics or from previous commentaries. They do not represent any essential arithmetical operation. They are relics of an age when division was considered a difficult and tedious operation. These rules certainly belong to an age when the place value notation was not in common use for arithmetical operations.

The rule of three—The rule of three is mentioned and used at several

1 Ibid p 40 quoted verse 92

2 Ibid p 40 quoted verse 29

3 Ibid p 42 quoted verse 30

4 Ibid p 42 quoted verse 21

5 Ibid p 42 quoted verse 27

Classification of the infinite The Dhavalā gives a classification of the infinite. The term infinity has been used in literature in several senses. The Jain classification takes into account all these. According to it there are eleven kinds of infinity as follows—

(1) **Namananta**—Infinite in name. An aggregate of objects which may or may not really be infinite might be called as such in ordinary conversation, or by or for ignorant persons or in literature to denote greatness. In such a context the term infinite means infinite in name only, i. e., *Nāmānanta*.

(2) **Sthapanananta**—Attributed, or associated infinity. This too is not the real infinite. The term is used in case infinity is attributed to or associated with some object.

(3) **Dravyananta**—Infinite in relation to knowledge which is not used. This term is used for persons who have knowledge of the infinite, but do not for the time being use that knowledge.

(4) **Gananananta**—The numerical infinite. This term is used for the actual infinite as used in mathematics.

(5) **Apradesikananta**—Dimensionless, i. e., infinitely small.

(6) **Ekananta**—One directional infinity. It is the infinite as observed by looking in one direction along a straight line.

(7) **Ubhayananta**—Two directional infinite. This is illustrated by a line continued to infinity in both directions.

(8) **Vistarānanta**—Two dimensional or superficial infinity. This means an infinite plane area.

(9) **Sarvananta**—Spatial infinity. This signifies the three dimensional infinity, i. e. the infinite space.

(10) **Bhavananta**—Infinite in relation to knowledge which is utilised. This term is used for a person who has knowledge of the infinite, and who uses that knowledge.

(11) **Saswatananta**—Everlasting or indestructible.

The above classification is a comprehensive one, including all senses in which the term *ananta* is used in Jain literature¹.

Gananananta (numerical infinite)

The Dhavalā clearly lays down that in the subject-matter under discussion, by the term *ananta* (infinite) we always mean the numerical infinite,² and not any

1 Dhavalā III p 11-16

2 *ibid* p 16

(?) The logarithm (*ardhaccheda*) or the logarithm of a logarithm (*ardhaccheda-salaka*) was used to reduce the consideration of big numbers to those of smaller ones e.g.—

$$(i) \text{Log}_2 2^2 = 2$$

$$(ii) \text{Log log } 4^4 = 3$$

$$(iii) \text{Log}_2 \text{log}_2 256^6 = 11$$

It is no wonder to find that today we take recourse to one or the other of the above three methods of expressing numbers. The decimal place-value notation has become the common property of all nations. Logarithms are used whenever calculations with big numbers have to be made. Instances of the use of the law of indices to express magnitudes in modern physics is common. For instance, the number¹ of protons in the Universe has been calculated and expressed as—

$$136 \cdot 2^6$$

And Skewes number which gives information regarding the distribution of primes is expressed in the form—

$$\begin{array}{c} 34 \\ 10 \\ 10 \\ 10 \end{array}$$

All the above methods of expressing numbers have been used in the *Dhavalā*. It follows that the methods were commonly known before the seventh century A. D. in India.

1 The number $136 \cdot 2^6$ expressed in the decimal notation is 1,747,734,186,275,008,577,600,659,061,181,550,468,044,717,014,572,116,709,366,991,425,076,185,631,031,296

It will be observed that the third *vargita-samvargita* of 2 i. e., $2 \cdot 2^6 \cdot 2^6$ is greater than the number of protons in the Universe. If we imagine the entire Universe as a chess-board, and the protons in it as chessmen and if we agree to call any interchange in the position of two protons a move in this cosmic game then the total number of possible moves would be the number—

$$\begin{array}{c} 34 \\ 10 \\ 10 \\ 10 \end{array}$$

This number is also connected with the theory of the distribution of primes

have the following numbers included under Asamkhyata —

1	Jaghanya-parita-asamkhyata	apj
2	Madhyama-parita-asamkhyata	apm
3	Utkrsta-parita-asamkhyata	apu
1	Jaghanya-yukta-asamkhyata	ayj
2	Madhyama-yukta-asamkhyata	aym
3	Utkrsta-yukta-asamkhyata	ayu
1	Jaghanya-asamkhyata-asamkhyata	aa _j
2	Madhyama-asamkhyata-asamkhyata	aa _m
3	Utkrsta-asamkhyata-asamkhyata	aa _u

III Ananta which we denote by A, is divided in to three classes—

- (i) Parita-Ananta (first order infinite) which we shall denote by- Ap,
- (ii) Yukta-Ananta (medium infinite) which we shall denote- Ay
- (iii) Ananta-Ananta (infinitely infinite) which we shall denote by- AA

As in the case of the asamkhyata numbers each of these is further sub divided into three classes- Jaghanya Madhyama and Utkrsta- so that we have the following numbers in the Ananta class —

1	Jaghanya-parita-ananta	A _{pj}
2	Madhyama-parita-ananta	A _{pm}
3	Utkrsta-parita-ananta	A _{pu}
1	Jaghanya-yukta-ananta	A _{yj}
2	Madhyama-yukta-ananta	A _{ym}
3	Utkrsta-yukta-ananta	A _{yu}
1	Jaghanya-ananta-ananta	AA _j
2	Madhyama-ananta-ananta	AA _m
3	Utkrsta-ananta-ananta	AA _u

Numerical value of the Samkhyata—According to all Jaina authorities the Jaghanya-samkhyata is the number 2 being according to them the smallest number that represents multiplicity. Unity was not counted as a member of the aggregate of Samkhyata numbers. The Madhyama-samkhyata includes all numbers between 2 and the Utkrsta-samkhyata (the highest numerable) so which itself is the number immediately preceding the Jaghanya-parita-asamkhyata apj i e

$$su = apj - 1$$

And apj is defined in the Trilokasara as follows¹ —

According to Jaina cosmology the Universe is composed of alternate rings of land and water whose boundaries are concentric circles with increasing radii

1 See Triloka sara 35

of the other infinities enumerated above 1 or in the other kinds of infinity " the idea of enumeration is not found 1 It has also been stated that the ' numerical infinity is describable at great length and is simple This statement probably means that in Jain literature *ananta* (infinite) was defined more thoroughly by different writers and had become commonly used and understood The *Dhavalā* however, does not contain a definition of *ananta* On the other hand operations on and with the *ananta* are frequently mentioned along with numbers called *samkhyata* and *asamkhyata*

The number *samkhyata* *asamkhyata* and *ananta* have been used in Jain literature from the earliest known times but it seems that they did not always carry the same meaning In the earlier works *ananta* was certainly used in the sense of infinity as we define it now but in the later works *ananantananta*, takes the place of *ananta* For example according to the *Trilokasara* a work written in the 10th century by Nemiscandra *Parita-ananta* *Yulatananta* and even *Jaghanya-anantananta* is a very big number but is finite According to this work, numbers may be divided into three broad classes —

- (i) Samkhyata which we shall denote by- s,
- (ii) Asamkhyata which we shall denote by- a,
- (iii) Ananta which we shall denote by- A

The above three kinds of numbers are further sub-divided into three classes as below —

I. Samkhyata (numerable) numbers are of three kinds

- (i) Jaghanya samkhyata (smallest numerable) which we shall denote by sj,
- (ii) Madhyama-samkhyata (intermediate numerables) which we shall denote by- sm,
- (iii) Utkrsta-samkhyata (the highest numerable) which we shall denote by- su

II. Asamkhyata (unnumerable) numbers are divided into three classes —

- (i) Parita asamkhyata (first order unnumerable) which we shall denote by- ap
- (ii) Yukta-asamkhyata (medium unnumerable) which we shall denote by- ay
- (iii) Asamkhyata-asamkhyata (unnumerably-unnumerable) which we shall denote by- aa

Each of the above three classes is further sub-divided into three classes viz- Jaghanya (smallest) Madhyama (intermediate) and Utkrsta (highest) Thus we

have the following numbers included under Asamkhyāta —

1	Jaghanya-parita-asamkhyata	apj
2	Madhyama-parita-asamkhyata	apm
3	Utkrsta-parita-asamkhyata	apu
1	Jaghanya-yukta-asamkhyata	ayj
2	Madhyama-yukta-asamkhyata	aym
3	Utkrsta-yukta-asamkhyata	ayu
1	Jaghanya-asamkhyata-asamkhyata	aa
2	Madhyama-asamkhyata-asamkhyata	aa
3	Utkrsta-asamkhyata-asamkhyata	aa

III Ananta, which we denote by A, is divided in to three classes—

- (i) Parita-Ananta (first order infinite) which we shall denote by- Ap,
- (ii) Yukta-Ananta (medium infinite) which we shall denote- Ay,
- (iii) Ananta-Ananta (infinitely infinite) which we shall denote by- AA

As in the case of the asamkhyāta numbers each of these is further subdivided into three classes- Jaghanya Madhyama and Utkrsta- so that we have the following numbers in the Ananta class —

1	Jaghanya-parita-ananta	Apj
2	Madhyama-parita-ananta	Apm
3	Utkrsta-parita-ananta	Apu
1	Jaghanya-yukta-ananta	Ayj
2	Madhyama-yukta-ananta	Aym
3	Utkrsta-yukta-ananta	Ayu
1	Jaghanya-ananta-ananta	AAj
2	Madhyama-ananta-ananta	AAm
3	Utkrsta-ananta-ananta	AAu

Numerical value of the Samkhyata—According to all Jaina authorities the Jaghanya-samkhyata is the number 2 being according to them, the smallest number that represents multiplicity (unity was not counted as a member of the aggregate of Samkhyata numbers. The Madhyama-samkhyata includes all numbers between 2 and the Utkrsta-samkhyata (the highest numerable) su, which itself is the number immediately preceding the Jaghanya-parita-asamkhyata apj i e ,

$$su = apj - 1$$

And apj is defined in the Trilokasara as follows¹ —

According to Jaina cosmology the Universe is composed of alternate rings of land and water whose boundaries are concentric circles with increasing radii

Then, the Jaghanya-parita-asamkhyata, apj, is equal to the number of rapeseeds contained in Aⁿ And Utkrsta-samkhyāta = su = apj - 1.

Remarks —The central idea in dividing numbers into three classes seems to be this—The extent to which numeration, i. e., counting, can proceed depends on the number-names available in the language or on other methods of expressing numbers. In order, therefore to extend the bound of numbers which¹ may be counted or expressed in speech, a long series of names of numerical denominations based primarily on the scale of ten, was coined in India. The Hindus contented themselves with eighteen denominations by the help of which numbers up to 10^{17} could be expressed in speech. Numbers greater than 10^{17} could be expressed by repetition as we do now when we say million million, etc. But it was realised that repetition was cumbersome. The Buddhists and the Jainas who needed numbers much bigger than 10^{17} in their philosophy and cosmology coined denominational names for still greater numbers. We do not possess Jaina denominational names,¹ but the following series of denominational names which is of

¹ The Jainas possess in their old literature a list of names denoting long periods of time with the year as the unit. The series is as follows —

1 Varsa (वर्ष) = 1 Year	18 Atata (अट्ट) = 84 Lakhs of Atatanga
2 Yuga (युग) = 5 Years	19 Amamanga (अममंग) = 84 Atatas
3 Purāṅga (पूर्वांग) = 84 Lakhs of years	20 Amama (अमम) = 84 Lakhs of Amamanga
4 Purva (पूर्व) = 84 Lakhs of Purvāngas	21 Habanga (हाहांग) = 84 Amamas
5 Nayutanga (नयुतांग) = 84 Purvas	22 Haha (हाहा) = 84 Lakhs of Habanga
6 Nayuta (नयुत) = 84 Lakhs of Nayutanga	23 Huhanga (हूहांग) = 84 Habas
7 Kumudāṅga (कुमुदांग) = 84 Nayutas	24 Huhu (हूहू) = 84 Lakhs of Huhanga
8 Kumud (कुमुद) = 84 Lakhs of Kumudanga	25 Latanga (लतांग) = 84 Hubas
9 Padmanga (पद्मांग) = 84 Kumudas	26 Lata (लता) = 84 Lakhs of Latanga
10 Padma (पद्म) = 84 Lakhs of Padmanga	27 Mahalatanga (महालतांग) = 84 Latas
11 Nalinanga (नलिनांग) = 84 Padmas	28 Mahalata (महालता) = 84 Lakhs of Mahalatanga
12 Nalina (नलिन) = 84 Lakhs of Nalinanga	29 Srikalpa (श्रीकल्प) = 84 „ Mahalatas
13 Kamalanga (कमलांग) = 84 Nalinas	30 Hastaprahelita (हस्तप्रहेलित) = 84 Lakhs of Srikalpa
14 Kamala (कमल) = 84 Lakhs of Kamalanga	31 Acalapra (अचलप्र) = 84 Lakhs of Hastaprahelita
15 Trutitanga (त्रुतितांग) = 84 Kamalas	
16 Trutita (त्रुतिता) = 84 Lakhs of Trutitanga	
17 Atatanga (अट्टांग) = 84 Trutitas	

This list is found in the *Triloka-praynapti* [4th-6th cent] *Haruamsa purana* (8th cent) and *Rajataritika* [8th cent] with a few variations in the names only. According to a statement found in *Triloka-praynapti*, the value of *Acalapra* is obtainable by multiplying 31 times 84 i. e. —

$$Acalapra = 84^{31}, i$$

and that the value will lead us to 90 decimal places. According to Logarithmic tables however 84^{31} gives us only sixty decimal places of notation. (See Dhavala III, introduction and footnote p 34) —Editor

Let $C = B + \text{six dravyas}^1$

Let $D = \{(C^C), C^C\} \{(C^C), C^C\} + \text{four aggregates}^2$

Then, Jaghanya-parita-ananta [Apj] = $\{(D^D), D^D\} \{(D^D), D^D\}$

Madhyama-parita-ananta [Apm] is $> \Delta p_j$, but $< \Delta p_u$,

Utkrsta-parita-ananta [Apu] = $\Delta y_j - 1$,

where—

Jaghanya-yukta-ananta [Ayj] = $(ap_j)^{(ap_j)}$

Madhyama-yukta-ananta [Aym] is $> \Delta y_j$, but $< \Delta y_u$,

Utkrsta-yukta-ananta [Ayu] = $\Delta \Delta_j - 1$,

where—

Jaghanya-ananta-ananta [$\Delta \Delta_j$] = $(\Delta y_j)^2$

Madhyama-ananta-ananta [$\Delta \Delta_m$] is $> \Delta \Delta_j$, but $< \Delta \Delta_u$,

where—

$\Delta \Delta_u$ stands for Utkrsta-ananta-ananta, which according to *Nemicandra*, is obtained as follows—

Let—

$$x = \left[\left\{ (\Delta \Delta_j)^{\Delta \Delta_j} \right\} \left\{ (\Delta \Delta_j)^{\Delta \Delta_j} \right\} \right] \left[\left\{ (\Delta \Delta_j)^{\Delta \Delta_j} \right\} \left\{ (\Delta \Delta_j)^{\Delta \Delta_j} \right\} \right] + \text{six rasas}^3,$$

$$y = \left\{ (x^x)^{x^x} \right\} \left\{ (x^x)^{x^x} \right\} + \text{two rasas}^4,$$

1 The six dravyas are the spatial points of (1) Dharma (2) Adharma (3) one Jiva (4) Lokākāsa (5) apratisthita (vegetable souls) and (6) Pratisthita (vegetable souls)

2 The four aggregates are (1) instants of a kalpa (2) spatial units of the Universe, (3) anubhāgabandha-adhyava-aya-sthāna and (4) avibhāga praticheda of Yoga

3 These are (1) siddha (2) sālihāra-vanaspati-nigoda, (3) vanaspati, (4) pudgala (5) vyavahara kala, and (6) alokakasa

4 These are (1) Dharma dravya, (2) adharma dravya, (aguru-laghu-guna-avibhāga praticheda of both)

$$z = \{(y^y)^{y^y}\} \{(y^y)^{y^y}\}$$

Now the aggregate known as *kevalajnana* is greater than z , and—

$$\begin{aligned} AAu &= \text{Kevalajnana} - z + z \\ &= \text{Kevalajnana} \end{aligned}$$

Remarks—From the above it follows that—

[1] *Jaghanya-parita-ananta* [*apj*] is not infinite unless one or more of the six *dravyas* or the one of the four aggregates, which have been added to obtain it is infinite

[u] *Utkrsta-ananta-ananta* [*AAu*] is equivalent to the aggregate called *Kevalajnana*. The description above seems to imply that the *utkrsta-ananta-ananta* can not be reached by any arithmetical operation however far it may be carried. In fact it is greater than any number z which can be reached by arithmetical operations. It seems to me therefore that *Kevalajnana* is infinite and hence that *utkrsta-ananta-ananta* is infinite

Thus the description found in the *Trilokasara* leaves us in doubt as to whether any of the three classes of *parita-ananta* and the three classes of *yukta-ananta* and the *jaghanya-ananta-ananta* is actually infinity or not in as much as they are all said to be the multiples of *asamkhyata* and even the aggregates that have been added are also *asamkhyata* only. But the *Ananta* of the *Dhavalā* is actual infinity for it is clearly stated that a number which can be exhausted by subtraction cannot be called *ananta*.¹ It is further stated in the *Dhavalā* that by *ananta-ananta* is always meant the *madhyama-ananta-ananta*. So the *madhyama-ananta-ananta* according to the *Dhavalā* is infinite.

The following method of comparing two aggregates given in the *Dhavalā*² is very interesting. Place on one side the aggregate of all the past *Avasarpinis* and *Utsarpinis* (i. e. the time-instants in a *kalpa* which are supposed to form a continuum and are consequently infinite) and on the other the aggregate of *Mithyadrsti jivā-rasā*. Then taking one element of the one aggregate and a corresponding element from the other discard them both. Proceeding in this manner the first aggregate is exhausted whilst the other is not.³ The *Dhavalā*, therefore concludes that the aggregate of *mithyadrsti-rasā* is greater than that of all the past time-instants.

The above is nothing but the method of one-to-one correspondence which forms the basis of the modern theory of infinite cardinals. It may be argued that the method is applicable to the comparison of finite cardinals also and so was taken recourse to for comparing two very big finite aggregates, so big that their elements

1 *Dhavalā* III p. 9. 2 *ibid* p. 28. 3 *ibid* p. 28.

could not be counted in terms of any known numerical denomination. This view-point is further supported by the fact that the Jaina works fix the duration of a time-instant, and so the number of time-instants in a Kalpa (*Avasarpini* and *Utsarpini*) must be finite, as the Kalpa itself is not an infinite interval of time. According to this latter view the Jaghanyā-parita-ananta (which according to definition is greater than the aggregate of time instants) is finite.

As already pointed out the method of one-to-one correspondence has proved to be the most powerful tool for the study of infinite cardinals, and the discovery and first use of the principle must be ascribed to the Jainas

In the above classification of numbers I see a primitive attempt to evolve a theory of infinite cardinal numbers. But there are some serious defects in the theory. These defects would lead to contradictions. One of these is the assumption of the existence of the number $c - 1$, where c is infinite and a limiting number of a class. On the other hand, the Jaina conception that the *vargita-samvargita* of a cardinal c (i.e., c^c) would lead to a new number is justifiable. If it be true that the *Utkrsta-asamkhyata* of the early Jaina literature corresponds to infinity, then the creation of the numbers of the *ananta* class anticipated to some extent the modern theory of infinite cardinals. Any such attempt at such an early age and stage in the growth of mathematics was bound to be a failure. The wonder is that the attempt was made at all.

The existence of several kinds of infinity was first demonstrated by George Cantor about the middle of the nineteenth century. He gave a theory of transfinite numbers. Cantor's researches in the domain of infinite aggregates, have provided a sound basis for mathematics, a powerful tool for research and a language for correctly expressing the most abstruse mathematical ideas. The theory of transfinite numbers however, is at present in an elementary stage. We do not as yet possess a calculus of these numbers, and so have not been able to bring them effectively in mathematical analysis.

A. N. Singh, D. Sc.,
Lucknow University.

INDEX

(Owing to deficiency of types proper diacritical marks could not be used in the ' Mathematics of Dhavala. The following index will be helpful in reading the Sanskrit and Prakrit technical terms correctly)

- Ababa (अबा) xviii
 Abbuda (अबुद, sh. अबुद) xviii
 Abhayadeva Suri (अभयदेवसुरि) i fn
 Acalapra (अचलप्रा) xvii fn
 Adharma (अधर्म) xix fn
 Agamodaya samiti (आगमोदय समिति) i fn
 Aguru laghu guṇa (अगुरुलघु गुण) xix fn
 Ahaha (अहह) xviii
 Allohliṇi (अलोहलिनी, sh. अलाहिना) xviii
 Alokakāśa (अलोकाकाश) xix fn
 Amama (अमम) xvii fn
 Amaraṅga (अमरांग) xvii fn
 Ananta (अनन्त) xiv, xv etc
 Anantananta (अनन्तानन्त) xiv etc
 Anubhagabandha adhyasāya sthana
 (अनुभागबंध-अनुवसयस्थान) xix fn
 Anuyoga (अनुयोग) iii
 Anuyogadvāra sūtra (अनुयोगद्वारसूत्र) iv
 Apradeśikananta (अपदेशिकानन्त) xviii
 Apratiṣṭhita (अप्रतिष्ठित) xix fn
 Arddhaccheda (अर्धच्छेद) vii, xii
 Arddhaccheda śāloka (अर्धच्छेदश्लोका) xii
 Ardha magadhī (अर्धमगधी) iv, x
 Aryabhata (आर्यभट) ii iii
 Aryabhatīya (आर्यभटीय) ii, iv
 Asampīhiyata (असम्प्रीयात) xiv, xvii
 Asampīhyeya (असम्प्रीयेय) xviii
 Atata (अटट) xvii fn, xviii
 Atatanga (अटटांग) xvii fn
 Avibhaga pratichheda (अविभाग
 प्रतिच्छेद) xix fn
 Avasarpinī (अवसर्पिणी) xv, xxi
 Bappadeva (बप्पदेव) iv
 Benares (बनारस) i
 Bhadrabahu (भद्रबाहु) iii
 Bhagavati sūtra (भगवतीसूत्र) i fn
 Bhaskara (भास्कर) i
 Bhattotpala (भट्टोत्पल) iv
 Bhayananta (भयानन्त) xviii
 Bindu (बिन्दु) xviii
 Brahmagupta (ब्रह्मगुप्त) i, ii
 Brhat Samhita (बृहत्संहिता) iv fn
 Caturthachheda (चतुर्थच्छेद) viii
 Daga (दग, sh. दस) xviii
 Deya (देय) vi
 Dharmā (धर्म) xix fn
 Dhavala (धवला) iii, iv, etc
 Dravyananta (द्रव्यानन्त) xviii
 Dravya pramaṇa (द्रव्यप्रमाण) v
 Eka (एक) xviii
 Ekananta (एकानन्त) xiii
 Ganita (गणित) i
 Ganitananta (गणितानन्त) xiii
 Ganitanuyoga (गणितानुयोग) iii
 Gauṭa sara samgraha (गणितसारसंग्रह)
 i, iii, v, vi
 Gommatasara (गोम्मतसार) v fn
 Haha (हाहा) xvii fn
 Hahanga (हाहांग) xvii fn
 Hanvamsapurana (हरिवंशपुराण) xvii fn
 Hastaprahelita (हस्तप्रहेलित) xvii fn
 Huhanga (हुहांग) xvii fn
 Huhu (हुहु) xvii fn
 Ichha (इच्छा) xi
 Indranandi (इन्द्रानन्दि) iv
 Jaghanya (जघन्य) xiv, xv, xvii
 Jaghanya anantananta (जघन्य-अनन्तानन्त)
 xiv, xv, xvii
 Jaghanya asampkhyata asampkhyata
 (जघन्य-असम्प्रीयात-असम्प्रीयेय) xv, xvii, etc

Jaghanya parita ānanta (जघन्य-परीत अनन्त) xv, xviii etc	Madhyama yukta asamkhyata (मध्यम-युक्त असंख्यात) xv, xviii etc
Jaghanya parita asamkhyata (जघन्य परीत-असंख्यात) xv xviii etc	Mahakathana (महाकथान) xviii
Jaghanya yukta ananta (जघन्य युक्त-अनन्त) xv, xix	Mahalata (महालता) xvii fn
Jaghanya yukta asamkhyata (जघन्य युक्त-अनन्त) xv, xviii etc	Mahalatanga (महालतांग) xvii fn
Jambudvīpa (जम्बूद्वीप) xvi	Mahaviracarya (महावीरार्चाय) i
Jiva (जीव) xix fn	Malabar (मलबार) i
Jivakanda (जीवकाण्ड) v fn	Malayagiri (मलयगिरि) iv
Jiva rasi (जीवराशि) v	Mithyadrsti Jiva rasi (मिथ्यादृष्टि जीवराशि) xx
Kalpa (कल्प) xix fn, xx, xxi	Mysore (मेसूर) i
Kamala (कमल) xvii fn	Nahuta (नहुत) xviii
Kamalanga (कमलांग) xvii fn	Nalina (नलिन) xvii fn
Kataura bhavana (कर्णभारणा) iv	Nalinanga (नलिनांग) xvii fn
Karanaguyoga (करणाद्युग) iii	Namananta (नामानन्त) xiii
Kathana (कथान) xviii	Nayuta (नयुत) xvii fn
Kevala jnana (केवलज्ञान) xx	Nayutanga (नयुतांग) xvii fn
Koti (कोटि) v, xviii	Nemicaudra (नेमिचन्द्र) xiv, xviii, xix
Kotippakoti (कोटिपकोटि) xviii	Ninnahuta (निन्नहुत, sk निणहुत) xviii
Ksetra samasa (क्षेत्रसमास) iv	Nirabbudra (निरबुद, sk निरबुद) xviii
Kumuda (कुमुद) xvii fn, xviii	Padma (पद्म) xvii fn
Kumudanga (कुमुदांग) xvii fn	Padmanga (पद्मांग) xvii fn
Kundakunda (कुदकुद) iv	Paduma (पदुम, sk पद्म) xviii
Kusumapura (कुसुमपुर) ii	Pakoti (पकोटि, sk प्रकोटि) xviii
Lata (लता) xvii fn	Pali (पाली) v
Latanga (लतांग) xvii fn	Parita ananta (परीत-अनन्त) xiv
Lokakasā (लोकसाक्ष) xix fn	Pataliputra (पाल्लिपुत्र) i
Madhyama ananta ananta (मध्यम-अनन्त-अनन्त) xv, xix	Phala (फल) xi
Madhyama asamkhyata āsamkhyata (मध्यम-अनन्त-असंख्यात) xv, xviii etc	Prakrit (प्राकृत) iv, v, x
Madhyama parita-ananta (मध्यम-परीत-अनन्त) xv, xix	Pramana (प्रमाण) xi
Madhyama parita asamkhyata (मध्यम-परीत असंख्यात) xv, xviii etc	Pratisthita (प्रतिष्ठित) xix
Madhyama yukta ananta (मध्यम युक्त-अनन्त) xv, xix	Pudgala (पुद्गल) xix fn
	Pundarika (पुण्डरीक) xviii
	Purava (पुराण) iii
	Purva (पूर्वे) xvii fn
	Purvanga (पूर्वान्ग) xvii fn
	Rajavarttika (राजवार्तिक) xvii fn
	Rangacarya (रंगाचार्य) iii
	Sadharana vanaspati nigoda (साधारण-वनस्पति निगोद) xix fn

- Sabassa (सहस्र, sk सहस्र) xviii
 Samantabhadra (समन्तभद्र) iv
 Samkhyata (सखात) xiv, xv
 Sarvananta (सर्वानन्त) xiii
 Saswatananta (शाश्वतानन्त) xiii
 Sata (सत, sk शत) xviii
 Satkhandagama (षट्सहस्रभाग) iii
 Shamakunda (शमकुन्द) iv
 Siddha (सिद्ध) xix fn
 Siddhasena (सिद्धसेन) iv
 Silanka (शिलांक) iv fn
 Sogandhika (सोगंधिक, sk साधिक) xviii
 Smayadhyayana (स्मयाध्ययन) iv fn
 Sridharacarya (श्रीधराचार्य) i, ii
 Srikalpa (श्रीकल्प) xvii fn
 Srutavatara (श्रुतावतार) iv
 Sthananga sutra (स्थानांग सूत्र) iv
 Sthapanananta (स्थापनानन्त) xiii
 Sulbasutra (सुलवसूत्र) ii
 Suryaprajnapti (सूर्यब्रह्मसि) iv
 Sutrakrtanga sutra (सूत्रकृतांग सूत्र) iv fn
 Tathvarthadhigama-sutra bhasya
 (तत्त्वार्थाधिगमसूत्र-भाष्य) iv
 Taxila (तक्षशिला) i
 Triloka prajnapati (त्रिलोक प्रज्ञपति)
 iv, xvii fn
 Triloka-sara (त्रिलोकसार) iv, xiv, xv, xx
 Trikachheda (त्रिकच्छेद) vii
 Trutita (त्रुटित) xvii fn
 Trutitanga (त्रुटितांग) xvii fn
 Tumbulura (तुम्बुलूर) iv
 Ubhayananta (उभयानन्त) xiii
 Ujjain (उज्जैन) i
 Umasvati (उमास्वति) iv
 Uppala (उप्पल, sk उत्पल) xviii
 Utkrsta ananta ananta (उत्कृष्ट-अनन्त-अनन्त)
 xv, xix
 Utkrsta asamkhyata asamkhyata
 (उत्कृष्ट असखात असख्यात) xv, xviii etc
 Utkrsta parita ananta (उत्कृष्ट-परीत-अनन्त)
 xv, xix
 Utkrsta parita asamkhyata (उत्कृष्ट-परीत-
 असखात) xv, xviii etc
 Utkrsta yukta ananta (उत्कृष्ट युक्त अनन्त)
 xv, xix
 Utkrsta yukta asamkhyata (उत्कृष्ट-युक्त-
 असखात) xv xviii etc
 Utsarpini (उत्सर्पिणी) xx, xxi
 Uttaradhyayana sutra (उत्तराध्ययनसूत्र)
 i fn
 Vanaspati (वनस्पति) xix fn
 Varahamihira (वराहमिहिर) ii, iv
 Varga (वर्ग) vi
 Varga samvarga (वर्ग सवर्ग) xi
 Varga salaka (वर्ग शलाका) vii
 Vargita samvargita (वर्गित-सवर्गित) vi,
 vii, viii, xi, xii fn, xxi
 Varsa (वर) xvii fn
 Viralana (विरलन) vi
 Viralana deya (विरलन देय) vi
 Virasena (वीरसेन) iv
 Vistarana (विस्तारानन्त) xiii
 Vyavaharakala (व्यवहार काल) xix fn
 Yoga (योग) xix fn
 Yojana (योजना) xv
 Yuga (युग) xvii fn
 Yuka (युक्त) xiv, xv
 Yuktananta (युक्तानन्त) xiv

सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

जैनधर्म ज्ञान और विवेक प्रदान है। यहा मनुष्यके प्रत्येक कार्यकी अडाई आर बुराईका निर्णय यस्तुस्वरूपके विचार और भावोंकी शुद्धि या अशुद्धिके अनुसार किया गया है। ज्ञानका स्थान यहा बहुत ऊचा है। मोक्षका मार्ग जो स्तत्रयस्वरूप कहा गया है उसमें ज्ञानका स्थान चारित्रसे पूर्व रखा है। जब कुछ ज्ञान हो जायगा तभी तो चारित्र सुजर सकेगा, और जितनी मात्रामें ज्ञान विशुद्ध होना जायगा उतनी मात्रामें ही चारित्र निर्मल हेने की सम्भावना हो सकती है। इसीलिये जनी देवके साथ ही शास्त्रकी भी पूजा करते हैं। दैनिक आवश्यक क्रियाओंमें शास्त्र स्वाध्यायका स्थान विशेष रूपसे हे'। चार प्रकारके दानोंमें^१ शास्त्रदानकी भी बडी महिमा है। जैन आचार्योंकी ज्ञात या कि धर्मका प्रचार और परिपालन शास्त्रोंके आधारसे ही हो सकता है, अत उहोंने समय समय पर सभी स्थानों और प्रदेशोंकी भाषाओंमें ग्रथ रचकर उनका प्रचार व पठन-पाठन बटानेका प्रयत्न किया। स्वय तीर्थंकर भगवान्की दिव्यगणीकी यह एक विशेषता कही जाती है कि उसे सन प्राणी सुन और समझ सकते तथा उससे लाभ उठा सकते हैं। प्राचीन कालकी शिष्ट भाषा कहलानेवाली संस्कृत को छोड़कर जैन सिद्धान्तको प्राकृत-भाषा निबद्ध करनेमें यह भी एक हेतु कहा जाता है कि जिससे बाल, स्त्री, मन्द, मूर्ख सभी चारित्र सुधारनेकी वाडा रखनेवाले उससे लाभ उठा सकें^२।

किन्तु धर्मका उदात्त ध्येय और स्वरूप सदैव एकरुपा नियत नहीं रहने पाता। ज्यों ही उसमें गुरु कहलानेकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तियोंकी वृद्धि हुई, और ज्ञानकी हीनता होते डू भी वे मर्यादासे बाहरकी बातें कहने सुनने लगे, ल्यों ही उसमें अनेक विप्रेरुहीन और तर्कशून्य बातें व विश्वास भी आ घुसते हैं, जो भोली समाजमें घर करके कभी कभी बडे अनर्थके कारण बन जाते हैं। जैनशास्त्र स्वाध्यायके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक बात उत्पन्न हुई है जिसका हमें यहा विचार करना है।

पट्टखडागमकी इससे पूर्व तीन जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं और अब चौथी जिल्द पाठकोंके हाथमें पहुच रही है। इन सिद्धान्त ग्रंथोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका सतोष हो रहा है। इस ओर समाजके औत्सुक्य और तत्परता का अनुमान इसीसे हो सकता है कि इतने अल्प कालमें हमें सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें मूडबिंदी-सस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जयनरालके प्रकाशनके लिये भी अनेक सस्थाए उत्सुक हो उठीं और जैन सच,

१ देवपूजा गुरुपास्ति स्नात्राय सधमस्तप । वान चेति गृहस्थाना पद् कमणि दिने दिने ॥

२ औपधिन्न, शास्त्रदान, धर्मदान और आहारदान ।

३ बालस्त्रीमदमूर्खाणा नृणा चारित्रकाक्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्तद् सिद्धान्त प्राकृत कृत ॥

मयुरा, की ओरसे उसका कार्य भी प्रारम्भ हो गया, तथा सेठ गुलाबचन्दजी शोलापुरकी सद्भावनासे महाधरलके सम्बन्धमें भी एक समिति सुसंगठित हो गई है। श्रीयुक्त मजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताडपत्रीय प्रतिषेधके आधारसे प्रकाशित करनेकी स्त्रीम भी प्रस्तुत की है। प्रकाशित सिद्धान्तका स्वाध्याय भी अनेक मदिरों और शास्त्रमठारों व गृहोंमें हो रहा है। यही नहीं, बम्बईकी माणिकुचद जैन परीक्षालय समितिने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तरूप प्रथम भाग सवरूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित कर इन सिद्धान्तोंके समयोचित पठन-पाठन का मार्ग भी खोल दिया है।

इस सब प्रगतिसे विद्वत्सत्तार को बड़ा हर्ष है। किन्तु एकाध विद्वान् अभी ऐसे भी हैं जिन्हें इन सिद्धान्तोंका यह उद्धार प्रचार उचित नहीं जचता*। उनके विचारसे न तो इन प्रयोगोंका मुद्रण होना चाहिये, और न इन्हें विद्यालयोंमें अध्ययन-अध्यापनका नियम बनाना चाहिये। यहाँ तक कि गृहस्थमात्रको इनके पढ़नेका निषेध कर देना चाहिये। उनका यह विवेक निम्न लिखित आगम और युक्ति पर निर्भर है—

(१) अनेक प्राचीन ग्रंथोंमें यह उपदेश पाया जाता है कि गृहस्थोंको सिद्धान्तोंके श्रवण, पठन या अध्ययनका अधिकार नहीं है।

(२) सिद्धान्तप्रथ दो द्वा हैं जो कि धवल, जयधवल, महाधरलके रूपमें टीका द्वारा उपलब्ध हैं, बानी सभी शास्त्र सिद्धान्तप्रथ नहीं हैं।

प्रथम बातका पुष्टिमें निम्न लिखित प्रयोगोंके अवतरण दिये गये हैं—

(१) वसुनन्दि श्रावकाचार, (२) श्रुतसागरवृत्त पट्टप्राश्रुतटीका, (३) वामदेववृत्त भावसंग्रह, (४) मेघानीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार (५) धर्मापदेशापीयूयर्पातर श्रावकाचार,

-
- देखो प मक्खनलाल शास्त्री लिखित 'सिद्धान्तशास्त्र ओर उनके अध्ययनका अधिकार', मोरना, वी स २४६८
- १ विणान्निम वारचरिया तियालजोगेसु गण्धि अहियारो । सिद्धत रहस्मान्ण वि अउज्जयण देसाविरदाण ॥ ३१२ ॥
(वसुनन्दि श्रावकाचार)
- २ धीरचयो च सूर्यप्रतिमा ध्रुतस्वयोगनियमश्च । सिद्धा उरहस्पादिष्वध्ययन नास्ति देसाविरतानाम् ॥
(श्रुतसागर पट्टप्राश्रुतटीका)
- ३ नास्ति त्रिकालयोगाऽस्य प्रतिमा चाकैसमुखा । रहस्यप्रथसिद्धान्तश्रवणे नाधिकारिता ॥ ५४७ ॥
(वामदेव भावसंग्रह)
- ४ कल्पन्त्ये धीरचयाह प्रतिमावापनादप । न श्रावकस्य सिद्धान्तरहस्याध्ययनादिकम् ॥ ७४ ॥
(मेघावा धर्मसंग्रहश्रावकाचार)
- ५ त्रिकालयोगनियमो वारचया च सवया । सिद्धान्ताध्ययन स्यप्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥

(६) इन्द्रनन्दिकृत नीतिसार और (७) आशाधरकृत सागारधर्माधृत ।

इन सब प्रयोगोंमें केवल एक ही अर्थज्ञा और प्राय उन्हीं शब्दोंमें एक ही पद्य पाया जाता है जिसमें कहा गया है कि देशनिरत श्रावक या गृहस्थको वीरचर्या, सूर्यप्रतिमा, त्रिकाल-योग और सिद्धान्तरहस्यके अध्ययन करनेका अधिकार नहीं है ।

जिन सात प्रयोगोंसे गृहस्थको सिद्धान्त अध्ययनका निषेध करनेवाला पद्य उद्धृत किया गया है उनमेंसे न ५ और ६ को छोड़कर शेष पाच प्रयोग इस समय हमारे सम्मुख उपस्थित हैं । बभ्रुनान्दिकृत श्रायज्ञाचारका समय निर्णय नहीं है तो भी चूँकि आशाधरके प्रयोगोंमें उनके अवतरण पाये जाते हैं और उनके स्वयं प्रयोगोंमें अमितगतिके अवतरण आये हैं, अतः वे इन दोनोंके बीच अर्थात् विक्रमर्षी १२ हर्षो १३ हर्षो शब्दादिमें हुए होंगे । उनके प्रयोगोंकी कोई टीका भी उपलब्ध नहीं है, जिससे लेखकका ठीक अभिप्राय समझमें आ सकता है । उनकी गायत्री प्रथम पक्तिमें कहा गया है कि दिनप्रतिमा, वीरचर्या और त्रिकालयोग इनमें (देशनिरतोक्ता) अधिकार नहीं है । दूसरी पक्ति है ' सिद्धतरहरस्ताण वि अज्ञयण देसविरदाण ' । यथार्थतः इस पक्तिकी प्रथम पक्तिसे ' गन्धि महियारो ' से समझ नहीं बैठती, जब तक कि इसके पाठमें कुछ परिवर्तनादि न किया जाय । ' सिद्धतरहरस्ताण ' का अर्थ हिन्दी अनुवाद करने ' सिद्धातके रहस्यका पढ़ना ' ऐसा किया है, जो आशाधरजीके किये गये अर्थसे भिन्न है । प्रयत्नकारका अभिप्राय समझनेके लिये जब आगे पाँठके पद्य उलटते हैं तो सम्यक्त्वके लक्षणमें देखते हैं—

अज्ञानमवस्थाण ज सहहण सुगिम्मल होदि । सकाहदोसरहिय त सम्मत्त मुणेषध्व ॥ ६ ॥

अर्थात्, जब आप्त आगम और तरंगोंमें निर्मल श्रद्धा हो जाय और शका आदिक कोई दोष नहीं रहे तब सम्यक्त्व हुआ समझना चाहिये । अब क्या सिद्धान्त प्रयोग आगमसे बाहर हैं, जो उनका अध्ययन न किया जाय ? या शकादि सब दोषोंका परिहार होकर निर्मल श्रद्धा उन्हें बिना पढ़े ही उत्पन्न हो जाना चाहिये ? आगमकी पहिचानके लिये आगेकी गायामें कहा गया है—

अन्ता दोमनिमुञ्चो पुष्वापरदोसगन्धिय वयण ।

अर्थात्, जिसमें कोई दोष नहीं वह आप्त है, और जिसमें पूर्वापर निरोधरूपी दोष न हो वह वचन आगम है । तब क्या आगमको बिना देखे ही उसके पूर्वापर निरोध-राहित्यको स्वीकार कर नि शक, निर्मल श्रद्धा कर लेनेका यथा उपदेश दिया गया है ? जैसा हम देखेंगे, आगम और सिद्धान्त एक ही अर्थके द्योतक पर्यायवाची शब्द हैं । कहीं इनमें भेद नहीं किया गया । आगे देशनिरतके कर्तव्योंमें कहा गया है—

१ भाषिकाना गृहस्थाना शिव्याणामरूपमेधस्मान् । न वाचनीय पुरत सिद्धान्ताचारपुस्तकम् ॥

(इन्द्रनदि नीतिसार)

● धारकी वीरचर्यादि प्रतिमात्रापनादिपु । स्वाध्यायिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽपि च ॥ ७, ५० ॥

(आशाधर-सागारधर्माधृत)

मथुरा, की ओरसे उसका कार्य भी प्रारम्भ हो गया, तथा सेठ गुलाबचंदजी शोलापुरकी सद्भावनासे महाधरलके सम्बन्धमें भी एक समिति सुसंगठित हो गई है। श्रीयुक्त मनीषाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताडपत्रीय प्रतियोंके आधारसे प्रकाशित करनेकी स्त्रीम भी प्रस्तुत की है। प्रकाशित सिद्धान्तका स्वाध्याय भी अनेक मदिनों और शास्त्रमहारों व गृहोंमें हो रहा है। यही नहीं, बम्बईकी माणिकचंद जैन परीक्षालय समितिने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम भाग सत्परूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित कर इन सिद्धान्तोंके समबोचिन पठन-पाठन का मार्ग भी रोख दिया है।

इस सब प्रगतिसे विद्वत्सत्तार को बड़ा हर्ष है। किन्तु एकाध विद्वान् अभी ऐसे भी हैं जिन्हें इन सिद्धान्तोंका यह उद्धार प्रचार उचिन नहीं जचता*। उनके विचारसे न तो इन प्रयोगोंका मुद्रण होना चाहिये, और न इन्हें विद्यालयोंमें अध्ययन-अध्यापनका नियम बनाना चाहिये। यहां तक कि गृहस्पृष्टान्तोंके इनके पढ़नेका निषेध कर देना चाहिये। उनका यह विवेक निम्न लिखित आगम और युक्ति पर निर्भर है—

(१) अनेक प्राचीन प्रयोगोंमें यह उपदेश पाया जाता है कि गृहस्थोंको सिद्धान्तोंके श्रवण, पठन या अध्ययनका अधिकार नहीं है।

(२) सिद्धान्तप्रथ दो ही हैं जो कि धरल, जयधवल, महाधरलके रूपमें टीका द्वारा उपलब्ध हैं, बाकी सभी शास्त्र सिद्धान्तप्रथ नहीं हैं।

प्रथम बातका पुष्टिमें निम्न लिखित प्रयोगोंके अवतरण दिये गये हैं—

(१) वसुनन्दि श्रान्तकाचार, (२) श्रुतसागरकृत पट्टमाश्रुतटीका, (३) वामदेवकृत भावसप्रह, (४) मेघाश्रुत धर्मसप्रह श्रान्तकाचार (५) धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर श्रावकाचार,

- * देखा प मन्मनलाल शास्त्री लिखित 'सिद्धान्तशास्त्र और उनमें अध्ययनका अधिकार', मोरेंना, बी सं २४१८
 १ दिणपदिम धारचरिया विद्यालयजोगेसु पण्डित अधिपति । सिद्धत रहस्सताण वि अग्रप्रथण दसविरदाण ॥११२॥
 (वसुनन्दि श्रावकाचार)
 २ धारचर्या च सूर्यप्रतिमा श्रेकारवयोगनियमग्र । सिद्धान्तरहस्यादिष्वध्ययन नास्ति देशविरतानाम् ॥
 (श्रुतसागर पट्टमाश्रुतटीका)
 ३ नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य प्रतिमा चार्कसम्मुखा । रहस्यप्रथसिद्धान्तप्रवणे नाधिकारिता ॥ ५४७ ॥
 (वामदेव भावसप्रह)
 ४ कल्पन्ते धारचर्याह प्रतिमावापनादय । न श्रावकस्य सिद्धान्तरहस्याप्ययनादिकम् ॥ ७४ ॥
 (मेघावा धर्मसप्रहश्रावकाचार)
 ५ त्रिकालयोगनियमो धारचर्या च सवथा । सिद्धान्त्वाप्ययन सूर्यप्रतिमा नास्ति तस्य धै ॥
 (धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर श्रावकाचार)

भगिन्व प्रतिपादित य पुमान् जानाति वेति स पुमान् स्फुट सम्यग्दृष्टिमवति । सूत्रार्थवद्विनेष्ट पुमान् मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्य । '

यहाँ श्रुतसागरजी स्वयं जिनोक्त सूत्रोंके अर्थके बानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग मान रहे हैं, और उस ज्ञानके बिना मनुष्य मिथ्यादृष्टि रहता है यह भी स्वीकार कर रहे हैं । ये 'पुमान्' शब्द के उपयोगसे यह भी स्पष्ट बतला रहे हैं कि जिनोक्त सूत्रोंका अर्थ समझना केवल मुनिराजोंके लिये ही नहीं, किन्तु मनुष्यमात्रके लिये आवश्यक है । ऐसी अवस्थामें वे सिद्धान्त ग्रंथोंको जिनोक्त सूत्रोंसे बाहर समथर श्रान्तोंको उन्हें पढ़नेका निषेध करते हैं, या श्रान्तोंको मिथ्यादृष्टि बनाना चाहते ह, यह उनकी स्वयं परस्पर विरोधी बातोंसे कुछ समझमें नहीं आता । इसमें स्पष्ट है कि उस निषेधवाली बातका न तो भगवान् कुदकुदाचार्यके वाक्योंसे सामञ्जस्य बैठना है, और न स्वयं टीकाकारके ही पूर्व कथनोंसे मेल खाता है । श्रुतसागरजीका समय निरूपणकी सौलभ्यता शान्तिदि सिद्ध होता है^१ । श्रुतसागरजी कैसे लेकर गये और उनकी पट्टाबद्धमें कैसी कैसी रचना है इसके विषयमें एक विद्वान् समालोचनका मत देखिये^२ ।

“वे (श्रुतसागरजी) कदर तो ये ही, असहिष्णु भी बहुत ज्यादा थे । अन्य मतोंका खडन और निरोध तो औरतने भी किया है, परन्तु इन्होंने तो खण्डनके साथ बुरी तरह गालियाँ भी दी हैं । सबसे ज्यादा आक्रमण इन्होंने मूर्तिपूजा न करनेवाले लौकागच्छ (द्विष्टियों) पर किया है । जखूरत गैरजखूरत जहा भी इनकी इच्छा हुई है, ये उनपर टूट पडे हैं । इसके ठिये उन्होंने प्रसंगकी भी परवा नहीं की । उदाहरणके तौरपर हम उनकी पट्टाबद्धटीका को पेश कर सकते हैं । पट्टाबद्ध भगवत्कुदकुदका प्रथ है, जो एक परमसहिष्णु, शान्तिप्रिय और आध्यात्मिक विचारक थे । उनके ग्रंथोंमें इस तरहके प्रसंग प्राय हैं ही नहा कि उनकी टीकामें दूसरोंपर आक्रमण किये जा सकें, परन्तु जो पहलेसे ही भरा बैठा हो, वह तो कोई न कोई बहाना बूढ़ ही लेता है । दर्शनपाहुडकी मगलाचरणके वादकी पहली ही गाथा है—

वसगमूलो धम्मा उवइद्धो विणवेरोहिं विस्समाग । त सोज्जग सकरणे दसण्डीणे ण वदिस्सो ॥

इसका सीधा अर्थ है कि जिनदेवने शिष्योंको उपदेश दिया है कि धर्म दर्शनमूलक है, इसलिये जो सम्यग्दर्शनसे रहित है उसकी बदना नहीं करनी चाहिये । अर्थात्, चारित्र तर्मी धन्दनीय है जब वह सम्यग्दर्शनसे युक्त हो ।

इस सर्वथा निरुपद्रव गायानी टीकामें कालिकालसर्पज्ञ स्थानकवासियोंपर बुरी तरह बरस पडते हैं और कहते हैं—

१ पट्टाबद्धादिग्रह (भा गे, भा) भूमिका पृ ७

२ जैनमासिल और इतिहास, प नाथूराममैत्री कृत पृ ४०७ ४०८.

गाणे पाण्डुरवरेणे गागवतन्मि तद्द य भसीय । ज पडियरण वीरद गि च त णाणरिणओ ॥ ३२२ ॥

अर्थात्, ज्ञान, ज्ञानके उपकरण अर्थात् शस्त्र, और ज्ञानवान्की नित्य भक्ति वरना ही ज्ञाननिनय है । और भी—

द्वियमियपिज्ज मुत्ताणुपधि अफरम्मककहय वयण । सज्जमिनगमिम ज चाडुभामाण वाधिओ रिणओ ॥ ३२३ ॥

अर्थात्, दित, मिन, प्रिय और सूत्रके अनुसार वचन बोलना आदि वचननिनय है । इन गाथाओंमें जो ज्ञान, ज्ञानोपकरण और ज्ञाना या अलग अलग उल्लेख कर उनके विनयका उपदेश दिया गया है, तथा जो सूत्रके अनुसार वचन बोलन का आदेश है, क्या इस निनय और अनुसरणमें सिद्धांत गर्भिन नहीं है ? क्या सूत्रका अर्थ सिद्धांत वाक्य नहीं है ? हम आगे चलकर देखेंगे कि सूत्रका अर्थ साक्षात् निन भगवान् की द्वादशांग वाणी है । तत्र फिर द्वादशांगते सम्बन्ध रखनेवाले सिद्धांत प्रयोगोंके पठनका गृह्यकार्यको निषेध किस प्रकार किया जा सकता है ?

अत्र श्रुतसागरजीकी पदप्राशस्त्यटीकाको लजिये । कुदकुदाचार्यकृत सूत्रपाण्डुकी २१ वीं गाथा है—

दृश्य च बुवल्लिग वकिडु अरर सारयाण च ।

भित्तव भमेह पचो समिद्धिमाणेण ॥

इस गाथामें आचार्यने ग्यारहवीं प्रतिभावांग उत्कृष्ट श्रान्तके लक्षण बतलाये हैं कि वह मापासमितिका पाठन करता हुआ या मौनसहित भिक्षाके लिये भ्रमण करनेका पात्र है । इसी गाथाकी टीका समाप्त हो जानेके पश्चात् 'वक्त च समन्तभद्रेण महाकविना' कहेके चार आर्याए उद्धृत की गई हैं, जिनमें चौथी गाथा है 'वाचय्या च सूत्रप्रतिमा—' आदि । यहा न तो इसका कोई प्रसंग है और न पाण्डुगाथामें उसके लिये कोई आधार है । यह भी पता नहीं चलता कि कौनसे समतभद्र महानिरी रचनामेंसे ये पद्य उद्धृत किये गये हैं । जैनसाहित्यमें जो समतभद्र सुप्रसिद्ध हैं उनकी उत्कृष्ट और प्रसिद्ध रचनाओंमें ये पद्य नहीं पाये जाते । प्रत्युत इसके उनके रचित श्रान्तशारमें जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, श्रान्तों पर ऐसा कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया । अतएव वह अवतरण कहा तत्र प्रामाणिक माना जा सकता है यह शक्यत्व ही है ।

स्वयं कुदकुदाचार्यकी इतनी विस्तृत रचनाओंमें कहीं भी इस प्रकारका कोई नियंत्रण नहीं है । इसी सूत्रपाण्डुकी गाथा ५ और ७ को देखिये । वहा कहा गया है—

मुत्त थ जिणभणिय जीवापीवादिबहुविह अ ५ ।

देवादेय थ तथा जो आणइ सो हु सदिट्ठी ॥ ५ ॥

मुत्तयपथीरगट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुण्येय ॥ ७ ॥

अर्थात्, जो कोई जिन्भगवान्के कहे हुए सूत्रोंमें स्थित जीव, अजीव आदि सम्बन्धी नाना प्रकारके अर्थको तथा हेय और अहेयको जानता है वही सम्यग्दृष्टि है । सूत्रोंके अर्थसे अर्थ हुआ मनुष्य मिथ्यादृष्टि है । यहा श्रुतसागरजी अपनी टीकामें कहते हैं 'सूत्रस्वाय विनेव

सामने भी सिद्धान्त शास्त्र नहीं पढ़ने चाहिये ।” इसके अनुसार गृहस्थ ही नहीं, किन्तु मन्दबुद्धि मुनि और समस्त अर्जिन्नाएँ भी निषेधके छपेटेमें आगये । इसका उत्तर हम स्वयं सिद्धान्त प्रयकारोंके शब्दोंमें ही देना चाहते हैं ।

पाठक सत्प्ररूपणाके सूत्र ५ और उसकी ध्वला टीकाको देखें । सूत्र है—

एदोसि चैव चोद्दसण्ह जीवसमासाण परुवणट्टदाए तथ इमाणि अट्ट अणियोगद्वाराणि णायग्वाणि भवन्ति ॥ ५ ॥

इसकी टीका है—

‘तथ इमाणि अट्ट अणियोगद्वाराणि’ एतदेवाल, दोषस्य नास्त्वरीयकत्वादिति चेन्नैव दोष, मन्द-बुद्धिसत्त्वानुग्रहात् ।

अर्थात्, ‘तथ इमाणि अट्ट अणियोगद्वाराणि’ इतने मात्र सूत्रसे काम चल सकता था, शेष शब्दोंकी सूत्रमें आनस्यकता ही नहीं थी, उनका अर्थ वहीं गर्भित हो सकता था । इस शकाका ध्वलाकार उत्तर देते हैं कि नहीं, यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूत्रकारका अभिप्राय मन्दबुद्धि जीवोंका उपकार करना रहा है । अर्थात्, जिस प्रकारसे मन्दबुद्धि प्राणिमात्र सूत्रका अर्थ समझ सकें उस प्रकार स्पष्टतासे सूत्र-रचना की गई है । यहा दो बातें ध्यान देने योग्य हैं । ध्वलाकारके स्पष्ट मतानुसार एक तो सूत्रकारका अभिप्राय अपना प्रय केवल मुनियोंको नहीं, किन्तु सत्त्वमात्र, पुरुष स्त्री, मुनि, गृहस्थ आदि सभीको ग्राह्य बनानेका रहा है, और दूसरे उन्होंने केवल प्रतिभाशाली बुद्धिमानोंका ही नहीं, किन्तु मन्दबुद्धियों, अल्पमेधानियोंका भी पूरा ध्यान रखा है ।

ऐसी बात आचार्यजीने केवल यहीं कह दी हो, सो बात भी नहीं है । आगेका नौवा सूत्र देखिये जो इस प्रकार है ‘ओघेण अत्थि मिच्छाद्विट्ठी ।’ यहा ध्वलाकार पुन कहते हैं कि—

यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायात् ओघाभिधानमन्तरेणापि ओघोऽजगम्यते, तस्येहपुनश्चारण-मनर्थकमिति न, तस्य दुमघोजनानुग्रहात् । सर्वसत्त्वानुग्रहकारिणो हि जिना, नीराग वात् ।

अर्थात्, जिस प्रकार उद्देश होता है, उसी प्रकार निर्देश किया जाता है, इस नियमके अनुसार तो ‘ओघ’ शब्दको सूत्रमें न रखकर भी उसका अर्थ समझा जा सकता था, फिर उसका यहाँ पुनरुच्चारण अनर्थक हुआ । इस शकाका आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं, दुर्मेध, अर्थात् अस्वल्प मन्दबुद्धिवाले लोगोंके अनुग्रहके ध्यानसे उसका सूत्रमें पुनरुच्चारण कर दिया गया है । जिनेद्वेव तो नीराग होते हैं, अर्थात् किसीसे भी रागद्वेष नहीं रखते, और इस कारण वे सभी प्राणियोंका उपकार करना चाहते हैं केवल मुनियों या बुद्धिमानोंका ही नहीं । (सत्प्र १, पृ १६२)

और आगे चलिंये । सत्प्र सूत्र ३० में कहा गया है कि सज्ञी पचेन्द्रिय मिप्यादृष्टिसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तरु तिर्यंच मिश्र होते हैं । इस सूत्रकी टीका करते हुए आचार्य प्रश्न उठाते हैं कि ‘गतिमार्गणाकी प्ररूपणा कल्पने पर इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं, और इतने नहीं’ इस प्रकारके निरूपणसे ही यह जाना जाता है कि इस गतिकी इस गतिके साथ गुणस्थानोंकी अपेक्षा

‘ कोऽसौ दर्शनहीन इति चत् तीर्थंकरपरमदेवप्रतिमान मानयन्ति, न पुष्पादिना पूजयन्ति । धीर जिनसूत्रमुल्लसत तदाऽऽस्तिकैयुक्तिवचनेन निवेधनीया । तथापि यदि कदाग्रह न मुञ्चन्ति तदा समर्थराशिकै-
श्वानञ्चि गृणादिष्वाभिमुखे सादनीया, तत्र पाप नास्ति ।’

अर्थात्, दर्शनहीन कोन है, जो तीर्थंकरप्रतिमा नहीं मानते, उसे पुष्पादिसे नहीं पूजते
जब ये जिनसूत्रका उल्लङ्घन करें तब आस्तिकोंको चाहिए कि युक्तियुक्त वचनोंसे उनका निषेध करें,
फिर भी यदि वे कदाग्रह न छोड़ें तो समर्थ आस्तिक उनके मुँहपर विद्यासे लिपटे हुए जूते मारें,
इसमें जरा भी पाप नहीं । ”

यह हे श्रुतसागरजीकी भाषासमिति और उनकी आतता । ऐसे द्वेषपूर्ण अश्लील वाक्य एक
प्रामाणिक विद्वान् तो क्या साधारण शिष्ट व्यक्तिके मुखसे भा न निकल सकेंगे ।

अब वामदेवजीकेमात्र समग्रको लीचिये जिसके ५४७ वें श्लोक ‘ नास्ति त्रिकालयोगो’
आदिमें ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी श्रावणको ‘ सिद्धांत ध्वज ’ के अधिकारसे वर्जित किया गया है ।
वामदेवजीका काल विक्रमकी १५ हवीं या १६ हवीं शताब्दि अनुमाने किया गया है, । उनकी
प्रश्रयना मौलिक नहीं है, किन्तु १० वीं शताब्दिके देवसेनाचार्यके प्राकृत भाषासमग्रका कुछ
परिवर्धित संस्कृत रूपांतर है । उनकी इस कृतिके विषयमें उस प्रथमी भूमिकामें कहा गया है—

“ यह भावसमग्र प्राय प्राकृत भावसमग्रका ही संस्कृत अनुवाद है, दोनों प्रयोगोंको आमने
सामने रखकर पढ़नेसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है । यद्यपि प वामदेवजीने इसमें जगह
जगह अनेक परिवर्धन, परिवर्धन और संशोधन आदि किये हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता
कि यह स्वतंत्र ग्रन्थ है । शिष्टताकी दृष्टिसे अच्छा होता, यदि प वामदेवजीने अपने प्रथमें यह
बात स्वीकार कर ली होती । ”

इस परसे जाना जा सकता है कि वामदेवजी किस दर्जेके लेखक और विद्वान् थे । एक
प्राचीन और प्रामाणिक आचार्यकी रचनाका उसका नाम लिये बिना ही चुपचाप उसका रूपान्तर
करके उढौने प्रथकार बननेका यश छटा है । उसमें यदि उढौने कुछ परिवर्धन किया है
तो वह उसी प्रकारका है जिसका एक उदाहरण हमारे सामुख है । उनसे कोई छहसौ वर्ष
प्राचीन उक्त प्राकृत भावसमग्रमें ऐसे निषेधका नाम निशान तक नहीं है । अतएव स्पष्ट है कि
वामदेवजीने १६ वीं शताब्दिके लगभग कहींसे यह बात जोड़ी है ।

अब इन्द्रजित्के नीतिसारातर्गत उपदेशको लीजिये । इसमें उक्त निषेधने और भी
बड़ा उपग्रह धारण किया है । यहां कहा गया है कि—

आयिकाणां गृहस्थानां सिष्वाणामन्यमेषसाम् । न वाचनीय पुरत सिद्धांशाचारपुस्तकम् ॥

अर्थात्, “ आर्यिकोंके सामने, गृहस्थोंके सामने और थोड़ी बुद्धिवाले शिष्य मुनिवर्गके

सका उत्तर है कि दोनों नयोंवाले जीवोंके उपकारके लिये । तीसरे प्रकारका कोई निर्देश ही नहीं है, क्योंकि, उक्त दो नयोंमें स्थित जीवोंके अतिरिक्त तीसरे प्रकारके श्रोता होना असंभव है । पुन पृ ११५ पर कहा है—

प्रेरेण दृष्यपञ्चगट्टियणयपञ्चायपरिणदजीवाणुगगहकारिणो जिणा इदि जाणादिद ।

अर्थात्, अमुक प्रकार कथनसे यह ज्ञात कराया गया है कि जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयवर्ती जीवोंका अनुग्रह करनेवाले होते हैं ।

पृ १२० पर कहा है—

‘ निमट्ट ण्देसु तीसु सुत्तेसु पञ्चनयणयदेसणा ’ यद्दूण जीवागमणुगहट्ट । सगहरद्वजिविहेतो यद्दूण तित्थरद्वजिवाणमुवलभादो ।

अर्थात्, इन तीन सूत्रोंमें पर्यायार्थिकनयसे क्यों उपदेश दिया गया है ? इसका उत्तर है कि जिससे अधिक जीवोंका अनुग्रह हो सके । संक्षेपरुचिवाले जीवोंसे निस्ताररुचिवाले जीव बहुत पाये जाते हैं । पृ २४६ पर पाया जाता है—

उच्चमेव निमिदि पुणो नि उच्चे पलाभाना ? ण, मदुत्तुद्विभयियणमभालणदुवारेण पलोत्तरभादो ।

अर्थात्, एक बार कहीं हुई बात यहाँ पुन क्यों दुहराई जा रही है, इसका तो कोई फल नहीं है ? इसका उत्तर आचार्य देते हैं— नहीं, मदुत्तुद्वि भयजनोंके संभालद्वारा उसका फल पाया जाता है ।

ये चोटेसे अवनरण धरलसिद्धान्तके प्रकाशित अंशोंमेंसे दिये गये हैं । समस्त धरल और जयधवलमेंसे दो चार नहीं, सैकड़ों अन्तर्गण इस प्रकारके दिये जा सकते हैं जहाँ स्वयं धरलके रचयिता वीरसेनस्वामिने यह स्पष्टतः निना किसी आश्रितके प्रकृत किया है कि यह सूत्र-रचना और उनकी टीका प्राणिमात्रके उपयोगके लिये, समस्त भयजनोंके हितके लिये, मन्दसे मन्द बुद्धिवाले और महामेधारी शिष्योंके समाधानके लिये हुई है, और उनमें जो पुनरुक्ति व विस्तार पाया जाता है वह इसी उदार व्ययकी पूर्तिके लिये है । स्वयं धरलकारके ऐसे सुस्पष्ट आदेशके प्रकाशमें इन्द्रनिदि आदि लेखकोंका आर्थिकाओं, गृहस्थों और अल्पमेधानी शिष्योंको सिद्धान्त-पुस्तकोंके न पढ़नेका आदेश आर्षि या आगमोक्त है, या अन्यथा, यह पाठक स्वयं निचार कर देख सकते हैं ।

अब हमारे सम्मुख रह जाता है पंडितप्रवर आशाधरजीका वाक्य, जो निरुक्तकी १३ हज़ी शताब्दिका है । उनका वह निषेधात्मक श्लोक सागारवर्माश्रुतके सप्तम अध्यायका ५० वा पद्य है । इससे पूर्वके ४९ वें श्लोकमें ऐलकनी स्वपाणिप्रादि क्रियाओंका विधानात्मक उल्लेख है । तथा आगेके ५१ वें श्लोकमें श्रावकोंको दान, शील, उपवासादिका विधानात्मक उपदेश दिया गया है । इन दोनोंके बीच केवल वही एक श्लोक निषेधात्मक दिया गया है । सौभाग्यसे आशाधरजीने

समानता है, इसको इसके साथ नहीं। अतः फिरसे इसका नयन करना निष्कृत है। इस प्रश्नका आचार्य समाधान करते हैं कि—

‘न, तस्य धुमधमामरि स्पष्टीकरणार्थम्वात्। प्रतिपाद्यस्य धुमुनिसत्ताथविषयनिर्णयोरत्वात् न वस्तु वचस क्लम् इति यावात्।

अर्थात्, पूर्वोक्त शक्य ठाक नहीं, क्योंकि, दुर्भेद लोगोंको उसका भाव स्पष्ट हो जाने, यह उसका प्रयोजन है। न्याय यही कहता है कि निरासित अर्थका निर्णय करा देना ही वक्तोके वचनोंका फल है।

इसी प्रकार पृ २७५ पर कहा है कि—

‘अनवगतस्य विस्मृतस्य वा सिष्यस्य प्रश्नप्रश्नादस्य सूत्रस्यानवगतात्’ अर्थात् उसे जिस बातका अभी तक ज्ञान नहीं है, अथवा होकर विस्मृत हो गया है, ऐसे शिष्यके प्रश्न वश इस सूत्रका अन्तर्गत हुआ है। पृ ३२२ पर कहा है ‘द्रव्यार्थिकनयनात् सत्त्वानुग्रहात् तत्प्रवृत्ते। बुद्धीनां वैषिष्यात्। अस्वार्थस्य त्रिकाण्गोचरानन्तप्राण्यपेक्षया प्रवृत्तत्वात्।

अर्थात् उक्त निरूपण द्रव्यार्थिक नयानुसार समस्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिये प्रवृत्त हुआ है। भिन्न भिन्न मनुष्योंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी बुद्धि होती है। और इस आर्थ-प्रपञ्ची प्रवृत्ति तो त्रिकाण्डवर्ती अनन्त प्राणियोंकी अपेक्षासे ही हुई है। पृ ३२३ पर कहा है कि ‘जातारक्तस्य मध्यस्थारोकाभिरसनाथमाह’

अर्थात्, असुरक बात किमी भी मध्य जीवकी शक्यके निवारणार्थ कही गई है। पृ ३७० पर कहा है—

निरित्तबुद्धिजनानुग्रहात् प्रयागवदनयावदशना, मन्दधियामनुग्रहाथं पयाथार्थिकनयादेशना।

अर्थात्, तीक्ष्ण बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये द्रव्यार्थिकनयनका उपदेश दिया गया है, और मन्द बुद्धिवालोंके लिये पर्यायार्थिकनयनका। तृतीय भाग पृ २७७ पर कहा है—

ण पुणरुक्तदोमो वि त्रिणवयग मभवद्, मन्त्रुद्धिमत्ताणुगहद्वदाण तस्म साकहादो।

अर्थात्, जिन भगवान्के वचनोंमें पुनरुक्त दोषकी समावधान भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि, मदबुद्धि जीवोंका उससे उपकार होता है, यही उसका साफल्य है। पृ ४५३ पर कहा है—
सुद्धमपरवणमत्र किण्ण बुधदे ? ण, मेहाति मन्त्रुद्धिमन्त्रेहाविज्जणाणुग्महकारणेण सहोवप्सा।

अर्थात्, असुरक बातका सूक्ष्म प्ररूपणमात्र क्यों नहीं कर दिया, विस्तार क्यों किया? इसका उत्तर है कि मेधावी, मदबुद्धि और अन्यत मदबुद्धि, इन सभी प्रकारके लोगोंका अनुग्रह करनेके लिये उस प्रकार उपदेश किया गया है।

इसी चतुर्थ भागके पृ ९ पर कहा है—

किमद्दसुमयया गिहेसो कीरदे ? न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहाथवात्। ण सद्दो गिहेसो अरिय, णयदपमद्विषयीवदिरेत्तमोदाराण अमभवदा।

अर्थात्, प्रश्न होता है कि ओष और आदेश, ऐसा दो प्रकारसे ही क्यों निर्देश किया गया है?

अब इन्हीं आशाधरजीके इसी सागारधर्मामृतके प्रथम अध्यायके १० वें श्लोक और उन्हींके द्वारा लिखी गई उसकी टीकाको देखिये—

शलाक्येनाप्तगिरान्तसूत्रप्रवेशमार्गं मणिवच्च य स्यात् ।

हीनोऽपि रच्या रचिमसु तद्द्व भाषादर्मा साव्यवहारिकागम् ॥

अर्थात्, जिस प्रकार एक मोती जो कि कति रहित है, उसमें भी यदि सलाईके द्वारा छिद्र कर सूत (डोरा) पिरोने योग्य मार्ग कर दिया जाय और उसे कतिवाले मोतियोंकी मालामें पिरो दिया जाय तो वह कति-रहित मोती भी कतिवाले मोतियोंके साथ बैसा ही, अर्थात् कति-रहित ही सुशोभित होता है । इसी प्रकार जो पुरुष सम्यग्दृष्टि नहीं है वह भी यदि सद्गुरुके वचनोंके द्वारा अरंहतदेशके कड़े हुये सूत्रोंमें प्रवेश करनेका मार्ग प्राप्त कर ले, तो वह सम्यक्त्व रहित होकर भी सम्यग्दृष्टियोंमें नयोंके जाननेवाले व्यवहारी लोगोंको सम्यग्दृष्टिके समान ही सुशोभित होता है । सागारधर्मामृतकी टीका भी स्वय आशाधरजीकी बनाई हुई है । उस श्लोककी टीकामें सूत्रका अर्थ परमात्मन और प्रवेशमार्गका अर्थ ' अन्तस्तत्त्वरिच्छेदनेोपाय ' किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि आशाधरजीके ही मतानुसार अनित्यसम्यग्दृष्टिकी तो बात क्या, सम्यक्त्वरहित व्यक्तिको भी परमात्मनके अन्तस्तत्त्वज्ञान करनेका पूर्ण अधिकार है । और भी सागारधर्मामृतके दूसरे अध्यायके २१ वें श्लोकमें आशाधरजी कहते हैं—

तत्त्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थं कथयन्नाद्याय देशत्रयं तद्दीक्षाप्रवृत्तारराजितमहामन्त्रोऽनुद्वयत ।

अग पौर्णम्यार्थसमग्रहमधीयावीतद्याजान्तर पर्वान्ते प्रतिमासमाधिमुपयन्धन्यो निहन्त्यहसी ॥

अर्थात्, तीर्थ याने धर्माचार्य व गृहस्थाचार्यके कथनसे जीनादिक पदार्थोंको निश्चित करके, एक देशत्रयको धरके, दीक्षासे पूर्व अपराजित महामन्त्रका धारी और मिथ्या देवताओंका त्यागी तथा अगों (द्वादशांग) व पूर्वों (चौदह पूर्वों) के अर्धसमग्रहका अध्ययन करके अन्य शास्त्रोंका भी अतीता पूर्वके अन्तमें प्रतिमायोगको धारण करनेवाला पुण्यवान्मा जीव पापोंको नष्ट करता है ।

इस पद्यमें आशाधरजीने अज्ञेनसे जैन बननेके आठ सत्कारों, अर्थात् अवतार, वृत्तलाम, स्थानलाम, गणप्रद, पूजाराव्य, पुण्ययज्ञ, दृढचर्या और उपयोगिताका सक्षेपमें निरूपण किया है, जिसमें उन्होंने जैन बननेसे पूर्व ही अर्थात् अपनी अज्ञेन अवस्थामें ही जैन श्रुतियोंमें अर्थात् बारह अंग और चौदह पूर्वोंके ' अर्धसमग्र ' के अध्ययन कर लेनेका उपदेश दिया है । पूजाराव्य, पुण्ययज्ञ और दृढचर्या कियाओंका स्वरूप स्वय वीरसेनस्वामीके शिष्य तथा जयन्वटाके उत्तरभागके रचयिता जिनसेन स्वामीने महापुराणमें भी इस प्रकार बतलाया है—

पूजाराव्याख्यया स्थाना क्रियाऽस्य स्यात् परा । पूर्वोत्तमसमस्त्या गृह्णतोऽन्वार्थमग्रहम् ॥

ततोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी । दृष्ट्वन्त पूर्वविद्यानामर्थं सत्रज्ञचारिण ॥

तदास्य दृढचर्याख्या क्रिया स्वसमये धृतम् । निष्ठाप्य ऋष्यतो भ्रयात्वाह्वानन्याश्च कथ्यन्त ॥

यहां भी जैन होनेसे पूर्व ही गृहस्थको अगोंके अर्धसमग्रहका तथा पूर्वोंकी विद्याओंको सुन लेनेका पूरा अधिकार दिया गया है । यद्यपि मेधावीकृत धर्मसंग्रहशास्त्रका चार इस समय हमारे सामुख नहीं

अपने श्लोकों पर स्वयं टीका भी लिख दी है जिससे उनका श्लोकगत अभिप्राय स्पष्ट सुस्पष्ट हो जाय। उन्होंने अपने—

‘स्याद्वाधिकारा मिद्वान्तरहस्यायनेऽपि च’ का अर्थ किया है ‘विद्वान्तस्य परमागमस्य सूत्र रूपस्य रहस्यस्य च प्रायश्चित्तशास्त्रस्य अध्ययने पाठे श्रावको नाधिकारी स्वयदिति सत्यम् ।

अर्थात्, सूत्ररूप परमागमके अध्ययनका अधिकार श्रावकको नहीं है। अब प्रश्न यह उपास्थित होता है कि सूत्ररूप परमागम किसे कहना चाहिये। क्या धीरसेन—जिनसेन रचित धवला जयधवला टीकाएँ सूत्ररूप परमागम हैं, या यनिवृषभके चूर्णिसूत्र परमागम हैं, या भगवत् पुण्यदत्त और भूतबलि तथा गुणधर आचार्योंके रचे कर्मप्राभृत और कथापप्राभृतके सूत्र व सूत्र-गाथाएँ सूत्ररूप परमागम हैं ? या ये सभी सूत्ररूप परमागम हैं ? सूत्रकी सामान्य परिभाषा तो यह है—

अल्पाक्षरमसिन्धु सारवद् गूढनिर्णयम् । अस्ताममनत्रय च सूत्र सूत्रविदो विदुः ॥

इसके अनुसार तो पाणिनिके व्याकरणसूत्र और चास्यायनके कामसूत्र भी सूत्र हैं, और पुण्यदत्त भूतबलिदत्त कर्मप्राभृत या पट्टखडागम और उमास्वातिके तत्सार्थसूत्र आदि प्रत्येक सूत्र कहे जाते हैं। किंतु यदि जैन आगमानुसार सूत्रका विशेष अर्थ यहाँ अपेक्षित है तो उसकी एक परिभाषा हमें शिवकोटि आचार्यके भगवती आराधनामें मिलता है जहाँ कहा गया है कि—

सुप्त गणहरकहिय तदेव पत्तेयबुद्धकहिय च । सुद्वेगलिणा कहिय अभिण्णदमपुच्छिकहिय च ॥ ३४ ॥

इस गाथाकी टीका विजयोदयामें कहा है कि तीर्थंकरोंके कहे हुए अर्थको जो प्रथित करते हैं वे गणधर हैं, जिन्हें बिना परोपदेशके स्वयं ज्ञान उत्पन्न हो जाय, वे स्वयंबुद्ध हैं, समस्त श्रुतांगके धारक श्रुतकेवली हैं और जिन्होंने दशपूर्वाका अध्ययन कर लिया है और विवाओंसे चलायमान नहीं होते, वे अभिन्नदशपूर्वी हैं। इनमेंसे किसीके द्वारा भी प्रथित प्रथको सूत्र कहते हैं।

अब यदि हम इस कसौटी पर पट्टखडागम सिद्धातको या अथ उपलब्ध प्रयोगको कसों तो ये प्रत्येक ‘सूत्र’ सिद्ध नहीं होते, क्योंकि, न तो इनके रचयिता तीर्थंकर हैं, न प्रत्येकबुद्ध, न श्रुत केवली और न अभिन्नदशपूर्वी हैं। धरसेनाचार्यको तो केवल अग पूर्वोक्ता एरुदेश ज्ञान आचार्य परम्परासे मिला था। वह उन्होंने प्रथविच्छेदके भयमें पुण्यदत्त और भूतबलि आचार्योंको सिद्धा दिया और उसके आधार पर कुछ प्रपरचया पुण्यदत्तने और कुछ भूतबलिने की, जो पट्टखडागमके नामसे उपलब्ध है और जिस पर विष्णुकी नौवीं शताब्दिमें धीरसेनाचार्यने धवला टीका लिखी। इस प्रकार यदि हम आशाधरजी द्वारा उक्त सूत्रको सामान्य अर्थमें लेते हैं तो पट्टखडागम सूत्रोंके अनुसार तत्सार्थसिगममत्र भी सूत्र हैं, सर्वार्थसिद्धि भी सूत्र ही ठहरता है, क्योंकि, इसमें पट्टखडागमके सूत्रोंका सत्कृत रूपांतर पाया जाता है, गोम्पटसार भी सूत्र है, क्योंकि, इसमें भी पट्टखडागमके प्रमेयांशका समग्र, अर्थात् सूत्ररूपसे समुद्धार किया गया है, इत्यादि। पर यदि हम सूत्रका अर्थ भगवती आराधनाका परिभाषानुसार लें, तो ये कोई भी ग्रन्थ सूत्र नहीं सिद्ध होते। इस स्थितिसे बचनेका कोई उपाय उपलब्ध नहीं है।

अब इन्हीं आशाधरजीके इसी सागारधर्माश्रुतके प्रथम अध्यायके १० वें श्लोक और उन्हींके द्वारा लिखा गई उसकी टीकाको देखिये—

शलाक्येऽन्तगिरान्तसूत्रप्रवेशमार्गा मगिवच्च य स्वान् ।

हीनोऽपि रच्या रचिमसु तद्वद् भायादन्मौ साध्यवहारिकागाम् ॥

अर्थात्, जिस प्रकार एक मोती जो कि कृति-रहित है, उसमें भी यदि सलाईके द्वारा छिद्र कर सूत (डोरा) पिरोने योग्य मार्ग कर दिया जाय और उसे काटिवाले मोतियोंकी मालामें पिरो दिया जाय तो वह कृति-रहित मोती भी कृतिवाले मोतियोंके साथ बेशा ही, अर्थात् कृति-रहित ही सुशोभित होता है । इसी प्रकार जो पुरुष सम्यग्दृष्टि नहीं है वह भी यदि सद्गुरुके वचनोंके द्वारा अरंहतदेवके कड़े हुयं सूत्रोंमें प्रवेश करनेका मार्ग प्राप्त कर ले, तो वह सम्यक्त्वरहित होकर भी सम्यग्दृष्टियोंमें नयोंके जाननेवाले व्यवहारी लोगोंको सम्यग्दृष्टिके समान ही सुशोभित होता है । सागारधर्माश्रुतकी टीका भी स्वयं आशाधरजीको बनाई हुई है । उस श्लोककी टीकामें सूत्रका अर्थ परमागम और प्रवेशमार्गका अर्थ ' अन्तस्तत्त्वपरिच्छेदनेपाय ' किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि आशाधरजीके ही मनानुसार अतितसम्यग्दृष्टिकी तो बात क्या, सम्यक्त्वरहित व्यक्तियों भी परमागमके अन्तस्तत्त्वज्ञान करनेका पूर्ण अधिकार है । और भी सागारधर्माश्रुतके दूसरे अध्यायके २१ वें श्लोकमें आशाधरजी कहते हैं—

तत्त्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थकथनादादाय देशत्रत तद्दीक्षाप्रस्तापराजितमहामन्त्रोऽस्तुष्टुन्वत ।

भाग पौत्रैर्मयार्थसप्रहमर्षा यागीतशास्त्रान्तर पत्राते प्रतिमाममाधिमुपयन्वन्त्यो निहन्त्यहसी ॥

अर्थात्, तीर्थ याने धर्माचार्य व गृहस्थाचार्यके कथनसे जीनादिक पदार्थोंको निश्चित करके, एक देशत्रतको धरके, दीक्षासे पूर्व अपराजित महामन्त्रका धारी और मिथ्या देवताओंका त्यागी तथा अगों (द्वादशांग) व पूर्वों (चौदह पूर्वों) के अर्थसप्रहका अध्ययन करके अन्य शास्त्रोंका भी अनीता पूर्वके अन्तमें प्रतिमायोगको धारण करनेवाला पुण्यात्मा जीव पापोंको नष्ट करता है ।

इस पद्यमें आशाधरजीने अजेनसे जैन बननेके आठ सत्कारों, अर्थात् अग्रतार, वृत्तलाभ, स्थानलाभ, गणप्रद, पूजाराध्य, पुण्यपत्र, दृढचर्या और उपयोगिताका सक्षेपमें निरूपण किया है, जिसमें उन्होंने जैन बननेसे पूर्व ही अर्थात् अपनी अजैन अवस्थामें ही जैन धुनागों अर्थात् बारह अंग और चौदह पूर्वके ' अर्थसप्रह ' के अध्ययन कर लेनेका उपदेश दिया है । पूजाराध्य, पुण्यपत्र और दृढचर्या क्रियाओंका स्वरूप स्वयं वीरसेनस्वामीके शिष्य तथा जयत्रलाके उत्तरभागके रचयिता जिनसेन स्वामीने महापुराणमें भी इस प्रकार बतलाया है—

पूजाराध्यव्याख्या रचयिता क्रियास्य न्यान्त परा । पूर्वोपसाममन्त्रव्या गृह्यतोऽज्ञार्थसप्रहम् ॥

ततोऽन्या पुण्ययन्त्राद्या क्रिया पुण्यानुधीयन्ती । नृपन्त पूजविद्यानामर्थ मन्त्रज्ञचारिण ॥

तदास्य दृढचर्याख्या क्रिया समये श्रुतम् । निष्ठाव्य श्रुत्वतो प्रयान्त्राज्ञान-यश्च कथनम् ॥

यहां भी जैन होनेसे पूर्व ही गृह्यको अगोंके अर्थसप्रहका तथा पूर्वोंकी विद्याओंको सुन लेनेका पूरा अधिकार दिया गया है । यद्यपि मेधावीकृत धर्मसप्रहशावकाचार इस समय हमारे सामुख नहीं

हे तथापि यह तो सुनिश्चित है कि प मेमारी या मीहा जिनचन्द्रभट्टारकके शिष्य थे और उन्होंने अपना यह ग्रन्थ मि स, १५४१ में बिसार (पतान) नगरमें बसुनदि, आशा-र और समतमद्रेक ग्रन्थोंके आधारसे बनाया था। धर्मापदेशपायूपर्याकर श्रावकाचारका तो हमने नाम ही इस समय प्रथम बार देखा है, और यहाँ भी न तो उसके कर्ताका कोई नाम-धाम बतलाया गया और न उसकी किता प्रति मुद्रित या हस्तलिखितका उल्लेख किया गया। अतएव इस अज्ञात कुल शील प्रथकी हम परीक्षा क्या करें ? यह कोई प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ तो ज्ञात नहीं होता। लेखनने एक वर्तमान रचयिता मुनि सुधर्मसागरजके लिखे हुए 'सुधर्मश्रावकाचार' का मत भी उद्धृत किया है। किंतु प्राचीन प्रमाणोंकी ऊहापोहमें उसे लेना हमने उचित नहीं समझा। यह तो पूर्वोक्त ग्रन्थोंके आश्रयसे ही आजका उक्त मत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गृहस्थको सिद्धांत ग्रन्थोंका निषेध करनेवाले ग्रन्थोंमें जिन रचनाओंका समय निश्चयन ज्ञात है वे १३ वीं शताब्दिसे पूर्वकी नहीं हैं। उनमें सिद्धान्तका अर्थ भी स्पष्ट नहीं किया गया और जज्ञ किया गया है वहाँ पूर्वापर विरोध पाया जाता है। कोई उचित युक्ति या तर्क भी उनमें नहीं पाया जाता। यह तो सुज्ञात ही है कि जिन ग्रन्थोंमें पूर्वापर विरोध या विवेक वैपरीत्य पाया जावे वे प्रामाणिक आगम नहीं बहे जा सकते। इन्द्रादिके वाक्योंका तो सीधे सिद्धांत ग्रन्थोंके वाक्योंसे विरोध पाया जाता है, अत वह प्रामाणिक किस प्रकार गिना जा सकता है ? यथार्थतः प्रामाणिक जैन शास्त्रोंकी रचना और शासनके प्रवर्तनका चरमोन्नत काल तो उक्त समस्त ग्रन्थोंका रचनासे पूर्ववर्ती ही है। तब क्या कारण है कि इससे पूर्वके ग्रन्थोंमें हमें गृहस्थके सिद्धांत ग्रन्थोंके अथयनके सम्बन्धमें किसी नियंत्रणका उल्लेख नहीं मिलता ? श्रावकाचारका सबसे प्रामाण, प्राचान, उत्तम और सुप्रसिद्ध ग्रन्थ स्वामी समतमद्रेकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार है, जिसे बादिराजसूरिने 'अक्षयसुखासह' और प्रमाचन्द्रने 'अभिउ सागारमार्गको प्रकाशित करनेवाला निर्मल सूर्य' कहा है। इस ग्रन्थमें श्रावकोंके अथयनपर कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया, किंतु इसके विपरीत सम्पादर्शन, ज्ञान और चारित्रको सम्पादन करना ही गृहस्थका सच्चा धर्म कहा है, तथा ज्ञान परिच्छेदमें, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रयानुयोगसम्बन्धी समस्त आगमका स्वरूप दिशाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि इनका अथयन गृहस्थके लिये हितकारी है। द्रयानुयोगका अर्थ भी वहाँ टीकाकार प्रमाचन्द्रजाने 'द्रयानुयोग सिद्धांतसूत्र' किया है, जिससे स्पष्ट है कि गृहस्थके सिद्धांतानुयनमें उन्हें किसी प्रकारकी केंद्र अभीष्ट नहीं है। इस श्रावकाचारमें उपवासके दिन गृहस्थको 'ज्ञान पान परायण' होनेका विशेषरूपसे उपदेश है, तथा उरकृत श्रावकोंके लिये समय या आगमका ज्ञान अथवा आनन्दक वनलाया है—समय यदि जानिने, श्रेयो जाता ध्रुव मरति ॥ ५, २७ ' यदि समय जागम जानिने, आगमज्ञो यदि भवति, तदा ध्रुव निश्चयेन श्रेयो ज्ञाता स भवति ' (प्रमाचन्द्रकृत टीका)

धर्मपरीक्षादि ग्रन्थोंके विद्वान् कर्ता अभितगति आचार्य विक्रमकी ११ हवीं शताब्दिमें हुए हैं । इनका बनाया हुआ श्रावकाचार भी खूब सुविस्तृत प्रथ है । इस ग्रन्थमें सर्वोक्ति ' जिन-प्रवचनका अभिज्ञ ' होना उत्तम श्रावकका आवश्यक लक्षण माना है । यथा—

ऋतुभूतमनोतुद्धिगुणगुधूपणोद्यत । जिनप्रवचनाभिज्ञ श्रावक सप्तधोत्तम ॥ १३, २

आगे चलकर उन्होंने गृहस्थको आगमका अध्ययन करना भी आवश्यक बतलाया है—

आगमाध्ययन कार्यं कृतकालादिगुष्ठिना । निनयास्वदचित्तेन बहुमातविधापिना ॥ १३, १०

गृहस्थको स्वाध्यायके उपदेशमें स्वाध्यायके पाच प्रकारोंमें वाचना, आम्नाय और अनुप्रेक्षाका भी विधान है । यथा—

वाचना वृच्छनाऽऽम्नायानुप्रेक्षा धमेवेदाना । स्वाध्याय पचधा कृत्य पचमी गतिमिच्छता ॥ १३, ८१

गृहस्थोंको जहा तक हो मके स्वयं जिनभगवान्के वचनोंका पठन और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि, उनके विना वे वृत्त्यावृत्त्य विप्रेक्षा प्राप्ति, न आत्म अहितका त्याग नहीं कर सकते ।

जानायकृत्य न जनो न कृत्य जैनेश्वरं चान्यमवुद्धमान ।

करे, यकृत्य विचहाति कृत्य ततस्ततो गच्छति दु खमुग्रम् ॥ १३, ८९

धनाननीन परिहर्तुकामा प्रहीतुकामा पुनरामनीनम् ।

पठन्ति शश्वजितननाथानान्य समस्तकल्याणविधायि मन ॥ १३, ९०

यथार्थ वे मूढ हैं जो स्वयं जिनभगवान्के कहे हुए सूत्रोंको छोड़कर दूसरोंके वचनोंका आश्रय लेते हैं । जिनभगवान्के शक्यके समान दूसरा अमृत नहीं है—

सुखाय ये सूत्रमपाय जैन मूढा धयते वचन परेपाम् । १३, ९१

विहाय चास्य जिनचन्द्रदृष्ट पर न पीयूषमिहाति किंचिन् ॥ १३, ९२ इत्यादि

यद्य किंचिद्विदुः प्रयोऽसत् भी श्रावकाचारका उत्तम प्रथ है । इसमें गृहस्थोंको उपदेश दिया गया है कि श्रुतके अभावे तो समस्त शासनका नाश हो जायगा, अतः सब प्रयत्न करके श्रुतके सारका उद्धार करना चाहिये । श्रुतसे ही तत्त्वोंका परामर्श होता है और श्रुतसे ही शासन की वृद्धि होती है । तीर्थगोंके अभावे शासन श्रुतके ही अधीन है, इत्यादि

नश्यत्येव ध्रुव सर्वं भुवाभावेऽत्र शासनम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रुतसार समुद्धरेत् ॥

श्रुतात्तरपरामर्श श्रुतात्ममयवर्द्धनम् । तीर्थशासनात् सर्वं श्रुताधीन हि शासनम् ॥ ३, ६३-६४

इस प्रकार प्राचीन श्रावकाचार-ग्रन्थोंने गृहस्थोंके लिये न केवल सिद्धान्ताध्ययनोंके निषेध नहीं किया, किन्तु प्रवचनसे उसका उपदेश दिया है । हम ऊपर बतला ही आये हैं कि स्वयं भगवान् बुद्धदाचार्य अपने सूत्रपाण्डुमें जिनभगवान्के कहे हुए सूत्रके अर्थके ज्ञानको सम्यग्दर्शनको बल्यत आवश्यक अंग रहते हैं, और सूत्रार्थसे जो च्युत हुआ उसे वे मिष्यादृष्टि समझते हैं ।

सिद्धान्त जिसे रहना चाहिये, इस ज्ञानकी पुष्टिमें केवल इन्द्रनिन्द और विपुनश्रीधरकृत

है तथापि यह तो सुनिश्चित है कि प मेवाणी या मीहा जिनचन्द्रभट्टारकके शिष्य थे और उन्होंने अपना यह ग्रन्थ मि स, १५४१ में हिसार (पञ्जाब) नगरमें वसुनन्दि, आशाभर और समतभद्रके प्रयोगके आधारसे रनाया था। धर्मादेशपायूपर्वाकर श्रावकाचारका तो हमने नाम ही इस समय प्रथम बार देखा है, और यहां मा न तो उसके कर्ताका कोई नाम-धाम बतलाया गया और न उसकी किंसा प्रति मुद्रित या हस्तालिखितका उल्लेख किया गया। अतएव इस अज्ञात कुठ गीठ प्रयकी हम परीक्षा क्या करें ? यह कोई प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ तो ज्ञात नहा होता। लेखकने एक वर्तमान रचयिता मुनि सुधमसागरजीके लिखे हुए 'सुधर्मश्रावकाचार' का मत भी उद्धृत किया है। किंतु प्राचीन प्रमाणोंकी ऊहापोहमें उसे लेना हमने उचित नहीं समझा। यह तो पूर्वोक्त ग्रन्थोंके आश्रयसे ही आजका उनका मत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गृहस्थको सिद्धांत प्रयोगका निषेध करनेवाले ग्रन्थोंमें जिन रचनाओंका समय निश्चयत ज्ञात है वे १३ वीं शताब्दिसे पूर्वकी नहीं हैं। उनमें सिद्धान्तका अर्थ भी स्पष्ट नहीं किया गया और जज्ञ किया गया है वहां पूर्वापर विरोध पाया जाता है। कोई उचित युक्ति या तर्क भी उनमें नहीं पाया जाता। यह तो सुज्ञात ही है कि जिन ग्रन्थोंमें पूर्वापर विरोध या निवेक वैपरीत्य पाया जावे वे प्रामाणिक आगम नहीं कहे जा सकते। इन्द्रादिके वाक्योंका तो सीधे सिद्धांत प्रयोगके ही वाक्योंसे विरोध पाया जाता है, अतः वह प्रामाणिक किस प्रकार गिना जा सकता है ? यथार्थतः प्रामाणिक जैन शास्त्रोंकी रचना और शासनके प्रवर्तनका चरमोन्नत काल तो उक्त समस्त ग्रन्थोंका रचनासे पूर्ववर्ती ही है। तब क्या कारण है कि इससे पूर्वके ग्रन्थोंमें हमें गृहस्थके सिद्धांत प्रयोगके अभ्ययनके सम्बन्धमें किसी नियंत्रणका उल्लेख नहीं मिलता ? श्रावकाचारका सबसे प्रान, प्राचान, उत्तम और सुप्रसिद्ध ग्रन्थ स्वामी सम तभद्रकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार है, जिसे बादिराजसूरिने 'अक्षयसुखानन्द' और प्रमाचद्रने 'अविठ सागारमार्गको प्रकाशित करनेवाला निर्मल सूर्य' कहा है। इस ग्रन्थमें श्रावकोंके अभ्ययनपर कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया, किंतु इसके विपरीत सम्प्यदर्शन, ज्ञान और चारित्रकी सन्पादन करना ही गृहस्थका सच्चा धर्म कहा है, तथा ज्ञान-परिच्छेदमें, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगसम्बन्धी समस्त आगमका स्वरूप दिलाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि इनका अभ्ययन गृहस्थके लिये हितकारी है। द्रव्यानुयोगका अर्थ भी वहां टीकाकार प्रमाचद्रने 'द्रव्यानुयोग सिद्धांतसूत्र' किया है, जिससे स्पष्ट है कि गृहस्थके सिद्धान्ताभ्ययनमें उन्हें किमा प्रकाशकी कैद अभीष्ट नहीं है। इस श्रावकाचारमें उपजासके दिन गृहस्थको ज्ञान-पान परायण होनेका विशेषरूपमें उपदेश है, तथा उत्कृष्ट श्रावकके लिये समय या आगमका ज्ञान अथवा आनन्दक बनलाया है—समय यदि जानिने, श्रेयो ज्ञाता ध्रुव भवति ॥ ५, २० ' यदि समय आगम जानिने, आगमज्ञो यदि भवति, तदा ध्रुव निश्चयेन श्रेयो ज्ञाता स भवति ' (प्रमाचद्रकृत टीका)

धर्मपरीक्षादि प्रयोगोंके विद्वान् कर्ता अमितगति आचार्य विक्रमकी ११ हवीं शताब्दिमें हुए हैं। इनका बनाया हुआ श्रावकाचार भी खूब सुविस्तृत प्रथ है। इस प्रथमें उन्होंने 'जिन-प्रचनका अभिज्ञ' होना उत्तम श्रावकका आवश्यक लक्षण माना है। यथा—

ऋजुभूतमनोउद्विगुरश्रूषणोद्यत । जिनप्रचनभिन श्रावक सप्तधोत्तम ॥ १३, २

आगे चलकर उन्होंने गृहस्थको आगमका अध्ययन करना भी आवश्यक बतलाया है—

आगमाध्ययन कार्यं कृतकालादिशुडिना । विनयाखुडचित्तेन बहुमानविधायिना ॥ १३, १०

गृहस्थको स्वाध्यायके उपदेशमें स्वाध्यायके पाच प्रकारोंमें वाचना, आम्नाय और अनुपेक्षाको

भी विज्ञान है। यथा—

वाचना वृच्छनाऽऽज्ञायानुपेक्षा धर्मददाना । स्वाध्याय पचधा कृत्य पचमीं गतिमिच्छता ॥ १३, ८१

गृहस्थोंको जहा तक हो मने स्वयं जिनभगवान्के वचनोंका पठन और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि, उनके विना वे कृत्याकृत्य-विप्रेरुकी प्राप्ति, व आत्म-अहितका त्याग नहीं कर सकते।

जानायकृत्य न जनो न कृत्य जेनेश्वर वाक्यमवुद्धमान ।

करोत्यकृत्य विजहाति कृत्य ततस्ततो गच्छति दु खमुग्रम् ॥ १३, ८९

बनामनीन परिदुर्गकामा प्रहीउकामा पुनरात्मनीनम् ।

पठन्तिं दशधज्जननाथवाक्य समस्तकल्याणविधायि सत ॥ १३, ९०

यथार्थन वे मृत हैं जो स्वयं जिनभगवान्के कहे हुए सूत्रोंको छोड़कर दूसरोंके वचनोंका आश्रय लेते हैं। जिनभगवान्के वाक्यके समान दूसरा अमृत नहीं है—

सुधाय ये सूत्रमपाय जेन मूढा श्रयते वचन परंपाम् । १३, ९१

निहाय वाक्य जिनचन्द्रदृष्ट पर न पीयूषमिहास्ति किंचिन् ॥ १३, ९२ इत्यादि

यश नीतिवृत्त प्रयोगसार भी श्रावकाचारका उत्तम प्रथ है। इसमें गृहस्थोंको उपदेश दिया गया है कि श्रुतके अभावमें तो समस्त शासनका नाश हो जायगा, अतः सब प्रयत्न करके श्रुतके सारका उद्धार करना चाहिये। श्रुतसे ही तत्त्वोंका परामर्श होता है और श्रुतसे ही शासन की वृद्धि होती है। तीर्थरुगोंके अभावमें शासन श्रुतके ही आधीन है, इत्यादि

नश्यत्येव ध्रुव मर्वं ध्रुताभावेऽत्र शासनम् । तस्मात्सर्वप्रवलेन श्रुतसार समुद्धरेत् ॥

ध्रुतात्तत्त्वपरामर्श ध्रुतास्तमयर्हणम् । तीर्थेशाभासत सर्वं ध्रुताधीन हि शासनम् ॥ ३, ६३-६४

इस प्रकार प्राचीन श्रावकाचार प्रयोगे गृहस्थोंके लिये न केवल सिद्धांताध्ययनका निषेध नहीं किया, किन्तु प्रवृत्तासे उसका उपदेश दिया है। हम ऊपर जतला ही आये हैं कि स्वयं भगवान् बुद्धकुदाचार्य अपने मृगपाहुडमें जिनभगवान्के कहे हुए सूत्रके अर्थके ज्ञानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग कहते हैं, और सूत्रार्थसे जो च्युत हुआ उसे वे मिथ्यादृष्टि समझते हैं।

सिद्धान्त विसे कहना चाहिये, इस शावकी पुष्टिमें केवल इन्द्रनन्दि और विबुधश्रीधरकृत

श्रुतान्तरोंके ऐसे अनंतरण दिये गये हैं, जिनमें कर्मप्राम्दन और कपायप्राभृतको 'सिद्धान्त' कहा गया है, तथा अपभ्रश कपि पुष्पदन्तका वह अनंतरण दिया है जहा उन्होंने धनल और जयधनलको सिद्धान्त कहा है। किन्तु इन प्रयोंके सिद्धात कहे जानेसे अन्य प्रय सिद्धान्त नहीं रहे, यह कौनसे तर्कसे सिद्ध हुआ, यह समझमें नहीं आता। इस सिगसिलेमें गोम्मटसारको असिद्धात सिद्ध करनेके लिये गोम्मटसारकी टीकाके वे अश उद्धृत किये गये हैं जिनमें कहा गया है कि पदखंडागमका निरवशेष प्रमेयाश लेकर गोम्मटसारकी रचना की गई है। लेखकके अनुसार "इस कथनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गोम्मटसार सिद्धान्तप्रय नहीं है, किन्तु सिद्धान्तप्रयोंसे सार लेकर बनाया गया है। सिद्धान्त प्रय दो ही हैं, यह बात भी इन पक्तियोंसे सिद्ध हो जाती है।" किन्तु उन पक्तियोंमें हमें ऐसा व्यवच्छेदक भाव जरा भी दृष्टिगोचर नहीं होता। न तो लेखक सिद्धान्तकी कोई परिभाषा दे सके, जिससे केवल उक्त दो ही सिद्धात प्रय ठहर जायें और अय गोम्मटसारादि प्रय सिद्धान्तश्रेणी के बाहर पड़ जायें। और न कोई ऐसा प्राचीन उल्लेख ही बता सके, जहाँ कहा गया हो कि सिद्धात-प्रय केवल दो ही हैं, अय नहीं। यथार्थ बात तो यह है कि सिद्धान्त, आगम, प्रवचन ये सब शब्द एक ही अर्थके पर्यायवाची शब्द हैं। स्वयं धनलकारने कहा है—'भाग्य सिद्धतो पववर्णामिदि एवदो' (सप्र १ पृ २०)

अर्थात्, आगम, सिद्धात, प्रवचन, ये सब एक ही अर्थके प्रोषक शब्द हैं। लेखकने भी आगम और सिद्धातको एकार्थवाची स्वीकार किया है। यही नहीं, किन्तु गृहस्थोंको सिद्धाताध्ययनका नियम करनेवाले पूर्वोक्त सागरण परस्पर विरोधी कथन करनेवाले और युक्ति हीन वाक्योंको भी वे 'आगम' करके मानते हैं। किन्तु सिद्धातोंके निरन्तर प्रमेयाशका समुद्धार करनेवाले गोम्मटसारको सिद्धान्त माननेमें उन्हें ऐतराज है। पदखंडागम भा तो महानर्मप्रवृत्तिपाहुडका सन्धिप्त समुद्धार है। फिर यह कैसे सिद्धान्त बना रहता है, और गोम्मटसार कैसे सिद्धात-वाह्य हो जाता है, यह युक्ति समझमें नहीं आती। यदि किसीके किन्हीं प्रयोंको सिद्धान्त कहनेसे ही अन्य दूसरे प्रय असिद्धान्त हो जाते हों, तो गोम्मटसारादि प्रयोंके भी सिद्धातरूपसे उल्लिखित किये जानेके प्रमाण दिये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, राजमल्लवृत्त लाटीसहिता नामक श्रायकाचार प्रयमें उल्लेख है—

पदुच गोम्मटसारे सिद्धान्ते मिदसाधने । वरुयं च यथाम्नायात् प्रतीन्ये वधिम् साम्प्रतम् ॥ ५, १३५

इस प्रकारके उल्लेखोंसे क्या गोम्मटसार सिद्धात प्रय सिद्ध नहीं होता ? और क्या उससे सिद्धान्त प्रय सिद्ध हो जानेसे देय प्रय सिद्धातवाह्य सिद्ध हो जाते हैं ?

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो समस्त जैनधर्म और सिद्धान्तका ध्येय जिनोक्त वाक्योंको सर्वन्यायी बनानेका रहा है। स्वयं तीर्थंकरके समयसरणमें मनुष्यमात्र ही नहीं, पशु-पक्षी आदि तक सम्मिलित होते थे, जो सभी भगवान्के उपदेशको सुन समझ सकते थे। जब द्वादशग वाणीकी आगरभूत दिग्भ्यनि तकको सुननेका अनिन्तार समस्त प्राणियोंको है, तब उस वाणीके सारशक्तो प्रथित करने-

ले कोई भी सिद्धान्त प्रथम श्रावकोंके लिये क्यों निषिद्ध किये जायगे, यह समझमें नहीं आता।
 न्यायदर्शनको निर्मल बनानेके लिये सिद्धान्तका आश्रय अत्यन्त वाञ्छनीय है। समस्त शास्त्राओंका
 नेत्राण होकर निःशक्ति-अज्ञानी उपलब्धिका सिद्धान्ताध्ययनसे बढकर दूसरा उपाय नहीं। जिन
 विद्वान्तिक्रु बातोंके तर्क विवरणमें विद्वानोंका और जिज्ञासुओंका न जाने कितना बहुमूल्य समय व्यय
 हुआ करता है और फिर भी वे ठीक निर्णय पर नहीं पहुच पाते, ऐसी अनेक गुथिया इन सिद्धान्त
 प्रयोगोंमें सुलझी हुई पडी हैं। उनसे अपने ज्ञानको निर्मल और निरुसित बनानेका सीधा मार्ग गृहस्थ
 जिज्ञासुओं और विचारार्थियोंको क्यों न बनाया जाय ? स्वयं ध्वलसिद्धान्तमें कहीं भी ऐसा नियंत्रण
 नहीं लगाया गया कि ये प्रथम मुनियोंको ही पढना चाहिये, गृहस्थोंको नहीं। बल्कि, जैसा हम
 ऊपर देख चुके हैं, जगह जगह हमें आचार्यका यही संकेत मिलता है कि उन्होंने मनुष्यमात्रका
 त्याग रखकर व्यस्तान किया है। उन्होंने जगह जगह कहा है कि 'जिन भगवान् सर्वसत्त्वोपकारी
 होते हैं, और इसलिये सपत्नी समझदारीके लिये अमुक बात अमुक रीतिसे कही गई है'। यदि
 सिद्धान्तोंको पढनेका निषेध है, तो वह अर्थ या विषय की दृष्टिसे है कि भाषाकी दृष्टिसे, यह भी
 विचार कर लेना चाहिए। ध्वलादि सिद्धान्तप्रयोगोंकी भाषा वही है जो कुदकुदाचार्यादि
 प्राकृत प्रथमश्रावकोंकी रचनाओंमें पाई जाती है, जिसके अनेक व्याकरण आदि भी हैं।
 अतएव भाषाकी दृष्टिसे नियंत्रण लगानेका कोई कारण नहीं दिखता। यदि विषयकी दृष्टिसे
 देखा जाय तो यहाकी तत्वचर्चा भी वही है जो हमें तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, गोम्मटसार
 आदि ग्रंथोंमें मिलती है। फिर उसी चर्चाको गृहस्थ इन ग्रंथोंमें पढ सकता है, लेकिन उन ग्रंथोंमें
 नहीं, यह कैसी बात है ? यदि सिद्धान्त-पठनका निषेध है तो ये सब ग्रंथ भी उस निषेध-कोटिमें
 आंगे। जब सिद्धान्ताध्ययनके निषेधवाले उपर्युक्त अत्यन्त आधुनिक पुस्तकोंको सिद्धान्तके पर्यायवाची
 शब्द आगमसे उल्लिखित किया जा सकता है, तब एक अत्यन्त हीन दलीलके पोषण-निमित्त
 गोम्मटसार व सर्वार्थसिद्धि जैसे ग्रंथोंको सिद्धान्तग्राह्य कह देना चरमसीमाका साहस और भारी
 अविनय है। यथार्थतः सर्वार्थसिद्धिमें तो कर्मप्राप्तिके ही सूत्रोंका अक्षरशः उसी क्रमसे सत्त्वजन
 रूपान्तर पाया जाता है, जैसा कि ध्वलके प्रकाशित भागोंके सूत्रों और उनके नीचे टिप्पणोंमें
 दिये गये सर्वार्थसिद्धिके अन्तर्णोंमें सहज ही देख सकते हैं। राजवार्तिक आदि ग्रंथोंको ध्वलकारने
 स्वयं उडे आदरसे अपने मनोंकी पुष्टिमें प्रस्तुत किया है। गोम्मटसार तो ध्वलादिका सारभूत ग्रंथ
 ही है, जिसकी गाथाएँ की गाथाएँ सीधी बहासे ली गई हैं। उसके सिद्धान्तरूपसे उल्लेख किये
 जानेका एक प्रमाण भी ऊपर दिया जा चुका है। ऐसी अवस्थामें इन पूज्य ग्रंथोंको 'सिद्धान्त नहीं
 है' ऐसा कहना उडा ही अनुचित है। - -

मैं इस विषयको विवेक वढाना अनावश्यक समझता हूँ, क्योंकि, उक्त निषेधके पक्षमें न
 प्राचीन ग्रंथोंका बल है और न सामान्य युक्ति या तर्कका। जान पडता है, जिस प्रकार वैदिक
 धर्मके इतिहासमें एक समय वेदके अध्ययनका द्विजोंके अतिरिक्त दूसरोंको निषेध किया गया था,

वसी प्रकाश जैन-समाजके गिम्नासिक समयमें किन्ना 'गुरु' ने अपने अज्ञानको छुपानेके लिये यह सार-हीन और जैन उदार-नीतिके विरुद्ध गत चला दी, जिसकी गलतानुगतिक योग्यता परम्परा चम्पूर आज तक सद्विज्ञानके प्रचलन वातावरण पर पत कर रही है। सिद्धांतचक्रवर्ती ने निचन्द्र और चम्पूररायजी के विषयमें जो कथा कही जाना है वह प्राचान किन्ना भी प्रथम नहीं पाई जाती और पीछेकी निराशर निरी कल्पना प्रतीत होती है। ऐसी ही निराशर कल्पनाओंका यह परिणाम हुआ कि गत सैकड़ों वर्षोंमें इन उच्चमात्तम सिद्धांत प्रयोगोंका पठन-पाठन नहीं हुआ और उनका जैन साहित्यिक निर्माणमें जब चितना उपयोग होना चाहिये था, नहीं हुआ। यही नहीं, इनकी एक मात्र अविशेष प्रविष्टा भी धारे धारे विनष्ट होने लगी थीं। महाधरकी प्रतिभेसे कितने ही पर अप्राप्त हैं और कितने ही टिप्पिन आदि हो जानेसे उनमें पाठ-भ्रष्टान उत्पन्न हो गये हैं। यह जो लिखा है कि इन सिद्धांत-प्रयोगोंकी कापियाँ बग करके जगह जगह निराशरान करा दी जानी चाहिए, सो ये कापियाँ कौन करगा? श्रावक ही तो? या मुनिजनोंको दिया जायगा, सो भी अल्पबुद्धि नहीं, विद्वान् मुनियोंको? यथार्थन गृहस्था द्वारा ही तो उनकी प्रतिविधियाँ की गईं, आर की जा सकती हैं, तथा गृहस्थों द्वारा ही उनका जो कुछ उद्धार सम्भव है, किया जा रहा है। इसमें न तो कोई दूषण है, न त्रिगड। अब तो जैन सिद्धांतको समस्त समस्त धोषित करनेका यही उपाय है। हाथ कानको आरसी तथा

२ शका समाधान

पुस्तक १, पृष्ठ २३४

१. शका—'तद्विभ्रमणमवरेणाशुभ्रमः नीराना अमद्भूम्यादिदर्शनानुवचन इति'। इस वाक्यका अर्थ सुझे स्पष्ट नहीं हो सका। उसमें पृथक्के परिभ्रमणका उल्लेखना प्रतीत होता है। उसका अर्थ खोलकर-समझानेकी कृपा काजिये।

(नवीचदजा बकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—प्रस्तुत प्रकरणमें शका यह उठाई गई है कि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव प्रदेशोंका भ्रमण नहीं होता, ऐसा क्यों न मान लिया जाय, क्योंकि, सर्व ज्ञान प्रदेशोंके भ्रमण माननेपर उनके शरीरके साथ सम्बन्ध विच्छेदना प्रसंग आता है? इस शकाका उत्तर आचार्य इस प्रकार देते हैं कि 'यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव प्रदेशोंका भ्रमण नहीं माना जाये, तो अत्यन्त द्रुतगतिसे भ्रमण करने हुए जीवोंको भ्रमण करती हुई पृथिवी आदिजन्तु ज्ञान नहीं हो सकता है।' इसका अभिप्राय यह है कि-जब-कोई व्यक्ति शीघ्रतासे चक्कर लेता है तो उसे कुछ क्षणके लिये अपने आस पास चारों ओरका समस्त भूमण्डल पृथिवी, पर्वत, वृक्ष, गुरुदि घूमना हुआ दिखाई देता है। इसका कारण-उपर्युक्त समाधानमें यह सूचित किया गया है, कि उस व्यक्तिन शीघ्रतासे चक्कर लेनेकी

अवस्थामें उसके जीवप्रदेश भी शरीरके भीतर ही भीतर शीघ्रतासे भ्रमण करने लगते हैं, जिसके कारण उसे पृथिवी आदि सब घूमने हुए दिखाई देने लगते हैं। यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीवप्रदेशोंको स्थिर माना जाय तो उक्त अवस्थामें भूमडलादिके घूमते हुए दिखनेका कोई कारण, नहीं रह जाता। इसलिये आचार्य कहते हैं कि 'आत्मप्रदेशोंके भ्रमण करते समय द्रव्येन्द्रियप्रमाण आत्म-प्रदेशोंका भी भ्रमण स्वीकार कर लेना चाहिये'। आधुनिक मान्यतासम्बन्धी भ्रमणका तो दर्शन किसीको किसी अवस्थामें भी होता नहीं है। इसलिये यहा उस भूमिभ्रमणका कोई उल्लेख नहीं प्रतीत होता।

पुस्तक २, पृ. ४२३.

२ श्रुति—नरुशा न २ में प्राणके खानेमें सयोगिकेनलीकी अपेक्षा २ प्राण भी होना चाहिये ?
(रतनचदजी मुन्तार, सहायपुर पत्र, ३४४१)

समाधान—प्रस्तुत प्रकरणमें अपर्याप्त जीवोंके सामान्य आलाप बतलाए गए हैं, जिनमें श्रमश सती पचेन्द्रियसे लगाकर एकेन्द्रिय तकके समस्त जीवोंकी विवक्षा है, केन्द्रिसमुद्धात जैसी विशेष अवस्थाओंकी यहा विवक्षा नहीं है। इसी कारण शक्राकार द्वारा प्रतगये गये २ प्राण न मूल टीकामें कहे गये, न अनुवादमें लिये गये, और न उक्त नरुशमें दिखाये गये। किन्तु पृष्ठ न ४४४ नरुशा नं २५ पर जहां सयोगिकेनलीके ही आलाप बतलाये गये हैं, वहापर साधारण अवस्थामें होनेवाले चार प्राणोंका ओर विशेष अवस्थामें होनेवाले उक्त दो प्राणोंका उल्लेख किया ही गया है।

पुस्तक २, पृ. ४३२-४३५

३ श्रुति—अर्थमें तथा नरुशा न १४, १५, १६ और १७ में वेदके आलापमें जो तीन वेद कहे हैं सो उहा ३ भाव वेद कहना चाहिये। (नानचदजी, पतौली, पत्र ता १०-११-४१)

समाधान—नरुशा न १४, १५, १६, १७ सत्रधी आलापोंमें तथा इससे आगे पीछेके सभी आलापोंमें भाववेदकी ही विवक्षा की गई है। धरलाकारने ऐदया आलापमें जैसे द्रव्यऐदया और भावऐदयाका विभाग कर पृथक् पृथक् वर्णन किया है, वैसा वेद आलापमें द्रव्यवेद और भाव-वेदका विभाग कर मूलमें कहीं वर्णन नहीं किया है। अत उक्त नरुशोंमें भी भाववेद लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि तात्पर्य यहा तथा अन्य भाववेदसे ही है।

पुस्तक २, पृ. ४३४

४ श्रुति—पृष्ठ ४३३ पर जो प्रमत्तसयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तका कथन है, उनके यत्र क्यों नहीं बनाए गए ?
(नानचदजी, सतौली, पत्र ता १०-११-८१)

समाधान—प्रस्तुत प्रथमभागमें उन्हीं यत्रोंको बनाया गया है, जिनका वर्णन धरला टीकामें पाया जाता है। प्रमत्तसयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तके आलापोंका धरला टीकामें कथन नहीं है, अत उनके पृथक् यत्र भी नहीं बनाये गये। तो भी विषयके प्रसंगप्रश विधेपार्थके अन्तर्गत सर्व साधारण

पाठकोंके परिज्ञानार्थ पृ ४३३ पर उक्त कथन किया गया है।

पुस्तक २, पृ. ४५१

५ शक्ता—पृ ४५१, यत्र ३१, में प्राणमें अ, टिया है सो नही हाना

(तानत्रचदनी टीका, पृ १०५)

समाधान—जिन गुणस्थानों या जीवमासोंमें पर्याप्त और वर्तन करने का उपसम्भव है, उनके सामान्य आलाप कहते समय पाठकोंको भ्रम न हो, कालमें सम्भव प्राणों के आगे प टिया गया है। तथा अपर्याप्त कालमें सम्भव प्रकृत करते समय पर्याप्त अवस्थामें होनेवाले १० प्राणोंके नीचे प और अपर्याप्त अवस्था में ७ प्राणोंके आगे अ टिया गया है।

पुस्तक २, पृ. ६२३

६ शक्ता—पृ ६२३ के विशेषार्थमें यह और होना चाहिए कि चोदहर्षे गुणस्थानोंमें उदय रहता है, लेकिन नोन्मर्मरगणा नहीं आती। (तानत्रचदनी सुरताए, सशरानपुर, पृ १११)

समाधान—उक्त विशेषार्थमें जो बात सयोगिकेवर्लीके लिये कहा गई है, वह केवर्लीके लिये भी उपयुक्त होती है। अतएव वहाँ उक्त भावार्थको लेनेमें कोई आपत्ति नहीं।

पुस्तक २, पृ ६३८

७ शक्ता—यत्र न २५३ के प्राणके खानेमें ३, २ भी होना चाहिए, क्योंकि, पृ ६ खानेमें ६ योग लिखे हैं। (तानत्रचदनी सुरतार, सशरानपुर, पृ ३-४ ११)

समाधान—योगके खानेमें ६ योग लिखे जानेसे ३ और २ प्राण और भी वर्तन किया गया है, जैसा कि मूलके 'अथवा तान योग' इस कथन से स्पष्ट है, और जिसका अभिप्राय वहीं पर विशेषार्थमें स्पष्ट कर दिया गया है (देखो पृ ६३८)। इसी कारण श्रावण खानेमें ३ और २ प्राणोंका उल्लेख नहीं किया गया है।

पुस्तक २, पृ ६४८

८ शक्ता—पृ ६४८ पर काययोगी अप्रमत्तसयत जीवोंके आलापमें वेद लिखा है सो वहाँ भावनेद होना चाहिए। (तानत्रचदनी खताली, पृ १०-११-४१)

समाधान—इसका उत्तर शक्ता ७ में दे दिया गया है।

पुस्तक २, पृ ६५४, ६६०

९ शक्ता—पृ ६५४ पर समाधान जो पहला किया गया है, उसमें लिखा है कि अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्घातगत सयोगिकेवर्लीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं

यही पृष्ठ ६६० पर समाधान करते हुए लिखा है। यह किस अपेक्षासे कहा है? क्या पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है? (नानचदजी, खतौली, पन् १०-११-४१)

समाधान—‘अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्घातगत सयोगकेनलीका पहलेके साथ सम्बन्ध नहीं रहता,’ इसका अभिप्राय यह लेना चाहिये कि उक्त अवस्थामें जो शरीरसे बाहर फैल गए हैं, उनका शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता है। आत्मप्रदेशोंके नेकलनेपर भी यदि शरीरके साथ सम्बन्ध माना जायगा, तो जिस परिमाणमें जीव प्रदेश हैं, उतने परिमाणत्राल्य ही आँदारिकुशरीरको होना पड़ेगा। किन्तु ऐसा होना सम्भव अत यह कहा गया है कि कपाटसमुद्घातगत सयोगकेनलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध रहता। किन्तु जो आत्मप्रदेश उस समय शरीरके भीतर हैं, उनसे तो सम्बन्ध बना ही रहता। इसी प्रकार किसी भी समुद्घातकी दशामें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध नहीं छूटता है। समुद्घातके में स्पष्ट ही कहा गया है कि मूलशरीरको न छोटकर जीवके प्रदेशोंके बाहर निकटनेको प्राप्त कहते हैं।

पुस्तक २, पृ. ८०८

१० शक्ता—पृ ८०८ पक्ति १२ में सात प्राणके आगे दो प्राण और होना चाहिए, कि, सयोगीके अपर्याप्त अवस्थामें दो प्राण होते हैं। (तनचदजी मुख्तार, सहारनपुर, पन् ३४४२) यत्र न ४७७ में प्राणमें ४-१ प्राण और लिखना चाहिए

(नानचदजी, खतौली, पन् १०-११-४१)

समाधान—इसका उत्तर वही है जो कि शक्ता न २ में दिया गया है।

पुस्तक ३, पृ. २३

११ शक्ता— $२^{२^४}$ की वर्गशलाका अ होगी यह शुद्ध ज्ञात नहीं होता, क्योंकि $२^३ = २५६$ होता है, और २५६ की वर्गशलाका ३ है, ४ नहीं है

(नेमीचदजी वकील, सहारनपुर, पन् २४-११ ४१)

समाधान— $२^{२^४}$ का अर्थ है २ का $२^४$ के प्रमाण वर्ग। अत्र यदि हम अ को ४ के तानर मान लें तो— $२^{२^४} = २^{१६} = २^{१६} = २५६ \times २५६ = ६५५३६$, जिसकी वर्गशलाका ४ होगी। शक्ताकारने भूल यह की है कि $२^{२^४} = (२^२)^४$ मान लिया है। किन्तु ऐसा नहीं है। प्रचलित पद्धतिके अनुसार $२^{२^४} = २^{(२^४)}$ होता है। अतएव अनुवादमें उदाहरणरूपसे जो बात कही गई है उसमें कोई दोष नहीं है।

पुस्तक ३, पृ. ३०

१२ श्लोका—यहा सोलह राशिगत अल्पग्रहण निरूपणमें जो अभव्योंसे सिद्धनालका गुणकार छह महिनोंके अष्टम भागमें एक मिछा देनेपर उत्पन्न हुई समय सायासे भाजित अतीत कालका अनन्तरा भाग कहा है वह अगुद्ध प्रतीत होना है। मेरी राय में अतः कालको छह माह आठ समयसे भाग देनेपर जो छत्र आये उसको ६०८ से गुणा करनेपर उत्पन्न हुई राशिका अनन्तरा भाग गुणकार होना चाहिये ?

(नेमीचंदजी बनीक, सहारनपुर, पत्र ०४ ११ ४१)

समाधान—उक्त श्लोकमें शकाकारकी दृष्टि उस प्रचलित मायता पर है जिसके अनुसार प्रत्येक छह माह आठ समयमें ६०८ जाव मोक्ष जाते हैं। किंतु धरलामें उक्त स्थलपर दिये गये अल्पग्रहणमें उक्त पाठ द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती, जत्र तत्र कि उस पाठको विशेषरूपसे परिवर्तित न किया जाय। उक्त स्थलका अर्थ करते समय हमारा भी दृष्टि इम ध्यानपर थी। किंतु उपलब्ध पाठ वैसा होने तथा मूत्रविद्विती की ताटप्रीय प्रतियोंके मिलानसे भा उस पाठमें कोई परिवर्तन प्राप्त न होनेसे हम उस पाठको बदलने या मूत्रको टोडकर अर्थ करने में असमर्थ रहे। यथार्थत उक्त पाठसे आगे जो सिद्धोंका गुणकार हमने 'रूपशतपृथक्' प्रमाण का लिया था वह उपर्युक्त दृष्टिसे ही केवल एक प्रतिके आधार पर किया था। किंतु दो प्रतियोंमें उसका स्थानपर 'रूपदश पृथक्त्व' पाठ था, आर मूत्रविद्विती प्रति मिलानसे भी इसी पाठकी पुष्टि हुई है। अतः इसमें वह सदर्भ और भा शकास्वद और विचारणीय हो गया है। अतएव जत्र तत्र कोई स्पष्ट प्रमाण इस सम्बन्धका न मिल जाये तत्र तत्र उस सम्प्रथमें निर्णयात्मक कुठ नहीं कहा जा सकता।

पुस्तक ३, पृ ३५

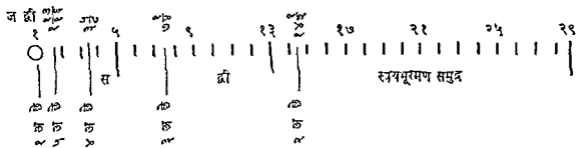
१३ श्लोका—“रज्जुके अर्धच्छेद उत्तरोत्तर एक एक द्वीप और एक एक समुद्रमें पड़ते हैं, किंतु लवणसमुद्रमें दो अर्धच्छेद पड़ेंगे।” यह बात समझमें नहीं आता। जत्र धातनीखडमें एक अर्धच्छेद पड़ेगा, और उन्नतसमुद्र उसका आग है, तत्र उसमें दो अर्धच्छेद कैसे पड जायगे ?

(नेमाचंदजी बनीक, सहारनपुर, पत्र २३ ११ ४१)

समाधान—उपर्युक्त शलाका समाधान रज्जुके अर्धच्छेदोंका व्यवस्थानको स्पष्टत समझ लेनेसे सहज ही हो जाता है। समस्त निर्गम्लोक एक रज्जुप्रमाण है। अतः रज्जुको प्रथम बार आधा करनेसे प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पटा। दूसरी बार जत्र हम रज्जुको आधा करेंगे तो यह दूसरा अर्धच्छेद स्वयभूरमणद्वीपकी परिधिसे कुठ आगे चलकर स्वयभूरमणसमुद्रमें पड़ेगा, क्योंकि, उक्त समुद्रका विस्तार भीतरके समस्त द्वीप समुद्रोंके सम्मिलित विस्तारसे कुछ अधिक है। इसी प्रकार रज्जुका तीसरी बार आधा करनेपर तीसरा अर्धच्छेद स्वयभूरमणद्वीपमें उसकी प्राग्भिन्न सीमासे कुठ और विशेष आगे चलकर पड़ेगा। इस प्रकार रज्जु उत्तरोत्तर छोटा होता जायेगा और उत्तरोत्तर अर्धच्छेद प्रत्येक द्वीप-समुद्रमें पड़ते जायेंगे, किंतु उनका स्थान

उस उस द्वीप-समुद्रकी भीती परित्रिसे उत्तरोत्तर आगेको बटना जावेगा । इस प्रकार होते होते अन्तिम समुद्र लवणसागरमें एक अर्धच्छेद उसकी बाह्य सीमाके समीप और दूसरा उसकी भीतरी सीमाके समीप पड जावेगा । यही बात निम्न चित्रसे ओर भी स्पष्ट हो जावेगी ।

मान लो कि स्वयभूरमणसमुद्र जम्बूद्वीपसे आगे तीसरे बलयपर है, और उमीकी बाह्य सीमापर रज्जुका अन्त होता है । रज्जुका प्रथम अर्धच्छेद तो जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पडेगा ही । अत्र वहासे आगेका विस्तार पचास हजार याजनको १ मान लेनपर केवल $१+४+८+१६=२९$ योजन रहा ।



अतएव रज्जुका दूसरा अर्धच्छेद $१४\frac{१}{२}$ योजन पर स्वयभूरमणसमुद्रमें, तीसरा अर्धच्छेद $७\frac{१}{२}$ योजन पर उससे पूर्ववर्ती द्वीपमें, चौथा अर्धच्छेद $३\frac{८}{२}$ योजन पर लवणसमुद्रकी बाह्य सीमाके समीप, तथा पाचवा अर्ध छेद $१\frac{६}{२}$ योजन पर लवणसमुद्रकी आन्ध्रतर सीमाके समीप पडेगा । इस प्रकार हम कितने ही द्वीप समुद्र आगे आगे मान लें तो भी लवणसमुद्रमें अन्तत दो ही अर्धच्छेद पडेगे । यही बात त्रिलोकसार की गाथा न ३५२-३५८ में कही गई है ।

पुस्तक ३, पृ. ४४

१४ शंका—पुस्तक ३ के पृ ५४ पर क्षेत्राकारके द्वारा जो यह समझाया गया है कि मपूर्ण जीवराशिके वर्गको दुमेर भाग अधिक जानगशिसे भाजित करनेपर तीसरा भागहीन जीवराशि प्राप्त होती है, सो यह बात वटां दिये गये आकारसे समझमें नहीं आती । कृपया समझाइये ?

(नेमाचदजा बकाल, सहायपुर, पन २४ ११ ४१)

समाधान—मान लीजिये, सर्ष जीवराशि १६ है, इसका वर्ग हुआ $१६ \times १६ = २५६$ अत्र यदि हम इस जीवराशिके वर्ग (२५६) में जीवराशि (१६) का भाग देते हैं तो $\frac{२५६}{१६} = १६$ अर्थात् जीवराशि प्रमाण ही लब्धजाता है । और यदि उमी जीवराशिके वर्गमें द्विभाग अधिक जीवराशि ($१६ + ८ = २४$) का भाग देते हैं तो त्रिभागहीन जीवराशिप्रमाण, अर्थात् $१६ - \frac{१६}{३} = १०\frac{२}{३}$ आता है, जेसे $\frac{२५६}{३} = १०\frac{२}{३}$

इसी बातको बखलाकारने क्षेत्रमिति द्वारा भी समझाया है जिसका कि अनुवादके माय चित्र भा दिया गया है । इस चित्रमें स ड जीवराशि (मानओ १६) है, उसको स ड' (१६) से वर्गित करनेपर प्रत्याकार क्षेत्र स ड स ड' बन जाता है जिसमें अक्षप्रमाण दिखानेके लिये

३. विषय-परिचय

जीवस्थानकी पूर्ण प्रकाशित दो प्ररूपणाओं—सप्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणानुगममें क्रमशः जीवका स्वरूप, गुणस्थान व मार्गणास्थानानुसार भेद, तथा प्रत्येक गुणस्थान व मार्गणास्थानसंबन्धी जीविका प्रमाण व सङ्ख्या बतलाई जा चुकी है। अब प्रस्तुत भागमें जीवस्थानसंबन्धी आगेकी तीन प्ररूपणाएँ प्रकाशित की जा रही हैं—क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम और कालानुगम।

१ क्षेत्रानुगम

क्षेत्रानुगममें जीवोंके निवास व विहारादिसंबन्धी क्षेत्रका परिमाण बतलाया गया है। इस सन्दर्भमें प्रथम प्रश्न यह उठता है कि यह क्षेत्र है कहा ? इसके उत्तरमें अनन्त आकाशके दो विभाग किये गये हैं। एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाश समस्त आकाशके मध्यमें स्थित है, परिमित है और जीवादि पाच द्रव्योंका आधार है। उसके चारों तरफ शेष समस्त अनन्त आकाश अलोकाकाश है। उक्त लोकाकाशके स्वरूप और प्रमाणके सन्दर्भमें दो मत हैं। एक मतके अनुसार यह लोकाकाश अपने तलभागमें सानराज्य व्यासवाला गोलकार है। पुन ऊपरको क्रमसे घटता हुआ अपनी आधी उचाई अर्थात् सात राजुपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। वहासे पुन ऊपरको क्रमसे बढ़ता हुआ साढे तीन राजु ऊपर जाकर पाच राजु व्यासप्रमाण हो जाता है और वहासे पुन साढे तीन राजु घटता हुआ अपने सर्गोपरि उच्च भागपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। इस मतके अनुसार लोकका आकार ठीक अधोभागमें, वेत्तासन, मध्यमें झट्टी और ऊर्ध्वभागमें मृदगके समान हो जाता है। किन्तु धरलाकारने इस मतको स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि, ऐसे लोकमें जो प्रमाणलोकका घनफल जगश्रेणी अर्थात् सात राजुके घनप्रमाण कहा है, वह प्राप्त नहीं होता। यह बात स्पष्ट दिखलानेके लिये उन्हेंने अपने समयके गणितज्ञानकी विभिन्न और अश्रुतपूर्व प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रकारके लोकके अधोभाग व उर्ध्वभागका घनफल निकाला है जो कुछ $168 \frac{1}{3} \frac{1}{3}$ घनराजु होनेसे श्रेणीके घन अर्थात् ३४३ घनराजुसे बहुत हीन रह जाता है। इसलिये उन्हेंने लोकका आकार पूर्व-पश्चिम दो दिशाओंमें तो ऊपरकी ओर पूर्णक क्रमसे घटता बढ़ता हुआ, किन्तु उत्तर-दक्षिण दो दिशाओंमें सर्वत्र सात राजु ही माना है। इस प्रकार यह लोक गोलकार न होकर समचतुरस्राकार हो जाता है और दो दिशाओंसे उसका आकार वेत्तासन, झट्टी और मृदगके सदृश भी दिखाई दे जाता है। ऐसे लोकका प्रमाण ठीक श्रेणीका घन $3^3 = 3 \times 3 \times 3 = 343$ घनराजु हो जाता है। यही लोक जीवादि पाचों द्रव्योंका क्षेत्र है।

यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि उक्त ३४३ घनराजुप्रमाण केवल असरघात प्रदेशात्मक अल्पत परिमित क्षेत्रमें अनन्त जीव व अनन्त पुद्गल परमाणु कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि जीवों और पुद्गल-परमाणुओंमें अप्रतिघातरूपसे अयोग्याग्राहन शक्ति विद्यमान है जिसके कारण अणुके असह्यातयें भागमें भी अनन्तानन्त जीवोंका और जीवके भी प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकादि पुद्गल परमाणुओंका अस्तित्व बन जाता है ।

ओष अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंका क्षेत्र ४ सूत्रोंमें बतला दिया गया है कि मित्यादृष्टी जान सर्वलोकमें व अयोगिकरुण्डी ओर शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि समस्त बारह गुणस्थानोंमें प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असह्यातयें भागमें, ओर सयोगिकेन्द्र लोके असरघातयें भागमें, असरघात बहु भागोंमें, तथा सर्वलोकमें रहते हैं । धनलाकारने इन सूत्र उचनोंको एक ओर जाबोंकी नाना अस्थ्याओंका विचार करके, और दूसरी ओर सूक्ष्मतर क्षेत्रमानके लिये लोकको पांच विभागोंमें बाटकर बटे विस्तारसे समझाया है ।

क्षेत्रान्गाहनाकी अपेक्षासे जीवोंकी तीन अस्थाएण हो सकती हैं (१) स्वस्थान (२) समुद्धान और (३) उपपाद । स्वस्थान भी दो प्रकारका है—अपने स्थायी निवासके क्षेत्रको स्वस्थान स्वस्थान, और अपने विहारके क्षेत्रको विहारस्वस्थान कहते हैं । जीवके प्रदेशोंका उनके स्वाभाविक सगठनसे अधिक फैलना समुद्धान कहलाता है । वेदना और पीडाके कारण जान प्रदेशोंके फैलनेको वेदनासमुद्धान कहते हैं । जौधादि कषायोंके कारण जीव प्रदेशोंके विस्तारको कषायसमुद्धान कहते हैं । इसी प्रकार अपने स्वाभाविक शरीरके आकारको टोडकर अथ शरीरकार परिवर्तनको वैक्रियिकसमुद्धान, मरनेके समय अपने पूर्ण शरीरको न टोडकर नवीन उत्पत्तिस्थान तक जान प्रदेशोंके विस्तारको मारणातिकर, तेजसशरीरका अपशस्त व प्रशस्त विक्रियाको तेजसमुद्धान, रुद्धि-प्राप्त मुनियोंके शक्त निवारणार्थ जीवप्रदेशोंके प्रस्तारको आहारकसमुद्धान, और सर्वज्ञताप्राप्त केवट्टीके प्रदेशोंका शेष कर्मक्षय निमित्त दंडाकार, कषाटाकार, प्रतराकार, व लोकपूरणरूप प्रस्तारको केवलिसमुद्धान कहते हैं—नीचका अपनी पूर्व पर्यायको छोडकर तापके समान साधे, व एक, दो या तीन मोटे डेकर अथ पर्यायके ग्रहणक्षेत्र तक गमन करनेको उपपाद कहते हैं । इही दश—अर्थात् (१) स्वस्थानस्वस्थान (२) विहारवस्वस्थान (३) वेदनासमुद्धान (४) कषायसमुद्धान (५) वैक्रियिकसमुद्धान (६) मारणातिकसमुद्धान (७) तेजससमुद्धान (८) आहारकसमुद्धान (९) केवट्टिसमुद्धान और (१०) उपपाद अस्थाओंकी अपेक्षासे यथासम्भव जीवके भिन्न भिन्न गुणस्थानों और मार्गस्थानोंका क्षेत्रप्रमाण इस क्षेत्ररूपणामें बतलाया गया है ।

सूत्र, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मम क्षेत्रमानके लिये धनलाकारने पांच प्रकारसे लोकका ग्रहण किया है (१) समस्त लोक या सामान्य लोक जो ७ रातुका घनप्रमाण है, (२) अशैलोक जो १९६ घनराजुप्रमाण है, (३) ऊर्ध्वलोक जो १४७ घनराजुप्रमाण है (४) निर्धकलोक या मय्यलोक

जो १ राजुके प्रतर या वर्गप्रमाण है, और (५) मनुष्यलोक जो अटाई द्वीपप्रमाण, अर्थात् ४५ लाख व्यासवाला वर्तुलाकार क्षेत्र है। किसी भी एक प्रकारके जीवोंका क्षेत्रमान बतलानेके लिये धनकाकारने उस उस जातिविशेषवाली प्रधान राशिको लेकर उसके क्षेत्राग्राहकका विचार किया है। उदाहरणार्थ—विहारस्वस्थानवाले मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका विचार करते समय उन्होंने त्रस-पर्याप्तराशिको ही विहार करनेकी योग्यता रखनेवाली मानकर पहले यह निर्दिष्ट कर दिया कि किसी भी समयमें इस राशिका सख्यातना भाग ही विहार करेगा। फिर उन्होंने इस विहार करनेवाली राशिमें स्वयंप्रभनागेन्द्र पर्यन्तके परभागवर्ती बड़े बड़े त्रस जीवोंका विचार किया, जिनमें द्वीन्द्रिय जीव शंख बाराह योजनका, त्रीन्द्रिय गोम्ही तीन कोसकी, चतुरिन्द्रिय भ्रमर एक योजनका और पंचेन्द्रिय मच्छ एक हजार योजनका होता है। अनएव ऐसे प्रत्येक जीवका उन्होंने क्षेत्रमितिके सूत्र व विधान देकर प्रमाणागुलोंमें घनफल निकाला, और फिर इस उल्कृष्ट अग्राहनामें जघन्य अग्राहनाका अगुलका असख्यातना भाग जोड़कर उसका आधा किया जिससे उस राशिके एक जीवकी मध्यम अर्थात् औसत अग्राहना सख्यात घनागुल आगई। समस्त त्रस पर्याप्तराशि प्रतरागुलके सख्यातनें भागसे भाजित जगप्रतरप्रमाण है और इसका केवल सख्यातना भाग विहार करता है। अत इस सख्यातनें भागको पूर्वोक्त घनफलसे गुणा करने पर विहारस्वस्थान मिथ्यादृष्टिराशिका क्षेत्र सख्यात सूच्यगुल्यगुणित जगप्रतरप्रमाण होता है, जो लेकरका असख्यातना भाग, और उसी प्रकार अगोलेक और ऊर्ध्वकोरका भी असख्यातना भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातना भाग और मनुष्यलोक या अटाईद्वीपसे असख्यात गुणा होगा।

२ स्पर्शनानुगम

स्पर्शनप्ररूपणामें यह बतलाया गया है कि भिन्न भिन्न गुणस्थानवाले जीव, तथा गति आदि भिन्न भिन्न मार्गणास्थानवाले जीव तीनों कालोंमें पूर्वोक्त दश अस्थानोंद्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श कर पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्र और स्पर्शन प्ररूपणाओंमें विशेषता इतनी ही है कि क्षेत्रप्ररूपणा तो केवल वर्तमानकालकी ही अपेक्षा रखती है, किन्तु स्पर्शनप्ररूपणामें अतीत और अनगतकालका भी, अर्थात् तीनों कालोंका क्षेत्रमान ग्रहण किया जाता है।

उदाहरणार्थ—क्षेत्रप्ररूपणामें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र लोकका असख्यातना भाग बताया गया है। यह क्षेत्र वर्तमानकालसे ही सम्बन्ध रखता है, अर्थात् वर्तमानमें इस समय स्वस्थानादि यथासभव पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीव लोकके असख्यातनें भागप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके विद्यमान हैं। यही बात स्पर्शनप्ररूपणामें वर्तमानकालिक स्पर्शनको बताने समय कही है। उसके पश्चात् दूसरे सूत्रमें अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र बतलाया गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) और बाराह बटे चौदह ($\frac{1}{16}$) भाग स्पर्श किए हैं। इसका अभिप्राय जान लेना आवश्यक है। तीनसौ तेतालीस घनराजुप्रमित इस लोककाशके ठीक मध्य भागमें बृक्षमें सारके समान एक राजु लम्बी चौड़ी और

चौदह राजु ऊर्ची लोकनाली अस्थित है। इसे प्रसनाली भी कहते हैं, क्योंकि, प्रसजीनोंका सचार इसके ही भीतर होता है। केवल कुछ अपवाद हैं, जिनमें कि इसके भी बाहर प्रस जीवोंका पाया जाना सम्भव है। इस प्रसनालीके एक एक राजु लम्बे, चौड़े और मोटे भाग बनाए जायें तो चौदह भाग होते हैं। उनमेंसे जो जीव जितने घनराजुप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करता है, उसका उतना ही स्पर्शनक्षेत्र माना जाता है। जैसे प्रकृतमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र आठ बटे (१६) या बारह बटे चौदह (१४) भाग बताया गया है। इनमेंसे निहारवस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैश्विकसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने उक्त प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागोंको स्पर्श किया है, अर्थात् आठ घनराजुप्रमाण प्रसनालीके भीतर ऐसा एक भी प्रदेश नहीं है कि जिसे अतीतकालमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (देव, मनुष्य, तिर्यक और नारकी, इन सभीने मिलकर) स्पर्श न किया हो। यह आठ घनराजुप्रमाण क्षेत्र प्रसनालीके भीतर जहाँ कहीं नहीं लेना चाहिए, किन्तु नीचे तीसरी बालुका पृथिवीसे ऊपर ऊपर सोलहमें अच्युतरूप तक लेना चाहिये। इसका कारण यह है कि भवनरासी देव स्वतः नीचे तीसरी पृथिवी तक निहार करते हैं, और ऊपर सौर्गमन्दिमानके शिखरधनुष तक। किन्तु उपरिम देवोंके प्रयोगसे ऊपर अच्युतरूप तक भी निहार कर सकते हैं [देखो पृ २२९]। उनके इतने क्षेत्रमें निहार करनेके कारण उक्त क्षेत्रका मध्यवर्ती एक भी आकाश-प्रदेश ऐसा नहीं बचा है कि जिसे अतीत कालमें उक्त गुणस्थानवर्ती देवोंने स्पर्श न किया हो। इस प्रकार इस स्पर्श किये गये क्षेत्रको लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहते हैं। मारणान्तिरुसमुद्रानकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्श किये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि छठी पृथिवीके सासादनगुणस्थानवर्ती नारकी मध्यलोक तक मारणान्तिरुसमुद्रान कर सकते हैं, और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनरासी आदि देव आठवीं पृथिवीके ऊपर निबन्धमान पृथिवीकायिक जीवोंमें मारणान्तिरुसमुद्रान कर सकते हैं, या करते हैं। इस प्रकार मेरुतरसे छठी पृथिवी तकके ५ राजु, और ऊपर लोकान्त तकके ७ राजु, दोनों मिलकर १२ राजु हो जाते हैं। यही बारह घनराजुप्रमाण क्षेत्र प्रसनालीके बारह बटे चौदह (१४) भाग, अथवा प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा जाता है।

इस उक्त प्रकारसे बताए गए स्पर्शनक्षेत्रको यथासम्भोजन लेना चाहिए। ध्यान रखनेकी बात केवल इतनी ही है कि वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र तो लोकके असख्यातमें भागप्रमाण ही होता है, किन्तु अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे यथासम्भोजन १६, १४, को आदि लेकर १४ तक होता है। तथा मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिरु, वेदना, कषायसमुद्रान आदिकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्शनक्षेत्र होता है, क्योंकि, सारे लोकमें सर्व ही एकेन्द्रिय जीव ठसाठस भरे हुए हैं और गमनागमन कर रहे हैं, अतएव उनके द्वारा समस्त लोककाश वर्तमानमें भी स्पर्श हो रहा है और अतीतकालमें भी स्पर्श किया जा चुका है।

इन एकोद्विध मिथ्यादृष्टि जीवोंके अतिरिक्त सयोगिकेजली भगवान् भी प्रतरसमुद्रातके समय लोकके असरघात वहु भागोंको और लोकपूर्णसमुद्रातके समय सर्प लोकान्नाशको स्पर्श करते हैं । तथा उपपाद ओर मारणान्तिकसमुद्रातनाले त्रसजीवोंका भी त्रसनालीके बाहर अस्तित्व पाया जाता है । वह इस प्रकारसे कि लोकके अन्तिम वातत्रयमें स्थित कोई जीव मरण करके त्रिप्रहगतिद्वारा त्रसनालीके अन्त स्थित त्रसपर्यायमें उत्पन्न होनेवाला है वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोड़ा लेता है, उस समय त्रसपर्यायको धारण करने पर भी वह त्रसनालीके बाहर है, अतएव उपपादकी अपेक्षा त्रसजीव त्रसनालीके बाहर रहता है । इसी प्रकार त्रसनालीमें स्थित किसी ऐसे त्रसजीवने जिसे कि त्रसनालीके बाहर मरकर उत्पन्न होना है, मारणान्तिकसमुद्रातके द्वारा त्रसनालीके बाहरके आकाश-प्रदेशोंका स्पर्श किया, तो उस समय भी त्रसजीवका अस्तित्व त्रसनालीके बाहर पाया जाता है, (देखो पृ २१२) । उक्त तीन अवस्थाओंको छोड़कर शेष त्रसजीव त्रसनालीके बाहर कभी नहीं रहते हैं ।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानों और चौदह मार्गणास्थानोंमें उक्त स्वस्थानादि दश पदोंको प्राप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र इस स्पर्शनप्ररूपणामें त्रतगया गया है ।

स्पर्शनप्ररूपणाकी कुछ विशेष बातें

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र निकालते हुए प्रसगजग असख्यात द्वीप-समुद्रोंके ऊपर आकाशमें स्थित समस्त चद्रोंके प्रमाणको भी गणितगालके अनेक अदृष्टपूर्व कल्पसूत्रोंके द्वारा निकाला गया है और साथ ही यह बतलाया गया है कि एक चद्रके परिवारमें एक सूर्य, अठारसी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र ओर छयासठ हजार नासो पचहत्तर कोडानोडी (६६९७५००००००००००००००००) तारे होते हैं । इस चारों प्रकारके परिवारके प्रमाणसे चन्द्रविम्बोंकी सरघाको गुणा कर देनेपर समस्त ज्योतिष्क देवोंका प्रमाण निकल आता है ।

इसी ग्रीचमें धरलाकारने ज्योतिष्क देवोंके भागहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित युक्तिसे बल्से यह सिद्ध किया है कि चूकि-स्वयभूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद पाये जाते हैं, इसलिए स्वयभूरमणसमुद्रके परभागमें भी असरघात द्वीप-समुद्रोंके व्यास-रुद्ध योजनोंसे सख्यात हजार गुने योजन आगे जाकर तिर्यग्लोककी समाप्ति होती है, अर्थात् स्वयभूरमणसमुद्रकी बाह्येदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है, वहाँ भी राजुके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहापर ज्योतिषी देवोंके निमान नहीं हैं । (देखो पृ १५०-१६०)

इसी प्रकरणमें उन्होंने अपनी उक्त बातकी पुष्टि करते हुए जो उदाहरण दिए हैं, उनसे एकरुम तीन ऐसी बातोंपर प्रकाश पडता है, जिनसे पता चलता है कि वे बातें गीरसेनाचार्यके पूर्ववर्ती दिगम्बर साहित्यमें प्रतिष्ठित नहीं थीं और सर्प प्रथम इन्होंने उनकी प्रतिष्ठा की है ।

वे नवीन प्रतिष्ठित तीनों बातें इस प्रकार हैं—

(१) 'सख्यात आनलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है' इस प्रचलित और सर्वमान्य

मान्यता को भी 'पदेहि पन्दित्रोवमननहिरिदि अवोमुहुत्तेण बालेण' (द्रव्यप्र सू ६) इस सूत्रके आधारसे 'अतर्मुर्द्धत' इस पदमें पड़े हुए अतर् शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अतर्मुर्द्धता अभिप्राय मुर्द्धतसे अधिक कालका भी हो सकती है।

(२) दूसरी बात आयतचतुरस्र लोका-संस्थानके उपदेशकी है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिये इसी भागके पृ ११ से २२ तकका अंश देखिए। उससे ज्ञात होता है कि धन्यकारके सामने विद्यमान करणायुगसम्बन्धी साहित्यमें लोकके आयतचतुरस्राकार होनेका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्धातगत केनगीके क्षेत्रके साधनार्थ कहा गइ दो गाथाओंके (देखो इसी भागके पृ २०-२१) आधारपर यही सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयतचतुरस्रकोण है, न कि अन्य आचार्यासे प्ररूपित १६४^३/_३ घनराज प्रमाण मृदगके आकार। साथ ही उनका दावा है कि यदि ऐसा न माना जायगा तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें ३४३ घनराजको अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयतचतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) तीसरी बात स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें पृथिवीके अस्तित्व सिद्ध करनेकी है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। (देखो पृ १५५ १५८ तक)

इस प्रकार बड़े जोरदार शब्दोंमें उक्त तीनों बातोंका समर्थन करनेके पश्चात् भी उनकी निष्पक्षता दर्शनीय है। वे लिखते हैं— 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकांत हठ पकड करके असद् आप्रह्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परमगुरुओंकी परम्परासे आए हुए उपदेशको युक्तिके, बलसे अयवार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें उच्चस्थ जीवोंके द्वारा उठाए गए विकल्पोंके अविस्वादी होनेका नियम नहीं है। अत एव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परिस्वाग न करके हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अयुत्पन्न शिष्यजनोंके व्युत्पादनके लिये यह दिशा भी दिखाना चाहिए। (देखो पृ १५७ १५८)

तिथिचौके ररस्थानररस्थानक्षेत्रका निरालते हुए द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल अनेक करण सूत्रोंद्वारा पृथक् पृथक् और सम्मिलित निरालनेकी प्रक्रियाएँ दी गई हैं, और साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि इस मध्यलोकमें कितना भाग समुद्रसे रुका हुआ है। (देखा पृ १५४ २०३)

कायमार्गणोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शन क्षेत्रको बतलाते हुए ररनप्रमादि सातों पृथिवियोंको लम्बाई चौड़ाईका भी प्रमाण बतलाया गया है।

३ कालानुगम

उक्त प्ररूपणाओंके समान कालप्ररूपणामें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा कालका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीन किस गुणस्थान या मार्गणस्थानमें क्रमसे क्रम कितने काल तक रहता है, और अधिकसे अधिक कितने काल रहता है।

उदाहरणार्थ—मिथ्यादृष्टि जीन मिथ्याव्युत्पन्नस्थानमें कितने काल तक रहते हैं ! इस प्रश्नके

मार्गणा	मार्गणाके अचान्तर भेद	क्षेत्र	स्पर्शन		
			वर्तमानकालिक	अतीत	
१० स्त्रियमार्गणा	{	दृण	{ सर्वलोक लोकका असख्यातवां भाग	{ सर्वलोक लोकका असख्यातवां भाग	{ सर्वलोक देशोन ५
		नील	" " "	" " "	{ सर्वलोक देशोन ५
		वापोत	" " "	" " "	{ सर्वलोक देशोन ५
		तेज	लोकका असख्यातवां भाग	लोकका असख्यातवां भाग	" ५
		पथ	" " "	" " "	" ५
		शुद्ध	{ " " " " असख्यात बहु "	{ " " " " असख्यात बहु "	{ लोकना सर्वलोक ७
		अदेश्य	लोकका असख्यातवां "	लोकका असख्यातवां "	लोकना
११ मय्यमार्गणा	{	मय्य	{ " " " " असख्यात बहु "	{ " " " " असख्यात बहु "	{ " " " " असख्यात बहु "
		अमय्य	"	"	"
		औपशमिकसम्यक्त्व	लोकना असख्यातवां भाग	लोकना असख्यातवां भाग	देशोन ५
१२ सम्यक्त्वमार्गणा	{	क्षायोपशमिक "	" " "	" " "	" " "
		क्षायिक "	{ " " " " असख्यात बहु "	{ " " " " असख्यात बहु "	{ लोकना " " ७
		सम्यग्भिष्यादृष्टि	लोकका असख्यातवां भाग	लोकका असख्यातवां भाग	देशोन ५
		सासादनसम्यग्दृष्टि	" " "	" " "	" ५
		भिष्यादृष्टि	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक
१३ सत्तिमार्गणा	{	सत्ती	लोकना असख्यातवां भाग	लोकना असख्यातवां भाग	{ देशोन ५ सर्वलोक
		असत्ती	सर्वलोक	सर्वलोक	"
१४ आहारमार्गणा	{	आहारक	"	"	"
		अनाहारक	"	"	"

मान्यता को भी 'पदेहि पलिद्रोगममगरिदि अंतोसुहुत्तेण कालेण' (द्रव्यप्र सू ६) इस सूत्रके आधारसे 'अतर्मुहूर्त' इस पदमें पडे हुए अतर् शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अतर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अत्रिक कालका भी हो सकता है।

(२) दूसरी बात आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशकी है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिये इसी भागके पृ ११ से २२ तकका अंश देखिए। उससे ज्ञात होता है कि धनराजके सामने नियमान्तर कर्णानुयोगसम्बन्धी साहित्यमे लोकके आयतचतुरस्राकार होनेका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मित्र रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्धानुगत केन्द्रके क्षेत्रके सामर्थ्य कहा गई दो गाथाओंके (देखो इसी भागके पृ २०-२१) आधारपर यही सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयतचतुरस्रकोण है, न कि अथ आचार्योंसे प्ररूपित १६४^{३३} घनराज प्रमाण मृदगके आकार। साथ ही उनका दावा है कि यदि ऐसा न माना जायगा तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणना आर लोक ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयतचतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) तीसरी बात स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें पृथिवीके अस्तित्व सिद्ध करनेका है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। (देखो पृ १५५ १५८ तक)

इस प्रकार बड़े जोरदार शब्दोंमें उक्त तानों बातोंका समर्थन करनेके पश्चात् भी उनकी निष्पक्षता दर्शनीय है। वे लिखते हैं—'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एका त हठ पकड करके असद् आप्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परमगुरुओंकी परम्परासे आए हुए उपदेशको युक्तिके, बलसे अव्यर्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्व जीवोंके द्वारा उठाए गए विकल्पोंके अविशवादी होनेका नियम नहीं है। अत एव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परिष्कार न करके हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अत्युत्पन्न शिष्यजनोंके व्युत्पादनके लिये यह दिशा भी दिखाना चाहिए। (देखो पृ १५७ १५८)

तिर्थचोंके स्वरधानस्वस्थानक्षेत्रका निकाळते हुए द्वीप आर समुद्रोंका क्षेत्रफल अनेक कारण सूत्रोंद्वारा पृथक् पृथक् और सम्मिलित निकाळनेकी प्रक्रियाए दी गई हैं, और साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि इस मयलोकमें कितना भाग समुद्रसे रुका हुआ है। (देखो पृ १५४ २१)

कायमार्गणमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शन क्षेत्रको बतलाते हुए रत्नप्रमादि सार्वतृ पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाईका भा प्रमाण बतलाया गया है।

३ कालानुगम

उक्त प्ररूपणाओंके समान कालप्ररूपणमें भा ओष और आदेशकी अपेक्षा कालक निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थानमें धमसे कम कितने काल तक रहता है, और अधिकसे अधिक कितने काल रहता है।

उदाहरणार्थ—मिथ्याद्यैव जीव मिथ्यात्वगुणस्थानमें कितने काल तक रहते हैं ? इस प्रश्नके

उत्तरमें बतलाया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल ही मिथ्यात्व गुण-स्थानमें रहते हैं, अर्थात् तीनों कालोंमें ऐसा एक भी समय नहीं है, जब कि मिथ्यादृष्टि जीव न पाये जाते हों। किन्तु, एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका काल तीन प्रकारका होता है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। जो अमव्य जीव हैं, अर्थात् त्रिकालमें भी जिनको सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होना है, ऐसे जीवोंके मिथ्यात्वका काल अनादि-अनन्त होना है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका न कभी आदि है, न अन्त। जो अनादिमिथ्यादृष्टि भव्य जीव हैं, उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त है, अर्थात् अनादि कालसे आज तक सम्यक्त्वकी प्राप्ति न होनेसे तो उनका मिथ्यात्व अनादि है, किन्तु जाग जाकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति और मिथ्यात्वका अन्त हो जानेसे वह मिथ्यात्व सान्त है। ब्रह्माकारमे इस प्रकारके जीवोंसे वर्द्धनकुमारका दृष्टान्त दिया है, जो कि उस पर्यायमें सर्व प्रथम सम्यक्त्व ही हुए थे। इस प्रकार सर्व प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवोंके सम्यक्त्वप्राप्तिके पूर्व समय तक उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त समझना चाहिए। जिन जीवोंने एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया, तथापि परिणामोंके सङ्केतादि निमित्तसे जो फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, उनके मिथ्यात्वका काल सादि-सान्त माना जाता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका आदि और अन्त, ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्रकारके जीवोंमें भी श्रीकृष्णका दृष्टान्त बतलाकारने दिया है।

प्रकृतमें अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त मिथ्यात्वके कारणों टोडकर सादि-सान्त मिथ्यात्व-कालकी ही शिक्षा की गई है, और उमीकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जगन्मय और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जगन्मय काल अन्तर्मुद्घर्त बतलाया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असयतसम्यग्दृष्टि या सयनासयन या प्रमत्तसयन जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मिथ्यात्वदशामें सतसे टोटे अन्तर्मुद्घर्तकाल तक रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको, या अमयतसम्यक्त्वको, या सयमामयम अथवा अप्रमत्तसयनका प्राप्त हो गया, तो ऐसे जीवके मिथ्यात्वका जगन्मयकाल अन्तर्मुद्घर्तप्रमाण पाया जाता है। ऐसे मिथ्यात्वको सादि-सान्त कहते हैं, क्योंकि, उमका आदि और अन्त, दोनों पाये जाते हैं। इसी सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव प्रथम बार सम्यक्त्वकी होकर पुनः मिथ्याकी हो जाता है तो वह अत्रिक्रमे अत्रिक अर्धपुद्गल-परिवर्तनकालके भीतर अवश्य ही पुनः सम्यक्त्व प्राप्तकर मोक्ष चला जाता है। (अर्धपुद्गलपरिवर्तन-कालके लिये देखिये पृ ३२५-३३२)

इसी प्रकार शेष गुणस्थानोंके भी जगन्मय और उत्कृष्ट काल बतलाये गये हैं।

अनागत मालिक	नानाजीवोंकी अपेक्षा		काल	
			जघयकाल	उत्प्रेकाल
१ राउ	सबकाल		अन्तमुहूर्त	साधिक तेतीस सागरोपम
१/४ राउ	"		"	" सचरह "
१/४ राउ	"		"	" सात "
१/४ और १/४ राउ	"		" एकसमय	" दो "
१/४ राउ	"		" "	" अठारह "
१/४ "	"		" "	" "
अमम्यातवां भाग सख्यात बहु "	"		" "	" तेतीस "
अमम्यातवां भाग	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
" " "	सबकाल		"	देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन
" " "	"		×	अनादि अन त
१/४ राउ	अन्तमुहूर्त पचो अम भाग एकसमय अन्तमुहूर्त		अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
" "	सबकाल		अन्तमुहूर्त	साधिक छयासठ सागरोपम
अमम्यातवां भाग सख्यात बहु "	"		"	" तेतीस "
१/४ राउ	अन्तमुहूर्त पचो अम भाग		"	अन्तमुहूर्त
१/४ और १/४ राउ	एकसमय " " "		एकसमय	"
१/४ राउ	सबकाल		अन्तमुहूर्त	देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन
१/४ राउ	"		"	सागरोपम शतपृथक्त्व
१/४ राउ	"		धूमभवमहण	अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन
१/४ राउ	"		अन्तमुहूर्त	अगुलके आसख्यातके भागप्रमाण अमख्यातासख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तीन समय, अन्तमुहूर्त
१/४ राउ	"		एकसमय	

क्रम न	विषय	पृष्ठ नं	क्रम न	विषय	पृष्ठ न
२१	गोमिहक्षेत्रके निकालनेका विधान	"	३		
२२	शुभक्षेत्रके निकालनेका विधान	३५	आदेशसे क्षेत्रप्रमाणनिर्देश	५६-१३८	
२३	महामस्यक्षेत्रके निकालनेका विधान	३६	१ गतिमार्गणा	५६-८१	
२४	तिर्यंग्लोकका स्वरूप	३७	(नरकगति)	५६-६६	
२५	वेक्रियाकसमुद्रातगत मिथ्या- दृष्टि जीवोंका क्षेत्र निरूपण	३८	३९ सामान्य नारकियोंका क्षेत्र	५६	
२६	देव अपने अवधिज्ञानके क्षेत्र प्रमाण विक्रिया करते हैं, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके कथनका निराकरण	"	४० नारकियोंकी अवगाहना	५७	
२७	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान- तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	३९-४७	४१ प्रथम पृथिवीके तेरहों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	५८	
२८	देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सर्गक्रमशः दश, नौ और आठ तालेके प्रमाणसे कहा गया है, इस बातका निरूपण	"	४२ द्वितीय पृथिवीके ग्यारहों पट- लोंके नारकोंकी ऊंचाई	५९	
२९	ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यंग्लोकका प्रमाण वर्णन	"	४३ तृतीय पृथिवीके नौ पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	६०	
३०	सूक्ष्मपरिधि निकालनेकाकरण सूत्र	"	४४ चतुर्थ पृथिवीके सातों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	६१	
३१	भरत, पेरुपत और विद्वेह सम्बन्धी प्रमत्तसंयतादि सयमी जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रमाणका निरूपण	"	४५ पंचम पृथिवीके पाचों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	"	
३२	तेजससमुद्रात क्षेत्रका प्रमाण	"	४६ छठी पृथिवीके तीनों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	६२	
३३	सयोगिकेवलीके क्षेत्रका निरूपण	"	४७ सातवीं पृथिवीके नारकोंकी ऊंचाई	"	
३४	दृढसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"	४८ नारकियोंके क्षेत्रको निकालनेके लिए अर्थपदका निरूपण	६३	
३५	कपाटसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"	४९ सातों पृथिवियोंके नारकियोंका क्षेत्रवर्णन	६५	
३६	प्रतरसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"	तिर्यंचगति	६६-७३	
३७	लोकके चारों ओर स्थित तीनों वातबलयोंके क्षेत्रफलका निरूपण	५१-५५	५० तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	६६	
३८	लोकपूरणसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	५६	५१ सासादनगुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंका क्षेत्रप्रमाण	६७	
			५२ पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तकके क्षेत्रका निरूपण	६९	

क्रम न	विषय	पृष्ठ नं	क्रम न	विषय	पृष्ठ न
२१	गोमिहक्षेत्रके निकालनेका विधान	"	३		
२२	शब्दक्षेत्रके निकालनेका विधान	३५	आदेशसे क्षेत्रप्रमाणनिर्देश		५६-१३८
२३	महामत्स्यक्षेत्रके निकालनेका विधान	३६	१ गतिमार्गणा		५६-८१
२४	तिर्यंग्लोकका स्वरूप	३७	(नरकगति)		५६-६६
२५	वैक्रियकसमुद्रातगत मिथ्या-दृष्टि जीवोंका क्षेत्रनिरूपण	३८	३९ सामान्य नारकियोंका क्षेत्र		५६
२६	देव अपने अविद्याज्ञानके क्षेत्रप्रमाण प्रिक्रिया करते हैं, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके कथनका निराकरण	"	४० नारकियोंकी अवगाहना		५७
२७	सासादनसम्बन्धादि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	३९-४७	४१ प्रथम पृथिवीके तेरहों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		५८
२८	देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सृष्ट क्रमशः दश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इस बातका निरूपण	"	४२ द्वितीय पृथिवीके ग्यारहों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		५९
२९	ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यंग्लोकका प्रमाण वर्णन	"	४३ तृतीय पृथिवीके नौ पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		६०
३०	सूक्ष्मपरिधि निकालनेका करण-सूत्र	"	४४ चतुर्थ पृथिवीके सातों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		६१
३१	भरत, पुराणत और विदेह सम्बन्धी प्रसक्तसंयतादि सयमी जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रमाणका निरूपण	"	४५ पंचम पृथिवीके पाचों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		"
३२	तेजससमुद्रात क्षेत्रका प्रमाण	"	४६ छठी पृथिवीके तीनों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई		६२
३३	सयोगिकेवलीके क्षेत्रका निरूपण	"	४७ सातवीं पृथिवीके नारकोंकी ऊंचाई		"
३४	दंडसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"	४८ नारकियोंके क्षेत्रको निकालनेके लिए अर्थपदका निरूपण		६३
३५	कपाटसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"	४९ सातों पृथिवियोंके नारकियोंका क्षेत्रवर्णन		६५
३६	प्रतरसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	"			
३७	लोकके चारों ओर स्थित तीनों घातउलयोंके क्षेत्रफलका निरूपण	५१-५५	तिर्यंचगति		६६-७३
३८	लोकपूरणसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र	५६	५० तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र		६६
			५१ सासादनगुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंका क्षेत्रप्रमाण		६७
			५२ पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तकके क्षेत्रका निरूपण		६९

क्रम न	विषय	पृष्ठ न	क्रम न	विषय	पृष्ठ न
५३	लब्धपर्याप्तपक्षेन्द्रियतिर्यचोंका क्षेत्र (मनुष्यगति)	७३ ७३-७७	६५	पक्षेन्द्रिय और पक्षेन्द्रियपर्याप्तकोंके सभी गुणस्थानोंका क्षेत्र निरूपण	६६ ६७
५४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेउली गुणस्थान तकके मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंके क्षेत्रका वर्णन	७३	६६	लब्धपर्याप्तक पक्षेन्द्रिय जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	६७
५५	सयोगिकेउलीका क्षेत्र	७५	३ कायमार्गणा	७७-१०२	
५६	लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका क्षेत्र (देवगति)	७६ ७७-८१	६७	पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, तथा वादरपृथिवीकायिक, वादर अप्कायिक, वादरतेजस्कायिक, वादरवायुकायिक, वादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर और इन पाच वादरोंके अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक, तथा इन चार सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्तक जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	७७ ७७
५७	मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती सामान्यदेवोंका क्षेत्र	७७	"		
५८	भूतनासी देवोंसे लेकर नव प्रवेयक तकके चारों गुणस्थान वर्ती देवाका क्षेत्र	७७	७९	रत्नप्रभादि सातों अधस्तन तथा उपरितन ईष्टप्रारम्भार, इन आठों पृथिवियोंके आयाम, विष्कम्भ और बाह्यका वर्णन	७९
५९	भवनवासी, व्यतर और ज्योतिष्क देवोंके शरीरकी ऊर्चाईका वर्णन	७९	८१	६९ पृथिवियोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है इस लिए जल कायिक जीवोंका सर्वत्र पृथिवियोंमें रहना समभव नहीं है, इस शकाका समाधान	८१-८७
६०	नव अनुदिश और पाच अनुत्तर विमानवासी देवोंका क्षेत्र २ इन्द्रियमार्गणा	८१-८७	७०	७० वादर पृथिवीकायिक, वादर अप्कायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तक जीवोंका क्षेत्र-वर्णन	८१-८७
६१	सामान्य पक्षेन्द्रिय, वादर पक्षेन्द्रिय, सूक्ष्म पक्षेन्द्रिय और इन तीनोंके पर्याप्त तथा अपर्याप्तक जीवोंके क्षेत्रोंका वर्णन		७१	७१ वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रियपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असरपातगुणी है, इस	८१-८७
६२	पैत्रियिकसमुदातगत पक्षेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण, तथा उनका क्षेत्रनिरूपण		८२		८१-८७
६३	स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धान और कषायसमुदातगत वादरपक्षेन्द्रिय और वादरपक्षेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका निरूपण		८३		८१-८७
६४	सामान्य पर्याप्त और अपर्याप्त विक्रमय जीवोंके स्वस्थानादि क्षेत्रोंका निणय		८५		८१-८७

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	धातकी सिद्धिके लिए वेदना-क्षेत्रविधानमें कहे गये अर्थात् हना-दडकका अवतरण	९४ ९८	८३	प्रसपर्याप्तराशिका कितना भाग संचार करता है, इस धातका निरूपण	"
७२	वाटरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके सूत्रमें नहीं कहनेका कारण	९९	८४	सासादनगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेचली तकके औदारिक काययोगी जीवोंका क्षेत्र	१०५
७३	वाटरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका निर्णय	"	८५	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्या दृष्टियोंका क्षेत्र	"
७४	वाटर, सूक्ष्म तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक वनस्पति प्रायिक वा निगोद जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१००	८६	औदारिकमिश्रकाय वैक्रियिक्समु-द्धात आदि पदोंके साथ भेद पाये जानेसे सूत्रोक्त ओघनिर्देश घटित नहीं होता है, इस शकाका समाधान	१०६
७५	मिथ्यादृष्ट्यादि अयोगिकेवल्यन्त प्रसकायिक और प्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र-वर्णन	१०१	८७	औदारिक मिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असत्यत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेचलीका क्षेत्र निरूपण	"
७६	लब्धपर्याप्तक प्रसजीवोंका क्षेत्र-वर्णन	"	८८	औदारिकमिश्रकाययोगी सासा-दनसम्यग्दृष्टि और असत्यत-सम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद पद पर्यो नहीं कहा, इस शकाका समाधान	१०७
४ योगमार्गणा १०२-१११			८९	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असत्यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तकके वैक्रियिक्काययोगी जीवोंका क्षेत्र	१०८
७७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेचली गुणस्थान तक पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१०२	९०	वैक्रियिक्कामिश्रकाययोगी मिथ्या दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१०९
७८	वैक्रियिक्समुद्धातगत, मार-णान्तिक्समुद्धातगत, तथा मूर्च्छित जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे समझें ? इन शकाओंका समाधान	"	९१	आहारकनाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी प्रसत्त-सयतोंका क्षेत्र	"
७९	काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१०३	९२	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असत्यत-सम्यग्दृष्टि और सयोगि केचलीका क्षेत्र	११०-१११
८०	सासादनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायगुणस्थान तकके काययोगी जीवोंका क्षेत्र	"			
८१	काययोगी सयोगिकेचलीका क्षेत्र	१०४			
८२	औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	"			

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	५ वेदमार्गणा	१११-११३		७ ज्ञानमार्गणा	११७-१२१
९३	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण तकके रावेदी और पुष्यवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	१११	१०३	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	११७
९४	मिथ्यादृष्ट्यादि नौ गुणस्थान परतीं नपुसकवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	११२	१०४	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका क्षेत्र	११८
९५	अपगतवेदी जीवोंका क्षेत्र	११३	१०५	अचेतन और क्षणक्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है, इस शकाका समाधान	"
	६ कर्पायमार्गणा	११३-११७	१०६	विभगज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र, तथा स्वस्थानादि पदगत विभगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्भोक्के सख्यातयें भागमें और मनुष्यलोकसे असत्प्रातगुणे क्षेत्रमें ही क्यों रहते ह, इस शकाका समाधान	"
९६	क्रोध, मान, माया और लोभ कर्पायी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	११३	१०७	असत्प्रातगुण गुणस्थानसे लेकर क्षीणकर्पायवीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक मति, श्रुत और अवाधिज्ञानी जीवोंका क्षेत्र	११९
९७	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके क्रोध, मान, माया और लोभकर्पायी जीवोंका क्षेत्र	११४	१०८	प्रमत्तसत्प्रातसे लेकर क्षीणकर्पायान्त मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका क्षेत्र	"
९८	सूत्रमें ओघपद क्यों नहीं कहा, इस शकाका समाधान	"	१०९	पर्यायाधिक और द्रव्याधिक नयीं देशनाओंके कहनेका प्रयोजन	१२०
९९	'लोकके असत्प्रातयें भागमें' इतना ही पद सूत्रमें कहनेसे प्रत्यक्ष 'मानुषक्षेत्रके भी असत्प्रातयें भागमें रहते हैं' यह अर्थ क्यों नहीं लेना चाहिये, इस शकाका, तथा इसीके अन्तर्गत एक और भी शकाका समाधान	११५	११०	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका क्षेत्र	"
१००	लोभकर्पायी सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसयतोंका क्षेत्र	११६	१११	स्वस्थानस्वस्थान पदका स्वरूप बतलाकर क्षीणमोही अयोगिकेवलीमें उसकी असत्प्रातका आपादन और समाधान	१२१
१०१	अकर्पायी जीवोंका क्षेत्र	"			
१०२	उपशांतकर्पायी जीवको एक पाप कैसे कहा, इस शकाका तथा इसीके अन्तर्गत कुछ अन्य भी शकाओंका समाधान	११७			

क्रम नं	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ नं
	८ संयममार्गणा	१२१-१२५	१२३	लब्धपर्याप्तक जीवोंमें चक्षु-दर्शन पाया जाता है, या नहीं, इस शकाका समाधान	१२६
११२	सयमी जीवोंमें प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	१२१	१२४	अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्या दृष्टिसे लेकर क्षीणरूपाय गुणस्थान तकका क्षेत्र निरूपण	१२७
११३	द्रव्याधिक - नयदेशनाका प्रयोजन	१२२	१२५	अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र	"
११४	सयोगिकेवलीका क्षेत्र और पृथक् सूत्र निर्माणका प्रयोजन	"	१०	लेइयामार्गणा	१२८-१३१
११५	सामायिक और छेदोपस्थापना सयतोंमें प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके सयत जीवोंका क्षेत्र	१२२-१२३	१२६	रूष्ण, नील और कापोत लेइयावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र-वर्णन	१२८
११६	परिहारविशुद्धिसयत, सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसयतोंसे पृथग्भूत फ्यों नहीं, इस शकाका समाधान	"	१२७	तेज और पद्मलेइयावालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसयत तकके जीवोंका क्षेत्र	१२९
११७	परिहारविशुद्धिसयमी प्रमत्त-धोर अप्रमत्त सयतोंका क्षेत्र	"	१२८	मारणान्तिक समुद्रातगत तेजोलेइयावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्षेत्रमें विशेषता का वर्णन	"
११८	सूक्ष्मसाम्पराय सयमगले उपशामक और क्षपक जीवोंका क्षेत्र	"	१२९	चैत्रियिक, मारणान्तिक और उपपादपद्गत पद्मलेइयावाले जीवोंमें कोनसी राशि प्रधान है, इस बातका निरूपण	१३०
११९	यथाख्यातसयमी, सयमासयमी और असयमी मिथ्यादृष्टि जीवों का पृथक् पृथक् क्षेत्र निरूपण	१२४	१३०	शुक्लेइयावाले जीवोंमें मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपाय तकके जीवोंका क्षेत्र	"
१२०	ओघप्ररूपणाके भेद प्रभेद और प्रकृतमें किस ओघसे प्रयोजन है, यह बताकर तत्सम्बन्धी शका समाधान	१२५	१३१	शुक्लेइयावाले सयोगिकेवली का क्षेत्र और अलेइय जीवोंका क्षेत्र नहीं कहनेका कारण	१३१
१२१	असयमी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	"	११	भय्यमार्गणा	१३१-१३३
	९ दर्शनमार्गणा	१२६-१२८	१३२	भय्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीवोंका क्षेत्र	१३१
१२२	चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपाय गुणस्थान तक क्षेत्र निरूपण	१२६			

क्रम न	विषय	पृ, न	क्रम न	विषय	पृ न
१३३	अभ्यसिद्धि जीवोंका क्षेत्र	१३२	१३१	उपशम श्रेणीसे उतरकर मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके विषय अथ उपशम सम्यक्त्वी जीवोंका मरण क्यों नहीं होता, इस शकाका समाधान	१३१
१३४	विहारयन्त्रस्थान और धेनि पिक्कसमुद्धानगत अमव्य जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातर्ष भागम और मनुष्यलोकसे असख्यात गुणे क्षेत्रमें रहते ह, इस यातका समप्रमाण निरूपण	"	१३२	सामानादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि आर मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र निरूपण	"
१३५	सादिवध करनेवाले जीव पल्योपमके असख्यातर्ष भाग मात्र होते ह, इस यातका सयुक्तिक वणन	१३२ १३३		१३ मज्जीमार्गणा	१३६
१३६	एनेन्द्रियोंमें सचित अनन्त सादिवधकोंमेंसे जगप्रतरके असख्यातर्ष भागप्रमाण सादिवधक जीव प्रत्तोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते, इस शकाका समाधान	१३३	१३३	सर्षी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	"
	१२ सम्यक्त्वनमार्गणा	१३३-१३६		१४ अमर्षी जीवोंका क्षेत्र	"
१३७	सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३३	१३४	१४ आहारमार्गणा	१३७ १३८
१३८	वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असयत गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३३	१३५	आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र निरूपण	१३७
१३९	उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असयतगुणस्थानसे लेकर उपशा तकषाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	"	१३६	अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	"
१४०	मारणातिकसमुद्धान और उपपादपदगत असयत उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंकी सख्याका निरूपण	१३५	१३७	अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवलीका क्षेत्र	१३८
			१३८	अनाहारक सयोगिकेवलीका क्षेत्र	"
				स्पर्शनानुगम	
				१	
				विषयकी उत्थानिका	१४१-१४५
				१ धवलकारका मगलाचरण और प्रतिषा	१४१
				२ स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्दशभेद कथन	"
				३ नामस्पर्शन, स्वापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, काठ	"

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ नं
	स्पर्शन और भास्पर्शन, इन छह प्रकारके स्पर्शनोंका समेद स्वरूप और नयोंमें अन्तर्भाव	१४१-१४४		स्वकीय निष्पक्ष मनोवृत्तिका परिचय	१५७-१५८
४	स्पर्शनशब्दकी निराकि, ओघ-शब्दके एकार्थक नाम और प्रमाणवाक्यके अभावकी आशका का समाधान	१४४ १४५	१६	चन्द्रनिम्नशलाकाओंकी उत्पत्ति	१५९
	२		१७	ज्योतिषी देवोंके विमानोंका प्रमाण उत्सवागुलसे ही लेना चाहिये, प्रमाणागुलसे नहीं, अन्यथा जम्बूद्वीप सम्बन्धी तारे जम्बूद्वीपमें समा नहीं सकते, इस बातका पक्षान्तर स्वीकारके साथ उल्लेख	- १६०
५	ओघसे स्पर्शानुगमनिर्देश	१४५-१७३	१८	सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर-देवोंका स्वस्थानक्षेत्र निरूपण	१६१
	२		१९	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हे, या केवल मारणान्तिकसमुदात्त करते हे, इस बातका सप्रमाण निर्णय	१६२-१६३
६	मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र निरूपण	१४५	२०	जब कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुदात्त करते हे, तो फिर सर्व-लोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं करते, इस शकाका सयुक्तिक समाधान	१६४
७	स्पर्शनानुयोगद्वारेके अवतारकी आश्रयकताका प्रतिपादन	१४५-१४६	२१	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका बारह घटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कैसे घटित होता है, ये वायुकाधिक जीवोंमें मारणा न्तिकसमुदात्त क्यों नहीं करते, इन शकाओंका समाधान	"
८	लोकका प्रमाण निरूपण	१४६-१४७	२२	उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके देशान ग्यारह घटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी सिद्धि	१६५
९	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१४८	२३	जिन आचार्योंका यह अभिमत है कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रविष्ट होकर ही मरण करते हैं, और इसी अपेक्षा उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका	
१०	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१४९ १६५			
११	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचोन्म स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र	१४९			
१२	सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र	१५०-१६०			
१३	एक चन्द्रके परिवारका प्रमाण	१५१-१५२			
१४	ज्योतिष्कदेवोंके सर्व विमानोंका प्रमाण	१५२			
१५	स्वयम्भूरमण समुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेदोंके अस्तित्वकी सिद्धि, तथा परिकर्मसूत्रके साथ उसका विरोध उद्घावन पर उसका परिहार	१५५-१५६			
१६	राजुके अर्धच्छेद सर्व द्वीप-सागरोंके प्रमाणसे तत्प्रायोग्य सख्यात रूपाधिक है, यह कथन केवल त्रिलोकप्रद्योतिसूत्रके अनुसार है, यह यत्नलते हुए अस्वस्थान आश्रयोंके अशुद्ध-कालके तथा आयततत्तुरक्ष लोभ स्वस्थानके उपदेशका उल्लेख और				

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	स्पर्शनक्षेत्र देशोन ददा घटे चार्द्ध भागप्रमाण कहते हैं, उनके बधनका स्वप्रमाण विरोध निरूपण			मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके सत्यातथे भाग प्रमाण क्यों नहीं, इस शकाका तथा इन्हींके अन्तर्गत और भी अनेकों शकाओंका समाधान	१०१
२४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि धार असयन सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६६	३१	विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह सहेतुक होते हैं, या अहेतुक, इस यातका निर्णय करते हुए नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकमन्त्री प्रकृतियोंके भेदोंका निरूपण और उनके क्षेत्र विपाकित्वकी सिद्धि	१७१-१७६
२५	सयतासयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६७-१६८	३२	सासादनसम्यग्दृष्टिनारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१७७
२६	स्वयम्भूरमणसमुद्र और स्वयम्भुपर्वतके परभागवर्ती क्षेत्रका विष्कम्भ घतलाते हुए सयता-सयत जीवोंके स्वस्थानक्षेत्रकी स्वप्रमाण सिद्धि	१६८-१६९	३३	नारकावासोंके आकारोंका, तथा वर्तमानकालमें नारकियोंसे रोये हुए क्षेत्रका वर्णन	१७८
२७	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेउली गुणस्थान तकके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा विभ्रियादि ऋद्धिमत्पत्र ऋषि योंने सर्व मनुष्यक्षेत्रका स्पर्श किया है या नहीं, क्या भेद-शिखर तक जाने आनेवाले ऋषि मनुष्यक्षेत्रमें सर्वत्र नहीं जा आ सकते; क्या तिर्यचोंका भी एक लाख योजन ऊपर तक जाना सम्भव नहीं है, इत्यादि अनेक शकाओंका समाधान	१७०-१७२	३४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शन क्षेत्र घतलाते हुए एक नारका वासका क्षेत्रफल, तथा मारणा तिक समुद्रातगत असयत सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शन क्षेत्र मनुष्यलोकसे असत्यात गुणा क्यों है, इस यातका अनेक युक्तियोंके साथ समर्थन	१७२-१८२
२८	सयोगिषेवलीका स्पर्शनक्षेत्र	"	३५	प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानादि पदगत नारकियोंके स्पर्शन क्षेत्रकी सयुक्तिक सिद्धि करते हुए प्रसगागत मृदागाकार लोकके अनुसार एक लाख योजन वाहस्य और एक रातु गोल तिर्यग्लोकके प्रमाणका, जगधेणी जगत्परिक्र्मके अरूपनिक	
	३				
	आदेशमे स्पर्शनक्षेत्र निर्देश	१७३-३०९			
	१ गतिमार्गणा	"-२४०			
	(नरकगति)	"-१९२			
२९	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१७३			
३०	अतीतकालकी अपेक्षा विहारव्य त्वस्थानादि पदगत नारकी				

क्रम न	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ न
	करते हुए अनेक युक्तियों और प्रमाणोंसे सहज	१८२-१८७		कार शलाकाओंका निरूपण और उनसे विवाक्षित द्वीप और समुद्रके क्षेत्रफल निकालनेका विधान	१९५-१९८
३६	द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१८८ १८९	४५	स्वयम्भूरमण समुद्रके क्षेत्रफल निकालनेका विधान	१९८
३७	उक्त पृथिवियोंके सम्याग्मिथ्या दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र	१८९ १९०	४६	सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलका सफलन-निरूपण	१९९-२०१
३८	सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा देशोन क्षेत्रका स्पर्शीकरण	१९० १९१	४७	स्वयम्भूरमण समुद्रके अति रिक्त शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान	२०२-२०३
३९	सातवीं पृथिवीके सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्याग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र (तिर्यचगति)	१९१-१९२ १९२-२१६	४८	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच मेघ मूलसे नीचे मारणान्तिकसमुद्रात क्यों नहीं करते हैं, उनकी भजनवासी देवोंमें उत्पत्ति होती है, कि नहीं, इत्यादि अनेक शकाओंका समाधान	२०४-२०६
४०	तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा त्रसजीवरहित असख्यात द्वीप और समुद्रोंमें विहारवत्स्त्रस्थान पदपरिणत तिर्यचोंका होना कैसे समभव है, इस शकाका समाधान करते हुए अतीतकालमें विहार करनेवाले तिर्यचोंसे स्पर्श किये गये क्षेत्रके निकालनेका विधान	१९२-१९३	४९	सम्याग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका स्पर्शनक्षेत्र	२०६
४१	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१९३-२०६	५०	असयतसम्यग्दृष्टि और सयता सयत तिर्यचोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२०७-२११
४२	जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल	१९४	५१	नवग्रहैयकोंमें यदि मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं तो असयतसम्यग्दृष्टि और सयतासयत तिर्यचोंकी उत्पत्ति क्यों नहीं होना चाहिये ? यदि ब्रह्मा जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंगसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंगसे ही उत्पन्न होंगे ? इस शकाका समाधान	२०८
४३	लवणसमुद्रका क्षेत्रफल	१९५	५२	उपपादपरिणत असयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंके स्पर्शनक्षेत्रके करणसूत्र द्वारा निकालनेका विधान	२०९-२१०
४४	घातकाष्ठ आदि द्वीपों और कालोदक आदि समुद्रोंके क्षेत्रफलके निकालनेके लिए गुण-		५३	विहारवत्स्त्रस्थानादि पदपरिणत सयतासयत तिर्यचोंका स्पर्शनक्षेत्र	२१०-२११

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	स्पर्शनक्षेत्र वेशोन द्वा घटे चौदह भागप्रमाण वृत्ते हैं, उनके वचनका सममाण विरोध निरूपण			मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके स्वस्थानमें माग प्रमाण क्यों नहीं, इस शकाका तथा इसीके अन्तर्गत और भी अनेकों शकाओंका समाधान	१३३
२४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असम्यग्मिथ्यादृष्टि जीयोंका घनमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६६	३१	विप्रद्वगतिमें जीयोंके विप्रद्व सहेनुक होते हैं, या महेतुक, इस बातका निर्णय करते हुए	
२५	सयतासयत जीयोंका घनमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६७-१६८		गरक, तिर्य्य, मनुष्य और देव गति प्रायोग्यानुपूर्वी नामधर्मोंकी प्रष्टभियोंके भेदोंका निरूपण और उनके क्षेत्र विधाकित्यकी सिद्धि	१७५-१७६
२६	स्वयम्भूरमणसमुद्र और स्वयम्भुपर्यंतके परमाणवर्ती क्षेत्रका विष्कम्भ घनलाने हुए सयतासयत जीयोंके स्वस्थानक्षेत्रकी सममाण सिद्धि	१६८-१६९	३२	सासाधनसम्यग्दृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१७७
२७	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिके गली गुणस्थान तकके जीयोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा विभ्रियादि श्रद्धिसम्यग्मिथ्यादृष्टि योंने सर्व मनुष्यक्षेत्रका स्पर्श किया है, या नहीं, क्या मेरु शिखर तक जाने आने गले श्रद्धि मनुष्यक्षेत्रमें सर्वत्र नहीं जा आ सकते, क्या तिर्य्यचोंका भी एक लाख योजन ऊपर तक जाना सम्भव नहीं है, इत्यादि अनेक शकाओंका समाधान	१७०-१७२	३३	नारकावासोंके आकारोंका, तथा वर्तमानकालमें नारकियोंसे रोकें हुए क्षेत्रका वर्णन	१७९
२८	सयोगिके वलीका स्पर्शनक्षेत्र	३	३४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका स्पर्शन क्षेत्र घनलाने हुए एक नारका पासका क्षेत्रफल, तथा मारणांतिक समुदातगत असम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका स्पर्शन क्षेत्र मनुष्यलोकसे असम्यग्गत गुणा क्यों है, इस बातका अनेक युक्तियोंके साथ समर्थन	१७९-१८१
	आदेशसे स्पर्शनक्षेत्र निर्देश	१७३-३०९	३५	प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानादि पदगत नारकियोंके स्पर्शन क्षेत्रकी सयुक्तिक सिद्धि करते हुए प्रसंगागत मृद्गाकार लोकके अनुसार एक लाख योजन घाहव्य और एक राजु गोल तिर्यग्लोकके प्रमाणका, जगधेणी जगमतर, घनलोकका परिवर्तनके अवतरण पूर्वक स्वरूप निरूपण	
	१ गतिमार्गणा (नरकगति)	" - २४०			
	२९ नारकी मिथ्यादृष्टि जीयोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	" - १९२			
३०	अतीतकालकी अपेक्षा विहारव्य स्वस्थानादि पदगत नारकी	१७३			

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम नं	विषय	पृ नं
७५	भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यग्वोंका उपपाद सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र साधिक पाच राजु फ्यों नहीं होता, इस शकाका समाधान	२२६-२२७	८५	सौधर्म और ईशानकल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३४-२३६
७६	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि देवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२७	८६	इन्द्रक, श्रेणीन्द्र और प्रकीर्णक विमानोंके विस्तारका निरूपण	२३४
७७	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि भजनत्रिक देवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२२८-२२९	८७	सौधर्मवि सर्व कल्पोंके विमानोंकी सख्याका निरूपण	२३५-२३६
७८	उक्त देवोंके अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२९-२३२	८८	सौधर्मरूपवासी देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान फ्यों है, इसका सोपपत्तिक निरूपण	२३६
७९	उपपादपद्गत मिथ्यादृष्टि भजन वाली देवोंके स्पर्शनक्षेत्रसम्बन्धी अनेक अपूर्व शकाओंका समाधान	२३०	८९	सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३७-२३८
८०	मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि व्यन्तरदेवोंके स्पर्शनादि पदोंके स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२३०-२३१	९०	आनतकल्पसे लेकर अच्युतकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२३८-२३९
८१	उपपादनी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें व्याप्त करके स्थित व्यन्तरदेव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागको स्पर्श करते हैं, इस शकाका सयुक्तिक समाधान	२३१	९१	नवग्रैवेयकोंके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३९
८२	व्यन्तरोंके प्रसंगोपात्त आवास स्थानोंका निरूपण	२३२	९२	नव अनुदिश और पाच अनुत्तर विमानवासी असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०
८३	उपपादगत ज्योतिष्क देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३२-२३३	२ (इन्द्रियमार्गणा)	२४०-२४६	
८४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३३-२३४	९३	वाटर, सूक्ष्म और पर्याप्त अपर्याप्त एकेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०-२४२
			९४	वाटर एकेन्द्रिय और वाटर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र सामान्य लोक आदि	

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
५४	मिथ्याहृष्टि पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिमती तिर्ये चोका वर्तमान और अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र,	२११-२१२	६४	मुप्योमें उपन्न होनेवाले णरकी सासादानसम्यहृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकाका सख्या तथा भाग नहीं हो सकता, इस बातका समुक्तिक आक्षेप और परिहार	२१८-१९
५५	प्रसनालीके बाहिर प्रसकायिक जीवोंके अभाव होनेसे मारणान्तिक और उपपादगत उक्त तिर्येचत्रिकोंका स्पर्शनक्षेत्र सर्व लोक कैसे सम्भव है, इस शंकाका समाधान	२१२	६५	सम्यगिमिथ्याहृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिनेयली गुणस्थान तकके मुप्योका स्पर्शनक्षेत्र	२१०-२१३
५६	सासादानगुणस्थानसे लेकर संयतासयत गुणस्थान तक उक्त पचेन्द्रियत्रिकोंका स्पर्शनक्षेत्र	२१३	६६	मारणातिक समुदागत असयतसम्यहृष्टि मुप्योने तिर्ये ग्लोकाका सख्यातथा भाग कैसे स्पश किया, इस शंकाका समाधान	२११
५७	पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्ये चोका वर्तमानकालिक स्पर्शन क्षेत्र	"	६७	पदायुष्क असयतसम्यहृष्टि मुप्योके उपपादक्षेत्रके निकटनेका विधान	२११-२१२
५८	पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्ये चोका अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा उसके निकालनेका विधान	२१४	६८	सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिक्षेत्रके निकालोका करणसूत्र	२११
५९	अगुलके असख्यातवें भागमात्र अयगाहनापाले लब्धपर्याप्त जीवोंके संख्यात अगुलप्रमाण उत्सेध कैसे सम्भव है, इस शंकाका समाधान	"	६९	सयोगिनेयली जिनोंका स्पर्शन क्षेत्र	२१३
६०	महामच्छकी अयगाहनामें एक बघनसे यद्द वट्कायिक जीवोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है, इस शंकाका समाधान	२१५	७०	लब्धपर्याप्त मुप्योका वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	"
	(मनुष्यगति)	२१६-२२४	७१	लब्धपर्याप्त मुप्योका अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२१४
६१	मनुष्य, मनुष्यपयात और मनुष्यनी मिथ्याहृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शन क्षेत्र	२१६-२१७		(देवगति)	२२४-२४०
६२	उक्त तीनों प्रकारके सासादानसम्यहृष्टि मुप्योका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२१७-२२०	७२	मिथ्याहृष्टि और सासादानसम्यहृष्टि देवोंका वर्तमान कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२२४
६३	मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशवाले,		७३	उक्त देवोंका अतीत और अनागतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका होपपत्तिक निरूपण	२२५
			७४	दिशा और विदिशाका स्वरूप, तथा पूटापक्रमनियमके होनेमें युक्ति	२२६

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
७५	भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यचोंका उपपाद् सम्यग्धी स्पर्शनक्षेत्र साधक पाच राजु क्यों नहीं होता, इस शकाका समाधान	२१६-२१७	८५	सौधर्म और ईशानकल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३४-२३६
७६	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि देवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२७	८६	इन्द्रक, श्रेणीरुद्र और प्रकीर्णक विमानोंके विस्तारका निरूपण	२३४
७७	मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२२८-२२९	८७	सौधर्मादि सर्व कल्पोंके विमानोंकी सत्याका निरूपण	२३५-२३६
७८	उक्त देवोंके अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२९-२३२	८८	सौधर्मकल्पवासी देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान क्यों है, इसका सोपपत्तिक निरूपण	२३६
७९	उपपाद्पद्गत मिथ्यादृष्टि भवनवासी देवोंके स्पर्शनक्षेत्रसम्यग्धी अनेक अपूर्व शकाओंका समाधान	२३०	८९	सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३७-२३८
८०	मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि व्यन्तरदेवोंके सस्था नादि पदोंके स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२३०-२३१	९०	आनतकल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२३८-२३९
८१	उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असत्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें व्याप्त करके स्थित व्यन्तरदेव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके सत्यातवर्गे भागको स्पर्श करते हैं, इस शकाका सयुक्तिक समाधान	२३१	९१	नचत्रैवेयनोंके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३९
८२	व्यन्तरोंके प्रसगोपात्त आवास स्वानोंका निरूपण	२३२	९२	नच अनुदिश और पाच अनुत्तर विमानवासी असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०
८३	उपपाद्गत ज्योतिष्क देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३२-२३३	२ (इन्द्रियमार्गणा)	२४०-२४६	
८४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३३-२३४	९३	वादर, सूक्ष्म और पर्याप्त अपत्यात पकेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०-२४२
			९४	बादर पकेन्द्रिय और वादर पकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र सामान्य लोक आदि	

क्रम नं	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	तीन लोकोके सध्यातवै भाग पर्यो है, इस शकाका समाधान	२४१	१०२	वादर तेजस्कायिक और वायु कायिक जीवोंके वैद्वियिक समुदातसम्बन्धी स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक वर्णन	२४१ २५०
९५	सामान्य पय पर्यात और अपर्यात विकलनय जीवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४२	१०३	वादर पृथिवीकायिक, जल कायिक, अग्निकायिक और धनस्पतिकायिकप्रत्येक शरीर पर्यात जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका तथा तदन्तर्गत शका समाधानोंका सममाण वर्णन	२५० २५१
९६	उक्त तीनों प्रकारके विस्लत्रय जीवोंके अतीतकालिक स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४३	१०४	वादर वायुकायिकपर्यात जीवोंका वर्तमान तथा अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५२ २५३
९७	पचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्यात मिथ्यादृष्टि जीवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४४	१०५	धनस्पतिकायिक, निगेद, तथा उनके वादर, सूक्ष्म और पर्यात अपर्यात जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र	२५३ २५४
९८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिनेचली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्यात जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४५	१०६	प्रसकायिक और प्रसकायिक पर्यात जीवोंके मिथ्यादृष्टि आदि चौदहों गुणस्थानों सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२५४
९९	लब्ध्यपर्यात पचेन्द्रिय जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४६	१०७	प्रसकायिक लब्ध्यपर्यात जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५४ २५५
	३ (कायमार्गणा)	२४७-२५५		४ योगमार्गणा	२५५-२७१
१००	सामान्य तथा वादर पृथिवी कायिक, जलकायिक, अग्नि कायिक, वायुकायिक और वादर धनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, तथा इन्हींके अपर्यात जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मअग्नि कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और इन्हींके पर्यात तथा अपर्यात जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४७	१०८	पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५५ २५६
१०१	उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा क्षेत्र कैसे स्पर्श किया है, यह बतलाते हुए आठों पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाई और मोटाईका निरूपण	२४७-२४८	१०९	सासादनसम्यग्दृष्टि गुण स्थानसे लेकर सयोगिकेचली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण स्थानवर्ती पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५६ २५७
			११०	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायगुणस्थान तक	

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ. नं.
१११	काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र, तथा पृथक् सूत्र द्वारा बतलानेका सयुक्तिक कारण-निरूपण	२५८	१२०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६८-२६९
११२	औदारिककाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५८-२५९	१२१	आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९
११३	औदारिककाययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५९ २६०	१२२	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९-२७०
११४	औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और सयतासयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२६० २६१	१२३	कार्मणकाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७०-२७१
११५	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके औदारिककाययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६१ २६२	१२४	कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र	२७१
११६	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६२ २६३	५ वेदमार्गणा २७१-२७९		
११७	औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शका समाधान पूर्वक सोपपत्तिक निरूपण	२६३-२६४	१२५	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्या-दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२७१ २७२
११८	वैक्रियिककाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२६३-२६४	१२६	स्त्री और पुरुषवेदी सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शका समाधानके साथ निरूपण	२७२ २७४
११९	वैक्रियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६४-२६५	१२७	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७४
१२०	वैक्रियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६५	१२८	स्त्री और पुरुषवेदी सयतासयतोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७४ २७५
१२१	वैक्रियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६५-२६६	१२९	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक स्त्री और पुरुषवेदी जीवोंका तदन्तर्गत	

क्रम नं	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	तीन लोकोंके सख्यातवें भाग क्यों है, इस शकाका समाधान	२४१	१०२	घादर तेजस्कायिक और घायु कायिक जीवोंके वैभ्रियिक समुदातसम्बन्धी स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक वर्णन	२४१-२४२
९५	सामान्य पच पर्याप्त और अपर्याप्त विकलप्रय जीवोंका घत मानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४२	१०३	घादर पृथिवीकायिक, जल कायिक, अग्निकायिक और घनस्पतिकायिकप्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके घर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका तथा तदन्तर्गत शका समाधानोंका सप्रमाण वर्णन	२४०-२४३
९६	उक्त तीनों प्रकारके विकलप्रय जीवोंके अतीतकालिक स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४३	१०४	घादर घायुकायिकपर्याप्त जीवोंका घर्तमान तथा अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५२-२५३
९७	पचेन्द्रिय और पचेन्द्रियपर्याप्त मिध्यादाष्टि जीवोंके घर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४४	१०५	घनस्पतिकायिक, निगोद, तथा उनके घादर, सूक्ष्म और पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र	२४३-२५४
९८	सासादनसम्बन्दाष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४५	१०६	प्रसकायिक और प्रसकायिक पर्याप्त जीवोंके मिध्यादाष्टि आदि चौदहों गुणस्थानों सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२५४
९९	लघ्व्यपर्याप्त पचेन्द्रिय जीवोंका घतमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४६	१०७	प्रसकायिक लघ्व्यपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५४-२५५
	३ (कायमार्गणा)	२४७-२५५		४ योगमार्गणा	२५५-२७१
१००	सामान्य तथा घादर पृथिवी कायिक, जलकायिक, अग्नि कायिक, घायुकायिक और घादर वास्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, तथा इन्हींके अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मअग्नि कायिक, सूक्ष्मघायुकायिक और इन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४७	१०८	पाचों मनोयोगी और पाचों घचनयोगी मिध्यादाष्टि जीवोंका घर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५५-२५६
१०१	उक्त जीवोंने त्रिचैल्लोकसे सख्यातगुणा क्षेत्र कैसे स्पर्श किया है, यह घतलाते हुए आठों पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाई और मोटाईका निरूपण	२४७-२४८	१०९	सासादनसम्बन्दाष्टि गुण स्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्था तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती पाचों मनोयोगी और पाचों घचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५६-२५७
			११०	मिध्यादाष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायगुणस्थान तक	

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	९ दर्शनमार्गणा	२८८-२९०		सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र	
१४९	अशुद्धदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों का वर्तमान और अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२८८		क्रमशः चारह घंटे चौदह, ग्यारह घंटे चौदह और नौ घंटे चौदह भागप्रमाण फ्यों नहीं पाया जाता इस शकाका समाधान	२९२
१५०	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणरूपाय गुणस्थान तकके अशुद्धदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८९	१५८	तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंके तीनों अशुभलेइयाओंका उपपादपदसम्बन्धी क्रमशः ग्यारह घंटे चौदह, दश घंटे चौदह और आठ घंटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र फ्यों नहीं पाया जाता, इस शकाका समाधान	२९२
१५१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपाय गुणस्थान तकके अशुद्धदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"			
१५२	अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"			
१५३	केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९०	१५९	उक्त तीनों अशुभलेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका सयुक्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९३ २९४
	१० लेइयामार्गणा	२९०-३०१			
१५४	कृष्ण, नील और कापोत लेइयावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका सोपपत्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९०	१६०	तेजोलेइयावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९४ २९५
१५५	उक्त तीनों अशुभलेइयावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९१-२९३	१६१	तेजोलेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९५ २९६
१५६	देवोंसे एकेन्द्रियोंमें मारणा न्तिरु समुद्रात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका तीनों अशुभ लेइयासम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र यथाक्रमसे चारह घंटे चौदह भाग, ग्यारह घंटे चौदह भाग और नौ घंटे चौदह भागप्रमाण फ्यों नहीं पाया जाता, इस शकाका समाधान	२९२	१६२	तेजोलेइयावाले सयतासयत जीवोंका वर्तमान और अतीत कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९६ २९७
१५७	कृष्ण, नील और कापोत लेइयावाले तथा एकेन्द्रियोंमें मारणागतिक समुद्रात करनेवाले		१६३	तेजोलेइयावाले प्रमत्त और अप्रमत्त सयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९७
			१६४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तकके पद्मलेइयावाले जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९७-२९८

क्रम नं	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	विशेषताओंके साथ स्पर्शन क्षेत्रका घणन	२७५-२७६	१३९	असयतसम्पगृष्टिगुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायगुणस्थान तकके मति, धृत और अवधि ज्ञानी जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शका समाधानपूर्वक निरूपण	२८३-२४४
१३०	नपुसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके तदन्तर्गत शका समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२७६	१४०	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके मन पर्ययज्ञानी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८४-२८५
१३१	नपुसकवेदी सासादनसम्प गृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतनालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७६-२७७	१४१	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८४-२८५
१३२	सम्पगिमिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुसकवेदी जीवोंका वर्तमान आर अतीतनालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७७-२७९	८	सयममार्गणा	२८५-२८६
१३३	अपगतवेदी जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र	२७९	१४२	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके सयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८५-२८६
	६ (कपायमार्गणा)	२८०-२८१	१४३	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके सामायिज और छेदोपस्थापना सयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८५-२८६
१३४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके चारों कपायगाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०	१४४	प्रमत्त और अप्रमत्तसयत गुण स्थानवर्ती परिहारविशुद्धि सयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१३५	लोभकपायवाले सूक्ष्मसाम्प रायगुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र	"	१४५	उपशामक और क्षपक सूक्ष्म साम्परायसयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१३६	उपदान्तकपाय आदि अन्तिम चार गुणस्थानवाले अकपायी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०-२८१	१४६	अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथाख्यातसयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
	७ (ज्ञानमार्गणा)	२८१-२८५	१४७	सयमासयमगाले जीवोंका तदन्तर्गत शका समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्र निरूपण	"
१३७	मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्पगृष्टि मत्त्वज्ञानी तथा धृताज्ञानी जीवोंके स्पर्शन क्षमका तदन्तर्गत शका समा धानपूर्वक निरूपण	२८१-२८२	१४८	मिथ्यादृष्टि आदि चार गुण स्थानवर्ती असयत जावोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१३८	विभगजानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्पगृष्टि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शका समाधानपूर्वक निरूपण	२८२-२८३			

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ नं.
१८३	असह्य जीर्णोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०७	७	व्यवहारकालके अस्तित्वकी पुष्टिमें पचास्तिकायप्राभृतकी गाथाओंका उल्लेख	३१७
	१४ आहारमार्गणा	३०८-३०९			
१८४	आहारक मिथ्यादृष्टि जीर्णोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०८	८	प्रकृतमें नोआगमभावकालका प्रयोजन और उसके समय, आगली, मुहूर्त, वर्ष आदि स्वरूप होनेका निरूपण	"
१८५	आहारमार्गणाकी अपेक्षा उपपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता, अतः सर्लोक प्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना नहीं घनता है, इस शकाका समाधान	"	९	कालशब्दकी निहकि और उसके पर्यापवाची नामाका निरूपण	३१७-३१८
१८६	सामादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेउली गुणस्थान तकका स्पर्शनक्षेत्र	"	१०	समय, आगली, उद्वासनि इगास स्तोक, ल७, नाली, मुहूर्त और दिवसके कालप्रमाणका सप्रमाण निरूपण	३१८
१८७	अनाहारक जीर्णोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०९	११	दिन और रात्रिसम्बन्धी तीस मुहूर्तोंके नाम	३१८-३१९
	कालानुगम		१२	पक्षका प्रमाण और दिवसोंके नाम	३१९
	१		१३	मास, वर्ष और युग आदिका स्वरूप	३२०
	विषयकी उत्थानिका	३१३-३२३	१४	निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारासे कालका स्वरूप-निरूपण	३२०-३२२
१	धवलधारका मंगलाचरण और प्रतिष्ठा	३१३	१५	यदि काल एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही अवस्थित है, तो उसके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जा सकते हैं, इस शकाका समाधान	३२०
२	कालानुगमकी अपेक्षा निर्देशभेद निरूपण	"	१६	देवलोकमें तो दिन रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहा पर कालका व्यवहार कैसे होता है, इत्यादि कालसम्बन्धी अनेकों शकाओंके अपूर्व समाधान	३२१
३	नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्य काल और भावकाल, इन चार प्रकारके कालनिक्षेपोंका समेद स्वरूप निरूपण	३१३ ३१७	१७	निर्देशके पर्यायवाची नाम बतला कर दोनों प्रकारके निर्देशोंकी सार्थकताका निरूपण	३२२-३२३
४	तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकालका स्वरूप और उसकी पुष्टिमें पचास्तिकायप्राभृत, जीवसमास और आचारागकी गाथाओंका उल्लेख	३१४ ३१६			
५	द्रव्यकालके अस्तित्वको समर्थन करते हुए तदर्थसूत्रका सूत्रप्रमाण निरूपण	३१६			
६	प्रकृत जीवस्थान भादिमें द्रव्यकालके न कहनेका कारण	"			

क्रम नं	विषय	पृ न	क्रम नं	विषय	पृ. नं
१६५	पद्मलेख्यावाले सयतासयत जीवोंका वर्तमान और अतीत अनागतकालसत्रधी स्पर्शनक्षेत्र	२०८	१७५	उपपादपद्मगत असयत क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०२
१६६	पद्मलेख्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंका स्पर्शाक्षेत्र	२१९		असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंका सोपपत्तिक स्पर्शन क्षेत्र-वर्णन	३०२-३०३
१६७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तकके शुद्धलेख्यावाले जीवोंका वर्तमान और अतीत अनागतकाल सत्रधी स्पर्शनक्षेत्र	२१९-३००	१७६	असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान तकके वेदरुसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०३-३०४
१६८	शुद्धलेख्यावाले तिर्यंच, शुद्धलेख्यावाले देवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं, इस शकाका समाधान	३००	१७७	असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान तकके वेदरुसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०४
१६९	उपपादपद्मपरिणत शुद्धलेख्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके तथा मारणान्तिकपद्मपरिणत शुद्धलेख्यावाले सयतासयत जीवोंके देशान छद्म घटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	३००	१७८	असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान वर्ती औपशमिकसम्यक्त्वी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा उसके ओघके समान कहनेमें उपस्थित आपत्तिका परिहार	३०४-३०५
१७०	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके शुद्धलेख्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३००-३०१	१७९	असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपाय गुणस्थान तकके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०५
११	मन्यमार्गीणा	३०१	१८०	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् स्पर्शनक्षेत्र	३०५
१७१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके मन्यजीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०१	१३	सङ्गिमार्गीणा	३०६-३०७
१७२	अमन्य जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०१	१८१	सङ्गी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	३०६-३०७
१२	मन्यस्त्वमार्गीणा	३०२-३०६	१८२	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके सभी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०७
१७३	असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके सम्यक्त्वी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०२			
१७४	असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान				

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
१८३	असह्य जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०७	७	व्यवहारकालके अस्तित्वकी पुष्टिमें पचास्तिकायप्राभृतकी गाथाओंका उल्लेख	३१७
	१४ आहारमार्गणा	३०८-३०९			
१८४	आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०८	८	प्रकृतमें नोआगमभावकालका प्रयोजन और उसके समय, आत्रली, मुहूर्त, वर्ष आदि स्वरूप होनेका निरूपण	"
१८५	आहारमार्गणाकी अपेक्षा उपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता, अत सर्वलोक प्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इस शकाका समाधान	"	९	कालशब्दकी निश्चि - १० उसके पर्यायवाची नामाका निरूपण	३१७-३१८
१८६	सासादनसम्बन्धित गुण-स्थानसे लेकर सयोगिकेपत्नी गुणस्थान तकका स्पर्शनक्षेत्र	"	१०	समय, आत्रली, उद्वासनि श्रास स्तोक, लय, नाली, मुहूर्त और दिवसके कालप्रमाणका सप्रमाण निरूपण	३१८
१८७	अनाहारक जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	३०९	११	दिन और रात्रिसम्बन्धी तीस मुहूर्तोंके नाम	३१८-३१९
	कालानुगम		१२	पक्षका प्रमाण और दिवसोंके नाम	३१९
	१		१३	मास, वर्ष और युग आदिका स्वरूप	३२०
	विषयकी उत्थानिका	३१३-३२३	१४	निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छद् अनुयोगद्वारासे कालका स्वरूप-निरूपण	३२०-३२२
१	धवलानारका मंगलाचरण और प्रतिष्ठा	३१३	१५	यदि काल एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही अवस्थित है, तो उसके द्वारा छद् द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जा सकते हैं, इस शकाका समाधान	३२०
२	कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद निरूपण	"	१६	देवलोकमें तो दिन रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहा पर कालका व्यवहार कैसे होता है, इत्यादि कालसम्बन्धी अनेकों शकाओंके अपूर्व समाधान	३२१
३	नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्य काल और भावकाल, इन चार प्रकारके कालनिर्देशोंका समेद स्वरूप निरूपण	३१३ ३१७	१७	निर्देशके पर्यायवाची नाम घतला कर दोनों प्रकारके निर्देशोंकी सार्थकताका निरूपण	३२२-३२३
४	तद्ब्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य कालका स्वरूप और उसकी पुष्टिमें पचास्तिकायप्राभृत, जीव-समास और आचारागकी गाथाओंका उल्लेख	३१४ ३१६			
५	द्रव्यकालके अस्तित्वको समर्थन करते हुए तत्त्वार्थसूत्रका सूत्रप्रमाण निरूपण	३१६			
६	प्रकृत जीवस्थान आदिमें द्रव्य-कालके न कहनेका कारण	"			

क्रम न	विषय	पृ नं	क्रम न	विषय	पृ न
	२		२६	पुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका	
	औषधे कालानुगमनिर्देश	३२३-३५७		बोधक यत्र	३३०
१८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना		२७	अगृहीत, मिश्र और गृहीत	
	जीवोंकी अपेक्षा कालनिरूपण	३२३		समर्था तीनों प्रकारके कालोंका	
१९	एक जीवकी अपेक्षा कालके			सकारण अल्पबहुत्व निरूपण	३३१
	तीन भेदोंका सदृष्टान्त उल्लेख,		२८	नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके समान ही	
	यंत्र प्रकृतमें सादि सात			कर्मपुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका	
	कालकी अपेक्षा जघन्यकालका			उल्लेख और तत्सम्बन्धी	
	निरूपण	३२४		विशेषताओंका निरूपण	३३२
२०	सासादनसम्बन्धि जीवको भी		२९	क्षेत्र, काल, भय और भाव	
	मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुँचा			पुद्गलपरिवर्तनोंका सूत्रगाथाओं	
	कर उसका जघन्यकाल क्यों			द्वारा स्वरूप निरूपण	३३३ ३३४
	नहीं घतलाया, इस शकाका		३०	एक जीवकी अपेक्षा पावों परि	
	समाधान	३२५		वतनवारोंका अल्पबहुत्व	३३५
२१	एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट		३१	पावों परिवर्तनोंका कालसमर्था	
	सादि सात मिथ्यात्वकालका			अल्पबहुत्व	"
	निरूपण	"	३२	सादि सान्त मिथ्यात्वके कुछ	
२२	अर्धपुद्गलपरिवर्तनका स्वरूप			कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालका	
	घतलाते हुए पात्र प्रकारके			निर्दर्शन	३३५
	परिवर्तनोंका नामोल्लेख कर		३३	सम्यक्त्वकी उत्पात्ति और मिथ्या	
	द्रव्यपरिवर्तनका विशद स्वरूप	३२५ ३३६		त्वका विनाश, इन दोनों विभिन्न	
	निरूपण			कार्योंका एक समय कैसे हो	
२३	यदि जीवने आज तक भी			सकता है, इस शकाका समाधान	"
	समस्त पुद्गल भोगकर नहीं		३४	मिथ्यात्व नाम पर्यायका है, वह	
	छोटे हैं, तो 'कने वि पागला छुउ'			पर्याय उत्पाद् विनाशात्मक है,	
	इत्यादि सूत्र-गाथाके साथ			क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव	
	विरोध क्यों नहीं होगा, इस			है। और यदि उसकी स्थिति	
	शकाका समाधान	३२६		भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके	
२४	प्रथम समयमें गृहान पुद्गल पुत्र			द्रव्यपना प्राप्त होता है, इस	
	द्वितीय समयमें निर्जीण हो,			शकाका समाधान	३३६ ३३७
	अकर्मरूप अयस्याको धारण कर,		३५	अनन्तका स्वरूप और उसके	
	पुन तृतीय समयमें उसी जीवमें			प्रमाणमें आर्पणगाथाका उल्लेख	३३८
	नाकर्मपर्यायसे परिणत हो		३६	ध्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन	
	जाता है यह कैसे जाता, इस			आदि राशियोंके अनन्तपना	
	शकाका समाधान	३२७		किस अपेक्षासे है, इसका स्पष्टी	
२५	पुद्गलपरिवर्तनकालके तीन			करण	"
	प्रकारोंका स्वरूप	३२८	३७	अक्षय अनन्त राशिका विधेचन	३३९

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ नं.
३८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य कालनिरूपण	३३९		तत्सम्यग्धी अनेकों शकाओंका समाधान	३४५-३४६
३९	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका सयुक्तिक कालदर्शन	३४०	५०	एक जीवकी अपेक्षा असयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका सनिदर्शन निरूपण	३४६ ३४७
४०	एक जीवकी अपेक्षा सासादन सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका निरूपण	३४१	५१	एक जीवकी अपेक्षा असयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शका समाधानपूर्वक सोपपत्तिक निरूपण	३४७-३४८
४१	उपशमसम्यक्कालके अधिक माननेमें क्या दोष है, इस शकाका समाधान करते हुए सासादनगुणस्थानके कालका सप्रमाण निरूपण	"	५२	सयतासयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३४८
४२	एकजीवकी अपेक्षा सासादन सम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सप्रमाण निरूपण	३४२	५३	एक जीवकी अपेक्षा सयतासय-तोंका जघन्य काल	३४९
४३	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल	३४२ ३४३	५४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सयमा सयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शकाका समाधान	"
४४	अप्रमत्तसयत जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होते, इस शकाका समाधान	३४३	५५	एक जीवकी अपेक्षा सयता सयतोंका उत्कृष्ट काल	३५०
४५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे सयमको, अथवा सधमासयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शकाका समाधान	"	५६	प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल-निरूपण	३५०
४६	नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल	३४४	५७	एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंके जघन्य कालका सोपपत्तिक निरूपण	३५० ३५१
४७	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शका समाधानपूर्वक निरूपण	"	५८	एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंका उत्कृष्ट काल	३५१
४८	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक प्रतिपादन	३४५	५९	चारों उपशमकोंका नाना जीवोंकी जघन्य काल	३५२
४९	असयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, तथा		६०	अप्रमत्तसयतको अपूर्वकरण गुणस्थानमें ले जाकर और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरण गुणस्थानके एक समयकी रूपाणा क्यों नहीं की, इस शकाका समाधान	"
			६१	नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों उपशमकोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण	३५२ ३५३

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
	२		२६	पुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका	
	औषसे कालानुगमनिर्देश	३२३-३५७		वाचक यत्र	३३०
१८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना		२७	वागृहीत, मिश्र और गृहीत	
	जीवोंकी अपेक्षा कालनिरूपण	३२३		समर्थी तीनों प्रकारके कालोंका	३३१
१९	एक जीवकी अपेक्षा कालके		२८	सकारण अल्पप्रहुत्व निरूपण	
	तीन भेदोंका सदृशान्त उल्लेख,			२८ नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके समान ही	
	और प्रकृतमें सादि सात			कर्मपुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका	
	कालकी अपेक्षा जवयकालका			उल्लेख और तत्समर्थी	
	निरूपण	३२४		विक्षेपताओंका निरूपण	३३२
२०	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवको भी		२९	क्षेत्र, काल, भव और भाग	
	मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचा			पुद्गलपरिवर्तनोंका सूत्रगाथाओं	३३३ ३३४
	कर उसका जवयकाल कर्मा			द्वारा स्वरूप निरूपण	
	नहीं बतलाया, इस शकाका		३०	एक जीवकी अपेक्षा पाचों परि	
	समाधान	३२५		वर्तनधारोंका अल्पप्रहुत्व	३३४
२१	एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट		३१	पाचों परिवर्तनोंका कालसमर्थी	
	सादि सात मिथ्यात्वकालका			अल्पप्रहुत्व	"
	निरूपण	"	३२	सादि सान्त मिथ्यात्वके कुछ	
२२	अर्धपुद्गलपरिवर्तनका स्वरूप			कर्म अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालका	३३५
	बतलाते हुए पांच प्रकारके			निर्देशन	
	परिवर्तनोंका नामालेख कर		३३	सम्यक्त्वकी उत्पत्ति और मिथ्या	
	द्रव्यपरिवर्तनका विशद स्वरूप	३२५ ३३६		त्वका विनाश, इन दोनों विभिन्न	
	निरूपण			कार्योंका एक समय कैसे हो	
२३	यदि जीवन आज तक भी			सकता है, इस शकाका समाधान	"
	समस्त पुद्गल भोगकर नहीं		३४	मिथ्यात्व नाम पर्यायका है, यह	
	छेडे है, तो 'सखे वि पोगला लु'			पर्याय उत्पाद विनाश एक है,	
	इत्यादि सूत्र गाथाके साथ			क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव	
	विरोध क्यों नहीं होगा, इस			है। और यदि उसकी स्थिति	
	शकाका समाधान	३२६		भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके	
२४	प्रथम समयमें गृहीत पुद्गल पुत्र			द्रव्यपत्ता प्राप्त होता है, इस	३३६ ३३७
	द्वितीय समयमें निर्जीण हो,			शकाका समाधान	
	अकर्मरूप अस्वामी धारण कर,		३५	अनन्तता स्वरूप और उसके	
	पुनः तृतीय समयमें उसी जीवमें			प्रमाणमें आर्पेगाथाका उल्लेख	३३८
	नोकर्मपयायल परिणत हो		३६	व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन	
	जाता है, यह कैसे जाना, इस			आदि राशियोंके अनन्तपत्ता	
	शकाका समाधान	३२७		किस अपेक्षासे है, इसका स्पष्टी	
२५	पुद्गलपरिवर्तनकालके तीन			करण	"
	प्रकारोंका स्वरूप	३२८	३७	अक्षय अनन्त राशिका विवेचन	३३९

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ नं
३८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य कालनिरूपण			तत्सम्बन्धी अनेकों उदाहरण समाधान	३३३
३९	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका सयुक्तिक कालवर्षण	३३९	५०	एक जीवकी अपेक्षा अनेकों सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य उत्कृष्ट सतिदर्शन निरूपण	३४०
४०	एक जीवकी अपेक्षा सासादन सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका निरूपण		५१	एक जीवकी अपेक्षा अनेकों सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य उत्कृष्ट तदन्तर्गत शका-समाधानके सोपपत्तिक निरूपण	३४१
४१	उपशमसम्यक्त्वकालके अधिक माननेमें क्या दोष है, इस शकाका समाधान करते हुए सासादनगुणस्थानके कालका सप्रमाण निरूपण		५२	सयतासयत जीवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३४२
४२	एकजीवकी अपेक्षा सासादन सम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सप्रमाण निरूपण	३४२	५३	एक जीवकी अपेक्षा अनेकों तोंका जघन्य काल	३४३
४३	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल	३४२ ३४३	५४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सयमको क्यों नहीं प्राप्त है इस शकाका समाधान	३४३
४४	अप्रमत्तसयत जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होते, इस शकाका समाधान	३४३	५५	एक जीवकी अपेक्षा अनेकों सयतोंका उत्कृष्ट काल	३४४
४५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पाँछे सयमको, अथवा सयमासयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शकाका समाधान		५६	प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंके नाना जीवोंके अनेकों निरूपण	३४४
४६	नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल		५७	एक जीवकी अपेक्षा अनेकों अप्रमत्तसयतोंके सोपपत्तिक निरूपण	३४५
४७	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शका-समाधानपूर्वक निरूपण		५८	एक जीवकी अपेक्षा अनेकों अप्रमत्तसयतोंके निरूपण	३४५
४८	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक प्रतिपादन	३४५	५९	चारों उपशमसयतोंके जीवोंकी जघन्य काल	३४५
४९	असयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, तथा		६०	अप्रमत्तसयतोंके गुणस्थानमें द्वितीय अपूर्वकारण समयकी इस शकाका समाधान	३४५

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम नं	विषय	पृ न	
६२	एक जीवकी अपेक्षा चारों उप शामकोंका जघन्य काल	३५३ ३५४		और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सौपपत्तिक निरूपण	३६१-३६३	
६३	एक जीवकी अपेक्षा चारों उप शामकोंका उत्कृष्ट काल	३५४		(तिर्यचगति)	३६३ ७२	
६४	चारों क्षपक और अयोगि- केवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल	३५४-३५५	७४	तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल वर्णन	३५३	
६५	उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५५	७५	एक जीवकी अपेक्षा तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६३-३६४	
६६	अयोगिकेवली जिनका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५६ ३५७	७६	'असंयत पुद्गलपीरवतन' इस घचनसे अनन्तताकी उपलब्धि होती है, अतः सूत्रमेंसे अनन्त पद क्यों न निकाल दिया जाय, इस शकाका समाधान	३६४	
३ आदेशसे काल प्रमाण-निर्देश १ गतिमार्गणा (नरकगति)			३५७-३६३	७७	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य ग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका काल प्रमाण	"
६७	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल निरूपण	३५७	७८	असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६५-३६६	
६८	एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५७-३५८	७९	संयतासंयत तिर्यचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६६	
६९	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य ग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३५८	८०	पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६७-३६९	
७०	असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५८ ३५९	८१	पचानवे पूर्वकोटियोंकी पूर्व कोटीपृथक्त्वसहा कैसे हो सकती है, इस शकाका समाधान	३६८	
७१	सातों पृथिवियोंके नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका प्रतिपादन	३६० ३६१	८२	लघ्वपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी सभ वता असंभवताका विचार	३६९	
७२	सातों पृथिवियोंके सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या दृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३६१	८३	उक्त तीनों प्रकारके सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या- दृष्टि तिर्यचोंका काल वर्णन		
७३	सातों पृथिवियोंके असंयत सम्यग्दृष्टि नारकियोंका नाना					

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ नं.
८४	उक्त तीनों प्रकारके असयत-सम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६९-३७१	९४	सासादन और असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका काल	३८१
८५	उक्त तीनों प्रकारके सयता-सयत तिर्यचोंका काल	३७१	९५	असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	"
८६	पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७१-३७२	९६	भवनवासियोंसे लगाकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८२-३८४
	(मनुष्यगति)	३७२-३८०	९७	घातायुक्त सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवोंके कालमें विशेषता	३८३
८७	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण	३७२-३७३	९८	उक्त देवोंकी स्थिति षटलनेवाले कालसूत्रका और त्रिलोक प्रशस्तिसूत्रका विरोध उद्गावन कर उसका परिहार	३८४
८८	उक्त तीनों प्रकारके सासादन सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७४ ३७५	९९	भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल	३८५
८९	उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७५-३७६	१००	आनतकल्पसे लेकर नवप्रैवेयकों तकके मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	३८५ ३८६
९०	उक्त तीनों प्रकारके असयत सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७६-३७८	१०१	नौ अनुदिश और विजयादि चार अनुत्तर विमानोंके असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८६-३८७
९१	उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका सयतासयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिके प्रली तक काल निरूपण	३७८	१०२	सर्वाथसिद्धि विमानवासी असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल निरूपण	३८७
९२	लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७९ ३८०		२ इन्द्रियमार्गणा	३८८-४०१
	(देवगति)	३८०-३८७	१०३	पकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८८
९३	मिथ्यादृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८०			

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
१०४	घादर एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८८ ३८९	११२	जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९३ ३९४
१०५	'कर्मस्थितिको आवलीके असख्यातवें भागसे गुणा करने पर घादरस्थिति होती है,' इस परिकर्म वचनके साथ बतलाये गये घादर एकेन्द्रियों के एक जीवगत उत्कृष्ट कालका विरोध क्यों नहीं होगा, इस शकाका समाधान	३९०	११३	सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तदन्तर्गत शका समाधान पूर्वक निरूपण	३९४ ३९५
१०६	घादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका नाना और एकजीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	"	११४	जर कि एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके आयुकर्मकी स्थिति सरयात आवली प्रमाण होती है, तब सख्यात चार उनमें ही पुन पुन उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता, इस शकाका समाधान	३९५
१०७	क्षुद्रभवग्रहणका काल सरयात आवलीप्रमाण होता है, इस बातका सप्रमाण निरूपण	३९० ३९४	११५	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपयाप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तदन्तर्गत अनेकों शका समाधानोंके साथ निरूपण	३९६ ३९७
१०८	अन्तमुहूर्त भी सख्यात आवली प्रमाण होता है, अत अन्त मुहूर्त और क्षुद्रभवके कालमें कोई भेद नहीं मानना चाहिए, इस शकाका समाधान	३९२	११६	सामान्य विकलत्रय और पर्याप्तक विकलत्रय जीवोंके एक ओर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका तत्सम्बन्धी अनेक शका-समाधानोंके साथ निरूपण	३९७-३९८
१०९	घादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असरयात वर्षप्रमाण क्यों नहीं होती है, इस शकाका समाधान	३९२	११७	लब्धपर्याप्तक विकलत्रय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल, वा तत्सम्बन्धी शका समाधान	३९८ ३९९
११०	यदि कोई जीव घादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट सरयात चार या उसके सख्यातवें भागप्रमाण चार उत्पन्न हो, तो असख्यात वर्षप्रमाण घादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति क्यों नहीं हो जायगी, इस शकाका समाधान	३९३	११८	पचेन्द्रिय और पचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना	
१११	घादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंका नाना और एक				

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ नं.
	और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९९ ४००		कायिक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल	४०५ ४०६
११९	सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेजली गुणस्थान तक दोनों प्रकारके पचेन्द्रिय जीवोंका कालवर्णन	४००	१२७	घनस्पतिकायिक जीवोंका काल	४०६
१२०	पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंका काल	४०० ४०१	१२८	निगोद्विया जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०६ ४०७
	३ कायमार्गणा	४०१ ४०९	१२९	यादरनिगोद जीवोंका काल	४०७
१२१	पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४०१ ४०२	१३०	प्रसकायिक और प्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका तत्सम्बन्धी शका समाधान-पूर्वक निरूपण	४०७ ४०८
१२२	यादरपृथिवीकायिक, यादर-जलकायिक, यादरअग्निकायिक यादरवायुकायिक और यादर-घनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०२ ४०३	१३१	सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थान से लगाकर अयोगिकेजली गुणस्थान तकके प्रसकायिक और प्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका काल	४०८
१२३	कर्मास्थितिसे किस कर्मकी स्थितिका अभिप्राय है, दर्शन मोहनीयकर्मकी स्थितिकी प्रधानता क्यों है, इन शकाओंका समाधान	४०३	१३२	प्रसकायिक लब्धपर्याप्तक जीवोंका काल	४०८ ४०९
१२४	उक्त पांचों प्रकारके पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका पृथक् पृथक् निरूपण	४०३ ४०४		४ योगमार्गणा	४०९-४३७
१२५	उक्त पांचों प्रकारके लब्ध पर्याप्त स्थावर जीवोंका नामा और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०५	१३३	पांचों मनोयोगी और पांचों घनयोगी मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसयत और सयोगिकेजली गुणस्थानवर्ती जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल निरूपण	४०९
१२६	सूक्ष्म तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक पांचों स्थावर-		१३४	एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंके जघन्य कालका योग-परिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और घ्याघात, इन चारके द्वारा सोदाहरण काल निरूपण	४०९-४१२
			१३५	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका वर्णन	४१२

क्रम नं	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
१३६	पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४१२ ४१३	१४६	औदारिकमिश्रकाययोगी असत्यसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२१ ४२३
१३७	उक्त योगवाले सम्यग्मिथ्या दृष्टि जीवोंका नाग जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१३ ४१४	१४७	औदारिकमिश्रकाययोगी सयो गिकेवलीके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तत्सम्यग्धी अनेकों शकाओंके समाधान पूर्वक निरूपण	४२३ ४२४
१३८	पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी चारों उपशामकों और चारों क्षपकोंना नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१४ ४१५	१४८	वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि और असत्यसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४२५ ४२६
१३९	एक समयसम्यग्धी विकल्पोंका गाथासूत्रद्वारा निरूपण	४१५	१४९	वैक्रियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४२६
१४०	काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१५ ४१७	१५०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मि-थ्यादृष्टि और असत्यसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण तदन्तर्गत शका समाधानपूर्वक निरूपण	४२६ ४२९
१४१	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुण स्थान तकके काययोगी जीवोंका काल	४१७	१५१	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासा दनसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२९ ४३०
१४२	औदारिककाययोगी मिथ्या दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवसम्यग्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१७ ४१८	१५२	आहारककाययोगी प्रमत्त सयतोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३१ ४३२
१४३	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुण स्थान तकके औदारिककाय योगी जीवोंका काल	४१८	१५३	आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्त-सयतोंका नाना और एक	
१४४	औदारिकमिश्रकाययोगी मि थ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१८ ४१९			
१४५	औदारिकमिश्रकाययोगी सासा दनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४२० ४२१			

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम नं	विषय	पृ नं
	जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३२ ४३३	१६३	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके पुरुषवेदी जीवोंका काल	४४१
१५४	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३३ ४३५	१६४	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४१ ४४२
१५५	तीन विग्रहवाली गति किन जीवोंके होती है, यह बतला कर तीन विग्रह करनेकी दिशाका निरूपण	४३४ ४३५	१६५	नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४४२
१५६	कार्मणकाययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३५ ४३६	१६६	नपुंसकवेदी असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४२ ४४३
१५७	कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलीका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३६ ४३७	१६७	सयतासयत गुणस्थानसे लेकर धनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुंसकवेदी जीवोंका काल	४४३
	५ वेदमार्गणा	४३७-४४४	१६८	अपगतवेदी जीवोंका काल	४४४
१५८	स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३७		६ कपायमार्गणा	४४४-४४८
१५९	स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४३८	१६९	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान तकके चारों कपायवाले जीवोंके फालका कपायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा निरूपण	४४४ ४४५
१६०	स्त्रीवेदी असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३८ ४३९	१७०	किस कपायसे मरा हुआ जीव किस गतिमें उत्पन्न होता है, इस बातका विवेचन	४४५
१६१	सयतासयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके स्त्रीवेदी जीवोंका सोदाहरण काल	४३९ ४४०	१७१	क्रोध, मान और माया, इन तीन कपायवाले आठवें और नवें गुणस्थानधर्ती उपशामकों का। तथा लोभकपायवाले आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानधर्ती उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४६ ४४७
१६२	पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४० ४४१			

क्रम न	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ न
१७२	उक्त कपाय तथा उक्त गुण स्थानवाले क्षपक जीवोंका नाना ओर एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४७ ४४८	१८३	परिहारविशुद्धिसयमी प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका काल	४५२
१७३	कपायरहित जीवोंका काल निरूपण	४४८	१८४	सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसयतों का काल	"
७ ज्ञानमार्गणा		४४८-४५१	१८५	अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहारविशुद्धिसयतों का काल	४५३
१७४	मत्स्यज्ञानी और धृताज्ञानी मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४४८ ४४९	१८६	सयतासयत जीवोंका काल	"
१७५	विभगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों का नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४९ ४५०	१८७	असयत जीवोंका काल	"
१७६	विभगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका काल	४५०	९ दर्शनमार्गणा		४५३-४५५
१७७	असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके मतिज्ञानी, धृतज्ञानी और अयधिज्ञानी जीवोंका काल	४५० ४५१	१८८	चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४५३ ४५४
१७८	अयधिज्ञानी संयतासयतोंके एक जीवसम्वन्धी उत्कृष्ट कालकी विशेषताका निरूपण	"	१८९	निर्वृत्यपर्याप्तकोंके समान लब्ध्यपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं होता, इस शकाका समाधान	४५४
१७९	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका काल	४५१	१९०	सासादनसम्यग्दृष्टि गुण स्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका काल	"
१८०	केवलज्ञानियोंका काल निरूपण	"	१९१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके अचक्षुदर्शनी जीवोंका काल	४५५
८ सयममार्गणा		४५१ ४५३	१९२	अयधिदर्शनी जीवोंका काल	"
१८१	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके सयतोंका काल	४५१ ४५२	१९३	केवलदर्शनी जीवोंका काल	"
१८२	प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंका काल	४५२	१० लेश्यामार्गणा		४५५ ४७३
			१९४	कृष्ण, नील और कापोतलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण, तथा तत्सम्वन्धी शकाओंका सयुक्तिक समाधान	४५५ ४५८
			१९५	तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४५८

क्रम नं	विषय	पृ नं	क्रम न	विषय	पृ न
१९६	तीनों अशुभ लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल	४५९		स्थानोंके तेज और पद्मलेश्यावाले जीवोंकी लेश्या और गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही, इस शंकाका समाधान	४६७-४६८
१९७	तीनों अशुभ लेश्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण, तथा तदन्तर्गत अनेकों शंकाओंका सप्रमाण समाधान	४५९ ४६२	२०५	तेज और पद्मलेश्याके समान कापोत और नील लेश्याओंका भी एक समय पाया जाता है, फिर उसे क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	४६८
१९८	तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि तथा असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४६२ ४६५	२०६	तेज या पद्मलेश्याके कालमें एक समय शेष रहनेपर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले सयमासंयमको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे प्रमत्तसयत भी सयमासंयम गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	४७०
१९९	मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेश्याकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अढाई सागरोपम प्रमाण क्यों नहीं होती, इस शंकाका, तथा इसीसे सम्यग्दृष्ट अन्त्य कई शंकाओंका अपूर्व समाधान	४६३ ४६५	२०७	पद्मलेश्याके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसयत उस लेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यासे परिणत होकर दूसरे समयमें अप्रमत्तसयत क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४६९ ४७०
२००	तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासाधनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४६५	२०८	उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानोंको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता, इस शंकाका समाधान	४७०
२०१	उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल	४६५ ४६६	२०९	तेज और पद्मलेश्यावाले सयतासयतादि तीन गुणस्थानवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल	४७१
२०२	उक्त दोनों लेश्यावाले सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	४६६	२१०	शुद्धलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४७१ ४७२
२०३	उक्त जीवोंके एक जीवकी अपेक्षा लेश्यापरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरण, इन तीनोंके द्वारा जघन्य कालका निरूपण	४६६ ४७१			
२०४	मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुण-				

प्रमत्त	विषय	पृ न	कम न	विषय	पृ न
२११	शुद्धलेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४७२-४७३		केवली गुणस्थान तकके भव्य जीवोंका काल	४८०
२१२	शुद्धलेख्यावाले सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्त सयतोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा लेख्यापरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरण की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट फालोंका निरूपण	४७३-४७५		१२ सम्पक्त्तमार्गणा	४८१-४८५
२१३	तेज, पद्म और शुद्ध लेख्या सम्यग्धी एक एक समयके भर्गोंका निरूपण	४७५		२२० सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल	४८१
२१४	शुद्ध लेख्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षयक और संयोगिकेवलीका काल वर्णन	४७६		२२१ असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान तकके घेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	"
	११ भव्यमार्गणा	४७६-४८०		२२२ असयत और सयतासयत गुणस्थानचर्ती असयतसम्यग्दृष्टि और सयतासयत जीवों का नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८२
२१५	भयसिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल			२२३ उक्त सम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८३
२१६	मिथ्यावके अनादि और अहं विम होनेसे उसका विनाश नहीं होना चाहिए, कारण रहित वस्तुका विनाश नहीं होता अतः अज्ञान या कर्म बन्धका विनाश नहीं होना चाहिए इत्यादि अनेक अप्रुव शकाओंका अद्वितीय समाधान			२२४ प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तकके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सोदाहरण निरूपण	४८३-४८४
२१७	मोक्षको जानेके कारण निरन्तर ध्ययशील भव्य राशिका विच्छेद क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान			२२५ सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल वर्णन	४८४-४८५
२१८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगि-			१३ सङ्गिमार्गणा	४८५-४८६
				२२६ सबी मिथ्यादृष्टि जीवोंका	

क्रम नं	विषय	पृ न	क्रम न	विषय	पृ नं.
	नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८५		नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६-४८७
२२७	सासादनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके सक्षी जीवोंका काल	"	२३०	सासादन गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके आहारक जीवोंका काल	४८७
२२८	असक्षी जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६	२३१	अनाहारक मिथ्यादृष्टि, सासा दनसम्यग्दृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंका काल	४८७-४८८
	१४ आहारमार्गणा		२३२	अनाहारक अयोगिकेवलीका काल	४८८
२२९	आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका				

शुद्धिपत्र

(पुस्तक १)

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		(हिंदी)	
६३	७	ज्ञानानरणादि आठ कर्मोंके	ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंके
२६४	१६	कार्यमार्गणा	कायमार्गणा
३७६	१४	छेदोपस्थापना	सूक्ष्मसाम्पराय
"	१८	"	"
३८४	"	अवधिज्ञान	अवधिदर्शन

(पुस्तक २)

४४७	१२	क्षीण, सज्ञा	क्षीणसज्ञा,
४५१	२०	और कार्मणकाययोग	और वैक्रियिककाययोग
४७३	१	सम्यक्त्व,	छद्द सम्यक्त्व,
४८१	८	आहारक, अनाहारक,	आहारक,
४८८	१४	द्रव्यसे कापोत-	आदिने दो दर्शन, द्रव्यसे कापोत-
५४०	१०	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके आलाप

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध
५७७	६	सञ्चिक,
६३०	८	एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,
६४८	६	सञ्चिक,
७१५	३	आदिके तीन दर्शन
७२९	१३	तथा अज्ञापरस्थान भी है,
७३५	८	एगारह जोग,
"	१५	ग्यारह,

शुद्ध

असञ्चिक,
एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,
ओपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, सञ्चिक,
आदिके दो दर्शन,
तथा अज्ञापरस्थान भी है,
एगारह जोग, अजोगो चि अरिथः
ग्यारह योग और अयोगरूप भी स्थान है,

(आलापौका)

पृष्ठ	यत्र न	खाना नाम	अशुद्ध
४२१	१	सज्ञा योग	× ×
		लेख्या	×
		सञ्चि०	×
४२९	१०	आहा०	१
"	११	"	२
४३१	१२	"	१
४३८	२१	गति	१
"	"	कपाय	१
४४७	२६	सज्ञा	१
४५२	३२	जीव०	१ स अ
४५६	३८	लेख्या	मा ३ अशु
४५८	४०	ज्ञान	९
४६०	४४	पर्याप्ति	६
५०३	१०१	योग	×
५१४	११४	"	×
५६९	१८३	सञ्चि०	१ स०
५७२	१८७	काय	१-त्रस, विना
"	"	सञ्चि०	१ स०
५८४	२०३	प्राण	७, ७,
६१२	२१४	योग	×

शुद्ध, या जो होना चाहिए

क्षीणसज्ञा
अयोगी,
अलेख्य
अनुभव
२
१
२
१ मनुष्यगति
१ लोभ
० क्षीणसज्ञा
१ स, प
मा० १ कापोत
६
६ अप०
अयोग
" ,
१ असे०
५ त्रस विना
१ अस०
७, ७, २
अयोग

पंक्ति	यंत्र न	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध
६१७	२२८	दर्शन	१ चक्षु०	अचक्षु०
६२२	२३५	आहा०	१ आहा०	२ आहा० अना०
६२३	२३६	"	२ आहा० अना० अनु०	२ आहा० अना०
६३१	२४५	दर्शन	२ चक्षु०	२ चक्षु० अचक्षु०
६३४	२४९	सज्ञा	X	क्षीणसज्ञा
६४०	२५५	उपयो०	२ साक्त्त० अना० यु० उ०	२ साका० अना०
६५५	२७४	"	२ साक्त्त० अना०	२ साका० अना० यु० उ०
७१९	३५८	जीव	५ अ०	६ अ०
७३५	३७७	योग	X	अयोग
७४३	३८७	गुण०	९	१२
७५४	४००	गति	१	३
८०८	४७७	प्राण	१०	१०, ४, १
८०९	४७८	सयम०	४ अस० सामा० छेदो० परि०	४ अस० सामा० छेदो० यया०
८३४	५१४	भव्य०	१ म०	२ म० अ०
"	"	सज्ञि०	१ स०	१ अस०
८३५	५१६	"	"	"
८५१	५३९	प्राण	X	अतीतप्राण

(पुस्तक ३)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९	३ (ख-क)		(क-ख)
१०९	अन्तिम	३३५१	३३५१
१५३	१२	१२८	१२८
"	"	"	"
२७७	२	-गुणाद्दृश पदस्त ।	-गुणाद्दृवाप तस्त - ।
२७८	८	सूच्यगुलके प्रथम वर्गमूलको	सूच्यगुलको उसके प्रथम वर्गमूलके
		वर्गमूलसे	
२९८	४	अप्रत =	अप्रमत्त



सिरि-भगवंत-पुष्कदंत-भूदघलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि वीरसेणाइरिय विरडय-घवला-टीका समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

खेत्ताणुगमो

लोयालोयपयास गोदमथेरं पुणो जिणं वीरं ।

णमिळ्णं खेत्तसुत्त जहोवएसं पयासेमो ॥

केवलज्ञानरूप सूर्यसे लोक और अलोकके प्रकाशक अर्थात् सर्वज्ञ, गौतम अर्थात् उत्तमवार्णाके स्थविर^१ अर्थात् विधाता (दिव्यध्वनिके प्रणेता), और जिन अर्थात् धीतराग, ऐसे त्रिभिध विशेषणविशिष्ट श्रीवीर भगवान्को। अथवा, द्वादशाग ग्रन्थ-रचनासे प्रकाशित किया है लोक और अलोकको जिन्होंने ऐसे, तथा जिन अर्थात् काम क्रोधादि भाव शत्रुओंके जीतनेवाले, और वीर^२ अर्थात् विशेषरूपसे जो प्राणियोंको मोक्षके लिए प्रेरणा करते हैं, या मोक्षमार्गकी ओर चलाते हैं, ऐसे गौतमस्थविर श्रीइन्द्रभूति गणधरको नमस्कार करके क्षेत्रसूत्रको अर्थात् क्षेप्रानु-योगद्वारसम्बन्धी सूत्रोंके अर्थको जैसा उपदेश अर्थरूपसे दिव्यध्वनिके द्वारा श्रीवीर भगवान्ने दिया और ग्रन्थरूपसे श्री गौतम गणधरने दिया, उसीके अनुसार हम (वीरसेन) भी प्रका-शित करते हैं ।

१ म १ प्रती ' गमियुण ' इति पाठ ।

२ ' धेरो विही विरिचो ' पा ल ना २ धेरो के, धेरो तथा दे. ना मा ५, २९ स्थविरः . .
घाता विधाता हे को २, १२५-१२६

३ विशेषेण ईरयति_मोक्ष प्रति प्रेरयति गमयति वा प्राणिन इति वीर । (अग्नि, रा. वीर)

खेत्तानुगमेण दुविहो णिहेसो, ओघेण आदेसेण य' ॥ १ ॥

किंफलो खेत्तानुगमेण अयोगहारस्म अयारो ? उच्चदे । त जहाँ- संताणिओगद्दारादे अस्थित्तेणाअगयाण दव्याणिओगहारे अवगयपमाणेण चोइसजीअसमासाण खेत्तपमाणो- वगमफलो । अथवा अणतो जीअरासी असखेज्जपएसिए लोगागास किं सम्मादि, ण सम्मादि चि संदेहेण घुलतस्स सिस्सस्स मदेहणिणासणट्ठो वा खेत्तानुगमेण आदेसेण अयारो । एत्थ खेत्त णिक्खिदिब्ब । णिक्खेत्तो चि किं ? सशये त्रिपर्यये अनध्यवसाये वा स्थित तेभ्योऽपसार्थे निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः^१ । अथवा बाह्यार्थनिकल्पो निक्षेपः । अपहत निराकरणद्वारेण प्रकृतप्ररूपको^२ वा । उक्त च—

अपगयणिघारणं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।

ससयणिणासणं तच्चत्थयधारणं च ॥ १ ॥

खेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥१॥

शका—यहा क्षेत्रानुयोगद्वारके अघतारका क्या फल है ?

समाधान—उक्त शकाका उत्तर देते हैं । यह इस प्रकार है—सत्प्ररूपणा नामके अनुयोगद्वारसे जिनका अस्तित्व जान लिया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें जिनका सख्यारूपप्रमाण जाना है, ऐसे चौदह जीवसमासोंके (गुणस्थानोंके) क्षेत्रसंबन्धी प्रमाणका जानना ही क्षेत्रानु योगद्वारके अघतारका फल है । अथवा, अस्वर्यात प्रदेशवाले लोककाशमें अनन्त प्रमाणवाली जीवराशि क्या समाती है, या नहीं समाती है, इस प्रकारके सदेहसे घुलनेवाले शिष्यके सदेहके विनाश करनेके लिए इस क्षेत्रानुयोगद्वारका अघतार हुआ है ।

इस क्षेत्रानुयोगद्वारके प्रारम्भमें क्षेत्रमा निक्षेप करना चाहिये ।

शका—निक्षेप किसे कहते हैं ?

समाधान—सशय, त्रिपर्यय और अनध्यवसायमें अवस्थित वस्तुको उनसे निकाल कर जो निश्चयमें क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते हैं । अथवा, बाहरी पदार्थके विकल्पके निक्षेप कहते हैं, अथवा, अपकृतका निराकरण करके प्रकृतका प्ररूपण करनेवाला निक्षेप है । फहा भी है—

अप्रकृतके निवारण करनेके लिये, प्रकृतके प्ररूपण करनेके लिये, ओर तत्त्वार्थके अव धारण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है ॥ १ ॥

१ क्षेयमुच्यते, तत् द्विविधम् । सामान्यन विशेषण च ॥ स सि १, ८

२ अ २ प्रती ' जया ' इति पाठ ।

३ उपायो ' यास इत्येते । उपाय ३, ५२ तदविगतानां वाच्यतामापन्नानां वाचकेषु भेदोप' यास ' यास । लघाय ३, ७४ विवृति ।

४ स ' वमय ' अपहतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च । स सि १, ५ अपस्तुतायां पाठानाम् । प्रस्तुतायां पाठानाम् च निक्षेप ' फलवान् । लघाय स्वो ' वि पृ २६

सो च एत्थ चउव्विहो णिकखेवो' णाम द्ढवणा दब्ब-भाजखेत्तमेएण । कथं
णिकखेवस्स चउव्विहत्तं ? दब्बद्विय-पज्जजणद्वियणयाजलंजियणवाजारादो । उत्तं च—

णाम ठण्णा दत्रिय ति एस दब्बद्वियस्स णिकखेवो ।

भाजो दु पज्जवद्वियपरुखणा एस परमथो' ॥ २ ॥

जीवाजीवुभयकारणणिरवेक्खो अप्पाणभ्हि पयट्ठो' खेत्तसदो णामरोत्तं । सो च
णामणिकखेवो वयण-उत्तचणिच्चज्जणमायमंतरेण ण होदि त्ति, तब्भज सरिससामण्णणि-
घघणो त्ति वा, वाच्य वाचकशक्तिद्वयात्मकैकशब्दस्य पर्यायार्थिकनये असभवाद्वा दब्बद्विय-

यद्द निक्षेप यद्वा पर नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्रके भेदसे चार
प्रकारका है ।

शंका—निक्षेप चार प्रकारका कैसे है ?

समाधान—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके आश्रय करनेवाले वचनोंके व्यापारकी
अपेक्षासे निक्षेप चार प्रकारका होता है । कहा भी है—

नाम, स्थापना और द्रव्य, ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणाके विषय हैं और
भावनिक्षेप पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाका विषय है । यही परमार्थ सत्य है ॥ २ ॥

जीव, अजीव और उभयरूप कारणोंकी अपेक्षासे रहित होकर अपने आपमें प्रवृत्त
हुआ 'क्षेत्र' यह शब्द नामक्षेत्रनिक्षेप है । यह नामनिक्षेप, वचन और वाच्यके नित्य अर्थ
यसाय अर्थात् वाच्य वाचक सम्बन्धके सार्वकालिक निश्चयके बिना नहीं होता है इसलिये,
अथवा तद्भव सामान्य नियन्धनक और सादृश्य सामान्य निमित्तक होता है इसलिये, अथवा,
वाच्य वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिक नयमें असम्भव है इसलिये, द्रव्य
ार्थिकनयका विषय है, ऐसा कहा जाता है ।

विशेषार्थ—यहा पर नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय बतलानेके लिए तीन हेतु
दिये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है । (१) नामनिक्षेप वचन और वाच्यके नित्य
अव्यवसायके बिना नहीं होता है, इसलिये यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर्थात्, 'इस
शब्दसे यह पदार्थ जानना चाहिए' इस प्रकारका सकेत किये जानेसे शब्द अपने वाच्यका
वाचक होता है । यदि यह सकेत या वाच्य वाचकका सम्बन्ध नित्य न माना जाय, तो भिन्न
देश या भिन्न कालमें उस शब्दसे उसके वाच्यरूप अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । किन्तु
'देवदत्त' आदि जो नाम किसी व्यक्तिके बाल्यावस्थामें रखे गये थे, वह आज वृद्धावस्थामें
भी समानरूपसे उस व्यक्तिके वाचक देखे जाते हैं, इससे सिद्ध होता है कि वचन और
वाच्यके मध्यमें जो सम्बन्ध है, वह नित्य है । और नित्यताका द्रव्यके अतिरिक्त अन्यत्र पाया

१ म १ प्रती 'सो च' इत्यधिक पाठः ।

२ स त १, ४

३ प्रतिशु 'पयट्ठो' इति पाठ ।

णयस्सेत्ति बुच्चं । कट्ट दत्त सिल्लादीणि सम्भावात्सम्भाणसरूपाणि बुद्धीए इच्छिदत्तेत्तेण
यत्तमुवगयाणि इत्थणा णाम । सम्भावात्सम्भाणसरूवेण सव्वदव्वयापि चि वा, पघाणापघाण

जाना असम्भय है, इससे सिद्ध होता है कि नामनिक्षेप द्रव्याधिकनयका विषय है। नाम
निक्षेपको तद्भवसामान्य और सादृश्यसामान्य निमित्तक कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि,
विवक्षित सुवर्णादि वस्तुके पूर्वापर कालभावी षट्क, केयूरादि पर्यायोंमें विभिन्नता रहते हुए
भी उनमें एक ही सुवर्ण समानरूपसे सदा विद्यमान रहता है, इसलिए इस प्रकारकी समानताको
तद्भवसामान्य कहते हैं। तथा, किसी भी एक विवक्षित कालमें विद्यमान, किन्तु विभिन्न
प्रकारके सुवर्णोंसे निमित्त षट्क, पुण्डल, केयूरादि पर्यायोंमें 'यह भी सुवर्ण है, यह भी
सुवर्ण है,' इत्यादि रूपसे सदृशता बोधक जो समानता है, उसे सादृश्य सामान्य कहते हैं।
इसी प्रकारसे नामनिक्षेपरूप शब्द भी पूर्वापर कालभावी 'क्षेत्र, क्षेत्र' इत्यादि शब्दोंमें समान
प्रतीतिका उत्पादक होनेसे तद्भवसामान्यका निमित्त है। तथा, विवक्षित किसी भी एक कालमें
विभिन्न देशवर्ता मधुरा, काशी इत्यादि क्षेत्रोंमें 'यह भी क्षेत्र है, यह भी क्षेत्र है' इत्यादि
रूपसे उच्चारण किये जानेवाला शब्द सदृश प्रत्ययका उत्पादक होनेसे सादृश्य सामान्यका भी
निमित्त होता है। और सामान्यको विषय करना ही द्रव्याधिकनयका विषय है; इसलिए
नामनिक्षेपको द्रव्याधिकनयका विषय कहना युक्ति सगत ही है। (३) नामनिक्षेपको द्रव्या
धिकनयका विषय यतानेके लिए तीसरी युक्ति यह दी है कि वाच्य वाचकरूप दो शक्तियों
वाला एक शब्द पर्यायाधिकनयमें असम्भय है, अर्थात् पर्यायाधिकनयका विषय नहीं हो सकता।
इसका अभिप्राय यह है कि शब्दोंमें वाच्य वाचकरूप दो शक्तियाँ एक साथ ही पाई जाती हैं।
अर्थात् शब्द अपने वाच्यरूप अर्थका प्रतिपादक होता है, इसलिए तो उसमें सदा वाचकशक्ति
विद्यमान है। और स्वयं भी अपने स्वरूपका विषय होता है, इसलिए वाच्यशक्ति भी उसमें
सर्वदा पाई जाती है। इस प्रकार किसी भी विवक्षित समयमें वह एक दोनों अर्थात् वाच्य
वाचकरूप शक्तियोंसे युक्त रहेगा। और इसी कारणसे वह पर्यायाधिकनयका विषय नहीं हो
सकता, क्योंकि, यद्यपि आगममें शब्दको पुद्गलद्रव्यकी पर्याय कहा है तथापि जब वही शब्द
वाच्य वाचकरूप दो शक्तियोंवाला विवक्षित किया जाता है, तब वह द्रव्य कहलाने लगता है।
चूँकि शक्ति, गुण या धर्मको कहते हैं, इसलिए 'गुणसमुदायो द्रव्य' के निश्चयानुसार
शक्तियोंवालेको द्रव्य ही कहा जायगा, पर्याय नहीं। इस प्रकार जब शब्द पुद्गलद्रव्य सिद्ध हो
जाता है, तब वह द्रव्याधिकनयका ही विषय हो सकता है, पर्यायाधिकनयका नहीं। इसलिए
भी नामनिक्षेपको द्रव्याधिकनयका विषय कहना सर्वथा युक्ति युक्त ही है।

युद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रके साथ एकत्वको प्राप्त हुए, अर्थात् जिनमें युद्धिके द्वारा
इच्छित क्षेत्रकी स्थापना की गई है ऐसे सद्भाव और असद्भाव स्वरूपकाष्ठ, दन्त और शिल्प
आदि स्थापनाक्षेत्रनिक्षेप है। यह स्थापनानिक्षेप, तत्कार और अतत्कार स्वरूपसे स

दव्याणमेगत्तणिबंधणेत्ति वा दृग्णाणिकखेयो दव्वट्टियणयजुल्लीणो' । दव्वखेत्तं दुग्गिहं आगमदो णोआगमदो य । तत्थ आगमदो खेत्तपाहुडजाणओ अणुजुत्तो । कधमेदस्स जीउदणियस्स सुदणाणाउरणीयक्खओवसमणिसिद्धस्स दव्व-भाउखेत्तागमउदिरित्तस्स आगमदव्वखेत्तवउएओ ? ण एस दोमो, आधारे आधेयोउयारेण कारणे कज्जुउयारेण

द्रव्योंमें व्यास होनेके कारण, अथवा, प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण होनेसे द्रव्यार्थिकनयके अन्तर्गत है, ऐसा समझना चाहिए ।

विशेषार्थ— स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयना विषय सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिये गये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इसप्रकार है । (१) स्थापनानिक्षेप सद्भाव और असद्भावरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त है, इसका अर्थ यह है कि त्रिलोककर्त्री सभी द्रव्य यद्यपि स्वतंत्र एवं निश्चित आकारवाले हैं, तथापि व्यवहारके योग्य एवं विशेष अपेक्षासे विशिष्ट आकारसे परिकल्पित द्रव्यको साकार, सद्भावरूप या तदाकार कहा जाता है, और उससे भिन्न आकारवाली वस्तुकी अनाकार, असद्भाव या अतदाकार कहा जाता है । काष्ठ या दात वगैरह यद्यपि अपने स्वतंत्र आकारवाले हैं, तथापि उन्हींको द्राघी, घोडा आदि किसी एक विवक्षित या निश्चित आकारसे घटित कर दिये जाने पर उन्हें तदाकार कहा जाता है, और निश्चित आकारसे घटित नहीं होने पर भी जो संकेतद्वारा किसी वस्तुस्वरूपकी परिकल्पनाकी जाती है, उसे अतदाकार कहते हैं । इसप्रकार यह स्थापनाका व्यवहार तदाकार और अतदाकाररूपसे सर्व द्रव्योंमें पाया जाता है, अर्थात् सभी द्रव्योंमें दोनों प्रकारका स्थापनानिक्षेप किया जा सकता है, जो कि क्षेत्रभेद या कालभेद होने पर भी तदवस्थ रहता है । इस कारणसे स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहा है । (२) प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है, वह प्रधान द्रव्य, तथा जिस वस्तुमें स्थापना की जाती है, वह अप्रधान द्रव्य कहलाता है । 'यह सिद्ध है' इस प्रकारसे स्थापनानिक्षेप असली सिद्धरूप प्रधानद्रव्य और मट्टी आदिके त्रिलोकेमें स्थापित सिद्धरूप आकारवाले अप्रधान द्रव्यमें एकताका कारण अर्थात् एकत्वप्रतीतिका निमित्त होता है, इसलिए भी स्थापनानिक्षेप द्रव्यार्थिकनयना विषय है ।

आगमद्रव्यक्षेत्र और नोआगमद्रव्यक्षेत्रके भेदसे द्रव्यक्षेत्र दो प्रकारका है । उनमेंसे क्षेत्रविषयक शास्त्रका शाता, किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यक्षेत्र निक्षेप है ।

शुद्धा— श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे विशिष्ट, तथा द्रव्य और भाधरूप क्षेत्रागमसे रहित इस जीवद्रव्यके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप सद्भाव कैसे प्राप्त हो सकती है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, आधाररूप आत्मामें आधेयभूत क्षयोपशम स्वरूप आगमके उपचारसे, अथवा, कारणरूप आत्मामें कार्यरूप क्षयोपशमके उपचारसे,

लद्वागमववएत्तएओवसमत्रिसिद्धजीवद्व्यापलपणेण णा तस्स तदगिरोहा । णोआगमदो
दव्वक्खेत्त तिपिह, जाणुगमरीर भणिय तव्वदिरित्त चेदि । तत्थ जाणुगसरीर तिपिह,
भणिय वट्टमाण समुज्झादमिदि । समुज्झाद पि तिपिह खुदं चइद चत्तेहमिदि । भवदु
पुव्विल्लस्स दव्वरेत्तागमत्तादो रेत्तएत्तो, एदस्स पुण सरीरस्स अणागमस्स रेत्तए
एत्तो ण घट्टि ति? एत्थ परिहारो वुच्चदे । त जघा— क्षियत्यक्षैर्पीतक्षेप्यत्वस्मिन्
द्रव्यागमो भागागमो वेति त्रिपिबमपि शरीर क्षेत्रम्, आधारे आधेयोपचाराद्वा । तत्थ भणिय
खेत्तपाहुडजाणगमानी जीरो णिदिस्सदे । रुध जीवस्स रेत्तागमएओवसमरहिदत्तादो
अणागमस्स रेत्तएत्तो? न, क्षेप्यत्वस्मिन् भागक्षेत्रागम इति जीवद्रव्यस्य पुरैव क्षेत्र
सिद्धे । जाणुगसरीर भणियवदिरित्तदव्वरेत्त दुपिह, कम्मदव्वरेत्त णोकम्मदव्वरेत्त
चेदि । तत्थ कम्मदव्वरेत्त णाणावरणादिअट्टपिहकम्मदव्व । कथं कम्मस्स रेत्तएत्तो?

अथवा, प्राप्त हुई है आगमसज्ञा जिसको ऐसे क्षयोपशमसे युक्त जीवद्रव्यके अवलम्बनसे
जीवके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप सम्राजे होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शायकशरीर, मध्य और तद्द्रव्यतिरिक्तके क्षेत्रसे नोआगमद्रव्यक्षेत्र तीन प्रकारका है ।
उनमेंसे शायकशरीर तीन प्रकारका है; भावी शायकशरीर, वर्तमान शायकशरीर और अतीत
शायकशरीर । इनमेंसे अतीत शायकशरीर भी च्युत, व्यापित और त्यक्तके भेदसे तीन
प्रकारका है ।

शुका—द्रव्यक्षेत्रागमके निमित्तसे पूर्वके शरीरको क्षेत्रसज्ञा भले ही रही आये, किंतु
इस अनागमशरीरके क्षेत्रसज्ञा घटित नहीं होती है ?

समाधान—उक्त शकाका यह परिहार कहते हैं । यह इस प्रकार है—जिसमें
द्रव्यरूप आगम अथवा भावरूपआगम वर्तमानकालमें निवास करता है, भूतकालमें निवास
करता था, और आगामी कालमें निवास करेगा। इस अपेक्षा तीनों ही प्रकारका शरीर क्षेत्र
कहलाता है । अथवा, आधाररूप शरीरमें आधेयरूप क्षेत्रागमका उपचार करनेसे भी क्षेत्र
सज्ञा घन जाती है ।

नोआगम द्रव्यक्षेत्रके तीन भेदोंमेंसे जो आगामी कालमें क्षेत्रविषयक शास्त्रको जानेगा,
ऐसे जीवको भावी नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शुका—जो जीव क्षेत्रागमरूप क्षयोपशमसे रहित होनेके कारण अनागम है, उस
जीवके क्षेत्रसज्ञा कैसे घन सकती है ?

समाधान—नहीं; क्योंकि, 'भावक्षेत्ररूप आगम जिसमें निवास करेगा' इस प्रकार
की निरुक्तिके चलसे जीवद्रव्यके क्षेत्रागमरूप क्षयोपशम होनेके पूर्व ही क्षेत्रपना सिद्ध है ।

शायकशरीर और भावीसे भिन्न जो तद्द्रव्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, यह कर्म
द्रव्यक्षेत्र और नोऋमद्रव्यक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे क्षानावरणादि आठ प्रकारके
कर्मद्रव्यको कर्मद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शुका—कर्मद्रव्यको क्षेत्रसज्ञा कैसे प्राप्त हुई ?

न, क्षियन्ति' निप्रसन्त्यस्मिन् जीवा इति कर्मणां क्षेत्रत्वासिद्धेः । (जं) णोकम्मदव्वखेत्तं तं दुविह, ओपयारिय पारमत्थियं चेदि । तत्थ ओपयारियं णोकम्मदव्वखेत्तं लोणपसिद्धं सालिखेत्तं वीहिखेत्तमेवमादि । पारमत्थिय णोकम्मदव्वखेत्त आगासदव्व । उच्चं च—

खेत्त खलु आगास तव्वदिरित्तं च होदि णोखेत्त ।

जीवा य णोणल्ल त्ति य धम्माधम्मत्थिया कालो ॥ ३ ॥

आगास सपदेस तु उट्ठाधो त्तिरिओ वि य ।

खेत्तल्लोण वियाणाहि अणत्त जिण देसिद' ॥ ४ ॥

एसो त्ति णिकखेवो दव्वट्टियस्स, दव्वेण विणा एदस्स संभवाभावादो । ज तं भारखेत्तं तं दुविह, आगमदो णोआगमदो भारखेत्तं चेदि । आगमदो भारखेत्तं खेत्त-
पाहुडजाणुगो उवजुत्तो । णोआगमदो भारखेत्त आगमेण विणा अत्थोवजुत्तो ओदह्यादि-

समाधान— नहीं; क्योंकि, जिसमें जीव 'क्षियन्ति' अर्थात् निवास करते हैं, इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे कर्मोंके क्षेत्रपना सिद्ध है ।

तद्ब्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यका दूसरा भेद जो नोकर्मद्रव्यक्षेत्र है, वह औपचारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे लोकमें प्रसिद्ध शालिक्षेत्र, व्रीहि (धान्य) क्षेत्र इत्यादि औपचारिक नोकर्मतद्ब्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहलाता है । आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोकर्मतद्ब्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है । कहा भी है—

आकाशद्रव्य नियमसे तद्ब्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, और आकाशद्रव्यके अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा कालद्रव्य नोक्षेत्र कहलाते हैं ॥ ३ ॥

आकाश सप्रदेशी है और वह ऊपर, नीचे और तिरछे सर्वत्र फैला हुआ है । उसे ही क्षेत्रलोक जानना चाहिए । उसे जिन भगवान्ने अनन्त कहा है ॥ ४ ॥

यह आगम और नोआगम भेदरूप द्रव्यक्षेत्रनिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है । क्योंकि, द्रव्य अर्थात् सामान्यके बिना यह निक्षेप संभव नहीं है ।

जो भावरूप क्षेत्रनिक्षेप है, वह आगमभावक्षेत्र और नोआगमभावक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । क्षेत्रविषयक प्राभूतके ज्ञाता और वर्तमानकालमें उपयुक्त जीवको आगमभाव-क्षेत्रनिक्षेप कहते हैं । जो आगमके अर्थात् क्षेत्रविषयक शास्त्रके उपयोगके बिना अन्य पदार्थमें उपयुक्त हो उस जीवको; अथवा, औद्दयिक आदि पाच प्रकारके भावोंको नोआगमभावक्षेत्र निक्षेप कहते हैं ।

१ क्षि निवासगत्यो ।

२ आगासस्त पएसा उट्टु च जहे य त्तिरियलोए य । जाणाहि खित्तल्लोण अणत्त जिणदेसिअ सम्म ॥ १९७ ॥

पचत्रिभारो वा । एतेषु खेतेषु केण खेतेण पयदं ? णोआगमदो दब्बखेतेण पयद ।
 णोआगमदो दब्बखेत्त णाम किं ? आगास गगण देवपथ गोज्झगाचरिद अणगाहणलक्षण
 आवेय नियापणमाधारो भूमि चि एयड्डो । कस्स खेत्त ? सुण्णोय भगो । केण खेत्त ?
 पारिणामिएण भायेण । कम्मिह खेत्त ? अप्पाणम्मिह चेव । कधमेगत्य आधाराधेयभावो ?
 ण, सारे त्यभं इदि एगत्य पि आधाराधेयभापदसणादो । केचचि खेत्त ? अणादिप
 मपज्जवसिद । कदिपिध खेत्त ? दब्बड्डियणय च पडुच्च एगपिध । अधवा पओजणमभि

शका—ऊपर यतलाये गये इन क्षेत्रोंमेंसे यहा पर कौनसे क्षेत्रसे प्रयोजन है ?

समाधान—यहा पर नोभागमद्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है ।

शका—नोभागमद्रव्यक्षेत्र किसे कहते हैं ?

समाधान—आकाश, गगन, देवपथ, गृहकाचरित (यक्षोंके विचरणका स्थान)
 अणगाहनलक्षण, आधेय, व्यापक, आधार और भूमि, ये सब नोभागमद्रव्यक्षेत्रके एकार्थक
 नाम हैं ।

त्रिशेषार्थ—अथ धरलाकार क्षेत्रका विचार, निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण,
 स्थिति और विधान, इन प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारासे क्रमश करते हैं । इनमेंसे ऊपर जो
 विशेष या एकार्थ द्वारा क्षेत्रका विचार किया गया है, वह सब निर्देशके अन्तर्गत समझना
 चाहिए ।

शका—क्षेत्र किसका है, अर्थात् इसका स्वामी कौन है ?

समाधान—यह भग शून्य है, अर्थात् क्षेत्रका स्वामी कोई नहीं है ।

शका—किससे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रका साधन या करण क्या है ?

समाधान—पारिणामिक भावसे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रकी उत्पत्तिमें कोई दूसरा
 निमित्त न होकर यह स्वभावसे है ।

शका—किसमें क्षेत्र रहता है, अर्थात् इसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—अपने आपमें ही यह रहता है, अर्थात् क्षेत्रका अधिकरण क्षेत्र ही है ।

शका—एक ही आकाशमें आधार आधेय भाव कैसे समझ है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ' सारमें स्तम्भ है ' इस प्रकार एक वस्तुमें भी आधार
 आधेयभाव देखा जाता है ।

शका—कितने कालपर्यन्त क्षेत्र रहता है, अर्थात् क्षेत्रकी स्थिति कितनी है ?

समाधान—क्षेत्र अनादि और अनन्त है ।

समिच्च दुनिह, लोगागासमलोगागासं चेदि । लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादि-
द्रव्याणि स लोकः । तद्विपरीतोऽलोकः । अथा देसभेएण तिविहो, मंदरचूलियादो
उपरिमुड्डुलोगो, मदरमूलादो हेड्डा अधोलोगो, मदरपरिच्छिण्णो मज्झलोगो' ति । जधा
दव्याणि द्विदाणि तवापनोधो अणुगमो । सेत्तस अणुगमो खेत्ताणुगमो, तेण खेत्ताणु-
गमेण सरीरस्सेज दुनिहो णिहेसो । णिहेसो पटुप्पायण कहणमिदि एयड्डो । ओषेण
द्रव्याधिकनयावलम्बनेन, आदेसेण पर्यायाधिकनयावलम्बनेन चेदि द्विनिधो निर्देशः ।
किमट्टुमभयथा णिहेमो कीरेदे ? न, उभयनयापस्थितसत्तानुग्रहार्थत्वात् । ण तहओ णिहेसो
अतिय, णयहयसद्वियजीपनदिरित्तसोदारण असमनादो ।

शंका— क्षेत्र कितने प्रकारका है ?

समाधान— द्रव्यार्थिकनयनी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है । अथवा, प्रयोजनके
आशयसे क्षेत्र दो प्रकारका है, लोकाकाश और अलोकाकाश । जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन
किये जाते हैं, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं । इसके विपरीत जहा जीवादि द्रव्य नहीं
देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं । अथवा, देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है । मद्राचल
(सुमेरुपर्वत) की चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है । मद्राचलके मूलसे नीचेका क्षेत्र
अधोलोक है । मद्राचलसे परिच्छिन्न अर्थात् तत्प्रमाण मध्यलोक है ।

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है ।
क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं । उससे अर्थात् क्षेत्रानुगमसे शरीरके (शरीर सामान्य
और मुखादि अंगोपांग विशेष) निर्देशके समान दो प्रकारका निर्देश किया गया है । निर्देश,
प्रतिपादन और कथन, ये सब एकार्थक हैं । ओषसे अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे, और
आदेशसे अर्थात् पर्यायाधिकनयके अवलम्बनसे निर्देश दो प्रकारका है ।

शंका— दोनों नयोंकी अपेक्षासे निर्देश किसलिये किया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, द्रव्याधिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये ओष
निर्देश किया गया है । तथा पर्यायाधिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये आदेशनिर्देश
किया गया है ।

इन दोनों निर्देशोंके अतिरिक्त और कोई तीसरा निर्देश नहीं पाया जाता है, क्योंकि,
दोनों प्रकारके नयोंमें अवस्थित जीवोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके श्रोताओंका अभाव है, अत-
एव दोनों ही प्रकारसे निर्देश किया गया है ।

१ मेहरय नयाणां लोकानां मानदद । अस्वापस्तलादधोलोक । चूलिकामूलादूर्ध्वमूर्ध्वलोक । मध्यम
प्रमाणस्थितयस्तीणस्तिर्यग्लोक । त रा वा ३, १० इह च बहुममभूमिभागे रत्नप्रमाणे मेरुमध्ये अष्टप्रदेशो
रुचको भवति, तस्योपरितनप्रस्तरस्योपरिष्ठास्रव याजनशतानि यावज्जीतिश्रकस्योपरितस्तत्वात् तिर्यग्लोकस्तत
परत ऊर्ध्वमागस्थितत्वात् ऊर्ध्वलोको देशोनसप्तारुप्रमाणो रुचकस्याधस्तनप्रस्तरस्याधो नव याजनशतानि यावचाव
चित्यलोक, तत परतोऽधोमागस्थितःवादधोलोक सातिरेवसप्तारुप्रमाण, अधोलोकोर्ध्वलोकयोर्मध्ये अष्टादश-
याजनशतप्रमाणस्थितत्वात् तिर्यग्लोक इति । स्थानां ३, २ टीका

‘ जहा उदेसो तहा णिदेसो ’ चि कट्टु ओघणिदेसद्वमुत्तरसुत्त भणदि—

ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे । त जहा— ओघणिदेसो आदेसजुदासट्ठो । मिञ्जा इट्ठिणिदेसो तेसगुणद्वानपाडसेहट्ठो । केवडि खेत्ते’ इदि पुच्छा सुत्तस्स पमाणत्तप्पदुपायण फला’ । सव्वलोगे इदि खेत्तपमाणणिदेसो । एत्थ लोगे चि बुत्ते सत्तरज्जण घणो घेत्तव्वो’ । कुदो ? एत्थ खेत्तपमाणावियारे—

पल्लो सापर सुई पदरो य घणगुलो य जगसेदा ।

लोयपदरो य लोगे अट्ट द्दु माणा सुणेयना’ ॥ ५ ॥

‘ जिस प्रकारसे उद्देश किया जाता है, उन्ही प्रकारसे निर्देश होता है ’ इस वाक्ये अनुसार ओघनिर्देशके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहत हैं । यह इसप्रकार है— सूत्रमें ‘ ओघ ’ इस पदका निर्देश, आदेश प्ररूपणाके निराकरणके लिए है । ‘ मिथ्यादृष्टि ’ इस पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है । ‘ कितने क्षेत्रमें रहते हैं ’ इस पृच्छाका फल सूत्रकी प्रमाणता प्रतिपादन करना है । ‘ सव्वलोकमें ’ इस पदसे क्षेत्रके प्रमाणका निर्देश किया है । यहा सूत्रमें ‘ लोक ’ ऐसा सामान्य पद कहनेपर सात राजुओंका घनात्मक लोक ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि, यहा क्षेत्रप्रमाणाविचारमें—

पल्लोपम, सागरोपम, सूच्यगुल, प्रतरागुल, घनागुल, जगक्षेत्री, लोकरप्रवर और लोकर, ये आठ मान जानना चाहिये ॥ ’

१ विवक्षित जावैतमाननाल विवक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्ट धाकाश क्षेत्र । गो जा जा प्र रा ५४३

२ सामान्यत तावन् मिथ्यादृष्टानां सबलान् । स वि १, ८ मिच्छा उ स वलोप ॥ पचस २, २६

३ प्रतिपु ‘ कवणिया ’ इति पाठ ।

४ म प्रथो ‘ सुचछपमाणत्त पदु पायण ’ इति पाठ , ‘ अ-आ-क ’ प्रतिपु ‘ सुत्तरम पमाणत्त पदुपायण ’ इति पाठ ।

५ जगसेदाण सत्तममाणो रज्जु पमाणत्ते । ति प १, १३२

६ जगसेट्ठिणपमाणो लायायानो सपचदव्वड्ढिदा । ति प १, ९१ चउदस रज्जु लोओ बुद्धिकआ हो सत्तरज्जुघणा । कम ५ कम ९७

७ ति प १ ९३ वि सा ९२ पल्लोपमस्य सागरोपमस्य च स्वरूप ति प १, ९३-९३०, स वि ३, ३८ त रा वा ३०, ३८ अद्धापल्लव्याधैव्वद्वेद घटाया विरलीहय प्रत्यकमद्धापल्लवदान क्त्वा अयोपयुण्णि ते यावत्तरेदेस्तावत्तिराकाशप्रदेशे सुतत्तवै

इदि एत्थ वुत्तलोगगहणादो । जदि एमो लोमो वेप्पदि, तो पंचदव्वाहारआगासस्स गहणं ण पावदे । कुदो ? तस्सिह सत्तरज्जुवणपमाणमेत्तस्सेत्तस्साभावा' । भाये मा —

हेट्ठा मज्जे उअरिं वेत्तासण झळी मुइगणिहो ।

मज्झिमवित्थारेण य चोइसगुणमायदो लोमो' ॥ ६ ॥

लोमो अत्तट्ठिमो खलु अणाइणिहणो सहागणिव्वत्तां ।

जीवाजीवेहि फुडो णिच्चो तलरुक्खसठाणो' ॥ ७ ॥

लोयस्स य विक्खभो चउप्पयारो य होइ णायव्वो ।

सत्तेज्जो य पचेक्कणो य रज्जू मुणेयव्वा' ॥ ८ ॥

इस गायामें जो लोकका ग्रहण किया गया है उसमें जाना जाता है कि यद्वापर सात राजुके घनप्रमाण लोकका ग्रहण अभीष्ट है ।

त्रिंशोपार्थ—एक प्रदेशजाली सात राजु लम्बी आकाश प्रदेशशक्तिको जगध्रेणी कहते हैं । तथा जगध्रेणीके वर्गमें जगप्रतर और घनको घनलोक कहते हैं । गायामें इसी क्रमसे जगध्रेणी, जगप्रतर और लोक पदका ग्रहण किया है । इससे यह ज्ञात होता है कि यद्वापर लोकसे घनलोकका अभिप्राय है ।

शंका—यदि यद्वापर इसी घनलोकका ग्रहण किया जाता है, तो पाच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, उस लोकमें सात राजुके घनप्रमाणवाले क्षेत्रका अभाव है । और, यदि सद्भाव माना जाये तो—

नीचे वेत्तासन (बैतने मूढा) ने समान, मध्यमें ब्रह्मरीके समान, और ऊपर मृदगके समान आकारघाला; तथा मध्यमविस्तारसे अर्थात् एक राजुसे चोदह गुणा आयत (लम्बा) लोक है ॥ ६ ॥

यह लोक निश्चयत अट्टिमिमे हे, अनादि निघन है, स्वभावसे निर्मित है, जीव और अजीव द्रव्योंसे व्याप्त है, नित्य है, तथा तालवृक्षके आकारजाला है ॥ ७ ॥

लोकका विष्कम्भ (विस्तार) चार प्रकारका है, ऐसा जानना चाहिये । जिसमेंसे अधो लोकके अन्तमें सात राजु, मध्यमलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पाच राजु और ऊर्ध्वलोकके अन्तमें एक राजु विस्तार जानना चाहिये ॥ ८ ॥

इत्ता सूच्यगुलमिस्सुच्यते । तदवपरण सूच्यगुलेन गुणित प्रतंगुल । तत्तरांगुलमपरेण सूच्यगुलेनाभ्यस्त भनांगुल । असन्धेयानां वपानां यावत् समयास्तारस्सडमद्धापत्य वत्, तताऽसरयेयान् खदानपनीयासक्येयमेक माण बुद्धया विरलाहय एक गदिमत्त घनांगुल दत्त्वा परस्परेण गुणिता जगच्छ्रेणी । सा अपरया जगच्छण्याभ्यस्ता प्रतरलोक । स एवापरया जगच्छण्या सवागतो घनलोक । त रा वा ३, ३

१ प्रतिगु 'खेत्तस्समावा' इति पाठ ।

२ जनु प ११, १०६

३ ति सा ४ तत्र चतुर्थचरणे 'सव्वागामावयवो णिच्चो' इति पाठ । ४ जनु प ११, १०७.

एदाओ सुत्तगाहाओ अप्पमाणत्तं पावेंति चि ?

एत्थ परिहारो वुचदे । एत्थ लोमे चि तुत्ते पंचदव्वाहारआगासस्सेम गहण, ण अण्णास्स । 'लोगपूरणगदो केवली केवडि सेत्ते, सव्वलोमे' इदि वयणादो । जदि लोमो सत्तरज्जुषणपमाणो ण' होदि तो 'लोगपूरणगदो केवली लोगस्स सपेज्जदि भोगे' इदि भोगेज्ज । ण च अण्णाडरियपरूपिदमुदिंगायाारलोगस्स पमाणग पेक्खिरऊण सपेज्जदिभागत्त मसिद्ध, गणिज्जमाणे तहोअलभादो । त जहा— मुदिंगायाारलोगस्स सड चोदसरज्जुआयद एगरज्जुपिक्खभ वट्ट लोगादो अणिय पुध ट्टेदेव्व' । एअ ठनिय तस्म फलाणयप विहाण भणिस्सामो । त जहा—एदस्स मुहतिरियअट्टस्स एगागासपदेसवाहल्लस्स परिठओ एत्तिओ होदि १११ । इममद्वेऊण पिक्खभद्वेण गुणिदे एत्तिय होदि ३३३ । अधोलोग भागमिच्छामो चि सत्तहि रज्जहि गुणिदे सायफलमेत्तिय होदि ५३३ । पुणो णिस्सं सेच चोदसरज्जुआयद दो खडाणि करिय तत्थ हेट्टिमखट घेत्तूण उट्ट पाटिय पसातिदे

ये ऊपर कही गई सूत्रगाथाए अप्रमाणताओ प्राप्त होती है ?

समाधान—अप यहा ऊपरकी श्रुतिका परिहार कहते हैं । इस प्रकृत सूत्रमें 'लोक' ऐसा पद कहनेपर पाच द्वयोंके आधारभूत आकाशना ही ग्रहण किया है, अन्यका नहीं, क्योंकि, 'लोकपूरणसमुदातगत केवली किन्ने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं' इसप्रकारका सूत्रयत्न है । यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है, तो 'लोकपूरणसमुदातगत केवली लोकके सख्यातवें भागमें रहते हैं' इसप्रकार कहना चाहिये । और अथ आचार्योंके द्वारा प्ररूपित मृदगाकार लोकके प्रमाणको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षासे, लोकपूरण समुदातगत केवलीका घनलोकके सख्यातवें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, गणना करनेपर मृदगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके सख्यातवें भाग पाया जाता है । यह इसप्रकार है—चौदह राजुप्रमाण आयत, एक राजुप्रमाण विस्तृत और गोल आकारवाली, ऐसी मृदगाकार लोककी सूचीको लोकके मध्यसे निकाल करके पृथक् स्थापन करना चाहिये । इसप्रकारसे स्थापित करके अब उनमें फल अर्थात् घनफलको निकालनेका विधान कहते हैं । यह इसप्रकार है—सुखमें तियक्खूपसे गोल और आकाशके एक प्रवेशप्रमाण वाहव्यवाली इस पूर्वोक्त सूचीकी परिधि १११ इतनी होती है । (देखो आगे गाथा न १४) इस परिधिके प्रमाणको आधा करके, पुन उसे एक राजुविक्रममें आधेसे गुणा करनेपर, उसके क्षेत्रफल का प्रमाण ३३३ इतना होता है । अब हमें लोकके अधोभागका घनफल खाना है, इसलिये उस क्षेत्रफलको सात राजुओंसे गुणा करने पर सात राजुप्रमाण लम्बी और एक राजुप्रमाण चौड़ी उक्त गोलसूचीका घनफल ५३३ इतना होता है । फिर सूचीरहित चौदह राजु लम्बे लोकरूप क्षेत्रके मध्यलोकके पाससे दो खट करके उनमेंसे नाचके अर्थात् अधोलोकसम्बन्धी

मुष्पसेत्तं होऊण चेद्धदि । तस्स मुहप्रित्थारो एत्तिओ होदि' ३१३ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि २२१३ । एत्थ मुहप्रित्थारेण सत्तरज्जुआयामेण छिदिदे दो तिकोणसेत्ताणि एयमायदचउरस्मसेत्तं च होइ । तत्थ ताव मज्झिमसेत्तफलमाणिज्जदे । एदस्म उस्सेहो सत्त रज्जुओ । पिकपमो पुण एत्तिओ होदि ३१३ । मुहम्मि एमागामपदेमवाहल्ल, तलम्मि तिण्णि रज्जुनाहल्लो चि सचहि रज्जुहि मुहप्रित्थारं गुणिय तलनाहल्लद्वेण गुणिदे मज्झिमसेत्तफलमेत्तियं होइ ३४३३ । संपहि सेसदोसेत्ताणि मत्तरज्जुअपलनयाणि तेरसुत्तरसदेण

खडको प्रहण कर उसे (एक ओरसे) ऊपरसे (लगाकर नीचेतक) काटकर पसारने पर सूर्य (सूपा) के आकारवाला क्षेत्र हो जाता है ।

विशेषार्थ—यद्वापर शकाकार, अन्य आचार्योंसे प्ररूपित जिस, मृदगाकार लोकको दृष्टिमें रखकर यह कवन कर रहा हो, उसका भाव यह है कि कितने ही आचार्य अधोलोकका आकार चारों ओरसे गोल पेसे घेनासनके समान मानते ह । जो नीचे गोल आकारवाला तथा सात राजु चौडा है, और ऊपर क्रमश घटता हुआ मध्यलोकमें गोल आकारवाला तथा एक राजु चौडा है । इसके ठीक मध्यमें ऊपरसे नीचेतक स्थित सात राजु लम्बी एक राजु चौड़ी गोल आकारवाली घसनाली है । उसको यदि घेनासनाकार अधोलोकके बीचमेंसे निकालकर वचे हुए अधोलोकको एक ओरसे ऊपरसे नीचेतक काटकर पसार दिया जाय, तो उसका आकार ठीक सूपाके समान हो जाता है ।

इस सूर्याकार क्षेत्रके मुखका विस्तार ३१३ इतना है, और तलका विस्तार २२१३ राजुप्रमाण है । इसे मुखविस्तारसे (अर्थात् मुखविस्तारके अन्तसे लगाकर दोनों ओर) सात राजु लम्बा नीचेकी ओर डेढ़नेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्रक्षेत्र, इसप्रकार तीन क्षेत्र हो जाते ह ।

उक्त प्रकारसे घने हुए इन तीन क्षेत्रोंमेंसे पहले आयतचतुरस्र आकारवाले मध्यवर्ती क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । इस आयतचतुरस्र क्षेत्रका उत्सेध (ऊंचाई) सात राजु है । और चिपरम्म ३१३ इतने राजु है । मुख्यमें एक प्रदेश प्रमाण ग्राह्य (मोटाई) है और तलभागमें तीन राजुप्रमाण वाहरय है, इसलिए उत्सेधका प्रमाण जो सात राजु है उससे मुखके प्रमाणको गुणा करके तलभागका वाहरय जो तीन राजु है उसके आधेसे अर्थात् डेढ राजुसे गुणा करने पर मध्यम क्षेत्रका अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल $३१३ \times ३ \times ३ = ३४३३$ इतना होता है ।

अत्र शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र ह वे सात राजु लम्बे हैं, और एकसौ तेरहसे एक राजुको खडित कर उनमेंसे बढतालीस खड अधिक नौ राजु भुजाबोल हैं अर्थात् उनका

एदाओ सुत्तगाहाओ अप्पमाणत्तं पापेंति चि ?

एत्थ परिहारो बुचदे । एत्थ लोमे चि बुचे पचदव्वाहारजागासस्सेण गहण, अप्पणस्म । 'लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोमे' इदि वचनादो । जदि लोम सत्तरज्जुघणपमाणो ण' होदि तो 'लोगपूरणगदो केवली लोगस्स सखेज्जदि भागे' भणेज्ज । ण च अण्णाहरियपरुपिदमुदिंगायाारलोगस्स पमाणग पेत्तिखण्ण सखेज्जदिमा ममिद्ध, गणिज्जमाणे तहोवलभादो । त जहा—मुदिंगायाारलोयस्स सड चोदसरज्जु एगरज्जुविकसभ वट्ट लोगदो अवणिय पुघ ट्टेदेव्वं' । एव ठमिय तस्म फल विहाण भणिस्सामो । त जहा—एदस्स मुहतिरियट्टस्स एगागासपदेसवाहलस्स एत्तिओ होदि ३३३ । इममद्वेज्जण विकसभद्वेण गुणिदे एत्तिय होदि ३३३ । ए भागमिच्छामो चि सत्तहि रज्जहि गुणिदे खायफलमेत्तिय होदि ५३३३ । पुणो खेत्त चोदसरज्जुजायद दो खडाणि करिय तत्थ हेट्टिमखड धेत्तूण उट्ट पाटि

ये ऊपर कही गई सूत्रगाथाए अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं ?

समाधान—अब यहा ऊपरकी शब्दाका परिहार कहते हैं । इस प्र 'लोक' पेसा पद कहनेपर पाच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ही ग्रहण किया नहीं, क्योंकि, 'लोकपूरणसमुदात्तगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोक इसप्रकारका सूत्रवचन है । यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है, तो 'लोकपूरण केवली लोकके सख्यातयें भागमें रहते हैं' इसप्रकार कहना चाहिये । और अ द्वारा प्ररूपित सूत्रगाथाके लोकेके प्रमाणको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षासे समुदात्तगत केवलीका घनलोकके सख्यातयें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है, व करनेपर सूत्रगाथाके लोकका प्रमाण घनलोकके सख्यातयें भाग पाया जाता है । है—चोदह राजुप्रमाण आयत, एक राजुप्रमाण विस्तृत आर गोल आकाश सूत्रगाथाके लोककी सूचीको लोकके मध्यसे निकाल करके पृथक् स्थापन व इसप्रकारसे स्थापित करके अब उसके फल अर्थात् घनफलको निकालनेका विधा इसप्रकार है—सुत्रमें त्रियंश्रूपसे गोल और आकाशके एक प्रदेशप्रमाण के पूर्वोक्त सूचीकी परिधि ३३३ इतनी होती है । (देखो आगे गाथा न १४) प्रमाणको आधा करके, पुन उसे एक राजुत्रिष्कम्भके आधेसे गुणा करनेपर का प्रमाण ३३३ इतना होता है । अब हमें लोकके अधोभागका घनफल खाना उस क्षेत्रफलको सात राजुओंसे गुणा करने पर सात राजुप्रमाण लम्बी और चौड़ी उक्त गोलसूचीका घनफल ५३३३ इतना होता है । फिर सूचीरहित लोकरूप क्षेत्रके मध्यलोकके पाससे दो खड करके उनमेंसे नीचेके अर्धात्

सदसंडेहि सादिरेयचत्तारिरज्जुभुजाणि ऋण्णकसेत्ते आलिहिय दोसु पि पासेसु मज्झमि छिण्णेषु चत्तारि आयदचउरंससेत्ताणि अट्ट तिकोणखेत्ताणि च हंति । एत्थ चट्टुण्ह-
मायदचउरससेत्ताण फल पुच्चिल्लदोरेत्तफलस्म चउम्भागमेत्त होदि । चट्टुसु पि सेत्तेसु
वाहल्लापिरोहेण एगट्ट कदसे तिण्णिरज्जुग्राहल्ल, पुच्चिल्लसेत्तपिक्खभायामेहिंतो अट्टमेत्त-
पिक्खभायामपमाणसेत्तुपलभादो । किमट्ट चट्टुण्ह पि मिलिदाणं तिण्णि रज्जुग्राहल्लत्त ?
पुच्चिल्लसेत्तग्राहल्लादो सपहियसेत्ताणमट्टमेत्तग्राहल्ल होदूण तदुस्सेह पेक्खिसदूण अट्ट-
मेत्तस्सेहदसणादो । सपहि सेसअट्टसेत्ताणि पुच्च व सडिय तत्थ सोलस तिकोणसेत्ताणि
अणतरादीदसेत्ताणमुस्सेहादो पिक्खभादो ग्राहल्लादो च अट्टमेत्ताणि अणणिय अट्टण्ह-
मायदचउरससेत्ताण फलमणतराइकत्तचट्टुसेत्तफलस्म चउम्भागमेत्त होदि । एव सोलस-
वत्तीस चउसट्टिआदिकमेण आयदचउरमसेत्ताणि पुच्चिल्लसेत्तफलादो चउम्भागमेत्त-
फलाणि होदूण गच्छति जाय अविभागपल्लिच्छेद पत्त ति । एउमुप्पणासेससेत्तफलमेला-

४३३३ राजु प्रमाण भुजावाले हे । उ हे कर्णक्षेत्रसे लगाकर दोनों ही पार्श्वभागोंमें शीचसे छिन्न करनेपर चार आयतचतुरस्रक्षेत्र आठ त्रिकोणक्षेत्र हो जाते हैं ।

यद्वापर चारों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल पहलेके दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थभाग मात्र होता है, क्योंकि, चारों ही क्षेत्रोंके बाह्यके अविरोधसे इकट्ठा करनेपर अर्थात् यथाक्रमसे विपर्यास कर उलटा रखने पर तीन राजु बाह्य और पहलेके क्षेत्रके त्रिफल्गुम और आयामस अर्धमात्र त्रिफल्गुम और आयाम प्रमाणगाला क्षेत्र पाया जाता है ।

शंका — इन चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके मिलाने पर तीन राजु बाह्य कैसे होता है ?

समाधान — क्योंकि, पहले बताये हुये आयतचतुरस्र क्षेत्रके बाह्यसे इस समयके आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका बाह्य आया ही है । और पहलेके उनके उत्सेधकी ओक्षा अबके इनका उत्सेध भी आधा ही दिखाई देता है ।

अब शेष रहे आठ त्रिकोण क्षेत्रोंको पूर्वके समान ही खटित करनेपर उनमें सोलह त्रिकोणक्षेत्र और आठ आयतचतुरस्रक्षेत्र हो जाते हैं ।

पहले बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका उत्सेधसे, त्रिफल्गुमसे और बाह्यसे अर्धप्रमाण निकालकर आठों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल अभी बताये गये चार आयत चतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थ भागमात्र होता है । इसीप्रकार सोलह, बत्तीस, चौंसठ आदिक्रमसे आयतचतुरस्रक्षेत्र पहले पहलेके आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलोंके चतुर्थ भागमात्र घनफलवाले होते हुए तब तब चले जायेंगे जबतक कि अविभागप्रतिच्छेद अर्थात् एक परमाणु (प्रदेश) नहीं प्राप्त हो जायगा । इसप्रकारसे उत्पन्न हुए समस्त क्षेत्रोंके घनफलोंके जोड़नेका

१ प्रतिपु ' कम् ' इति पाठ ।

२ अ-आ-क प्रतिपु ' वज्य ' इति पाठ ।

एगरज्जु राडिय तत्थ अट्टेतालीसरडढम्हिय णररज्जुभुजाणि भुजकोडिपाभोग्गकणाणि
 ऋण्णभूमिए आलिहिय दोसु नि दिमासु मज्झम्मि फालिदे तिण्णि तिण्णि सेत्ताणि होंति ।
 तत्थ दो सेत्ताणि अद्दुद्धरज्जुस्सेहाणि छच्चीसुत्तर वेसदेहि एगरज्जु राडिय तत्थ एगट्टि
 राडढम्हियरडढमदेण मादियेयत्तारिग्ज्जुनिम्पमाणि दक्खिण णमहेट्टिमकोणे तिण्णि
 रज्जुवाहल्लाणि, दक्खिण-णामकोणेषु जहाक्रमेण उवरिम हेट्टिमेसु दिक्खरज्जुवाहल्लाणि,
 अपसेमदाकोणेषु एगाम्गामवाहल्लाणि, अण्णत्थ कम वाट्टिगदनाहल्लाणि घेत्तण तत्थ एग
 सेत्तस्सुत्तरि विदियसेत्ते पिग्ज्जाम पाऊण द्दुग्गिदे सत्थरत्थ तिण्णि रज्जुवाहल्लेषेत्त होइ ।
 एदस्स वित्थारमुस्सेहेण गुणिय वेहेण गुणिदे सायफलमेत्तिय होइ ४९,३३३ । अपसेम
 चत्तारि सेत्ताणि अद्दुद्धरज्जुस्सेहाणि छच्चीसुत्तरवेसदेहि एगरज्जु राडिय तत्थ एगट्टि

अवोविस्तार ०.५३ है। इसी विस्तारको यहा त्रिकोण क्षेत्रको अपेक्षासे 'भुजा' कहा है।
 तथा उन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंका भुजा और कोटिके यथायोग्य समवित कर्णका प्रमाण है। इन
 दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंको ऋणभूमिसे लेकर दोनों ही दिशाओंमें बीचमेंसे पाटोपर तीन तीन
 क्षेत्र हो जाते हैं।

विशेषार्थ - यहापर त्रिकोण क्षेत्रके भुजा और कोटिका प्रमाण तो दिया है, पर
 कर्णका प्रमाण नहा दिया है। उसने निकालनेकी प्रक्रिया यह है कि भुजाके प्रमाणका वर्ग
 और कोटिके प्रमाणका वर्ग जितना हो, उन्हें जोडकर उसका वर्गमूल निकालना चाहिये, जो
 घगमूलका प्रमाण आये, वही कर्णरेखाका प्रमाण समझना चाहिये।

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुए इन तीन तीन क्षेत्रोंमें एक एक आयतचतुरस्रक्षेत्र और
 दो दो त्रिकोणक्षेत्र जानना चाहिये। उनमें सात राजु उत्सेधवाले आयतचतुरस्र क्षेत्रके दायें
 बायें दोनों ओर जा दो आयतचतुरस्रक्षेत्र हैं, उनमें प्रत्येकका साठे तान राजु उत्सेध है। तथा
 दो सो छच्चीससे एक राजुको खडित कर उनमें एकसा इकसठ खडोंसे अधिक चार राजु
 अर्थात् ४३,३३३ प्रमाण विष्कम्भ है। तथा दक्षिण और घाम (दायें बायें) अवस्तन कोन परतीन
 राजु बाहस्य है। अ य दक्षिण घामकोणोंपर यथाक्रमसे ऊपर और नीचे डेढ राजु बाहस्य
 है। अवशिष्ट दो कोनोंपर एक आकाशप्रदेश प्रमाण बाहस्य है। और अन्यत्र अर्थात् बीचमें
 ममसे बुद्धिसे प्राप्त बाहस्य है। इसप्रकारके इन दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंको लेकर (उठाकर)
 उनमें एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको विपयास अर्थात् उलटा करके स्थापित करनेपर सर्वत्र
 तीन राजु बाहस्यवाला क्षेत्र हो जाता है। इसके विस्तारको उत्सेधसे गुणाकर पुन घेध
 (मोटाई) से गुणा करने पर घनफल $४३,३३३ \times ३३ \times ३ = ४९,३३३$ इतना हो जाता
 है। अ य अवशिष्ट जो चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, ये साठे तीन राजु उत्सेधवाले हैं तथा दोसो
 छच्चीससे एक राजुको खडितकर उनमेंसे एकसा इकसठ खडोंसे अधिक चार राजु अर्थात्

१ प्रतिगु 'कम्भ' इति पाठ ।
 २ इहा बाहुय स्यात् तत्परिधया दिशाततो बाहु । स्थल चतुरस्रे वा सा कोटि कालिता तन्वै ॥ तत्परयो
 योपपद कण । लीलावती क्षेत्रय १

चउरसखेचं च हेई । आयदचउरंसरेत्तस्स अद्दुद्धरज्जुदीहस्स सादिरेयतिण्णिरज्जुनिकखं-
 मस्स तलम्मि वे रज्जु मुहम्मि एगागामवाहल्लस्म फलमाणेमो । तं जहा— विकसंभेषुस्सेहं
 गुणेऊण ओपेहेणेगरज्जुणा गुणिदे मज्झिल्लसेत्तफलहेइ । तस्स पमाणमेदं ११३३३ । सेस-
 दो तिकोणसेत्ताणि अद्दुद्धरज्जुस्सेहाणि एगरज्जुं तेरसुत्तरसदेण खडिय तत्थ वत्तीसखंडम्भहिय-
 छरज्जुविकसंभाणि पुव्व व मज्झम्मि खंडिय तत्थुप्पण्णाणि चत्तारि तिकोणसेत्ताणि
 ओत्तारिय दोण्हमायदचउरंसरेत्ताणं पाऊणदोरज्जुस्सेहाणं तेरसुत्तरसदेण एगरज्जुं खंडिय
 तत्थ सोलसखंडम्भहिय तिण्णिरज्जुनिकसभाण दो एक सुण्णेकरज्जुवाहल्लाणं फल-
 माणेमो । तं जहा— एगसेत्तसुपरि विदियखेत्त विवज्जासं काऊण ट्टुविदे वेरज्जुवाहल्लमेगं
 सेत्त हेइ । पुणो निकसभुस्सेहाग संवग्गं काऊण ओपेहेण गुणिदे खेत्तफलं हेइ । तस्स

क्षेत्र हो जाते हैं । उनमेंसे पहले आयतचतुरस्र क्षेत्रका जो साढ़े तीन राजु लम्बा है, तीन
 राजुसे कुछ अधिक अर्थात् ३६३३ राजु चौड़ा है, तलमें दो राजु और मुखमें एक आकाश
 प्रदेश प्रमाण मोटा है, ऐसे उस आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । यह इसप्रकार
 है— विष्कम्भ ३६३ से उरलेध ३ को गुणाकर पुन उसे मोट ईके प्रमाण एक राजुसे गुणा
 करने पर मध्यम अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल आ जाता है । उसका प्रमाण
 $३६३ \times ३ \times ३ = ३१३३३$ इतना होता है । शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं, जो कि साढ़े तीन
 राजु ऊंचे तथा एक राजुगो एक सौ तेरहसे खडित कर उनमें बत्तीस खडसे अधिक छह राजु
 अर्थात् ६६६ राजु चौड़े हैं, उन्हें पहलेके समान ही मध्यमेंसे खडित कर उनमें उत्पन्न हुए
 चार त्रिकोण क्षेत्रोंको दूर रख कर देनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका, जो कि पौने दो राजु ऊंचाईवाले,
 तथा एकसौ तेरहसे एक राजुको खडित कर उनमें सोलह खडोंसे अधिक तीन राजु अर्थात्
 ३६३ राजु प्रमाण चौड़े, तथा क्रमश दो, एक, शून्य और एक राजु मोटे हैं, उनके
 घनफलको निकालते हैं ।

नियेपार्थ— यहा पर जो आयतचतुरस्रक्षेत्रकी मोटाई क्रमश दो, एक, शून्य और
 एक राजु प्रमाण कही है, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मलोकके पासवाले भीतरी भागकी
 मोटाई दो राजु है । उर्साके बाहरी भागकी मोटाई एक राजु है । कर्णरेखावाले क्षेत्रकी मोटाई
 शून्य या एक प्रदेश है और कोटिरेखाके भागवाले ऊपरी क्षेत्रकी मोटाई एक राजु है ।

यह इसप्रकार है— एक आयतचतुरस्रक्षेत्रके ऊपर दूसरे आयतचतुरस्रक्षेत्रको उलटा
 करके रखने पर दो राजुकी मोटाईवाला एक क्षेत्र हो जाता है । पुनः विष्कम्भ और उरलेधका
 सवर्ग अर्थात् परस्पर गुणन करके घेधसे गुणा करने पर उक्त क्षेत्रका घनफल होता है,

१ म प्रत्या ३३ इति पाठ ।
 ३२६

२ प्राविशु ' तत्थुप्पणा ' इति पाठ ।

वर्णविहाण घुच्छेदे । त जहा- सञ्चरसेत्तफलानि चउगुणक्रमेण अत्रद्विदाणि त्ति कारूण
तत्थ अतिमस्वेत्तफल चउहि' गुणिय रूग्ण काऊण त्तिगुणिदछेदेण जोत्रद्विदे एत्तियं हाम्
६५१३३३३ । अधोलोगस्म सञ्चरसेत्तफलमामो १०६१३३३३ ।

सपहि उट्टुलोगसेत्तफलमाणेमो । तत्थ सुईसेत्तफल पुच्चविहाणेण जाणिदे एत्तिय
होइ ५१३३३३ । सपहि उत्ररिममद्व' पचरज्जुनिकसभुदेसे सडिय' तत्थ एगासंड पुध इत्तिय
मज्झम्मि सेसखड उट्टु फालिय पमारिदे सुप्पसेत्त होदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि
११३३ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि १५१३३३ । मुहम्मि एगागासवाहल्ल', तलम्मि मुहप
माणमज्झम्मि वेरज्जुनाहल्ल, पुणो कमहाणीए गतूग हेट्टिमदोकोणेसु एगागासवाहल्ल
होदि । एदम्मि सेत्ते मुहवित्थारनिकसभेण सडिदे दोण्णि त्तिक्कोणसेत्ताणि एगमायद

विधान कहते हैं। यह इसप्रकार है- सभी क्षेत्रों का घनफल चतुर्गुणितक्रमसे अवस्थित है, इसलिए
उनमें अंतिम क्षेत्रफलको चारसे गुणा करके और चारमेंसे एक कम अर्थात् तीनसे भाग देने
पर घनफल ६५१३३३३ इतना होता है। और अधोलोकके सभी क्षेत्रों का घनफल १०६१३३३३
होता है।

अत्र चारों ओरसे सृदगाकार ऊर्ध्वलोक रूप क्षेत्रका घनफल निकालते हैं। उसमें
एक राजु चौड़े, सान राजु लम्बे जोर गोल आकारवाले सूचीरूप क्षेत्रका घनफल पहले अधो
लोकमें कहे गये विधानसे निकालनेपर ५१३३३३ राजु इतना होता है। (इस सूचीको उर्ध्व
लोकके मध्यभागसे निकालकर पृथक् स्थापन कर देना चाहिये।) अब, लोकको मध्यलोकसे
काटनेपर जो दो भाग पहले हुए थे उसमेंके ऊपरी अर्ध भागको, पाच राजु हे विष्कम्भ
जहापर ऐसे ब्रह्मलोकके अ तस्थित प्रदेशपर धीचसे पाडितकर उसमेंसे एक खडको पृथक् स्थापन
कर बचे हुए खटको मध्यमें ऊपरसे नीचेतक फाडकर पसारनेसे सूर्पाके आकारवाला क्षेत्र
हो जाता है। उसके मुखका विस्तार ११३३ इतना होता है। तथा तलविस्तार १५१३
इतना होता है। इस सूर्पक्षेत्रके मुखमें मोटाई आकाशके एक प्रदेश प्रमाण है, और तलके
मुख प्रमाण मध्यभागमें दो राजु मोटाई है, पुन क्रमसे हानिको प्राप्त होती हुई अर्थात् कम होती
हुई इसी तलभागके दोनों कोनों पर आकाशके एक प्रदेश प्रमाण मोटाई है। इस सूर्पक्षेत्रको,
मुखाविस्तार प्रमाण विष्कम्भसे खटित करनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुर्भुज

१ म प्रती ' षड ' इत्यपि पाठ ।

२ म प्रती ' उवरिमधमद्वपच- ', ' उवरिमधम पच- ' अ-आ-क प्रतिबु ' उवरिमधमद्वपच-'
इति पाठ ।

३ म प्रती, ' सडिय, ' इति पाठ, ।

४ म प्रती ' बादिड ' इति पाठ ।

पि जादिच्छियसण्णापमगादो । किं च ' पदरगदो केवली केवडि खेत्ते, लोगे अमखेज्जिदि-
भाणूणे' । उड्डलोमेण दुप्पे उड्डलोगा उड्डलोगस्म तिभागेण देखणेण सादिरेगा ' इच्छेदस्स
सादिरेयदुग्गुणत्तस्स उड्डलोगादो कहण्णहाणुवचीदो सिद्ध दोण्हं लोगाणमेगत्तमिदि ।
तम्हा पमाणलोमो छद्वसमुदयलोगादो आगासपदेसगणणाए समाणो ति धेत्तवो ।
कध लोमो पिडिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होज ? वुच्चदे- लोमो गाम सव्वागास-
मज्झत्यो चोदसरज्जुआयामो दोसु पि दिसासु मूलद्व तिण्णि-चउम्भाग-चरिमेसु सत्तेक्क-
पंचेक्करज्जुरुदो सव्वत्थ सत्तरज्जुग्राहल्लो वड्ढि हाणीहि डिददोपेस्तो, चोदसरज्जुआयद-

सभी सक्षाओंको भी यादच्छिकपनेका प्रसंग आजायगा ।

दूसरी बात यह है कि 'प्रतरसमुद्धातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकमें रहते हैं । लोकके असख्यातवें भागसे न्यून सर्व
लोकका प्रमाण ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोकप्रमाण है ।' इसप्रकार
ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा इस साधिक दुग्गुणताका कथन अन्यथा बन नहीं सकता था, अतएव
प्रमाणलोक और द्रव्यलोक इन दोनों लोकोंका परस्पर सिद्ध हुआ ।

निशेपार्थ—यहा पर प्रतरसमुद्धातगत केवलीके क्षेत्रका प्रमाण जो ऊर्ध्वलोककी
अपेक्षा दो ऊर्ध्वलोक और उसीके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक पताया है, उसका अभिप्राय
यह है कि ऊर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है इसे दूना करनेपर २९४ घनराजु हुए । इसमें
१४७ का त्रिभाग ४९ घनराजुके जोड़ देनेपर ३४३ घनराजु होते हैं जो कि घनलोकका प्रमाण
है । प्रतरसमुद्धातगत केवली लोकान्तमें स्थित वातघलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर शेष सपूर्ण
क्षेत्रको व्याप्त कर लेते हैं, इसलिये ३४३ घनराजुमेंसे वातघलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको कम कर
देना चाहिये । यही यहा पर देशोन क्षेत्रका अभिप्राय है ।

इसलिये, उक्तप्रकारसे प्रमाणलोक और द्रव्यलोकके एक सिद्ध हो जानेपर, प्रमाण-
लोक छद्म द्रव्योंके समुदायवाले लोकसे आकाशके प्रवेशगणनाकी अपेक्षा समान है, ऐसा
अर्थ स्वीकार करना चाहिये ।

शंका—पिंडरूपसे एकत्रित करनेपर, अर्थात् घनरूप किया गया, यह लोक सात
राजुके घनप्रमाण कैसे हो जाता है ?

समाधान—उक्त शक्या उत्तर कहते हैं— जो सर्व आकाशके मध्य भागमें स्थित
है, चौदह राजु आयामवाला है, दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल,
अर्धभाग, त्रिचतुर्भाग और चरमभागमें यथाक्रमसे सात, एक, पाव और एक राजु विस्तार
पाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानिके द्वारा जिसके दोनों प्रान्तभाग

१ म प्रत्यो ' लोगा असखेज्जिदिभाणूणे ' इति पाठ ।

२ उदयदल आयाम वास पुष्पावणे भूमिपुरे । सत्तेकवथ एक य रज्जु मज्झन्दि हाणिषय ॥ पि सा १२३

पमाणमेदं १०^३३३६ । पुणो सेसचउण्ह सेत्ताण फलमेदस्म चउब्भागमेत्तं होदि । कारण सुगम, अधोलोमपरूणणाए परूणदिदादा । जेण सव्वसेत्तफलाणि अणत्तामइत्तलेत्तफलादा चउब्भागकमेणानट्टिदाणि, तेण तेसिं फले एत्थ मेलापिदे एत्तिथ होदि १४^१४४६ । उण्हलेग सेत्तस्म सव्वफलममामो एत्तिओ होदि ५८^११३४ । उण्हधोलो, गसेत्तफलममामो एत्तिओ होदि १६४ ३०- । तदे मिद्ध घणलोगस्म ससेज्जदिभागत्त । ण च' एदव्वदिरित्तमण सत्तरज्जुघणपमाण लोमसण्णिट्ठ सेत्तमत्थि, जेण पमाणलोगो छदव्वसमुदयलागादो अप्पो होज्ज । ण च लोमालोगेसु दोसु मि द्विदमत्तरज्जुघणमेत्तागासपदेसाणं पमाणघण लोमत्तरणसो, लोमण्णाण जादिच्चियत्तप्पसगा । होदु चे ण, सव्व्यागास तेदि पदर घणां

जिसरा प्रमाण $\frac{2}{3} \times \frac{1}{3} \times 1 = 10^3 336$ इतना होता है । पुन जो शेष चार त्रिकोण क्षेत्र ह, उनका घनफल हम आयतचतुरस्रक्षेत्रके चतुर्थभागमात्र होता है । इसका कारण सुगम है, क्योंकि, अधोलोककी प्ररूणणामें यह आये है (पृ १६) । चूकि इसप्रकार सर्वा त्रिकोण क्षेत्रोंके घनफल अनन्तर अतिभ्रात अर्थात् अभी पहले बताये गये क्षेत्रोंके घनफलसे चतुर्भागके क्रमसे अवस्थित ह, इसलिए उनके घनफलको यहा अर्थत् १०^३३३६ में मिलानेपर १४^१४४६ इतना प्रमाण हो जाता है । अधोलोकका समस्त घनफल ५८^११३४ इतना होता है ।

निशेषार्थ— ऊर्ध्वलोकका यह घनफल हमप्रकार आता है— ऊपर जो प्रमाण पतलाया गया है, वह प्रमाण ऊर्ध्वलोकके विभक्त क्रिये गये दो भागोंमेंसे एक भागका है, इसलिए दोनों खंडोंका घनफल लानेके लिए आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलको दूना किया, तब $11^3 336 \times 2 = 22^3 336$ हुआ । तथा त्रिकोणक्षेत्रोंका भी घनफल दूना किया, तब $12^3 336 \times 2 = 24^3 336$ हुआ । इसप्रकार ऊर्ध्वलोककी सूचीका, आयतचतुरस्र और त्रिकोण क्षेत्रोंका समस्त घनफल जोड़ देनेपर $10^3 336 + 22^3 336 + 24^3 336 = 58^1 134$ आता है ।

ऊर्ध्वलोक और अधोलोकका घनफल जोड़ देनेपर $10^3 336 + 58^1 134 = 168^1 336$ इतना प्रमाण होता है । इसलिए अथ आचार्योंके द्वारा माना हुआ लोम घनलोकके सव्वालवें भागप्रमाण सिद्ध हुआ । और, इस लोमके अतिरिक्त सात राजुके घनप्रमाण लोकसप्तक अन्य कोई क्षेत्र है नहीं, जिससे कि प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायरूपलोकसे भिन्न माना जाये । और न लोकाकाश तथा अलाकाकाश, इन दोनोंमें ही स्थित सात राजुके घनमात्र आकाश प्रदेशोंके प्रमाणका घनलोकसहा है, क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकसप्तकके यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ।

शंका— यदि लोकसप्तकको यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है तो हो जाओ !

समाधान— नहीं, क्योंकि, सपूर्ण आकाश, जगश्रेणी, जगप्रतर और घनलोक, इन

१ म १ प्रती $\frac{56}{1319}$ म २ प्रती $\frac{56}{1349}$ इति पाठ ।

२ ' भागत्त । ण च ' इति स्थाने क प्रती ' भागत्त गणयत्त ' , आ प्रती ' भागत्त गणिय ' , म प्रती ' -भागत्त ण च ' इति पाठः ।

मूल मञ्जेण गुण मुहसहिददमुस्सेधरुदिगुणिद ।

धणगणिद जाणेउजो मुइगसठाणखेत्तहिं ॥ १० ॥

ण च एदस्स लोगस्स पढमगाहाए सह विरोहो, एगदिसाए वेत्तासण मुदिंगसठाण-
दसणादो । ण च एत्थ झल्लरीसंठाणं णत्थि, मज्झमिह सयंभुरमणोदहिपरिक्खित्तदेसेण
चंदमंडलमिव समतदो असपेज्जजोयणरुदेण जोयणलकरवाहल्लेण झल्लरीसमाणत्तादो ।
ण च दिट्ठतो दारिड्ढतिएण सन्वहा समाणो, दोण्हं पि अभायप्पसगादो । ण च ताल-
रुखसठाणमेत्थं ण सभयइ, एगदिसाए तालरुखसंठाणदसणादो । ण च तइयाए गाहाए

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणा करो, पुन मुखसहित अर्ध भागको उत्सेधकी
कृति अर्थात् धर्गसे गुणा करो । ऐसा करनेपर मृदगके आकारवाले क्षेत्रमें प्राप्त घनफल जानना
चाहिये ॥ १० ॥

विशेषार्थ— ऊर्ध्वलोक, बीचमें मोटा और ऊपर नीचे सफटा होनेसे मृदगाकारक्षेत्र
कहलाता है । इस मृदगाकार ऊर्ध्वलोकका मूलभागसम्यन्धी विस्तार एक राजुसे मध्यभागके
विस्तार पाच राजुको गुणा करनेपर $१ \times ५ = ५$ हुए । उसमें मुखविस्तार एक राजुको जोड़कर
 $५ + १ = ६$ आधा करनेपर $६ - २ = ३$ रहे । इसे ऊर्चाई सातके वर्गसे $७ \times ७ = ४९$ गुणा
करनेपर $४९ \times ३ = १४७$ हुए । यही एकसौ सैंतालीस राजु ऊर्ध्वलोकका घनफल है ।
इसप्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके घनफलोंको जोड़ देनेपर $१९६ + १४७ = ३४३$ तीनसौ
तेतालीस राजु सर्ध लोकका घनफल होता है ।

और, उक्त प्रकारके इस लोकका 'हेट्टा मज्जे उवरि वेत्तासण-झल्लरी मुइगणिभो'
इत्यादि इस प्रथम गाथाके साथ भी विरोध नहीं है, क्योंकि, एक दिशामें वेत्तासण और
मृदग का आकार दिखाई देता है । यदि कहा जाय कि अभी यताये गय लोकमें (मध्य भागपर)
झल्लरीका आकार नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, मध्यलोकमें स्वयम्भूरमणसमुद्रसे
परिक्षिप्त, तथा चारों ओरसे असरयान योजन विस्तारवाला और एक लाख योजन
मोटाईवाला यह मध्यवर्ती प्रदेश चन्द्रमंडलकी तरह झल्लरीके समान दिखाई देता है । और
दृष्टांत सर्धथा दार्घान्तके समान नहीं होता है, अथवा दोनोंके ही अभावका प्रसंग
आ जायगा । यदि कहा जाय कि ऊपर यताये गय इस लोकके आकारमें तालवृक्षके समान
आकार सभय नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, एक दिशासे देखने पर तालवृक्षके समान सरस्थान
दिखाई देता है । और 'लोगस्स य विफसम्मो चउप्पयारो य होइ णायव्वो' इत्यादि इस

१ अन् प ११, ११०

२ पुष्पावरेण लोगो मूले मञ्जे तद्देव उवरिग्मि । सर्वेत्तासण शक्ति मुदिंगसठाणपरिणामो ॥ उच्च दक्षिण-
पक्षे सठाणो टकडिणगिरिसरिसो । अहवा कुळगिरिसरिसो आयदचउरउदरगमिभो ॥ अन् प ४, ४-५

३ म प्रत्यो 'सस्तहा' इति पाठ ।

४ प्रतिपु - 'मेत्त' इति पाठ ।

रज्जुवग्गमुहलौगणालिगन्मौ' । एसो पिंडिजमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होदि' । जदि लोणो परिसो ण घेप्पदि तो पदरगदकेरालिसेत्तसाहणद्ध वुत्त दो गाहाओ णिरत्थियाओ होज तत्थ वुत्तफलस्स अण्णहा सभयाभावा । काओ ताओ दो गाहाओ त्ति वुत्ते वुत्तवे—

मुह-तल्समास-अद्ध वुत्सेवगुण गुण च वेधेण ।

घणगणिद जाणेज्जो त्रेत्तासणसठिये खेत्ते' ॥ ९ ॥

रिखत हैं, चौदह राजु लम्बी एक राजुके वर्गप्रमाण मुखवाली लोकनाली जिसके गर्भमें है, ऐसा यह पिंडरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् $7 \times 7 \times 7 = 343$ राजु है ।

निशेषार्थ— लोकका उपर्युक्त विस्तार इसप्रकार है— लोक सर्घ आकारके मध्यमें स्थित है । उसका आयाम चौदह राजु है । पूर्व पश्चिम तलभाग सात राजु, लोकके आगे अर्थात् सात राजु ऊपर जाकर मध्यलोकमें एक राजु, लोकके पौनमाग अर्थात् साठे दस राजु ऊपर जाकर ग्रहलोकमें पाच राजु, और पूरे चौदह राजु ऊपर जाकर लोकके अन्तिम भागमें एक राजु विस्तार है । लोकका उत्तर दक्षिण विस्तार सर्वत्र सात राजु है । इसप्रकारके लोकके बीच एक राजु चौड़ी क्षुत्कोण और चौदह राजु ऊंची प्रतनाही है । पूर्व पश्चिम भागमें लोक घट-बढ़ विस्तारवाला है । इसप्रकार लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है ।

यदि इसप्रकारका लोक ग्रहण नहीं किया जायगा, तो प्रतरसमुदानगत केवलके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाएँ निरर्थक हो जायेंगी, क्योंकि, उन गाथाओंमें कहा गया घनफल लोकको अन्य प्रकारसे माननेपर सभ्य नहीं है ।

शका—घे दोनों गाथाएँ कौनसी हैं ?

समाधान—ऐसी शका करनेपर कहते हैं—

मुखभाग और तलभागके प्रमाणकी जोड़कर आधा करो, पुन उसे उत्सेघसे गुणा करो, पुनः मोटाईसे गुणा करो । ऐसा करनेपर घेत्तासन आकारसे स्थित अधोलोकक रूप क्षेत्रका घनफल जानना चाहिये ॥ ९ ॥

निशेषार्थ— घेत्तासन आकारवाले अधोलोकके मुखविस्तारका प्रमाण एक राजु है और तलविस्तारका प्रमाण सात राजु है । इन दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए । उसे आधा कर मधी लोककी ऊँचाईके प्रमाण सात राजुसे गुणा करनेपर अट्ठाईस हुए । इस सख्याको अधोलोककी उत्तर-दक्षिण दिशाकी मोटाई सात राजुसे गुणा करनेपर एकसौ छयानवे राजु हुए । यही अधोलोकका घनफल है । जैसे— $7 + 1 = 8$; $8 - 2 = 6$; $6 \times 7 = 42$; $42 \times 7 = 294$ घनराजु ।

१ लोवबहुमसहदेसे दवध सारध रज्जुपदारजुदा । चौदसरज्जुगुण तसणाला होदि शुणणामा ॥ वि सा १५

२ सत्तागासमगत तसत य बहुम-सदसभागदि । लोणो-सखपरदा जगसठिघण-पमाणो हु ॥ वि सा १

३ वि प १, १९५ अद् प ११, १०८

एगेलोगागासपदेमे एककेकको जदि परमाणू अच्छदि, तो लोगमेत्ता परमाणू भंति, सेसपोगगलानमभावो चेन, अणनगासाणमत्थित्तनिरोधा । ण च तेहि लोगमेत्तपरमाणूहि कम्म सरीर-घट पड त्थभादिसु एगो वि णिप्पज्जंदे, अणंताणतपरमाणुसमुदयसमागमेण त्रिणा एनिरुस्से ओसण्णासण्णियाए' वि सभत्ताभावा । होदु चे ण, सयलपोगगलद्वयस्स अणुनलद्विप्पसगादो, सच्चजीवाणमक्कमेण केवलणाणुप्पत्तिप्पसगादो च । एवमइप्पसंगो मा होदि त्ति अणुज्जमाणजीवाजीवमत्तण्णहाणुवचीदो अवगाहणधम्मिओ लोगागासो त्ति

समाधान—इस शकाका परिहार इसप्रकार हे— लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें यदि एक एक ही परमाणु रहे, तो लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण ही परमाणु होंगे, और शेष पुद्गलोंका अभाव हो जायगा, क्योंकि, जिन पुद्गलोंको अवकाश नहीं मिला, उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । तथा उन लोकमात्र परमाणुओंके द्वारा कर्म, शरीर, घट, पट और स्तम्भ आदिकोंमेंसे एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं हो सकती है, क्योंकि, अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायका समगम हुए बिना एक अवसन्नासन्न सङ्ग भी स्वरूपा होना संभव नहीं है ।

शका— एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं होवे, तो भी क्या हानि है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर समस्त पुद्गल द्रव्यकी अनुपलब्धिका प्रसंग आता है, तथा सर्व जीवोंके एक साथ ही केवलज्ञानकी उत्पात्तिका भी प्रसंग प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ— यहापर समस्त पुद्गलद्रव्यकी अनुपलब्धिका जो दूषण दिया है, उसका अभिप्राय यह है कि घट, पटादि कार्यों के देखनेसे ही कारणरूप पुद्गलपरमाणुओंके अस्तित्वका अनुमान होता है । शकाकारके कवनानुसार जब किसी भी वस्तुकी निष्पत्ति न होगी, ता उन कार्योंके निष्पादन कारणधर्मजाल परमाणु हैं, यह कैसे जाना जा सकेगा ? अतएव घट, पटादि कार्योंकी निष्पत्तिके अभावमें पुद्गलद्रव्यके अभावका प्रसंग आता है । तथा, सर्व जीवोंके एक साथ केवलज्ञानकी उत्पात्तिके प्रसंग प्राप्त होनेका जो दूषण दिया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि जब लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण अस्तित्वात् ही परमाणु होंगे, तो उनसे प्रथम तो एक कर्मणशरीरकी उत्पात्ति ही नहीं होगी । यदि थोड़ी देरके लिये यह कल्पना कर भी ली जाय कि असुर्यात परमाणुओंसे एक कर्मणशरीर या कर्मपिंड बन भी जाता हो, जो कि जीवक ज्ञानादिक गुणोंके आचरण करनेमें समर्थ है, तो भी यह किसी एक ही जीवके गुणोंका आचरण कर सकेगा, अनन्त जीवोंका नहीं । इस प्रकारसे भी सभी जीवोंके आचरणक कर्मका अभाव होनेसे केवलज्ञानकी उत्पात्तिका प्रसंग प्राप्त होता है । अथवा, किसी एक जीवके द्वारा उस कर्मणशरीरका शुद्ध ध्यानाग्निसे विनाश किये जानेपर समस्त ही जीवोंके केवलज्ञानकी उत्पात्ति का प्रसंग आता है ।

इस प्रकार का अतिप्रसंग दोष न होवे, इस लिए अचगाह्यमान जीव और अजीव

१ परमाणुहि अणताणतदि बहुविहेदि दवेदि । ओसण्णासण्णो वि ॥ वि प १, १०२ अनंताणतपरमाणु-
सपाठपरिमाणदाविर्भूता उत्सहासकैका । त रा. वा ३, ३८

सह विरोधो, एत्थ पि दोसु दिमासु चउच्चिहविकरमदंसणादो । ण च सत्तरज्जुवाहल्ल करणाणिओगमुच्चिहद्ध, तस्स तत्थ विधिप्पडिमेघाभावादो । तम्हा एरिसो चव लोमो त्ति घेचच्चो ।

एत्थ चोदगो भणदि- कथमणता जीवा असरोज्जपदेसिए लोए अच्छति । जदि एक्कग्गिह आगामपदेसे एक्को चव जीवो अच्छदि तो असरोज्जजीवाणं धत्ती होदण अवरोत्ति जीवाणमलोमे अच्छण पोयेदि, तेसिमभापो वा । ण च तेसिमभावो अत्थि, 'अणता जीवा' धि अणेण सुत्तेण सह विरोधा । ण च अलोगागासे वि सेसाणमच्छण मत्थि, लोगालोगनिहायस्स अभावात्तीदो । ण च एगागासपदेमे एगो जीवो अच्छदि, 'एगजीवस्स जहणोगाहणा वि अगुलस्म असरोज्जदिभागमेत्ता' त्ति वेदणाखेचविधिणे परूविदत्तादो । तम्हा लोगमज्झग्गिह जदि होत्ति, तो लोगस्म असरोज्जदिभागमेत्तेहि चव जीविहि होदणमिदि ?

एत्थ परिहारो बुच्चदे- णेद घड्ढे, पोगगलाण पि असरोज्जत्तपसगादो । कथ ?

तीसरी गाथाके साथ भी विरोध नहीं आता है, क्योंकि, यद्वापर भी पूर्व और पश्चिम इन दोनों ही दिशाओंमें गाथोक्त चारों ही प्रकारके विष्कम्भ देखे जाते हैं । तथा लोकके उत्तर दक्षिणभागमें सर्वत्र सात राजुना वाहल्य भी करणाणुयोगसूत्रके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि, करणाणुयोगसूत्रमें सात राजुके वाहल्यके विधान व प्रतिषेधका अभाव है । इसलिए अभी कहे गए आकारवाला ही लाङ्ग है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

शुद्धा—यद्वापर शकाकार कहता है कि असरप्यात प्रदेशवाले लोकमें अनन्त सख्या वाले जीव कैसे रह सकते हैं ? यदि एक आकाशके प्रदेशमें एक ही जीव रहे, तो भी सर्व लोकमें असरप्यात जीवोंकी स्थिति होकर अवशिष्ट अन्य जीवोंका अलोकाकाशमें रहना प्राप्त होता है, अथवा उन शेष जीवोंका अभाव प्राप्त होता है । किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, उक्त कथनका 'जीव अनन्त है' इस सूत्रके साथ विरोध आता है । और न अलोका काशमें भी शेष जीवोंका रहना घनता है, क्योंकि ऐसा माननेपर, लोक और अलोकके विभागका अभाव प्राप्त होता है । दूसरी बात यह भी है कि आकाशके एक प्रदेशमें एक जीव रहता भी नहीं है, क्योंकि, 'एक जीवकी अघन्य अघगाहना भी अगुलके असरप्यातमें भागमात्र होती है' ऐसा वेदनाखंडक वेदनाक्षेत्रविधान नामक अनुयोगद्वारमें प्रतिपादन किया गया है । इसलिये यदि लोकक मध्यमें जीव रहते हैं, तो व लोकक असरप्यातमें भागमात्र ही होना चाहिए ?

समाधान—अथ यद्वापर इस शकाका परिहार कहते हैं—शकाकारका उक्त कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त कथनके मान लेनेपर पुद्गलोंके भी असरप्यातपनेका प्रसंग आ जाता है ।

शुद्धा—पुद्गलोंके असरप्यात होनेका प्रसंग कैसे आ जायेगा ?

१ म प्रती ' अती ', अ प्रती ' अती ', क प्रती ' वचा ' इति पाठः ।

ओरालिय-तेजा कम्मडयत्रिस्मसोत्रचयाणं पादेक्ष सच्चजीवेहि अणतगुणाणं पडिपरमाणुमिह
 तत्तियमेत्ताणं तमिह चेत्त खेत्ते ओगाहणा भवदि । एत्तमेगजीवेणच्छिद्रअंगुलस्स असखेजदि-
 भागमेत्ते जहण्णखेत्तमिह समाणोगाहणो होदूण त्रिदिओ जीवो तत्थेव अच्छिदि ।
 एवमणताणताणं समाणोगाहणाणं जीवाण तमिह चेत्त खेत्ते ओगाहणा भवदि । तदो अणो
 जीवो तमिह चेत्त मज्झिमपदेसमतिम काउण उवण्णो । एदस्स त्रि ओगाहणाए अणंता-
 णतजीवा समाणोगाहणा अच्छति त्ति पुच्च व परूदेच्च । एवमेगेपपेसा सच्चदिसासु
 वट्टापेदच्चा जाव लोगो आवुण्णो त्ति । एत्थ एक्केओगाहणाए ठिदजीवाणमप्पावहुग
 मणिसामो । त जहा— तेउकाइया जीवा असखेजा लोगा । ततो पुट्टिकाइया
 त्रिसेसाहिया । आउकाइया जीवा त्रिसेसाहिया । पाउकाइया जीवा त्रिसेसाहिया । ततो
 वणप्फदिकाइया अणतगुणा त्ति । अणेण पयारेण सच्चजीवरासिणा लोगो आवुण्णो त्ति
 सैद्देद्वं, अणहा पुच्चुत्तटोसप्पसागदो ।

..

अवगाहना होती है। पुन औद्धारिकशरीर, तैजस्कशरीर और कार्मणशरीरके विन्नसोपचर्योका,
 जो कि प्रत्येकसर्व जीवोंसे अनन्तगुणे हैं, और प्रत्येक परमाणुपर उतने ही प्रमाण हैं, उनकी भी
 उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। इसप्रकार एक जीवसे व्याप्त अणुके असख्यातवें भागमान
 उसी उच्च क्षेत्रमें समान अवगाहनावाला होकरके दूसरा जीव भी रहता है। इसीप्रकार
 समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीवोंकी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। तत्पश्चात्
 दूसरा कोई जीव, उसी ही क्षेत्रमें उसके मध्यवर्ती प्रदेशमें अपनी अवगाहनाका अन्तिम
 प्रदेश करके उत्पन्न हुआ। इस जीवकी भी अवगाहनामें, समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त
 जीव रहते हैं, इसप्रकार यहा भी पूर्वके समान प्ररूपण करना चाहिये। अर्थात्, उस क्षेत्रमें
 स्थित घनलोकमात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औद्धारिकशरीरके परमाणु,
 औद्धारिकशरीरसे अनन्तगुणे तैजस्कशरीरके और इससे अनन्तगुणे कार्मणशरीरके परमाणु
 भी हैं। पुन इन तीनों शरीरोंके सर्व जीवोंसे अनन्त गुणित विन्नसोपचय भी उसी प्रदेशपर
 विद्यमान ह। इसप्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीव उसी क्षेत्रमें रहते हैं।
 इसप्रकारसे लोकके परिपूर्ण होनेतक सभी विश्वोंमें लोकाका एक एक प्रदेश बढाते जाना
 चाहिये। अब यहापर उत्सैध घनाणुके असख्यातवें भागप्रमाण एक एक अवगाहनामें स्थित
 जीवोंका अल्पबहुत्त कहते ह। यह इसप्रकार है— तैजस्कायिक जीव असख्यात लोकप्रमाण
 हैं। तैजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं। पृथिवीकायिक जीवोंसे
 जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं। जलकायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं।
 वायुकायिक जीवोंसे घनरूपतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं। इसप्रकारसे सर्व जीवराशिके द्वारा
 यह लोकाकाश परिपूर्ण है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिये, अन्यथा पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग प्राप्त
 होता है।

१ जीवादी णतगुणा पडिपरमाणुमिह विरसोवचया । जवेण य समवेदा एक्के पडि समाणा ह ॥
 गो जी २५९

इच्छिदव्यो खीरकुम्भस्स मधुकुंभो व्व ।

तम्हा ओगाहणलक्खणेण सिद्धलोगागासस्स ओगाहणमाहप्पमाइरियपरंपरागादोवेदे सेण भाणिस्सामो । त जहा— उस्सेहघणगुलस्स असखेज्जदिभागमेत्ते खेत्ते सुट्टमणिगोदजीवस्स जहण्णोगाहणा भवदि' । तम्हि द्विदघणलोगमेत्तजीवपदेसेसु पडिपत्तेसमभगसिद्धिएहि अणत्तगुणा, सिद्धाणमणत्तभागमेत्ता होदूण द्विदओरालियसरीरपरमाणूणं त चेत्त खेत्त मोगास जादि' । पुणो ओरालियसरीरपरमाणूहिंतो अणत्तगुणाण तेजइयसरीरपरमाणूणं पि तम्हि चेत्त खेत्ते ओगाहणा भवदि । पुव्वभणिदत्तेजइयपरमाणूहिंतो अणत्तगुणा कम्मइय परमाणू तेणेत्त जीवेण मिच्छादिकारणेहि सच्चिदा पडिपदेसमभवसिद्धिएहि अणत्तगुणा सिद्धाणमणत्तभागमेत्ता तत्थ भवति', तेमि पि तम्हि चेत्त खेत्ते ओगाहणा भवीदि । पुणो

द्रव्योंकी सत्ता अन्यथा न घन सक्नेसे क्षीरकुम्भका मधुकुम्भके समान अवगाहन धर्मवाला लोकाकाश है, ऐसा मान लेना चाहिए ।

विशेषार्थ—जैसे क्षीरकुम्भका मधुकुम्भमें अवगाहन हो जाता है, अर्थात् मधुसे भरे हुए कलशमें तत्प्रमाणवाले दूधमें भरे हुए कलशका यदि दूध डाल दिया जाय, तो समस्त दूध उसीमें समा जाता है, ऐसी अवगाहन शक्ति देखी जाती है । उसीके समान आकाशकी भी ऐसी अवगाहना शक्ति है कि असंख्य प्रदेशों होते हुए भी उसमें अनन्त जाय ओर अनन्तान्त पुद्गलोंका अवगाहन हो जाता है ।

इसलिए अब हम अवगाहन लक्षणसे प्रसिद्ध लोकाकाशके अवगाहन माहात्म्यको आचार्य परम्परागत उपदेशके अनुसार कहते हैं । वह इस प्रकार है— उत्सेधघनागुलके असंख्यातयं माग मात्र क्षेत्रमें सूक्ष्म निर्गोदिया जीवकी जघन्य अवगाहना है । उस क्षेत्रमें स्थित घनलोक मात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके धनन्तयं भागमात्र होकरके स्थित औदारिकशरीरके परमाणुओंका यही क्षेत्र अवकाशपनेको प्राप्त होता है । पुन औदारिकशरीरके परमाणुओंसे अनन्तगुणे तेजस्कशरीरके परमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है । तथा पूर्वमें कहे गए तीजस परमाणुओंसे अनन्तगुणे, उसी ही जीवके द्वारा मिथ्यात्व, अधिरति आदि कारणोंसे सचित और प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे तथा सिद्धोंके धनन्तयं भाग मात्र कर्मपरमाणु उस क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिए उन कर्मपरमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें

१ सुट्टमणिगोदअपञ्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयमिदि । अगुलअसलमाग जहण्णय । गो जा ९५

२ भवियु 'जदि' इति पाठ ।

३ प्रदेशतोऽसंख्येयशुण मानैज्जत्तात् । अनन्तगुण परे । त म् २, ३८-३९ । परमाणूहि अणत्तहि कण्ण घण्णा इ इदि सत्ता इ । तदि अणत्तहि निघमा समथपबद्धा इवे एको ॥ ताण समथपबद्धा सिट्ठअसखेज्जमाग धलिदक्कमा । गवण य तेजइया पर परं होदि सुट्टम सु ॥ गो जी २४५, २४६

वा जावुप्पज्जमाणखेत्तं ताव गत्तूण सररीरतिगुणवाहद्वेण अण्णहा वा अंतोमुहुत्तमच्छणं । वेदण कसायसमुग्धादा मारणतियसमुग्धादे क्रिण्ण पदति ति चुत्ते ण पदंति । मारणतियसमुग्धादो णाम वद्धपग्भरियाउआणं चेव होदि । वेदण कसायसमुग्धादा पुण वद्धाउआणमवद्धाउआण च होंति । मारणतियसमुग्धादो णिच्छएण उप्पज्जमाणदिसाहिमुहो होदि, ण चेअराणमेगदिसाए गमणणियमो, दससु वि दिसासु गमणे पडिवद्धत्तादो । मारणतियसमुग्धादस्स आयामो उक्खस्सेण अप्पणो उप्पज्जमाणखेत्तपज्जमाणो, ण चेअराणमेसणियमो ति । तेजासररीरसमुग्धादो णाम तेजइयसररीरिउच्चवणं । तं दुविह णिस्सरणप्पयं अणिस्सरणप्पयं चेदि । तत्थ ज तं णिस्सरणप्पयं तेजइयसररीरिउच्चवणं त पि दुविह,

क्रजुगतिद्वारा अथवा विग्रहगतिद्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रतक जाकर, शरीरसे त्रिगुणे विस्तारसे अथवा अन्यप्रकारसे अतर्मुहूर्त तक रहनेका नाम मारणान्तिकसमुद्धात है ।

शंका—वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धात ये दोनों मारणान्तिकसमुद्धातमें अन्तर्भूत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातका मारणान्तिकसमुद्धातमें अन्तर्भूत नहीं होता है, क्योंकि, जिन्होंने परभवकी आयु पाघ ली है, ऐसे जीवोंके ही मारणान्तिकसमुद्धात होता है । किन्तु वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धात, वज्रायुष्क जीवोंके भी होते हैं और अयज्जायुष्क जीवोंके भी होते हैं । मारणान्तिकसमुद्धात निश्चयसे आगे जहां उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिसुख होता है । किन्तु अन्य समुद्धातोंके इसप्रकार एक दिशामें गमनका नियम नहीं है, क्योंकि, उनका दर्शो दिशाओंमें भी गमन पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्धातकी लम्बाई उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, किन्तु इतर समुद्धातोंका यह नियम नहीं है ।

तैजस्कशरीरके विसर्पणका नाम तैजस्कशरीरसमुद्धात है । यह दो प्रकारका होता है, निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक । उनमें जो निस्सरणात्मक तैजस्कशरीरविसर्पण है वह

१ औपकमिक्कासुपकमासु क्षयाविभूतमरणातप्रयोजनो मारणान्तिकसमुद्धात । त रा वा १, २०

२ अहारमारणान्तिकसमुद्धातावेकदिको \times शेवा पच समुद्धाता पशुदिका । त रा वा १, २०
आहारमारणतियदुग्ग पि णियमेण एगदिसिग तु । दस दिसिगदा हु सेसा पच समुग्धादया होंति ॥ गो जी ६६९

३ जीवातुमहोपघातप्रवणतेज सररीरिर्वैतनार्थस्तेज समुद्धात । त रा वा १, २०

४ तद् द्विविध मि सरणात्मकमितरस्य । औदारिकवेदिकारिकहारकदेहात्म्यतरस्य देहस्य दासिहेतुरनि सरणात्मक । यदेकमणिरनर्यातिक्रमस्य जावप्रदक्षलवृत्तं बहिर्निर्गम्य दास्य परिवृत्त्यावहितमिण्यनिष्पावकहरितपरिसूणस्थाढीममिणिवचति पक्का च निवर्तते । अथ चिरमवतिष्ठते अभिसाहाकार्यो भवति तदेतमि सरणात्मक । त रा वा २, ४९

सच्चजीवाणमवत्था तिप्पिहा भण्दि, सत्थाण-समुग्घादुरमादभेदेण । तत्थ सत्थाण
 दुविह, सत्थाणसत्थाण निहाररदिसत्थाण चेदि । तत्थ सत्थाणसत्थाण णाम अप्पणो
 उप्पण्णनामे णयेरे रण्णे ना सयण णिसीयण चरुमणादियापारजुत्तेणत्ठण' । विहारवदि
 सत्थाण णाम अप्पणो उप्पण्णगाम णयर-रप्णादीणि छट्ठिय अप्पत्थ सयण णिसीयण
 चरुमणादिपारोणत्ठण' । समुग्घादो' सत्तत्रियो, वेदणसमुग्घादो क्कमायसमुग्घादो वेउच्चिय
 समुग्घादो मारणतियसमुग्घादो तेजासरीरसमुग्घादो आहारसमुग्घादो केवलिसमुग्घादो
 चेदि । तत्थ वेदणसमुग्घादो णाम अक्खिर मरो वेदणादीहि जीवाणमुक्खस्सेण सरीरतिगुण
 निप्फुज्जण' । क्कमायसमुग्घादो णाम कोध भयादीहि सरीरतिगुणनिप्फुज्जण' । वेउच्चिय
 समुग्घादो णाम देव णेरइयाण वेउच्चियसरीरोदइछाण साभाणियमागारं छट्ठिय अप्पणागोरण
 च्छण । मारणतियसमुग्घादो णाम अप्पणो उट्ठमाणसरीरमच्छट्ठिय, रिजुगईए निग्गहगईए

स्वस्थान, समुद्धात और उपपादके भेदसे सर्व जीवोंकी अवस्था तीन प्रकारकी है।
 उनमें स्वस्थान दो प्रकारका है— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान । उनमेंसे अपने
 उत्पन्न होनेके प्रथममें, नगरमें अथवा अरण्यमें सोना, बैठना, चलना आदि व्यापारसे
 युक्त होकर रहनेका नाम स्वस्थानस्वस्थान है । अपने उत्पन्न होनेके प्रथम, नगर अथवा अरण्य
 आदिको छोड़कर अथवा शयन, निर्वादन और परिभ्रमण आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका
 नाम विहारवत्स्वस्थान है । समुद्धात सात प्रकारका है— १ वेदनासमुद्धात, २ क्कपायसमुद्धात,
 ३ वैक्रियिकसमुद्धात, ४ मारणातिकसमुद्धात, ५ तैजस्कशरीरसमुद्धात, ६ आहारकशरीर
 समुद्धात, और ७ केवलिसमुद्धात । उनमेंसे नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोंके
 प्रदेशोंका उत्कृष्ट शरीरसे तिगुणे प्रमाण विसर्पणका नाम वेदनासमुद्धात है । क्रोध, भय
 आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुणे प्रमाण प्रसर्पणका नाम क्कपायसमुद्धात है ।
 वैक्रियिकशरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोड़कर
 अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिकसमुद्धात है । अपने वर्तमानशरीरको नहीं छोड़कर

१ तत्र तावन् उत्पन्नप्राणादिसंज्ञे तन् स्वस्थानस्वस्थानम् । गो जा जा प्र ५४३

२ विप्रलितपयावपरिणतन परिभ्रमिमुचिचतस्य तत्रिहारवत्स्वस्थानमिति । गो जी जा प्र ५४३

३ हतगमिन्प्राणात्वात्समुदात्मप्रदेशानां बहिर्दृग्मन समुद्धात । स मत्तविध । त रा वा १, २०, मूल
 सरीरमच्छिद्य उत्तरदहस जीवपिंडस्य । णिग्गमण द्ढादो होदि समुग्घादणात्तु ॥ गो जा ६६८ वेदनादिवत्तेण
 निजसरीराज्जावप्रदेशानां बहि प्रदेश तत्थायोग्यविसर्पण समुदयात् । गो जी जा प्र ५४३

४ तत्र कातिपादिप्राणनिपादिप्रयत्नस्य सतापापादितवेदनाहतो वदनासमुद्धात । त रा वा १, २०

५ द्वितयप्रत्ययमक्कपापादितकोधादिहत्त क्कपायसमुद्धात । त रा वा १, २०

६ एकवपूयववनानाविधमिन्क्रियशरीरात्प्रचारप्रहणादिविक्रियाप्रयोजनां बक्रियिकसमुद्धात । त रा
 वा १, २०

वा जाबुप्पजमाणसेत्तं तान गत्तूण सरीरतिगुणनाहृत्तेण अण्णहा वा अतोमुहुत्तमच्छणं । वेदण कसायसमुग्धादा मारणंतियसमुग्धादे किण्ण पदंति च्चि बुत्ते ण पदंति । मारणंतियसमुग्धादो णाम वद्धपरभनिययाउज्जाणं चेन होदि । वेदण कसायसमुग्धादा पुण वद्धाउआणमवद्धाउआण च होंति । मारणतियसमुग्धादो णिच्छएण उप्पज्जमाणदिसाहिमुहो होदि, ण चेअराणमेगदिसाए गमणणियमो, वससु पि दिसासु गमणे पडिउत्तादो । मारणंतियसमुग्धादस्स आयामो उव्वस्सेण अप्पणो उप्पज्जमाणसेत्तपज्जसाणो, ण चेअराणमेसणियमो त्ति । तेजासरीरसमुग्धादो णाम तेजइयसरीरनिउच्चणं । तं दुपिह णिस्सरणप्पय अणिस्सरणप्पयं चेदि । तत्थ जं त णिस्सरणप्पग तेजइयमरीरनिउच्चण त पि दुपिहं,

अनुगतिद्वारा अथवा विप्रद्वगतिद्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रक जाकर, शरीरसे तिगुणे विस्तारसे अथवा अयप्रकारसे अतर्म्हर्न तक रहनेका नाम मारणान्तिक समुद्धात है ।

शुद्धा—वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धात ये दोनों मारणान्तिकसमुद्धातमें अन्तर्भूत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातका मारणान्तिकसमुद्धातमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, जिन्होंने परभवकी आयु गण्य ली है, ऐसे जीवोंके ही मारणान्तिकसमुद्धात होता है । किन्तु वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धात, वज्रायुक्त जीवोंके भी होते हैं और अयुक्त जीवोंके भी होते हैं । मारणान्तिकसमुद्धात निश्चयसे आगे जहा उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिसूत्र होता है । किन्तु अन्य समुद्धातोंके इसप्रकार एक दिशामें गमनका नियम नहीं है, क्योंकि, उनका दशा दिशाओंमें भी गमन पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्धातकी लम्बाई उत्कृष्ट. अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, किन्तु इतर समुद्धातोंका यह नियम नहीं है ।

तैजस्कशरीरके विसर्पणका नाम तैजस्कशरीरसमुद्धात है । यह दो प्रकारका होता है, निस्सरणारमक और अनिस्सरणारमक । उनमें जो निस्सरणारमक तैजस्कशरीरविसर्पण है यह

१ औपकमिहानुपक्रमानु स्याविभूतमारणातप्रयोजना मारणान्तिकसमुद्धात । त १। वा १, २०

२ आहारमारणातिक्कसमुद्धातावकदिक्की $\times \times$ सेया पच समुद्धाता पश्चिमा । त १ वा १, २०

आहारमारणातिक्कम पि नियमेण प्पादित्तम तु । दस दिसिगदा तु सेसा पच समुग्धाद्या होंति ॥ गो जी ६६९

३ जीवानुमहोपघातमवणतेज शरीरनिवर्तनायस्तेज समुद्धात । त १ वा १, २०

४ एव द्विविधं नि सराणमकमित्तरथ । औदारिक्कविधिकाराएदेहान्यतरथ देहरय दाविहेतुरानि सराणमक । वठेवमकारिपरयतिकुद्धस्य जीवमवेष्टण्टु वदिर्मिक्कम्य दान पविट्टयाव तेषमान निष्वावकइतिपरिपूर्णरथाआमगिरिव पचति पक्का च निवर्तते । अय चिस्समवतिष्ठे अमिहाराद्योपे मवति त्तेदत्रनि सराणमक । त १ वा २, ४९.

पसत्थमपसत्थ चेदि । तत्थ अप्पसत्थ णरहजोयणायाम णवजोयणत्रित्थार घच्चिअगुलस्स मत्तेज्जदिभागगहल्ल जासवणकुसुमसंकास भूमिपव्वदादिदहणवरत्तम, पडिक्खत्ताहिय रोमिंधणं वामसप्पभय इच्छियेत्तमेत्तप्रिसप्पण । जं त पसत्थ त पि एरिस चैय, णरि हसधरल दक्खिणमसभय अणुकपाणिमित्त मारि रोगादिपसमणवरत्तम । ज तमणिससरणप्पय तेज्जयमरीर तेणेत्य अणधियारो । आहारसमुग्घादो णामपत्तिट्ठीण महारिंसीण होदि । त च इत्थुस्सेध हमधरल सव्वगसुदर गणमेत्तेण अण्येयजोयणलक्खगमणक्खम अप्पडिहयगमण उत्तमगसभय, आणाकणिट्ठदाए असजमग्गुलदाए च लद्धप्पमरुव' । केवलिसमुग्घादो' णाम दड क्काड पदर लोगपूरणभेएण चउत्तिहो । तत्थ दड समुग्घादो णाम पुव्वसररीरवाहल्लेण तत्तिगुणगाहल्लेण वा सनिक्खरमादो सादिरेयत्तिगुण परिट्ठएण केवलिजोत्तपदेसाण दडागारेण देसुणचोदसरज्जुप्रिसप्पण । क्काडसमुग्घादो णाम

भी दो प्रकारका है, प्रशस्ततैजस चार अप्रशस्ततैजस । उनमें अप्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस शरीरसमुद्घात, णरह योजन लम्बा, नो योजन विस्तारवाला, सव्वगुलके सख्यातर्षे भाग मोटाईवाला जपाहुसुमके सदृश लालवर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके जलनेमें समर्थ, प्रति पक्षरहित रोपरूप इन्धनवाला, बायें कंधेसे उत्पन्न होनेवाला आर इच्छिन क्षेत्रप्रमाण विस् र्थण करनेवाला होता है । तथा जो प्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजसशरीरसमुद्घात है, वह भी विस्तार आदिमें तो अप्रशस्ततैजससे ही समान है, किन्तु रतनी विशेषता है कि यह इसके समान धरलवर्णवाला है, दाहिने कंधेसे उत्पन्न होता है प्राणियोंकी अनुकम्पाके निमित्तसे उरयक्ष होता है और मारी, रोग आदिके प्रशमन करनेमें समर्थ होता है । इनमेंसे जो अनिस्सरणात्मक तैजसशरीरसमुद्घात है, उसका यहापर अधिकार नहीं है ।

जिनको श्राद्धि प्राप्त नहीं हुई है, ऐसे महापियोंके आहारकसमुद्घात होता है । यह एक हाव ऊंचा, इसके समान धरल वर्णवाला, सर्वांगसु द्र, क्षणमात्रमें कई लाख योजन गमन करनेमें समर्थ, अप्रतिहत गमनवाला, उत्तमाग अर्थात् मस्तकसे उत्पन्न होनेवाला तथा जो आद्याकी अर्थात् श्रुतज्ञानकी फनिष्ठना अर्थात् हीनताके होनेपर और असपमकी घट्टलताके होनेपर जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया है, ऐसा है ।

दड, कपाट, प्रतर आर लोकपूरणके भेदसे केवलिसमुद्घात चार प्रकारका है । उनमें जिसकी अपने विष्कभसे कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्वशरीरके बाह्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने घाटस्वरूप दडाकारसे केवलीके जीवप्रदेशोंका कुछ कम चौद्व राजु

१ स प सूत्र ५९ (प्र भाग पृ २५७; तृ भाग प्रस्तावना शका १८, पृ २७)

२ अथोत्तविधिनाऽस्त्यसत्तपशूशनाधमदणप्रयोजनाऽऽहारकशरीरनिर्वृत्यर्थे आहारकसमुद्घात । त रा वा १, १० गो जा २३६, २३७

३ वैदनीयरय बहुत्वादल्पत्वाच्चतुषोऽन्तरीरापूर्वकमायुःसमकरणार्थं द्रव्यस्वभाववात् साराद्रव्यरय केनैवैव बुद्धुशक्तिर्मात्रे पशुमदेह्रयात्मपदेशानां बहिः समुद्घातन वैयत्तिसमुद्घात । त रा वा १, २०

पुत्रिल्लनाहल्लायामेण वादवल्लयपदिरिचसञ्चरखेत्तावूरण । पदरसमुग्घादो णाम केवल्लि-
जीपदेसाणं वादवल्लयरुद्धलोगखेत्त मोत्तूण सञ्चलोगावूरणं । लोणपूरणममुग्घादो णाम
केवल्लिजीपदेसाणं घणलोगमेत्ताण सञ्चलोगावूरणं । उच्च च —

वेदण क्कसाय वेउत्तियओ य मरणतिओ समुग्घादो ।

तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीण तु' ॥ ११ ॥

उच्यते एषनिहो । सो वि उप्पण्णपट्टमसमए चेय होदि' । तत्थ उच्चुगदीए
उप्पण्णानं खेत्त चहुय ण लब्धदि, संकोचिदासंसजीपदेसादो । विग्गहो तिविहो, पाणि-
मुद्दा लागलिओ गोमुत्तिओ चेदि । तत्थ पाणिमुद्दा एगविग्गहा' । विग्गहो वक्को कुटिलो

कैलनेका नाम दृडसमुद्धात है । दृडसमुद्धातमें यथाये गये बाह्य और आयामके द्वारा
घातचलयसे रहित सपूर्ण क्षेत्रके व्याप्त करनेका नाम कपाटसमुद्धात है । केवली भगवान्के
जीवप्रदेशोंका घातचलयसे रुके हुए लोकक्षेत्रको छोड़कर सपूर्ण लोकमें व्याप्त होनेका नाम
मनरसमुद्धात है । घनलोकप्रमाण केवली भगवान्के जीवप्रदेशोंका सर्व लोकके व्याप्त करनेको
केवलिसमुद्धात कहते हैं । यद्वा भी है—

निशेषार्थ — पूर्वशरीरके बाह्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाह्यरूप बड़ाकारसे,
ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि जब सङ्कासतसे विराजमान केवली भगवान् समुद्धात
करते हैं उस अथस्थामें पूर्वशरीरके बाह्यरूपसे कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले बड़ाकार आत्म-
प्रदेश होते हैं । तथा जब पञ्चासनस्थ केवली भगवान् समुद्धात करने हैं, तब पूर्वशरीरसे
तिगुने बाह्यरूपी कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले बड़ाकार आत्मप्रदेश निकलते हैं, इसलिये
घटलकारने 'पुव्वसरीराहल्लेण तात्तिगुणमाहल्लेण वा' ऐसा विशेषण दिया है ।

वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, धैक्रियिकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात, तैजस-
समुद्धात, छटा आहारकसमुद्धात और सातवा केवलिसमुद्धात इसप्रकार समुद्धात सात
प्रकारका है ॥ ११ ॥

उपपाद एकप्रकारका है और यह भी उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही होता है । उपपादमें
अजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंका क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, इसमें जीवके समस्त
प्रदेशोंका संकोच हो जाता है । विप्रद तीन प्रकारका है, पाणिमुत्ता, लागलिक और गोमूत्रिक ।
इनमेंसे पाणिमुत्ता गति एक विप्रदवाली होती है । विप्रद, दम और कुटिल, ये सब एकार्थ

१ गो जी ११७

२ पत्तिपापूर्वमवस्य अत्तरममममममये प्रवर्तनमुपपाद । गो जी जी प्र ५५१

३ एकविमहा गति पाणिमुत्ता । त रा वा २, २८

त्ति एगद्वो' । लागलिओ दुभिग्गहो' । गोमुत्तिओ तिनिग्गहो' । तत्थ मारणतिण विणा विग्गहगदीए उप्पण्णाण उजुगदीए उप्पणपढमसमयओगाहणाए समाणा चेन ओगाहणा भवादि । णनरि दोण्हमेगाहणाण सठाणे समाणत्तणियमो णरियि । कुदो ? आणुपुब्बि सठाणणामकम्महेहि जाणिदमठाणाणमेगत्तनिरोधा । विग्गहगदीए मारणतिण कादूणुप्पण्णाण पढमसमए असग्गेज्जजोयणमेत्ता ओगाहणा होदि, पुच्च पसरिदएग दो तिदडण पढम समए उअसघाराभानादो ।

धावी नाम हैं । लागलिका गति दो विग्रहवाली होती है । और गोमूत्रिका गति तीन विग्रह वाली होती है । इनमेंसे मारणातिक समुद्धातके विना विग्रहगतिले उत्पन्न हुए जीवोंके ऋजुगतिसे उत्पन्न जीवोंके प्रथम समयमें होनेवाली अवगाहनाके समान ही अवगाहना होता है । विशेषता बेशक इतनी है कि दोनों अवगाहनाओंके आकारमें समानता का नियम नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले और सस्थान नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले सस्थानोंके एकत्वका विरोध है ।

विशेषार्थ—यहापर जो आनुपूर्वी और सस्थान नामकर्मसे जनित आकारोंमें एकत्वका विरोध बताया है उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें जीवका आकार आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे होता है क्योंकि, यहापर सस्थाननामकर्मका उदय नहीं होता है । किंतु ऋजुगतिमें आनुपूर्वी नामकर्मका उदय नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मका उदय कर्मणकाय योगवाली विग्रहगतिमें ही होता है । ऋजुगतिमें तो कर्मणकाययोग न होकर औदारिकमिश्र या कैक्रियिकमिश्रकाययोग ही होता है और जो कर्मकांड आदिमें इन दोनों मिश्रयोगोंमें सस्थान नामकर्मका उदय बताया गया है, आनुपूर्वीका नहीं । इससे सिद्ध है कि ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवके प्रथम समयमें ही विवक्षित क्षेत्रमें उत्पत्ति हो जानेसे सस्थान नामकर्मका उदय हो जाता है । इसलिए आनुपूर्वी ओर सस्थान नामकर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले आकार भिन्न ही होंगे, एकसे नहीं । विग्रहगतिमें आनुपूर्वीके उदयसे जीवके पूर्व शरीरका आकार रहता है, किंतु सस्थान नामकर्मके उदयसे वतमा पर्यायका आकार हो जाता है ।

मारणातिक समुद्धात करके विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके पहले समयमें असंख्यात योजनप्रमाण अवगाहना होती है, क्योंकि, पहले फैलाये गये एक, दो और तीन दंडोंका प्रथम समयमें सकोच नहीं होता है ।

१ विग्रहो 'याघात कैटिश्यमि पथं । स ति २ २७ विग्रहो 'याघात कैटिश्यमित्यनर्थात्तरं
त रा वा २, २७

२ म प्रयो 'लागलिजी' इति पाठ ।

३ विविमहा गतिर्लागलिका । त रा वा २, २८

४ विविमहा गतिगामूत्रिका । त रा वा २, २८

५ श्लोच कम्मे सरादिपत्तेयाहाकरालजुग मिसस । उअघादपणविग्गदुधाणति सठाणसद्दी णरियि ।।
गो क २१८

एदेहि दसहि प्रिसेतणेहि जहासंभय प्रिमिसिदमिच्छाद्दिआदि-चोहसजीवसमासाणं
 खेत्तपरूपणं कस्सामो । मत्थाणसत्थाण वेदण रुसाय मारणतिय उपपादेहि मिच्छाद्दि केवडि
 खेत्ते, सव्वलोगे । कुदो ? जेण सव्वजीवरासिस्स सखेज्जदिभागणूणो सव्वो जीवपुजो
 सत्थाणसत्थाणरासी वट्टेदे । वेदण कसायसमुग्घादग्दजीवा नि सव्वजीवरासिस्स सखेज्जदि-
 भागमेत्ता । मारणतियसमुग्घादग्दजीवा नि सव्वजीवरासिस्स सखेज्जदिभागमेत्ता । कुदो ?
 एदेसिं तिण्ह रासीण अप्पणो जीविदस्स सखेज्जदिभागमेत्तसमुग्घादकालत्तादो । उवपादरासी
 पुण सव्वजीवरासिस्स असखेज्जदिभागो', एगममयसचयाटो । तेणेदे पच्च नि गसिणो
 अणता, तदो सव्वलोगे भवंति । निहारदिसत्थाणमिच्छाद्दि केवडि खेत्ते', लोगस्स

इसप्रकार स्वस्थानके दो भेद, समुद्रातके सात भेद और एक उपपाद, इन दश विशेष
 णोंसे यथासम्भव विशेषताको प्राप्त मिथ्यादृष्टि आदि चोदह गुणस्थानोंके क्षेत्रका निरूपण
 करते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात, मारणातिकसमुद्रात, और
 उपपादकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ।

शुद्धा — किस कारणसे ?

समाधान— चूँकि, सर्व जीवराशिके सत्प्रायतवें भागमें न्यून शेष सर्व जीवसमूह
 स्वस्थानस्वस्थान राशिरूप रहता है । तथा वेदनासमुद्रात और कपायसमुद्रातको प्राप्त हुए
 जीव भी सर्व जीवराशिके सत्प्रायतवें भागप्रमाण हैं । मारणातिकसमुद्रातको प्राप्त हुए जीव भी
 सर्व जीवराशिके सत्प्रायतवें भागप्रमाण हैं, क्योंकि, उक्त तीन राशियोंके समुद्रातका काल
 अपने जीवनकालके सत्प्रायतवें भागप्रमाण है । उपपादराशि तो सर्व जीवराशिके असत्प्रायतवें
 भाग है, क्योंकि, उपपादराशि का सद्य एक समयमें होता है । अत स्वस्थानस्वस्थान आदि
 उक्त पाचों जीवराशिया अनन्त हैं और इसीलिये ये सर्व लोकमें पाई जाती हैं ।

विशेषार्थ— आगे मिथ्यादृष्ट्यादि चोदह गुणस्थानोंसे तथा मार्गणास्थानोंसे जीवोंके,
 क्षेत्र सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पाच प्रकारके
 लोकोंकी अपेक्षा बतलाया गया है । तीनसौ तैत्तरीय घनराजुप्रमाण सर्वलोकको सामान्यलोक
 कहते हैं । एकसौ छयानवे घनराजुप्रमाण या चार राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण लोकके अधो-
 भागको अधोलोक कहते हैं । एकसौ सैतालीस घनराजु या तीन राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण
 लोकके ऊर्ध्वभागको ऊर्ध्वलोक कहते हैं । ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके मध्यमें स्थित, पूर्व-
 पश्चिम दिशामें एक राजु चौड़े, उत्तर दक्षिण दिशामें सात राजु लम्बे और एक लाख योजन
 ऊंचे क्षेत्रको तिर्यक्लोक या मध्यलोक कहते हैं । दार्द द्वीपप्रमाण त्रिस्तुत अर्थात् पैंतलीस

१ सामान्याधुवतियमनुष्यलाकान् पच सत्थाप्यालाप क्रियते । गो जा जा प्र या ५४३

२ मरदि असखे जदिम तस्सासखा य विण्णहे हीति । तस्सासख दूरे उववादे तस्स सु असत्त ॥

असखेज्जदिभागमे । कुदो ? ण तान तसअपज्जचरासी विहरदि, तत्थ त्रिहायगदिणामकम्मस उदयाभावा । तसपज्जत्तरासिस्स पि सखेज्जदिभागो चेत्त विहरमाणरासी होदि । कुदो ? ममेदं बुद्धीए पडिगहिदस्सेत्त सत्थाण णाम । तत्तो वाहिं गतूणच्छण त्रिहारवदिसत्थाण । तत्थच्छणकालो मगाणामे अवट्ठाणकालस्म सखेज्जदिभागो त्ति । दोण्ह लोमाणमसखेज्जदि भागे । कुदो ? चत्तारि रज्जुवाहल्ल जगपदर अधोलोणपमाण होदि । तिण्णि रज्जुवाहल्ल जगपदरमुट्टलोणपमाण होदि । एदे दोण्णि पि लोणे तमपज्जत्तरासिस्स सखेज्जदिभागोण सखेज्जघणगुलगुणिदेण ओणद्धिदे सेहीए असखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति । सपेज्ज

लाख योजन चौडे और एकलाख योजन ऊंचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं । एक लोक सामायके पाच भेद करनेका अभिप्राय यह है कि विवक्षित जीवके वताये गए क्षेत्रका एक परिमाण समझमें आजाये । जहा जिन जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक वताया जाये, वहा सामाय लोकका ग्रहण करना चाहिए । जहा 'दो लोकोंका निर्देश किया जाये वहा अधोलोक और ऊर्ध्वलोक इन दो लोकोंका ग्रहण करना, जहा तीन लोकोंका निर्देश किया जाय, वहा अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यकलोकका ग्रहण करना, तथा, जहा चार लोकका निर्देश किया जाय, वहा मनुष्यलोकको छोडकर शेष चारों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए ।

विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव कृतिमे क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । चूंकि प्रसक्यायिक अपर्याप्तराशि तो विहार करती नहीं हैं, पर्यायिक, प्रसक्यायिक अपर्याप्तोंमें विहायोगति नामकर्मका उदय नहीं होता है । प्रसक्यायिक पर्याप्तोंके भी सख्यातवें भागप्रमाण राशि ही विहार करनेवाली होती है, पर्यायिक, 'यह मेरा है' इसप्रकारकी बुद्धिमे स्वीकार किया गया क्षेत्र स्वस्थान है । और उससे बाहर जाकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है । उस विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रमें रहनेका काल अपने आवासमें (स्वस्थानमें) रहनेके कालके सख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये विहारवत्स्वस्थान मिथ्या दृष्टि जीव दोनों लोकोंके अर्थात् अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसका कारण यह है कि अधोलोकका प्रमाण चार राजु मोटा जगप्रतर है और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण तीन राजु मोटा जगप्रतर है । सख्यात घनागुलगुणित प्रसक्यायिक पर्याप्तराशिके सख्यातवें भागसे इन दोनों ही लोकोंके भाजित करने पर जगश्रेणीका असख्यातवा भाग लब्ध जाता है ।

निर्देशार्थ—प्रसक्यायिक पर्याप्त जीवोंका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा सूच्यगुलके सख्यातवें भागके धर्मरूप भागहारसे भाजित जगप्रतर प्रमाण वताया गया है । इस प्रमाणवाली प्रसपर्याप्तराशिके भी सख्यातवें भाग प्रमाण ही विहारकरनेवाली राशि होती है । अब यदि एक प्रसपर्याप्त जीवकी मध्यम अवगाहना सख्यात घनागुल प्रमाण मानकर उससे विहारकरने वाली राशिके प्रमाणको गुणित भी किया जाय, तो भी उसका जगश्रेणीके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहना सिद्ध होता है, इसलिये यह सिद्ध होता है कि विहारकरनेवाली प्रसराशि ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असख्यातवें भागमें रहती है, पर्यायिक, इन दोनों लोकोंका प्रमाण जगश्रेणीके धर्मसे भी बहुत अधिक है ।

घणगुलगुणगारो कवमप्रगम्भदे ? बुचदे- सयपहणगिदपच्यपरभागद्वियतमपञ्चरासी
पहणो इयरकम्भभूमिजीविहितो दीहाउरो महल्लोगाहणो य । भोगभूमिसु पुण निगलिंदिया
णत्थि । पचिंदिया नि तत्थ सुट्टु थोरा, सुहकम्माहियजीवाण बहुवाणमसंभवादे ।

सयपहपच्यपरभागद्वियजीवाणमोगाहणा महल्लेत्ति जाणाणसुचमेदं—

स ० पुण बारह जोयणाणि गोम्ही भव तिकोसं तु ।

*मरो जोयणमेग म जे पुण जोयणमहस्सो ॥ १२ ॥

एदाओ ओगाहणाओ घणंगुलपमाणेण कीरमाणे सखेज्जाणि घणंगुलाणि हरति,
तेण संखेज्जघणंगुलगुणगारो विहारउदिसत्थाणरासिस्स ठविदो । सयंपहणगिदपच्यदस्स
परदो जहणोगाहणा नि जीवा अत्थि च्चि चे ण, मूलग्गसमासं काऊण अद्धं कदे वि
संखेज्जघणंगुलदसणादो । त कध ? तत्थ ताव भमरखेत्ताणयणविधाण भण्णिस्सामो ।

शका—त्रसकायिक पर्यातराशिके सख्यातवें भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान राशिका
गुणकार सख्यात घनागुल हे, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—प्रकृतमें स्वयप्रभनगेन्द्र पर्वतके परभागमें स्थित त्रसकायिक पर्यात
जीवराशि प्रधान है, क्योंकि, यह राशि इतर कर्मभूमिज जीवोंकी अपेक्षा दीर्घायु और बड़ी
अवगाहनावाली है । भोगभूमिमें तो विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं और यहापर पचेन्द्रिय
जीव भी स्वल्प होते हैं, क्योंकि, शुभ कर्मके उदयकी अधिकतावाले बहुत जीवोंका होना
असभव है ।

स्वयप्रभ पर्वतके परभागमें स्थित जीवोंकी अवगाहना सबसे बड़ी होती है, इस बातका
ज्ञान करानेके लिये यह गाथासूत्र है—

शय नामक द्वीन्द्रिय जीव तारह योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । गोम्ही
नामक त्रिन्द्रिय जीव तीन कोसकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । भ्रमर नामक चतुरिन्द्रिय
जीव एक योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है, और महामत्स्य नामक पचन्द्रिय जीव एक
हजार योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । १२ ॥

योजनों और कोसोंमें कहीं गई इन अवगाहनाओंको घनागुलप्रमाणसे करनेपर सख्यात
घनागुल होते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थानराशिना गुणकार सख्यात घनागुल स्थापित
किया है ।

शका—स्वयप्रभनगेन्द्र पर्वतके उस ओर जघन्य अवगाहनावाले भी जीव पाये
जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जघन्य अवगाहनारूप मूल अर्थात् आदि और उत्कृष्ट
अवगाहनारूप अन्त, इन दोनोंको जोड़कर आधा करनेपर भी सख्यात घनागुल देखे जाते हैं ।
उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहनाओंको जोड़कर आधा करने पर सख्यात घनागुल कैसे आते हैं,
आगे इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये उन द्वीन्द्रियादिनीकी अवगाहनाओंमेंसे पहले भ्रमर-
क्षेत्रके घनफलके निकालनेका विधान कहते हैं—

असरोज्जादिभागे । कुदो ? ण ताव तसअपज्जचरासी निहरदि, तत्थ विहायगदिणामरुम्मस उदयाभावा । तसपज्जचरासिस्स णि सरोज्जादिभागो चेव निहरमाणरासी होदि । कुदो ? मभेद पुद्दीए पटिगहिदसेच सत्थाण णाम । ततो चाहिं गतूणच्छण निहात्तवदिसत्थाण । तत्थच्छणकालो सगावासे अण्णाणकालस्स सरोज्जादिभागो त्ति । दोण्ह लोगाणमसरोज्जादि भागे । कुदो ? चचारि रज्जुचाहल्ल जगपदर अधोलोगपमाणं होदि । तिण्णि रज्जुमाहल्ल जगपदरमुद्धूलोगपमाणं होदि । एदे दोण्णि णि लोगे तसपज्जचरासिस्स सरोज्जादिभागण सरोज्जघणगुलगुणिदेण ओणद्धिदे सेदीए अमरोज्जदिभागो आगच्छदि त्ति । सरोज्ज

लाभ योजन चोटे और एकलाख योजन ऊंचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं । एक लोक सामान्यके पाच भेद करनेका अभिप्राय यह है कि विवक्षित जीवके घटाये गए क्षेत्रका एक परिमाण समझमें आजाये । जहा जिन जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक घटाया जाये, वहा सामान्य लोकका ग्रहण करना चाहिए । जहा ' दो लोकोंका निर्देश किया जावे वहा अधोलोक और ऊर्ध्वलोक इन दो लोकोंका ग्रहण करना, जहा तीन लोकोंका निर्देश किया जाय, वहा अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यकलोकका ग्रहण करना, तथा, जहा चार लोकका निर्देश किया जाय, वहा मनुष्यलोकको छोड़कर शेष चारों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए ।

विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव किन्तु क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । चूकि प्रसक्यायिक अपर्याप्तराशि तो विहार करती नहीं है, क्योंकि, प्रसक्यायिक अपर्याप्तोंमें विहायोगति नामकर्मका उदय नहीं होता है । प्रसक्यायिक पर्याप्तकोंके भी सख्यातवें भागप्रमाण राशि ही विहार करनेवाली होती है, क्योंकि, ' यह मेरा है ' इसप्रकारकी बुद्धिसे स्वीकार किया गया क्षेत्र स्वस्थान है । और उससे बाहर जाकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है । उस विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रमें रहनेका काल अपने आवासमें (स्वस्थानमें) रहनेके कालके सख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये विहारवत्स्वस्थान मिथ्या दृष्टि जीव दोनों लोकोंके अर्थात् अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसका कारण यह है कि अधोलोकका प्रमाण चार राजु मोटा जगप्रतर है और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण तीन राजु मोटा जगप्रतर है । सख्यात घनागुलगुणित प्रसक्यायिक पर्याप्तराशिके सख्यातवें भागसे इन दोनों ही लोकोंके भाजित करने पर जगश्रेणीका असख्यातवा भाग लब्ध आता है ।

निर्णयार्थ--प्रसक्यायिक पर्याप्त जीवोंका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा सूक्ष्मगुलके सख्यातवें भागके चर्गरूप भागहारसे भाजित जगप्रतर प्रमाण घटाया गया है । इस प्रमाणवाली प्रसपर्याप्तराशिके भी सख्यातवें भाग प्रमाण ही विहारकरनेवाली राशि होती है । अब यदि एक प्रसपर्याप्तक जीवकी मध्यम अणुगहना सख्यात घनागुल प्रमाण मानकर उससे विहारकरने वाली राशिके प्रमाणकी गुणित भी किया जाय, तो भी उसका जगश्रेणीके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहना सिद्ध होता है, इसलिये यह सिद्ध होता है कि विहारकरनेवाली प्रसराशि ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असख्यातवें भागमें रहती है, क्योंकि, इन दोनों लोकोंका प्रमाण जगच्छ्रेणीके घनसे भी बहुत अधिक है ।

निकसंभद्र बाहल्ल' । एदे तिणिण नि परोप्पर गुणिदे उस्सेधजोयणघणस्स संसेज्जदिभागे आगच्छदि । त पण्णरहसदल्लत्तीसरूपेहि घणीकदेहि गुणिदे पमाणघणंगुलाणि हेति । वारहजोयणायाम चदुजोयणमुहसंसरेत्तफल—

व्यास तावत्क वा वदनदलोन मुत्वारधवर्गयुतम् ।

द्विगुण चतुर्भिक्त सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहु ॥ १३ ॥

एदेण सुत्तेण आणिय मुहहीणुस्सेहसहिदुस्सेहचदुवभागेण गुणिय उस्सेहघणजोयणाणि आणिय पुव्वुत्तगुणगारेण गुणिदे पमाणघणगुलाणि हेति । जोयणसहस्सायाम-

लानेके लिये इन तीनोंके परस्पर गुणित करनेपर उत्सेधयोजनके घनका सख्यातथा भाग लब्ध आता है । इसे पन्द्रहसौ छत्तीसके घनसे गुणित करनेपर गोम्हीके घनरूप क्षेत्रके प्रमाण घनागुल था जाते हैं ।

उदाहरण— गोम्हीका आयाम $\frac{3}{4}$ योजन, चिष्कभे $\frac{3}{4}$ योजन, वाहस्य $\frac{3}{4}$ योजन, $\frac{3}{4} \times \frac{3}{4} = \frac{9}{16}$, $\frac{9}{16} \times \frac{3}{4} = \frac{27}{64}$ उत्सेध घनयोजनमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल । $\frac{27}{64} \times ३६२३८७८६५६ = ११९४३९३६$ प्रमाण घनागुलोंमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल ।

वारह योजन आयामवाले और चार योजन मुखवाले शखक्षेत्रका क्षेत्रफल—

व्यासको उतनी ही वार करके अर्थात् व्यासका जितना प्रमाण हे उतनीवार व्यासको रखकर जोड़नेपर जो लब्ध आवे उसमेंसे मुखके आधे प्रमाणको घटाकर, मुखके आधे प्रमाणके घर्गको जोड़ दे । इसप्रकार जो सख्या आवे उसे द्विगुणित करके पदचात् चारका भाग दे । इसप्रकार जो लब्ध आवे, उसे शखका क्षेत्रफल कहते हैं ॥ १३ ॥

इस सूत्रस लाकर उस क्षेत्रफलको मुखसे हीन उत्सेधसहित उत्सेधके चौथे भागसे गुणित करके उत्सेध घनयोजन लाकर और पूर्वोक्त गुणकारसे गुणित करनेपर घनरूप शखक्षेत्रके प्रमाणघनागुल हो जाते हैं ।

१ सयपहाचलपरमागट्टियत्ते उप्पणगोहीए उवरस्सोगाहण $\times \times$ उस्सेहजोयणरम तिणिणवत्तम्भागो आयामो, तदद्वमागो निवत्तमो, निवत्तमद्द बाहल्ल । एदे तिणिण नि परोप्पर गुणिय पमाणघणगुले कदे एवके कीरीए उणवीत्त लउत्ता तेदालपहसधणवत्तयत्तासरूपेहि गुणिदघणगुला हेति । ११९४३९३६ । ति प प १९५

२ आयामकदी मुहदलहीणा मुहवासअद्धवमागुदा । निगुणा वहेण हदा सखावत्तस खेत्तफल ॥ पि सा ३२७

१ सयपहाचलपरमागट्टियत्ते उप्पणगोहीए उवरस्सोगाहण $\times \times$ वारसजोयणायाम चउजायणमुहसखेत्तफल व्यास तावत्क वा वदनदलोन मुत्ताधवर्गयुत । द्विगुण चतुर्भिक्त सनाभिकेरिम् गणितमाहु ॥ एदेण सुत्तेण खेत्तफलमाणिदे तेहत्तरी उस्सेहजोयणाणि ममति ७३ । आयामो मुह सोहिय पुणरवि आयामसहिदमुहमाजिय बाहल्ल णायव्व सखावारट्टिये खेत्ते ॥ एदेण सुत्तेण बाहल्ल आणिदे पच जोयणपमाण होदि ५ । पुव्वमाणिद-

भ्रमरक्षेत्र' पुण ज्ञोयणायाम अद्धज्ञोयणुस्तेह ज्ञोयणद्वपरिहिनिवसंभ ठमिय विक्खमद
मुस्सेहगुणमायामेण गुणिदे उस्सेहज्ञोयणरस तिण्णि-अद्धमागा भवति । ते घणगुलाणि
कीरमाणे पण्णरहसद छत्तीसरूपेहि घणीरुदेहि तिण्णिसय-वासट्टिकोडीहि अद्धहत्तरी
सहस्साहिय अद्धत्तीसलक्खेहि छस्सद छप्पण्णेहि य उस्सेघघणज्ञोयणाणि गुणिदे प्रमाण
घणगुलाणि हवति । गोम्हि आयामो उस्सेघज्ञोयणतिण्णि चउत्तमागो, तद्धभागो निरुत्तमा.

एक योजन लम्बे, आधे योजन ऊंचे और आधे योजनकी परिधिप्रमाण विष्कभवाले
भ्रमरक्षेत्रको स्थापित करके, विष्कभवे आधेको उत्सेधसे गुणा करके, जो लम्ब आधे उस
आयामसे गुणित करनेपर एक योजनके तीन भागोंमेंसे आठ भाग लम्ब आते हैं। और यही
भ्रमरक्षेत्रका घनफल है।

उदाहरण—भ्रमरका आयाम १ योजन, उत्सेध ३ योजन, विष्कभ ३ योजनकी परिधि
प्रमाण । ३ योजनकी स्थूल परिधि १३ योजन । $\frac{3}{2} - 2 = \frac{3}{2}$, $\frac{3}{2} \times 3 = \frac{9}{2}$, $\frac{9}{2} \times 1 = \frac{9}{2}$
भ्रमरक्षेत्रका योजनोंमें घनफल।

भ्रमरक्षेत्रके योजनमें आये हुए घनफलके घनागुल करनेपर इस उत्सेध घनयोजनमें
आये हुए घनफलको पन्द्रहसौ छत्तीसके घन तीनोंसां घासठ करोड, अर्त्तिस लाख, अठसठ
हजार, छहसौ छप्पनसे गुणित करनेपर प्रमाणघनागुल होते हैं।

उदाहरण—भ्रमरक्षेत्रका उत्सेध घनयोजनमें घनफल है, एक उत्सेध घनयोजनके
प्रमाण घनागुल $1436^3 = 3623206456$, $\frac{3}{2} \times 3623206456 = 5434809684$
प्रमाण घनागुलोंमें भ्रमरक्षेत्रका घनफल।

विशेषार्थ—एक उत्सेध योजनमें सात लाख अठसठ हजार उत्सेधसूच्यगुल होते
हैं। इस नियमसे एक उत्सेधघनयोजनके घनागुल करनेपर उसमें सात लाख अठसठ हजार
को तीनोंवार रखकर परस्पर गुणा करनेसे जिनका लम्ब आयाम उतने उत्सेधघनागुल होंगे।
उत्सेधयोजनसे प्रमाणयोजन पाचसो गुणा बढा होता है, अतएव इन उत्सेधघनागुलोंके
प्रमाणघनागुल करनेके लिये उक्त अगुलाके प्रमाणमें पाचसौके घनका भाग देनेपर
 3623206456 घनागुल आ जाते हैं, और यह राशि 1436 के घनप्रमाण पढती है।

गोम्हीका आयाम उत्सेधयोजनक चार भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण है। विष्कभ
उत्सेधके आठमें भागप्रमाण है, और याहल्य विष्कभसे आधा है। गोम्ही क्षेत्रका घनफल

१ सपहाचठपरमाणद्विवक्षे उपपणभ्रमरस उक्कस्तागाहण $\times \times \times$ ज्ञोयणायाम अद्धज्ञोयणुस्तेह
ज्ञोयणद्वपरिहिनिवसंभ ठमिय विक्खमदपुरसह्युणमायामण गुणिदे उस्सेहज्ञोयणरस तिण्णिअद्धमागा भवति (त
चद ३) । ते प्रमाणघणगुला वामाण एकसयपचतासकाहीए वणणउदिलक्ख चउत्तय छप्पणउदि
रूपीहि गुणिदेवणगुलाणि हवति । त चद १३५-१५४४५६ । ति प प २५५,
२ म प्रत्यो 'अद्ध' हाते पाए ।

विहरंता त्रि देवा अत्थि त्ति चे ण, तेसिं देवानममरेजेज्जदिभागत्तेण पहाणत्तामापादो । त कुदो णच्चेदे ? 'तिरियलोगस्म मरेजेज्जदिभाए' त्ति वस्खाणादो । तिरियलोगस्म संसेज्जदि भागत्तं कर्धं ? तिरियलोगो णाम जोयणलमरमत्तभागमेत्तद्धाचिअगुलनाहल्लजगपदरमेत्तो । त पुत्तिल्लविहारपदिसत्थाणखेत्तेणोवट्टिदे ससेजेज्जरूपाणि लब्भति । तेण तिरियलोगस्स ससेजेज्जदिभागे त्ति वुत्तं । अट्टुइज्जसत्तादो विहारपदिसत्थाणजीवरेत्तमससेजेज्जगुणं । कुदो ?

शंका — असरयात योजनप्रमाण विहार करनेवाले भी देव होते हे ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, असरयात योजनप्रमाण विहार करनेवाले देव सधै देयरशिके असख्यातधै भागमात्र हैं, अत उनकी यहाँपर प्रधानता नहीं है ।

शंका — यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान — मिथ्यादृष्टि विहारघटस्वस्थान राशि 'तिर्यग्लोकके सख्यातधै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है' इसप्रकारके व्याख्यानसे उक्त बात जानी जाती है ।

शंका — मिथ्यादृष्टि विहारघटस्वस्थान राशिके रहनेका क्षेत्र तिर्यग्लोकके सख्यातधै भागमात्र कैसे है ?

समाधान — एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितने सूच्यगुल लब्ध आधे तत्प्रमाण वाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक है । इसे पूर्वोक्त विहारघटस्वस्थानरूप क्षेत्रसे भाजित करनेपर सख्यात रूप लब्ध आते हैं, इसीलिये तिर्यग्लोकके सख्यातधै भागप्रमाण क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टि विहारघटस्वस्थानराशि रहती है, ऐसा कहा है ।

विशेषार्थ — तिर्यग्लोक पूर्व पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर दक्षिण सात राजु लम्बा, और एक लाख योजन ऊंचा है । इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये एक लाख योजनमें सातका भाग देना चाहिये, क्योंकि, तिर्यग्लोक भी उत्तर दक्षिण सात राजु तो है ही, किन्तु पूर्व पश्चिम जो एक राजुमात्र है उसे सात राजुप्रमाण प्रकल्पित करनेके लिये उरसेधमें सातका भाग देनेसे उत्सेध एक लाख योजनका सातवा भाग रह जाता है, और पूर्व पश्चिममें सात राजु-प्रमाण क्षेत्र हो जाता है । इसप्रकार एक लाख योजनके सातधै भागमें जितने सूच्यगुल होंगे तत्प्रमाण वाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक आ जाता है । एक योजनमें ७६८००० सूच्यगुल होते हैं, इसलिये एक लाख योजनके सातधै भागमें १०९७१४२८७१^३ सूच्यगुल होंगे । अतएव १०९७१४२८५७१^३ सूच्यगुलप्रमाण जगप्रतर तिर्यग्लोक जानना चाहिये । प्रतरागुलके संख्यातधै भागका जगप्रतरमें भाग देनेसे प्रसपर्याप्तराशिका प्रमाण आना है, और इसके सख्यात एक भागप्रमाण विहारघटस्वस्थानराशि है । विहारघटस्वस्थानराशिमें एक जीवकी मध्यम अवगाहना सख्यात घनागुल है तो उपर्युक्त राशिका कितना क्षेत्र होगा, इसप्रकार प्रैराशिक करनेपर विहारघटस्वस्थानराशिका क्षेत्र सख्यात सूच्यगुल गुणित जगप्रतरप्रमाण आ जाता है जो तिर्यग्लोकके सख्यातधै भागप्रमाण है ।

विहारघटस्वस्थान जीवोंका क्षेत्र ढाई छीपसे असरयातगुणा है, क्योंकि, भदार्ह

पचसदुस्सेह-तदद्वित्थार महामच्छलेच पि^१सरोज्जाणि पमाणघर्णागुलाणि होंति । एत्त्व
घणगुलस्स सरोज्जदिभाग पविस्सविय अद्वेण छिण्णे पि सरोज्जजाणि पमाणघणगुलाणि
होंति चि मिद्ध । किं च विहारवटिसत्थाणे ण तिरिक्खलेत्तस्स पमाणत्त, किंतु देवसेत्तमेव,
पदरंगुलस्स सरोज्जदिभागमेत्तमुहेण सरोज्जजोयणसहस्स विहरमाणदेवोगाहणाए सरोज्ज
घणगुलसुअलभादो । तेण सरोज्जघणगुलोगाहणाए गुणेयव्वमिदि । असरोज्जनोयणाणि

उदाहरण— शक्यक्षेत्रका आयाम १२ योजन, मुच ४ योजन ।

$$12 \times 12 = 144, 144 - \frac{1}{4} = 143, 143 + (\frac{1}{4})^2 = 143 + \frac{1}{16} = 143\frac{1}{16}$$

$$143\frac{1}{16} \times 2 = 287, 287 - 4 = 283,$$

$$12 - 4 = 8, 8 + 8 = 16, 16 - 4 = 12, 12 \times 4 = 48$$

उत्सेध घनयोजनोंमें शक्यक्षेत्रका घनफल । ३६५ × ३६२३८७८६५६ = १३२२७१५०९४४०
प्रमाण घनागुलोंमें शक्यक्षेत्रका घनफल ।

एक हजार योजन आयाम, पाचसौ योजन उत्सेध और उत्सेधके भाधे अर्थात्
ढाईसौ योजन विस्तारवाले महामत्स्यका क्षेत्र भी घनफलरूप करनेपर सख्यात प्रमाणघर्णा
गुल होता है ।

उदाहरण—महामत्स्यका आयाम १००० योजन, उत्सेध ५०० योजन। विष्कम्भ २५० ।
१००० × ५०० = ५०००००; ५००००० × २५० = १२५००००००० योजनोंमें घाफल । १-५०००००००
× ३६२३८७८६५६ = ४५२९८४८३२०००००००००० प्रमाण घनागुलोंमें महामत्स्यका घनफल ।

इसप्रकार उत्कृष्ट अवगाहनारूपसे आये हुए इन प्रमाणघनागुलोंमें घनागुलके
सख्यातयें भागप्रमाण जघन्य अवगाहनाको प्रक्षिप्त करके जो जोड़ हो उसे भाधेसे छिप्र
करनेपर भी सख्यात प्रमाण घनागुल ही रहते हैं, यह सिद्ध हुआ ।

दूसरी बात यह है कि विहारघत्स्यस्थानमें तिर्थचोकके क्षेत्रकी प्रमाणता (प्रधानता)
नहीं है, किन्तु देवक्षेत्रकी ही प्रधानता है, पर्यायि, प्रतरागुलके सख्यातयें भागप्रमाण
मुखरूपसे अर्थात् विष्कम्भ और उत्सेधरूपसे विहार करनेवाले देवोंकी सख्यात हजार योजन
प्रमाण अवगाहनामें घनफलरूपसे सख्यात घनागुल पाये जाते हैं, इसलिये विहारघत्स्यस्थान
राशिको सख्यात घनागुलरूप अवगाहनासे गुणित करना चाहिये ।

तेहस्रिभूदसेत्तइल पवजोयणइल्लण गुणिद घणजोयणाणि तिणिणसयपण्णडो हति ३६५ । एद घणपमाणगुलाणि
एद एत्तवत्त मत्ताससहस्स-द्विण्णसय एवकइत्तरे कोवाओ सत्तावण्णलवत्तणवत्तसचउत्तयचालासस्सेदि शिदि
घणगुलमेत्त होदि । त चंद १३२२७१५०९४४० । ति प प १९५

१ सयपहाचत्तपारमागद्वियत्तते उवण्णसम्मुत्तमसहामच्छलेत्त सत्तकरत्तागाहणा × × उत्तवत्तवत्त
एवत्तमइत्तपारम पचत्तद्विक्खम तदद्वउत्तसेत्त ह पमाणगुले कसमाण चउत्तहत्तन पचत्तय एउत्ततापकावाओ पुत्तमादि
लवत्त तसोद्विक्खत्त इत्तयकादिक्खदि शिदिदपमाणघणगुलाणि भवति । त चंद ४५२९८४८३२००००००००
ति प प १९६

णपरि त्रेढण कसायखेत्ताणि णपरि गुणेयव्याणि, सरीरतिगुणाधिकपरंभादो । विहार-
त्रेडवियपदाण सखेज्जाणि घणगुलाणि । अधवा वेदणादिणा सरीरतिगुणसमुग्घादं करंता
सुद्धु थोना चि मज्झिमगुणगारो णवद्धरूपमाणो होदि ति । एदेहि लोगे भागे हिदे लद्धं
विरलेदूण एकेकस्स रूपस्म लोगं समएड कादूण दिण्णे एगभागो एदेहि रुद्धखेत्तं होदि ।
उद्धुलोगपमाणं तिण्णि रज्जुवाहल्लं जगपदर । एत्थ नि ओवट्टणा पुच्चं व कादव्वा । अधो-
लोगपमाणं चत्तारि रज्जुवाहल्लं जगपदर । तथा' चेव ओपट्टणा । तिरियलोगपमाणं
जोयणलक्खं सत्तभागग्राहल्लं जगपदर । एत्थ नि ओवट्टणा पुच्चं व कायव्वा । एत्थ
तिरियलोगपमाणे आणिज्जमाणे विक्खंभायामेहि एगरज्जुपमाणमेव तिण्हं लोगाणम-

$$\text{इसके प्रमाणागुल हुए } \frac{१६८}{२०} \times २ \times १६८ = \frac{९४८३२६४}{५०००००००००} = \frac{९२६१}{१९५३१२५}$$

यह राशि प्रमाणघनागुलके सख्यातयें भाग हुई । इसे सौधर्म ईशान स्वर्गोंकी सासा-
दनादि तीन गुणस्थानवर्ती राशियोंसे गुणा करनेपर तीनों गुणस्थानोंके स्वस्थानादि पदोंके
क्षेत्रोंका प्रमाण आता है, जो तीनों लोकोंके असख्यातयें भाग तथा अर्द्ध द्वीपसे असंख्यात-
गुणा होता है ।

इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्रात और कषायसमुद्रातका क्षेत्र लानेके लिये मूल अथ
गाहनाको नौसे गुणित करना चाहिये, क्योंकि, वेदना और कषाय समुद्रातमें उत्कृष्टरूपसे शरीरसे
तिगुना विस्तार पाया जाता है । विहारवस्वस्थान और वैकल्पिकसमुद्रातका क्षेत्र लानेके
लिये सख्यात घनागुल गुणकार होते हैं । अथवा, वेदनासमुद्रात आदिके द्वारा शरीरसे
तिगुने समुद्रातको करनेवाले जीव स्वल्प हैं, इसलिये मध्यम गुणकार नौके आधेरूप अर्थात्
साठे चार होता है । इन उपर्युक्त गुणकारोंसे लोकके भाजित करनेपर जो लब्ध आवे उसे
विरलित करके और उस विरलित राशिके प्रत्येक एकके प्रति लोकको समान बँड करके
देयरूपसे दे देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति जो एक भाग प्राप्त होता है उतना इन गुणकारोंसे
रुद्ध क्षेत्र होता है । तीन राजुवाहल्लसे युक्त जगप्रतरप्रमाण ऊर्ध्वलोक है । यहापर भी अप-
वर्तना पहलेके समान करना चाहिये । चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंगा चौब अधो-
लोक है । यहापर भी पूर्वके समान अपवर्तना करना चाहिये । एक लाख योजनमें
सातका भाग देनेसे जितना लब्ध आवे उतना मोटा और जगप्रतरप्रमाण लबा चौब
तिर्यंगलोक है । यहापर भी अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये । यहा तिर्यंगलोकका
प्रमाण लानेपर विक्कंभ और आयामसे एक राजुप्रमाण होते हुए भी घनलोक, ऊर्ध्वलोक और

अच्छंति । त कथं ? एदेसि तिण्ह गुणट्टागण सोधम्मीमाणरासी पहणो । तेसिमोराहण सचहत्तुस्मेहा, अगुलगणणए अट्टसट्टिमदुस्मेधगुलपमाणा, एटस्स दसभागविस्समा । कुदो ? जदो देव मणुस्स णेरहयाणमुस्सेधो दस णअ-अट्टतालपमाणेण भणिदो । पुणो वासद्ध' णिगय पिगुणिय अट्टमट्टिसदुस्सेधगुलेहि गुणिय घणीकदपचसदंगुलेहि ओमट्टिदे पमाणघणंगुलस्स सखेज्जदिभागो आगच्छदि । एदेण तिण्ह गुणट्टाणण सत्थाणादिरासि ओघरासिस्स सखेज्जभाग सखेज्जदिभाग' च गुणिदे तिण्ह गुणट्टाणण सत्थाणादिरासि होति ।

क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुक्रा — यह कैसे ?

समाधान—इन तीन गुणस्थानोंमें सौधर्म और पेशानकरपसबन्धी देवराशि प्रचान है । उनकी अवगाहना सात हाथ उत्सेधरूप है, और अगुलकी अपेक्षा गणना करनेपर एकसौ अठसठ अगुलप्रमाण है । इसके दशवें भागप्रमाण उस अवगाहनाका विष्कम्भ है ।

शुक्रा — यहापर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कम्भ क्यों लिया है ?

समाधान — चूकि देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सेध दश, नौ और आठ ताक्रे प्रमाणसे कहा गया है, इसलिये यहापर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कम्भ लिया है ।

पुन व्यासके आधेका घर्ग करके और उसे दूना करके अतन्तर एकसौ अठसठ उत्सेधके अगुलोंसे गुणित करके पाचसौ अगुलोंके घनसे अपघर्तित करनेपर प्रमाण घना गुलका सख्यातया भाग लब्ध आता है । इससे सासादनसम्यग्दष्टि आदि तीन गुणस्थानोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि राशिया जो कि सासादनसम्यग्दष्टि आदि ओघराशिके उत्तरोत्तर सख्यातमें सरयातवें भागप्रमाण हैं, उन्हें गुणित करनेपर तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियोंके क्षेत्र हो जाते हैं ।

विशेषार्थ — यहा स्वस्थानादि पदपरिणत सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंके अढ़ाई द्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी उपपत्ति यतलाई गई है । प्रथममें सौधर्म पेशान देवराशि प्रचान है । इन स्वर्गोंके एक देवकी अवगाहना ७ हाथ = १६८ उत्सेधअगुल ऊंची तथा इसके दशमाश विष्कम्भरूप होती है । तदनुसार एक देवकी अवगाहनाका घनफल इसप्रकार आता है—

उत्सेध १६८ अगुल, विष्कम्भ $\frac{१६८}{१०}$ अगुल ।

$(\frac{१६८}{१०} - \frac{१}{२}) \times २ \times १६८$ एक देवकी अवगाहनाके उत्सेध घनागुल ।

१ प्रतिगु 'पशना' इति पाठ ।

२ प्रतिगु 'व षव' इति पाठ ।

३ भा प्रती 'षष्ठेज्जभागमषष्ठेज्जदिभाग च' इति पाठ ।

एदेण सुत्तेण परिट्टयं काट्ठणं निक्खमचउन्मागेण गुणिदे जाटाणि पदरंगुलाणि ।
 पुणरपि उस्सेधेण गुणिदे सखेज्जाणि घणंगुलाणि जाटाणि । पुच्च व ओणट्ठणा एत्थ
 कायच्चा । मारणतिय-उत्तादग्द सासणसम्मादिट्ठि अमज्जदसम्मादिट्ठिणमेयं चेव वत्तच्च ।
 णवरि ओघरासिमात्रलियाए असखेज्जदिभागेण सखेदूणेगमागो उव्वाटं करेदि । तस्स वि
 असखेज्जा भागा विग्गहगदीए उत्ताद करेति त्ति ओघरासिस्स दो आत्रलियाए असखेज्जदि-
 भागा भागहारं ठपेदच्चा । पुणो रूत्तणात्रलियाए असखेज्जदिभागो उत्तरि गुणगारो
 ठवेदच्चो । सेठीए सखेज्जदिभागायामपिदियदंडट्ठियजीवे इच्छिय अनरो आत्रलियाए असं-
 खेज्जदिभागो भागहारो ठपेयच्चो । उत्तरि घणंगुलस्स संखेज्जदिभागमणिय पदरंगुलस्स
 सखेज्जदिभागं संखेज्जपदरंगुलाणि च गुणगार ठविय किंचूणदिवड्डुरज्जहि गुणिय ओणट्ठे-
 यच्चं । मारणतियस्स एण चेव वत्तच्चं । णवरि अप्पणो रासिस्स असंखेज्जदिभागो मार-
 णंतिय करेदि । मारणंतियकालादो गुणकालस्स संखेज्जगुणत्तादो मारणतियजीवा सगसच्च-
 जीपेहिंतो सखेज्जगुणहीणा किण्ण हंति ? ण, मरंतदेवजीपेहिंतो तम्हि चेव मये मिच्छत्तं

इस सूत्रके नियमानुसार परिधि करके व्यासके चौथे भागसे गुणित करनेपर प्रतरां-
 गुल हो जाते हैं। पुन इन प्रतरागुलोंको उत्सेधसे गुणित करनेपर सर्यात घनागुल हो जाते
 हैं। यहापर भी पहलेके समान अपवर्तना करना चाहिये। अर्थात् इन घनागुलोंके प्रमाण-
 घनागुल करनेके लिये पाचसौके घनका भाग देना चाहिये।

मारणान्तिक्कसमुदात्त और उपपाद्गत सासादनसम्यग्दष्टि और असयतसम्यग्दष्टि-
 योंका इसीप्रकार बधन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि, ओघ सासादनसम्यग्दष्टि और
 असयतसम्यग्दष्टि राशिको आयलीके असख्यातयें भागसे खणित करके जो एक भाग लब्ध
 भाषे उतनी राशि उपपाद्द करती है। तथा इस उपपाद्दराशिके असख्यात बहुभाग प्रमाण
 जीव विप्रद्वगतिसे उपपाद्द करते हैं, इसलिये दो चार आयलीके असख्यातयें भागप्रमाण ओघ
 राशिका भागद्वार स्थापित करना चाहिये। तथा एक कम आयलीके असख्यातयें भागप्रमाण
 ऊपर गुणकार स्थापित करना चाहिये। जगधेणीके संख्यातयें भाग लभे दूसरे दृष्टमें स्थित
 जायोंकी अपेक्षा फिर भी आयलीका असख्यातया भाग भागद्वार स्थापित करे और ऊपर
 घनागुलके सख्यातयें भागको निकालकर उसके रजामें प्रतरागुलके सख्यातयें भागप्रमाण
 भांर संख्यात प्रतरागुलप्रमाण गुणकारको स्थापित करके, कुछ कम डेढ राजुसे गुणित करके
 अपवर्तित करना चाहिये, क्योंकि, मध्यलोकसे सौधर्मकल्प डेढ राजु ऊचा है। मारणान्तिक्क
 समुदात्तका भी इसीप्रकार बधन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपने अपने गुण
 स्यासबधी राशिके असख्यातयें भागप्रमाण राशि मारणान्तिक्कसमुदात्त करती है।

शुद्धा—मारणान्तिक्कसमुदात्तके कालसे गुणस्थाका काल सख्यातगुणा है, इसलिये
 मारणान्तिक्कजीव अपने अपने गुणस्थानके सर्य जीवोंसे सख्यातगुणे होन क्यों तर्ही होते हैं।

संखेज्जदिभागे तिरियलोगो हेडि ति के वि आइरिया भणति, त ण घडदे, पुच्चन्धुन गमेण सह निरोधा । को सो पुच्चन्धुनगमो ? चत्तारि तिणिण रज्जुमाहल्लजगपदरपमाण अध-उट्टुलोगा, सत्तरज्जुवाहल्लनगपदरपमाणो सच्चलोगो ति । माणुसलोगपमाण पणदालीसजोयणसदसहस्सविकरम जोयणसदसहस्सुस्सेध' । पुणो विकरमसुस्सेधे अणु लाणि करिय—

व्यास षोडशगुणित षोडशसहित त्रिरूपरूपैर्भक्तम् ।

व्यास त्रिगुणितसहित सूक्ष्मादपि तद्भनेस्सूक्ष्मम् ॥ १४ ॥

अधोलोक, इन तीन लोकोंके असख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोक है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, परन्तु उनका इसप्रकारका कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस कथनका पूर्वमें स्वीकार किये गये कथनके साथ विरोध आता है ।

शंका—वह पहले स्वीकार किया गया कथन कौनसा है ?

समाधान—चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लम्बा चौड़ा अधोलोक है । तीन राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लम्बा चौड़ा ऊर्ध्वलोक है । सात राजु मोटा और जगप्रतर प्रमाण लम्बा चौड़ा सर्गलोक है, यही वह पूर्व स्वीकार किया गया कथन है ।

पैतालीस लाख योजन विष्कम्बरूप और एक लाख योजन ऊंचा मानुषलोक है । पुन पूर्वाक्त गुणकाररूप क्षेत्रसर्घी त्रिष्कम्भ और उत्तरेधके अंगुल करके—

व्यासको सोलहसे गुणा करे, पुन सोलह जोड़े, पुन तीन एक ओर एक अर्थात् एकसी तेरहका भाग देवे ओर व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण सा जाता है ॥ १४ ॥

निशेषार्थ—यद्वापर मडलाकार क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण लानेकी प्रक्रिया बतलाई गई है । स्थूल मानसे तो परिधिका विस्तार व्याससे तिगुना ले लिया जाता है, यथा वासो तिगुणो परिही (त्रि सा १७) इससे भी सूक्ष्मप्रमाण दशका वर्गमूल बतलाया गया है । यथा-विष्कम्भयगादहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होदि (त्रि सा ९६) । किन्तु प्रस्तुत गायामें इस सूक्ष्मप्रमाणसे भी सूक्ष्मतर प्रमाण निम्नलानेकी प्रक्रिया बतलाई गई है, जो इसप्रकार है—

उदाहरण—१ राजु व्यासके वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण निम्न प्रकारसे होगा—

$$\frac{१ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१ \times ३}{१} = \frac{३७१}{११३} = ३ \frac{३२}{११३} \text{ राजु ।}$$

उसीप्रकार ७ राजु वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण इसप्रकार होगा—

$$\frac{७ \times १६ + १६}{११३} + \frac{७ \times ३}{१} = \frac{२५०१}{११३} = २२ \frac{१५}{११३} \text{ राजु ।}$$

भागो । कारण पुव्व परूणितं ।

पमत्तसंजदप्पट्टि जाण अजोगिकेणलि त्ति जहण्णिया ओगाहणा आहुट्टरयणीओ, उक्कस्सिया पच्चसद पणत्रीसुत्तरधण्णि । एदाओ दो नि ओगाहणाओ भरह इराणएसु चेव होति, ण विदेहेसु, तत्थ पच्चधणुस्सदुस्सेधणियमा । ततो थोवृणुस्सेधो ना विदेहसजदरासी जदो सच्चुक्कस्सो होदि, सो पधाणो, पच्चधणुस्सदुस्सेहानिणाभावितादो । एत्थ अगुलाणि कदं उस्सेहणमभागो निक्खभो त्ति कट्टु परिट्टयमद्ध करिय निक्खभद्वेण गुणिय उस्सेहेण गुणिदे सस्सेजाणि घणगुलाणि जादाणि । एदेहि सस्सेजघणगुलेहि अप्पप्पणो रारिं गुणिदे इच्छिदस्सेत्तं होदि । णपरि आहारसरीरस्स उस्सेवो एया ग्यणी, उस्सेहदसमभागो तस्म निक्खभो, दिव्वत्तादो । विहारो सत्थाण-समाणोगाहणमुहमच्छिण्णपउमणालसुत्तसताण न मूलाहारसरीराणमतरे जीणपदेसाणमवट्ठाणादो । ण च सरीरादो गदजीणपदेसाण पुणो तत्थ पेसाभागो, समुग्वादगदकेणलिजीण-

जाता हे ।

सयतासयतांमं भी मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त जीवराशि ओघसयतासयत राशिके असख्यातवें भागप्रमाण होती है । इसके कारणका प्ररूपण पहले कर आये हैं । प्रमत्त-सयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवोंकी जघन्य अवगाहना साठे तान रत्निप्रमाण हे और उत्कृष्ट अग्रगाहना पाचसौ पच्चीस धनुष है । ये दोनों ही अग्रगाहनाए भरत और पेरारवत क्षेत्रमें ही होती हैं, विदेहमें नहीं, क्योंकि, विदेहमें पाचसौ धनुषके उत्सेधका नियम है । अब पाचसौ पच्चीस धनुषके कुछ कम उत्सेधवाली विदेहक्षेत्रस्थ सयतराशि चूकि सबसे अधिक होती हे, इसलिये यहापर वह राशि प्रधान है, क्योंकि, विदेहस्थ सयतराशिरा पाचसौ धनुषकी ऊंचाईके साथ अग्निभावसंबन्ध पाया जाता है । यहापर अगुलोंमें घनफल लानेके लिये मनुष्योंके उत्सेधका नौवा भाग विष्कभ होता है, पेसा समझकर विष्कभकी परिधिको आधा करके और विष्कभके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर सख्यात घनागुल हो जाते हे । इन सख्यात घनागुलोंसे अपनी अपनी राशिके गुणित करनेपर इच्छित गुणस्थानसम्बन्धी क्षेत्र होता है । इतनी विशेषता है कि आहारकशरीरका उत्सेध एक रत्निप्रमाण है । तथा उत्सेधके दशवें भागप्रमाण उसका विष्कभ है, क्योंकि, यह शरीर दिव्यस्वरूप है । विहारमें इस शरीरका मुख अर्थात् विष्कभ और उत्सेध स्वस्थानस्वस्थानके समान अवगाहनाप्रमाण हे, क्योंकि, मूल और आहारक शरीरके अन्तरालमें पद्मनालके अच्छिन्न सूत्रसतानके समान जीवप्रदेशोंका अवस्थान पाया जाता है । शरीरसे निकले हुए जीवप्रदेशोंका फिरसे शरीरमें प्रवेश नहीं होता है, सो भी

१ मण्योगुलात्पराय मध्ये प्रामाणिक वर । नद्धसुष्टिकरो रितिरति सकनिष्ठिका । इलायु कोप

२ आहुट्टरयणपट्टदी पणुवीसम्महियपणसयधगुणि ॥ ति प १, २२

३ पंचसयचावतुगा $\times \times$ ति प ४, ५८ ४ प्रतिगु 'जदा' इति पाठ ।

५ प्रतिगु 'पयुलकद' इति पाठ ।

पडिवज्जमाणजीराणमसंखेज्जगुणत्तादो, उउसमसम्मत्तद्वावसेसे आउए उवसमसम्मत्तगुण पडिवज्जताण बहुवाणमभावादो, तत्तो तस्स सखेज्जगुणणियमाभावादो च । एत्थ उव रिमरासिस्स गुणगारो पुब्बुत्तो चेव होदि, देवरासिस्स पहाणत्तादो । उउवादे पृण तिरिक्खा रासी पहाणो । णवरि असंजदसम्माइड्डि-उववादे देवा पहाणा, मारणंतिए तिरिक्खा पहाणा । सम्मामिच्छाइड्डिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि, तग्गुणस्स तदुहयत्तिरोहित्तादो ।

एव संजदामंजदाण । णत्तरि उउवादे णत्थि, अपज्जत्तकाले सजमासजमगुणस्स अभावादो । सजदासजदाणमोगाहणगुणगारो घणगुल । मारणतिए पदरंगुल दादव्व । वेगुच्चियपदेण सगरासिस्स असखेज्जदिभागो आउलियाए असखेज्जदिभागपडिभागेण । सजदासजदाण कध वेउव्वियसमुग्घादस्स सभवो ? ण, ओरालियसरीरस्स निउव्वणप्पयस्स निण्णुकुमारोदिस्स दुसणादो । सजदासजदेसु नि मारणतियरासी ओघरासिस्स असखेज्जदि

समाधान—नहीं, क्योंकि, मरण करनेवाले देवगतिस्वर्गधी जीवोंसे उसी भयमें मिथ्या-यको प्राप्त होनेवाले जीव असख्यातगुणे होते हैं । अथवा, उपशमसम्यक्त्वके काल प्रमाण आयुके अवशिष्ट रहनेपर उपशमसम्यक्त्व गुणको प्राप्त होनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते हैं । और मारणान्तिकसमुदात्तके कालसे गुणस्थानका काल सख्यातगुणा होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

यहापर उपरिम राशिका गुणकार पूर्वाक्त ही है, क्योंकि, यहा देवराशिकी प्रधानता है । उपपादमें तो तिर्यंचराशि प्रधान है । इतनी विशेषता है कि असयतसम्यक्त्वदि गुणस्थानस्वर्गधी उपपादमें देव प्रधान है । तथा असयतगुणस्थानस्वर्गधी मारणान्तिक समुदात्तमें तिर्यंच प्रधान है । सम्यग्मिथ्याहादि गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुदात्त और उपपाद नहीं होते हैं, क्योंकि, इस गुणस्थानका इन दोनों प्रकारकी अवस्थाओंके साथ विरोध है ।

इसीप्रकार सयतासयतोंका क्षेत्र जानना चाहिये । इतना विशेष है कि सयतासयतोंके उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, अपर्णात्त कालमें सयतासयत गुणस्थान नहीं पाया जाता है । सयतासयतोंकी अवगाहनका गुणकार घनागुल है । मारणान्तिकसमुदात्तमें प्रतरागुलरूप गुणकार देना चाहिये । वैकिकपक्षसे आबलीके असख्यातयें भागरूप प्रतिभागके द्वारा अपनी राशिका असख्यातवा भाग लेना चाहिये ।

शकां—सयतासयतोंके वैकिकिकसमुदात्त कैसे सभय है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विण्णुकुमार आदिमें विमिया-मक् औदारिकशरीर देखें

१ आइं चैदेक जीवस्थाने यागमे सतविधकाययागस्वामिप्ररूपणायामौदारिककाययाग औदारिकमि भकाययाग तिथम्भउत्थाणं वैकिकिककाययोगो वैकिकिकामिभकाययागश्च देवनाकाणासुत्त , इइ तिथम्भउत्थाणं मपीउत्थते तदिदमावविस्सद, इत्युत्थाणत्ते-न, जयत्तापदेणत्त । ध्याय्याप्रसत्तिद्वडकेपु शरीरमे वापीओदारिकन किपिउत्तसकामणानि कत्तारि शरीराशुणानि, मनुत्थाणं च । पूर्वम-याययोरत्तयोर्विंशथ ? न विरोध, आमिप्रायक्त्वात् । अीवरपाने सर्वदत्तनाकाणां सर्वकालवैकिकिकदशनात् तद्योगविधिरिजमिप्राय । नैव तिथम्भउत्थाणां लधिप्रसज्य वैकिकिक सर्वेषां सबकालमस्ति कादाचित्कत्वाद् यागयापत्तितद्वक्त्वेअरित्तममात्रमभियेतोत् । त रा वा २, ५३

वेदण-कसाय वेउञ्जियाहार मारणातियसमुग्घादाणं उच्चं । णररि तेजासमुग्घादस्स विक्खंभा-
यामे णर वारहजोयणपमाणे कद्दगुले अण्णोण गुणिय वाहल्लेण गुणिदे तेजासमुग्घादखेत्तं
होदि । एद तप्पाओग्गसखेज्जरूपेहि गुणिदे सच्चरुत्तसमासो होदि । ओउट्ठणा पुच्च व ।

अप्पमत्तसजदा सत्थाणसत्थाण विहारउदिसत्थाणत्था केउडि खेत्ते, चदुण्हं लोगाणम-
सखेज्जादिभागे, माणुसखेत्तस्स सखेज्जादिभागे । मारणातिय अप्पमत्ताण पमत्तसजदभंगो ।
अप्पमत्ते सेसपदा णत्थि । चदुण्हमुवसमा सत्थाणसत्थाण मारणंतियपदेसु पमत्तसमा ।
चदुण्ह सउगाणं अजोगिक्खेवलीण च सत्थाणसत्थाणं पमत्तसम । खवगुवसामगाणं णत्थि
उत्तसेसपदाणि । खवगुवसामगाणं ममेदंभाउविरहिदुर्णा कथं सत्थाणसत्थाणपदस्स संभवो ?
ण एस दोसो, ममेदंभावसमण्णिदगुणेषु तहा गहणादे । एत्थ पुण अवट्ठणामेत्तगहणादे ।

प्रतरागुल गुणित सात राजु होता है, जब कि तिर्यङ्गलोक एक लाख योजनके सातवें
भागप्रमाण मोटे जगप्रतरप्रमाण है । अत उक्त मारणान्तिक समुद्धातका क्षेत्र चारों लोकोंके
असख्यातवें भागप्रमाण होता है । तथा मनुष्यलोक ४५ लाख चौड़ा और १ लाख योजन
ही ऊँचा है । अत सयतोंका मारणान्तिकक्षेत्र मनुष्यलोकसे असख्यात गुणा सिद्धहोता है ।

इसप्रकार उक्त क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान, विहारघत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक,
आहारक और मारणातिकसमुद्धातवाले जीवोंका कहा । इतनी विशेषता है कि तैजससमु-
द्धातके नौ योजनप्रमाण विष्कभ और वारह योजनप्रमाण आयाम क्षेत्रके किये हुए अगुलोंका
परस्पर गुणा करके सूच्यगुलके सख्यातवें भागप्रमाण थाहल्यसे गुणित करनेपर तैजस
समुद्धातका क्षेत्र होता है । इसे इसके योग्य सरयातसे गुणित करनेपर तैजससमुद्धातके
सर्वक्षेत्रका जोट होता है । यहापर अपघर्तना पढलेके समान जानना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान और विहारघत्स्वस्थानरूपसे परिणत अप्रमत्तसयत जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते
हैं, और मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्धातको
प्राप्त हुए अप्रमत्तसयतोंका क्षेत्र मारणान्तिक समुद्धातको प्राप्त हुए प्रमत्तसयतोंके
क्षेत्रके समान होता है । अप्रमत्तसयत गुणस्थानमें उक्त तीन स्थानोंकी छोड-
कर शेष स्थान नहीं होते हैं । उपशामश्रेणीके चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव
स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिकसमुद्धात, इन दोनों पदोंमें स्वस्थानस्वस्थान और मारणा-
तिकसमुद्धातगत प्रमत्तसयतोंके समान होते हैं । क्षपकश्रेणीके चार गुणस्थानवर्ती क्षपक
और अयोगिकेवली जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान प्रमत्तसयतोंके स्वस्थानस्वस्थानके समान
होता है । क्षपक और उपशामक जीवोंके उक्त स्थानोंके अतिरिक्त शेष स्थान नहीं होते हैं ।

शुक्रा—यह मेरा है, इसप्रकारके भावसे रहित क्षपक और उपशामक जीवोंके
स्वस्थानस्वस्थान नामका पद कैसे समभव है ?

समाधान—यह कोई शेष नहीं, क्योंकि, जिन गुणस्थानोंमें ' यह मेरा है '

पदेसेहि रियहियारादो । एदाणि खेत्ताणि चद्रुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो चि पमत्तादओ
चद्रुण्ह लोमाणमसंखेज्जदिभागो अच्छंति, माणुसखेत्तस्स सखेज्जदिभागो । मारणतियस्स
सचरज्जुहि सखेज्जपदरगुलगुणिदइच्छिदसजदरासी गुणेदब्बो । तेण मारणतियममुग्घादग
सजदा माणुसलोगादो असखेज्जगुणे खेत्ते अच्छति । एद सत्थाणसत्थाण विहारदिमत्थाण

यात नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर समुदातगत केघलीके जीवप्रदेशोंके साथ व्यवहार
भा जाता है । ये सप्त क्षेत्र सामान्य आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये
प्रमत्तसयत आदि राशिया चार लोकोंके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहती हैं, तथा मानुषक्षेत्रके
सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती हैं । मारणान्तिकसमुदातका क्षेत्र लानेके लिये जिस
अभीष्ट सयतराशिका क्षेत्र लाना हो उसे सख्यात प्रतरागुलोंसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे
सात राजुओंसे गुणित करना चाहिये । इस कारण मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त हुए सयतत्रय
मानुषलोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

नियेपार्थ— यहा प्रमत्तसयतादि गुणस्थानयतीं जीवोंका मारणान्तिकसमुदातसम्बन्ध
क्षेत्र लानेके लिए अभीष्ट राशिको सख्यात प्रतरागुलोंसे गुणित करके पुन सात राजुओंसे
गुणित करनेका विधान कहा है । इसका अभिप्राय यह है कि सयत जीव सौधर्मकल्पसे लेकर
सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, और इसीलिए वे यहातक मारणान्तिकसमुदात भी कर
सकते हैं । सर्वार्थसिद्धि मध्यलोकसे लगाकर कुछ कम ७ राजु ऊर्ची है । तथा एक सयतकी
उत्कृष्ट अथगाहना भी सख्यात प्रतरागुल प्रमाण ही होती है । अत उत्कृष्ट मारणान्तिकसमु
दातक्षेत्रकी अपेक्षा सात राजुओंसे सख्यात प्रतरागुलोंके गुणित करनेका विधान किया गया
है । एक सयतकी उत्कृष्ट अथगाहनाके प्रतरागुल निम्न प्रकार आते हैं—

उत्सेघ ५०० धनुष, विष्कम्भ $\frac{५००}{९}$ धनुष,

परिधि $\frac{५००}{९} \times १६ + १६ + \frac{५००}{९} \times ३ = \frac{१७७६४४}{१०१७}$

क्षेत्रफल $\frac{१७७६४४}{१०१७} \times \left(\frac{१००}{९} \times \frac{१}{४} \right) = \frac{८८१२०००}{३६६१२}$ धनुष ।
= $\frac{८८१२०००}{३६६१२} \times \frac{९६}{१} = \frac{८५२५९५२०००}{३६६१२}$ प्रतरागुल ।

सर्व सयतराशिका प्रमाण ८९९९९९९७ इतना है । इसमेंसे प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी
यथायोग्य राशिके सख्यातवें भागप्रमाण राशि ही मारणान्तिकसमुदात करती है । अतएव
उससे ऊपर निकाले गये एक अथगाहनाके प्रतरागुलोंसे गुणित करनेपर भी सख्यात प्रतरागुल
ही होते हैं । इस प्रकार मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त समस्त सयतींका क्षेत्र सख्यात

भागे हिदे तेसं लोगाणमसरेज्जदिभागे जागच्छदि । माणुसलोगेण भागे हिदे असंसेज्जाणि माणुसरेत्ताणि आगच्छंति । गगरि पलियंकेण दडसमुग्घादगदकेवलिसस निक्खंमो पुब्ब-
निक्खभादो तिगुणो होदि । तस्स पमाणमेद ३६ । एदस्स परिट्ठओ तेरहुत्तरसदंगुलाणि सत्तामीस तेरहुत्तरसदभागा ११३ $\frac{१६६}{३}$ । सेसं पुब्बं व ।

कपाडगदो केवली केवडि खेत्ते, तिण्ह लोगाणमसंसेज्जदिभागे, (तिरियलोगस्स ससे-
ज्जदिभागे,) अट्ठाइज्जादो अमसेज्जगुणे । एत्थ कपाडगदकेवलिसस खेत्ताणयणनिहाण बुचुच्चे-

विशेषार्थ—यद्वापर दडसमुद्धात क्षेत्रका प्रमाण केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना १०८ प्रमाणगुल लेकर बतलाया है । किन्तु इससे पूर्व ही केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष प्रमाण कही गई है । चूँकि उत्सेधागुलसे प्रमाणगुल ५०० गुणा होता है, इसलिय ५२५ धनुषके प्रमाणगुल $\frac{५२५ \times ९६}{५००} = १०० \frac{४}{५}$ होते हैं । वर्तमान प्रकरणमें विदेहक्षेत्रकी सयतराशि प्रधान है । अतएव यदि विदेहसम्यन्धी अवगाहना ली जाय, तो वह $\frac{५०० \times ९६}{५००} = ९६$ प्रमाणगुल ही होती है । १०८ प्रमाणगुलके धनुष $\frac{१०८ + ५००}{९६} = ५६२ \frac{१}{२}$ होते हैं जो उक्त ५२५ धनुषके प्रमाणसे बढ जाते हैं । इस वैषम्यका कारण विचारणीय है ।

एक साथ समुद्धात करनेवाले सख्यात केवलियोंके दृक्षेत्रका प्रमाण लानेके लिये इसे सख्यातसे गुणित करे । हमप्रकार जो क्षेत्र उत्पन्न हो उसे त्रेराशिकके क्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंसे भाजित करनेपर उन चार लोकोंसे प्रत्येक लोकके असख्यातयें भागप्रमाण दृक्षेत्र आता है । तथा उक्त दृक्षेत्रको मानुषलोकसे भाजित करने पर असख्यात मानुषक्षेत्र लघ आते हैं । इतनी विशेषता है कि पल्यकासनसे दडसमुद्धातको प्राप्त हुए केवलीका विष्कभ पहले कहे हुए बारह अगुलप्रमाण निष्कभसे तिगुना होता है । उसका प्रमाण ३६ अगुल है । इसकी परिधि एकसौ तेरह अगुल और एक अगुलके एकसौ तेरह भागोंसे सत्ताईस भागप्रमाण ११३ $\frac{१६६}{३}$ है ।

उदाहरण—व्यास ३६, अतएव गाया न १४ के अनुसार परिधिका प्रमाण—

$$\frac{३६ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१०८}{१} = ११३ \frac{२७}{११३}$$

शेष कथन पूर्वके समान है ।

कपाटसमुद्धातको प्राप्त हुए केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यंग्लोकके सख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईसीसे सख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । अब यद्वापर कपाटसमुद्धातको प्राप्त हुए केवलीका क्षेत्र लानेका विधान कहते हैं—

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखे जेसु वा भागेषु, सन्वलोगे वा ॥ ४ ॥

एत्थ सजोगिकेनलिस्स सत्थाणसत्थाण-विहारपदिसत्थाणाण पमत्तमंगो । दड्ढदो केवली केवडि खेत्ते, चउण्ह लोगणमसखेज्जदिभागे, अड्ढाड्ढादो असखेज्जगुणे । त कध ? अट्टुत्तरसदपमाणगुलाणि उस्सेधो उक्कस्सोगाहणकेवलीण होदि । तस्स णमभागो निक्खमो १२ एत्तिओ होदि । तस्स परिट्टुओ सत्ततीस अगुलाणि पचाणउदि तेरससदभागा ३७१११ । इम निक्खमचउम्भागेण गुणिते मुहपदरगुलाणि हँति । एटाणि देसण चोहसरज्जहि गुणिते दड्ढखेत्त होदि । एट्ठ सखेज्जरूपगुण तेरासियकमेण चट्टुहि लोमेदि

इस प्रकारका भाव पाया जाता है वहा वैसा प्रहण किया है । परन्तु यहापर अर्थात् क्षपक और उपशामक गुणस्वानोंमें अवस्थानमात्रका प्रहण किया गया है ।

सजोगिकेवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा लोकके असख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा सर्लोकमें रहते हैं ॥४॥

यहापर सजोगिकेवलीका स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र प्रमत्त सयतोंके स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रके समान होता है । दड्ढसमुदातको प्राप्त हुए केवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईद्वीपसत्रधी लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका — दड्ढसमुदातको प्राप्त हुए केवलियोंका उक्त क्षेत्र कैसे समभव है ?

समाधान — उत्कृष्ट अवगाहनासे युक्त केवलियोंका उत्सेध एकसौ आठ प्रमाणागुल होता है, और उसका नौवा भाग अर्थात् बारह १२ प्रमाणागुल विष्कम्भ होता है । इसकी परिधि सैंतीस अगुल और एक अगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे पचानवे भाग प्रमाण ३७१११ होती है । इसे निष्कम्भ बारह अगुलके चौथे भाग तीन अगुलोंसे गुणित करनेपर मुखरूप बारह अगुल लगे और बारह अगुल चौडे गोल क्षेत्रके प्रतरागुल होते हैं । इन्हें कुछ कम चौदह राजुओंसे गुणित करनेपर दड्ढक्षेत्रका प्रमाण आता है । यह एक केवलीके दड्ढक्षेत्रका प्रमाण हुआ ।

उदाहरण—व्यास १२ अंगुल, अतएव गाथा न १४ के अनुसार उसका परिधिका

$$\text{प्रमाण—} \frac{१२ \times १६ + १६}{११३} + \frac{३६}{१} = \frac{४२७६}{११३} = ३७ \frac{९६}{११३} \text{ अगुल ।}$$

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{४२७६}{११३} \times \frac{१२}{४} \text{ (व्यासका घनयार्श) } = \frac{१२८२८}{११३} \text{ प्रतरागुल ।}$$

$$\text{अतएव दड्ढसमुदातगत केवलीका क्षेत्रप्रमाण} = \frac{१२८२८}{११३} \times \text{देशोन १४ राजु ।}$$

केनली पुष्पाहिमुहो ना उचराहिमुहो ना समुग्घाद करंतो जदि पलियकेण समुग्घाद करेदि, तो कनाडनाहल्ल छत्तीसगुलाणि होति । अह जइ काउस्सग्गेण कनाड करेदि, तो राहगुन वाहल्ल कनाड होदि । तत्थ ताण पुष्पाहिमुहकेनलिस्स कनाडसेत्ताणयण भण्णमाणे चौदस रज्जुआयाम सत्तरज्जुविकसम छत्तीसगुलनाहल्ल सेत्त ठणिय मज्जे छेन्नूण एकखेत्तस्सुरि विदियसेत्त ठणिदे वाहत्तरिअगुलनाहल्ल जगपदर होदि । काउस्सग्गेण द्विदकेनलिकनाडसेत्त चउज्जीमगुलनाहल्ल होदि । उचराहिमुहो होदूण पलियकेण समुग्घादगदकेनलिकनाडसेत्त छत्तीसगुलनाहल्ल जगपदर होदि । इयरस्स १२ वारहगुलनाहल्ल, त्रेयणाए निणा तिगुणत्ताभावा । एद सेत्त तेरामियकमेण तिण्ह लोगाण पमाणेण कीरमाणे तेमि लोगाणम मसेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स पुण सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो अमखेज्जगुण होदि ।

पदरगदो केनली केनडि सेत्ते, लोगस्स असखज्जेसु भागेसु । लोगस्स अत्त सेज्जदिभाग वादपलयरुद्धसेत्त मोत्तण सेमवट्टुभागेसु अच्छदि त्ति ज वुत्त होदि । घणलोग पमाण तेदालीसुत्तगत्तिमद ३४३ घणरज्जुओ । अबोलोगपमाण छण्णवुदिसदघणरज्जुओ

केवली जिन पूवामिमुख अथवा उत्तरामिमुख होकर समुद्रातको करते हुए यदि पत्थकासनसे समुद्रातकी करते ह तो कपाटक्षेत्रका बाह्य अगुल होता है । और यदि कायोत्सर्गसे कपाटसमुद्रात करते हैं तो वारह अगुलप्रमाण बाह्यवाला कपाटसमुद्रात होता है । इनमेंसे पहले पूर्वाभिमुख केवलीके कपाटक्षेत्रके लानेकी विधिना कथन करनेपर चौदह राजु लये, सात राजु चौडे और छत्तीस अगुल मोटे क्षेत्रको स्थापित करके उसे चौदह राजु लवाईमेंसे बीचमें सात राजुके ऊपर उन्न करके एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको स्थापित कर देनेपर वहत्तर अगुल मोटा जगप्रतर हो जाता है । और कायोत्सर्गसे पूर्वाभिमुख स्थित हुए केवलीका कपाटक्षेत्र चौबीस अगुल मोटा जगप्रतर होता है । उत्तरामिमुख होकर पत्थकासनसे समुद्रातकी प्राप्त हुए केवलीका कपाटक्षेत्र छत्तीस अगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण होता है । तथा इतरका अर्थात् उत्तरामिमुख होकर कायोत्सर्गसे समुद्रातकी करनेवाले केवलीका कपाटक्षेत्र वारह अगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण लग चौडा होता है, क्योंकि, घेदना समुद्रातकी छोडकर जीवने प्रदेश तिगुने नहीं होते हैं । यह उपयुक्त कपाटसमुद्रातगत केवलीका क्षेत्र त्रेराशिक्षत्रमसे सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके प्रमाणरूपसे करनेपर उन तीन लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असख्यातयें भागप्रमाण हैं । तिर्यग्लोकके सख्यातयें भाग प्रमाण है और अट्टाईदीपसे असख्यातगुणा है ।

प्रतरसमुद्रातकी प्राप्त हुए केवली जिन कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । लोकके असख्यातयें भागप्रमाण वातचलयसे रूक हुए क्षेत्रकी छोडकर लोकके शेष बहुभागमें रहते ह, यह इस कथनका अभिप्राय है । घनलोकका प्रमाण तानिसौ वेतालीस ३४३ घनराजु है । अबोलोकका प्रमाण एकसौ छ्यात्रये १९६ घनराजु है

१९६। उड्डुलोगपमाण सत्तेत्तालीससदघणरज्जुओ १४७। उड्डुलोगपमाणायणे सुत्तगाहा-
मूल मज्जेण गुण सुहसहिदद्वमुत्सेधकदिगुणिदं ।

घणगणिद जाणेज्जो मुदिंगसठाणखेत्तग्हि ॥ १५ ॥

एदिस्से गाहाए अत्थो बुच्चदे- मूल मुदिंगस्सेत्तस्म बुंधनित्थारं, मज्जेण मुदिंग-
मज्झपचरज्जुहि सह, गुण जुद कादव्व । मुहं मुदिंगमुहरुधपमाणं, सहिद मुदिंगमज्जेण
जुद कादण, अद्द जद्द करिय समीकद, उत्सेधकदिगुणिद उत्सेधग्गेण गुणिदे रुदे, मुदिंग-
खेत्तफल होदि ।

मुह-तलसमासअद्द उत्सेधगुण गुण च पेहेण ।

घणगणिद^१ जाणेज्जा वेत्तासणसठिए खेत्ते ॥ १६ ॥

एदीए गाहाए अबोलोगघणगणिदमाणेज्जो ।

सपदि लोगेपरतड्डिदवाद्दलयरुद्धरेत्ताणयणनिधाण बुच्चदे- लोगस्स तले तिण्हं
वादाण वाहल्ल पादेक्क नीससहस्मजोयणमेत्त । त सव्वमेगट्ठ क्कदे सट्ठिजोयणमहस्सवाहल्ल

ऊर्ध्वलोकका प्रमाण एकसा सेंतालीस १४७ घनराजु है । अब ऊर्ध्वलोकके प्रमाणको लानेके
लिये नीचे सूत्रगाथा दी जाती है—

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें मुखका प्रमाण
जोडकर आधा करो । पुन इसे उत्सेधके वर्गसे गुणित करो । यह मृदगाकार क्षेत्रमें घनफल
लानेका गणित जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं—मूल अर्थात् मृदगक्षेत्रके बुध्विस्तारको मृदगक्षेत्रके
मध्यविस्तार पाच राजुओंके साथ गुणित करके जोड दे । इसका तात्पर्य यह हुआ कि मुखको
अर्थात् मृदगाकार क्षेत्रके मुखविस्तारके प्रमाणको मृदगके मध्यविस्तार पाच राजुओंसे सहित
अर्थात् युक्त करके, आधा आधा करके समीकरण कर ले । अनन्तर उसे उत्सेधके वर्गसे
गुणित करनेपर मृदगक्षेत्रका घनफल होता है । (देखो विशेषार्थ पृष्ठ २१)

मुखके प्रमाण और तलभागके प्रमाणको जोडकर आधा करे । पुन इसे उत्सेधसे
गुणित करके वेधसे गुणित करे । यह वेत्तासनके आकारवाले क्षेत्रमें घनफल लानेकी
प्रक्रिया जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इस गाथासे अधोलोकका घनगणित ले आना चाहिये ।

अब लोकके पर्यन्त भागमें स्थित वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रके लानेकी विधिको
बतलाते हैं— लोकके तलभागमें तीनों वायुओंमेंसे प्रत्येक वायुका बाहल्य घीस हजार योजन

१ प्रतिपु ' गुणिद ' इति पाठ ।

२ इत आरण्याप्रतनो वातवलयपरूपव प्रब धमिलोकप्रसृप्ते प्रथमाधिनारगतन अनेन प्रकरणेन श दशा
धमान ।

रज्जुआयाम सोलहारह सोलहारहजोयणवाहल्लेण दोसु वि पासेसु द्विदवादसेत्त जग पदरपमाणेण कदे चउसद्धिसदजोयणूण अट्टारहसहस्मजोयणाण तेदालीस तिसदभागवाहल्ल जगपदर उप्पज्जदि ११६३ । पुणो सत्तभागाहिय उरज्जुमूलविकसभेण उरज्जुउस्मेधेण एगज्जुमुहेण सोलहारहजोयणवाहल्लेण दोसु वि पासेसु द्विदवादसेत्त जगपदरपमाणेण कदे वाटालीमजोयणसदस्म तेदालीस तिसदभागवाहल्ल जगपदर होदि ११६३ । पुणो एग पच एगरज्जुविकसभेण सत्तरज्जुउस्मेधेण नारह-सोलहारहजोयणवाहल्लेण उरिमिगेसु

पुन उत्तर आर दक्षिणमें पूर्वमे पश्चिमतक सात राजु विष्कभरूपसे, सातवाँ पृथि वीके तलभागसे लोकाततक तेरह राजु आयामरूपसे और अधोलोककी अपेक्षा सोलह, बारह और ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा सोलह बारह योजन बाह्यरूपसे दोनों ही पाद्वर्षभागमें स्थित घातक्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर एकसौ चौसठ योजन कम अठारह हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $१३ \times ७ = ९१$; $९१ \times १४ = १२७४$, $१२७४ \times २ = २५४८$ । इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये सातसे गुणा करे और तीनसौ तेतालीस का भाग दे, तब $\frac{१७८३६}{३४३}$ योजन मोटा जगप्रतर आता है । यह उत्तर और दक्षिणमें सातवाँ पृथिवीसे लेकर लोकाततक वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है ।

पुन पूर्व और पश्चिम दिशामें सातवाँ पृथिवीके पास एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजुप्रमाण मूलमें विष्कभरूपसे छह राजु उत्तरेधरूपसे, मध्यलोकके पास एकराजु मुख्यरूप से और सोलह, बारह योजनप्रमाण बाह्यरूपसे दोनों ही पाद्वर्षोंमें स्थित वात क्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर ब्यालीससौ योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} - \frac{२}{१} = \frac{५०}{१४}$; $\frac{५०}{१४} \times \frac{२}{१} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} \times १४ = \frac{७००}{७}$; $\frac{७००}{७} \times ६ = \frac{६२००}{७}$, इसे जगप्रतररूपसे करनेपर ४९ का भाग देनेसे $\frac{४२००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर और पश्चिममें सातवाँ पृथिवीसे मध्यलोकतक वायुरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

पुनः मध्यलोकके पास एकराजु , ब्रह्मलोकके पास पाँचराजु और लोका तमें एक राजु विष्कभरूपसे, सात राजु उत्तरेधरूपसे तथा, बारह सोलह और बारह योजनप्रमाण बाह्यरूप

१ उदय मूसर वेदा छरज्जु सत्तरउररत्त १३जु य । जायण बोदय सत्तमत्रिभियो वि हु दक्खिमणुवदा ॥
२ यागिठसेषल उमेय पावग्गि होइ जगपदर । उस्मयजोयणशुण्दि पविमत्त सत्तवग्ग वि सा १३४, १३५

वि पासेसु द्विदनादखेत्त जगपदरपमाणेण कद्रे अट्टासीदिसमहिय पचजोयणसदाणं एगूण-
पचासभागनाहल्ल जगपदर होदि ५६६ । उतरि रज्जुत्रिकसमेण सत्तरज्जुआयामेण
क्रिञ्चणजोयणवाहल्लेण द्विदनादखेत्त जगपदरपमाणेण कदे ति-उत्तर तिसदाणं रेसहस्स-
निसद चालीमभागनाहल्ल जगपदर होदि ३३३३ । एद सव्वमेगतथ मेलापिदे चउतीस-
कोडिसमहियसहस्सकोडीओ एगूणतीसलसस तेमीदिमहस्स-चदुसद सत्तासीदिजोयणाण ण-
सहस्स सत्तसय-मट्टिरूनाहियलससाए अग्रहिदेगभागनाहल्ल जगपदर होदि $\frac{१०२४१०८३४८०}{१०९७६०}$ ।

रूप से ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दोनों ही पादोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करने पर पाचसौ अठ्ठासी योजनोंके उनचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} ५ + १ = ६, \quad ६ - २ = ३, \quad ३ \times ७ = २१, \quad २१ \times २ = ४२,$$

$४२ \times १४ = ५८८$ इसे जगप्रतरप्रमाणसे करने पर ४९ का भाग देनेसे $\frac{५८८}{४९}$ योजनोंके जितने प्रवेश हों उतने जगप्रतर लब्ध आते हैं । यही ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दो दिशाओंके वातद्वय क्षेत्रका घनफल है ।

लोकके उपरिम भागमें एक राजु विष्कभरूपसे, सात राजु आयामरूपसे, कुल कम एक योजन बाह्यरूपसे स्थित वातक्षेत्रका जगप्रतरप्रमाणसे करने पर तीससौ तीन योजनोंके दो हजार दोसौ बालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $१ \times ७ \times ३३\frac{३}{४} - \frac{१}{४} = ३३\frac{३}{४}$ यही लोकके अग्रभागके वातद्वयक्षेत्रका घनफल है ।

इस सर्ष घनफलको एकत्रित करनेपर एक हजार चौबीस करोड, उनीस लाख तेरासी हजार चारसौ सत्तासी योजनोंमें एक लाख नौ हजार सातसौ साठका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने योजनप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{३१९८००००}{३४४} + \frac{१७८३६}{३४४} + \frac{४२००}{३४३} + \frac{५८८}{४९} + \frac{३०३}{२२४०} = \frac{१०२४१०८३४८०}{१०९७६०}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतर लोकके चारों ओर वातद्वयक्षेत्रका घनफल होता है ।

१ आउत्तरज्जुसदा जोयण चोदस य वासमुजवहो । नदो ति पुत्र भवरो फलमेद चदुगुण सव्व ॥ पथा
हुट्टिमिन्नु धुनुगपुह विस्सजायणय । वहा त चउगुणिद येतफल दाविसणुत्तरदो ॥ वि सा १३६, १३७

२ वासदयमुज रज्जु इगिजोयणवामनिसदसडेह ॥ सतिविसद सेदा फलमीयिपमावकरी दव्वकाऊण ॥
वि सा १३८

३ सत्तासीदिचदुसदसहस्सतसादिलससउणवाप । चउवीसहिय काडिमहरसगुणिय तु जगपदर ॥ सट्टो
सत्तपदि णवपसहरसेगलवसमजिय तु । सव्व वादादद गणिय भणिय समासण ॥ वि सा १३९-१४०

रज्जुआयाम सोलहवारह सोलहवारहजोयणवाहल्लेण दोसु पि पासेसु द्विदवादखेत्ते जग पदरपमाणेण कदे चउसद्धिसदजोयणूण अट्टारहमहस्मजोयणाण तेदालीम तिमदभागवाहल्ल जगपदर उप्पज्जदि '५४३' । पुणो सत्तमागाहिय उरज्जुमूलविस्सभेण छरज्जुउस्सेवेण एगरज्जुमुहेण सोलह वारहजोयणवाहल्लेण दोसु पि पासेसु द्विदवादखेत्ते जगपदरपमाणेण कदे वादालीसजोयणसदस्म तेदालीस तिसदभागवाहल्ल जगपदर होदि '३३३' । पुणो एग पच एगरज्जुविकसभेण सत्तरज्जुउस्सेवेण वारह सोलह वारहजोयणवाहल्लेण उतरिमदोसु

पुन उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक सात राजु विष्कभरूपसे, सातवीं पृथिवी वाक तलभागसे लोकान्ततक तेरह राजु आयामरूपसे और अघोलोककी अपेक्षा सोलह, वारह और ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा सोलह वारह योजन बाह्यरूपसे दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर पन्सौ चौसठ योजन कम अठारह हजार योजनोंके तीनसौ तैतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूपसे जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $१३ \times ७ = ९१$, $९१ \times १८ = १२७४$, $१२७४ \times २ = २५४८$ । इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये सातसे गुणा करे और तीनसो तैतालीस का भाग दे, तब $\frac{१७८३६}{३४३}$ योजन मोटा जगप्रतर आता है । यह उत्तर और दक्षिणमें सातवीं पृथिवीमें लेकर लोकान्ततक वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है ।

पुन पूर्व और पश्चिम दिशामें सातवीं पृथिवीके पास एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजुप्रमाण मूलमें विष्कभरूपसे छह राजु उत्तरेधरूपसे, मध्यलोकके पास एक राजु मूलरूपसे और सोलह, वारह योजनप्रमाण बाह्यरूपसे दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वात क्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर प्वालीससौ योजनोंके तीनसो तैतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूपसे जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$, $\frac{०}{७} - \frac{२}{७} = \frac{५०}{१४}$, $\frac{१०}{१४} \times \frac{२}{१} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} \times १४ = \frac{७००}{७}$, $\frac{७००}{७} \times ६ = \frac{४२००}{७}$; इसे जगप्रतररूपसे करनेपर ४९ का भाग देनेसे $\frac{४२००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतर लब्ध था जाते हैं । पूर्व और पश्चिममें सातवीं पृथिवीसे मध्यलोकतक वायु रुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

पुना मध्यलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पाच राजु और लोका तमें एक राजु विष्कभरूपसे, सात राजु उत्तरेधरूपसे तथा, वारह सोलह और वारह योजनप्रमाण बाह्य

१ उदय भूभूद वही छानु सत्तमवर्त्त १० नू य । जोयण चोरव सत्तमत्रियो वि हु दनिबुधरादा ।
४ भागिलक्षेत्रफल उभये पाठगिमा ही, जगपदर । अस्तयजायणशानिद पत्रिमत्त सत्तवगीग त्रि सा १३४, १३५

एत्थ 'आदेसेण' गहण ओघपडिसेधफल । गदिगहणमिदियादिपडिसेधफलं । अणुनादगहण सुत्तस्स अकट्टित्तुत्तपरूषणफल । णिरयगदिणिद्दसो देणगदियादिपडिसेधफलो । णेरइएसु त्ति वयणं तत्थतणपुट्टमिक्काइयाट्टिपडिसेधफल । लोगस्स असखेज्जदिभागे इदि चुने सेसलोगाण कध गहणं होदि ? ण, खेत्त फोसणसुत्ताण देसामासिगचादो ।

सपदि सत्थाणसत्थाण-मिहारवदिसत्थाण वेदण कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगद-मिच्छा-इट्ठी केणडि खेत्ते, चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, अट्टाडज्जादो असखेज्जगुणे । एदस्स अत्थपरूषणङ्गमेत्थेगाहणा चुत्ते । त जहा-पढमाए पुट्टवीए पढमपत्थडमिह णेरइयाण-मुस्सेधो तिण्णि हत्था । तेरहमपत्थडे सत्त धणू तिण्णि हत्था छ अंगुलाणि णेरइयाण-मुस्सेधो होदि ।

मुह भूमिधिसेसग्घि दु उच्छेहभजिदग्घि सा हवे वट्ठी ।

वट्ठा इ-छागुणिदा मुहसहिदा सा फल होदि ॥ १७ ॥

इस सूत्रमें आदेश पदके ग्रहण करनेका फल ओघका प्रतिषेध करना है । गति पदके ग्रहण करनेका फल इन्द्रियादिना प्रतिषेध करना है । अनुवाद पदके ग्रहण करनेका फल सूत्रके अकर्तृकत्वना प्ररूपण करना है । नरकगति पदके निर्देश करनेका फल देवगति आदिका प्रतिषेध करना है । नारकियोंमें इसप्रकारके चचनके देनेका फल यद्वाके क्षेत्रमें रहनेवाले पृथिवीकायिक आदिका प्रतिषेध करना है ।

शंका—लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं, केवल इतना कहनेपर शेष लोकोंका ग्रहण कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके सूत्र देशामर्शक हैं, इसलिये 'लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं' इतने पदके कहनेसे शेष लोकोंका भी ग्रहण हो जाता है ।

अथ विशेष पदोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि नारकियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैकिकियकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्या दृष्टि नारकी जीव वितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं और अढाईट्टीपप्रमाण मानुषलोकसे सख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । अथ इसके अर्थके प्ररूपण करनेके लिये यद्वापर नारकियोंकी अवगाहना कहते हैं । यद्वा इसप्रकार है—पहली पृथिवीके पहले पाथडेमें नारकियोंका उत्सेध तीन हाथ है । तेरहवें पाथडेमें सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल नारकियोंका उत्सेध है ।

भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेधका भाग देनेपर जो लब्ध आवे यद्वा वृद्धिका प्रमाण होता है । अथ जिस पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण लाना हो उसे इच्छा मानकर उससे

१ सत्त त्ति एदह हत्थगुलाणि कम्मो हवति घम्माए । चरिमिदयाथि उदओ । ति प २, २१७ रयणप्पमाए पुट्टमाए नेरइयाण XX सरीरोगाहणा XXX उक्कोपण सत्त धणूइ तिण्णि रयणीओ उच्च अशलाइ जीवामि ३, २, १२.

एद वादरुद्धकसेच घनलोगमिह अणिदे पदरगदकेनलिसेच देमणलोगो होदि । एद पदरगदकेनलिखेचमधोलोगपमाणेण कदे वे अधोलोगा अधोलोगस्स चदुम्माणेण सादिग्गेण उणया । उड्डुलोगपमाणेण कदे दुवे उड्डुलोगा उड्डुलोगस्स तिभागेण देमणेण सादिरया ।

लोगपूरणगदो केवली केवडि सेचे, सव्वलोगे ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइडि
णहुडि जाव असंजदसम्माइडि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असखे-
जदिभागे' ॥ ५ ॥

इस घातरुद्धक्षेत्रको घनलोकमेंसे घटा देनेपर प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र कुछ कम लोक प्रमाण होता है । प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलीका यह क्षेत्र अधोनेकके प्रमाणरूपसे करनेपर कुछ अधिक अधोलोकके चौथे भागसे कम दो अधोलोकप्रमाण होता है । तथा इसे ही उर्ध्वलोकके प्रमाणरूपसे करनेपर उर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो उर्ध्वलोकप्रमाण होता है ।

विशेषार्थ — जगद्वेणीके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतरप्रमाण सर्व लोक है । इसमेंसे $\frac{1}{200000}$ योजनप्रमाण जगप्रतरोंके घटा देनेपर प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र होता है । अधोलोकका प्रमाण १९६ घनराजु है, इसलिये यदि इसे अधोलोकके प्रमाणरूपसे किया जाय तो दो अधोलोकोंके प्रमाण ३९२ घनराजुओंमेंसे $\frac{1}{200000}$ योजनप्रमाण जगप्रतर अधिक अधोलोकके चौथे भागप्रमाण ४९ घनराजु घटा देनेपर प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र आ जाता है । उर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है, इसलिये यदि इस क्षेत्रको उर्ध्वलोकके प्रमाणरूपसे किया जाय तो ऊर्ध्वलोकके एक तिहाई घनराजु ४९ मेंसे $\frac{1}{200000}$ योजनप्रमाण जगप्रतरोंको घटाकर जितना शेष रहे उसे दो उर्ध्वलोकके प्रमाण २९४ घनराजुओंमें जोड़ देनेपर प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र आ जाता है ।

लोकपूरणसमुद्धातको प्राप्त केवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ।

आदेशकी अपेक्षा गत्यनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिध्याइष्टि गुणस्थानमें लेकर असयत्तसम्पग्दष्टि गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५ ॥

करिय सेम छ पत्थडणेरइयाणमुस्सेधो आणेदव्यो । तस्म पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७
धनुष	३५	४०	४४	४९	५३	५८	६२
हस्त	२	०	२	०	२	०	२
अगुल	२० $\frac{५}{८}$	१७ $\frac{३}{८}$	१३ $\frac{५}{८}$	१० $\frac{३}{८}$	६ $\frac{५}{८}$	३ $\frac{३}{८}$	०

पचमपुढनिपचमपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पणुनीसुत्तरसदधणुणि । एद भूमिं करिय सेमचदुण्हं पत्थडणमुस्सेधो आणेदव्यो । तेषिं पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५
धनुष	७५	८७	१००	११२	१२५
हस्त	०	२	०	२	०

इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष छह पायडोंमें नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नक्शा) ।

विशेषार्थ—इस पृथिवीमें सुख का प्रमाण ३१ धनुष, १ हाथ और भूमिका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ है । तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४ धनुष, १ हाथ और २० $\frac{५}{८}$ अगुल है ।

पाचवीं पृथिवीके पाचवें पाथडेमें नारकियोंका उत्सेध एकसौ पच्चीस धनुष है । इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष चार पाथडोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नक्शा) ।

विशेषार्थ—पाचवीं पृथिवीमें सुखका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ और भूमिका प्रमाण १२५ धनुष है । तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १२ धनुष और २ हाथ है ।

१ चउ दगा इगि हत्यो पव्वाणि धीम सउ पाठिहत्ता । चउ मागा तुमिण पुदवीए इणिवडुआ ॥
पणतीप दवाए हत्याइ दीणिण वास पव्वाणि । सत्तहिदा चउमागा उदओ आरट्टिदाण जीवाण ॥ चालास कोदवा
वीसम्महिअ सय च पव्वाणि । सत्तहिद उच्छेदो तुमिणए मारपटलजीवाण । चउदाल चावाणि दो हत्या अगुलाणि
एणवदी । सत्तहिदो उच्छेदो तारिंदयसठिदाण जावाण ॥ एउफोणवण दगा बाहुरि अगुला य सत्तहिदा । चच्चिदयग्मि
तुमिणवखोणाए पारयाण उच्छेदो ॥ तेवण्णा चावाणि दो हत्या अट्टताए पव्वाणि । सत्तहिदाणि उदओ दमग्गिदय-
सठियाण जीवाण ॥ अट्टावण्णा दवा सत्तहिदा अगुला य चउवास । चादिपग्मि तुमिणवखोणाए पारयाण उच्छेदा ॥
वासठी कोदवा हत्याइ दाणिण तुमिणपुत्राए । चरिभिंदयग्मि खलखलणामाए पारयाण उच्छेदा ॥ ति प २, २५३ २६०

२ पचमीए × पणवीस धनुषय । जीवामि ३ २, १२

३ वरस सारासणाणि दो हत्या पचमीय पुत्राए । खपवडुण पमाण णिदिठ वीयएइ ॥ पणहुरिपरिमाण
कादवा पचमाए पुत्राए । पश्चिंदयग्मि उदओ तमणामे सठिदाण जीवाण ॥ सत्तामीदी दवा दो हत्या पचमीए
छोणाए । पटलग्मि य ममणामे पारपज्जीवाण उच्छेदो ॥ एकक कोदवाय ममणामे पारयाण उच्छेदो । चावाणि

तदियपुढविणवमपत्यडम्हि णेरइयाणमुस्सेधो एकत्तीस धणूणि एगो हत्थो यं । सेसद्वपत्यडणेरइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदव्वो । णपरि एत्थ एकत्तीस धणूणि सहत्थाणि भूमी होदि । पण्णरम धणूणि वे हत्था वारह अगुलाणि सुह होदि । भूमीदा सुहं सोहिय उस्सेधेण णरहि भागे हिदे चट्ठी होदि । त तट्ठं णरमु ठाणेसु ठरिय एगादि एगुचरेहि गुणगारेहि गुणिय मुहम्मि पक्खित्ते इच्छिदउम्सेधो होदि । तम्म पमाणमद-

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९
धनुप	१७	१९	२०	२२	२४	२६	२७	२९	३१
हस्त	१	०	३	२	१	०	३	२	१
अगुल	१०३	९३	८	६३	५३	८	२३	१३	०

चउत्थपुढनिसत्तमपत्यडणेरइयाणमुस्सेधो त्रासट्ठी धणूणि वे हत्था यं । एद भूमि

तीसरी पृथिवीके नाँवें पाथडेमें नारकियोंका उत्सेध इकतीस धनुप और एक हाथ है । शेष आठ पाथडोंके नारकियोंका उत्सेध पूर्व गायके नियमानुसार ले खाना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहापर इकतीस धनुप और एक हाथ भूमि है । पन्द्रह धनुप, दो हाथ और वारह अगुल मुख है । भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेध (पत्र) नौ का भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण आता है । (तीसरी पृथिवीमें प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १ धनुप, २ हाथ और २२ अगुल है ।) इस वृद्धिको नौ स्थानोंमें स्थापित करके एक आदि एकोत्तर गुणशांसे गुणित करके मुखमें मिला देनेपर इच्छित पाथडेके नारकियोंका उत्सेध आता है । उसका प्रमाण यह है- (देखो मूलका नकशा) ।

चौथी पृथिवीके सातवें पाथडेमें नारकियोंका उत्सेध चासठ धनुप और दो हाथ है ।

१ तद्याए × × उनकालेण एकत्तीस धणूह एरका रयणी । जीवामि ३, २, १२

२ एक धणू दो हथा बावीस अगुलाणि दो मागा । तियमजिदा णायशा मेघाए हाणिपुत्रीओ ॥ सत्तस

चावाणि चोत्तीस अगुलाणि दो मागा । तियमजिदा मेघाए उदओ तत्तिदयम्मि जावाण ॥ एककोणवास दहा अट्ठावीस अगुलाणि तिदिदाणि । तत्तिदिदयम्मि तदियवलोणाए णारयाण उच्छेदो ॥ वासस्स दडसदिय सादाए अगुलाणि होदि दहा । तदिय चिय पुत्राए तवर्णिदयणाएयम्मि उच्छेदो ॥ णउरियमाणा हथा तियविहवाणि बीस पत्राणि । मयप तवर्णिदयदिदाण जावाण उच्छेदो ॥ सत्ताणउदो हत्था सोत्तस प वाणि तियविहवाणि । उदओ निदापणामाण पडले णारया जीस ॥ उवीण चावाणि चचारी अगुलाणि मघार । पञ्चदिदयापडले तिदाण जावाण उच्छेदो । सत्तावर्ण दहा तिय हत्था अट्ठ अगुलाणि च । तियमजिदाए उदओ उज्जलिदे णारयाण णाद वा ॥ एकाणतीम दहा दो हत्था अगुलाणि चचारि । तियमजिदाए उदओ सज्जिद तदियपुत्राए ॥ इकत्तास दहाए एकवी हत्थो अ तदिय पुत्राए । सपञ्जजिदे चरिर्मिदयणाएयाण होदि उच्छेदो ॥ ति प २, २४३ २५२

३ चउत्तीए × वामट्ठी धणूह दोणण रयणाओ । जावामि ३, २, १२

पधाणा, पढमपुढनिओगाहणादो सत्तमपुढनिओगाहणाए संसेज्जगुणत्तुपलभादो। दव्व पडि पढमपुढनी पहाणा, सेसपुढनिदव्वादो पढमपुढनिदव्वस्म अमसेज्जगुणत्तुपलभादो। ओगाहणगुणगारादो दव्वगुणगारो ऱ्हुगो त्ति पढमपुढनी पहाणा कायव्वा।

सामण्णेण एत्थ अत्थपढ वुच्चदे। सत्थाणसन्थाणरासी मूलरामिस्स ससेज्जा भागा हेदि। विहारदिसत्थाण पेदण कमाय-वेउच्चियममुग्घादरासीओ मूलरामिस्स ससेज्जदि-भागो। एदमत्थपढ सव्वत्थ जोजेदव्व। पुगो अप्पप्पगो रामीओ ठणिय अगुलस्स ससेज्जदिभागमेचोगाहणाए गुणिय चटुहि लोमेहि ओउट्टिदे चटुण्ह लोगाणमसंसेज्जदि-भागो आगच्छदि। माणुमसेत्तेणोउट्टिदे अमसेज्जाणि माणुमसेत्ताणि हँति। णउरि नेयण रुमापेसु णउग्घणा, पेउच्चियममुग्घादे ससेज्जगुणा ओगाहणा सव्वत्थ कायव्वा। एउ मारणतियपदस्स। णउरि ओउट्टण ठणिज्जमाणे पढमपुढनिदव्व पहाण कायव्व। कुदो ? मारणतिएहि परिणटजीउस्स तत्थ निग्गहर्गए रज्जुअससेज्जदिभागमेत्तदीहत्तस्स नि

न्योकि, पहली पृथिवीकी अग्रगाहनासे सातर्षी पृथिवीकी अग्रगाहना सरयातगुणी पाई जाता है। तथा, द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा पहली पृथिवी प्रधान है क्योंकि, द्वितीयादि शेष छह पृथिवियोंके द्रव्यप्रमाणसे पहली पृथिवीका द्रव्य असरयातगुणा पाया जाता है। इसप्रकार सातर्षी पृथिवीके अवगाहनाके गुणकारसे पहली पृथिवीके द्रव्यप्रमाणका गुणकार बहुत बढा है, इसलिये यद्वापर पहली पृथिवीको प्रधान करना चाहिये।

अथ सामान्यरूपसे यद्वापर अर्थपदका निरूपण करते हैं—स्वन्धानस्वस्थानगाशि मूल नारकराशिके सरयात बहुभागप्रमाण है। विहारव-स्वस्थान, वदनासमुद्धात, कपाय-समुद्धात, और वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त राशिया मूलराशिके सरयातर्षे भागप्रमाण है। यह अर्थपद सर्वत्र जोड़ लेना चाहिये। पुन अपनी अपनी राशियोंको स्थापित करके, उ हैं अगुलके सरयातर्षे भागप्रमाण अग्रगाहनासे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सामान्य आदि चार लोकोंसे पृथक् पृथक् भाजित करनेपर, अर्थात् सामान्य आदि चार लोकोंके, तत्प्रमाण खट करनेपर, चार लोकोंका अन्ख्यातवा भाग ल'त्र आता है। तथा उक्त प्रमाणको मानुपलोकसे अपवर्तित करनेपर अर्थात् उक्त प्रमाणके मानुपक्षेत्रप्रमाण खट करनेपर असप्यात मानुपक्षेत्र अति है। इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्धात और कपायसमुद्धातमें सर्वत्र अग्रगाहनाको नोगुणी और वैक्रियिकसमुद्धातमें अग्रगाहनाको सर्वत्र सरयात गुणी कर लेना चाहिये। मारणातिरुक्कसमुद्धातका कयन इसीप्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पहली पृथिवीके द्रव्यको प्रधान करना चाहिये, क्योंकि, मारणान्तिक समुद्धातसे परिणत हुए जाँवके यद्वा विप्रहगतितमें राजुक

१ वेदनासमुद्धाएण समोदते ×× तर्णीपमाणमेत्त विक्खमन्नाउट्टेण नियमा छदिमि ×× प्रहा ३६, १७ एव कमायसमुग्घानानि माणित्तो। प्रहा ३६, १८

२ उच्चियसमुग्घाएण समोदत ×× तर्णीपमाणमेत्त विक्खमन्नाउट्टेण जायापण जहण्णेण अशुलस्स सखेज्जतिमाप उक्कीमेण साखज्जाति जायपाति एगदिसि विदिसि वा एउएउखिते ×× प्रहा ३६, १९

छट्टीए पुठगीए तदियपत्यडणेइयाणमुस्सेधो अड्डाइज्जमदधणुणि^१ । एद भूमि करिय सेसदोण्ह पत्यडणमुस्सेधो आणेदवो । तस्म पमाणमेद—

प्रस्तार	१	२	३
धनुप	१६६	२०८	२५०
हस्त	२	१	०
अगुल	१६	८	०

सत्तमाए पुठवीए णेरइयाणमुस्सेधो पचसदधणुणि^१ ।
तेसि पमाणमेद—

प्रस्तार	१
धनुप	५००

एत्य णेरइएसु उस्सेवअड्डमभागो विकसभो त्ति कट्टु परिट्टयमद्व करिय विरुत्तमद्वेण गुणियुस्सेहेण गुणिदे णेरइयाणमोगाहणा हेदि । ओगाहण पडि सत्तमपुठवी

छट्टीं पृथिवीके तीसरे पाउठेमें नारकियोंका उत्सेध ढाईसौ धनुप है । इसे भूमि रूपसे स्थापित करके शेष दो पाउठोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नक्शा) ।

विशेषार्थ— छट्टी पृथिवीमें मूलका प्रमाण १२५ धनुप और भूमिका प्रमाण २० धनुप है । तथा प्रतिपदल वृद्धिका प्रमाण ४१ धनुप, २ हाथ और १६ अगुल है ।

सातवीं पृथिवीके नारकियोंका उत्सेध पाचसौ धनुप है । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नक्शा) ।

यहां नारकियोंमें उत्सेधके आठवें भागप्रमाण विष्कम्भ होता है ऐसा समझकर, विष्कम्भकी परिधिमें आधा करके, और विष्कम्भके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर नारकियोंकी अवगाहना होती है । अवगाहनाकी अपेक्षा सातवीं पृथिवी प्रधान है,

वारसुत्तमयमेवक अधयत्ति दो इत्या ॥ एवक कादल्लस्यं अम्महिय पचवीसरुवहिं । धूमप्पहप चरिंमिदयत्ति
तिमित्तयत्ति उच्छेरो ॥ ति प २, २६१ २६५

१ छट्टाण × अट्टाइज्जाइ धणुसयाइ । जावामि ३, २, १२

२ एवकत्तल ददा इत्याइ दाणिं सोल्लसगुलया । छट्टीएवसुत्ताए परिमाण हाणिवट्टीण ॥ छासट्टी अधियमय कादवा
दोणिण हेंति इत्या य । सोल्ल पत्ता य पुट्ट हिमपल्लगदान उच्छेरो ॥ दाणिं सयाणि अट्टाउत्त ददाणि अगुलाण
च । बधीत्त छट्टीए वद्लाउदजीवउच्छेरा ॥ पण्णाम महियाणि दोणिं सयाणि सरासणाणि च । लल्लकणामहदयाउददाण
जावाण उच्छेरो ॥ ति प २, २६६ २६९

३ सत्तमाए × पचधणुसयाइ । जावामि ३, २, १२

४ पचसयाइ धणुणिं सत्तमअवणीइ अत्रधिठाणत्ति । सन्वेसिं गिरयाण काउच्छेरो जिणादयो ॥
ति प २, २७०

मारणतियरासिमिच्छिय दो आत्रलियाए असरेज्जदिभागे अण्णोण्णगुणे ऋरिय पुच्चरासिस्स भागहार ठविय तप्पाओग्गेण आत्रलियाए असरेज्जदिभाएण गुणिदे मारणतियरासी होदि । सेमविधी पुच्चं व । एव सम्मामिच्छाइट्ठिस्स । णत्ररि मारणतिय पि णत्थि । असजदसम्माइट्ठिस्स सासणभगो । णत्ररि उत्रादो अत्थि । मारणंतिय-उत्रादेसु णेरइया सम्माइट्ठिणो ससेज्जा चेय होंति । सेस जाणिय वत्तञ्च ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ६ ॥

द्वद्विट्ठियणयमत्रलंनिय सुत्तं जदो ट्ठिदं' तदो सत्तण्ह पुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्लेत्ति घडदे । पञ्चवट्ठियणए पुण अत्रलविज्जमाणे पढमपुढनिपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, सच्चगुणाण सच्चपदेहि सरिससुवलभादो । ण निदियादिपचपुढवीण परूवणा ओघपरूवणाए पद पडि तुल्ला, तत्थ असंजदसम्माइट्ठीण उत्रादाभावादो । ण सत्तमपुढनिपरूवणा नि णिरओघपरूवणाए तुल्ला, सासणसम्माइट्ठिमारणंतियपदस्स असं-

चाहिये । इतनी विशेषता है कि उनके उपपाद नहीं पाया जाता है । जय मारणान्तिक समुदातको प्राप्त राशिके लानेकी इच्छा हो तब दो घर आवलाके अस्तरयातवें भागको परस्पर गुणित करके और उसे पूर्वराशिका भागहार रयापित करके उसके योग्य आवलाके अस रयातवें भागसे गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त राशि होती है । शेष विधि पहलेके समान है । इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके मारणान्तिकसमुदात भी नहीं होता है । अस-यतसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वरस्थानस्वरस्थान आदि सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थान स्वस्थान आदिके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके उपपाद पाया जाता है । मारणा-न्तिकसमुदात और उपपादमें सम्यग्दृष्टि नारकी सरयात ही पाये जाते हैं । शेष कथन जानकर करना चाहिये ।

इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव लोकके अस्तरयातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ६ ॥

चूकि यह सूत्र द्रव्यार्थिक नयका अत्रलवन लेकर रियत है, इसलिये सातों पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, यह कथन घटित हो जाना है । पर्यायार्थिक नयका अयलम्बन करनेपर तो पहली पृथिवीकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, पहली पृथिवीमें सामान्यप्ररूपणासे सर्व गुणरयानोंकी सर्वपदोंकी अपेक्षा समानता पाई जाती है । किंतु स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंकी अपेक्षा द्वितीयादे पाच पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघ प्ररूपणाके समान नहीं है, क्योंकि, उन पृथिवियोंमें असयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है । इसीप्रकार सातवाँ पृथिवीकी प्ररूपणा भी नारक सामान्यप्ररूपणाके तुल्य नहीं है, क्योंकि, सातवाँ पृथिवीमें सासादनसम्यग्दृष्टिसदन्धी मारणातिकपदका और असयतसम्य-

उपलभादो । तेण आपलियाए असखेज्जदिभागमेत्तपढमपुढविउत्तरुमणकालेण ओपट्टिय लद्धस्म असखेज्जा भागा विग्गह करति । तेमि पि असखेज्जा भागा मारणतिय करेति चि । पुणो तमापलियाए असखेज्जदिभागमेत्तमारणतियउत्तरुमणकालेण गुणिदे मारण तिपरसी आमच्छदि । पुणो णेरइयमुहनित्यारेण णरगुणरज्जुअसखेज्जदिभागेण मारणतिय राति गुणिदे तक्खेच होदि । उत्तरादस्सोत्तुण ठपिज्जमाणे पलिदोउमस्म असखेज्जदि भागेण विदियपुढविदये भागे हिदे तिरिकसेहितो विदियपुढरीए उत्पज्जमाणमिच्छा इट्टिणो हँति । पुणो अररेण पलिदोउमस्म असखेज्जदिभाग भागहार ठपिय रूवूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणतिएण उत्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्टिणो हँति । पुणो अररेम पलिदोउमस्स असखेज्जदिभाग भागहार ठपिदे तिरिकसेहितो विग्गहगदीए रज्जुपडि भागेण मारणतिय करिय उत्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्टिणो हँति ति उत्तव । सवत्थ रज्जुमेत्तायामविदियदहुत्तभादो । पुणो एद दव्व निग्गिखोगाहणमुहनित्यारेण णरज्जु गुणिदेण गुणेदव्व । ओत्तट्टणा पुव्व व कादव्वा । एव सात्तणस्म । णररि उत्तरादो णत्थि ।

असख्यातवें भागप्रमाण दीर्घता भी पाइ जाती है । इसलिये आचलोकें असख्यातवें भागप्रमाण पहली पृथिवीके उपनमणकालसे प्रतिसमयमें मरनेवाली राशिको भाजित करके जो लब्ध आये उससे असख्यात बहुभागप्रमाण जीव विग्रहको करते है । तथा इनके भी असख्यात बहुभागप्रमाण जीव प्रति समयमें मारणान्तिकसमुद्घातको करते है । पुन इसे आपलाके असख्यातवें भागमात्र मारणान्तिकसमुद्घातके उपनमणकालसे गुणित करनेपर मारणातिक समुद्घातराशि होती है । पुन नारकियोंके सुखविस्तारसे नौ गुणे राजुके असख्यातवें भागसे मारणान्तिकराशिको गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्र होता है । उपपादकी अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पर्योपमके असख्यातवें भागसे दूसरी पृथिवीसबधी द्रव्यके भाजित करनेपर तिर्यचोंमेंसे दूसरी पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव होते है । पुन पर्योपमके असख्यातवें भागरूप एक दूसरा भागहार स्थापित करके एक कमसे गुणित करनेपर विग्रहगतियें मारणातिरमसमुद्घातसे उत्पन्न होनेवाले तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव होते है । पुन एक दूसरे पर्योपमके असख्यातवें भागको भागहाररूपसे स्थापित करनेपर तिर्यचोंमेंसे विग्रहगतियें राजुके प्रतिभागरूपसे मारणातिक समुद्घात करके उत्पन्न होनेवाले तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं, ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि, सर्वत्र राजु मात्र आप्यामसे युक्त दूसरा दृढ पाया जाता है । पुन इस द्रव्यको नौ गुणी राजुसे गुणित तिर्यचोंकी अणगाहनाके सुखविस्तारसे करना चाहिये । यहा पर अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये ।

इसीप्रकार सासादनसमयदृष्टि नारकियोंके भी उपनमणकालसे गुणित समझना

दोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तघणंगुलेहि गुणिदसेट्ठिमेत्तो त्ति गुरूपदेसादो ।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूचिद-अत्थो बुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-
वेदण कसाय वेउच्चिण्हि परिणदसासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । रासिपमाणं भणमाणे सत्थाण-
सत्थाणरासी मूलरासिस्स सखेज्जा भागा । सेसरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ ।
णवरि वेउच्चियसमुग्घादरासी मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? तिरिक्खेसु
मिउच्चमाणजीणण पउर सभनाभापादो । एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणंगुलमेत्तो,
एगघणंगुलं वा ।

गुणित जगथ्रेणीप्रमाण है, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थानतरुके तिर्यंच जीव
कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकरुके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ८ ॥

अथ इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थको कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहार-
यस्वस्थान, घेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात ओर वैक्रियिकसमुद्रातरुगसे परिणत सासादन-
सम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईदोपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थानस्वस्थान आदि
उक्त राशियोंके प्रमाणका कथन करने पर स्वस्थानस्वस्थान जीवराशि मूलराशिके सख्यात
बहुभागप्रमाण है । तथा शेष राशिया मूलराशिके सख्यातवें भाग मात्र हैं । इतनी विशेपता
है कि वैक्रियिकसमुद्रातको प्राप्त राशि मूलराशिके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि,
तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाले जीव प्रचुर समय नहीं हैं । यद्वा पर अवगाहनाका गुणकार
सख्यात घनागुलप्रमाण अथवा पर घनागुल है ।

विशेषार्थ—यहा पर अवगाहनाका गुणकार जो सख्यात घनागुल अथवा एक
घनागुल कहा है उसका यह भाव प्रतीत होता है कि पचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट अव-
गाहना सख्यात घनागुल प्रमाण होती है, अत उसका घनफल लानेके लिए अवगाहनका
गुणकार भी सख्यात घनागुल ही होगा । किन्तु असपर्याप्त तिर्यंचोंकी जघन्य अवगाहना
घनागुलके सख्यातवें भागप्रमाण ही है । यद्यपि इनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाईका पृथक्
पृथक् उपदेश आज नहीं पाया जाता है, ऐसा स्पष्ट उद्देश गोममट्टसारकी जी प्र दीकाकारने

१ बारपुण्णा तेऊ सगरामीए अठसभागदिदा । विविकरियसत्तिरुत्ता पन्नाअखेज्जया वाऊ ॥ पत्ता-
अखेज्जाह्यविदशुलगणिदसेट्ठिमेत्ता हु । वयावियवपवकसा भोगभुमा पुइ विगभवति गो जी २५८-२५९,

२ गो. जी १६.

जदसम्मादट्टिमरणतिय उत्रादपदाणं च तत्थ अभापादो । सत्तहं पुटवीणं ओगाहणाभेदो
 मारणतिय उत्रादाणं उत्रिज्जमाणरज्जुभेदो दच्चरिसेसो च वत्तञ्चो । पढमपुट्टिमिच्छादट्टि
 मारणंतियरोच तिरियलोगादो असरोज्जगुण । कुदो ? पदरगुलस्स संरोज्जदिभागगुणितदत्तवे
 सेठीए सरोज्जदिभागेण गुणिते तिरियलोगादो असरोज्जगुणनुवलभादो त्ति' एगपदेसमादि
 कादूण जा उक्कस्सेण समुत्पत्तिपदेसो त्ति मारणतियरोचायामस्सुजलभादो' । ण चेदम
 सिद्ध, महामच्छरोचट्टाणपरूणणहाणुवत्तीदो । तत्थ जेण सेठीए असरोज्जदिभागायामेण
 मारणतिय करिय मरता बहूमा, तेण तिरियलोगस्स असरोज्जदिभागत्त घडदे ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्टी केवडि खेत्ते, सब्ब
 लोए ॥ ७ ॥

एदस्म सुत्तस्स परूणणा ओघमिच्छादिट्टिपरूणणाए तुल्ला । णवरि वेउन्निय
 समुग्घादगदजीवा तिरियलोगस्स असरोज्जदिभागे, तिरिक्खेसु विउच्चमाणरासी पलि

वृष्टिसत्र धी मारणातिक और उपपाद पदका अभाव है । यहापर सातों पृथिवियोंकी भव
 गाहनाका भेद, और मारणातिक तथा उपपादका स्थापित होनेवाला राजुभेद और
 द्रव्यविशेषका कथन करना चाहिये । पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणातिकक्षेत्र
 तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणा है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशिको प्रतरागुलके
 सख्यातवै भागसे गुणित करके पुनः जगध्रेणीके सख्यातवै भागसे गुणित करनेपर तिर्यग्लो
 कसे असख्यातगुणा क्षेत्र पाया जाता है । तथा एकप्रदेशसे लेकर उत्कृष्टरूपसे अपना
 उत्पात्तिके प्रदेशतक मारणान्तिकक्षेत्रका आयाम पाया जाता है, इसलिये भी पहली पृथिवीके
 मिथ्यादृष्टियोंका मारणातिकक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणा है । और यह कथन असिद्ध
 भी नहीं है; क्योंकि, महामत्स्यके क्षेत्रस्थानकी परूणणा अथवा वन नहीं सकती है । यहापर
 चूकि जगध्रेणीके असख्यातवै भाग आयामरूपमे मारणातिकसमुद्घातको करके मरनेवाले
 जीव बहुत हैं, इसलिये तिर्यग्लोकका असख्यातवा भाग वन जाता है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें
 रहते हैं ॥ ७ ॥

इस सूत्रकी परूणणा ओघमिथ्यादृष्टि परूणणाके समान है । इतनी विशेषता है कि
 वैजियिकसमुद्घातको प्राप्त तिर्यच जीव तिर्यग्लोकके असख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते
 हैं, क्योंकि, तिर्यचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पल्लोपमके असख्यातवै भागमात्र घनागुलसे

१ प्रतिगु ' ति ण ' इति पाठ ।

२ मारणतियसमुग्घातण × × सतीत्यमाणमेवे विवस्समवाइल्लण, आयामण जरणेण अणुरस्स असरोज्जति
 मार्ग उक्कसेण असरोज्जति आयणाति एगदिदि एवतिते खत्त × × प्रका ३६, १८

भाएण भागे हिदे उप्पज्जमाणसासणमम्माइट्ठिरासी होदि । पुगो अउरेण आपलियाए अससेज्जदिभागेण भागे हिदे रूतूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणातिएण उप्पज्जमाणरासी होदि । संसेज्जा भागा मारणतिय काट्टणुप्पज्जति ति के वि भणति, एदं जाणिय वत्तवं । णत्थि एत्थ मज्झणियमो । तमापलियाए अससेज्जदिभागेण भागे हिदे उज्जुदो' आगच्छमाणरासी होदि । एदस्स पदरगुलस्म संसेज्जदिभाएण गुणिदरज्जु गुणगार ठविदे उपादासेत्त होदि । एत्थ ओपट्टणा पुच्च व । एवमसज्जदसम्मादिट्ठिस्म । णवरि उपादे संसेज्जा हँति, पुच्च वद्दायुगमणुस्ममम्मादिट्ठीहि विणा अण्णेसिं तत्थं उपादा-भावादो । ओगाहणगुणगारो वि ससेज्जपदरगुलमेत्तो, एगपदरगुलमेत्तो वा । सम्मा-मिच्छाइट्ठि सज्जदासज्जदाणं उपादा णत्थि ।

पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपञ्चत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणि-णीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासज्जदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

आवलीके असख्यातवें भागसे भाजित करनेपर उत्पन्न होनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि राशि होती है। पुन एक दूसरे आवलीके असख्यातवें भागसे भाजित करनेपर और एक कम उक्त भागहारसे गुणित करनेपर धिन्नहगतिमें मारणान्तिक्कसमुद्धातसे उत्पन्न होनेवाली जीवरशि है। उत्पन्न होनेवाली राशिके सख्यात बहुभाग प्रमाण जीव मारणान्तिक्कसमुद्धात करके उत्पन्न होते हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, इसलिये इसको जानकर कथन करना चाहिये। कि तु इस विषयमें कोई मध्यम नियम नहीं है। इसे आवलीके असख्यातवें भागसे भाजित करनेपर ऋजुगतिसे आनेवाली राशिका प्रमाण होता है। प्रतरागुलके सख्यातवें भागसे राजुको गुणित करके जो लब्ध आवे उसे इस राशिका गुणकार स्थापित करने पर उपपादक्षेत्र होता है। यहा पर अपवर्तना पहलेके समान जानना चाहिये। इसीप्रकार असयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोका उपपाद जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उपपादमें अस-यतसम्यग्दृष्टि तिर्यच सख्यात ही होते हैं, क्योंकि, त्रिन मनुष्योंने सम्यग्दर्शनके पहले तिर्यचायुका वध कर लिया है देस मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके बिना दूसरे सम्यग्दृष्टियोंका तिर्यचोंमें उपपाद नहीं होता है। इनकी अत्रगाहनाका गुणकार भी सख्यात प्रतरागुलप्रमाण अथवा एक प्रतरागुलमात्र है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सयतासयत तिर्यचोंके उपपाद नहीं होता है।

पचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके तिर्यच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकोके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ९ ॥

एव सम्मामिच्छाद्वि जसजदसम्माद्वि सजदासजदाण । मारणतियसमुग्घादग्द
 मारणमम्मादिद्वी केणडि सेत्ते ? चटुण्ह लोमाणमसरोज्जदिभागे, अट्टाज्जादो असखेज्ज
 गुणे अच्छति । ओघरासिमात्रलियाए असरोज्जदिभागेण भागे हिदे मरतसाणसम्मा
 इट्टिरासी होदि । पुणो वि आत्रलियाए जसरोज्जदिभागेण हरिय रूणुणेण गुणिदे मारण
 तियसमुग्घादग्दरासी होदि । पुणो वि आत्रलियाए असरोज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जु
 मेत्तायामेण मारणतियममुग्घादग्द एगसमयसच्चिदरासी होदि । तमात्रलियाए असस
 ज्जदिभागेण गुणिदे तक्कालसच्चिदरासी होदि । एद सरोज्जपदरगुलगुणिरज्जुए गुणिदे
 मारणतियरोच होदि । एवमसजद सजदासजदाण । सम्मामिच्छाद्वीण मारणतिय णत्थि ।

उपपादग्दसाणसम्माद्वी केणडि सेत्ते, चटुण्ह लोमाणमसरोज्जदिभागे, अट्टा
 ज्जादो असरोज्जगुणे । एव रात्रिपमाणमाणिज्जमाणे मूलरासिमात्रलियाए असरोज्जदि

किया है, तो भी उनके घनागुलका प्रमाण उच्चरोत्तर सख्यातगुणा कहा है । यहापर पवेन्द्र
 पर्याप्तर्जावोंकी जघन्य अवगाहना एकत्र सख्यातसे भाजित घनागुल प्रमाण कहा है ।
 सभवत घवलाकारने उसी जघन्य अवगाहनाके घनफलको दृष्टिमें रखकर ' एक घनागुल '
 गुणाकारका प्रमाण कहा है ।

इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयत्सम्यग्दृष्टि और सयतासयत तिर्यंचोंके भी
 स्थरधानस्वरथान आदिक विषयमें समझना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए
 सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके
 असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते ह । ओघराशिको
 आवलीके असख्यातवें भागसे भाजित करने पर मरनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचराशि
 होती है । फिर भी आवलीके असख्यातवें भागसे भाजित करके एक कम उससे गुणित करने
 पर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशि होती है । फिर भी आवलीके असख्यातवें भागसे
 भाजित करने पर रज्जुमात्र आयामकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त एक समयमें
 सचित जीवराशि होती है । इन्ने आवलीके असख्यातवें भागस गुणित करने पर मारणान्तिक
 समुद्घातके फलमें सचित हुई राशि होती ह । इसे सख्यात प्रतागुलोंसे गुणित राजुसे गुणा
 करने पर मारणांतिकक्षेत्र होता है । इसीप्रकार असयत्सम्यग्दृष्टि और सयतासयत तिर्यंचोंके
 मारणांतिकसमुद्घातके विषयम कहना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके मारणांतिकसमुद्घात
 नहीं होता है ।

उपपादको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक
 आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते
 हैं । यहा पर सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंकी उपपादराशिका प्रमाण लाने पर मूलराशिको

सत्तादो । तं कथं ? सखेज्जवस्साउअतिरिक्खोपक्कमणकालेण आपलियाए असखेज्जदि-
भाएण तेरासियकमेण भागे हिदे मरतपचिंदियतिरिक्खमिच्छाइड्डिपमाणं होदि । एत्थ
उपक्कमणकालागमणविधी बुच्चदे- सखेज्जापलियासु जदि आपलियाए असखेज्जदि-
भागो गिरतरुपक्कमणकालो लब्भदि, तो उपक्कमणाणुवक्कमणप्पयम्मि आयुट्ठिदिग्धि
केत्तियमुवक्कमणकाल लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदमिच्छमोअट्ठिदे आपलियाए असखे-
ज्जदिभागमेत्तुपक्कमणकालो लब्भदि । एवं सखेज्जवस्साउअरासीण सातराणमुपक्कमण-
कालो अण्णेसिं पि आणेदच्चो' । पुणो मारणंतियरासिमिच्छिय अवर पलिदोवमस्स
असखेज्जदिभागं भागहार ठपिय रूवूणेण गुणिय रज्जुआयामेण ट्ठिदरासिमिच्छिय अण्णेण
पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागेण भागहारो ठपेयच्चो । पुणो एत्थतणसंचयमिच्छिय
मारणंतियउपक्कमणकालेण आपलियाए असखेज्जदिभाएण गुणिय पुणो एदं रज्जुगुणिद-
सखेज्जपदरंगुलेहि गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि । एदेण तिण्णि पि लोगे भागे हिदे

शुका - यह कैसे ?

समाधान - सरयात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंके उपक्रमणकालरूप आवलीके
असख्यातवें भागसे त्रैराशिक क्रमसे भाजित करने पर प्रत्येक समयमें मरनेवाले पचेन्द्रिय
तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण होता है ।

अथ यद्वा पर उपक्रमणकालके लानेकी विधिको कहते हैं- सरयात आवलियोंके
भीतर यदि आवलीका असख्यातवा भागप्रमाण निरन्तर उपक्रमणकाल प्राप्त होता है, तो
उपक्रमण और अनुपक्रमणरूप आयुकी स्थितिके भीतर कितने उपक्रमणकाल प्राप्त होंगे,
इसप्रकार आवलीके असख्यातवें भाग प्रमाण फलराशिसे उपक्रमण और अनुपक्रमणात्मक
आयुकी स्थितिरूप इच्छाराशिको गुणित करके और सख्यात आवलीप्रमाण प्रमाणराशिका
भाग देने पर आवलीके असख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल प्राप्त होता है । इसीप्रकार
सख्यात वर्षकी आयुवाली अन्य सात्तर राशियोंका भी उपक्रमणकाल ले आना चाहिये । पुन
यद्वा मारणांतिक राशिका प्रमाण लाना है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमके असख्यातवें
भागप्रमाण भागहार स्थापित करके और एक कम उसीसे गुणित करके राजुप्रमाण आयामकी
अपेक्षा स्थित राशि लाना इच्छित है, इसलिये एक दूसरे पल्योपमके असख्यातवें भागरूपसे
भागहार स्थापित करना चाहिये । पुन यद्वापर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवराशिका
सचय इच्छित है, इसलिये मारणांतिकसव धी उपक्रमणकाल आवलीके असख्यातवें भागसे
गुणित करके पुन क्षेत्र लानेके लिये इस राशिको राजुसे गुणित सख्यात प्रतरागुल्लोसे गुणित
करने पर मारणान्तिकक्षेत्रका प्रमाण होता है । इस क्षेत्रके प्रमाणसे सामान्यलोक आदि

१ सोवक्कमाणुवक्कमकालो सखे जवाअट्ठिदिवाणे । आवलिअसखमागो सखेज्जावलिपमा कमतो ॥

एदं पि देसामासिय सुत्तमेन, सगहिदाणेगसुत्तथादो । त जहा-सत्थाण सत्थाण त्रिहारवदिसत्थाण वेदण कसायसमुग्घादगदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणे अच्छति । एत्थ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तराभिं मोत्तूण पंचिदियतिरिक्ख पज्जत्तरासी चेप धेत्तव्वो, अपज्जत्तोगाहणादो पज्जत्तोगाहणाए असखेज्जगुणत्तुवल भादो । एत्थ सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स मखेज्जभागमेत्ता होदि । सेसरासीओ तस्म सखेज्जदिभागमेत्तीओ । एत्थ ओगाहणगुणगारो सखेज्जघणगुलमेत्तो । ओवट्ठण जाणिदूण कादव्व । एण पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीमिच्छाइट्ठीणं । वेउक्खिय समुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? चटुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणे अच्छति । एव पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीमिच्छाइट्ठीण । मारणतिय समुग्घादगदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे । कुदो ? पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तरासिस्स पलिदोनमस्स असखेज्जदिभागमेत्तभागहारस्स

यह भी सूत्र देशामर्शक ही है, क्योंकि, इसमें अनेक सूत्रोंका अर्थ सप्रतीत है उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवस्वस्थान, घेदनासमुदात और कपायसमुदातका प्राप्त पचेन्द्रियतिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्य लोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके सरयातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईद्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवराशिको छोडकर पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त राशिका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, अपर्याप्तोंकी अवगाहनासे पर्याप्तोंकी अवगाहना असख्यातगुणी पाई जाती है । यहापर स्वस्थानस्वस्थानराशि मूलराशिके सख्यात षट्भाग प्रमाण होती है । शेष राशिया मूलराशिके सरयातवें भागमात्र होती हैं । यहापर अवगाहनाका गुणकार सख्यात घनागुलप्रमाण है । अपवर्तनाका कथन जानकर करना चाहिये । इसीप्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंकी स्वस्थानस्वस्थानराशि आदि समझना चाहिये । वैकियिक्खसमुदातको प्राप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईद्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका वैकियिक्खसमुदातगत क्षेत्र जानना चाहिये । मारणा तिकसमुदातको प्राप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्तराशिका भागहार पल्योपमके असख्यातवें भागमात्र पाया जाता है ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागे ॥ १० ॥

एदस्म देसामासियसुत्तस्म अत्थो बुच्चदे- सत्थाण पेदण कनायसमुग्घादगदा
केवडि खेत्ते ? चदुण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? उस्सेधवणंगुल पलिदोमस्स
असंखेज्जदिभागेण संडिदमेत्तोगाहणत्तादो । अड्डाडज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छति । विहार-
वदिसत्थाण वेउच्चियसमुग्घादो य णत्थि । मारणत्थिय उत्रादगदा केवडि खेत्ते ? तिण्ह
लोगाणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? रामिस्स भागहारभूदा होदूण जहाक्रमेण दोण्णि तिण्णि
पलिदोमस्स असंखेज्जदिभागा लब्धति चि । तिरिय माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे
अच्छति । सुगममेदं ।

मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि
जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥११॥

पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १० ॥

अथ इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और
कपायसमुद्घातको प्राप्त हुए पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उत्सेध
घनागुलको पल्योपमके असख्यातवें भागसे स्पष्टित करके जो एक भाग लब्ध आवे
तत्प्रमाण पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवकी अद्यगाहना है । तथा पचेन्द्रिय तिर्यंच
अपर्याप्त जीव अट्टाईघीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त
जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैनियिकसमुद्घात नहीं पाया जाता है । मारणात्तिकसमुद्घात
और उपपादको प्राप्त हुए पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्य-
लोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, राशिके भागहार-
रूप होकर यथाक्रमसे अर्थात् मारणात्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा दो वार पल्योपमके असख्यातवें
भाग और उपपादकी अपेक्षा तीन वार पल्योपमका असख्यातवा भाग पाया जाता है । तथा
तिर्यंचलोक और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें मारणात्तिकसमुद्घात और उपपादके
प्राप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव रहते हैं । इसप्रकार इसका व्याख्यान सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे
लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ११ ॥

पलिदोममसम असखेज्जदिभागो आगच्छदि ति तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो अच्छति ति सिद्ध । तिरिय णरलोगेहितो असखेज्जगुणे । एव पच्चिदियतिरिक्खपज्जत्त जोणिणीण वत्तच्च । उववाद्गदपच्चिदियतिरिक्खमिच्छाइद्धी केण्डि खेत्ते ? तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो । एत्थ उववादखेत्तमाणिज्जमाणे मारणतियभगो । णवरि पढम उवमहरिय विदियदडडिप्पि जीपे इच्छिय अण्णेगो पलिदोममसम असखेज्जदिभागो भागहारो ठण्णेच्चो, असखेज्ज जोयणविदियदडायामजीजाण बहृणमणुत्तलभादो । एत्तो एगसमयसच्चिदो ति आयलियाए असखेज्जदिभाएण गुणगारं जणिदे रज्जुगुणिदसखेज्जपदरगुलाणि गुणगारो होदि । एवं पच्चिदियतिरिक्खपज्जत्त जोणिणीण वत्तच्च । सेसगुणद्वाराण तिरिक्खोघभगो । णवरि जोणिणीसु असज्जदसम्माइद्धीण उववादो णत्थि ।

तीनों ही लोकोंके भाजित करने पर पल्योपमका असख्यातया भाग आता है, इसलिये सामान्य लोक आदि तीन लोकोंके असख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें मारणात्तिकसमुदातगत पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव रहते हैं यह बात सिद्ध हुई । तथा मारणात्तिकसमुदातगत पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव तिर्यंगलोक और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार मारणात्तिकसमुदातको प्राप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये ।

उपपादको प्राप्त हुए पचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितन क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । यहा पर उपपाद क्षेत्रके लते समय मारणात्तिकक्षेत्रके समान कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि प्रथम दृष्टका उपसहार करके दूसरे दृष्टमें स्थित जीवोंका प्रमाण लाना इच्छित है, इसलिये पल्योपमके असख्यातयें भागप्रमाण एक दूसरा भागद्वारा स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, असख्यात योजन आयामवाले दूसरे दृष्टमें स्थित जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं । यह एक समयमें साचित जीवराशि हुई, इसलिये आदर्शके असख्यातयें भागसे गुणकारके अपनोत करने पर राजुसे गुणित सख्यात प्रतरागुल गुणकार होता है । इसीप्रकार उपपादको प्राप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये । उपपादको अपेक्षा शेष गुणस्थानोंका कथन तिर्यंच ओघके कथनके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि योनिप्रता तिर्यंचोंमें अस्यतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है ।

निशेषार्थ— यहापर जो प्रथम दृष्ट आदिका कथन किया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि विप्रहृगतमें मरणक्षेपसे लगाकर प्रथम मोडे तक जीवका जो सीधा गमन होता है यह प्रथम दृष्ट है । तथा प्रथम मोडेसे लगाकर द्वितीय मोडे तक जीवका जो सीधा गमन होता है यह द्वितीय दृष्ट है । इसीप्रकारसे तीसरा दृष्ट भी समझना चाहिये ।

असंखेज्जगुणे । सम्मामिच्छाङ्गी सत्थाणसत्थाण-विहारदिसत्थाण-वेदण रुसाय त्रेउच्चिय-समुग्वादपरिणदा केवडि खेत्ते ? चट्ठुह लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्म संखेज्जदि-भागे । सजदासजदा सत्थाणसत्थाण विहारदिसत्थाण वेदण रुसाय-त्रेउच्चियसमुग्वाद-परिणदा केवडि खेत्ते ? चट्ठुह लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुमसखेत्तस्म संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्वादगदा चट्ठुहं लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुमसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छति । पमत्तसजदप्पहुडि जाण अजोगिकेवली चि मूलोघमगो । एण मणुमपज्जत्त-मणुमिणीसु । णारि मिच्छाङ्गीण सासणसम्माङ्गिभगो । मणुमिणीसु असजदसम्मादिङ्गीण उपादो णत्थि । पमत्ते तेजाहारसमुग्वादा णत्थि ।

सयोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओघं ॥ १२ ॥

एदस्स सुत्तस्म अत्थो मूलोघमधारिय लोगस्स असखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेषु, सखलैगि वा चि उत्तव्यो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके अस-र्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढाईद्वीपसे असर्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वेक्रियिक्समुद्घातरूपसे परिणत हुए सम्यगिगम्य्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असर्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके सर्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वेक्रियिक्समुद्घात इन पदोंसे परिणत हुए सयतासयत मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असर्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके सर्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुए सयतानयत मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असर्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रसे असर्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तत्र मनुष्योंके यथासभव स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंका क्षेत्र मूलोघप्ररूपणके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मिथ्यादृष्टियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंके समान कथन है । मनुष्यनियोंमें असयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद नहा पाया जाता है । इसीप्रकार उन्हींके प्रमत्तसयत गुणस्थानमें तेजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं पाया जाता है ।

सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ओघप्ररूपणामें सयोगिजिनोंका जो क्षेत्र कह आये हैं, तत्प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ, मूलोघ सूत्रका निश्चय करके सयोगिकेवली जीव लोकके असर्यातवें भाग क्षेत्रमें, लोकके असर्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं, इसप्रकार कहना चाहिये ।

एदस्स सुत्तस्स अत्थो उच्चदे- सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदन कमाप वेउत्थियसमुग्घादमिच्छाइट्ठी केरडि खेत्ते ? चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुस खेत्तस्स सखेज्जदिभागे । कुदो ? मणुमपज्जत्तमिच्छाइट्ठिखेत्तग्गहणादो । सेट्ठीए असख ज्जदिभागमेत्तमणुसअपज्जचाण खेत्तस्स गहण किण्ण कीरदे ? ण, तस्म अगुलस्स सखेज्जदिभागे सखेज्जगुलेमु वा अपट्ठाणादो । मारणतिय उवपादगदमिच्छाइट्ठी केरडि खेत्ते ? तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरिय-णरलोगेहिंतो अमखेज्जगुणे । कुत्ते ? पहाणी कटमणुसअपज्जचरासीदो । एउमुवपादस्म वि । णवरि एगो आपलियाए असखेज्जदिभागो दोणि पलिदोउमस्म अमखेज्जदिभागा च मणुसअपज्जचरामिस्म भागहारा इउदध्या ।

सासणमम्माइट्ठी असजदसम्माइट्ठी सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदन स्माप वेउत्थियसमुग्घादेहि परिणदा केरडि खेत्ते ? चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुस खेत्तस्स सखेज्जदिभागे । मारणतिय उवपादगदा चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभाग, अट्टाज्जादो

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वेत्थियस्ससमुद्घातको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमत्ता मिथ्याहाष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असत्प्रातर्वें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके सत्प्रातर्वें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहापर मनुष्य पर्याप्त मिथ्याहाष्टियोंके क्षेत्रका ग्रहण किया है ।

शुद्धा—अपर्याप्त मनुष्य जगद्वेषीके असत्प्रातर्वें भागप्रमाण हैं, अतएव यहा उनके क्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्याप्त मनुष्यका अवस्थान अगुलके सत्प्रातर्वें भागमें अथवा सत्प्रातर्वें अगुलोंमें पाया जाता है, इसलिये यहापर अपर्याप्त मनुष्योंके क्षेत्रका ग्रहण नहीं किया है ।

मारणान्तिस्समुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनि मत्ता मिथ्याहाष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असत्प्रातर्वें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिरियलोक तथा मनुष्यलोकसे असत्प्रातर्वें क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहापर मनुष्य अपर्याप्तराशिकी प्रधानता है । इसीप्रकार उपपादना का फल करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तराशिके एकचार आवलके असत्प्रातर्वें भागप्रमाण और दो चार पत्थोपमके असत्प्रातर्वें भागप्रमाण भागहार स्थापित करना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वेत्थियस्ससमुद्घातसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दष्टि और असत्प्रातर्वें सम्यग्दष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असत्प्रातर्वें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके सत्प्रातर्वें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिस्समुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए

मारणतियजीवे इच्छामो त्ति अण्णेगो पल्लिदोउमस्म असंखेज्जदिभागे भागहारो ठप्पेदच्चो ।

-देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति
केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण विहारउदिसत्थाण वेदण कसाय-वेउब्बियसमुग्घादगददेउमिच्छादिट्ठी
तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियल्लोयस्स सखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणे ।
कुत्रे ? पघाणीरुदजोइसियरासिच्चादो । मारणतिय-उत्तवादपरिणदमिच्छादिट्ठी तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियल्लोगेहितो असंखेज्जगुणे । एत्थ खेत्तपमाण जाणिय
ठप्पेदच्च । सेसगुणट्ठाणाणमोघमगो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासिय-
देवा त्ति ॥ १५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूच्चिद-अत्थो जुच्चदे । तं जहा—सत्थाणसत्थाण विहार-
उदिसत्थाण वेदण कसाय वेउब्बिय-उत्तवादपरिणदभणणवासियमिच्छादिट्ठी चट्ठण्ह लोगा-

जीवोंको लाना इष्ट है, इसलिये एक दूसरा पर्योपमका असख्यातवा भाग भागहार स्थापित
करना चाहिये ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयतसम्पग्घट्टि गुणस्थान तरु
प्रत्येक गुणस्थानके देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकरुके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें
रहते हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्दात, कपायसमुद्दात और वैकियिक-
समुद्दातको प्राप्त हुए देव मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भाग-
प्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणे
क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि यद्वापर ज्योतिष्क देवराशि प्रधान है । मारणान्तिकसमुद्दात और
उपपादरूपसे परिणत हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भाग
प्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यद्वापर
क्षेत्रके प्रमाणको जानकर स्थापित करना चाहिये । देवोंके शेष गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघ
प्ररूपणाके समान है ।

भयनवासी देवोंसे लेकर उपरिम-उपरिम त्रैवेयकके विमानवासी देवों तकका क्षेत्र
इसीप्रकार होता है ॥ १५ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित हुए अर्थको कहते हैं । यह इसप्रकार है—
स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्दात, कपायसमुद्दात, वैकियिकसमुद्दात
और उपपादरूपसे परिणत हुए भयनवासी मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके

मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥१३॥

सत्याण वेदण कमायसमुग्घादेहि परिणदा चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुम खेत्तस्स सखेज्जदिभागे णिचिदरुमेण । पिण्णासकमेण पुण असखेज्जाणि माणुमखेत्ताणि । मारणतियसमुग्घादो माणुसोपतुल्लो । मारणतियखेत्त ठपिज्जमाणे सूचिअगुलपढम तदिय वग्गमूले गुणेदूण सेडिम्हि भागे हिदे दच्च होदि । तम्हि आपलियाए असखेज्जदिभाग मेत्त उवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमयम्हि मरतरामी होदि । त पलिदोवमस असखेज्जदिभागेण ओपट्टिय ऋण्णेण गुणिदे एगसमयसचिदमारणतियरासी होदि । पुणो तमानलियाए असखेज्जदिभाएण मारणतियउवक्कमणकालेण गुणिदे मारणतियकाल भत्ते सचिदरासी होदि । पुणो अरणेण पलिदोवमसस अमखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जुआया मेण मुक्कमारणतियरासी होदि । रज्जुआयदस्स निक्खभो पदरगुले पलिदोवमसस असखे ज्जदिभागेण जोपट्टिदे होदि । एउमुउनादस्म त्रि । णवरि एगसमयसचिदो त्ति आवलियाए अमखेज्जदिभाएण गुणगारो अण्णेदच्चो । विदियदळे सेठीए सखेज्जदिभागायामेण मुक्क

लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकरुके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कपायसमुद्धातसे परिणत हुए लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य निश्चितक्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रम और मनुष्यक्षेत्रके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते ह । विन्यासक्रमसे तो असख्यात मनुष्यक्षेत्र लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र है । मारणातिकसमुद्धातको प्राप्त हुए लक्ष्यपर्याप्त मनुष्याका क्षेत्र ओघमनुष्यप्ररूपणाके समान है । मारणातिकक्षेत्रके स्थापित करनेपर सूच्यगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलको परस्पर गुणित करके जो राशि आवे उसका जगध्रेणीमें भाग देनेपर लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंका द्रव्यप्रमाण होता है । इसमें आवलीके असख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालका भाग देनेपर एक समयमें भरोवाले लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशिमा प्रमाण होता है । इसे पश्योपमके असख्यातवें भागसे भाजित करके शोर एक कम पश्योपमके असख्यातवें भागसे गुणित करनेपर एक समयमें सचित हुई मारणातिकसमुद्धातको प्राप्त लक्ष्यपर्याप्त मनुष्यराशि होती है । पुन इस राशिको आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण मारणातिक उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणातिककालके भीतर सचित जीवराशिका प्रमाण होता है । पुन इसे एक दूसरे पश्योपमके असख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयामरूपसे किया है मारणातिकसमुद्धात जिहोंने, ऐसे लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशि होती है । प्रतरागुलको पश्योपमके असख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयतक्षेत्रका विस्तार होता है । इसीप्रकार उपपादका भी क्षेत्र सम शाना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उपपादराशि एक समयमें सचित होती है, इसलिये ऊपर जो आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण गुणकार कह आवे हैं वह निकाल देना चाहिये । अब दूसरे दृष्टमें जगध्रेणीके सख्यातवें भाग आयामरूपसे किया है मारणातिकसमुद्धात जिहोंने, ऐसे

मारणतियजीने इच्छामो त्ति अण्णेगो पलिदोवमस्स असरेज्जदिभागो भागहारो ठपेदच्चो ।

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदण कमाय वेउच्चियसमुग्घादगददेवमिच्छादिट्ठी तिण्ह लोगणमसरेज्जदिभागो, तिरियल्लोयस्स संखेज्जदिभागो, माणुसरेत्तादो असरेज्जगुणे । कुदो ? पधाणीरुदजोइसियरासिच्चादो । मारणतिय-उत्तवादपरिणदमिच्छादिट्ठी तिण्ह लोगणमसरेज्जदिभागो णर-तिरियल्लोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ खेत्तपमाण जाणिय ष्ठपेदच्च । सेसगुणहाणाणमोघभगो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासिय-देवा त्ति ॥ १५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूचिद-अत्थो चुच्चदे । तं जहा—सत्थाणसत्थाण विहार-वदिसत्थाण वेदण कसाय वेउच्चिय-उत्तवादपरिणदभवणवासियमिच्छादिट्ठी चटुण्ह लोगा-

जीवोंको लाना इष्ट है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमत्र असख्यातवा भाग भागहार स्थापित करना चाहिये ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, घेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त हुए देव मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातमें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके सख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि यहापर ज्योतिष्क देवराशि प्रधान है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादरूपसे परिणत हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातमें भाग प्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर क्षेत्रके प्रमाणको जानकर स्थापित करना चाहिये । देवोंके शेष गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघ प्ररूपणाके समान है ।

भवनवासी देवोंसे लेकर उपरिम उपरिम त्रैण्यकके विमानवासी देवों तकका क्षेत्र इसीप्रकार होता है ॥ १५ ॥

अथ इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित हुए अर्धको कहते हैं । यह इसप्रकार है—
स्वस्थानस्थस्थान, विहारवत्स्वस्थान, घेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और उपपादरूपसे परिणत हुए भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके

णमसखेज्जादिभागे, अट्टाद्विजादो असखेज्जगुणे । तिरिक्ख मणुसमिच्छादिद्विणो कण्णामारेण
 द्विदभरणवासियखेचेसु उप्पज्जमाणा वे निग्गहे कादृण सेठीए सखेज्जदिभागायामेण
 उप्पज्जता संभवति, तदो तिरियलोगादो असखेज्जगुणेण उवादखेचेण होदच्चमिदि ?
 सच्चमेदं जइ सेठीए संखेज्जदिभागमेत्तायामो उवादखेचस्स लब्भइ । किंतु सखेज्ज
 द्वविश्रगुलमेत्तो चेव । एत्तो सखेज्जजोयणाणि हेट्ठा गतूण भवणवासियनिमाणामव
 द्वाणाणुपलमादो । ण च तिरियलोगे सव्वत्थ तदवासा, तिरियलोगस्म मज्झिमासंखेज्जदि
 भागे चेव तेसिमत्थिचदमणादो । ण च उवरिमदेवेसुप्पज्जमाणतिरिक्खाण व भणणामिए
 सुप्पज्जमाणतिरिक्ख मणुस्माण सगुप्पत्तिदिस मुच्चा तिरिच्छेण गमणमत्थि, षडुज्जुवाए
 गईए भणणवासियजगपणिधिमागतूण हेट्ठागलिए भणणवासिएसुप्पत्तिदसणादो । एद बुदो
 णव्वदे ? भणणामियाणमुवादखेचस्स तिरियलोगासखेज्जदिभागत्तणहाणुवचोदो ।
 सगच्छिदद्वाणादो हेट्ठा ओयरिय भणणामिएसुप्पज्जमाणाणमुवादखेत्तायामो सेठीए
 सखेज्जदिभागो लब्भमिदि चि तग्गहण जुत्त, तथा तत्थुप्पज्जमाणाण सुट्ठु त्थोत्तादो । एद

असख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें, और अट्टाद्विपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुद्धा—वर्णरेखाके आकारसे स्थित भवनवासियोंके क्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच
 और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव दो धिग्रह करके जगश्रेणीके सख्यातयें भागप्रमाण आयामरूपसे
 उत्पन्न होते हुए पाये जाना संभव है, इसलिये भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यलोकसे
 असख्यातगुणा होना चाहिये ?

समाधान—यदि उपपादक्षेत्रका आयाम जगश्रेणीके सख्यातयें भागप्रमाण पाया जाता,
 तो यह उक्त कथन सत्य होता । किंतु, उपपादक्षेत्रका आयाम सख्यात सूक्ष्मगुलमात्र ही है,
 क्योंकि, इससे सख्यात योजन नीचे जाकर भवनवासियोंके विमानोंका अवस्थान नहीं पाया
 जाता है, तथा तिर्यग्लोकमें भी सर्वत्र भवनवासियोंके आवास नहीं हैं, क्योंकि, तिर्यग्लोकके
 मध्यधर्ती असख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही भवनवासी देवोंका अस्तित्व देखा जाता है । दूसरे,
 उपरिम देवोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यचोंके समान भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच और
 मनुष्योंका अपनी उत्पत्तिकी दिशाको छोड़कर तिरछा गमन होता हो, ऐसा भी नहीं है,
 क्योंकि, मनुष्य और तिर्यचोंकी बाणके समान सीधी गतिसे भवनवासी लोकके समीप आकर
 मध्यस्तनश्रेणीमें स्थित भवनवासी देवोंमें उत्पत्ति देयी जाती है ।

शुद्धा—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकके असख्यातयें भागप्रमाण
 अन्यथा बन नहीं सकता है, इससे उक्त कथन जाना जाता है ।

अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर भवनवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तिर्यचोंके
 उपपादक्षेत्रका आयाम जगश्रेणीके सख्यातयें भागप्रमाण पाया जाता है, इसलिये उसका
 ग्रहण उपयुक्त है, किंतु, उक्त प्रकारसे उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव स्वल्प होते हैं ।

कुदो णच्चदे ? तिरियलोगस्सासंखेज्जदिभागे चि वक्खणादो । मारणंतियसमुग्घादग्गद-
मिच्छाड्डी तिण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अट्टुइज्जादो वि
अमरेज्जगुणे।सेसमो'प। णवरि असंजदसम्माइट्ठीण उववादो णत्थि। वाणवेंतर जोडसियाण
देवोषमंगो। णवरि असंजदसम्माइट्ठीण उपादो णत्थि ।

पणुनीस अमुराण सेसकुमागण दस धणू चैय ।

वेंतर-नोदिसियाण दस सत्त णू मुणेयन्ता' ॥ १८ ॥

एदम्हादो उस्सेहादो एत्थ ओगाहणसेत्तमाणेद्वं। सोधम्मीसाणे सत्थाणसत्थाण-
निहारवदिसत्थाण वेदण-कसाय पेउत्त्रियसमुग्घादग्गदमिच्छादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागे माणुससेत्तादो अतरेज्जगुणे । एत्थ सगलेत्तपरिक्खा भरणनासियमगो । अप्पणो
ओहिसेत्तमेत्त देवा निउव्वंति चि ज आइरिययण' तण्ण घड्ढे, लोगस्स अस

शुंका— यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान— उपपादपरिणत भवनवासी देव तिर्यंग्लोके असत्प्यातवें भागप्रमाण
क्षेत्रमें रहते हैं, इसप्रकारके व्याख्यानसे उक्त कथन जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असत्प्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यंग्लोकेसे असत्प्यातगुणे क्षेत्रमें और अडार्-
ठीपसे भी असत्प्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । शेष कथा ओघप्ररूपणाके समान है । इतनी
विशेषता है कि असयतसम्यग्दृष्टियोंका भवनवासियोंमें उपपाद नहीं होता है । वानव्यन्तर और
ज्योतिषी देवोंका क्षेत्र देवसामान्यके क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि असयतसम्यग्दृष्टि
योंका वानव्यन्तर और ज्योतिषियोंमें उपपाद नहीं होता है ।

भवनवासियोंके दश भेदोंमेंसे प्रथम भेद असुरकुमारोंके शरीरकी उचारि पच्चीस धनुष
और शेष नौ कुमारोंके शरीरकी ऊचारि दश धनुष ह । तथा व्यन्तर देवोंके शरीरकी ऊचारि दश
धनुष और ज्योतिषी देवोंके शरीरकी ऊचारि सात धनुष जानना चाहिये ॥ १८ ॥

इस उपर्युक्त उत्सेघसे यहा अवगाहनाक्षेत्र ले जाना चाहिये । सौघर्म और ईशान
करूपमें स्थस्थानस्वस्थान, विहारवत्सस्थान, वेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात और वैश्रिक-
समुद्रातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असत्प्यातवें भाग
प्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असत्प्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर सर्व पद्गत क्षेत्रोंकी
परीक्षा भवनवासियोंके क्षेत्रके समान करना चाहिये । देव अपने अपने अवधिमानके क्षेत्र-
प्रमाण विप्रिया करते हैं, इनप्रकार जो अन्य आचार्योंका धचन है वह घटित नहीं होता है,

१ वि सा २५९ तत्र त्र्युर्थेचण 'दश सप्त सारिउदत्रो दु' इति पाठ ।

२ वेसा बेंतदशाणिय गिय ओहीन जेठिय रोच । ईति तेठिय पि हु पचेर विहरणवठेण । वि प ५, १६

खेज्जदिभागमेत्तेउच्चियत्तेत्तस्सप्पसगादो । मारणतिय उत्रादाण देवोषभगो । उत्र
 वादसेत्त ठविज्जमाणे पिकखभद्धचीगुणिदसेहिं ठनिय पलिदोममस्स असखेज्जदिभाएण
 सोहम्मीमाणउत्तमणकालेण ओत्रद्विदे उप्पज्जमाणजीना होंति । असखेज्जजोयणत्रिदिय
 दहेण उप्पज्जमाणनीउ इच्छिय अर्रो पलिदोममस्स असखेज्जदिभागो भागहारो ठपेद्वो ।
 एकपदगुलपिक्खभेण सेठीए सखेज्जदिभागायामेण खेत्त पुमति त्ति पदरगुलगुणिद
 सेठीए मखेज्जदिभागो गुणगारो ठपेद्वो । सव्वत्थ उज्जुगदीए उप्पज्जमाणजीविहितो
 पिग्गहगदीए उप्पज्जमाणजीना अमखेज्जगुणा । कुदो ? सेठीदो उस्सेठीए बह्वुत्तलभादो ।
 भरणपासियउत्रादग्गेत्त व तिरियलोगस्स असखेज्जदिभागो किं ण होदि त्ति बुत्ते ण
 होदि, पभापत्थडे उप्पज्जमाणेण तिरिक्खाण सव्वेसिं पि सेठीए सखेज्जदिभागायामो
 निदियदडस्स लम्भदे, तेणेदमुत्रादखेत्त तिरियलोगादो असखेज्जगुण त्ति । सेसगुणद्वाराण
 देवभगो । सणक्खमारप्पहुडि जाण उत्रिम उत्रिमगेरज्जो त्ति मिच्छादिद्वी ओषभगो ।

फर्षोकि, ऐसा माननेपर लोकके असख्यातयें भागप्रमाण वैक्यिकसमुदागत क्षेत्रके माननेका
 प्रसंग आ जाता है । सौधर्म और ईशानकल्पमें देवमिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुदात्त और
 उपपादसम्बन्धी क्षेत्र देवसामान्यके मारणान्तिकसमुदात्त और उपपादगतके समान जानना
 चाहिये । उपपादक्षेत्रके स्थापित करते समय सौधर्म पेशान देवमिथ्यादृष्टियोंकी विष्कम्भस्वासे
 गुणित जगश्रेणीकी स्थापित करके पर्योपमके असख्यातयें भागरूप सौधर्म और पेशानसम्बन्धी
 उपक्रमणकालसे अपवर्तित करनेपर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । पुन असख्यात
 योजनरूप दूसरे दृष्टसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंको लाना इष्ट है, ऐसा समझकर पर्योपमके
 असख्यातयें भागप्रमाण एक दूसरा भागद्वार स्थापित करना चाहिये । तथा एक प्रतरागुल
 प्रमाण विष्कम्भसे और जगश्रेणीके सख्यातयें भागप्रमाण आयामसे क्षेत्रके स्पर्श करते हैं,
 इसलिये प्रतरागुलगुणित जगश्रेणीका सख्यातया भागप्रमाण गुणकार स्थापित करना
 चाहिये । सर्वत्र क्रजुगतसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा विग्रहगतसे उत्पन्न होनेवाले
 जीव असख्यातगुणे होते हैं, फर्षोकि, श्रेणीकी अपेक्षा उच्छ्लेणिया बहुत पाई जाती हैं ।

शुका—सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र भवनवासी देवोंके उपपाद
 क्षेत्रके समान तिर्यग्लोकके असख्यातयें भागप्रमाण फर्षो नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, फर्षोकि, सौधर्म ईशान कल्पके इकतीसवें प्रमापटलमें उत्पन्न
 होनेवाले सभी तिर्यग्लोकके दूसरे दृष्टका आयाम जगश्रेणीके सख्यातयें भागप्रमाण पाया जाता
 है । इसलिये सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणा
 होता है, यह सिद्ध हुआ । सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंके शेष गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान
 क्षेत्रका कथन देवसामान्यके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके समान जानना चाहिये । सनत्कुमार
 कल्पसे लेकर उपरिम उपरिमप्रेषयक तक मिथ्यादृष्टि देवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि भेद
 ओष मिथ्यादृष्टिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रके समान है । तथा उर्द्धाके सात्वात्त

सासणसम्मादिट्टि सम्मामिच्छादिट्टि असजदसम्मादिट्टीण ओघभगो ।

अणुदिसादि जाव सव्वट्टिसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्मा-
दिट्टी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-त्रेदण कसाय वेउच्चिय मारणंतिय-उत्तवाद्गद-
असजदसम्माइट्टिणो चटुण्ह लोगणमसखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणे अच्छंति
त्ति वत्तवंपं । णवरि सच्चट्टे सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण त्रेदण-कसाय वेउच्चियपदेसु
माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । कध ? सच्चट्टे वेदण कसायसमुग्घादाण तेहिंतो समुप्पज्ज
माणथोवपिप्फुज्जर्ण पडुच्च तधोत्रेसादो, कारणे कज्जोययारादो वा ।

एव गदिमग्गणा समत्ता ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया वादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ १७ ॥

सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ-
सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रोंके समान होते हैं ।

नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तकके असयतसम्यग्दृष्टि देव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, वैक्रियिकसमु-
द्धात मारणातिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए उक्त असयतसम्यग्दृष्टि देव सामान्यलोफ
आदि चार लोकोंके असख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्रमें ओर अट्टाईट्टीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं, ऐसा यहा कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता हे कि सर्वार्थसिद्धिमें स्वस्थान-
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धात इन
स्थानोंमें देव मानुषक्षेत्रके सख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिमें
वेदनासमुद्धात और कपायसमुद्धातगत देवोंके उनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाला स्तोफ
विस्फूर्जन होता है, अर्थात् उक्त दोनों समुद्धातोंमें आत्मप्रदेशोंका वाद्य विस्तार बहुत कम
होता है, इस अपेक्षा उक्त प्रकारका उपदेश दिया है । अथवा, कारणमें कार्यके उपचारसे
उक्त प्रकारका उपदेश दिया है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियजीव, वादर एकेन्द्रियजीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय-
जीव, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय
पर्याप्त जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें
रहते हैं ॥ १७ ॥

एत्थ लोमणिद्वेसेण पंचण्ह लोमाण गहण, देशामर्शरूताल्लोरूपस । बादर सुहु मादिवयणेण सत्थाणसत्थाण वेयण कसाय वेउच्चिय मारणतिय उत्रवादपरिणदजीमाण गहण, छच्चिहानत्त्यानदिरिचवादरादीणमभावादो । तदो सच्चसुत्ताणि देसामासिगाणि चेव ? ण एस णियमो त्रि, उभयगुणोत्तलमा । सत्थाण वेदण कसाय मारणतिय उत्रवादगदा एहंदिषा केवडि खेत्ते ? सच्चलोगे । वेउच्चियसमुग्घादगदा चदुण्ह लोमाणमसखेज्जदिमाणे । माणुसखेत्त ण त्रिण्णायदे, सपहियकाले त्रिसिहुवएसामावा । त जह्वा-वेउच्चियसुहुत्तं त रासी पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । अहवा तस्स ओगाहणा उत्सेहघणगुलस्म असत्ते ज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । त्रिउच्चमाण एउ

इस सूत्रमें लोक पदके निर्देशसे पाचों लोकोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, यहा लोक पदका निर्देश देशामर्शक है। सूत्रमें बादर और सूक्ष्म आदि घचनसे स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदसे परिणत हुए जीवोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, उक्त छह प्रकारकी अवस्थाओंके अतिरिक्त बादर आदि जीव नहीं पाये जाते हैं।

शुक्रा—यदि ऐसा है, तो सर्व सूत्र देशामर्शक ही ह ?

समाधान—सर्व सूत्र देशामर्शक ही है, यह नियम भी नहीं है, क्योंकि, सूत्रोंमें दोनों प्रकारके धर्म पाये जाते हैं। अर्थात् कुछ सूत्र देशामर्शक हैं और कुछ नहीं, इसलिये सभी सूत्र देशामर्शक ही हैं, यह नियम नहीं किया जा सकता है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, मारणांतिकसमुद्धात, और उपपादको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते ह ? सर्व लोकमें रहते हैं। विक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। किन्तु मानुषक्षेत्रके सम्य धर्म नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं, क्योंकि, वर्तमानकालमें इसप्रकारका विशिष्ट उपदेश नहीं पाया जाता है। आगे इसी विषयका स्पष्टीकरण करते हैं—विक्रियाको उत्पन्न करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि पल्लोपमके असख्यातवें भागप्रमाण है। अथवा, वित्रियामक एकेन्द्रिय जीवोंके शरीरकी अवगाहना उत्सेधघनागुलके असख्यातवें भागप्रमाण होती है।

शुक्रा—उत्सेधघनागुलमें जिसका भाग देनेसे उत्सेधघनागुलका असख्यातवया भाग लभ्य आता है, उस असख्यातवें भागका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—पल्लोपमका असख्यातवया भाग प्रतिभाग है, अर्थात् पल्लोपमके असख्यातवें भागका उत्सेधघनागुलमें भाग देनेसे उत्सेधघनागुलका असख्यातवया भाग लभ्य आता है जो वित्रियामक एकेन्द्रिय जीवके शरीरकी अवगाहना है।

ऊपर विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि भी पल्लोपमके असख्यातवें भाग

देयरासीदो घणगुलस्म भागहारो किमप्यो बहुगो समो वा इदि ण^१ णव्दे ? जदि उन्विपरासीदो घणगुलभागहारो सखेज्जगुणो होदि, तो माणुसखेचस्स संखेज्जदिभागे । अह असखेज्जगुणो, तो असखेज्जदिभागे । अह सरिसो, माणुसखेचस्स संखेज्जदिभागे । ण च एत्थ एदं चेव होदि चि णिच्छओ अत्थि, तदो माणुसखेच ण णव्दि चि सिद्ध ।

वादेरेइदिय वादेरेइदियपञ्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणं सखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोएहितो असखेज्जगुणे । तं जहा- मंदरमूलादो उपरि जाव सदर-सहस्मारकूपो चि पचरज्जु-उस्सेधेण लोगणाली समचउरंसा वादेण आउण्णा, तं जगपदरं कस्सामो । एक्कुणवंचासरज्जुपदराणं जदि एग जगपदरं लब्भदि, तो पंचरज्जु-पदराणं किं लभामो चि फलगुणिदमिन्डं पमाणेणोत्तुट्ठिदे^१ वे पचभागूण एगूणसत्तरिरूपेहि

प्रमाण यतलाई है और उत्सेधघनागुलका भागहार भी पत्योपमके असख्यातव्ये भागप्रमाण यतलाया है, इसलिये विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनागुलका भागहार क्या छोटा है, या बडा है, या समान है, यह कुछ नहीं जाना जाता है । अब यदि एकेन्द्रिय विक्रियकराशिसे उत्सेधघनागुलका भागहार सख्यातगुणा है, ऐसा लेते हैं तो विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि मानुषक्षेत्रके सख्यातव्ये भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, ऐसा अभिप्राय निकलता है । अथवा, विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनागुलका भागहार असख्यातगुणा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके असख्यातव्ये भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, यह अभिप्राय होता है । और यदि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनागुलका भागहार समान है, ऐसा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके सख्यातव्ये भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है यह अभिप्राय होता है । परंतु यहापर मानुषक्षेत्रका इतना ही भाग लिया गया है, ऐसा कुछ भी निश्चय नहीं है, इसलिये मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जाना जाता है कि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि उसके कितने भागमें रहती है, यह सिद्ध हुआ ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कपायसमुद्घातको प्राप्त हुए याद्वर एकेन्द्रिय और वाद्वर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके सख्यातव्ये भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—मंद्राचलके मूल भागसे लेकर ऊपर शतार और सहस्रारकल्प तक पाच राजु उत्सेधरूपसे समचतुरस्र लोकनाली वायुसे परिपूर्ण है । अथ उसे जगप्रतरके प्रमाणस्वरूप करते हैं—यदि उनचास प्रतरराजुओंके एक पटलका एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पाच प्रतरराजुओंका क्या प्राप्त होगा, इसप्रकार त्रैराशिक करके एक जगप्रतरप्रमाण फल-राशिसे पाच प्रतरराजुप्रमाण इच्छाराशिको गुणित करके उनचास प्रतरराजुप्रमाण प्रमाण^२

घणलोगे भागे हिदे एगमागो आगच्छदि । लोगपेरतपादरेत्ते सखेज्जोपणमाहल्ल जगपदर पुब्बपरुण्णिदमाणेदूण एत्थेण पक्खिस्सविय अट्टपुढविस्सेत्ते तेसि हेट्ठा द्विवाद्दम पदर सखेज्जजोपणमाहल्लमाणेदूण पक्खिस्सत्ते जेण लोगस्स सखेज्जदिभागमेत्त वादरेइदिय वादरेइदियपज्जत्ताण खेत्त जाद, तेण वादरेइदिय वादरेइदियपज्जत्ता' लोगस्स सखेज्जदि भागे होंति त्ति सिद्ध । वेउब्बियसमुग्घादग्घाण एइदिओघभगो । मारणतिय उत्राद्दग्घा सव्वलोगे । वादरेइदियअपज्जत्ताण वादरेइदियभगो । णरि वेउब्बियपद णत्थि । सुग्घ इदिया तेसि चेत्त पज्जत्तापज्जत्ता य सत्थाण वेदण-कमाय-मारणतिय उत्राद्दग्घा सव्व लोगे, सुग्घमाण सव्वत्थ अत्तण पडि त्रिरोहाभात्तादो ।

वीइंदिय तीइंदिय-चउरिदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे' ॥ १८ ॥

राशिसे भाजित करनेपर, दो घंटे पाच कम उनहत्तरसे घनलोकके भाजित करनेपर जो एक भाग होता है उतना लब्ध आता है, जो कि ५ घनराजु प्रमाण है ।

उदाहरण— $१ \times ५ = ५$, $५ - ४९ = ४४$ जगप्रतर । चूकि यह वातपरिपूर्ण क्षेत्र १ राजु मोटा है, अतएव ५ घनराजु हुआ, जो कि $\frac{३५३}{६८६} = \frac{१७६}{३४३}$ घनलोक प्रमाण होता है ।

तथा पहले प्ररूपित किये गये लोकके चारों ओर प्रातभागमें सख्यात योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण वातक्षेत्रको लाकर इसी पूर्वोक्त वातक्षेत्रमें मिलाकर तथा आठों पृथिवियोंके क्षेत्र और उनके नीचे स्थित वायुक्षेत्र, जो कि सख्यात योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है, उनको उसी पूर्वोक्त क्षेत्रमें मिला देनेपर चूकि लोकके सख्यातयें भागप्रमाण वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र होता है, इसलिये वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव लोकके सरयातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ । वैकृतियकसमुद्धातको प्राप्त हुए वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र वैकृतियकसमुद्धातगत सामान्य एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके समान होता है । मारणातिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका क्षेत्र वादर एकेन्द्रियोंके समान होता है । इतनी विशेषता है कि वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके वैकृतियकसमुद्धातपर नहीं होता है । स्वस्थानस्थस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, मारणातिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म जीवोंके सर्व लोकमें पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव

१ प्रविशु ' वादरेइदिय' खेत्त जाद । तण वादरेइदियपज्जत्ताण ' इति पाठ ।

२ विक्खेत्तियाणां लोकरयासरयेयमाग । स ति १, ८

एदस्स अत्थो वुच्चदे- सत्थाणसत्थाण विहारदिसत्थाण-वेदण कसायसमुग्घाद-परिणदा तिण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्टाड्ज्जादो असखेज्जगुणे । पणरि तिण्हमपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । मारणतिय-उपपादगदा तिण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो असखेज्जगुणे, अट्टाड्ज्जादो वि असंखेज्जगुणे । एत्थ मारणतियखेत्तमाणिज्जमाणे बीइदिय तीइदिय चदुरिंदिया तेसिं पज्जत्त अपज्जत्तदव्व ठणिय आणलियाए असखेज्जदिभागमेत्त-उवक्कमणकालेण संडिय तस्स अमखेज्जदिभागो वा सखेज्जदिभागो वा मारणतिण्ण विणा मरदि त्ति एदस्स असंखेज्जा भागा सखेज्जा भागा वा घेत्तूण मारणतिय-उपक्कमणकालेण आणलियाए असखे-ज्जदिभाएण गुणिदे मारणतियरासी हेदि । रज्जुमेत्तायामेण ट्टिदरासिमिच्छामो त्ति पलि-दोमस्स असखेज्जदिभाग भागहारं ठविय अप्पप्पणो विक्खभग्गगुणिदरज्जए गुणिदे मारणतियखेत्तं हेदि । उपपादखेत्तं ठविज्जमाणे एद चेत्त ठणिय मारणतिय-उवक्कमण

कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कपायसमुद्घात इन पदोंसे परिणत हुए उक्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके असख्यातवें भागमें और अदार्दीर्घीसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इतनी विशेषता है कि तीनों ही विक्खेन्द्रियोंके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणातिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए तीनों विक्खेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें तथा अदार्दीर्घीसे भी असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर मारणान्तरिक्षके लाने समय द्वीन्द्रिय, श्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा उनकी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवराशिको स्थापित कर उसे आवलीके असख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे खडित करके उसका जो असख्यातवा भाग अथवा सख्यातवा भाग लब्ध आये, उतनी राशि मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करती है । इसलिये इस राशिके असख्यात बहुभाग अथवा सख्यात बहुभागप्रमाण राशिको ग्रहण करके उसे मारणान्तिकसमुद्घातके उपक्रमण कालरूप आवलीके असख्यातवें भागसे गुणित करने पर मारणान्तिक जीवराशि होती है । यहा एक राजुमात्र आयामसे स्थित मारणान्तिक जीवराशि इच्छित है, इसलिये उक्त राशिके नीचे भागहारके स्थानमें पल्योपमके असख्यातवें भागमात्र भागहारको स्थापित करके और अपने अपने विष्कभके वर्गसे गुणित राजुसे उक्त राशिके गुणित करने पर मारणातिकसमुद्घातगत विकलत्रय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र होता है । उपपाद-क्षेत्रके लाने समय इसी मारणान्तिक जीवराशिको स्थापित करके और उसमेंसे मारणा-

कालगुणगारमत्रणिदे एगसमयमचिदो मारणतियरासी होदि । तस्म अससेज्जा भागा निग्गहगदीए उप्पज्जति चि तस्स अससेज्जे भागे धेत्तुण पलिदोमस्स अससेज्जदि मागेण औपट्ठिदे सेदीए ससेज्जदिभागायामेण प्रिदियदडड्ठिदरासी होदि ।

पचिदिय-पचिदियपज्जतएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि केवलि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १९ ॥

एदस्म अत्यो-सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण-वेदण ऋसाय-वेउच्चियसमुग्घादग्द पंचिदियमिच्छाइट्ठी तिण्ह लोगानमससेज्जदिभागे तिरियलोगस्म संसेज्जदिभागे अट्ठाइ ज्जादो अससेज्जगुणे । मारणतिय उववादग्दमिच्छाइट्ठी तिण्ह लोगानमससेज्जदिभागे, णर तिरियलेगेहितो अमसेज्जगुणे । एदाण सेत्ताणमाणयण पुब्ब व कादब्ब । सासणादीण मोघमगो । एव पज्जत्ताण पि वत्तच्च ।

सजोगिकेवली ओघ ॥ २० ॥

नितरु उपक्रमणकालके गुणकारको निकाल लेने पर एक समयमें सचित हुई मारणातिक जीवराशि होती है । एक समयमें सचित हुई इस मारणातिक जीवराशिके असख्यात बहुभाग जीव विग्रहगतिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये उसके असख्यात भागको प्रदण करके पच्योपमके असख्यातवें भागसे भाजित करने पर जगध्रेणीके सख्यातवें भाग आयामरूपसे दूसरे दंडमें स्थित जीवराशि होती है ।

पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगि केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकोके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १९ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुदात, कपायसमुदात और वैकियिकसमुदातको प्राप्त हुए पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणातिकसमुदात और उपपादको प्राप्त हुए पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इन क्षेत्रोंको पहलेके समान ले आना चाहिये । सासादनसम्पग्घट्टि आदिका स्वस्थानस्वस्थान आदि पद्गत क्षेत्र ओघसासादनसम्पग्घट्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि पद्गत क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार पर्याप्तोंके क्षेत्रका भी कथन करना चाहिये ।

सजोगिकेवलियोंका क्षेत्र सामान्यप्ररूपणाके समान है ॥ २० ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति ण वुच्चदे ।

पंचिदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥२१॥

सत्थाण वेदण कसायसमुग्घादग्दपंचिदियअपज्जत्ता चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे । बुदो ? अंगुलस्म असंखेज्जदिभागमेत्त ओगाहणादो । मारणंतिय-उववाद्गदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, णर तिरियलोगेहिंतो अमखेज्जगुणे ।

एवमिंदियमग्गणा गदा ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, वादरपुढविकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवाउकाइया वादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते. सब्वलोगे ॥ २२ ॥

इस सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा पहले कर भाये ह, इसलिये यहा पर पुन उसका फयन नहीं करते ह ।

लब्ध्यपर्याप्त पचेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें रहते ह ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाई-द्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते ह, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्त पचेन्द्रियोंकी अग्रगाहना अगुलके असख्यातवें भागमात्र हे । मारणात्तिफसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्य-लोक और तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते ह ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्यकायिक वायुकायिक जीव तथा वादर पृथिवीकायिक, वादर अप्कायिक, वादर तैजस्यकायिक, वादर वायु-कायिक और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पाच वादर काय-सम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तैजस्यकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते ह ॥ २२ ॥

चत्वारि सत्रभागूणपचरज्जुनिकरभा मत्तरज्जुआपदा वीसजोयणसहस्सवाहल्ला वीम
सहस्साहियछण्ह लक्खणमेगूणपचासभागनाहल्लं जगपदर होदि । छट्ठपुढवी पच सत्त
भागूण छरज्जुनिकरभा सत्तरज्जुआपदा सोलहजोयणसहस्सवाहल्ला वाणउदिसहस्साहिय
पचण्ह लक्खणमेगूणपचामभागनाहल्लं जगपदर होदि । सत्तमपुढवी छ-सत्तभागूण सत्त
रज्जुनिकरभा सत्तरज्जुआपदा अट्ठजोयणसहस्सवाहल्ला चउदालमहस्साहियतिण
लक्खणमेगूणपचामभागनाहल्लं जगपदर होदि । अट्ठमपुढवी सत्तरज्जुआपदा एगरज्जु

और मोटी २४००० योजन है ।

$$\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{२५}{१}, \quad \frac{२५}{१} \times \frac{२४०००}{१} = \frac{६०००००}{१}, \quad \frac{६०००००}{१} - \frac{४९}{१} = \frac{६०००००}{४९}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण

पाचवी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे चार भाग कम पाच राजु चौड़ी, सा
राजु लम्बी और वीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख वीस हजार
योजनोंके उनचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—पाचवी पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु, पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{३१}{७}$ राजु
और मोटी २०००० योजन है ।

$$\frac{३१}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३१}{१}, \quad \frac{३१}{१} \times \frac{२००००}{१} = \frac{६२००००}{१}, \quad \frac{६२००००}{१} - \frac{४९}{१} = \frac{६२००००}{४९}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण

छठी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे पाच भाग कम छह राजु चौड़ी, सात राजु
लम्बी और सोलह हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा पाच लाख वानवे हजार
योजनोंके उनचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—छठी पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु, पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{३७}{७}$ राजु
और मोटा १६००० योजन है ।

$$\frac{३७}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३७}{१}, \quad \frac{३७}{१} \times \frac{१६०००}{१} = \frac{५९२०००}{१}, \quad \frac{५९२०००}{१} - \frac{४९}{१} = \frac{५९२०००}{४९}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण

सातवीं पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे छह भाग कम सात राजु चौड़ी, सात
राजु लम्बी और आठ हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा तीन लाख चषाली
हजार योजनोंके उनचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—सातवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु, पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{४३}{७}$ राजु
और मोटी ८००० योजन है ।

रूढा अट्टजोयणवाहल्ला सचमभागाहिय-एऊजोयणवाहल्ल जगपदरं होदि । एदाणि सव्वाणि एणट्ठे कदे तिरियलोगावाहल्लादो ससेज्जगुणवाहल्ल जगपदर होदि । एत्थ असंसेज्जा लोगमेत्ता पुढविकाइया चिहंति, तेण तिरियलोगादो संसेज्जगुणो चि सिद्धं । एदेहि पदेहि लोगस्स अमसेज्जदिभागे चिहंता वादरपुढविकाइया सुणेण सव्वलोगे चिहंति चि वुत्ता, तं कथं घडदे ? ण, मारणतिय-उपपादपदे पडुच्च तथोपदेसादो । मारणतिय-उपपादगदा सव्वलोगे । एवं वादरआउकाइयाण तेसिमपज्जत्ताण च । पुढीसु सव्वत्थ ण जलमुवल-

$$\frac{४३}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{४३}{१}, \quad \frac{४३}{१} \times \frac{८०००}{१} = \frac{३४४०००}{१}, \quad \frac{३४४०००}{१} - \frac{४२}{१} = \frac{३४४०००}{४२}$$

योजन वाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण

आठवाँ पृथिवी सात राजु लम्बी, एक राजु चौड़ी और आठ योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा एक योजनके सात भाग करनेपर उनमेंसे सातवा भाग अर्थात् एक भाग अधिक एक योजन वाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—आठवाँ पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु, पूर्वसे पश्चिम तक एक राजु और आठ योजन मोटी है।

$$१ \times ७ = ७; \quad ८ - ७ = १ \text{ योजन वाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण}$$

इन सबको एकत्रित करनेपर तिर्यंग्लोकरके वाहल्यसे सख्यातगुणे वाहल्यरूप जगप्रतर होता है। इन पृथिवियोंमें असख्यात लोकप्रमाण पृथिवीकायिक जीव रहते हैं, इसलिये वे तिर्यंग्लोकरसे सख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—तिर्यंग्लोकरका प्रमाण घनफलकी अपेक्षा १४२८५५ योजन वाहल्यरूप जगप्रतर है और आठों पृथिवियोंका घनफल ६२३४३६५ योजन वाहल्यरूप जगप्रतर है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तिर्यंग्लोकरके प्रमाणसे आठों पृथिवियोंका क्षेत्र सख्यातगुणा है। वादर पृथिवीकायिक जीव इन आठों पृथिवियोंमें सर्वत्र पाये जाते हैं, इसलिये वे तिर्यंग्लोकरसे सख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हो जाता है।

शुद्धा—उपर्युक्त स्वरूपान्तरास्थान, वेदनासमुद्रात् ओर कपायसमुद्रात्, इन पदोंकी अपेक्षा वादर पृथिवीकायिक जीव जत्र कि लोकरके असख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, तो वे 'सर्व लोकमें रहते हैं' ऐसा जो सूत्रद्वारा कहा गया है वह कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्रात् और उपपादकी अपेक्षा 'वादर पृथिवीकायिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं,' इसप्रकारका उपदेश दिया गया है।

मारणान्तिकसमुद्रात् और उपपादको प्राप्त हुए वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। इसीप्रकार वादर अन्त्यायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका भी कथन करना चाहिये। अर्थात् पृथिवीकायिक और अपर्याप्त पृथिवी

भदि चि आउकाइया सव्वत्थ पुढवीसु ण होंति चि णासंकाणिज्ज, बादरकम्मोदण
 वादरत्तमुवगयाण अणुनलममाणेण पि सव्वपुढवीसु अत्थिचत्तिरोधाभावादे । एउ बादर
 तेउकाइयाण तस्सेउ अपज्जत्ताण च । णरि वेउवियपदमत्थि, ते च पचण्हं लोमाणम
 संसेज्जदिभागे । तेउकाइया वादरा सव्वपुढवीसु होंति चि कध णव्वदे ? आगमादे । एउ
 बादराउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताण च । णरि सत्थाण पेयण कसाय समुग्घादगदा तिण्ह
 लोमाण ससेज्जदिभागे, देा लोगेहिंतेा अससेज्जगुणे । वेउवियसमुग्घादगदा चदुण्ह
 लोमाणमसखेज्जदिभागे । माणुसखेत्त ण विण्णायदे । सव्वअपज्जत्तेसु वेउवियपदं पत्थि ।

कायिक जीवोंके समान स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए
 वादरजलकायिक और वादरजलकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
 असख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे सरयातगुणे क्षेत्रमें, तथा मारणात्तिकसमुद्घात और
 अपपादको प्राप्त हुए वादर जलकायिक और उ हॉके अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं ।

शुका—पृथिवियोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है, इसलिये जलकायिक जीव
 पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं रहते हैं ?

समाधान—पेसी आशका नहीं करनी चाहिये, पर्यंकि, वादरनामक नाम
 कर्मके उदयसे वादरत्तको प्राप्त हुए जलकायिक जीव यद्यपि पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं पाये
 जाते हैं, तो भी उनका सर्व पृथिवियोंमें अस्तित्व होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

इसीप्रकार अर्थात् वादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके समान वादर
 तैजस्कायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि पूर्वोक्त पदोंमें कथन
 करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वादर तैजस्कायिक जीवोंके वैकियिकसमुद्घातपद भी
 होता है और ये पाचों लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुका—वादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—भागमसे यह जाना जाता है कि वादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवि
 योंमें रहते हैं ।

इसीप्रकार वादर वायुकायिक और उ हॉके अपर्याप्त जीवोंके पदोंका कथन करना
 चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए
 वादर वायुकायिक और वादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
 असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दो लोकोंसे असख्यातगुणे
 क्षेत्रमें रहते हैं । वैश्विकसमुद्घातको प्राप्त हुए वादर वायुकायिक जीव सामान्यलोक आदि
 चार लोकोंके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु यहा मनुष्यक्षेत्र नहीं जाना जाता
 है कि उसके कितने भागमें रहते हैं । सभी अपर्याप्त जीवोंमें वैकियिकसमुद्घातपद नहीं होता

बादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता बादरणिगोदपदिट्ठिदा तस्सेव अपेज्जत्ता च बादरपुढवितुल्ला ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवण-
फ्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागे ॥ २३ ॥

एदस्म सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— बादरपुढनिपज्जत्ता सत्थाण वेदण-
कसायसमुग्घादगदा चट्ठुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणे । एत्थ
ओउट्ठण ठणिय जोएदच्च । मारणतिय-उववादागदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, णर-
तिरियलोगेहिंतो असखेज्जगुणे । एव बादरआउकाइयपज्जत्ता । बादरवणफ्फदिकाइयपत्तेय-
सरीर बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणमेव च । णरि बादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता
वेदण कसाय-सत्थाणेषु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । एदेसिं रासीणं पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागमेत्ता जगपदराणि पदरगुलेण खड्दिदेयखंडमेत्तपमाण होदि । ओगाहणा पुण

है । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उन्हींके अपर्याप्त जीव तथा बादर निगोद-
प्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त जीव, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान हैं ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव, बादर अकायिक पर्याप्त जीव, बादर तैजस्का-
यिक पर्याप्त जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? लोकोके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २३ ॥

अथ इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात
और कपायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार
लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईवीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।
यहापर अपवर्तनाकी स्थापना करके योजना कर लेना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घात और
उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तथा मनुष्य और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते
हैं । बादर अकायिक पर्याप्त जीव भी स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंमें इसीप्रकार रहते हैं ।
बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके पदोंका
इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और
स्वस्थान पदगत बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव, तिर्यग्लोकके संख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जगप्रतरोंको प्रतरागुलसे खंडित
करके जो एक भाग लघ्व भागे उतना इन राशियोंका प्रमाण है । तथा अवगाहना घनागुलके

घणगुलस्म असरोज्जदिभागो । तस्म को पडिभागो ? पलिदोयमस्स असंखेज्जदिभागो । वादरवणप्फटिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तजोगाहणा नि घणगुलस्स असरोज्जदिभागमेत्ता, अण्णाहा तदो शीइंठियपज्जत्तजोगाहणा असरोज्जगुणा ण होज्ज । तदो पत्तेयसरीरपज्जत्त रासी तिरियलोगम्म संखेज्जदिभागेण होज्ज ? ण एस दोमो, घणगुलभागहारो पदरगुल-भागहारदो संखेज्जगुणो त्ति । पत्तेयसरीरपज्जत्तजहण्णोगाहणादो वीइंदियपज्जत्तजहण्णो गाहणा अमरोज्जगुणा त्ति कुदो णव्वदे ? वेदणासेत्तविहाणम्मिह वुचवोगाहणदडयादो । त जहा—सव्वन्थोरा सुहूमणिगोदजीवपज्जत्तयस्म जहण्णिया ओगाहणा । सुहूम वाउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा अमरोज्जगुणा । सुहूमतेउकाइयअपज्जत्तयस्म जहण्णिया ओगाहणा अमरोज्जगुणा । सुहूमआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा अमरोज्जगुणा । सुहूमपुढविकाइयअपज्जत्तयस्म जहण्णिया ओगाहणा असरोज्जगुणा । नादर

असख्यातवें भागप्रमाण है ।

शुक्रा—उसका क्या प्रतिभाग है, अर्थात् जिसका भाग घनागुलमें देनेसे उसका विधात्रित असख्यातवा भाग आता है, वह प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—पल्योपमका असख्यातवा भाग प्रतिभाग है ।

शुक्रा—वादर घनस्वपतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवकी अवगाहना भी घनागुलके असख्यातवें भागप्रमाण है, यदि ऐसा न माना जाये तो इससे द्वीन्द्रिय पय प्त जीवोंकी अवगाहना असख्यातगुणी नहीं हो सकती है, इसलिये प्रत्येकशरीर पर्याप्तराशि तिर्यग्द्वैके असख्यातवें भागप्रमाण होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, घनागुलका भागद्वार प्रतरागुलके भागद्वारसे सख्यातगुणा है ।

शुक्रा—घनस्वपतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—वेदनाक्षेत्रविधानमें कहे गये अवगाहनादडरसे यह जाना जाता है कि प्रत्येकशरीरकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है ।

भागे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं—सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना सयसे स्तोप है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे

वाउकाइयअपञ्चत्तयस्म जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । वादरतेउकाइयअपञ्चत्तयस्स जहणिया ओगाहणा जमंखेज्जगुणा । वादरआउकाइयअपञ्चत्तयस्म जहणिया ओगाहणा असखेज्जगुणा । वादरपुढनिकाइयअपञ्चत्तयस्म जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । वादरणिगोदजीअपञ्चत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । णिगोदपदिद्धिद-अपञ्चत्तयस्म जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । वादरणप्फइकाइयपत्तयसरीअप-अपञ्चत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । वेडदियअपञ्चत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । तेडदियअपञ्चत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । चउरिदिय-अपञ्चत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । पचिंदियअपञ्चत्तयस्म जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । सुहुमणिगोदजीअपञ्चत्तयस्म जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । तस्सेअ णिवत्तिअपञ्चत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा निसेसाहिया । तस्सेअ णिवत्तिपञ्चत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा निसेसाहिया । सुहुमवाउकाइय-णिवत्तिपञ्चत्तयस्म जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । तस्सेअ अपञ्चत्तयस्स उक्क-स्सिया ओगाहणा निसेसाहिया । तस्सेअ पञ्चत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा निसेसाहिया । सुहुमतेउकाइयणिवत्तिपञ्चत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असरेज्जगुणा । तस्सेअ अप-

वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे वादर तैज-स्नायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे वादर जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे वादर निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे निगोद प्रतिष्ठित अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे वादर धनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे ईन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे आन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे पचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्या अवगाहना असख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म तैजस्नायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असख्यातगुणी है ।

पंचिन्द्रियणिव्यक्तिपञ्चतयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा सखेज्जगुणा । तेइन्द्रियणिव्यक्तिपञ्चतयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिन्द्रियणिव्यक्तिपञ्चतयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा सखेज्जगुणा । वेइन्द्रियणिव्यक्तिपञ्चतयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । वादरवणप्फइपचेयसरीरणिव्यक्तिपञ्चतयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा सखेज्जगुणा । पंचिन्द्रियणिव्यक्तिपञ्चतयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा सखेज्जगुणा । सुहुमादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आगलियाए अमखेज्जदिभागो । सुहुमादो वादरस्स आया हणागुणगारो पलिटोवमस्स असखेज्जदिभागो । वादरादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आगलियाए असखेज्जदिभागो । वादरादो वादरस्स ओगाहणागुणगारो पलिटोवमस्स असखेज्जदिभागो । वादरादो वादरस्स ओगाहणागुणगारो सखेज्जा समया । एत्थं वादरवणप्फइकाइपचेयमरीरणिव्यक्तिपञ्चतयस्स जइणिया ओगाहणा घणंगुलस्स असखेज्जदिभागो इदि पुत्ते होहु णामेद, पदरगुलभागहारादो घणंगुलभागहारो सखेज्जगुणो ति बुद्धाणव्वदे ? तिरियलोमस्स सखेज्जदिभागो ति गुरुवएसादो । एदम्हादो चेए एदिस्से ओगा

अवगाहना सख्यातगुणी है । इससे पचेन्द्रिय निवृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है । इससे त्रिन्द्रिय निवृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निवृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निवृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है । इससे वादर वनस्पति कायिक प्रत्येकशरीर निवृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है । इससे पचेन्द्रिय निवृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना सख्यातगुणी है ।

एक सूक्ष्मजीवसे दूसरे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवर्तीका असख्यातवा भाग है । सूक्ष्मजीवसे वादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असख्यातवा भाग है । वादरजीवसे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवर्तीका असख्यातवा भाग है । वादरजीवसे अन्य वादरजीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असख्यातवा भाग है । वादरसे वादरकी अवगाहनाका गुणकार सख्यात समय है, अर्थात् वादर पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवकी जघय अवगाहनासे वादर पर्याप्त त्रीन्द्रिय आदि जीवोंकी अवगाहनाका गुणकार सख्यात समय है ।

शुकी — यहा पर वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी जघय अवगाहना घनागुलके असख्यातवें भाग कहा है, तो वह भले ही रही आवे, किन्तु प्रतरागुलके भाग हारसे घनागुलका भागहार सख्यातगुणा होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — वादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव वेदनासमुदाह, कणाय समुदाह और स्वस्थानपर्शकी अपेक्षा 'तिर्यक्लोकके सख्यातवें भागमें रहते हैं' इस प्रकारके गुरुपदेशसे जाना जाता है कि प्रतरागुलके भागहारसे घनागुलका भागहार सख्यातगुणा है ।

हणाए जीवहुत्तं च णायव्वं । वादरणिगोदपदिट्टिदपज्जत्ता किमिदि सुत्तमिह ण वुत्ता ? ण, तेमिं पचेयसरीरेसु अंतम्भावादो । वादरतेउकाइयपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-समुग्घादगदा पंचण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागे । मारणांतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणे ।

वादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स, संखेज्जदि-
भागे ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे- सत्थाण वेदण कसाय मारणतिय उववादगदा वादरवाउपज्जत्ता तिण्ह लोगाणं सखेज्जदिभागे, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । वादरवाउ-पज्जत्तरासी लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तो मारणांतिय उववादगदो सव्वलोगे किण्ण होदि चि वुत्ते ण होदि, रज्जुपदरमुहेण पंचरज्जुआयामेण^१ ट्टिदखेत्ते चेव पाएण तेसिमुप्पत्तीदो ।

तथा, उक्त इसी गुरुपदेशसे वादरवनस्पतिक्रायिक प्रत्येकशरीरकी अवगाहनामें जीवोंकी आधिकता भी जानना चाहिए ।

शंका—सूत्रमें वादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका प्रत्येकशरीर पर्याप्त वनस्पतिक्रायिक जीवोंमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैश्वक्रियिकसमुद्घातगत वादर-तैजस्क्रायिक पर्याप्त जीव पाचों लोकोंके असख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-समुद्घात और उपपादगत ये ही वादर तैजस्क्रायिक जीव चारों लोकोंके असख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

वादर वायुक्रायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके सख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद पदगत वादरवायुक्रायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके सख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दोनों लोकोंसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—वादर वायुक्रायिक पर्याप्तराशि लोकके सख्यातवें भागप्रमाण है, जब वह मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंको प्राप्त हो तब वह सर्व लोकमें क्यों नहीं रहती है ?

समाधान—नहीं रहती है, क्योंकि, राजुप्रतरप्रमाण मुखसे और पाच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रमें ही प्राय करके उन वादर वायुक्रायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्पत्ति होती है ।

१ वादरवातवापिकानां विदुर्वणाद रज्जुव्याप्तयाम पचरज्जुदयज्ञेनकळं छाकसख्यातभागमात्र भवति ।
गे जी जी प्र गा ५४५

अण्णसेचंतरं गतुण्णपज्जमाणनीणाणमइथोवत्त कधमवगम्मदे ? बादरवाउक्काइयपज्जत्ता लोगस्स सखेज्जदिभागे इदि सुत्तादो । अण्णहा सुचस्स पुध आरमो णित्त्वओ होज्ज, बादरवाउअपज्जत्तेसु अतग्गमादो । वेउच्चियसमुग्घादगदा च्चदुण्हं लोगाणमसखेज्जदि भागे । अट्ठाइज्ज ण णिण्णायदे ।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा वादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २५ ॥

सत्थाण-वेदण कमाय मारणतिय उव्वादगदा वणप्फदिकाइया सुहुमणप्फ काइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्थाण-वेदणसमुग्घादगदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदि भागे, तिरियलोगादो सखेज्जगुणे, माणुसवेत्तादो असखेज्जगुणे । मारणतिय उव्वादगदा सव्वलोए । बादरा पुढगीओ चेन अस्सिदण्ण अच्चत्ति त्ति' लोगस्स असखेज्जदिभागे हाति ।

शंका—अन्य क्षेत्रान्तरको जाकर उत्पन्न होनेवाले वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव मत्स्यत थोड़े हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके सख्यातयें भागमें रहते हैं, इस सूत्रसे जाना जाता है कि राजुपतरप्रमाण मुखवाले और पाच राजु आयामवाले क्षेत्रके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रमें जाकर उ पक्ष होनेवाले वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव बहुत कम होते हैं । यदि ऐसा न माना जावे, तो इस सूत्रका पृथक् आरम्भ निरर्थक हो जायगा, क्योंकि, फिर तो उनका वादर वायुकायिक अपर्याप्तोंमें अंतर्भाव हो जायगा ।

वैश्वियिक्कसमुद्दातगत वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातयें भागमें रहते हैं । अट्ठाईद्वीपसे अधिक क्षेत्रमें रहते हैं या कममें, यह जाना नहीं जाता ।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक वादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक वादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद वादर पर्याप्त जीव, निगोद वादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २५ ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्दात, षपायममुद्दात, मारणान्तिकसमुद्दात और उपपादगत वनस्पतिकायिक, स्वस्थान और वेदनासमुद्दातगत सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातयें भागमें, तिरियलोकसे सख्यातगुणे और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिक समुद्दात और उपपादगत उपर्युक्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । वादर वनस्पतिकायिक जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकर रहते हैं, इसलिये वे लोकके असख्यातयें भागमें रहते हैं ।

एदं कथं णव्वदे ? गुरूणएसदो ।

तसकाइय तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-
केवलि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २६ ॥

तसकाइय तसकाइयपज्जत्तमिच्छाइट्ठी सत्थाण विहारवदिमत्थाण वेदण कप्पाय-वेउ-
व्वियसपुग्घादग्दा तिण्ह लोगाणममंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागे, अट्ठाइ-
ज्जादो असखेज्जगुणे । मारणतिय-उपपादग्दा तिण्ह लोगाणममंखेज्जदिभागे, णर-तिरिय-
लोगेहिंतो असखेज्जगुणे । एत्थ ओउट्टणा जाणिय कायव्वा । सेसगुणट्ठाणाण पंचिंदियभगो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २७ ॥

सुगममेद ।

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ २८ ॥

शुभा — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—गुरुके उपदेशसे जाना जाता है कि वादर वनस्पतिकायिक जीव
पृथिवियोंके ही आश्रयसे रहते हैं ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारव-स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात और चैत्रि-
यिकसमुदातगत त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके, सख्यातवें भागमें और अट्ठाईपसे
असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणातिकसमुदात और उपपादगत त्रसकायिक और
त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव तीनों लोकोंके असख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक और
तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर अपवर्तना जानकरके करना चाहिये ।
सासादनादि शेष गुणस्थानवता त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय
जीवोंके क्षेत्रोंके समान जानना चाहिए ।

सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघनिरूपित सयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ २७ ॥

यह सुगम सुगम है ।

त्रसकायिक लब्धपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंके क्षेत्रके
समान है ॥ २८ ॥

एद पि सुत्त सुगम, पुव्व परुदिच्चादो ।

एव कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिण्हुडि
जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जादिभागे ॥ २९ ॥

एदस्स सुत्तस्स जत्थो वुच्चदे- पचमणजोगि-पचवचिजोगिमिच्छादिट्ठी सत्थाण
सत्थाण विहारदिसत्थाण वेदण रुमाय वेउच्चियसमुग्घादगदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदि
भागे, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणे । वेउच्चियसमुग्घाद
गदाण कध मणजोग वचिजोगाण सभभो ? ण, तेसिं पि णिप्पण्णुत्तरसरीराण मणयोग
वचिजोगाण परावत्तिसभभदो । मारणतियसमुग्घादगदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे,
णर तिरियलोगेहितो अमखेज्जगुणे । मारणतियसमुग्घादगदाण असखेज्जजोगाणायोमण
ठिदाण मुच्चिउदाण कध मण वचिजोगमभभो ? ण, वारणाभावादो अत्ताण णिग्भरसुव

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, इसका पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगियोंमें मिथ्या
दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्सुस्थान, वेदनासमुद्घात,
कपायसमुद्घात और वेक्खियिदसमुद्घातगत पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि
जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें
और अट्ठाईवीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुभा—वैक्रीयिकसमुद्घातको प्राप्त जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे समभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, निष्पन्न हुआ है विक्रियात्मक उत्तरदायीर जिनके, वैसे
जीवोंके मनोयोग और वचनयोगोंका परिघर्तन समभव है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे अस
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुका—मारणांतिकसमुद्घातको प्राप्त, असख्यात योजन आयामसे स्थित और
मूर्च्छित हुए सभी जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे समभव हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पाचक कारणके अभाव होनेसे निर्भर (भरपूर) होते

जीवाणं व तेषिं तत्थ संभवं पडि विरोहाभावादो । मण-वचिजोगेसु उंनवादो णत्थि । सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाण असमुग्घादसजोगिकेणलि त्ति मूलोघभंगो । णररि सासण-असजदसम्माइट्ठिण उववादो णत्थि ।

कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३० ॥

सत्थाणसरथाण वेदण कसाय-मारणंतिय उववादगदा कायजोगिमिच्छाइट्ठी सच्च-लोए । निहारणदिसत्थाण वेउच्चिणसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणममंखेज्जदिभागे, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणे । एत्थ ओउट्ठणा जाणिय ऋयव्वा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

जोगाभावादो एत्थ अजोगीणमगहण । सेस सुगम ।

हुय जीवोंके समान अव्यक्त मनोयोग और वचनयोग मारणान्तिकसमुद्रातगत मूर्च्छित-अवस्थामें भी समान ह, इसमें कोई विरोध नहीं है ।

मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंमें उपपादपद नहीं होता है । सासादनसम्पगदृष्टि गुणस्थानसे लेकर समुद्रातरहित सयोगिकेजली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनो-योगी और वचनयोगी जीवोंका क्षेत्र मूलोघ क्षेत्रके समान है । विशेष यात यह है कि सासादनसम्पगदृष्टि और असयतसम्पगदृष्टि मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंके उपपादपद नहीं होता है ।

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्लोक है ॥ ३० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, चेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात, मारणान्तिकसमुद्रात और उप-पादगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक-समुद्रातगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सरयातवें भागमें और अट्टाईपीसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर अपवर्तना जान करके करना चाहिए ।

सासादनसम्पगदृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपायवीतरागछदस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

योगका अभाव होनेसे इस सूत्रमें अयोगिकेवलियोंका ग्रहण नहीं किया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२ ॥

गुणपडिउण्णाणमेगजोमो ऋिण्ण कदो ? ण, सजोगिग्हि लोगस्स असरोज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा इदि निमेषुलभादो ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइद्दी ओघ ॥ ३३ ॥

एदे सत्याण वेदण कमाय मारणतियसमुग्घादग्घा सव्वलोए, सुहुमपजत्ताण सव्व लोगएचेसु सभमादो । उग्घादो णत्थि, णिरुद्धोरालियकायजोगादो । विहारवदिसत्याणग्घा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागे, तमपजत्तरासिस्स सखेज्जदि भागस्स सचारो होदि चि गुरूग्घादो । अद्वाइज्जादो असखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घाद् गदा चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, अद्वाइज्जादो असखेज्जगुणे, ओरालियकायजोगो णिरुद्धे वेउव्वियकायजोगिसहग्घाद्वेउव्वियसमुग्घादस्स असभमादो ।

काययोगनाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघसयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥३२॥

शुक्रा—सासादनादि गुणस्थानप्रतिपन्न सर्वा जीवोंका एक योग क्यों नहीं किया ? अर्थात् पूर्वोक्त 'साक्षणसम्भादिद्विष्णुदुष्टि' इत्यादि सूत्रका और इस 'सजोगिकेवली ओघ' सूत्रका एक समास क्यों नहीं किया ?

ममाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें, 'सयोगिकेवली लोकके अस क्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते ह' इस प्रकारका विशेष कथन पाया जाता है इसलिये उक्त दोनों सूत्रोंका एक योग नहीं किया ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥३३॥

स्वस्थानस्थस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और भारणाभित्कसमुद्घातगत ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते ह, क्योंकि, सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव सर्व लोकघर्ती क्षेत्रोंमें सभव हैं । किन्तु उक्त जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, यहा पर औदारिककाययोगसे निरुद्ध जीवोंका क्षेत्र उताया जा रहा है । विहारवदिसवस्थान वाले औदारिककाययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, और तिरिपलोकके सख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, समस्त प्रसपर्यायरशिके सख्यातवें भागका ही सचाट (विदार) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है । उक्त औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अद्वाइद्दीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैश्रियिकसमुद्घातगत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और अद्वाइद्दीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका वर्णन करते समय वैश्रियिककाययोगी जीवोंके होनेचाला वैश्रियिकसमुद्घात असभव है ।

विशेषार्थ—इस उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि अज्ञेय ऊपर वैश्रियिकसमु

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्त असंखे-
ज्जदिभागे ॥ ३४ ॥

कथ सजोगिकेवली लोगस्त अमंसेज्जदिभागे ? ण एस दोसो, औरालियकाय-
जोगे णिरुद्धे औरालियमिस्स कम्मइयकायजोगसहगदकनाड-पदर-लोगपूरणाणमसंभवादो ।
सासणसम्मादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीणमुज्जादो णत्थि । पमचे आहारसमुग्घादो णत्थि । सेस
जाणिय वत्तव्व ।

औरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३५ ॥

द्वातको प्राप्त औदारिककाययोगी जीवोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असख्यातवा भाग बताया है,
तब शंका की जा सकती है कि वैकियिकशरीरवाले जीवोंके वैकियिकसमुद्घातका क्षेत्र तो
तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग बतलाया गया है, फिर यहा उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकका अख-
ख्यातवा भाग क्यों कहा ? इस आशंकाका समाधान करते हुए घबलाकार कहते हैं कि यहा
पर औदारिककाययोगका प्रकरण है, अतएव औदारिकशरीरवाले मनुष्य और तिर्यचोंके जो
वैकियिकसमुद्घात होता है, उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही हो सकता
है, अधिक नहीं । हा, वैकियिकशरीरवाले देवादिकोंके जो वैकियिकसमुद्घात होता है उसका
क्षेत्र अख्य तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु उसका यहा प्रकरण नहीं है,
क्योंकि, औदारिककाययोगका क्षेत्र-कथन करते समय वैकियिककाययोगिसहगत वैकियिक-
समुद्घातका क्षेत्र कहना असभव है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीव लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३४ ॥

शंका— सयोगिकेवली भगवार् लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं, इतना ही
क्यों कहा !

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका
वर्णन करते समय औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगके साथमें होनेवाले कपाट,
प्रतर और लोकपूरण समुद्घातोंका होना सम्भव नहीं है । इसलिय औदारिककाययोगी सयोगि
केवली लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि औदारिककाययोगी जीवोंके उपपादपद
नहीं होता है । प्रमत्तगुणस्थानमें आहाररुसमुद्घातपद भी नहीं है, क्योंकि, यहापर औदारिक-
काययोगियोंका क्षेत्र बताया जा रहा है । शेष गुणस्थानोंमें यथासभव पद जानकर कहना
चाहिए ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते
है ॥ ३५ ॥

सजोगिकेवली ओषं ॥ ३२ ॥

गुणपडिवण्णाणमेगजोगो किण्ण कदो ? ण, सजोगिग्ग्हि लोगस्स अससेज्जेसु भागेसु सच्चलोगे वा इदि विसेसुत्तलमादो ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइद्दी ओष ॥ ३३ ॥

एदे सत्थाण वेदण कमाय मारणतियसमुग्घादग्गदा सच्चलोए, सुहुमपज्जत्ताण सच्च लोगसेचेसु मभमादो । उत्तमादो णत्थि, णिरुद्धोरालियकायजोगादो । विहारवदिसत्थाणग्गदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागे, तमपज्जत्तरासिस्स सखेज्जदि भागस्म सचारो होदि चि गुरुत्तमादो । अट्टाइज्जादो अससेज्जगुणे । वेउच्चियसमुग्घाद गदा चट्टण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो अससेज्जगुणे, ओरालियकायजोगे णिरुद्धे वेउच्चियकायजोगिसहग्गदवेउच्चियसमुग्घादस्स असभमादो ।

काययोगराले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओषसयोगिकेवलिके क्षेत्रके समान है ॥३२॥

शुका—सासादनादि गुणस्थानप्रतिपक्ष सभी जीवोंका एक योग क्यों नहीं किया ? अर्थात् पूर्वोक्त 'सासणसम्मादिट्ठिण्हुदि' इत्यादि सूत्रका और इस 'सजोगिकेवली ओष' सूत्रका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें, 'सयोगिकेवली लोकके अस ख्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते हैं' इस प्रकारका विशेष कथन पाया जाता है, इसलिए उक्त दोनों सूत्रोंका एक योग नहीं किया ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओषके समान सर्व लोक है ॥३३॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और मारणातिकसमुद्घातगत ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव सर्व लोकवर्ती क्षेत्रोंमें सभ्य हैं । किन्तु उक्त जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, यहा पर औदारिककाययोगसे निरुद्ध जीवोंका क्षेत्र घटाया जा रहा है । विहारवत्स्वस्थान वाले औदारिककाययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, और तिर्यन्लोकके सख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, समस्त त्रसपर्यायराशिके सख्यातवें भागका ही संचार (विहार) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है । उक्त औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अट्टाइद्दीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातगत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और अट्टाइद्दीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका वर्णन करते समय वैक्रियिककाययोगी जीवोंके होनेवाला वैक्रियिकसमुद्घात असंभवे है ।

विशेषार्थ—इस उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि अभी ऊपर वैक्रियिकसमु

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेउली केवडि खेचे इदि। सासणसम्मादिट्ठी सत्थाण वेदण कमायसमुग्घादगदा चटुण्ह लोगाणमसखेज्जदि-
भागे अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणे । कुदो ? ओरालियमिस्सम्हि पलिदोउमस्स असखेज्जदि-
भागमेचसासणसम्मादिट्ठिरासिस्स सभन्नादो । एत्थ सेसपदाणि णत्थि, तेण तेसिं तत्थ
विरोधादो । असजदसम्मादिट्ठी सत्थाण वेदण कमायसमुग्घादगदा चटुण्ह लोगाणमसखे-
ज्जदिभागे माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे, सखेज्जपरिमाणादो । सामणसम्मादिट्ठि-असंजद-
सम्मादिट्ठीणमुग्घादो किमट्ठ ण उत्तो ? ण, ओरालियमिस्सम्हि ट्ठिदाणमोरालियमिस्सकाय-
जोगेसु उवनादाभावादो । अथवा उवनादो अत्थि, गुणेण सह अक्कमेण उपात्तभनसरीर-
पढमसमए उवलंभादो, पंचानत्थापदिस्सओरालियमिस्सजीवाणमभावादो च । सजोगि-

इसलिए सूत्रके अर्थका इसप्रकार सम्यग्ध होता है— औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादन-
सम्यग्दृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेउली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? स्वस्थानस्वस्थान,
वेदनासमुद्रात और कपायसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार
लोकोंके असख्यातवें भागमें और अढाईद्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि,
औदारिकमिश्रकाययोगमें पर्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी
राशिका पाया जाना संभव है। यद्वापर शेष विद्वारव-स्वस्थान आदि पद नहीं होते हैं,
क्योंकि, सासादन गुणस्थानके साथ उन पदोंका यद्वापर विरोध है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्रात और कपायसमुद्रातगत औदारिकमिश्रकाययोगी
असयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और मनुष्य-
क्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, ये सख्यात राशिप्रमाण होते हैं।

शुक्रा—औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके
उपपादपद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें स्थित जीवोंका पुनः औदा-
रिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपाद नहीं होता है। अथवा, उपपाद होता है, क्योंकि, सासादन
और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ अक्रमसे उपात्त भन शरीरके प्रथम समयमें उसका
सद्भाव पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कपाय-
समुद्रात, केलिसमुद्रात और उपपाद इन पांच अवस्थाओंके अतिरिक्त औदारिकमिश्रकाय-
योगी जीवोंका अभाव है।

विशेषार्थ—यद्वापर प्रथम तो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका औदारिकमिश्रकाय-
योगियोंमें उपपादका अभाव घतलाया गया। पुनः, अथवा करके औदारिकमिश्रकाययोगि-
योंमें उपपादका सद्भाव भी घतला दिया गया। ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध ही प्रतीत
होती हैं। किन्तु यथार्थत उनमें कोई विरोध नहीं है। भेद केवल कथन शैलीका
है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रथम जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका

वहसु कधमेगत्रयणणिहेसो ? ण एस दोसो, वहूर्णं पि जादीए एगत्तुवलमादो ।
अधत्ता मिच्छाद्वी इदि एसो वहूवयणणिहेसो चेत्त । कध पुण एत्थ विहत्ती गोपलम्भेदो ?
'आइ मज्झतप्पणसरलोपो' इदि विहत्तिलोमादो । सत्थाण पेदण कसाय मारणतिय उचपाद
गदा ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छाद्वी सत्तलोपो । विहारपदिसत्थाण-वेउच्चियसमुग्घादा
णत्थि, तेण तेसिं विरोहादो । ओरालियमिस्सस्स पेउच्चियादिपदेहि भेदसभमादो ओष
णिहेसो ण घड्ढे ? ण एम दोसो, एत्थ मिज्जमाणपदाण परूणणा ओघपरूणणाए तुल्लेचि
ओघत्तविरोधामादादो ।

सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडि सेत्ते,
लोगस्स अमंखेज्जदिभागे ॥ ३६ ॥

एत्थ पुच्चसुत्तादो ओरालियमिस्सकायजोगो अणुत्तुदे । तेणेत्त सत्तधो भन्दि-

शुक्रा—मिथ्यादृष्टियोंके बहुत होने पर भी यहा सूत्रमें एरु वचनका निर्देश कैसे
किया गया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि सत्याधी अपेक्षा बहुतसे भी जीवोंके
जातिकी विवक्षासे एकत्व पाया जाता है । अथवा, 'मिच्छाद्वी' यह पद बहुवचनका ही
निर्देश समझना चाहिए ।

शुक्रा—तो फिर यहा बहुवचनकी निभाकी क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान—'आदि, मध्य और अन्तके वर्ण और स्वरका लोप हो जाता है, ' इस
प्राकृत-याकरणके सूत्रानुसार बहुवचनकी विभक्तिका लोप हो गया है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, क्पायसमुद्घात, मारणात्तिकसमुद्घात और उपपाद
पदगत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सब लोकमें रहते हैं । यहापर विहारवत्स्व
स्थान ओर वैकियिकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगके साथ
इन दोनों पदोंका विरोध है ।

शुक्रा—औदारिकमिश्रकाययोगका वैकियिकसमुद्घात आदि पदोंके साथ भेद पाया
पाया जाता है, अतएव सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहा औदारिकमिश्रकाययोगमें विद्यमान
स्वस्थान आदि पदोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिए ओघपना विरोधको प्राप्त
नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और सयोगि-
केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३६ ॥

इस सूत्रमें पूव सूत्रसे 'औदारिकमिश्रकाययोग' इस पदकी अनुवृत्ति होती है ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेउली केउडि खेत्ते इदि । सासणसम्मादिट्ठी सत्याण-वेदण क्कपायसमुग्घादग्घा च्चदुण्ह लोगाणमसंखेज्जदि-भागे अट्ठइज्जदो अमसंखेज्जगुणे । कुदो ? ओरालियमिस्सभिह पलिदोउमसस असखेज्जदि-भागमेत्तसासणसम्मादिट्ठिरासिस्स सभ्भदादो । एत्थ सेमपदाणि णत्थि, तेण तेसि तत्थ विरोधादो । असजदसम्माइट्ठी सत्याण वेदण क्कपायसमुग्घादग्घा च्चदुण्ह लोगाणमसंखे-ज्जदिभागे माणुमसेत्तस संखेज्जदिभागे, संखेज्जदिपरिमाणादो । सासणसम्मादिट्ठि-असजद-सम्मादिट्ठीणमुत्तादो किमट्ठ ण उत्तो ? ण, ओरालियमिस्सभिह ट्ठिदाणमोरालियमिस्सकाय-जोगेसु उववादाभावादो । अधवा उववादो अत्थि, गुणेण सह अक्कमेण उपात्तभनसरीर-पढमसमए उउलंभादो, पंचानत्थानदिरिक्कओरालियमिस्सजीवाणमभावादो च । सजोगि-

इसलिए सूत्रके अर्थका इसप्रकार सम्य ध होता है— औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादन सम्यग्दृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेउली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और क्कपायसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और अट्ठइज्जोपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें पत्त्योपमके जसत्यातवें भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी राशिका पाया जाना संभव है । यहापर शेष विद्धारवत्स्वस्थान आदि पद नहीं होते हैं, क्योंकि, सासादन गुणस्थानके साथ उन पदोंका यद्वापर विरोध है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और क्कपायसमुद्घातगत औदारिकमिश्रकाययोगी असयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असत्यातवें भागमें और मनुष्य-क्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, वे सख्यात राशिप्रमाण होते हैं ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि ओर असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें स्थित जीवोंका पुन. औदा-रिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपाद नहीं होता है । अथवा, उपपाद होता है, क्योंकि, सासादन और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ अरुमसे उपात्त भन शरीरके प्रथम समयमें उसका सद्भाव पाया जाता है । दूसरी बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, क्कपाय-समुद्घात, केवलिसमुद्घात और उपपाद इन पाच अस्थानोंके अतिरिक्त औदारिकमिश्रकाय-योगी जीवोंका अभाव है ।

विशेषार्थ—यद्वापर प्रथम तो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका औदारिकमिश्रकाय-योगियोंमें उपपादका अभाव बतलाया गया । पुन, अथवा करके औदारिकमिश्रकाययोगि-योंमें उपपादका सद्भाव भी बतला दिया गया । ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध ही प्रतीत होती हैं । किन्तु यथार्थत उनमें कोई विरोध नहीं है । भेद केउल कवन शैलीका है । जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रथम जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका

केरली कनाडगदो तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाज्जादो असखेज्जगुणे ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥ ३७ ॥

एदस्सत्त्वो- सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदण-रुमाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा मिच्छादिट्ठी तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाज्जादो

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका अभाव घतलाया, उसका अभिप्राय यह है कि औदारिकमिश्रकाययोग तिर्यच और मनुष्योंकी अपयीत दशामें ही होता है । और, अर्थात्तदशको प्राप्त सासादनसम्यग्दष्टि या अस्यतसम्यग्दष्टि जीव मरणको प्राप्त नहीं होता है, जिससे कि वह पुन औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दष्टि या अस्यतसम्यग्दष्टि तिर्यच या मनुष्योंमें उत्पन्न हो सके । अतएव उसमें सासादनसम्यग्दष्टि और अस्यतसम्यग्दष्टि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके उपपादका अभाव घतलाना सर्वथा युक्तिसंगत ही है । पुन, अथवा करके जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उनके उपपादका सद्भाव घतलाया गया, उसका अभिप्राय यह है कि पूर्वमवस्था शरीरको छोडकर उत्तरमवस्थाके प्रथम समयमें मरनेके उपपाद कहा गया है । वह उपपाद उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होता है, अतएव यदि कोई औदारिकमिश्रकाययोगी या वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दष्टि या अस्यतसम्यग्दष्टि जीव मरकर मनुष्य तिर्यचोंमें उत्पन्न होता है, तो उसके उपात्तिके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगका सद्भाव पाया जायगा । इसीलिए कहा गया है कि सासादनसम्यग्दष्टि या अस्यतसम्यग्दष्टि गुणस्थानके साथ युगपत् धारण किये गये आत्मा भी भवसम्बन्धी शरीरके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगियोंके उपपादका सद्भाव पाया जाता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त दोनों कथनोंमें कोई पारस्परिक विरोध नहीं है, भेद केवल कथन शैली व विप्रश्नाका ही है ।

कपाटसमुदातगत औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यलोकके सख्यातवें भागमें और अद्वैतद्वीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात और वैक्रियिकसमुदातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यलोकके सख्यातवें भागमें और अद्वैतद्वीपसे

असखेज्जगुणे, पहाणीकयजोइसियरासिचादो । मारणतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगणम-
सखेज्जदिभागे, णर तिरियलोगेहिंतो असखेज्जगुणे । एत्थ औत्तड्डिय दड्ढच्च । सासणादि-
परूपणा ओघपरूपणाए तुल्ला, णवरि सच्चत्थ उच्चरादो णत्थि ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असं-
जदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३८ ॥

एटस्मत्तो- वेउव्वियमिस्सकायजोगी मिच्छादिट्ठी सत्थाण पेदण कसायसमुग्घाद-
गदा तिण्हं लोगणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागे अट्ठाइज्जादो असखेज्ज
गुणे । सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी सत्थाण पेदण कसायसमुग्घादगदा चट्ठण्ह
लोगणमसखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणे ।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि
खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहा वैक्रियिककाययोगके प्रकरणमें ज्योतिष्क
देवराशिनी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्धातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों
लोकोंमें असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर अपघर्तना स्वयं जान लेना चाहिए । सासादन
सम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्थानवर्ती वैक्रियिककाययोगी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंकी
क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है । विशेषता केवल यह है कि इन सभी गुणस्थानोंमें
उपपादपद नहीं होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और अगम्यतसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते
हैं ॥ ३८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, घेदनासमुद्धात और कपायसमुद्धातगत वैक्रि-
यिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें,
तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें और अट्ठाईपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थान,
घेदनासमुद्धात और कपायसमुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और अट्ठाईपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं ।

आहारकाययोगियोंमें और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसयत गुणस्थानवर्ती
जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्व-
लोगे वा ॥ ४२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एष जोगमार्गणा समाप्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडिं जाव अणि-
यट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४३ ॥

एदस्स अत्थो— सत्याणसत्याण-निहारवदिसत्याण-वेदण कसंय वेउत्त्रियसमुत्थाद-
गदा इत्थिवेदमिच्छाइट्ठी तिण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,
अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणे, पहाणीरुददेवित्थिवेदरासितादा । मारणात्थिय-उत्तमादगदा तिण्ह
लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्ठणा देवोघतुल्ला ।
सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघमगो । णवरि असजदसम्मादिट्ठिम्हि उववादो
णत्थिय । पमत्तसजदे ण होंति तेजाहारा । सत्याणसत्याण निहारवदिसत्याण वेदण कमाय-

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यात बहु भागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अनिवृत्तिगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें और अट्ठाईतीससे अस्-
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहापर देवगतिस्मग्धी स्त्रीवेदराशिकी प्रधानता है ।
मारणात्तिकसमुद्घात और उपपादगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे
क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर अपघतता देवोंके ओघक्षेत्रके समान है । सासाधनस्मग्घादि
गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतकके स्त्रीवेदी जीवोंका क्षेत्र ओघके
समान लोकका असंख्यातवा भाग है । विशेष यात यह है कि असंघतसंघ
दृष्टि गुणस्थानमें स्त्रीवेदियोंके उपपादपद नहीं होता है । तथा प्रमत्तसयत गुणस्थानमें

एदस्म अत्थो— सत्थाण विहारवदिसत्थाणपरिणदपमत्तसजदा चदुण्ह लोगाणम सखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स सखेज्जदिभागे । मारणतिपसमुग्घादगदा चदुण्ह लोगाणम सखेज्जदिभागे, अद्वाइज्जादो अमखेज्जगुणे । सेसपदाणि णत्थि । आहारमिस्सकाय जोगिणो पमत्तसजदा सत्थाणगदा चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुमखेत्तस्स सखे ज्जदिभागे ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघ ॥ ४० ॥

सत्थाण वेदण रुमाय उववादगदा कम्मइयकायजोगिमिच्छादिट्ठिणो, जेण सव्वत्थ सव्वद्ध होंति, तेण सव्वलोगे युत्ता ।

सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्माइट्ठी ओघ ॥ ४१ ॥

एदे दो वि रासीओ जेण चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, अद्वाइज्जादो असखेज्ज गुणे खेत्ते अच्छति, तेण सुत्ते ओघमिदि युत्त ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान जोर विहारघरस्वस्थान इन दोनों पदोंसे परिणत आहारकाययोगी प्रमत्तसयत सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिरुसमुद्घातगत आहारकाय योगी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और अद्वाइट्ठीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । आहारकाययोगी प्रमत्तसयतके उक्त तीन पदोंके सिवाय शेष सात पद नहीं होते हैं । स्वस्थानगत आहारकामिथकाययोगी प्रमत्तसयत सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं ।

कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघमिथ्यादृष्टिके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४० ॥

स्वस्थान, वेदान्तमुद्घात, कपायसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त कर्मण काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव चूकि सर्वत्र सर्वकालमें पाये जाते हैं, इसलिए वे सर्वलोकमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त कर्मणकाययोगी राशिया चूकि सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असख्यातवें भागमें और अद्वाइट्ठीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहती हैं, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है ।

परि पमचे तेजाहारपदं णत्थि ।

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४५ ॥

एदस्स अत्थो— चटुण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुमसेत्तस्म ससेज्जदिभागे
सत्थाणत्था अच्छति । मारणंतियसमुत्तादगदा उपसामगा चटुण्ह लोगाणमसंखेज्जदि-
भागे, अट्टाइज्जादो अससेज्जगुणे अच्छति ति वुत्त होदि ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ४६ ॥

पुञ्च परुविदत्थमिदं सुत्तमिदि एत्थ एदस्स अत्थो ण वुत्तवेदे ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु
मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४७ ॥

चटुऋमाइमिच्छाइट्ठिणो सत्थाणसत्थाण वेदण ऋमाय-भागंतिय-उत्तादगदा ओघ-

विशेष बात यह है कि प्रमत्तसयत गुणस्थानमें नपुंसकवेदियोंके तैजससमुद्घात और
आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असरयातयें भागमें रहते हैं ॥ ४५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानपदगत अपगतवेदी जीव सामान्यलोक आदि
चार लोकोंके असत्थातयें भागमें और मानुषक्षेत्रके सत्थातयें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-
समुद्घातको प्राप्त उपशामक जीव सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असत्थातयें भागमें जोर
अट्टाइट्ठीपसे असत्थातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ४६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए यहाँ पर इसका अर्थ पुन नहीं
कहा जाता है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कपायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधरूपायी, मानरूपायी, मायारूपायी और लोभ-
रूपायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद

घेउचित्रयसमुग्धादगदा पुरिमवेद मिच्छादिद्वी तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरिय लोगस्म सखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणे खेचे अञ्जति । मारणतिय उत्रवाद गदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, णर तिरियलोगोहिंते असखेज्जगुणे । सासणसम्मादिद्वि प्पहुडि जाव अणियद्वि उत्रसामग सत्रगा ति ओघमगो ।

णवुसयवेदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अणियद्वि ति ओघं ॥४४॥

सत्याणसत्याण वेदण कपाय मारणतिय-उत्रवादगदणवुसयवेदमिच्छादिद्वी सत्र लोए । विहारवदिसत्याण घेउचित्रयसमुग्धादगदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरिय लोगस्म सखेज्जदिभागे । णवरि घेउचित्रयसमुग्धादगदा तिरियलोगस्म अमखेज्जदिभागे । अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणे खेचे जेण अञ्जति तेण ओघमिदि घडदे । सासणसम्मा दिद्विप्पहुडि जाव अणियद्वी ति एदेसिं पि परूणणा ओघतुल्ला ति ओघमिदि वुत्त ।

तेजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, घेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और धैत्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें और अट्टाइजीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणांतिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, नरलोक और तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ४४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, घेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सर्वे लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्वस्थान और धैत्रियिकसमुद्घातगत ये ही जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष बात यह है कि धैत्रियिकसमुद्घात गत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं । तथा उक्त दोनों पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव, चूँकि अट्टाइजीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिए सूत्रमें कहा गया 'ओघ' यह पद घटित हो जाता है । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भी इन नपुंसकवेदी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा ओघप्रर्णित क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, इससे भी सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है ।

गहकरणा । एदेण दव्व पज्जपट्टियणयपज्जायपरिणदजीनाणुग्गहकारिणो जिणा इदि जानानिद । सत्थाणसत्थान निहारदिसत्थान पेदेण कमाय पेउब्बिय-मारणंतिय-उत्तादगद-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिणो चटुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, अट्ठुइज्जादो असखेज्ज-गुणे ख्वेत्ते अचंठंति । ' लोगस्स असखेज्जदिभागे ' इदि सुत्ते वुत्त, तेण माणुसखेत्तस्स वि असखेज्जदिभागे एदेहि होदव्व, लोगत्त पडि विसेसाभानादो ? ण एस दोसो । होदि एस दोसो, जदि पज्जपट्टियमस्सिदूण एस लोगसदो ट्ठिदो । किंतु दव्वट्टियणयमलंजिऊण ट्ठिदत्तादो सव्वलोगसमूहस्स अरुडस्स वाचगो, तेण ' लोगस्स असखेज्जदिभागे ' इदि सुत्तपयण ण निरुज्जदे । जदि ए, तो पज्जपट्टियणयमलंजिऊण ट्ठिदपक्खाणपयण सुत्तेण असरद्ध होदि त्ति ? ण, विसेसपदिरित्तजादीए अभावादो । विसेसालिंगिदसामण्ण-लोगो जेण सुत्तम्मि वुत्तो तेण लोगस्स अयवभूदचत्तारि लोगे अस्सिदूग ज वक्खाण तण्ण सुत्तविरुज्जमिदि । ए, सम्मामिच्छाइट्ठीण । णपरि मारणंतिय उत्तादपदं णत्थि ।

नयी शिष्योंका अनुग्रह कर ही दिया गया है ।

इस विवेचनसे यह बात बतलाई गई कि जिन भगवाय् द्रव्याधिक और पर्यायार्थक, इन दोनों नयस्वरूप पर्यायोंसे परिणत जीवोंके अनुग्रह करनेवाले होते हैं ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, वेक्रियिक-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपाय, इन पदोंको प्राप्त चारों कपायवाले सासादन-सभ्यगृष्टि और असयतसभ्यगृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके अन्वयातर्वे भागमें और अडार्द्रीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुद्धा—'लोकके असख्यातर्वे भागमें' इतना ही पद सूत्रमें कहा है, इसलिये 'मानुषक्षेत्रके भी असख्यातर्वे भागमें रहते हैं' ऐसा अर्थ होना चाहिए, क्योंकि, लोकत्वकी अपेक्षा सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और मनुष्यलोक, इन पाचों ही लोकोंमें विशेषताका अभाव है, अर्थात् समानता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है । यह दोष होता, यदि केवल पर्यायार्थिकनयका ही आश्रय लेकर यह लोकाशब्द स्थित होता । किन्तु यह लोकाशब्द द्रव्याधिकनयका अलम्बन करके स्थित है, अतएव अखंड सर्वलोकके समूहका वाचक है, इसलिये 'लोकके असख्यातर्वे भागमें' इस प्रकारका यह सूत्र बचन त्रिरूपको प्राप्त नहीं होता है ।

शुद्धा—यदि ऐसा है, तो पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित व्याख्यान वचन सूत्रके साथ असंबद्ध होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेषसे व्यतिरिक्त जातिका उभाय पाया जाता है । चूकि, विशेषसे आलिंगित सामान्यलोक सूत्रमें कहा है, इसलिये लोकके अवयवभूत ऊर्ध्वलोक आदि चार लोकोंका आश्रय करके जो व्याख्यान किया गया है, वह सूत्रसे निरुद्ध नहीं है, अपि तु सख्य है ।

मिच्छादिद्वीहि सत्थाणसत्थाण त्रेदण कसाय मारणतिय उववाद्गदेहि सव्वलोगग्ग्हि अच्छणेण अणुहरति । विहारवदिसत्थाण वेउव्वियसमुग्घाद्गदा नि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागे, अद्दाइज्जादो असखेज्जगुणे खेत्ते अच्छण पडि अणुहरति । तदो चदुक्कसायमिच्छादिद्विणो दव्वद्वियणएण ओघत्तमुत्तमते ।

सासणमम्मादिद्विप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४८ ॥

एत्थ सुत्ते ओघमिदि किण्ण वुत्त ? ण एम दोसो, दव्वद्वियणयावलवणाभावादो । सो नि किमिदि णात्तलविदो ? पज्जवद्वियसिस्साणुग्गहट्ट । जदि एव, तो दव्वद्वियसिस्सा अणुणुग्गहिदा होंति ? ण, पुव्वुत्तसुत्तेण मिच्छादिद्विप्पद्विद्वेण दव्वद्वियसिस्साणमणु

पद्गत चारों क पायवाले मिथ्यादृष्टि जीव, स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायममुद्घात, मारणान्तकसमुद्घात और उपपाद पद्गत ओघमिथ्यादृष्टियोंके साथ सर्व लोकमें अस्वस्थानके द्वारा अनुकरण करते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैकल्पिकसमुद्घातगत चारों कपायवाले मिथ्यादृष्टि जाव भी सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सरयातवें भागमें और अट्टाईद्वीपमें असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान और वैकल्पिकसमुद्घातगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका अनुकरण करते हैं, इसलिए चारों कपायवाले मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्याधिकनयनी अपेक्षा ओघक्षेत्रताको प्राप्त होते हैं ।

सासादनसम्पग्गदृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तरु प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चारों कपायवाले जीव कितने क्षेत्रम रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

शुक्रा—इस सूत्रमें 'लोकके असख्यातवें भागमें' इतनेके स्थानपर 'ओघ' इतना ही पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहापर द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन नहीं किया गया है ।

शुक्रा—उस द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पर्यायार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए यहा द्रव्यार्थिकनयका ग्रहण नहा किया गया ।

शुक्रा—यदि ऐसा है, तो द्रव्यार्थिकनयी शिष्य इस सूत्रसे अनुग्रहीत नहीं किये गये हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रसे प्रतिबद्ध पूर्वोक्त सूत्रसे द्रव्यार्थिक

१ कपायसुत्तादन ओघमानमायाकपायाण लोमकपायाणा च मिथ्यादृष्टयापनिवृत्तिपादान्तानां ×
सामायात्त क्षेत्रम् । स वि १ ८

कसाओ अरुसाओ ? ण, भाउरुमायाभाउ पेक्खिदूण तस्स वि अकमायत्तसिद्धीदो । बहु-
 चीहिस्समासं कादूण 'अरुमाएसु' ति णिद्देसो ऋण्ण कदो ? ण, पज्जयपडिसेधे कदे रुमाय-
 विरहिदयभादीण पि अरुमायत्तप्पसगादो । दव्वपडिसेहे कदे सो दोसो ण पावदे, एदेण
 णाएण ओसारिदपसज्जपडिसेहत्तादो । कस्स णयस्म एस वंवारो ? सहट्ठसंबंधस्स
 णिच्चत्तमिञ्जत्तसङ्गयस्स । 'अउगदोदएसु' ति दव्वणिद्देसो वि एवं चेउ वक्खणे-
 दव्वो । सेस सुगम ।

एउ कसायमगणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिद्धी
 ओघं ॥ ५१ ॥

एसा णिद्धारणे सत्तमी, मदि-सुदअण्णाणीण मिच्छादिद्धिउदिरित्ताणं सासणाणं पि

पाय केसे कहा ?

समाधान—नहीं क्योंकि, यहापर भावकपायके अभाउकी विवक्षासे उपशान्तकपाय
 गुणस्थानके भी अरुपायपनेकी सिद्धि हो जाती है ।

शंका—'नहीं हैं कपाय जिनके' ऐसा बहुव्रीहि समास करके 'अकपायोंमें' इस
 प्रकारका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्यायके प्रतिषेध कर देनेपर कपायसे विरहित स्तभ्मा-
 दिनोंके भी अन्यथा अकपायताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । किन्तु, द्रव्यके प्रतिषेध करनेपर
 यह अतिप्रसंग दोष नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इसी ज्ञापक (न्याय) के द्वारा आप हूए
 दोषप्रसंगका प्रतिषेध कर दिया गया ।

शंका—यह उक्त व्यवहार किस नयका है ?

समाधान—शब्द और अर्थके वाच्यवाचकसम्बन्धको नित्य माननेवाले शब्दनयका
 यह व्यवहार है ।

वेदमार्गणाके अन्तमें दिये हुए (न ४५ वें) सूत्रके 'अपगतवेदियोंमें' इस पदके
 द्रयनिर्देशका भी इसी प्रकारसे व्याख्यान करना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्पज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र
 ओघके समान सर्वलोक है ॥ ५१ ॥

यहा पर 'मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें' यह सप्तमी विभक्ति निर्दोषणके अर्थमें
 है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे व्यतिरिक्त सासादनगुणस्थानवर्ती भी मत्यज्ञानी और

एव सजदासजदाणं । णवरि उत्रादपदं णत्थि । सेमगुणद्वाणाणि चदुण्हं लोमाणमसरे
ज्जदिभागे, माणुससेत्तस्म ससेज्जदिभागे । णवरि मारणत्थियममुग्घादयदा माणुससेत्तादो
अससेज्जगुणे हात्ति ।

लोभकमायप्रिसेसपदुप्पायणद्वमुत्तरसुत्त भणदि—

णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुममांपराइयसुद्धिमंजदा उवसमा
खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४९ ॥

एदस्स सुत्तस्म अत्थो सुगमो ।

अकसाईसु चदुट्टाणमोघं ॥ ५० ॥

एत्थ द्वाणसदो गुणद्वाणवाचगो, 'अयत्तेषु प्रवृत्ताः शब्दाः समुदायेष्वपि वर्तन्ते'
इति न्यायात् । यथा सत्यभामा भामा, बलदेवो देवः, भीमसेनः सेन इति । कथमुत्तमत्

इसीप्रकारसे चारों कपायवाले सभ्यगिभथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र जानना चाहिए । विशेष
बात यह है कि यहापर मारणान्तिक्समुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । इसी
प्रकार चारों कपायवाले सयतासयतोंका क्षेत्र होता है । विशेषता यह है कि इनके उपपाद
पद नहीं है । शेष गुणस्थानवर्ता चारों कपायवाले जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके
जसख्यातवें भागमें वार मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेषता यह है कि
मारणातिकसमुद्धातगत चारों कपायवाले सयत जीव मानुषक्षेत्रसे जसख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं ।

अब लोभकपायकी विशेषता बतलानेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि लोभकपायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसयत उपशमक
और अपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके जसख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तरूपाय आदि चारों गुणस्थानोंका क्षेत्र ओघ क्षेत्रके
समान है ॥ ५० ॥

यहापर 'स्थान' शब्द गुणस्थानका वाचक है, क्योंकि, 'अवयवोंमें प्रवृत्त हुए
शब्द समुदायोंमें भी रहते हैं' ऐसा न्याय है । जैसे 'भामा' कहनेसे सत्यभामा, 'देव'
कहनेसे बलदेव और 'सेन' कहनेसे भीमसेनका ज्ञान होता है, इसी प्रकार यहाँ भा 'स्थान'
शब्दसे गुणस्थानका बोध होता है ।

शुद्धा—जहा कपायोंका उपशमन ही है, ऐसे उपशान्तरूपाय गुणस्थानको अक

१ × × सूक्ष्मसाम्परायणी सामा यान् क्षत्रम् । स सि १, ८

२ × × अकपायानां च सामायोर क्षत्रम् । स सि १, ८

समुग्घादग्घा एव चेत्त । णत्तरि त्तिरियलोगादो असखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । उप्पादपदं
णत्थि । मामणसम्मादिद्वी सव्वेहि पि पदेहि च्चटुण्ह लोणाणमसखेज्जदिभागे, अट्ठाड्जादो
असखेज्जगुणे । एत्थ पि उववादो णत्थि ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव
खीणकसायवीदरागच्छदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागे ॥ ५४ ॥

एद सुत्त वुत्तत्थमिदि पुणो ण एदस्स अत्थो वुत्तदे ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
च्छदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५५ ॥

समाधान—चूंकि, यहापर पर्याप्त देवराशिकी प्रधानता है, इसलिए स्वस्थानादि
पदोंको प्राप्त वे देव तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं ।

मारणातिकसमुद्गतगत विभग्नानियोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है । विशेषता
केवल इतनी कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विभग-
नानो मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, पर्याप्तावस्थामें ही विभग-
नान उत्पन्न होता है) । विभगनानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानादि सभी समव
पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असख्यातवें भागमें और अट्टाईद्वीपसे
असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर भी उपपाद पद नहीं है । (कारण भी उपयुक्त ही
समझना चाहिए) ।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अग्रधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्था-
नसे लेकर क्षीणकपायवीतरागद्वयस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह दिया गया है, इसलिए पुन इसका अर्थ नहीं कहते हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तमंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागद्वयस्थ
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५५ ॥

१ आभिनिबोधिकश्रुत अधिज्ञानिनामसयत्तसम्यग्दृष्टयादानां क्षाणकपायात्तानां ××× सामान्योक्त
क्षेत्रम् । स वि १, ८

२ ××× मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकपायान्तानां ×× सामान्योक्त क्षेत्रम् । स वि १, ८

सभवादो । सेस पुच पदुप्पादिदिमिदि पुचुत्तद्वापवारिदसिस्साणुरोहेण ण वुच्चदे ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ५२ ॥

एत्थ पुचसुत्तादो मदि सुदअण्णाणीसु त्ति अणुत्तद्वे ? कथं णिच्चेयणस्म एण सुद्धणो महस्म अण्णिद्धरूपेण अणुत्ती ? ण एस दोसो, एदस्म सुत्तस्स अणयभारेण द्विदअण्णसदस्म पुचसहेण समाणत्तमवेत्तिअय सो चेत्त एसो इदि पच्चयहिण्णाण पच्चयणिमिन्तस्म अणुत्तिपिरोहाभावादो । सेसो गदट्ठो ।

विभंगण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी केवडि सेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥ ५३ ॥

एदस्सत्थो— विभंगण्णाणी मिच्छादिट्ठी सन्थाणसत्थाण विहारदिसत्थाण वेपण क्कमाय वेउत्तियसमुग्घादग्घा तिण्ह लोगणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स सखेज्जदि भागे, जट्ठाज्जजादो असखेज्जगुणे । कुदो एद ? पहाणीरुदपज्जत्तेवरासित्तादो । मारणतिय

श्रुताज्ञानी पाये जाते हैं । शेष व्याख्यान पहले कर जाए हैं, अत पूर्वोक्त अर्थके अवधारण करनेवाले शिष्योंके अनुरोधसे पुन नहीं कहते हैं ।

सासादनसम्यग्दष्टि गुणस्थानरती मत्पज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र ओघ सासादनसम्यग्दष्टिके समान लोकरू असत्प्रातर भाग है ॥ ५२ ॥

यहा पर पूर्वसूत्रसे ' मति श्रुताज्ञानियोंमें ' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है ।

शुक्रा — अचेतन और क्षण क्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस सूत्रके अत्रयधरूपसे स्थित अन्य शब्दकी पूर्व शब्दके साथ समानता देखकर ' यह वही है ' इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानकी प्रतीतिके निमित्तभूत शब्दकी अनुवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शेष सूत्रका अर्थ पहले किया जा चुका है ।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादष्टि और सासादनसम्यग्दष्टि गुणस्थानरती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकरू असत्प्रातर भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात्त, क्कपायसमुदात्त और वैत्थियिक्कसमुदात्तको प्राप्त विभंगण्णाणी मिथ्यादष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असत्प्रातर भागमें, तिर्यग्लोकके सत्प्रातर भागमें और अट्टाईद्वीपसे असत्प्रातरगुण क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुक्रा — स्वस्थानादि पदगत विभंगण्णाणी मिथ्यादष्टि तिर्यग्लोकके सत्प्रातर भागमें और मनुष्यलोकसे असत्प्रातरगुण क्षेत्रमें क्यों रहते हैं ?

ओघपमत्तादिरासीदो सामाह्य-छेदोपट्टाणसुद्धिसंजदपमत्तादओ समाणा ति एदेसिं परूवणा ओघ भवदि । ण च सामाह्य छेदोपट्टाणसुद्धिसंजदेहिंतो पुधभावभूदा परिहार-सुद्धिसंजदा अत्थि, जेण तदो भेदो होज्ज । किमिदि पुधभूदा णत्थि ? दुणयवंदिरिच-छदुमत्थजीवाभावादो । सेस सुगम ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे' ॥ ६१ ॥

एदस्म पि सुत्तस्स अत्थो पुञ्चं परुत्तिदो ति सपहि ण वुत्तदे । णपरि पमत्त-सजदे तेजाहार णत्थि ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा सवगा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे' ॥ ६२ ॥

ओघमें कही गई प्रमत्तसयतादिराशिसे सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसयमवाले प्रमत्तसयतादिक समान हैं, इसलिए इनके क्षेत्रों प्ररूपणा ओघांत क्षेत्रके समान बन जाती है । और, सामायिक तथा छेदोपरथापनाशुद्धिसयतासे परिहारविशुद्धिसयत पृथग्भावरूप हैं नहीं, जिससे कि उनसे उनका भेद हो जाय ।

शंका—परिहारविशुद्धिसयत, सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसयतासे पृथग्भूत क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंसे भिन्न छद्मस्थ जीवोंका अभाव है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

परिहारविशुद्धिसयतामें प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अमख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६१ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए अब नहीं कहते हैं । विशेष बात यह है कि प्रमत्तसयत गुणस्थानवर्ती परिहारविशुद्धिसयतके तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसयतामें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६२ ॥

१ प्रविशु 'दुणय' इति पाठः

२ × × × परिहारविशुद्धिसयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां × × × सामायिक क्षेत्रम् । स सि १, ८.

३ × × × सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसयतानां × × × सामायिक क्षेत्रम् । स सि. १, ८.

एतत् किमद्वं द्वाष्टियणयदेसणा कीरदे ? ण, सजमसामण्णे पहाणीकदे ओघ पडि विसेसाभावादो । पज्जवाट्टियणयपरूणणा एतत् जाणिय वत्तन्ना ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ५९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, रेत्त पडि सेसगुणट्टाणेहिंतो सजोगिस्स विसेसेवल् भादो । जदि एव, तो सेसगुणट्टाणाण पि णाणाविहमेयभिण्णाण पुध पुध सुत्तकरण पावेदि चि चे ण, तेसिं पहाणीकयत्तेजणिदनिसेसाभावादो । एतत् सेसा पज्जवाट्टियणय परूणणा सव्वा वत्तन्ना ।

सामाह्य च्छेदोपस्थापणसुद्धिसजदेसु पमत्तसजदप्पहुडि जाव आणि यट्ठि ति ओघं ॥ ६० ॥

शका—इस सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयकी देशना किस लिए जा रही है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, समयसामान्यके प्रधान करनेपर ओघक्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा समयमार्गणाके अनुवादसे क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है ।

यहापर पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा जान करके करना चाहिए ।

सयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातमें भागमें, लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ५९ ॥

शका—इन दोनों सूत्रोंका एक समान क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें विशेषता पाई जाती है ।

शका—यदि ऐसा है, तो नाना प्रकारके भेदोंसे भिन्नताको प्राप्त शेष गुणस्थानोंके भी पृथक् पृथक् सूत्रोंकी रचना प्राप्त होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शेष गुणस्थानोंकी पृथक् पृथक् प्रधानता करनेपर भी क्षेत्रजनित विशेषताका अभाव है, इसलिए पृथक् पृथक् सूत्र रचनाका प्रसंग नहीं प्राप्त होता है ।

यहापर सभी गुणस्थानसम्बन्धी शेष सब पर्यायार्थिकनयकी क्षेत्रप्ररूपणा कहना चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसयतोंमें प्रमत्तसयत्त गुणस्थानसे लेकर अनि पृथक्करण गुणस्थान तरु प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसयत्त ओघके समान लोकके असंख्यातमें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

ओघपरूणा गुणट्टाणाणमभेदेण भेदेण च जा कदा, मा अत्थोघ-आदेशोघेहिं दुमिघा होदि । आदेशोघो णि गुणट्टाणभेदेण चोदसनिहो होदि । एत्थ ओघमिदि वुत्ते कदमस्स ओघस्स गहणं ? आदेशोघस्स अवयवभूदमिच्छादिट्टीणमोघस्स । कधमेद लब्भदे ? पच्चासचीदो । अण्णेहि वि ओघेहि सह कथचि पच्चासची अत्थि त्ति भणित्ते ण, अण्णेहि सह मिच्छादिट्टीहि जेम पयसिमेण पच्चासचीए अभावादो । एदमत्थपद सब्वत्थ जोजेयव्व । असजदच्चदुगुणट्टाणाणमेगजोगो किण्ण कदो ? ण, मिच्छादिट्टीण सेसगुणट्टाणेहि सह सेत्तेण पयसिपच्चासचीए अभावादो ।

सासणसम्मादिट्टी सम्मामिच्छादिट्टी असंजदसम्मादिट्टी ओघं

॥ ६६ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्टाणाणं चदुण्ह लोमाणमसंखेज्जदिमागत्तणेण माणुससेचादो असखेज्जगुणत्तणेण पच्चासची अत्थि त्ति एगजोगो कदो ।

एव सजममगणा समत्ता ।

शुक्रा—ओघपरूपणा गुणस्थानोंके अभेदसे ओर भेदसे जो की गई है, वह अर्थ-ओघ और आदेश ओघके भेदसे दो प्रकारकी होती है । आदेश ओघ भी गुणस्थानोंके भेदसे चौदह प्रकारका होता है । सो यहा 'ओघ' ऐसा सामान्यपद कहनेपर किस ओघका ग्रहण किया गया है ?

समाधान—आदेश ओघके अवयवभूत मिथ्यादृष्टियोंके ओघका ग्रहण किया गया है ।

शुक्रा—यह अर्थ कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—प्रत्यासत्तित्ते, अर्थात् सामीप्यसे, आदेश ओघका ग्रहण किया गया है, यह जाना जाता है ।

शुक्रा—प्रत्यासत्ति तो कथंचित् अन्य भी ओघोंके साथ हो सकती है ?

समाधान—ऐसी शक्यापर उत्तर देते हैं कि नहीं, क्योंकि, अन्य ओघोंके साथ मिथ्यादृष्टियोंके समान प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

यह अर्थपद सर्वत्र लगाना चाहिए ।

शुक्रा—असयत चारों गुणस्थानोंका एक योग (समास) क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंकी शेष सासदनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतम प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

असयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिव्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोक्रके असंख्यातों भागमें रहते हैं ॥ ६६ ॥

इन सूत्रोंके तीनों ही गुणस्थानोंका सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागके साथ और मातुवक्षेत्रसे असख्यातगुणे क्षेत्रके साथ प्रत्यासत्ति पारि जाती है, इसलिये उक्त तीनों गुणस्थानोंका एक योग इस सूत्रमें किया गया है ।

इस प्रकार सयममार्गणा समास हुई ।

सुहृमसापराइयसुद्धिसजदेसु त्ति आधारणिहेसो । तत्थ सुहृमसापराइयसुद्धिसनदा
दुविधा हँति उवसामगा खवगा चेदि । ते अप्पणो पदेसु वट्टमाणा चटुण्ह लोगणम
सखेज्जदिभागे, माणुमखेत्तस्स सखेज्जदिभागे हँति । णवरि मारणतियपदे माणुस
सेचादो असखेज्जगुणे हँति ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्टाणमोघं ॥ ६३ ॥

एत्थ ट्टाणसहो पुच्चुत्तणाएण गुणट्टाणवाची । चटुण्ह टाणाण समाहरो चटुट्टाणी,
सा ओघं होदि । उवसतकसाय रीणकसाय सजोगि अजोगिजिणाणं जहाक्खादविहारसुद्धि
संजदाण अप्पणो ओघपरूणण होदि त्ति जं वुत्त होदि ।

सजदासजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥ ६४ ॥

एदस्स अत्थो पुव्व परूढो ।

असजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६५ ॥

'सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसयतोंमें' इस पदसे आधारका निदर्श क्रिया गया । इस
गुणस्थानमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसयत दो प्रकारके होते हैं, उपशामक और क्षपक । वे
दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिकसयत अपने यथासमय पदोंमें रहते हुए सामान्यलोक
आदि चार लोकोंके असख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष
यात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घातपदमें उपशामक जीव मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसयतोंमें उपशान्तकपाय गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेनली
गुणस्थान तक चारों गुणस्थानवाले सयतोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

इस सूत्रमें आया हुआ 'स्थान' शब्द पूवाक्त न्यायसे गुणस्थानका धाचक है । चार
गुणस्थानोंके समुदायको 'चतु स्थानी' कहते हैं । उनका क्षेत्र ओघके समान है । अर्थात्,
उपशान्तकपाय, क्षीणकपाय, सयोगिजिन और अयोगिजिन गुणस्थानतीनों यथाख्यातविहार
विशुद्धिसयतोंका क्षेत्र अपने ओघक्षेत्रके समान होता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना
चाहिए ।

सयतासयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

असयतोंमें मिच्छादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

१ × × × यथापरायविहारशुद्धिसयतानां चटुण्णां × × सामा योत्त क्षेत्रम् । स ति १, ८

२ × × × सयतासयतानां × × सामा यान्त क्षेत्रम् । स ति १, ८

३ × × असयतानां च चटुण्णां सामा योत्त क्षेत्रम् । स ति १, ८

पीचदियलद्विअपज्जत्ताण चवरुदंसण णत्थि, तत्थ चवरुदंसणोअओगसमुप्पत्तीए अणिणा-
भापिचवरुदंसणकरुओअसमाभावादो । सेसगुणट्टाणाणं पज्जत्तद्वियपरूणणा जाणिय वत्तन्वा ।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६८ ॥

सुगममेद सुत्त ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागच्छदुमत्था त्ति
ओघं ॥ ६९ ॥

एदेसिमणतरदोसुत्ताणमेगत्तं किण्ण कद ? ण, मिच्छादिट्ठीहि सेसगुणट्टाणाण
पच्चासत्तीए अभावादो ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ७० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ७१ ॥

है । हा, चतुरिन्द्रिय ओर पचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन नहीं होता है, क्योंकि,
उतमें चक्षुदर्शनोपयोगकी समुपत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनावरणकर्मके क्षयोपशमका
अभाव है ।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानोंकी पर्यायार्थिकनयसम्य धी
प्रम्पणा जान करके कहना चाहिये ।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपायत्रीतरागउद्वस्य गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीव ओघके समान लोकके असरयातवें भागमें
रहते हैं ॥ ६९ ॥

शंका—इन अनन्तरोक्त दोनों सूत्रोंका एकत्र क्यों नहीं किया, अर्थात् एक सूत्र
क्यों नहीं बनाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवोंके साथ शेष गुणस्थान
वर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान लोकका असरयातवा
भाग है ॥ ७० ॥

केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान लोकका असरयातवा भाग,
लोकका असरयात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ७१ ॥

१ अचक्षुदर्शनिना मिथ्यादृष्ट्यादिज्ञानरूपायाताना सामायात् क्षेत्रम् । स सि १, ८.

२ अवधिदर्शनिनामधिज्ञानिवत् । स सि १, ८

३ केवलदर्शनिना केवलज्ञानिवत् । स सि १, ८

दसणाणुवादेण चस्सुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण-
कसायवीदरागच्छुदुमत्था केवडि सेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥६७॥

सत्याणसत्याण विहारउदिसत्याण वेयण कमाय वेउवियसमुग्वादगदा चस्सु
दसणी मिच्छादिट्ठि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो
असखेज्जगुणे । एत्थ ओउट्टणा जाणिय कादव्वा । एउ मारणतियसमुग्वादगदा । णवरि
तिरियलोगादो असखेज्जगुणे त्ति वत्तव्व । एउ चेउ उववाद्गदाण पि वत्तव्व । अपज्जत्त
काले चस्सुदसणाभावादो उतरादो णत्थि त्ति णासकणिज्ज, अपज्जत्तकाले वि सओउसम
पहुच्च चस्सुदसणुत्तलभादो । जडि एउ, तो लद्धिअपज्जत्ताण पि चस्सुदसणित्त पसज्जदं ।
त च णत्थि, चस्सुदसणिअउहारकालस्स पदरगुलस्स अमखेज्जदिभागमेत्तपमाण
प्पसगादो ? ण एस दोसो, णिव्वत्तिअपज्जत्ताण चस्सुदसणमत्थि, उत्तरकाले णिच्छएण
चस्सुदसणोउजोगसमुप्पत्तीए अणिगाभाविचस्सुदमणसओउसमदसणादो । चउरिदिंय

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण
कषायतीतरागउद्वस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानती जीव कृतिने क्षेत्रमें रहते हैं ?
लोकके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान विहारवस्त्यस्थान वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिक
समुद्धातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें
तिरियलोकके सख्यातवें भागमें और अट्ठाईठिपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहने ह । यहापर
अपवर्तना जानकर करना चाहिए । इसी प्रकार मारणात्तिकसमुद्धातगत चक्षुदर्शनियोंका
क्षेत्र है । विशेष गत यह है कि मारणात्तिकसमुद्धातगत चक्षुदर्शनी जीव तियलोकसे अस-
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपपादगत चक्षुदर्शनियोंका
भी क्षेत्र कहना चाहिए । अपर्याप्तकालमें चक्षुदर्शनका अभाव होनेसे यहापर उपपादपद
नहीं है, ऐसी आशका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी क्षयोपशमकी
अपेक्षा चक्षुदर्शन पाया जाता है ।

शुका—यदि ऐसा है, तो लक्ष्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनीपनेका प्रसंग प्राप्त
होता है । किंतु लक्ष्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता नहीं है । यदि लक्ष्यपर्याप्त जीवोंके
भी चक्षुदर्शनका सद्भाव माना जायगा, तो चक्षुदर्शनी जीवोंके अवहारकालको प्रतरागुलके
असख्यातवें भागमात्र प्रमाणपनेका प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता
है, इसका कारण यह है कि उत्तरकालमें, अर्थात् अपर्याप्तकाल समाप्त होनेके पश्चात्
निश्चयसे चक्षुदर्शनीपरयोगकी समुत्पत्तिना अधिनाभावी चक्षुदर्शनका क्षयोपशम देखा जाता

सरिमचुपलमादो मिद्धमोषत्त । निमेमदो पुण मारणतिय उववाद्दगदा किण्हणील काउ-
लेस्सियअसज्जदसम्मादिट्ठिणो सखेज्जा नि होदूण माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणे खेत्ते-
अच्छति, असखेज्जजोयणायामत्तादो ।

तेउलेस्सिय पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा
केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥ ७४ ॥

तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारउदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउविय-
समुग्घाद्दगदा तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स मखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो
असखेज्जगुणे अच्छति । मारणतियममुग्घाद्दगदा एउ चेउ । णपरि तिरियलोगादो असखे-
ज्जगुणे त्ति उअव्व । एउ चेउ उउपाद्दगदाण । एत्थ ओउट्ठण ठपिज्जमाणे सुधम्मरासिं
ठविय अप्पणो उउक्कमणकालेण पलिदोउमस्स असखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण
त्तधुव्वज्जमाणजीवा होंति । पुणो अउरमेग पलिदोउमस्स असखेज्जदिभाग भागहार-
सरूवेण ट्ठुविदे रज्जुआयामेण उउपाद्दगदरासी होदि । पुणो सखेज्जपदरगुलमेउरज्जुहि

क्षेत्रमें रहनेसे सदृशता पाई जाती है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना सिद्ध हुआ । किन्तु विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुदात और उपपाद् पद्गत रूपण, नील और कापोत-
लेश्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि सख्यात होकरके भी मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते
हैं, क्योंकि, उनके मारणान्तिकसमुदात और उपपाद् पद्गत दृढ़का आयाम असख्यात
योजन पाया जाता है ।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
अमरयातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात और वैकि-
थियस्समुदातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके अस-
ख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें और उढाईछीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते
हैं । मारणान्तिकसमुदातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार है ।
विशेष बात यह कहना चाहिए कि ये तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी
प्रकार उपपाद् पद्गत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए । यद्वापर
अपवर्तनाके स्थापित करते समय सोवर्मकल्पनी जीवराशिको स्थापित कर पत्थोपमके
असख्यातवें भागप्रमाण अपने उपक्रमणकालसे भाग देनेपर एक समयमें उनमें उत्पन्न
होनेवाले जीव होते हैं । पुन एक दूसरा पत्थोपमका असख्यातया भाग भागहारस्वरूपसे
स्थापित कर एक राजप्रमाण अयामवाली उपपाद्पद्को प्राप्त जीवराशिका प्रमाण होता

एदाणि दो वि सुचाणि सुगमाणि त्ति पज्जपट्टियपरूवणा ण कीरदे ।

एव दसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय णील्लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा
दिट्ठी ओघं ॥ ७२ ॥

सत्थाणसत्थाण वेदण कसाय मारणतिय उववादपदेहि सच्चलोगच्छणेण, विहारवादि
सत्थाण वेउच्चियपदेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स ससेज्जदिभागे,
अड्डाइज्जादो अससेज्जगुणे खेत्ते अच्छणेण च सरिसत्तमत्थि त्ति ओघमिदि भणिंदे ।
णपरि वेउच्चियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स अससेज्जदिभागे ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं
॥ ७३ ॥

चदुण्ह लोगाणमससेज्जदिभागत्तणेण माणुसस्सेत्तादो अससेज्जगुणत्तणेण च

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुरादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले
जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्लोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

रघस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, वषायसमुद्घात, मारणातिकसमुद्घात और उपपात
इन पदोंकी अपेक्षा सर्घलोकमें रहनेसे, विहारघटस्वस्थान और वैभ्रियिकपदकी अपेक्षा
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें और
अदाइशीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा तीनों अशुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि
जीवोंके क्षेत्रके सदृशता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा । विशेष बात यह है कि
वैभ्रियिकसमुद्घातगत तीनों अशुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असख्यात
भागमें रहते हैं ।

तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असत्पद
सम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असत्प्रातवें भागमें रहते हैं ॥ ७३ ॥

तीनों अशुभलेश्यावाले उक्त तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके स्वसमय पदोंकी अपेक्षा
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असत्प्रातवें भागमें रहनेसे और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगु

मिच्छादिद्विष्पह्नुडि सव्यगुणद्वानेषु मारुणंतिय उत्रादपदेसु जीवा सपेजा चेर ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ७६ ॥

एद सुत्त सुगम । जधा कसायमग्गणाए अरुमाइया जुत्ता, तथा एत्थ लेस्सि-
मग्गणाए अलेस्सिया ऋण्ण बुत्ता त्ति भणिदे बुच्चदे- जत्थ दव्वं पहाणीभूदं, तत्थ
भणिद होदि । जत्थ पुण पज्जरो पहाणो, तत्थ ण होदि । लेस्सामग्गणा पुण पज्जयपहाणा
एत्थ रुदा, तेण अलेस्सिया ण परूविदा ।

एव लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिणसु मिच्छादिद्विष्पह्नुडि जाव अजोगि-
केवली ओघं ॥ ७७ ॥

एदं सुत्त सव्वं पि मूलोघादो अत्रिसिद्धिमिदि मूलोघपज्जमद्वियपरूणं लमदे ।

कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तरु शेष सभी गुणस्थानोंमें मार-
णान्तिकसमुदात्त और उपपाद, इन दोनों पदोंमें शुक्लेश्यामाले जीव सख्यात ही होते हैं ।

शुक्लेश्यामाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शंका—जिस प्रकार कपायमार्गणामें अकपायी जीवोंका क्षेत्र बतलाया गया, उसी
प्रकार यहा लेश्यामार्गणामें अलेश्य जीवोंका क्षेत्र क्यों नहीं कहा ?

समाधान—प्रेमी आशंका करने पर कहते हैं—जिस मार्गणामें द्रव्य प्रधानतासे
प्रहण किया गया है, उस मार्गणामें तो प्रतिपक्षी 'अकपायी' आदिका क्षेत्र आदि कहा गया
है । किन्तु जिस मार्गणामें पर्याय प्रधान है, उस मार्गणामें प्रतिपक्षी 'अलेश्य' आदिका
क्षेत्र निरूपण नहीं किया गया है । यहा पर लेश्यामार्गणा पर्यायप्रधान कही गई है,
इसलिए अलेश्य जीवोंका क्षेत्र नहीं कहा गया है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिकेवली गुणस्थान तरु प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान
है ॥ ७७ ॥

यह सम्पूर्ण ही सूत्र मूल ओघसे जविशिष्ट है, इसलिए मूल ओघ पर्यायार्थिकनयकी
प्ररूपणाको प्राप्त होता है, अर्थात्, भव्यजीवोंका क्षेत्र ओघमें कहे गये क्षेत्रके समान ही है ।

१ सयोगिकेवलीमलेश्यानां च साभावोक्त क्षेत्रम् । स सि १, ८

२ मय्याणुवादेन मय्यानां चतुदशानां साग योक्त क्षेत्रम् । स सि १ ८

गुणिदे उववादरेच होदि । ओवद्वणा जाणिय कायचा । तेउलेस्सियगुणपडिवण्णां
 ओघभगो । पम्मलेस्सियमिच्छादिद्वी सत्थाणसत्थाण विहारदिसत्थाण वेदण कसायममु
 ग्घादग्गदा तिण्ह लोमाणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो
 असखेज्जगुणे अच्छति, पद्दाणीभूदतिरिस्परामिचादो । वेउविय मारणतिय उग्गदाग्गदा
 चदुण्ह लोमाणमसखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणे, पद्दाणीरुदसणक्कुमार माहिंद
 रासीदो । सासणादिगुणपडिवण्णाण अप्पमत्तसज्जदाण ओघभगो ।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग -
 छदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥ ७५ ॥

सुक्कलेस्सियमिच्छाद्विणो जेण पलिदोयमस्म असखेज्जदिभागमेचा, तेण सत्थाण
 सत्थाण विहारदिसत्थाण वेदण रुमाय वेउविय मारणतिय-उग्गदाग्गदा चदुण्ह लोगा-
 णमसखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणे । सेसगुणद्वानाणमोघभगो । णवरी

है । पुनः सख्यात प्रतरागुलप्रमाण राजुओंसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता
 है । यहापर अपरर्तना जान करके करना चाहिए । गुणस्थानप्रतिपन्न तेजोलेख्याले जीवोंका
 क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारतस्वस्थान, वेदनासमुद्दात और क्पायसमुद्दातगत पद्द
 लेख्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातयें भागमें, तिरियलोकके
 सख्यातयें भागमें और अट्टाईदीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहापर तिरिय
 राशिकी प्रधानता है । वैकियिकसमुद्दात, मारणातिकसमुद्दात और उपपादपदको प्राप्त पद्द
 लेख्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असख्यातयें भागमें और
 अट्टाईदीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहापर सानत्कुमार माहेन्द्र देवराशिकी
 प्रधानता है । सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंसे लेकर अप्रमत्तसयत
 गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पद्दलेख्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ।

शुक्कलेख्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपायतीतरागछद्दस्य
 गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्कलेख्यावाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
 असख्यातयें भागमें रहते हैं ॥ ७५ ॥

चूँकि, शुक्कलेख्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव पर्योपमके असख्यातयें भागप्रमाण हैं, इस-
 लिए वे स्वस्थानस्वस्थान, विहारतस्वस्थान, वेदनासमुद्दात, क्पायसमुद्दात, वैकियिकसमु-
 द्दात, मारणातिकसमुद्दात और उपपादपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके
 असख्यातयें भागमें और अट्टाईदीपसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि
 आदि शेष गुणस्थानवर्ती शुक्कलेख्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । विशेष बात यह है

तसेसु पलिदोमस्म असखेज्जदिभागमेत्ता सादियरधगा वासपुधत्तरेण तसद्धिदीए पलिदोमस्म असखेज्जदिभागमेत्तुत्तकम्मणकालुलमादो । एइंदिएसु सच्चिदअणत्तादिय-
वधगेहितो पदरस्स असखेज्जदिभागमेत्ता सादियरधगा तसेसु ऋण्ण उप्पज्जति ? ण,
सव्वगुण मग्गणट्ठणेसु आयाणुमारि-उओउलमादो । जेण एइंदिएसु आओ सखेज्जो, तेण
तेसि वएण वि तत्तिएण चेत्त होदव्व । तदो सिद्ध सादियवधगा पलिदोमस्स असखे-
ज्जदिभागमेत्ता चि ।

एत्त मप्रियमग्गणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्भादिद्धि खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्भादिद्धि-
प्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ७९ ॥

दव्वरद्धियपरूपण पडि त्रिसेसो णत्थि चि ओघमिदि वुत्त । पज्जवद्धियपरूपणाए
त्रि णत्थि क्रोड त्रिसेसो । णत्थि खइयसम्मादिट्ठीसु सजदासजदाण मणुत्तपज्जत्तसजदा-

समाधान — युक्तिसे ।

शुका— वह युक्ति कौनसी है ?

समाधान— वह युक्ति इस प्रकार है— प्रसजीवोंमें पर्योपमके असंख्यातयें
भागमात्र सादिरधक जीव होते हैं, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे प्रनकायकी स्थितिका
पर्योपमके असंख्यातयें भागमात्र उपक्रमणकाल पाया जाता है ।

शुका— एकेंद्रिय जीवोंमें सचयको प्राप्त अनन्त सादिरधकोंमेंसे जगप्रतरके असं-
ख्यातयें भागप्रमाण सादिरधक जीव प्रसजीवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सभी गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें आयके अनुसार
ही व्यय पाया जाता है । चूँकि, एकेंद्रियोंमें आयका प्रमाण सख्यात ही है, इसलिए उनका
व्यय भी उतना अर्थात् सख्यात ही होना चाहिए । इसलिए सिद्ध हुआ कि प्रसराशिमें
सादिरधक जीव पर्योपमके असंख्यातयें भागमात्र ही होते हैं ।

इस प्रकार भयमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असं-
यतमध्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोमिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

द्रव्यार्थिकनयके प्ररूपणकी अपेक्षा सूत्र प्रतिपादित जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता
नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है । पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें भी कोई
विशेषता नहीं है । केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सयतःसयत गुणस्थानवर्ती जीवोंके मनुष्य-

१ सम्यक्त्वानुवादने क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्टयापयोगेत्वेत्य तानां X X X तानां योक्त क्षेत्रम् ।
स. सि. १, ८

अभवसिद्धिएसु मिच्छादिद्वी केवडि खेत्ते, सब्वलोए' ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण कमाय मारणातिथ उत्रवादगदा अभवसिद्धिया सब्वलोगे । निहाररदिसत्थाण वेउग्गियपदद्विदा चट्ठण्ह लीगाणममसेज्जदिभागे, अट्ठाडज्जादो अस खेज्जगुणे । कुदो ? तसरासिमस्सिदूण वृत्तवप्पानहुगमुत्तादो णज्जदे । त जधा-सव्वत्थोना धुववधगा । सादियवधगा अमसेज्जगुणा । जणादियवधगा अमसेज्जगुणा । अद्दुववधगा निसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? धुववधगेणूणसादियवधगमेत्तेण । तसेसु पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागमेत्ता चेव अभवसिद्धिया होति । त्ति एद कुदो णज्जदे ? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागमेत्तासादियवधगेहोत्तो असखेज्जगुणहीणचण्णाणुत्तदी । सादियवधगा पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागमेत्ता त्ति कुदो णज्जदे ? जुत्तीदो । का जुत्ती ? उच्चदे-

अभव्यसिद्धिक जीवामे मिच्छादिणि जीव कितने क्षेत्रमें रहते है ? सर्व लोकेमें रहते है ॥ ७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात्त, कपायसमुदात्त, मारणान्तिकसमुदात्त त ओर उप पाद पदको प्राप्त अभवसिद्धिक जीव सर्व लोकेमें रहते है । विहारवत्स्वस्थान ओर वैक्रियिक पदस्थित अभवसिद्धिक जीव सामा यलोक आदि चार लोकोंके असत्प्रातर्वे भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असत्प्रातर्गुणे क्षेत्रमें रहते है ।

शुका—यह कमे जाना कि विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुदात्तगत अभव्यजीव सामा-यलोक आदि चार लोकोंके असत्प्रातर्वे भागमें और मनुष्यलोकसे असत्प्रातर्गुणे क्षेत्रमें रहते है ?

समाधान—असराशिका आश्रय करके कहे गये वधसम्बन्धी अल्पबहुत्वानुयोग द्वारके सूत्रोंसे यह जाना जाता है । यह इस प्रकार है—'धुववधक सबसे कम है । धुव वधकोंसे सादिवधक असत्प्रातर्गुणे है । सादिवधकोंसे अनादिवधक असत्प्रातर्गुणे है । अनादिवधकोंसे अधुववधक विशेष अधिक है । कितने मात्र विशेषसे अधिक है ? धुव वधकोंसे हीन सादिवधकोंकी राशिके प्रमाणसे अधिक है ।

शुका—असर्वाश्रयोंमें पत्योपमके असत्प्रातर्वे भागमात्र ही अभवसिद्धिक जीव होते है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—पत्योपमके असत्प्रातर्वे भागमात्र सादिवधकोंसे धुववधकोंसे असत्प्रातर्गुणहीनता अथवा घन नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि असराशिकेमें अभवसिद्धिक जीव पत्योपमके असत्प्रातर्वे भागमात्र ही होते है ।

शुका—सादिवध करनेवाले जीव पत्योपमके असत्प्रातर्वे भागमात्र होते है, यह कैसे जाना ?

सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदण कसाय वेउव्वियसमुग्घादग्घा असंजद-
सम्माइट्ठी चटुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागे, माणुसखेचादो असखेज्जगुणे अच्छति । मारण-
तिय उत्रवादपदेसु एसो चेव आलापो । णरि तेसु पदेसु' द्विदजीना संखेज्जा चेव होति,
उवसमसेट्ठीदो ओदरिय उत्रसममम्मत्तेण सह अमजम पडिउण्णजीवाणं सखेज्जत्तुपलमादो ।
सेसउत्रसमसम्मादिट्ठीणि किण्ण मरणमत्थि त्ति बुत्ते समाउदो । एउ संजदासज्जदाणं पिं ।
णरि उत्रवादपद णरिय । सेमाणमोघ । णरि पमत्तसजदस्स उत्रसममम्मत्तेण तेजा-
हार णत्थि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ८३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८४ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघ ॥ ८५ ॥

स्वस्थानस्त्रस्थान, विहारवत्स्त्रस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-
समुद्घातको प्राप्त असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि
चार लोकोंके असख्यातत्रै भागमें और मानुसक्षेत्रसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणा
न्तिकसमुद्घात और उपवाद इन दोनों पदोंमें भी यही उक्त क्षेत्र आलाप जानना चाहिए ।
विशेष बात यह है कि उन दोनों पदोंमें वर्तमान जीव सख्यात ही होते हैं, क्योंकि, उपशम-
श्रेणिले उतर कर उपशमसम्यक्त्वके साथ असयमभावको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी सख्या
सख्यात ही पाई जाती है ।

शुद्धा—उपशमश्रेणीसे उतर कर मरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त
शेष अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण क्यों नहीं होता है ?

समाधान—स्वभावसे ही नहीं होता है ।

इसी प्रकारसे सयतासयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी जानना
चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके उपवादपद नहीं होता है । शेष गुणस्थानवर्ती
उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र औत्र वणित क्षेत्रके समान है । विशेषता केवल इतनी है कि
प्रमत्तसयतके उपशमसम्यक्त्वके साथ तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८५ ॥

१ प्रवियु 'पदेसेसु' इति पाठ ।

२ प्रवियु 'दि' इति पाठ ।

३ × × × सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च सामा योक्त क्षेत्रम् । स ति १, ८

सजदपरूपाणा कादच्चा । असजदसम्मादिट्ठी नि मारणतिय उपादपदेसु वट्टमाणा सखेज्जा ।
सेस सुगम ।

सजोगिकेवली ओघ ॥ ८० ॥

पुग्गिल्लेहि सह खेत्त पडि पयसिसेग पन्नासत्तीण जमानादो पृथ सुत्तारंभो ।
सेस सुगम ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसजदा
केवडि खेत्ते, लोगस्स असवेज्जदिभागे ॥ ८१ ॥

एत्थ ओघपज्जपट्ठियपरूपाणा गिरजयना सच्चगुणट्ठाणेसु परूदेव्वा, विसेसा
मानादो ।

उवसममम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय
वीदरागछट्टुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असवेज्जदिभागे ॥ ८२ ॥

पयाप्त सयतासयतोमं सभय पदोंकी अपेक्षा ही क्षेत्रपरूपाणा करना चाहिये । मारणातिक
समुदात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षाधिकसम्य
ग्दृष्टि जीव सख्यात ही होते हैं । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

सजोगिकेवली भगवान्का क्षेत्र ओघ कथित क्षेत्रके समान है ॥ ८० ॥

सजोगिकेवली गुणस्थानकी पुर्यवर्ती गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकृततासे
प्रत्यासत्तिका अभाव है इसलिए यह पृथक् सूत्र बनाया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकरके अस
ख्यातों भागमें रहते हैं ॥ ८१ ॥

यहापर ओघमें कहीं गई पर्यायाधिकनयसम्यग्धी क्षेत्रपरूपाणा सम्पूर्ण पदोंकी
अपेक्षा सर्व गुणस्थानोंमें प्ररूपण करना चाहिये क्योंकि, उससे इसमें कोर विशेषता
नहीं है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय
वीदरागछट्टुस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? लोकरके असख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्टयायमत्तानां ××× सामा योत क्षयम । इ ति १, ८

२ औपशमिकसम्यग् धानामसयतसम्यग्दृष्टगुणस्थानतकषायानां ×× सामा योत क्षयम । इ ति १, ८

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सञ्चपदेहि ओघपरूपणादो विसेतो णत्थि त्ति ओघत्तं जुज्जेद ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८९ ॥

एदस्स सुत्तस्स पञ्जवट्ठियपरूपणा ओघपरूपणाए तुल्ला । णवरि उवादादो सरीरगहिदपढमसमए वत्तन्वो । सजोगिकेवलिस्स वि पदर-लोगपूरणसमुग्घादा वि णत्थि, आहारिचाभावादो ।

अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

द्ववट्ठियपरूपणाए ओघं होदि । पञ्जवट्ठियपरूपणाए पुण उववादपदमेक्कं चेव अत्थि । सेस णत्थि । सेसं सुगमं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोके है ॥ ८८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्वस्थान आदि सभी पदोंके साथ क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणासे विशेषता नहीं है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना बन जाता है ।

सासादनसम्बन्धेष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सजी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

इस सूत्रकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके समान है । विशेष बात यह है कि आहारक जीवोंके उपपादपद शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें कहना चाहिए, (क्योंकि, तभी जीव आहारक होता है) । आहारक सयोगिकेवलीके भी प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, क्योंकि, इन दोनों अवस्थाओंमें केवलीके आहारकपनेका अभाव है, अर्थात्-प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातकी अवस्थामें सयोगिकेवली-भगवान् अनाहारक रहते हैं ।

अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ९० ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणासे अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाकी अपेक्षा तो एक उपपादपद ही होता है । शेष पद नहीं होते हैं, (क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थानादि शेष सभी पद असम्भवं हैं) । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

१ आहाराणुवादेण आहारकाणा निष्पादृष्ट्यादिकीणकर्मोपादानां समाप्तोक्त क्षेत्रम् । सयोगिकेवलीके ओघस्यासंख्येयमात्र । स वि १, ८

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति एदेसिं परुत्तणा ण कीरदे ।

एव सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव स्त्रीणकसाय
वीदरगळदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ॥ ८६ ॥

सत्थाणसत्थाण निहारउदिसत्थाण वेदण कसाय वेउच्चियसमुग्घादग्घा सण्णि
मिच्छादिद्वी तिण्ह लोगणमसखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादे
असखेज्जगुणे अच्छति । एवं मारणंतिय उवत्तादपदेसु वि वत्तव्व । णत्तरि तिरियलोगादे
असखेज्जगुणे इदि भाणिदव्व । सेसगुणट्टाणाणमोघमगो, तदेो निसेसाभावादेो ।

असण्णी केवडि खेत्ते, सब्वलोगे ॥ ८७ ॥

एदस्स सुत्तस्म जत्थो सुगमो ।

एव सण्णिमग्गणा समत्ता ।

ये उक्त तीनों ही सूत्र सुगम है, इसलिये उनको प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

सविमार्गणाके अनुवादमे सही जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे लेकर क्षीण
कपायवीतरागउद्वम्य गुणस्थान तरु प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सही जीव कितने क्षेत्रमें रहते
हैं ? लोकके असरयातर्व भागमें रहते हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वेन्नियिक
समुद्घात, इन पाच पदोंको प्राप्त सखी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असख्यातर्व भागमें, तिर्यग्लोकके सरयातर्व भागमें और अट्टाईद्वीपसे असरयातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं । इसीप्रकार मारणातिकसमुद्घात और उदपाद, इन दो पदोंमें वतमान सखी मिथ्या
दृष्टि जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए । केवल इतनी बात विशेष कहना चाहिए कि ये
तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनादि श्रेय गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र
ओष क्षेत्रके समान है, क्योंकि, ओषके क्षेत्रसे सासादनादि गुणस्थानोंके सखी जीवोंके क्षेत्रमें
कोई विशेषता नहीं है ।

असखी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार सविमार्गणा समाप्त हुई ।

फोसणाणुगभो

फोसणाणुगभो

सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते
लोगस्स असखेज्जदिभागे' ॥ ९१ ॥

पञ्जमद्वियणएण उरनादगदा सासणसम्मादिद्वी चदुण्हं लोगणममखेज्जदिभागे
अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणे अत्थिति । असंजदसम्मादिद्वीण पक्खणा एवं चेत्त । अनेत्ति
केरली चदुण्हं लोगणममखेज्जदिभागे, माणुमखेत्तस्स सखेज्जदिभागे ।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जेसु वा भागे
सव्वलोगे वा' ॥ ९२ ॥

पदरगदो सजोगिकेवली लोगस्स अमखेज्जेसु भागेसु वा होदि, लोगपेरत्ति
वादवलयवदिरित्तसयलसोगखेत्त ममावुरिय द्विदत्तादो । लोगपूरणे पुण सव्वलोगे म
सव्वलोगमावुरिय द्विदत्तादो ।

(एव आहारमग्गणा समत्ता)

एत्त खेत्ताणिओगद्दार समत्त' ।

अनाहारक सासादनसम्यग्दष्टि, असयत्तसम्यग्दष्टि और अयोगिकेवली
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९१ ॥

पर्यायाधिकनयस्सग्गधी क्षेत्रमरूपणाकी अपेक्षा उपपत्तिको प्राप्त अनाहारक सा
सम्यग्दष्टि जाव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अना
असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । अनाहारक असयत्तसम्यग्दष्टि जीवोंकी क्षेत्रमरूपणा म
प्रकार जानना चाहिए । अनाहारक अयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि चार
असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अ
बहुभागमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ९२ ॥

प्रतरसमुदातगत सयोगिकेवली जिन लोकके असंख्यात बहुभागमें र
पर्यायिके, वे लोकके चारों ओर स्थित वातवलय अतिरिक्त सकल लोकके क्षेत्रको स
करके स्थित होते हैं । पुन लोकपूरणसमुदातमें वे ही सयोगिकेवली जिन सर्व लोकमें
पर्यायिके, उस समय वे सर्व लोकको आपूरण करके स्थित होते हैं ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इम प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ अनाहारकाणि मित्थादिसासादनसम्यग्दष्टयसयत्तसम्यग्दष्टययोगिकेवल्लिना सामा योत्त क्षेत्रम् ।

२ सयोगिकवल्लिना लाहस्यासरययमाणा सव्वलोको वा । स मि १, ८

३ क्षत्रनिगय दृष्टः । स मि १, ८

फोसणाणुगभो



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदबलि पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय धवला टीका समण्णिदो

तस्स

पढमखडे जीवहाणे

फोसणाणुगमो

णामिऊणेलाइरिए तिहुवणभवणेक्कमगलप्पईये ।

कलिकलुसफुसणवसणे सुत्त फोसासियं वोच्छ ॥

पौसणाणुगमेण दुविहो णिइेसो, ओघेण आदेसेण य' ॥ १ ॥

णामफोसण ठवणफोसणं दब्बफोसणं खेत्तफोसणं कालफोसणं भावफोसणं चेदि
छव्विह फोसणं । तत्थ णामफोसणं फोसणसहो । एमो दब्बट्टियस्स-णिकसेवो; धुवचेण

त्रिभुवनरूपी भवनके प्रकाशित करनेके लिए अद्वितीय मंगलप्रदीप, और कलि-
कालकी कल्पताके समार्जनके लिए वल्लभस्वरूप श्री एलाचार्यको नमस्कार करके स्पर्शनानु-
गमाश्रित सूत्रोंके अर्थको कहता हूँ ॥

स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश ॥ १ ॥

नामस्पर्शन, स्वापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन कालस्पर्शन और भावस्पर्शनके
भेदसे स्पर्शन छह प्रकारका है । उनमें 'स्पर्शन' यह शब्द नामस्पर्शन निक्षेप है । यह
निक्षेप द्रव्याधिकनयका विषय है, क्योंकि, ध्रुवपतेके विना घाघ्य-वाचकमायरूप सभ्यन्थ

त्रिणा वाचिय वाचयभानाणुपचीदो । मौयमिदि बुद्धीए अण्णदव्वेण अण्णदव्वस्त एयत्त करणं ठवणफोसणं णाम । जहा, घट्ट पिठरादिसु एमो उसहो अजीवो अहिणदणो चि । एसो त्ति दव्वट्टियस्स णिकरोत्तो, दोण्हमेयत्त धुत्तेहि त्रिणा ठवणापत्तुचीए अमभनादो । आगम णोआगमभेदेण दुविह दव्वफोमण । तत्थ फोसणपाहुडजाणगो अणुपजुत्तो सओव सममहिओ आगमदो दव्वफोमणं णाम । णोआगमदव्वफोसण जाणुगसरीर भविय तच्चदि रिचदव्वफोसणभेएण तिविह । तत्थ जाणुगसरीरदव्वफोसण भविय उट्टमाण समुज्जाद भेएण तिविह । कधमेदस्स तिनिहमरीरस्स फोसणवपदेसो ? फोमणपाहुडसहचारादो । जहा, असिसहचरिदो असी, धणुसहचरिदो धणुहमिदि । भवियदव्वफोसण भविस्सकाले फोमणपाहुडजाणओ । कधमेदस्स दव्वफोमणवपएसो ? पुव्वुत्तरानत्थाण दव्वेण एगत्तादो । जहा, इददुमाणिदरुडुस्स इदो चि पादेसो । तत्पदिनिचदव्वफोसण सच्चित्त अचिच

नहीं बन सकता है। 'यह वधा है' इस प्रकारकी बुझिसे अन्य द्रव्यके साथ अन्य द्रव्यका एकत्व स्थापित करना स्थापना निक्षेप है। जैसे, घट्ट, पिठर (गात्रविशेष) आदिकमें 'यह कल्पम है, यह अजीव है, यह अभिनन्दन है' इत्यादि। यह स्थापनानिक्षेप भी द्रव्यार्थक नयका विषय है, क्योंकि, दो पदार्थोंकी एकता और धुचताके बिना स्थापनानिक्षेपका प्रवृत्ति असंभव है। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यस्पर्शननिक्षेप दो प्रकारका है। उनमें स्पर्शनत्रिययक शाररका शायर, किन्तु वर्तमानमें अनुपयोगी और क्षयोपशमसहित जीव भागमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप है। नोआगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप शायकशरीर, भय और तद्घति रिचद्रव्यस्पर्शनके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें शायकशरीर द्रव्यस्पर्शन भावी, वर्तमान और समुज्जित (त्यक्त) के भेदसे तीन प्रकारका है।

शका—इस तीन प्रकारके शरीरको 'स्पर्शन' यह व्यपदेश (सन्ना) कैसे प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—स्पर्शनप्राप्तके साहचर्यसे उक्त तीन प्रकारके शरीरको भी स्पर्शनसन्ना प्राप्त हो जाती है। जैसे, अलि (तट्टमार) से सहचरित पुरुषको अलि और धनुषसे सहचरित पुरुषको धनुष सन्ना प्राप्त हो जाती है।

भविष्यकालमें स्पर्शनविषयक शास्त्रके शायकको भव्यद्रव्यस्पर्शन कहते हैं।

शका—इस मयशरीरघालेके 'द्रव्यस्पर्शन' यह सन्ना कैसे है ?

समाधान—विश्रित द्रव्यकी पूर्ण अवस्था और उत्तर अवस्थाका उक्त द्रव्यके साथ एकत्व पाया जाता है। जैसे, इद्र बनानेके लिये लाए गए काष्ठकी 'इद्र' यह सन्ना देखी जाती है।

मिस्सयभेदेण तिपिह । मचित्ताणं दव्वाण जो संजोओ सो सचित्तदव्वफोसण । अचित्ताणं दव्वाण जो अण्णोण्णेण सजोओ सो अचित्तदव्वफोसण । मिस्सयदव्वफोसण छण्ह दव्वाणं संजोएण एगूणसद्धिभेयभिण्ण । सेसदव्वाणमागामेण सह सजोओ खेत्तफोसणं । अमुत्तेण आगामेण सह सेसदव्वाण मुत्ताणममुत्ताणं वा कथं पोसो ? ण एस दोमो, अउगेज्जाव-

तद्व्यतिरिक्तद्रव्यस्पर्शनं सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । जो सचित्त द्रव्योंका सयोग होता है, वह सचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है । अचित्त द्रव्योंका जो परस्परमें सयोग होता है, वह अचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है । मिश्रद्रव्यस्पर्शन चेतन-अचेतनस्वरूप छहों द्रव्योंके सयोगसे उनसठ भेदवाला होता है ।

निशेषार्थ— किसी विवक्षित राशिके द्विसयोगी, त्रिसयोगी आदि भग निकालनेके लिए विवक्षित राशिप्रमाणसे लेकर एक एक कम करते हुए एकके अक तक अक स्थापित करना चाहिए । पुन दूसरी पक्तिमें उनके नीचे एकसे लेकर विवक्षित राशि तक अक लिखना चाहिए । पहली पक्तिके अकोंको अश या भाज्य और दूसरी पक्तिके अकोंको हार या भागहार कहते ह । यहा पहले भाज्योंके साथ अगले भाज्योंका और पहले भागहारोंके साथ अगले भागहारोंका गुणा करना चाहिए । पुन भाज्योंके गुणनफलमें भागहारोंके गुणनफलका भाग देना चाहिए जो इस प्रकार प्रमाण आवे, उतने ही विवक्षित स्थानके भग समझना चाहिए । इस करणसूत्र (गो कर्मकांड गाथा नं ७९९) के नियमानुसार छह द्रव्योंके सयोगी भग इस प्रकार होंगे— द्विसयोगी—

$$\frac{६ \times ५}{१ \times २} = १५ । त्रिसयोगी$$

$$\frac{६ \times ५ \times ४}{१ \times २ \times ३} = २० । चतुसयोगी \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३}{१ \times २ \times ३ \times ४} = १५ । पंचसयोगी \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५} = ६ ।$$

$$\text{षट्सयोगी } \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २ \times १}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६} = १ । \text{ इन सब सयोगी भगोंका योग } १५ + २० + १५ + ६ + १ = ५७$$

सत्ताम होता है । इन ५७ भगोंके अतिरिक्त जीवका जीवके साथ, तथा पुद्गलका पुद्गलके साथ, इस प्रकार दो भग और भी सम्य ह, जिन्हें मिलाकर ५९ सयोगी भग हो जाते हैं । धर्मात्मिकाय आदि शेष चार द्रव्य अखंड एक एक ही होते हैं, अत उनके इस प्रकारके एक ही द्रव्यके भीतर संयोगी भग सम्य नहीं ह । जीव आदि छहों द्रव्योंके पृथक् पृथक् छह भग ओर होते ह, जो असयोगी (एक संयोगी) होनेसे यहा ग्रहण नहीं किये गये ।

शेष द्रव्योंका आकाशद्रव्यके साथ जो संयोग है, यह क्षेत्रस्पर्शन कहलाता है ।

शुका — अमूर्त्त आकाशके साथ शेष अमूर्त्त और मूर्त्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे सम्य है ?

गोहृगभानस्मिन् उत्रयारेण फासवरएसादे, सत्त पमेयत्तादिणा अण्णोण्णसमाणत्तेण न । फालद्वयस्स अण्णद्वयेहि जो सत्तोओ सो कालफोमणे णाम । एत्थ अमुत्तेण कालद्वयेण सेसद्वयाण जदि वि पासो णत्थि, परिणामिच्चमाणाणि मेसद्वयाणि परिणामत्तेण कालण पुमिदाणि चि उवयारेण कालफोसणे वुच्चदे । सेत्त कालपोसणाणि द्वयफोसणमिह किण्ण पदति चि वुत्ते ण पदति, द्वयाटो द्वयेगदेमस्स कधचि भेदुवलभादो । भासफोसण दुविह आगम गोआगमभेएण । फोसणपाहुलजाणओ उवजुत्तो आगमदो भावफोसणे । पासगुण परिणदपोग्गलद्वं गोआगमभासफोमण ।

'एदेसु फोसणेसु' जीवसेत्तफोसणेण पयद । अस्परिं स्पृश्यत इति स्पर्शनम् । फोमणस्स अणुगमो फोमणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण । णिडेमो कहणं चक्खानामिदि एयट्ठो 'मो दुविहो, जहा पयई । ओषेण पिंहेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो । आदेसेण भेदेण

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अथवाह अथवाहकभारको ही उपचारसे स्पर्शसत्ता प्राप्त है, अथवा, सत्य, प्रमेयत्व आदिके द्वारा भूत द्रव्यके साथ अमूर्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है ।

कालद्रव्यका अथ द्रव्योंके साथ जो संयोग है, उसका नाम कालस्पर्शन है । यहाँ यद्यपि अमूर्त कालद्रव्यके साथ शेष द्रव्योंका स्पर्शन नहीं है, तथापि परिणमित होने काल शेष द्रव्य परिणामत्वकी अपेक्षा कालसे स्पर्शित हैं, इस प्रकारके उपचारसे कालस्पर्शन कहा जाता है ।

शका—क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन ये दोनों स्पर्शन, द्रव्यस्पर्शनमें क्यों नहीं अन्तर्भूत होते हैं ?

समाधान—पेही शकापर उत्तर देते हैं कि क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन द्रव्यस्पर्शनमें अन्तर्भूत नहीं होते हैं, क्योंकि, द्रव्यसे द्रव्यके एक देशका कथवित भेद पाया जाता है ।

भायस्पर्शन आगम और नोभागमके भेदसे दो प्रकारका है । स्पर्शनाविषयक शास्त्रके कथिक और वर्तमानमें उसमें उपयुक्त जीवको आगमभायस्पर्शन कहते हैं । स्पर्शगुणसे परिणत पुद्गलद्रव्यको नोभागमभायस्पर्शन कहते हैं ।

—इत उक्त छह प्रकारके स्पर्शनोंमेंसे यहाँपर जीवद्रव्यसम्बन्धी क्षेत्रस्पर्शनसे प्रयोजन है । जो भूतकालमें स्पर्श किया गया और वर्तमानमें स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कहलाता है । स्पर्शनके अनुगमको स्पर्शानुगम कहते हैं, उससे, अर्थात् स्पर्शानुगमसे । निर्देश, कथन और व्याख्यान, ये तीनों एकार्थक नाम हैं । यह निर्देश प्रकृतिके निर्देशके समान दो प्रकारका होता है । बोध, पिंड और अभेद, ये सब एकार्थक नाम हैं । आदेश, भेद

विसेसेणेत्ति समाणद्धो । ओघणिदेसो आदेसणिदेसो त्ति दुविहो चैव णिदेसो होदि, दच्च-
प्रज्जवट्ठियणए अणवलघिय कहणोवायाभावादो । जदि एवं, तो पमाणरक्खस अभावो
पसक्खदे इदि वुत्ते, होदु णाम अभावो, गुणप्पहाणभारमत्तरेण कहणोवायाभावादो ।
अघना, पमाणप्पाइद वयण पमाणवक्कमुवयारेण वुच्चदे ।

ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सब्वलोगो ॥ २ ॥

‘जहा उद्देशो तहा णिदेसो’ त्ति णायादो तात्र ओघेणेत्ति वयणं । सेमगुणद्वाण-
पडिसेहट्ठं मिच्छादिट्ठीहिं त्ति वयणं । केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि पुच्छासुत्तं सत्थस्स
पमाणत्तपदुप्पायणफलं । खेत्ताणिओगदारे सब्वमग्गणद्वाणाणि अस्सिदूण सब्वगुणद्वाणाणं
वट्ठमाणकालरिसिट्ठं खेत्तं पदुप्पादिद, संपदि पोसणाणिओगदारेण किं परुविज्जदे ? चोइस
मग्गणद्वाणाणि अस्सिदूण सब्वगुणद्वाणाणं अदीदकालविसेसिदत्तं फोसणं वुच्चदे । एत्थ

और विशेष ये सब समानार्थक नाम हैं । ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश इस प्रकारसे
निर्देश दो ही प्रकारका होता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनपोंके अवलम्बन किये
बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका अभाव है ।

शंका—यदि ऐसा है तो प्रमाणवाक्यका अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान—उक्त शकापर ध्वलाकार कहते हैं कि भले ही प्रमाणवाक्यका अभाव
हो जाये, क्योंकि, गौणता और प्रधानताके बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका भी
अभाव है । अथवा, प्रमाणसे उत्पादित वचनको उपधारसे प्रमाणवाक्य कहते हैं ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श
किया है ॥ २ ॥

‘जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है’ इस न्यायके अनुसार
सूत्रमें पहले ‘ओघसे’ ऐसा वचन कहा । सासादनादि शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके
लिए ‘मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा’ यह वचन कहा । ‘कितना क्षेत्र स्पर्श किया है’ यह पृच्छा-
सूत्र शास्त्रके प्रमाणता प्रतिपादन करनेके लिए कहा गया है ।

शंका—क्षेत्रानुयोगद्वारमें सर्व मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर सभी गुणस्थानोंके
वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन कर दिया गया है । अब पुन इस स्पर्शानुयोगद्वारसे
क्या प्ररूपण किया जाता है ?

समाधान—चौदह मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकरके सभी गुणस्थानोंके अतीत
(भूत) काल विशिष्ट क्षेत्रको स्पर्शन कहा गया है । (अतएव यहा उसीका प्ररूपण किया
जाता है ।)

वट्टमाणखेचपरुणण पि सुचणिचद्धमेन दीसदि । तदे ण पोसणमदीदकालविधिद्वेषेण
पदुप्पाइय, किंतु उट्टमाणदीदकालनिसेसिदखेचपदुप्पाइयमिदि ? एत्थ ण खेचपरुचण,
त त पुच्च खेचाणिओमहारपरुविदवट्टमाणखेच समराविय अदीदकालनिसेसिदखेचपदु
प्पायणद्व तस्सुवादाणा । तदे पोसणमदीदकालनिसेसिदखेचे पदुप्पाइयमेवेत्ति सिद्ध ।
सच्चलोगो, सच्चो लोगो मिच्छादिद्वीहि च्छुचो चि ज उच होदि । एत्थ लोगपमाण पुच्च
व आणेदच्च । अथा—

मुहसद्धिदमूउमच्च छेत्तूणद्वेण सत्तरगेण ।

एत्थेणगट्टन्दे घणरज्जू होति लोगग्धि ॥ १ ॥

एदीए गाहाए आणेदच्चो । जघया सत्तरज्जुविकरुम-चोहररज्जुआयदखेच ठविय

शंका—यहा स्पर्शानुयोगद्वारमें वर्तमानकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा भी सूत्र
निबद्ध ही देखी जाती है, इसलिये स्पर्शा अतीतकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला
नहीं है, किंतु वर्तमान और अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है ?

समाधान—यहा स्पर्शानुयोगद्वारमें वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है,
किंतु, पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपित उस उस वर्तमानक्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल
विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनाथ उसका ग्रहण किया गया है । अतएव स्पर्शानुयोगद्वार
अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है, यह सिद्ध हुआ ।

'सर्वलोक' अर्थात् सम्पूर्ण लोक मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, ऐसा
कहा गया है । यहापर लोकका प्रमाण पहले क्षेत्रप्ररूपणामें बताया गये नियमके अनुसार
निकाल लेना चाहिए । अथवा—

लोकको अधभागसे छेदकर अर्थात् मध्यलोकसे दो विभाग कर, दोनों विभागोंके
पृथक् पृथक् मुखसहित मूलके विस्तारको आधा करके, पुन सातके घर्गसे गुणा करके, उन दोनों
राशियोंको जोड़ देनेपर, लोकसम्बन्धी घनराजु उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

इस गाथाके अनुसार लोकका प्रमाण निकालना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोकको मध्यसे विभक्त करनेपर दो भाग हो जाते हैं, ऊर्ध्वलोक और
अधोलोक । इनमेंसे अधोलोकका मुख १ राजु और मूल ७ राजुप्रमाण है । अतएव इन
दोनोंका योग ८ राजु हुआ । इसके आधे ४ को ७ के घर्ग ($7 \times 7 = 49$) से गुणा करनेपर
($4 \times 49 =$) १९६ राजु आते हैं । यही अधोलोकके घनराजुओंका प्रमाण है । इसी प्रकारसे
ऊर्ध्वलोकका मुख १ राजु और मूल ५ राजुप्रमाण है, दोनोंका योग ६ राजु हुआ । इसके आधे
३ को ७ के घर्गसे गुणा करनेपर ($3 \times 49 =$) १४७ राजु आते हैं । यही ऊर्ध्वलोकके
घनराजुओंका प्रमाण है । उक्त दोनों प्रमाणोंको प्रकथित करनेपर ($196 + 147 =$) ३४३
लोकसम्बन्धी घनराजुओंका प्रमाण होता है ।

आयामं चौदसखडाईं कादूण निक्खंमेण सत्तं खंडे करिय लोगपमाणादो अधियखेत्तं फूसिय फेलिदे सगल विगलायवसहिदलोगखेत्त परिप्फुडं होदूण दीसदि । तत्थ-द्विद-सुत्तरसेण सन्वाणि खेत्तखंडाणि आणिय मेलानिदे पि त चेत्त लोगपमाण होदि ।

अथवा, सात राजुप्रमाण चौड़े और चौदह राजुप्रमाण लम्बे क्षेत्रको स्थापन करके आयामकी अपेक्षा चौदह खड करके और विष्कम्भकी अपेक्षा सात खड करके, पुनः लोकके प्रमाणमेंसे अधिक क्षेत्रको लेकर राजुके प्रमाणसे खडित करनेपर, अपने सकल और विकल अवयवोंसे सहित लोकरूप क्षेत्र परिस्फुट होकर दिखाई देता है। पुनः वहापर बताया गय सूत्रके अनुसार समस्त क्षेत्रखडोंको निकाल करके मिलानेपर भी वही तीन सौ तैतालीस घनराजु लोकका प्रमाण हो जाता है।

विशेषार्थ—उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि पुरुषाकार लोकके आकारमें प्रसनाली तथा उसके आगे पीछे प्रसनालीके समान ही जो क्षेत्र है वह सब पूर्व-पश्चिम- एक राजु चौड़ा, उत्तर दक्षिण सात राजु मोटा और ऊपर-नीचे चौदह राजु लम्बा है। इस कपाटाकार आयत-चतुरस्र क्षेत्रको लम्बाईकी ओरसे एक एक राजु प्रमाणसे खडित करके पुनः मोटाईकी ओरसे भी एक राजुप्रमाणसे खडित करना चाहिए। इस प्रकारसे उक्त कपाटाकार आयत-चतुरस्रक्षेत्रके एक राजुप्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे अर्थात् घनात्मक खड $१४ \times ७ = ९८$) अर्थानवे होते हैं। पुन लोकप्रमाणमेंसे इस क्षेत्रके (इन खडोंके) अतिरिक्त जो अवशिष्ट क्षेत्र बचा है, उसे लेकर सम विभागोंको ऊपर नीचे स्थापनकर पूर्वोक्त प्रमाणसे ही एक एक राजुप्रमाणके खड करना चाहिए, जिसका क्रम इस प्रकार है—मध्यलोकसे नीचे अधोभागके जो शेष दोनों पाद्वर्ति दो भाग हैं, उन्हें एकके ऊपर दूसरेको विपर्यासक्रमसे रखना चाहिए। ऐसा करने पर वह सात राजुप्रमाण लम्बा, चौड़ा समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र तीन राजुप्रमाण हो जाती है। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खड करने पर $(७ \times ७ \times ३ = १४७)$ एकसौ सैंतालीस खड होते हैं। इसी प्रकारसे ऊर्ध्व लोकके अवशिष्ट क्षेत्रको मध्यलोकके पाससे छिन्न कर देनेपर समान मापवाले चार भाग हो जाते हैं। इन्हें क्रमशः विपर्यासक्रमसे स्थापित करने पर सात राजु लम्बे, साढ़े तीन राजु चौड़े और दो राजु मोटे, ऐसे दो आयत चतुरस्र क्षेत्र हो जाते हैं। यदि इन दोनों भागोंको भी चौड़ाईकी ओरसे मिला, दिया जाय, तो सात राजुप्रमाण लम्बा-चौड़ा एक समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र दो राजु होगी। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खड करने पर $(७ \times ७ \times २ = ९८)$ अर्थानवे खड होते हैं। इस प्रकारसे उत्पन्न हुए इन समस्त खडोंको जोड़ देने पर $(९८ + १४७ + ९८ = ३४३)$ तीन सौ तैतालीस खड हो जाते हैं, जो कि प्रत्येक एक एक घनराजुप्रमाण हैं। अतएव इस प्रकारसे भी लोकका प्रमाण ३४३ घनराजु निकल आता है।

एतथ पज्जत्रट्टियपरूवणा युच्चदे । सत्थाणसत्थाण वेदण कत्ताय मारणंतिय उववादग्दमिच्छादिट्ठीहि अदीदेण वट्टमाणेण च मच्चलोगो फोसिदो । विहारवदिमत्थाण वेउच्चियसमुग्घादग्देहि वट्टमाणे काले तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो फोसिदो । अट्टाइज्जादो असखेज्जगुण खेच फोसिद । एतथ ओवट्टणाए खेचभगो । अदीदेण अट्ट चोइसभागा देसणा । त जघा-लोगणालि चोइस खडे करिय मेरुमूलादो हेट्टिम-दो खडाणि उवरिम छ-खडाणि च एगट्टे कदे अट्ट चोइसभागा हंति । ते च हेट्टिमजोयणसहस्सेणूणा हंति ।

सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असखेज्जदि भागो ॥ ३ ॥

एद सुच मदुद्धिमिस्ससभालगट्ट रोत्ताणित्रोगद्दारे उत्तमेव पुणरणि उच, अदी दाणाग्दवट्टमाणकालविसिद्धखेचेसु चोइसगुणद्वानिचद्वेसु पुच्छिडेसु तस्सिस्ससदेहविभा-सणट्ट वा दु-कालविसिद्धखेचपरूवण कीरदे । सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदण-

अथ यद्वापर पर्यायार्थिक नयसम्बन्धी प्ररूपणा कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुदात, कर्पायसमुदात, मारणातिकसमुदात और उपपाद् पद्गत मिप्यादृष्टि जीवोंने अतीतकाल और वर्तमानकालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैत्रियिकसमुदातगत मिप्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातया भाग और निर्यग्लोकका सख्यातया भाग स्पर्श किया है; तथा अर्द्धार्द्धांशसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यद्वापर अपवर्तना क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना आदिप । विहारवत्स्वस्थान और वैत्रियिकसमुदातगत मिप्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा देशोन (बुछ कम) आठ-घटे चौदह (१४) राजुक्षेत्र स्पर्श किया है, घट इस प्रकारसे है—लोकनालीके चौदह अङ्क करके मेरुपर्वतके मूलभागसे नाचेके दो खड्डोंकी और ऊपरके छह अङ्गोंकी एकत्रित करने पर आठ घटे चौदह (१४) भाग हो जाते हैं । ये आठ घटे चौदह राजु तीसरी पृथिवीके नाचेके एक हजार योजनोंसे हीन प्रमाण होते हैं, इसीलिए इन्हें 'देशोन' कहा है ।

सासादनसम्पगदृष्टि जीवनि कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ ३ ॥

क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया ही यह सूत्र मदुद्धि शिष्योंके समालनेके लिए फिर भी कहा गया है । अथवा, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल विशिष्ट तथा चौदह गुण । कर्पायसम्बन्धी क्षेत्रोंके पूछने पर उस शिष्यके सदेह विनाशानार्थ भूतकाल और भविष्यकाल, इन दो फालोंसे विशिष्ट वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा की जा रही है । स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

कसाय-वेउविय-मारणंतिय-उववादगेदेहि चदुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो फोसिदो ।
माणुसखेत्तादो असखेज्जगुण खेत्तं फोसिदं । एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

अट्ट वारह चौदसभागा वा देसूणा ॥ ४ ॥

सासणसम्मादिद्वीहिं ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्ठे । अदीदकालखेत्तपदुप्पायणद्वमिदं
सुत्तमागदं । त कर्धं णव्वदे ? अट्ट वारह चौदसभागणहाणुववत्तीदो । जेणेदं देसामासिग-
सुत्तं, तेणेदस्स पज्जवट्ठियपरूवणा पज्जवट्ठियजणाणुग्गहट्ठं कीरदे । तं जहा- सत्याण-
सत्याणगेदेहिं तिण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो ।
अट्टइज्जादो असंखेज्जगुणं । अदीदसत्याणखेत्तसाणयणनिधाणं वुच्चदे । तं जघा- तत्थ
ताव तिरिक्खसासणसत्याणखेत्तं भणिस्सामो । तसज्जा लोगाणालीए अन्तरे चेव होंति,
णो बहिद्दा । त कुदो णव्वदे ? 'अट्ट चौदसभागा देसूणा' ति वयणादो । तदो रज्जु-

वत्त्वस्थान, वेदनासमुदात्त, कयापसमुदात्त, वैकियिक्समुदात्त, मारणान्तिकसमुदात्त और
उपपाद, इन पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असख्यातथां भाग स्पर्श किया है । तथा मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया
है । यहाँपर कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग
तथा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ ४ ॥

इस सूत्रमें 'सासादनसम्यग्दृष्टिणो' इस पत्रकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । यह
सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रके प्रतिपादन करनेके लिए आया है ।

शंका—यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणाके लिए आया है, यह कैसे
जाना ?

समाधान—आठ बटे चौदह और बारह बटे चौदह भागोंकी प्ररूपणा अन्यथा बन
बन नहीं सकती है, अत इस अन्वयानुपपत्तिसे जाना जाता है कि यहाँ पर अतीतकाल-
सम्बन्धी क्षेत्रका प्रतिपादन करना अभीष्ट है ।

चूँकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए इसकी पर्यायाधिकनयसम्बन्धी प्ररू-
पणा पर्यायाधिकनयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए की जाती है । यह इस प्रकार है—
स्वस्थानस्वस्थानपदको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टिणो अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असख्यातथा भाग और तिर्यलोकका सख्यातथा भाग स्पर्श किया है; तथा अर्द्ध-
हीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके
निकालनेका विधान कहते हैं । यह इस प्रकार है—उसमेंसे पहले तिर्येच सासादनसम्यग्दृष्टि-
णोके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं । असजीव लोकनालीके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं ।

शंका—यह कैसे जाना ?

१ मण्डु 'बहिष्वा' इति पाठ ।

पदरन्मतेरे सच्यत्थ सासणा सभनति । तसजीनत्रिरहिदेसु असमेज्जेसु समुदेसु णवरि
 सासणा णत्थि' । वेरियवेंतरदेवेहि धिचानमरिथ सभनो, णवरि ते सत्याणत्थो ण होत्ति,
 विहारणे परिणदत्तादो । त खेत्त तिरियलोगपमाणेण कीरमाणे एगं जगपदरं पुरदो मण
 माणपमाणेहि सरेज्जरूपेहि सखिय लद्दं रज्जुपदरंभिद्दं अनणियं मरेज्जं गुलेहि गुणिदे
 तिरियलोगसस सरेज्जदिभागं हादूणं सरेज्जगुलवाहल्लं जगपदरं हेदि ।

-सपदि जोहसियसासणसम्माइद्धिमत्थाणखेत्तं भणिस्सामो । त नहा- जजुदीने वे
 चंदा, वे घरा । लणसमुद्दे चत्तारि चदा, चत्तारि घरा । घादइखडे पुथ पुथ, वाह
 चदाइच्चा । कालोदयसमुद्दे वादाल चंदाइच्चा । पोक्खरदीनद्धे वाहत्तारि चंदाइच्चा ।
 माणुसोचरसेलादी वाहिरपतीए चोहात्तमदमेचा । तदो चत्तारि रूपकखेत्तं कादूणं णेदव्वं

समाधान— 'सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन भाठ घटे चौदह
 भागप्रमाण क्षेत्र स्पष्ट किया है' इस सूत्र पचनसे जाना जाता है कि प्रसन्नोप लोकनालीके
 भीतर ही रहते हैं, बाहर नहीं ।

इसलिए राजुप्रतरके भीतर सत्र सासादनसम्यग्दृष्टि जीव संभव हैं । विशेषता
 केवल यह है कि प्रसन्नोपसे विरहित (मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके मध्यवर्ती) अस
 ख्यात समुद्रमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं । यद्यपि घैरभाघ रखनेवाले अन्तर
 देवोंके द्वारा हरण करके ले जाये गये जीवोंकी वहा समाधान है, किन्तु ये वहापर
 स्वस्थानस्वस्थानस्थ नहीं कहलाते हैं, क्योंकि, उस समय ये विहाररूपसे परिणत हो रहे हैं ।
 इस क्षेत्रको तिर्यंग्लोकेके प्रमाणसे करनेपर, एक जगप्रतरको आगे बड़े जानेवाले सख्यातरूप
 प्रमाणसे खण्डित करके जो लब्ध थावे, उसे राजुप्रतरमेंसे निकाल करके पुन सख्यात अंगु
 लोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोका सख्यातया भाग होकर सख्यात अंगुल वाहल्यवाला
 जगप्रतर होता है ।

अथ सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिषी देवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं । वह इस
 प्रकार है— जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं । लवणसमुद्रमें चार चन्द्र और चार सूर्य
 हैं । घातकीसङ्घमें पृथक् पृथक् चारह चन्द्र और चारह सूर्य हैं । कालोदकसमुद्रमें ध्यालीस
 चन्द्र और ध्यालीस सूर्य हैं । पुष्करद्वीपार्धमें बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं । मानुषोत्तर

१ लवणोदे काळोद जीवा अतिमस्यंशुरामणि । कम्पमहीसपद्धे जलवाया होति ण द्दु सेवे ॥ ति प
 ५, ३३ जलपरजावा लवणे काळेपतिमस्यंशुरामणे य । कम्पमहीसपद्धे न हि सेवे जलपरा जीवा ॥ ति सा ३९०
 २ मतिट्टु ' सध्याणद्धा ' , म प्रती ' सध्याणत्था ' इति पाठः ।
 ३ चत्वारो लवणजले धारइवावमिं वास मियथा । वादाल कालसल्लिडे वाहत्तारि पुक्खरद्धमिं । ति प
 पत्र २२१ २२२ दो दोवर्गं वास वादाल बहवइहरणत्था । पुक्खरदलो ति पारो जवट्ठिया सन्नजोरणत्था ॥ ति प
 ति सा ३४१

जाव बाहिरमट्ट पंतीओ गदाओ चि । तदो समुद्दम्भंतरपटमपंतीए वेसद-अट्टासीदिमेत्ता । तदो चदुरूवन्महिय कादूण णेदच्चं जाव एत्थतणबाहिरपंति चि' । एवं णेदच्च जाव सयभूरमणसमुदो चि । वुत्त च-

चदाइच्च-गहेहि चैन णक्खत्त-ताररूपेहि ।

दुगुण दुगुणेहि णात्तेरेहि दुग्गो तिरियलोगो ॥ २ ॥

एदाणि सब्वविमाणणि मेलापिदे संखेज्जपदरगुलेहि जगपदरम्हि भागे हिदे एग-
भागमेत्ताणि विमाणणि होंति । पुणो ताणि-

शैलसे बाहिरि पकि (वलय) में एकसो चवालीस चन्द्र और इतने ही सूर्य हैं । इससे आगे चार सख्याको प्रक्षेप करके, अर्थात् चार चार बढ़ाते हुए बाहरी आठवीं पकि आने तक ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ— पुष्करार्धद्वीपसे ५० हजार योजन आगे जाकर ज्योतिर्मंडलकी प्रथम पकि या वलय है, वहापर चन्द्र और सूर्य की सख्या १४४, १४४ है । उससे आगे एक एक लाख योजन आगे आगे जाकर सात वलय और हैं, जिनपर कि चन्द्र और सूर्यकी संख्या ४, ४ बढ़ती जाती है, अर्थात् वहापर क्रमशः १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२ चन्द्र या इतने ही सूर्यकी सख्या हो जाती है । इस प्रकारके वलय स्वयम्भूरमणसमुद्र तक व्यवस्थित हैं ।

इससे आगेके समुद्रकी भीतरी पकिमें दो सौ अठासी चन्द्र वा इतने ही सूर्य हैं । इससे आगे प्रत्येक वलयपर चार चार चन्द्र और सूर्यकी संख्या यहाकी बाहरी पकि आने तक बढ़ाते हुए ले जाना चाहिये । इस प्रकारसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक चन्द्र और सूर्यकी संख्या बढ़ाते हुए ले जाना चाहिये । कहा भी है—

चन्द्र, आदित्य (सूर्य), प्रह, नक्षत्र और ताराओंकी दूनी दूनी संख्याओंसे निरन्तर तिरियलोक द्विघर्मात्मक हे ॥ २ ॥

ये सर्व (चन्द्र या सूर्य) विमान एकट्टे मिलाने पर संख्यात प्रतरागुल्लोसे जगप्रत्तरमें भाग देने पर एक भागप्रमाण विमान होते हैं । पुन वे सय—

१ मणुसुत्तरागिरिदादो पण्णाससहस्रजोयणाण गत्तण पदमवलय होदि । ततो पर पत्तक्केकलवज्जोपणाणि गत्तण विदियादिवलयाओ होंति जाव सयभुरमणसमुदो चि । गवरी सयभुरमणसमुद्रस वेदीए पण्णाससहस्र नापणाणिसपाविय तम्मि पदेसे चरिमवलय होदि । ति प पर्थ २२४ मणुसुत्तरसेलादो वेदियमूलाद् दीववर्द्धण । पण्णाससहस्रेहि य लवसे लवसे तदो वलय ॥ दावद्धपटमवलये चउदालसय तु वलयवलयेसु । चउ चउ वट्टा आदी, आदीदो दुयणदुग्गणकमा ॥ वि सा ३५९-३५०

२ द्रव्यम पृ ३६

३ अट्ट चउ दु ति ति सत्ता सत्त य ठाणेसु णवसु सुण्णाणि । छठीस सत्त दु णव अट्टा तिचवक्का होंति अककमा ॥ एदेहि थपिदेसखेज्जवरूपपदागुलेहि मजिदाए । सेदिकदीए लद्ध माण चदान जोइसिदाण ॥ ति प ७, ११, १२

(अष्टासीति च गहा अष्टावीस तु ह्यति नक्षत्रता ।

एगससीपरिवारो इचो ताराण बोञ्चामि' ॥)

छानट्टि च सहस्स णयसद पचसत्तरी य ह्येति ।

एयससीपरिवारो ताराण कोडिकोडीओ ॥ ३ ॥

एदाहि ताराहि चदाइच्च गह णम्पुचोहि य पचट्टाणाट्टिदं परिवाडीए गुणिय भेला विदे जोदिसियसञ्चविमाणणि ह्येति' । तिरियलोगानट्टिदसयलचदानं सपरिवाराणमाण यणविहारणं वचइस्सामो' । त जहा- जंयूदीवादिपचदीवसमुदे मोत्तूण तदियसमुद्दमादि कादूण जान सयभूरमणसमुदो णि एदासिमाणयणकिरिया ताव उच्चदे- तदियसमुद्दमि

(एक चन्द्रके परिवारमें (एक सूर्यके अतिरिक्त) अठासी ग्रह और अष्टारस नक्षत्र होते हैं, तथा तारोंका परिमाण आगे कइते हैं ॥)

एक चन्द्रके परिवारमें छयासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोडिकोडी ६६९७५०००००००००००००००० तारे होते हैं ॥ ३ ॥

इन ताराओंसे, तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रोंसे पाच स्थानपर अवस्थित उपयुक्त चन्द्र विमानसख्याको परिपाटी क्रमसे गुणितकर मिला देनेपर ज्योतिषी देवोंके सयं विमान हो जाते हैं ।

विशेषार्थ—अभी ऊपर जो चन्द्र विषयोंकी संख्या निकाल आय हैं, उसे पाच स्थानोंपर स्थापित करना चाहिये । पुन चूँकि एक चन्द्रके परिवारमें एक सूर्य, अठासी ग्रह, अष्टारस नक्षत्र और ऊपर बतिये गए प्रमाणवाले तारे होते हैं, इसलिए इनसे क्रमश पाच स्थानोंपर अवस्थित चन्द्र-सख्याको गुणित करनेपर उनका प्रमाण इस प्रकार आ जाता है—

चन्द्रसंख्या, सूर्यसख्या, ग्रहसंख्या, नक्षत्रसख्या, तारासख्या

च × १; च × १; च × ८८; च × २८; च × ६६९७५००००००००००००००००

अब तिर्यंम्लोकमें अवस्थित सपरिवार सकल चन्द्रोंके प्रमाणको निकालनेका विधान कइते हैं । यह इस प्रकार है— जम्बूद्वीपादि तीन द्वीप और लयणसमुद्रादि दो समुद्र, इन पांच द्वीप समुद्रोंको छोड़कर तृतीय समुद्रको आदि करके स्वयंभूरमणसमुद्र आने तक

१ गापेयं प्रतिबु गोपलम्पते, किन्तुतरगायया सहास्या अविनामाविलादनीधृता । इय गाधोतरगायया सह सूर्यप्रकाशापुलम्पते । (अग्नि रा कोष, च दशम्ये)

२ अष्टवीपट्टादीना गहविखा तार कोडिकार्षण । छबट्टि सहस्सणि य णवसयपणत्तरिणि चदे ॥ वि छा ३६९

३ आणिय दणसंकलित किन्प पचठणसठविद । चदादिगुण मिलिदे जोरसविनाणि सञ्चानि ॥ वि छा ३६९

४ इत आरम्भाप्रेतन सदमं अमत्रन-रूपोनमादिसयनेत्यादि आर्षोवृत्तसम्बन्धात् तिबोपपणत्ति न्योति कोडाधिकारगतेनानेन प्रकरणेन प्रायः सङ्घः समान

गच्छो वत्तीस, चउत्थदीपे गच्छो चउसट्ठी, उवरिमसमुद्दे गच्छो अट्ठापीसुत्तरसयं । एवं दुगुणक्रमेण गच्छा गच्छति जाव सयंभूरमणसमुद्द ति । सपहि एदेहिं गच्छेहिं पुध गुणिज्ज-
माणरासिपरूवणा कीरदे । तदियसमुद्दे वेसदमट्ठासीदं, उवरिमदीपे ततो दुगुणं । एव
दुगुण दुगुणक्रमेण गुणिज्जमाणरासीओ गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्द पत्ताओ ति ।
सपहि अट्ठासीदि-निमदेहिं सव्वगुणिज्जमाणरासीओ ओपट्ठिय लद्वेण सग-सगगच्छे गुणिय
अट्ठासीदि वेसदमेव सव्वगच्छाणं गुणिज्जमाणं कायव्व । एवं कदे सव्वगच्छा अण्णोणं
पेक्खिउदूण चदुगुणक्रमेण अपट्ठिदा जादा । संपहि चचारिमादिं कादूण चदुरुत्तरक्रमेण
गंदसंकलणाए आणयणे कीरमाणे पुक्खिल्लगच्छेहिंतो संपहियगच्छा रूऊणा होंति, दुगुण-
जादद्वेण चचारिरूवट्ठीए अभावादो । एदेहि गच्छेहिं गुणिज्जमाणमज्झिमघणाणि चउ-
सट्ठिमादिं काऊण दुगुण-दुगुणक्रमेण गच्छति जाव सयंभूरमणसमुद्दं ति । पुणो गच्छसमी-

इनके विमानोंकी सत्या निकालनेकी प्रक्रिया पहले कहते हैं— तृतीय समुद्रमें गच्छका प्रमाण वत्तीस, चतुर्थ द्वीपमें गच्छका प्रमाण चौंसठ, इससे आगेके समुद्रमें गच्छका प्रमाण एकसौ अट्ठाईस होता है। इस प्रकार दूने दूने क्रमसे गच्छ स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं। अब इन गच्छोंसे पृथक् पृथक् गुण्यमान (गुणा की जानेवाली) राशियोंकी प्ररूपणा करते हैं। तृतीय समुद्रमें गुण्यमानराशि दो सौ अठासी है, उससे उपरिम द्वीपमें गुण्यमानराशि इससे दूनी (२८८ × २ = ५७६) है। इस प्रकार दूने दूने क्रमसे गुण्यमान राशिया स्वयम्भूरमणसमुद्र प्राप्त होने तक दूनी होती हुई चली जाती है।

उदाहरण—२८८, ५७६, ११५२, २३०४, ४६०८, ९२१६, १८४३२ इत्यादि। (गुण्यमानराशिया)

अब दो सौ अठासीसे सभी गुण्यमान राशियोंको अपवर्तितकर लघ्वराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणित करके दो सौ अठासीको ही सर्व गच्छोंकी गुण्यमानराशि करना चाहिए। ऐसा करनेपर सर्व गच्छ परस्परकी अपेक्षासे चतुर्गुण क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं।

उदाहरण—(१) $\frac{२२८}{२२८} = १$; $१ \times ३२ = ३२$, (२) $\frac{५७६}{२२८} = २$, $२ \times ६४ = १२८$,
इत्यादि। यहापर प्रथम गच्छ ३२ से द्वितीय गच्छ १२८ चौगुणा हो गया है।

अब चारको भादि करके चार चारके उत्तरक्रमसे वृद्धिगत सकलनके निकालनेपर पहलेके गच्छोंसे इस समयके गच्छ एक क्रम होते हैं, क्योंकि, दुगुणे हुए स्थानपर चार रूपकी वृद्धिका अभाव है। इन गच्छोंमें गुणा किये जानेवाले मध्यमघन, चौंसठको भादि करके दुगुण दुगुणक्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं।

एवं द्विदसंकलणामाणयणं वुच्चदे- छरूराहियजंजूदीवछेदणएहि' परिहीणरज्जुच्छेदणाओ गच्छ कादूण जदि संकलगा आणिज्जदि तो जौदिसियजीवरासी ण उप्पज्जदि, जगपदरस्स वेछप्पणंगुलमदवग्गभागहाराणुपयत्तीदे। तेण रज्जुच्छेदणासु अण्णेमिं वि तप्पाओग्गाणं सरेज्जरूपाण हाणिं काऊग गच्छो ठयेदव्यो। एण कदे तदियसमुदो आदी ण होदि चि णासंरूणिज्ज, मो चेव आदी होदि, सयभूरमणसमुदस्स परभागसमुप्पणरज्जुच्छेदणय-सलगाणमागयणकारणादो।

सयंभूरमणसमुदस्स परदो रज्जुच्छेदणया अत्थि चि कुदो णव्वदे? वेछप्पणं-

(२) $१३६ \times ६३ \times ६४ = ८०६४$ उत्तरघन। इस उत्तरघनको $५७६ \times ६४ = ३६८६४$ में मिला देनेसे चतुर्थ द्वीपसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—

$$(३६८६४ + ८०६४ = ४४९२८ \text{ सर्वघन})$$

(३) $३५६ \times १२७ \times ६४ = ३२५१२$ उत्तरघन। इस उत्तरघनको $११५२ \times १२८ = १४७४५६$ में मिला देनेसे चतुर्थ समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—

$$(१४७४५६ + ३२५१२ = १७९९६८ \text{ सर्वघन})$$

इसी क्रमसे आगेके प्रत्येक द्वीप और समुद्रका स्वयंभूरमणसमुद्र तक उत्तरघन पय सर्वघन निकालते जाना चाहिए।

अब इस प्रकारसे अवस्थित सकलनोंके निकालनेके प्रकारसे कहते हैं—छद्म रूप अधिरु जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे परिहीन राजुके अर्धच्छेदोंको गच्छराशि बना करके यदि सकलनराशि निकाली जाती है, तो ज्योतिष्क जीवराशि नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि, ऐसा करनेपर जगप्रतरका दो सौ छप्पन सूर्यगुलोंके वर्गप्रमाण भागहार नहीं उत्पन्न होता है। इसलिए राजुके अर्धच्छेदोंमें तत्प्रायोग्य अन्ध भी सख्यात रूपोंकी हानि (कर्मा) करके गच्छ स्थापित करना चाहिए। ऐसा करनेपर तृतीय समुद्र आदि नहीं होता है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, किन्तु वही, अर्थात् तृतीय समुद्र ही, आदि होता है, क्योंकि, इसका कारण स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें उत्पन्न होनेवाले राजुके अर्धच्छेदसम्बन्धी शलाकाओंका आना है।

शलाका—स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेद होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण निकालनेके लिए दो सौ छप्पन सूर्यगुलके

१ छक्के दु पादेकेके जंजू दे-अभिदिमा पच । देउदही मेवसठा पयुवजोगी ण एप्पेदे ॥ तिवहीण वेदिद्वेदपमेओ रउहाण्ठिरी हवे गच्छे । जयुदोवण्ठिदेणा उरूवउतेण परिहीणा ॥ ३३ सा १५८-३५९.

२ मे प्रती 'सलगाणमागयणकारणादो' अयमतिगु 'सलगाणमणवकरणदो' इति पाठः ।

गुलसदवग्गसुत्तादो' । ' जचियाणि दीप सागररूपाणि जचूदीपछेदणाणि च स्नाहियाणि च्चियाणि रज्जुछेदणाणि ' चि परियम्मणेण एद चक्खाण किण्ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि । तेणेदस्स चक्खाणस्स गहण कायच्च, ण परियम्मस्स, तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो । ण सुत्तविरुद्ध चक्खाण होदि, अहप्पसमादो । तत्थ

वर्षाप्रमाण जगमतरका भागहार यतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परमाणमें भी राजुके अर्धच्छेद होते हैं ।

धका—' जितनी द्वीप और सागरोंकी सख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद होते हैं, एक अधिक उतने ही राजुके अर्धच्छेद होते हैं ' इस प्रकारके परिकर्म सूत्रके साथ यह उपर्युक्त व्याख्यान क्यों नहीं विरोधको प्राप्त होगा ?

समाधान—भले ही परिकर्म सूत्रके साथ उक्त व्याख्यान विरोधको प्राप्त होने, किंतु प्रस्तुत सूत्रके साथ तो विरोधको प्राप्त नहीं होता है । इसलिए इस ग्रन्थके व्याख्यान को ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके व्याख्यानको नहीं, क्योंकि, यह व्याख्यान सूत्रसे विरुद्ध है । और, जो सूत्र विरुद्ध हो, उसे व्याख्यान नहीं माना जा सकता है, अथवा अतिप्रसंग दोष प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—प्रकृतमें ज्योतिषी देवोंकी सख्या निकालनेके लिए द्वीप सागरोंकी सख्या ज्ञात करना अवलोकनको आवश्यक प्रतीत हुआ । द्वीप सागरोंकी सख्या अन्य आक्षयोंके उपदेशानुसार राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे ६ तथा जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कम करनेसे प्राप्त होती है, मरुथ जम्बूद्वीप आदि प्रथम पाच द्वीप समुद्रोंमें जो राजुके छह अर्ध छेद पड़ते हैं वे यहाँ सम्मिलित नहीं किये गये, क्योंकि, इन द्वीप समुद्रोंकी चन्द्रगणना पृथक् की गई है । किंतु अवलोकनका मत है कि यदि इनका ही द्वीप सागरोंका प्रमाण लिया जावे, तो उसके आधारसे निकाली हुई ज्योतिषी देवोंकी सख्या २१६ के भागहारसे निकाली हुई सख्यासे नियम पड़ती है । उसके वैषम्यको दूर करनेके लिए अवलोकनको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि द्वीप सागरोंकी सख्या निकालनेके लिए राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त ६ ही नहीं, किन्तु छहसे अधिक सख्यात अंक और कम करना चाहिए । इसपरसे ज्ञात हाता है कि केवल ६ अंक कम करनेसे द्वीप सागरोंकी सख्याद्वारा ज्योतिषीदेवोंका जो प्रमाण निकलेगा, वह २५६ के भागहारद्वारा प्राप्त संख्यासे बढ़ जाता है ।

छहसे अधिक सख्यात अंकोंके कम करनेमें अवलोकनको हेतु यह दिया है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परे जो पृथिवी है, यहाँ भी राजुके अर्धच्छेद पड़ते हैं, किन्तु यहाँ ज्योतिषी देव नहीं हैं । इसलिए वहाँके सख्यात अर्धच्छेद भी उक्त गणनामें कम करना

१ सत्तेण पदरत्त वेत्तण्णंशुल्लवक्कणपट्टिमाणे । जी ६ सू ५५, अतिदमि वेदिण्ये वेणवण्णं पणुव्वो । अ उद्ध सो राती जीदिपिपहराण सम्माण ॥ ति ५ ७, १०

जोड़मिया पत्थि चि कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चैय सुत्तादो । एसा तप्पाओग्गमखेज्ज-
रुमाहियजजूदीमउडेणयमहिददीममायररुममेत्तरज्जुउदपमाणपरिमत्ताविही ण अण्णाडरि-
ओव्वेदमपरपराणुमारिणी, केमल तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुमारी जोदिमियदेवभाणहारपदु-
प्पाइयसुत्ताणलविजुत्तिलेण पयदगण्ठमाहणद्धमम्हेहि परुविदा, प्रतिनियतसूत्राणम्ममल-
विजुमितगुणप्रतिपन्नप्रतिपद्दाससुत्तयेयावलिक्काणहारकालोपदेशत्त आयतचतुरस्रलोकसस्थानो-
पदेशत्तद्वा । तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति एयत्तपरिग्गोइण अमग्गाहो कायव्वो, परमगुरु

आवश्यक है। इस विधानसे परिष्कर्मे 'जत्तियाणि दीवसागररूवाणि' आदि कथनमें जो विरोध पडता है, उसके विषयमें धरणाकारने यहा स्पष्ट रुद्धा है कि उक्त कथन सूत्र विरुद्ध होनेसे प्राह्य नहीं है। किन्तु द्रव्यप्रमाणानुगममें उस विरोधका भी एक प्रकारसे परिहार किया है। (देखो त् भाग, सूत्र ४, पृ ३३-३६)

श्रुता—यहा, अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रके परमाणम ज्योतिष्क देव नहीं है, यह कैसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है।

यह तत्प्रायोग्य सख्यात रूपाधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंमे सहित द्वीप सागरोंके रूपप्रमाण रात्रुमन्वर्धी अर्धच्छेदोंके प्रमाणकी परीक्षा विधि अथ आचार्योंकी उपदेश परस्परान्ती अनुमरण करनेवाली नहीं है, किन्तु केवल त्रिलोचनप्रज्ञासूत्रकी अनुमरण करनेवाली है, जो कि ज्योतिष्क देवोंके भाणहारमे उत्पन्न करनेवाले सूत्रमे अलम्बित युक्तिके बरसे प्रवृत्त गण्ठके साधनार्थ, प्रतिनियत सूत्रके उपपन्न मल्ल विजुमित अर्थात् तत्रतिपादक सूत्रके आश्रयमे गुणस्थान प्रतिपन्न सामान्यसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंमे प्रतिपन्न असख्यात आवलियाके अग्रहारकालके उपदेशके समान, तथा आयतचतुरस्रकोण पुरुषाकार लोक सस्थानके उपदेशके समान हमने निरूपण की है।

विशेषार्थ—यहा धरणाकारने दृष्टान्तपूर्वक दार्ष्टान्तको सिद्ध करनेके लिए जिन विशेषताओंका उल्लेख किया है, उनके कहनेका अभिप्राय प्रमश निम्न प्रकार है—

(१) पहला दृष्टान्त प्रतिनियत सूत्राश्रयसे सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके असख्यात आवलिकालक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण भाणहारके उपदेशना दिया है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिए द्रव्यप्रमाणानुगम तृतीय भाग पृ ६९ के मूल पाठ और विशेषार्थमे देखिए। यहापर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि 'सख्यात आवलियोंका एक जन्तुमुहूर्त होता है', इस प्रचलित एव सर्व मान्य मान्यताको भी 'पदेहि पल्लिदोवममज्जिरादि अतोमुहुत्तेण कालेण' (द्रव्यप्र सू ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पडे हुए 'अन्तर' शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तना अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका भी हो सकता है, और इसलिए प्रकृतमें 'जन्तुमुहूर्त' का अर्थ मुहूर्तसे अधिक कालका ही सेना चाहिए।

परंपरागतानुसृतसु चतुरस्रलेख विदधानेदुममक्रियत्तादौ, अदिदिएसु पदत्थेषु छदुमत्थविय
 प्पाणमन्त्रिभद्राणियमाभानादौ । तम्हा चिस्तणाहरियनक्तानापरिच्चाएण एसा नि दिमा
 हेदुनादाणुमारिउप्पणसिस्मानुरोहेण अउप्पणजणउप्पायणट्ट च दरिसेदञ्जा । तदे ण एत्थ
 सपदायनिरोहासंका कायच्चा त्ति ।

(२) दूसरा दृष्टान्त आयत चतुरस्र लोकस्थानके उपदेशका दिया है, जिसका
 अभिप्राय समझनेके लिए क्षेत्रानुगम (इसी चतुर्व्यं भाग) के पृष्ठ ११ से २२ तकका अर्थ
 देखिए । यहापर उल्लेख करकेका प्रयोजन यह है कि घयलाकारके सामने विद्यमान करणा
 नुयोगसम्बन्धी साहित्यमें आयत चतुरस्र लोकके आकारका विधान या प्रतिषेध कुछ भी
 नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रनरसमुद्धातगत केयलीके क्षेत्रके साधनाथ वही गर्भ दो
 गाथाओंके (देखो क्षेत्रत्र पृष्ठ २०, २१) आधारपर यह सिद्ध किया है कि लोकका आकार
 आयत चतुरस्रकोण है, न कि अथ आचार्योंसे प्ररूपित १६४, ३३४, ४६४ घनराजुप्रमाण मृदुगके
 समान । यदि ऐसा न माना जायगा, तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकोमें
 ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा । इसलिये लोकका आकार आयत चतुरस्र ही मानना
 चाहिए ।

(३) घयलाकारने जिस प्रकार उक्त दोनों धातोंको तात्कालिक करणानुयोगसम्बन्धी
 धातुओंमें उल्लेख अथवा, आचार्योंकी उपदेश परम्पराके नहीं मिलनेपर भी उक्त प्रकारकी
 सूत्रायलभित युक्तियोंके बलसे उक्त सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहापर भी करणानुयोगके
 प्रयोगमें या आचार्य उपदेशपरम्परामें उपलब्ध नहीं होनेपर भी प्रतिनियत सूत्राभित तर्कके
 बलसे ये यह सिद्ध कर रहे हैं कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परम गर्भमें भी अस्तव्यात द्वीप समुद्रोंके
 व्यास रुद्ध योजनोंसे सख्यात हजारगुने योजन भागे जाकर तिर्यंग्लोककी समाप्ति होती है,
 अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रकी आद्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है, वहा भी राजुके
 अधच्छेद उपलब्ध होते हैं, निरु यहापर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं ।

इसलिये यहापर 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त दृष्ट पकड़ करके असद् आशय
 नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परम मुद्राओंकी परम्परासे आये हुए उपदेशकी युक्तिके बलसे
 अर्थार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छन्दस्थ जीवोंके द्वारा उठाये गये
 विकल्पोंके अविशयादी होनेका नियम नहीं है । अतएव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका
 परित्याग न करके यह भी दिशा हेतुमाद् (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके
 अनुरोधसे तथा अम्युत्पन्न शिष्य जनोंके व्युत्पादनके लिए दिखाना चाहिए । इसलिये यहापर
 सम्प्रदायके विरोधकी आशाका नहीं करना चाहिए ।

सरोज्जरूनेहिं गुणिय सरोज्जघणगुलेहि ओपट्टिदे जोइमियरासी होदि । एदाणि जोडिमिय देवुस्मेधगुणिदग्निमाणम्भतरपदरगुलेहि गुणिदे जोइसियमत्थाणरोत्त तिरियलोगस्म सस ज्जग्दिभागमेत्त होदि । णररि देवुस्मेधगुणिदग्निमाणम्भतरपदरगुलाणि उस्मेहंगुलाणि ति क्खु पमाणगुलाणि कायच्चाणि । उस्मेहगुलाणि ति कध णच्चदे ? अण्णहा जजूदीनम्भतेर जजूदीनताराणमोगासाभापादो । अत्रा एदाणि पमाणगुलाणि चेत्त । कध पुण सम्मातिं ण, जजूदीन लक्षणममुदेदि वे' अस्सिदूग अट्टाणादो ।

एक सौ गठारह हाते है । इसमें ताराओंका प्रमाण जोडकर ऋषभ बुई राशिका चंद्र विमरकी शलाकाओंसे गुणा कर देनेपर समस्त ज्योतिषी देवोंके विमानोंकी शलाकाए निकल आती है ।

उहें सख्यात घनागुलोंसे गुणित करनेपर सर्व ज्योतिषी देवोंके विमानोंका स्थान क्षेत्र हो जाता है । स्थानक्षेत्रकी सख्यातरूपोंसे गुणा करके सख्यात घनागुलोंसे अपवर्तित करनेपर ज्योतिष्क देवोंकी राशि हो जाती है । इस राशिको ज्योतिष्क देवोंके शरीरोंत्सेधसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरागुलोंसे गुणा करनेपर ज्योतिष्क देवोंका स्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तिष्यलोन्के सख्यत्तध भागमात्र होता है । विशेष बात यह है कि देवोंके शरीरके उत्सेधसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुल, उत्सेधागुल है, ऐसा समझ करके उनके प्रमाणागुल करना चाहिए ।

शका—ये प्रतरागुल उत्सेधागुल है, यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि उन प्रतरागुलोंका उत्सेधागुल न माना जायगा, तो जम्बूद्वीपके भीतर जम्बूद्वीपस्थ तारागणोंके रहनकी अत्रकाश न मिल सकेगा ।

अथवा, ये प्रतरागुल प्रमाणागुल ही है ।

शका—तो फिर ये जम्बूद्वीपमें कैसे समाते ह ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लघनसमुद्र, इन दोनोंको ही आश्रय करके ये ज्योतिष्क विमान अत्रस्थित हैं । अर्थात्, जम्बूद्वीप और लघनसमुद्र, इन दोनों क्षेत्रोंमें जम्बूद्वीपसम्बन्धी ज्योतिष्क विमान रहते हैं ।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपसम्बन्धी दोनों चन्द्रोंके परिवारमें तारोंकी सख्या एक लाख तैसास हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी है । एक तारेका जघय विष्कभ ३ कोशका और उत्कष्ट १ कोशका कहा गया है, तथा उत्सेध त्रिष्कभसे आधा तथा आकार उत्तान गोलार्ध सदृश है । (त्रिलोकसार गाथा ३३७, ३३८) । तन्नुसार मध्यम त्रिष्कभ ३ कोश लेकर एक

वेंतरदेनसासणसम्माइडिसत्थाणखेचं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेच होदि ।
तं कध ? वेंतरदेवरासिं डुणिय एक्केकम्हि वेंतराणसे संखेज्जा चेव वेंतरदेवा हँति ति

तारका स्थूल घनफल— $\frac{2}{3} \times \frac{3}{1} \times \frac{2}{12} \times \frac{2}{9} = \frac{2}{27}$; तथा जम्बूद्वीपके समस्त तारोंका घनफल
स्थूल रूपसे $१३३९५ \times १०^{11} \times \frac{2}{27} = ९९२२$ कोट्टाकोडी घनकोश हुआ ।

तारागण पृथिवीसे ७९० योजन ऊपरसे लगाकर ९०० योजन तक अर्थात् ११० योजन-याहल्य आकाशमें रहते हैं । (देखो त्रिलोकसार गाथा ३३२ ३३४) । अत एक लाख योजन व्यासवाले जम्बूद्वीपके ऊपर ११० योजन क्षेत्रका घनफल निकालनेसे—
 $१२ \times १०^4 \times १०^4 \times ४४० = ५२८ \times १०^{12}$ घनकोश हुए । इस प्रकार तारोंके घनफलमें १८ अंक हैं, किन्तु जम्बूद्वीपसम्बन्धी उक्त क्षेत्रमें केवल १४ अंक आते हैं । इस प्रकार वे सब तारे उक्त क्षेत्रमें नहीं समा सकते । किन्तु यदि तारोंमें उत्सेधागुलोंका प्रमाण स्वीकार किया जाय और उक्त क्षेत्रमें प्रमाणागुलोंका, तो उक्त क्षेत्रके प्रमाणको ५००^४ से गुणा कर देने पर वह क्षेत्र $५२८ \times १२५ \times १०^{12} = ६६ \times १०^{12}$ अर्थात् २२ अंक प्रमाण हो जाता है, जिससे उक्त तारोंको उस क्षेत्रके भीतर साधकाश रहनेके लिए स्थान मिल जाता है । इसीलिये घबलाकारने कहा है कि विमानोंके प्रमाणमें उत्सेधागुल ही ग्रहण करना चाहिये, और यही बात त्रिलोकप्रकृति आदि ग्रंथोंसे भी सिद्ध है ।

घबलाकारने जो दूसरे प्रकारसे उक्त धैपम्यका समाधान किया है कि विमानोंके प्रमाणमें प्रमाणागुल ग्रहण करके भी जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, दोनोंके आश्रयसे उन विमानोंके अस्थानके योग्य क्षेत्र बन जाता है, सो यह बात गणितमें ठीक नहीं उतरती, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र दोनोंके ऊपरका ११० योजन याहल्य क्षेत्र केवल—
 $६ \times १०^4 \times ५ \times १०^4 \times ४४० = १३२ \times १०^{11}$ घनकोश आता है । यह क्षेत्र केवल १६ अंकप्रमाण होनेसे केवल जम्बूद्वीपके तारोंके लिए भी पर्याप्त अथकाश नहीं प्रदान कर सकता । निसपर लवणसमुद्रसम्बन्धी चार चन्द्रोंके परिवारके तारोंको भी वहा अथकाश प्राप्त होना है । इस प्रकार तारोंके विमानोंको प्रमाणागुलोंके मापमें लेकर घबलाकारने उनको किस प्रकार अथकाश प्राप्त कराया है, यह समझमें नहीं आता ।

सासादनसुन्यन्दष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका सप्यातया भाग-मात्र होता है ।

शका—वह कैसे ?

समाधान—व्यन्तर देवोंकी राशिको स्थापित करके एक एक व्यन्तरावासमें सख्यात

सरोज्जस्त्रोद्दि भागे द्विदे वतरायासा ह्येति । ण एस ऋतो भरणयासिय सोधम्माशीण,
 तत्थ सरोज्जसु भरणविमाणेसु असरोज्जजोयणायामेसु असरोज्जा देवा देवीओ ह्येति ।
 कुदो ? तेसिमसरोज्जचण्णहाणुपत्तीदो । पुगो वंतरायासे अप्पणो विमाणम्भतरमखेज्ज
 घणगुलेहि गुणिदे वंतरदेवमासणसम्माडडिसत्थाणरेत्त होदि । एदाणि तिण्णि पि खेत्ताणि
 एगद्ध मेलिदे तिरियलोगस्म सरोज्जदिभागो होदि । विहारदिसत्थाण पेदण कमाय वेउच्चिय
 समुग्घादग्गेदि जद्ध चोद्दमभागा देसणा फोमिदा । केत्तियमेत्तेणूणा ? तदियपुद्दवीण
 हेड्डिल्लजोयणसहस्सेण । मारणतियसमुग्घादग्गेदि ऋह चोद्दमभागा देसणा फोमिदा ।
 त जहा- मेरमूलादो उवरि जायीमिपव्वभारपुडपि चि सत्त रज्जू, हेड्डा जाय छट्ठी पुडपि
 चि पच रज्जू । एदाओ मेलिदे सामणमारणतियसेत्तायामो होदि । णवरि हेड्डिमजोयण
 सहस्सेण ऊणो चि वत्तयो । जदि सामणा एइदिएसु उप्पज्जति, तो तत्थ दो गुणट्ठणामि

ही व्यतर देव होते हैं, इसलिय सख्यात रूपोंसे भाग देनेपर व्यतर देवोंके आवासोंमें
 सख्या हो जाती है । किन्तु यह प्रम भवतायासी और संधिर्मादि कल्पवासी देवोंके नहीं हैं,
 क्योंकि, उनमें असख्यात योजन आयासखाले सख्यात भवनों और विमानोंमें असख्यात
 देव और देविया रहती हैं । कारण, यदि ऐसा न माना जाय, तो उनकी राशिके असख्यात
 पना नहीं धन सकता है । पुन व्यतरोंके आवासक्षेत्रको अपने विमानोंके भीतरी सख्यात
 घनागुल्लोंसे गुणित करनेपर सासादनसम्पगदष्टि व्यतर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । इन
 तीनों ही क्षेत्रोंको अर्थात् सासादनसम्पगदष्टि नियचोंके स्वस्थानक्षेत्रको, सासादनसम्पगदष्टि
 ज्योतिष्क देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको और सासादनसम्पगदष्टि व्यतर देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको
 एकट्टे मिलानेपर नियलोकका असख्यातया भाग होता है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्दात,
 कपायसमुद्दात और वैक्रियिकममुद्दातगत सासादनसम्पगदष्टि जीवाने लोकनालीके चौदह
 भागोंमेंसे देशान आठ भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है ।

शुभा—यदा देशोनसे तात्पर्य कितने प्रमाण क्षेत्रसे न्यून है ?

समाधान—तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्रसे न्यून क्षेत्र
 देशोनसे अभीष्ट है ।

मारणान्तिकसमुद्दातगत सासादनसम्पगदष्टियोंने लोकनालीके चौदह राजुओंमेंसे
 देशोन बारह भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है । यह इस प्रकारसे जानना चाहिये—
 सुमेरुपर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर इत्तरभारपृथिवी तक सात राजु होते हैं, और नीचे
 छठी पृथिवी तक पाच राजु होते हैं । इन दोनोंको मिला देनेपर सासादनसम्पगदष्टि जावोंके
 मारणान्तिकक्षेत्रकी लम्बाई हो जाती है । विशेष यात यह है कि छठी पृथिवीके नीचेके
 एक हजार योजनसे न्यून क्षेत्र यदापर भी कहना चाहिये ।

होति । ण च एवं, सताणिओगहारे तत्थ एकमिन्डादिट्टिगुणप्पदुप्पायणादो' दब्बाणिओगहारे वि तत्थ एगगुणद्वाणदब्बस्स पमाणपरुणणादो च । को एन भणदि जघा सासणा एइंदिए-सुप्पज्जति चि । किंतु ते तत्थ मारणतिय मेल्लति चि अम्हाण णिच्छओ । ण पुण ते तत्थ उप्पज्जति चि, छिण्णाउअकाले तत्थ सासणगुणाणुत्तलभादो । जत्थ सासणाणसुत्तादो णत्थि, तत्थ वि जदि सासणा मारणंतियं मेल्लति, तो सत्तमपुट्टणिगेरइया मि सासणगुणेण सह पंचिदियतिरिक्खेसु मारणतियं मेल्लंतु^१, सासणत्त पडि मिसेसाभावादो ? ण एस दोसो, मिण्णजादिचादो । एदे सत्तमपुट्टणिगेरइया पंचिदियतिरिक्खेसु गम्भोपक्कतिएसु चेन उप्पज्जणसहाना, ते पुण देना पंचिदिएसु एइंदिएसु य उप्पज्जणसहाना, तदो ण समाण-जादीया । जं जाए जादीए पडिवण्ण, त ताए चेन जादीए होदि चि पडिउज्जेदब्बं, अण्णहा अणत्थापसगादो । तम्हा सत्तमपुट्टणिगेरइया सासणगुणेण सह देवा इव मारणतिय

शुक्रा—यदि सासादनसम्पग्दष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते ह तो उनमें (वहाँपर) दो गुणस्थान प्राप्त होते ह । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वारमं, एकेन्द्रियोंमें एक मिथ्यादष्टि गुणस्थान ही बतया गया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें भी उनमें एक ही गुणस्थानके द्रव्यका प्रमाण प्ररूपण किया गया है ।

समाधान—कौन ऐसा कहता है कि सासादनसम्पग्दष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते ह ? किन्तु वे उस गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं, ऐसा हमारा निश्चय है । न कि वे उस गुणस्थानमें, अर्थात् सासादासम्पग्दष्टियोंमें उत्पन्न होते हैं। क्योंकि, उनमें आयुष्के छिन्न होनेके समय सासादनगुणस्थान नहीं पाया जाता है ।

शुक्रा—जहा पर सासादासम्पग्दष्टियोंका उत्पाद नहीं है, वहा पर भी यदि सासादनसम्पग्दष्टि जीव मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं, तो सात्तरीं पृथिवीके नारकियोंको सासादनगुणस्थानके साथ पचेद्रिय तिर्यचोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करना चाहिए, क्योंकि, सासादनगुणस्थानत्तकी अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है, अर्थात् समानता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, देव और नारकी इन दोनोंकी भिन्न जाति है । ये सात्तरीं पृथिवीके नारकी गर्भजन्मवाले पचेद्रियोंमें ही उपजनेके स्वभाववाले हैं, ओर वे देव पचेन्द्रियोंमें तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेरूप स्वभाववाले हैं, इसलिए दोनों समान जातीय नहीं हैं । जो जिस जातिमें प्रतिपन्न है, अर्थात् स्वीकृत है, वह उसी ही जातिका माना जाता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए, अथवा अनवस्थादोषना प्रसंग आ जायगा । इसलिए सात्तरीं पृथिवीके नारकी सासादनगुणस्थानके साथ देवोंके समान मार-

१ पंचिदिया मोहदिया तीरदिया अउरिदिया अउण्णिपचिदिया एकमिन् डेव मिथ्याइडिद्वाने ।
भी स दू ३६

२ जी-द दू ७४-७६

३ प्रतिउ ' मेल्लति ' इति पाठः ।

ण करेति त्ति मिद्धं । देवसासणा एइंदिएसु मारणतियं करेमाणा सच्चन्नेयेइदिएसु किण्ण मारणतियं करेति त्ति ? ण, तेमिं सासणगुणपाहम्मणेण लोगणालीए वाहिरमुप्पज्जन्, ण भाणादो । लोगणालीए अब्भतरे मारणतियं करेता णि भयणवासियजगमूलादेवरीं च व देव तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठिणो मारणतियं करेति, णो हेट्ठा । कुदो ? सासणगुणपाहम्मणे चैव । रज्जुपदरमेत्तपुट्ठी उपरि णत्थि । देवा णि सुहमेइदिएसु ण उप्पज्जति । य च वादरेइदिया वाउक्काइयनदिरिच्चा पुट्ठीण णिणा अण्णत्थ अत्थति । तदेवा सासणमारणतियं रोचस्म वारह जेइसमागोपदेसो ण षडदि त्ति ? ण एम टोसो, ईसिपन्भारपुट्ठीदेवो उपरि सासणाणमाउक्काइएसु मारणतियं मभाणादो, अट्टनपुट्ठीए एगरज्जुपदरन्भतर सव्व मावुरियं ट्ठिदाए तेसिं मारणतियं करणं पटि त्तिरोहामाणादो च । वाउक्काइएसु सासणा मारणतियं किण्णं करेति ? ण, सयलमासणाणं देवाणं व तेउ वाउक्काइएसु मारणतियाभाणादो,

प्राणतिकसमुद्रात नहीं करते हैं, यह बात सिद्ध हुई ।

शुद्धा—सासादनसम्यग्दृष्टि देव, जबकि एकेन्द्रियोंमें मारणातिकसमुद्रात करते हुए पाए जाते हैं, तो फिर सर्वलोकप्रती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं मारणातिकसमुद्रात करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके सासादनगुणस्थानकी प्रधानतासे लोकनालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है । और लोकनालीके भीतर मारणातिकसमुद्रातको करते हुए भी भयनवासी लोकके मूलभागसे ऊपर ही देव या तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणातिकसमुद्रातको करते हैं, उससे नीचे नहीं, क्योंकि, उनमें सासादनगुणस्थानकी ही प्रधानता है ।

शुद्धा—राजुप्रतरप्रमाण पृथिवी ऊपर नहीं है । देव भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, और वादर एकेन्द्रिय जीव वायुनायिक जीवोंको छोड़कर पृथिवीके किता अग्र रहते नहीं हैं । इसलिए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणातिकक्षेत्रका वारह बड़े बौद्ध (१३) भागका उपदेश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ईश्वरप्रभार पृथिवीसे ऊपर सासादन सम्यग्दृष्टियोंका अन्धायिक जीवोंमें मारणातिकसमुद्रात समभव है, तथा एक राजुप्रतरके भीतर समक्षेत्रको व्याप्त करके स्थित आठवीं पृथिवीमें उन जीवोंके मारणातिकसमुद्रात करनेके प्रति कोई विरोध भी नहीं है ।

शुद्धा—सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, वायुनायिक जीवोंमें मारणातिकसमुद्रातको क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सकल सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका देवोंके समान

पुढनिपरिणाम विमाण तल सिला-५-५-यूभेतल-उवभसालहजिया-कुड्ड-तोरणादीणं तदुप्पत्ति-जोगाणं दसणादो च । उववादग्देहि देसणेकरह चोइसभागा फोसिदा । तं जहा- हेट्टा जाव छट्टी पुढवि ति पंच रज्जू, उवारे जाव आरण-अन्नुदकप्पो ति छ रज्जू, आयामो त्रित्थारो च एगरज्जू, एद उववादत्तेचपमाणं । ते वि आहरिया ' देवा गियमेण मूल-सरीर परिणिय मरति ' ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण दस-चोइसभागा देसणा । एदं वक्खाणमेत्थेव क्रम्मइयसरीरसासणउववादफोसणस्स एककारह-चोइसभागपरुवणयसुत्तेण विरुद्धं ति ण धेत्तव्वं । जे पुण देवसासणा एइंदिएसुप्पज्जति ति भणति, तेसिमभिप्पाएण वारह चोइसभागा देसणा उववादफोसण होदि; एदं पि वक्खाण संत-दच्चसुत्तविरुद्धं ति ण धेत्तव्व ।

तेजसकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकममुद्धातका अभाव माना गया है। और पृथिवीके त्रिकाररूप विमान, शय्या, शिला, स्तम्भ और स्तूप, इनके तलभाग, तथा खड़ी हुई शालभजिका (मिट्टी आदिकी पुतली) भित्ति और तोरणादिक उनकी उत्पत्तिके योग्य देखे जाते हैं।

उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग (११) स्पर्श किए है। यह इसप्रकार है—मेरुतलसे नीचे छठी पृथिवी तक पाच राजु होते हैं, ऊपर आरण अच्युतकत्प तक छह राजु होते हैं और आयाम तथा विस्तार एक राजु है। इस प्रकार ग्यारह राजु उपपादक्षेत्रका प्रमाण है।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रवेश करके ही मरते हैं। उनके अभिप्रायसे सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका उपपादसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम दस बटे चौदह भाग (११) प्रमाण होता है। किन्तु यह व्याख्यान यहींपर विग्रह-गतिको प्राप्त कामेणशरीरवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद-स्पर्शनके ग्यारह बटे चौदह (११) भागके प्ररूपक सूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए। और जो ऐसा कहते हैं कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव, एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके अभिप्रायसे कुछ कम बारह बटे चौदह (११) भाग उपपादपदका स्पर्शन होता है; किन्तु यह भी व्याख्यान सत्प्ररूपणा और द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके विरुद्ध पड़ता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए।

१ प्रसिद्ध ' मूलतल्लम ' इति पाठ ।

२ अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न दशा ।

३ श्री सं. प. २६ । जी. व. प. ७४ ७६

सम्मामिच्छाद्वि असंजदसम्माद्विही केवडिय खेतं पोसिद,
लोगम्स अससेज्जदिभागो ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स जन्थो वुच्चदे । सम्मामिच्छाद्विही सत्थाणसत्थाण-विहारपदि-
सत्थाणवेदण कमाय पेउच्चियसमुग्घादग्गेहि चदुण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो फांमिदो ।
माणुमरेत्तादो असंखेज्जगुणो । कारण खेत्तमगो । असज्जदसम्माद्विहीण सत्थाणसत्थाण
विहारपदिमत्थाण वेदण कमाय पेउच्चिय मारणतिय उवनादग्गदाणे खेत्तमिह वुत्तथो संभ
रियं वत्तवो ।

अट्ट चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ६ ॥

पुत्रसुत्तादो सम्मामिच्छाद्वि-अमज्जदसम्माद्विही केवडिय खेत्त फांसिदमिदि
अणुवट्ठे । अदीदकालणेत्ति वयणम्म अज्जाहारो कायव्वो । कुदो ? एदेसिं दोण्ह
गुणट्ठाणाण वट्ठमाणकालविसिद्धुखेत्तस्स पुत्र परुपिदत्तादो । सम्मामिच्छाद्विही सत्था
णेण तिण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाज्जादो अमखेज्जगुणो फांसिदो, तिरियलोगस्स

सम्पग्मिध्यादष्टि और असयतसम्पग्दष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्त्रस्थान, वेदनासमुदात्त,
कपायसमुदात्त और वैकियिकसमुदात्तगत सम्पग्मिध्यादष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।
इसका कारण क्षेत्ररूपणाके समान ही जानना चाहिए । स्वस्थानस्थान, विहारवत्स्त्रस्थान,
वेदनासमुदात्त, कपायसमुदात्त, वैकियिकसमुदात्त, मारणातिकसमुदात्त और उपपादपत्रको
प्राप्त असयतसम्पग्दष्टि जीवोंका स्पर्शन क्षेत्ररूपणामें कहे गये अर्थको स्मरण करके कहना
चाहिए ।

सम्पग्मिध्यादष्टि और असयतसम्पग्दष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम
आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ६ ॥

यहापर पूर्वसूत्रसे 'सम्पग्मिध्यादष्टि और असयतसम्पग्दष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है' इतने पदकी अनुश्रुति होता है । तथा 'अतीतकालने' इस वचन का भी
अध्याहार करना चाहिए, क्योंकि, दोनों गुणस्थानोंके चर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका पहले
प्ररूपण किया जा चुका है । सम्पग्मिध्यादष्टि जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, अट्टाद्विहीणसे असख्यातगुणा तथा तिरियलोकका

१ सम्पग्मिध्यादष्टिपत्रसम्पग्दष्टिभिरौत्सयावत्स्वयेयमाग अधी वा चतुर्दशभागा देवाना । स कि १, ८.
२ प्रतिपु 'समाविय' इति पाठ ।

सखेज्जदिभागो । एत्थ सत्थाणखेत्तमेलानणाविहाण पुच्च व कायच्च । विहारवदिसत्थाणे-
वेदण कसाय वेउच्चियसमुग्घादगदेहि अट्ट चोद्दसभागा देसुणा फोसिदा । एत्थ देसुण
विधानं पुच्च व वत्तच्च ।

अमजदसम्माइट्ठीहि सत्थाणेण तिप्प लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाज्जादो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदा, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो । तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागसेत्तुप्पायणे
सासणमंगो । विहारवदिसत्थाण वेदण कसाय वेउच्चिय मारणतियसमुग्घादगदेहि अट्ट
चोद्दमभागा देसुणा फोसिदा, उपरि छ रज्ज, हेट्ठा दो रज्जु ति । उपनादगदेहि छ
चोद्दसभागा देसुणा फोसिदा, हेट्ठा अमजदसम्माइट्ठीण उपनादरेत्ताणुजलमादो ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ७ ॥

सत्थाणमत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदण कसाय वेउच्चिय मारणतियपदाण पञ्ज-

सत्यातवा भाग स्पर्श किया है । यहापर स्वरथानक्षेत्रके मिलानका विधान पूर्ववत् ही
करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत
सम्यग्मिव्याहृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । यहापर
देशानका विधान पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

असयतसम्यग्घृष्टि जीवोंने स्वरथानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असख्यातवा भाग, अट्टाईट्ठीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र और तिर्यग्लोकका सत्यातवा भाग स्पर्श
किया है । तिर्यग्लोकके सत्यातवे भागरूप क्षेत्रके उत्पन्न करनेमें सासादनगुणस्थानके
स्पर्शनके समान ही वर्णन जानना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात,
वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं असयतसम्यग्घृष्टि जीवोंने कुछ कम
आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरुके मूलसे ऊपर छह राजु और नीचे दो
राजुप्रमाण ह । उपपादपदको प्राप्त उन्हीं असयतसम्यग्घृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, इससे नीचे असयतसम्यग्घृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र
नहीं पाया जाता है ।

सयतासयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां भाग
स्पर्श किया है ॥ ७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, वैक्रियिक
समुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदगत सयतासयतोंकी पर्यायार्थिकनयसम्यग्घृष्टि स्पर्शन-

द्वियपरूवणा सेचतुछा ।

छ चौदसभागा वा देसूणा ॥ ८ ॥

पुण्य बड्ढमाणकालविसिद्धसेच परुनिदमिदि कुट्टु इद सुचमदीदकालसबधीदि
अवगम्मदे । अणागदकालसबधी ण होदि, तेण व्यवहाराभावादो । अधना अदीदाणागद-
कालविसिद्धसेचत्ताण परूयाणि पडिउममव्यसुत्ताणि ति णिच्छओ फायव्वा, उमयत्य
वित्तैसामावादो । सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदण कसाय वेउच्चियसमुग्घादगदेहि
सजदासजदेहि तिण्हं लोमाणमसखेजदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाज्जादो
असखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ सत्थाणमत्थाणसेत्ताणयणनिघाण बुचदे-

सयभूरमणसमुद्रनिपत्तभो देहि वि पामेहि सादिरेगमेगरज्जुअट्टपमाणं होदि ।
सयपहपवदपरभागसेच वि देहि वि पामेहि एगरज्जुअट्टमभागमेतनिक्खभो होदि ।
ते दो वि मेलिदे पचड्ढमागा होंति । एदे रज्जुविकरभग्ग्हि अवणिदे तिणिण अट्टमागा होंति ।
एदग्ग्हि खेचे सुज्जमडलागारेण सट्ठिदे भोगभूमिपडिभागो णत्थि सजदासजदा । बाहि

प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है ।

संयत्तासयत्त जीवोंन अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श
क्रिये हैं ॥ ८ ॥

पूरुमें धरतमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यह क्षेत्र
अतीतकालसम्बन्धी है, यह बात जानी जाती है । किन्तु यह अनागत (भविष्य) काल
सम्बन्धी नहीं है, क्योंकि, उसके साथ व्यवहारका अभाव है । अथवा, पीछेके सभी क्षेत्र
अतीत और अनागतकाल विशिष्ट क्षेत्रोंकी प्ररूपणा करनेवाले हैं, ऐसा निश्चय करना
घातिप, क्योंकि, भूतकाल और भविष्यकालमें स्पर्शनकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है ।
स्थस्थानस्वस्थान, विहारयत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, फपायसमुद्घात और धैक्कियिकसमुद्घात
गत सयत्तासयत्तौने सामायलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातया भाग, तिर्यग्लोकका
सख्यातया भाग और अट्टाज्जादोसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब यहापर सयत्ता
सयत्त जीवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान हैं—

स्वयम्भूरमणसमुद्रका विष्कम्भ दोनों ही पार्श्व भागोंसे साधिक एक राजुके
अधेप्रमाण है । स्वयम्भुपर्वतका परभागवर्ती क्षेत्र भी दोनों ही पार्श्व भागोंकी अपेक्षा
एक राजुके अधेप्रमाणत्र विष्कम्भवाला है । ये दोनों ही विष्कम्भ मिला देनेपर एक
राजुके आठ भागोंमेंसे पाच भाग प्रमाण (५) क्षेत्र हो जाता है । ये पाच बटे आठ (५)
भाग राजुके विष्कम्भमेंसे निकाल देनेपर तीन बटे आठ (३) भाग अवशिष्ट रहते हैं । इस
तीन बटे आठ (३) भागवाले सूर्यमण्डलके आकारसे साक्ष्यत और भोगभूमिसे प्रतिबद्ध
क्षेत्रमें संयत्तासयत्त जीव नहीं होते हैं । किन्तु बाहरी पाच बटे आठ (५) भागोंमें जम्बूद्वीप

लएसु पचसु अडुभागेसु अडुइजदीनेसु दोसु समुहेसु च अत्थि, कम्मभूमिचादो ।
 व्यामार्धकृतित्रिक समस्तफलितमिति ' एदेण सुत्तेण मज्झिल्लखेत्तफलमाणिदे सोलस-
 तागीसभागवभहियचदुसट्टिचदुसदरूवेहि जगपदरे भागे हिदे एगभाणो आगच्छदि ।
 रज्जुपदरम्हि अपणिय संसेज्जगुलेहि गुणिदे संजदासंजदसत्थाणसेत्तं तिरियलोगस्स
 जेज्जदिभागमेत्तं होदि । मेसपदाण खेत्तमाणिज्जमाणे एगं जगपदर ठविय संसेज्ज-
 चिअगुलेहि संजदासंजदउत्सेधस्म एगूणपचासभागमेत्तेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखे-
 दिभागमेत्तखेत्त होदि । कध संजदासजदाण सेसदीव समुहेसु संभरो ? ण, पुञ्जवेरिय-
 तत्थ चित्ताणं सभव पडि विरोधाभावा । कधमेसो अत्थो सुत्तेण अकहिदो अव-
 दे ? ण एस दोसो, सुत्तट्टिएण ' वा ' सदेण अवुत्तसमुच्चयट्टेण सूचिदत्तादो ।

गोपड ओर पुष्करार्ध इन अटाईं डीपोंमें और लज्जोदाधि वा फालोदाधि इन दो समुद्रोंमें
 सयत जीव रहते हैं, क्योंकि, यहाँ पर कर्मभूमि है । ' व्यासके आधेका वर्ग करके
 तिगुना कर देनेसे विवक्षित क्षेत्रका समस्त क्षेत्रफल निकल आता है ' इस कारण-
 मध्यवर्ती अर्थात् भोगभूमि प्रतिगुण क्षेत्रका क्षेत्रफल निकालनेपर जो प्रमाण आता है
 सोलह बटे सत्ताईस भागसे अधिक चारसौ चौसठ (४६४ $\frac{1}{2}$) रूपोंसे जगप्रतरमें
 देनेपर उपलब्ध एक भागके बराबर होता है ।

उदाहरण—मध्यम क्षेत्रफलका व्यास $\frac{3}{2}$, $3 \left(\frac{3}{2} \times \frac{3}{2} \right) = 3\frac{3}{4}$
 य $\frac{9}{864\frac{1}{2}} = \frac{1323}{12960} = \frac{27}{256}$

यह स्वयंप्रभाचलके आभ्यन्तर भागवर्ती मध्यमक्षेत्रका क्षेत्रफल है ।
 इसे एक राजुप्रतरमेंसे निकालकर सख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकके
 सख्यातवें भागप्रमाण सघतासघतोंका स्वरूपानक्षेत्र हो जाता है । विहारपत्स्वस्थानादि
 दोप पदोंका क्षेत्र निकालनेपर—एक जगप्रतरकी स्थापित करके सघतासयत जीवोंके
 शरीरकी ऊर्चाके उन्नचास भागमात्र सरयात सूच्यगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकके
 सख्यातवें भागमात्र क्षेत्र होता है ।

शुक्रा—मानुषोत्तरपर्यंतसे परभागवर्ती और स्वयंप्रभाचलसे पूर्वभागवर्ती शेष
 दोप समुद्रोंमें सयतासयत जीवोंकी सभावना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वमयके वैरी देवोंके द्वारा यहाँ ले जाये गये तिर्यं-
 चसयतासयत जीवोंकी सभावनाकी अपेक्षा कोई विरोध नहीं है ।

शुक्रा—सूत्रसे नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और अनुक्तका अर्थात् नहीं
 कहे गये अर्थका समुच्चय करनेवाले ' वा ' शब्दसे उक्त अर्थात् अर्थ सूचित किया गया है ।

मारणतियसमुग्घादग्देहिं उ चोद्दसभागा देसणा पोमिदा । कुटो ? सन्वत्य लोमणालीए
अब्भतरे अच्चिय मारणतियकरण पडि विरोहाभागादो । केण उणा छ चोद्दसभागा ?
हेट्टिमेण जोयणसहस्सेण जारणचुदप्रिमाणणमुपरिमभागेण च ।

पमत्तसजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं फोसिद,
लोगस्स असस्सेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

द्वन्द्वद्वियणयमस्सिदूण मणमाणे अटीद वडुमाणालेसु 'लोगस्म असस्सेज्जदिभागो'
इदि होदि । पज्जप्रद्वियणण पुण अरलविज्जमाणे अत्थि विसेमो । पडुमाणकालमस्सिदूण
पज्जप्रद्वियणयपरणणाए सेचभगो । सपदि अदीदकालमस्सिदूण पज्जप्रद्वियपरणणा
कीर्त्ते । त जघा—सत्याणमत्याण निहारदिमत्याण वेदण-रुमाय वउच्चियतेजाहारसमुग्घाद
ग्देहि चदुग्घ लोगणमसस्सेज्जदिभागो पासिदो, माणुसग्गेत्तस्स सस्सेज्जदिभागो ।
पिउच्चणादिडडुपिचेहि माणुसग्गेत्तभतरे अप्पटिहयगमणेहि रिमीहि अदीदकाले सव्व पि
माणुसग्गेत्त पुमिज्जदि ति 'माणुसग्गेत्तस्स सस्सेज्जदिभागो' इदि वयण ण घड्ढे ? ण

मारणातिकसमुद्घातगत सघतामयत जीवोंने कुछ कम छह घटे चोदह (१६) माग
स्पर्श किये हैं, क्योंकि, लोमणालीके भीतर सघत्र रहकर मारणातिकसमुद्घात करनेके प्रति
कोई विरोध नहीं है ।

शुक्ला—यदापर यद छह घटे चोदह (१६) माग किस क्षेत्रमें कम करना चाहिए ?

समाधान—सुमेरसे नीचेके एक हजार योजनसे और आरण अच्युत विमानोंके
उपरिम भागसे कम करना चाहिए ।

प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकरुका असत्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ९ ॥

द्रव्याधिकनयका आश्रय लेकर स्पर्शनक्षेत्रके कहनेपर अतीत और वर्तमानकालमें
लोषके असत्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्शनका क्षेत्र होता है । किन्तु पर्यायाधिकनयके अथ
लम्बन करनेपर कुछ विशेषता है । उसमेंसे वर्तमानकालका आश्रय करके पर्यायाधिकनय
सम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही स्पर्शनका क्षेत्र है । अतः
अतीतकालका आश्रय लेकर पर्यायाधिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररूपणा की जाती है ।
इस प्रकार है— स्वस्थानस्वरस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात
वैधियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातगत प्रमत्तसयतदि गुणस्थानवर्त
जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असत्यातवा भाग स्पर्श किया है और मनुष्य
क्षेत्रका सत्यातवा भाग स्पर्श किया है ।

शुक्ला—विश्रियादि रुद्धिप्राप्त और मानुषक्षेत्रके भीतर अप्रतिहत गमनशी
कृत्तपिणोंने अतीतकालमें सम्पूर्ण मानुषक्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिए 'मनुष्यक्षेत्रका स
तथा भाग स्पर्श किया है' यह वचन घटित नहीं होता है ?

एस दोसो, उतरि जोयणलक्ष्मणुपायणेण जोयणलक्ष्मणमेत्तगमणे संभवाभावादो । मेरुमत्थय-
चढणसमत्थाणमिसीणं किमिदि जोयणलक्ष्मणुपायणे ण सभयो ? होदु णाम मेरुप्वदुद्देसे'
सा सत्ती, ण सच्चत्थ, 'माणुसखेत्तस्स सखेज्जदिभागो ' इति आहरिययणणहाणु-
ववत्तीदो । अवन अदीदकाले लद्धिसपण्णमुणिरहेहिं सच्च पि माणुसखेत्त पुत्तिज्जदि,
तस्म माणुसखेत्तएसण्णहाणुपत्तीदो । सत्थाणे पुण माणुसखेत्तस्म संखेज्जदिभागो चेन
पोत्तिदो । जदि एन, तो पच्चिदियतिरिक्खणां पि पुच्चवेरियदेवाण पयोगादो जोयण-
लक्ष्मणुपायण पावदि ? होदु, ण को पि दोसो । मारणंतियसमुग्घादगदेहि चदुण्ह लोगाणम-
सखेज्जदिभागो पोत्तिदो, माणुसखेत्तादो अमखेज्जगुणो । मारणंतियखेत्त तिरियलोगस्स
सखेज्जदिभागो, तदो सखेज्जगुणमसखेज्जगुण वा किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि । ण

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक लाख योजन ऊपर उठनेकी अपेक्षा
एक लाख योजन प्रमाण गमन करनेकी उनमें सभावना नहीं है ।

शंका—सुमेरुपर्वतके मस्तक (शिखर) पर चढनेमें समर्थ ऋषियोंके क्या एक
लाख योजन ऊपर उठकर गमन करनेकी सभावना नहीं है ?

समाधान—भले ही सुमेरुपर्वतके ऊर्ध्वप्रदेशमें ऋषियोंके गमन करनेकी शक्ति
रही आहे, किन्तु मानुषक्षेत्रके ऊपर एक लाख योजन उठकर सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति
नहीं है, अन्यथा 'मनुष्यक्षेत्रके सख्यातवै भागमें' ऐसा आचार्योंका वचन नहीं बन
सकता है ।

अथवा, अतीतकालमें विक्रियादि लब्धिसम्पन्न मुनिरोंने सर्व ही मनुष्यक्षेत्र स्पर्श
किया है, अन्यथा उसना 'मनुष्यक्षेत्र' यह नाम नहीं बन सकता है ।

एतस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा उक्त प्रमत्तादि सयतोंने मनुष्यक्षेत्रका सख्यातवा भाग
ही स्पर्श किया है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो पचेन्द्रिय तिर्यचोंका भी पूर्वभ्रमके वैरी देवोंके प्रयोगसे
एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है ?

समाधान—यदि तिर्यचोंका ऊपर एक लाख योजन तक जाना प्राप्त होता है, तो
होये, उसमें भी कोई दोष नहीं है ।

मारणान्तिकसमुद्रातगत उर्ध्वी प्रमत्तसयतादिकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असख्यातवा भाग ओर मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त प्रमत्तसयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मार-
णान्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा अथवा असख्यात-
गुणा क्यों नहीं होता है ?

१ म १ प्रती ' -इद्देसणवती ', म २ प्रती अयश्चिनु ५' -इद्देसे सा सत्ती ' इति पाठः ।

१ म प्रती ' को जि ', अयश्चिनु ' को रिथ ' इति पाठ ।

ताव उद्भवद्वाणं' पणदालीसजोयणलस्रपविक्रमभाणं' समपरिमडलमद्विदाणं' सत्तरज्जु
 आयदाणं' रोच तिरियलोगस्म संसेज्जदिभागो होदि, ससेज्जपदरगुलमेत्तसेडिपमाणत्तादी।
 ण च पणदालीसजोयणलस्रपविक्रममसेज्जगुलनाहरल ससेज्जनरज्जुआयदरूपणामिय
 विमाणमेत्ततिरिच्छपद्दाण रोच पि तिरियलोगस्म ससेज्जदिभागो होदि, ण्दस्म पुच्च
 रोत्तादी ससेज्जगुणहीणस्स तिरियलोगस्म ससेज्जदिभागत्तत्रोधा। विमाणप्पडिद्विद
 अससेज्जुवनादभगणसम्मूहवद्दुत्तेसु समुदिदेसु किण्ण त होड ? ण, सेटीए अमसेज्जदि
 भागामसेज्जजोयणरुंदर्येत्तेसु गहिंसेसु वि तदममत्तादी ।

सजोगिकेवलीहि केवडिय खत्त पोसिद, लोगस्स असखेज्जदि-
 भागो, असखेज्जा वा भागा, सच्चलोगो वा ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्म वडुमाणकालमस्सिदूण पज्जत्रद्वियपरूणणाए रोत्तभगो । अदीद-

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि, ऊपरकी ओर प्रवर्तमान, पेंतालीस लाख योजन
 विष्कम्भवाले, समपरिमडल आकारसे संस्थित, और सात रातु आयत, ऐसे मारणान्तक
 समुदात करोगाले प्रमत्तसपतादि जीवोंका क्षेत्र तिर्यंग्लोकका असख्यातवां भाग नहीं होता
 है, क्योंकि, यह क्षेत्र सख्यात प्रतरागुलमात्र जगद्वेणीके प्रमाण ही होता है। और न सख्यात
 रातु आयत, तथा कल्पवासी विमानोंके प्रमाण तिर्यगरूपसे प्रवर्तमान उक्त जीवोंका पेंतालीस
 लाख योजन विस्तार और सख्यात अगुल बाह्यव्याला मारणान्तकक्षेत्र भी तिर्यंग्लोकका
 सख्यातवा भाग होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त क्षेत्रसे सख्यातगुणे हीन इस क्षेत्रको तिर्यंग्लोकका
 सख्यातवा भाग माननेमें विरोध आता है।

शुक्रा—विमानोंमें प्रतिष्ठित असख्यात उपपादशय्यागाले भयनोंके सम्मुख प्रवर्तमान
 उक्त जीवोंके समस्त मारणान्तकक्षेत्र समुक्त करने पर तिर्यंग्लोकका सख्यातवा भाग क्यों
 नहीं हो जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षेत्रीके असख्यातवें भाग तथा असख्यात योजन विस्तृत
 क्षेत्रोंके ग्रहण करने पर भी तिर्यंग्लोकका सख्यातवा भाग प्राप्त होना असम्भव है।

सजोगिकेवली भगवन्तोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां
 भाग, असख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १० ॥

इस सूत्रकी घतमानकालको आश्रय करके पर्यायाधिकनयसम्बन्धी स्पर्शतकी प्ररू
 पणा क्षेत्रके समान है। अतीतकालको आश्रय करके पर्यायाधिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा भी
 क्षेत्रके समान ही है। विशेष बात यह है कि कपाटसमुदातगत केवलीका स्पर्शतक्षेत्र

१ प्रतिपु 'ण' स्थाने 'ए' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'वदपम' इति पाठः ।

कालमस्सिदूण पज्जपट्टियपरूवणाए खेत्तभंगो चेप । णवरि क्काडगदस्स पणदालीस-
जोयणसदसहस्सवाहल्ल जगपदरमेग क्काडखेत्तं होदि । अवर णवदिजोयणसदसहस्स-
वाहल्ल जगपदरं होदि । एव दोण्णि क्काडखेत्ताणि मेलिदे तिरियलोगादो सखेज्जगुणाणि ।
(एवमोधपरूवणा समत्ता)

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि
केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ ११ ॥

सत्थाणसत्थाण निहारपदिसत्थाण-वेदण-कमाय वेउत्त्रिय-मारणतिय-उववादगदेहि
मिच्छादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो वट्टमाणकाले पोसिदो, माणुसखेत्तादो
असखेज्जगुणो । सेम खेत्तभंगो ।

छ चोइसभागा वा देसूणा ॥ १२ ॥

सत्थाणसत्थाण-निहारपदिसत्थाण वेदण-कमाय-वेउत्त्रियसमुग्घादगदेहि मिच्छा-
दिट्ठीहि अदीदकाले णेरइएहि चदुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असखेज्ज-
गुणो फोसिदो । एसो अत्थो सुत्ते अवुत्तो कध परूविज्जदे ? ण, सुत्तत्थेण ' वा ' सदेण

पैतालीस लास योजन वाहल्यवाला एक जगप्रतरप्रमाण कपाटक्षेत्र होता है। (यह कायोत्सर्गस्थ
क्वैलीका अपेक्षा जानना) । और दूसरा अर्थात् समुपविष्ट केवलीके कपाटसमुद्रातका क्षेत्र
नव्वे लाख योजन वाहल्यवाले जगप्रतरप्रमाण कपाटसमुद्रातसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र होता है ।
इस प्रकार दोनों कपाटक्षेत्रोंको मिला देनेपर तिर्यग्लोके सरयातगुणा क्षेत्र हो जाता है ।

(इस प्रकार ओघपरूवणा समाप्त हुई)

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुयासे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने
कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११ ॥

स्रस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्रस्थान, वेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात, वैक्रियिक-
समुद्रात, मारणान्तिकसमुद्रात और उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें
स्पर्श किया है । शेष कथन क्षेत्रपरूवणाके समान जानना चाहिए ।

नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह
भाग स्पर्श किये हैं ॥ १२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्रस्थान, वेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात और वैक्रियिक
समुद्रातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शका—सूत्रमें नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे कहा जा रहा है ?

१ विवेकेण गल्लदुवादेन नरकगतीं प्रथमायां पृथिव्यां नारकीअनुसुणस्थानैलोकस्यानस्येयमागः स्युह ।
स. वि. १, ८.

अदीदकाले छ चोदसभागा देखणा पोसिदा। ऊणपमाण देखणतिण्णिजोयणसहस्सं। तिरिक्ख-
णेरइयाण सव्वदिससु गमणागमणसभो अत्थि चि छ चोदसभागा होंति, कध देखणत्त ?
बुच्चदे- विग्गहो जीवाण किं सहेउओ, अहो अहेउओ चि ? ण ताव अहेउओ, णिकारण-
कज्जाणुगलभादो। विदिये कारण वचव्वमिदि। कम्म तक्कारणं, ससारिजीवसव्वावत्थाणं
कम्मज्जरिक्खकारणाणुगलभादो। तत्थ वि आणुपुच्चिणाम चेव कारण, अण्णासिं सव्व-
पयडीण पुव पुध ऋज्जाणुगलभादो, पुव्वुत्तरसरीराणमंतरालखेत्ते आणुपुच्चिणं विनागो
होदि चि गुरूदंसादो वा। आणुपुच्चिउदयाभावे वि मुक्कमारणतियजीवाण वक्कत्तुवलभादो
णाणुपुच्चिफल विग्गहो चि णामकणिज्जं, तस्म तित्थयरस्सेव पच्चासण्णविनागाणुपुच्चि-
फलत्तादो। अगुलस्स असरोज्जदिभागमेत्तवाहल्लतिरियपदरग्ग्हि सेठीए असंखेज्जदिभागमेत्त-
ओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ गिरियगइपाओगाणुपुच्चिणं

कुछ कम छह वटे चोदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये ह। यहापर कुछ कमका प्रमाण देशोन
तीन हजार योजन हे।

शका—तिर्यच और नारकियोंका सर्व दिशाओंमें गमनागमन सम्भव है, इसलिये
पूरे छह वटे चोदह ($\frac{1}{4}$) भाग ही स्पर्शन क्षेत्र होना चाहिये, फिर कुछ कम कैसे कहा ?

समाधान—विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह क्या सहेतुक होते हैं, अथवा अहेतुक ?
अहेतुक तो माने नहीं जा सकते हैं, क्योंकि, बिना कारणके कार्य पाया नहीं जाता। यदि
दूसरा पक्ष ग्रहण किया जाता है अर्थात् विग्रह सहेतुक होते हैं, तो उसमें कारण कहना
चाहिये ? विग्रहका कारण कर्म है, क्योंकि, ससारी जीवोंकी सर्व अवस्थाओंका कर्मको
छोडकर और कोई कारण पाया नहीं जाता है। उसमें भी आनुपूर्वीनामक नामकर्म ही
विग्रहका कारण है, क्योंकि, अन्य सभी प्रकृतियोंके पृथक् पृथक् कार्य पाये जाते हैं, तथा
पूर्वशरीरको छोडनेके पश्चात् और उत्तरशरीरको ग्रहण करनेके पूर्व अन्तरालधर्ती क्षेत्रमें
आनुपूर्वीनामकर्मका विपाक (उदय) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है।

शका—आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके नहीं होनेपर भी मारणान्तिकसमुद्घात करने-
वाले जीवोंके विग्रह पाये जाते हैं, इसलिये विग्रह आनुपूर्वीनामकर्मका फल है, ऐसा नहीं
माना जा सकता है ?

समाधान—ऐसी आशका नहीं करना चाहिये, क्योंकि, वह विग्रह तीर्थकरप्रकृतिके
समान निकट भविष्यमें उदय होनेवाले आनुपूर्वीनामकर्मका फल है।

शका—सूच्यगुलके असरयातवें भागमात्र बाहल्यवाले तिर्यग्रतरमें अर्थात् राजुके
चर्गमें जगधेणीके असरयातवें भागमात्र अवगाहनाके त्रिकल्पोंसे गुणा करनेपर वहा जो राशि
अर्थात् आकाश प्रदेशोंकी संख्या आती है उतने प्रमाण नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीकी प्रकृतिया

अदीदकाले छ चौदसभागा देखणा पोसिदा । ऊणपमाणं देखणतिणिणजोयणमहस्सं । तिरिक्ख-
णेरइयाणं सच्चदिसासु गमणागमणसभो अत्थि ति छ चौदसभागा होंति, कध देखणत्त ?
वुच्चदे- विग्गहो जीवाण िं सहेउओ, आहो अहेउओ ति ? ण ताव अहेउओ, णिक्कारण-
कजाणुत्तलभादो । विदिये कारण वत्तवमिदि । कम्म तक्कारणं, समारिजीवसव्वावत्थाण
कम्मपादिरत्तिकारणाणुत्तलभादो । तत्थ वि आणुपुत्तिणाम चेव कारण, अण्णासिं सच्च-
पयडीण पुत्र पुव कजाणुत्तलभादो, पुत्तुत्तरसरीराणमतारालसेत्ते आणुपुत्तीए विनागो
होदि ति गुरुदेसादो वा । आणुपुत्तिउदयाभावे वि मुक्कमारणंतियजीवाण वक्कत्तुवलंभादो
णाणुपुत्तिफल विग्गहो ति णासकणिज, तस्स तित्थयरस्सेव पचासण्णविनागाणुपुत्ति-
फलत्तादो । अंगुलस्स अससेज्जदिभागमेत्तवाहल्लतिरियपदरम्हि मेटीए अससेज्जदिभागमेत्त-
ओगाहणत्रियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ णिरयगइपाओग्गाणुपुत्तीए

कुछ कम छह घटे चौदह (१ १/४) भाग स्पर्श किये ह । यहापर कुछ कमका प्रमाण देशोन
तीन हजार योजन हे ।

शका—तिर्यंच और नारकियोंका सर्व दिशाओंमें गमनागमन सम्भव है, इसलिये
पूरे छह घटे चौदह (१ १/४) भाग ही स्पर्शन क्षेत्र होना चाहिए, फिर कुछ कम कैसे कहा ?

समाधान—विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह क्या सहेतुक होते हैं, अथवा अहेतुक ?
अहेतुक तो माने नहीं जा सकते हैं, क्योंकि, बिना कारणके कार्य पाया नहीं जाता । यदि
दूसरा पक्ष ग्रहण किया जाता है अर्थात् विग्रह सहेतुक होते हैं, तो उसमें कारण कहना
चाहिए ? विग्रहका कारण कर्म है, क्योंकि, ससारी जीवोंकी सर्व अवस्थाओंका कर्मको
छोडकर और कोई कारण पाया नहीं जाता है । उसमें भी आनुपूर्वीनामक नामकर्म ही
विग्रहका कारण है, क्योंकि, अन्य सभी प्रकृतियोंके पृथक् पृथक् कार्य पाये जाते हैं, तथा
पूर्यशरीरको छोडनेके पश्चात् और उत्तरशरीरको ग्रहण करनेके पूर्व अन्तरालवर्ती क्षेत्रमें
आनुपूर्वीनामकर्मका विपाक (उदय) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

शका—आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके नहीं होनेपर भी मारणान्तिकसमुद्घात करने-
वाले जीवोंके विग्रह पाये जाते हैं, इसलिये विग्रह आनुपूर्वीनामकर्मका फल है, ऐसा नहीं
माना जा सकता है ?

समाधान—ऐसी आशका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, यह विग्रह तिर्यंकरप्रकृतिके
समान निकट भविष्यमें उदय होनेवाले आनुपूर्वीनामकर्मका फल है ।

शका—सूच्यगुल्के असरयातवें भागमात्र बाह्यवाले तिर्यंकरप्रतरमें अर्थात् राजुके
घर्गमें जगथेणीके असरयातवें भागमात्र अथगाहनाके विकल्पोंसे गुणा करनेपर यहा जो राशि
अर्थात् आकाश प्रवेशोंकी संख्या आती है उतने प्रमाण नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीकी प्रकृतिया

पयडीओ । लोम सेठीए असमेज्जदिभागमेचओगाहणप्रियप्येहि गुणिदे तिरिक्खगइपा-
 ओग्माणुपुच्छीए पयडिप्रियप्पा होंति । पणदालीसजोयणलक्खसनाहल्ले तिरियपदरे उट्ट
 क्खवाड्ढेदणयणिप्पण्णे' सेठीए असमेज्जदिभागमेचओगाहणप्रियप्येहि गुणिदे मणुमगदि-
 पाओग्माणुपुच्छीए पयडिप्रियप्पा होंति । पणजोयणसदवाहल्लतिरियपदरे सेठीए
 असरोज्जदिभागमेचओगाहणप्रियप्येहि गुणिदे देवगदिपाओग्माणुपुच्छीए पयडिप्रियप्पा
 होंति त्ति वग्गणसुत्तादो आणुपुच्छिणाम सट्ठणधियाडि चेत्रेत्ति णासंकाणिज्ज, तिस्ये
 येच सट्ठणैसु तावादाए एकत्थेन वत्तारविरोहादो । ते च आगासपदेसा एत्थ चेन अच्छति

होती है । धनलोकमें जगध्रेणीके असस्ययातयें भागमात्र अवगाहनाके विकल्पोंसे गुणा करने
 पर तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वके प्रकृति विकल्प होते हैं । पैंतालीस लाख योजन याहल्ययाले
 तिर्यग्प्रतरमें ऊर्ध्वकपाटके छेदनेमें निष्पन्न क्षेत्रको जगध्रेणीके असस्ययातयें भागमात्र
 अवगाहन विकल्पोंमें गुणा करनेपर मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वके प्रकृति विकल्प होते हैं ।
 नी सौ योजन याहल्ययाले तिर्यग्प्रतरमें जगध्रेणीके असस्ययातयें भागमात्र अवगाहन विकल्पोंसे
 गुणा करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वके प्रकृति विकल्प होते हैं । इन वर्गणाखंडके सूत्रोंके
 अनुसार आनुपूर्वीनामा नामकर्मकी प्रकृति सस्थान अर्थात् पुद्गल विपाकी ही है ।

समाधान — ऐसी भी आकाश नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, क्षेत्र और संस्थानोंमें
 व्याप्त अर्थात् क्षेत्रविपाकी ओर पुद्गलविपाकी होते हुए भी उस आनुपूर्वीप्रकृतिका एक
 ही अर्थमें व्यापार मान लेनेमें विरोध है। दूसरी बात यह भी है कि ये आकाशके प्रदेशके इसी

१ एदाणि पणदालीसजोयणसदमहस्सनाहलाणि तिरियपदराणि कथमुप्पण्णाणि त्ति भागेदे वुच्चदे— उट्ट
 क्खवाड्ढेदणयणिप्पण्णाणि त्ति इदरेभिसाणुउदिक्खमाण तिरियपदराण धणलोगरस य उप्पत्तिमपरुक्खिय एदामि चेव
 तिरियपदराणपुप्पण क्किमड्ढ वरुक्खिज्ज ? लोममठानपक्खणट्ठ । उट्टक्खवाड्ढिमिदि एदण लागो निविट्ठो । कथमेसा
 लागसस सण्णा ? वुच्चदे— ऊर्ध्व व तत् कपाट व ऊर्ध्वकपाटमित्त लोकाः । ऊर्ध्वकपाट जेण लोमो चोदमरज्जुउत्तसा
 सत्तमरुदो मज्ज उवरिमपरतो व एगरज्जुवाड्ढो उवरि बद्धलोउदमे पचरज्जुवाहल्लो मल्ले सत्तज्जुवाहल्लो, अण्णत्थ
 जहाणुत्तहु। बाहल्लो । तेण उट्टिक्खक्यावावमो । उट्टक्खवाड्ढस्स छेदण उट्टक्खवाड्ढदण तेण उट्टक्खवाड्ढदणेण निप्पण्णाणि
 एदाणि पणदालीसजोयणसदमहस्सनाहलाणितिरियपदराणि । सपहि एय उट्टक्खवाड्ढदणविहाण वुच्चदे । तं जहा—
 सत्तज्जुड्ढदत्तमि दाणु त्ति पायेसु तिण्णि तिण्णिवत्तुआयामेण एगरज्जुविकसमण उट्टक्खवाड्ढ छेत्तव । पुणा पणदालीस
 जोयणसत्तुत्तसह माणुत्त हत्ता उवरि सव मन्निमपदेस उट्टक्खवाड्ढ छिदिदव्व । पुणो सुह १ भूमि ५ त्रिसेसा ४ उच्छद
 ३ मज्जिदा वट्टिपमाण होदि ६ । एदाए वट्टिण पणदालीसजायणलक्खेत्तु वट्टिदस्सेत्त दोसु त्ति पायेसु अवणेदव ।
 एवमुट्टक्खवाड्ढेदणेण पणदालीसजोयणसदमहस्सनाहलाणि तिरियपदराणि निप्पण्णाणि । धवला - अ प्र पत्र
 १२०६ (वर्गणाखंड)

त्ति ण णियमो अत्थि, समयविरोहेण तेसिमवद्वाणादो । तदो आणुपुव्विविवागापाओग्ग-
खेत्ते अनद्वाणं उप्पण्णपढम निट्ठिय तदियनकेसु णत्थि चि देह्णत्त घडदे । एसो अत्थो
उत्तरि सन्नत्थ जहानसरं परूणेदव्वो ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगहारे जो बुत्तो, सो वत्तव्वो ।

पांच चौदसभागा वा देसूणा ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय वेउत्तियसमुग्घादग्गदेहि सासण-
सम्मादिट्ठीहि च्चदुण्हं लोगणमसखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो असखेज्जगुणो । त जघा-
णेइयाण विलाणि सखेज्जजोयणवित्थडाणि वि अत्थि, असखेज्जजोयणवित्थडाणि वि ।
तत्थ जदि वि च्चदुरासीदिलक्खणेरइयाणासा असखेज्जजोयणवित्थडा होंति, तो वि सव्व-
खेत्तसमासो तिरियलोगस्स असखेज्जदिभागो चेत्त जघा होदि, तथा वत्तइस्सामो-

स्थान विशेषपर ही रहते हैं, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, उनका अवस्थान परमाणुमके
अविरोधसे माना गया है ।

इसलिए आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके अप्रायोग्य क्षेत्रमें अवस्थान उत्पन्न होनेके प्रथम,
द्वितीय और तृतीय विग्रहोंमें नहीं है, अतः देशानता घटित हो जाती है । यह अर्थ ऊपर
भी सर्वत्र यथावसर प्ररूपण करना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्या-
तवा भाग स्पर्श किया है ॥ १३ ॥

इस सूत्रका अर्थ जो क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है वही यहापर कहना चाहिए ।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे
चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, और वैक्रि-
यिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका अस-
ख्यातवा भाग और अद्वाइद्दीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह इस प्रकारसे है—
नारकियोंके बिल सख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असख्यात योजन विस्तृत भी हैं ।
उनमें यद्यपि चौरासी लाख नारकियोंके आवास असख्यात योजन विस्तृत होते हैं, तो भी
उन समस्त नारकावासोंका क्षेत्र समास अर्थात् क्षेत्रोंका जोड़ तिर्यग्लोकका असख्यातवा भाग
जिस प्रकारसे होता है, उस प्रकारसे कहते हैं—

गिरयात्रासा के नि परिमडलायासा, के नि तसा, के नि चउरसा, के नि पचसा, के नि छसा । एदे सचे नि समीकरणे कडे चउरसा अमखेज्जजोयणनित्थडा हँति । सयल गेरइयरासिणा घणगुलस्म सखेज्जदिभागे गुणिदे वट्टमाणकाले गेरइएहि रुद्धरेच होदि । वट्टमाणे गेरइयरुद्धगिरयनिलभागादो अरुद्धभागो सखेज्जगुणो चि संखेज्जरूपेहि गुणिदे गेरइयाणमदीदसत्थाणखेच होदि । तेण तिरियलोगस्म असखेज्जदिभागच ण विरुद्धदे । एव ' वा ' सहस्रचिदम्म जत्थस्म परूणणा कदा होदि । सासणस्स गिरयगदीए उवसादो णत्थि, सुत्तशडिसिद्धत्तादो । मारणतियममुग्घादगदेहि पंच चोदसमागा पोसिदा । बुदो ? सत्तमपुट्टरीदो सामणाण मारणतियकरणसमनाभावा । त बुदो णव्यदे ? एदम्हादो चैव सुत्तादो णव्यदे ।

सम्मामिच्छादिद्वि असंजदसम्मादिद्वीहि केवडियं खत्तं पोसिदं,
लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥

नारकियोंके आवास कितने ही तो गोल आकारवाले होते हैं, कितने ही त्रिकोण, कितने ही चतुष्कोण, कितने ही पचकोण और कितने ही नारकावास षट्कोण होते हैं । इन सभी आकारोंवाले नारकावासोंके समीकरण करनेपर ये चतुरस्र और असख्यात योजन विस्तृत हो जाते हैं । सम्पूर्ण नारकराशिसे घनागुलके सरयातवें भागको गुणा करनेपर वर्तमानकालमें नारकियोंसे रुद्ध क्षेत्र होता है । वर्तमानकालमें नारकोंद्वारा रोके हुए नारकोंके बिल भागसे अरुद्धभाग सरयातगुणा होता है, इसलिये सरयात रूपसे गुणा करनेपर नारकोंका अतीतकालसमर्थी स्वस्थानक्षेत्रका प्रमाण हो जाता है । अत तिर्यग्लोकका असरयातवा भाग (जो ऊपर स्पर्शन क्षेत्र बताया गया है, वह) त्रिरोधको नहीं प्राप्त होता है । इस प्रकार ' वा ' शब्दसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा की गई है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका नरकगतिसमें उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, उसका सूत्रमें प्रतिषेध किया गया है । मारणातिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने पाच षटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सातवीं पृथिवीसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणातिकसमुद्घात करना समभव नहीं है ।

शका— यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— इसी ही सूत्रसे जाना जाता है कि सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मारणातिकसमुद्घात नहीं करते । (यदि करते होते, तो सूत्रमें छह षटे चौदह (१४) भागके स्पर्शका उल्लेख होता) ।

सम्यग्निध्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहाररदिसत्थाण-पेदण कमाय-वेउणियसमुग्घादगदेहि सम्मा-
मिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठिहि णट्ठमाणकाले चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुस-
खेत्तादो अमखेज्जगुणो पोसिदो । कारण खेत्तसिद्ध । अदीदकाले वि एदेहि दोहि वि गुण-
ट्ठानेहि एदेहि पदेहि चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो चेव पोसिदो, 'असखेज्जजोयणवित्त्यडा
गेरइयसव्वावासा ' इदि मणेण संकप्पिय एमाणासखेत्तफल चउरासीदिलक्खरूवेहि गुणिदे
तिरियलोगसस्र असखेज्जदिभागमेत्तखेत्तफलोवलभादो । सम्मामिच्छादिट्ठिणं मारणंतिय-उत्ताद-
पदा णत्थि । अमंजदसम्मादिट्ठिहि मारणतिय उत्तादगदेहि चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो,
माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणो षट्ठमाणकाले पोसिदो । कारण खेत्तसिद्ध । अदीदकाले
मारणतियसमुग्घादगदेहि असजदसम्मादिट्ठिहि चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुस-
खेत्तादो असखेज्जगुणो पोसिदो । कुदो ? सव्वजीनाणं अक्कमउक्कणियमदंसणादो, उट्ठं
गच्छमाणजीनाण पि अप्पणो उप्पत्तिखेत्तमपापेदूण अंतरकाले चेव दिस विदिसाण
गमणामाणादो । ण च उप्पत्तिखेत्तसमाणखेत्तरट्ठियाण पि जीनाणमणियदगमणमत्थि,

स्वस्थानस्वस्थान, विहारचरस्वस्थान, चेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात और वैकि-
यिकसमुद्धातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने वर्तमानकालमें
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है। अतीतकालमें भी इन दोनों ही
गुणस्थानवर्ती नारकी जीवोंने इन्हीं दोनों पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असख्यातवा भाग ही स्पर्श किया है, क्योंकि, 'असख्यात योजन विस्तृत नारकियोंके सर्घ
आनास होते ह' इस प्रकार मनसे लक्षण करके एक नारकाय(सका क्षेत्रफल चौरासी लाख
रुपोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असख्यातवा भागमात्र क्षेत्रफल पाया जाता है। सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।
मारणांतिकसमुद्धात और उपपादगत असयतसम्यग्दृष्टि नारकोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श
किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है।

अतीतकालमें मारणांतिकसमुद्धातगत असयतसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है,
क्योंकि, सर्घ जीवोंके अपक्रमपट्टका नियम देखा जाता है (देखो प्रथम भा पृ १००)। तथा
कार जानेवाले जीवोंके भी अपने उत्पत्ति क्षेत्रको नहीं प्राप्त करके अतरालकालमें ही निश्चित
दिशाको छोड़कर अन्य दिशा या विदिशामें गमन करनेका अभाव है। और न उत्पत्तिक्षेत्रके
समान अर्थात् समतल अय क्षेत्र पर स्थित जीवोंके भी अनियत गमन होता है, क्योंकि,

एगदिसाए शियदगमणादो, निरिच्छ गच्छमाणण पि जीवाणमप्पणो उप्पज्जमाणदिस मोत्तूण जण्णदिसाणं गमणाभावादो, उप्पज्जमाणदिसं गच्छताण पि जीवाणं अप्पणो उप्पज्जमाणखेचसमाणद्वानमपावेदूण अतराले सच्चत्थ उज्जुलणांभावादो। तदो सच्चणिरयात्तासे हितो माणुसखेचमागच्छताण सम्मादिट्ठीण गिरयात्तासप्पडिद्धिदपडिणियदत्तद्वान पामणं चदुण्ह लोगापममखेज्जदिभागो चेव । अधवा णेरइयसम्मादिट्ठीण तत्थतणमिच्छाइट्ठीण (च) 'घणरज्जुपदरसत्तमासासपदेसेहितो (ण)' णिग्गमणमत्थि, मणुसोअवादियत्तादो, णेरइयपडिद्वान मणुमगइपाओग्गाणुपुच्चीण तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुच्चीण व पडिबद्धा-गासपदेसाण रज्जुपदरम्मिह सच्चत्थामावादो । किं तदभाअलिगम ? एद चेव पोसणसुत्त । मगीकरणे क्खे जदि एक्खणेरइयात्तासपिकरामो एगसेठिं सेठिणियदियग्गमूलेण यडियमेत्तो होदि, तो तस्स रत्तफलं जगपदर सेठिपढमग्गमूलेण खडियमेत्त होदि । पुणो अदीद काले तत्थ द्वाइदूण उट्ठु मारणतियं भेल्लताण एद खेत्तफल मुह होदि, सरेज्जरज्जु

काका गमन एक दिशामें ही, अर्थात् उत्पत्तिक्षेत्रकी ओर ही, नियत हो चुका है । तिरिछे गीमन करनेवाले भी जीवोंके अपनी उत्पत्ति होनेवाली दिशाको छोड़कर अन्य दिशाको गमन नहीं होता है । उत्पत्ति होनेकी दिशाको जाते हुए भी जीवोंके अपने उत्पत्ति होनेके क्षेत्रके समान अन्य स्थानको नहीं प्राप्त करके अन्तरालमें सर्वत्र ऋजुवलन अर्थात् सरलगतिसे घनगति होनेका अभाव है । इसलिए सभी नारकावासियोंसे मनुष्यक्षेत्रको जानेवाले और नारकावासियोंसे प्रतिष्ठित होते हुए नियत क्षेत्रकी ओर प्रघर्षमान सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन सामायलोक भादि चार लोकोंका असंघाततां भाग ही है ।

अथवा, मनुष्योंमें उत्पत्ति होनेके कारण नारकी सम्यग्दृष्टियोंका वहाके मिथ्यादृष्टियोंके समान घनराजुप्रतरके सर्व आकाशप्रदेशोंसे निर्गमन नहीं होता है, क्योंकि, नरकगतिसे प्रतिबद्ध मनुष्यगतिप्रयोग्यानुपूर्वावाले जीवोंके तिर्यग्गतिप्रयोग्यानुपूर्वीजाल जीवोंके समान प्रतिबद्ध आकाश प्रदेशोंका राजुप्रतरमें सर्वत्र अभाव है ।

शुका—इस सर्वत्र अभावका लिंग क्या है, अर्थात् यह किस आधारसे जाना ?

समाधान—उक्त बातका बतानेव ला यही स्पष्टान सूत्र है ।

समीकरण करनेपर यदि एक नारकावासका विष्कम्भ एक जगश्रेणीको जगधेणीके द्वितीय घर्गमूलसे खडित करनेपर एक खड मात्र होता है, तो उसका क्षेत्रफल जगधेणीके प्रथम घर्गमूलसे जगप्रतरको खडित करनेपर एक खड मात्र होता है । पुन अतीतकालमें यहाँ रहकर ऊपरकी ओर मारणातिकसमुद्धान करनेवालोंका यह क्षेत्रफल मुखरूप हो जाता है और संघात राजुप्रमाण आयाम होता है ।

१ प्रथिनु 'उडुवळया' म प्रती 'उडुवळया' इति पाठ ।

२ म तेषु कोष्ठकप्रतर्गवपाठी नास्ति ।

आयामो होदि । एत्थ उस्सेधेण खेत्तफल गुणिदे तिरियलोगादो असखेज्जगुण मारणतिय-
खेत्तं होदि चि उच्चे ण होदि, णिरयानासो ण एको नि एरिसविकसमसहिओ अत्थि ।
कधमेद परिच्छिज्जदे ! ' णेरइया असजदसम्मादिट्ठी सव्वपदेहि अदीदकाले तिरियलोगस्स
असखेज्जदिभाग पुमति ' चि सुत्तयणादो । केत्तिओ पुण णेरइयानामाण निक्खमो
होदि चि वुत्ते असखेज्जजोयणमेत्तो होदि । त जहा— सग मगमत्थाणखेत्तं वृत्तिय सग-
मगनिल संखाए ओवड्ढिदे एगनिलेण रुद्धखेत्तमसखेज्जजोयणनिक्खमायाम होदि । त
संखेज्जरज्जहि गुणिदे एगनिलमस्सिदूण मारणतियखेत्तं होदि । एद निलसखाए गुणिदे
सयल मारणतियखेत्तं होदि । एद तिरियलोगस्स असखेज्जदिभाग होदि । सव्वणिरया-
वासाण खादफलमसंखेज्जजोयणमेत्तं होदूण एगरज्जुपदरस्स असखेज्जदिभागमेत्तं चेत्त
होदि । कुदो ! ' असंजदसम्मादिट्ठिमारणतियपोसणं तिरियलोगस्स असखेज्जदिभागो ' चि
वयणादो । जदि कहिं पि एक्कस्स निलस्स खेत्तफल रज्जुपदरस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि,

शंका—यहापर अर्थात् उक्त क्षेत्रमें उत्सेधसे क्षेत्रफलको गुणा करने पर तो तिर्यंग्लोकसे असख्यातगुणा मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है ?

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि, इस प्रकारके विष्कम्भसे सहित एक भी नारका घात नहीं है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—' नारकी असयतसम्यग्दृष्टि सर्वपदोंकी अपेक्षा अतीतकालमें तिर्यंग्लोकके असख्यातयें भागमात्र क्षेत्रको स्पर्श करते हैं ' इस प्रकारके सूत्र वचनसे उक्त घात जानी जाती है ।

शंका—नारकोंके आजासोंका विष्कम्भ कितना होता है ?

समाधान—असख्यात योजन प्रमाण होता है । यह इस प्रकारसे है— अपना अपना स्वस्थानक्षेत्र स्थापित करके अपने अपने बिलोंकी सख्याओंसे अपवर्तन करनेपर एक बिलसे दुद्धक्षेत्र असख्यात योजन विष्कम्भ और आयामवाला हो जाता है । उसे असख्यात राजुओंसे गुणा करनेपर एक बिलका आश्रय करके मारणान्तिकसमुदागत क्षेत्र हो जाता है । इस प्रमाणको बिलोंकी सख्यासे गुणा करनेपर सकल मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है । यह मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यंग्लोकके असख्यातयें भागप्रमाण होता है ।

सर्व नारकावासोंका घनफल असख्यात योजनप्रमाण होकर भी एक राजुप्रतरका असख्यातया भागमात्र ही होता है, क्योंकि, ' असयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिक-
स्पर्शन तिर्यंग्लोकके असख्यातयें भाग होता है ' ऐसा सूत्र-वचन है । यदि कहीं भी एक बिलका क्षेत्रकल राजुप्रतरके असख्यातयें भागप्रमाण होता, तो असयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका

तो असजदमम्मादिट्टिमारणतियपोमण तिरियलोगादो असंखेज्जगुण होइ, तिरियपदर
 षाह्छादो मारणतियसेत्तचाहल्लस्त असंखेज्जगुणत्तादो । पढमपुढविसत्थाणसेत्ते सेटीए
 सखेज्जदिभागेण गुणिदे असजदसम्मादिट्टिमारणतियपोसण तिरियलोगादो अमखेज्जगुण
 होदि त्ति के वि पच्चउट्ठाणं कुणति । तण्ण घडदे, सत्थाणसेत्त निलसलागाहि ओउट्टिय
 लद्धस्त वग्गमूलनिकखमेण अद्धरज्जुआयामपोसणसेत्तुलमादो । ण उट्टु गतूग तिरिच्छ
 गच्छताण बहुपोमण, तिरिच्छ गंतूग उट्टु गच्छताण व, पुवुत्तेणेन निकखमेण गमण
 वलभादो । एवमुत्तादस्म वि वत्तव्य ।

पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्टिपहुडि जाव असंजदसम्मा
 दिट्टीहि केवडियं खेत्त पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

सत्थाणगत्याण-विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेउत्तिय-मारणतिय-उत्तादगद-
 मिच्छादिट्टीण परूणणा वट्टमाणकाले सेत्तसमाणा । सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण-वेदण
 कसाय वेउत्तियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्टीहि अदीदकाले चट्टण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो,

मारणातिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यंलोकसे असख्यातगुणा होता, क्योंकि, तिर्यंरूपतरके घाहल्यसे
 मारणातिकक्षेत्रका वाहस्य असख्यातगुणा है ।

प्रथम पृथिवीके स्वस्थानक्षेत्रमें जगध्रेणीके सख्यातवें भागसे गुणा करनेपर असयत
 सम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणातिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यंलोकसे असख्यातगुणा होता है, ऐसा
 कितने ही आचार्य समाधान करते हैं । कि तु यह घटित नहीं होता है, क्योंकि, स्वस्थान
 क्षेत्रको बिलशलाकाओंसे अपवर्तितकर लम्धराशिके चर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे अर्धराजु आयाम
 प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । तथा, ऊपर जाकर तिरछे गमन करनेवाले जीवोंका
 स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है, जैसा कि तिरछे जाकर ऊपर जानेवालोंका स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है ।
 क्योंकि, पूर्वोक्त ही विष्कम्भद्वारा गमन पाया जाता है ।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि नारकोंके उपपादक्षेत्रका भी
 कथन करना चाहिए ।

प्रथम पृथिवीमें नारकीयोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि
 नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातया भाग स्पर्श किया
 है ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणातिक
 समुदात तथा उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शन प्ररूपणा क्षेत्र प्ररूपणाके
 समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय, और वैक्रियिकसमुदातगत
 मिथ्यादृष्टि नारकोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातया भाग

अङ्काइजादो असखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? असखेज्जजोयणनिवरमणिरयाणासखादफलं
ठविय तप्पाओग्गसखेज्जविलमलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असखेज्जदिभागमेचखेनुव-
लंभादो । मारणतिय उप्पादग्गेहि मिच्छादिद्वीहि अदीदकाले तिण्ह लोमाणमसखेज्जदि-
भागो तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अङ्काइजादो असखेज्जगुणो फोसिदो । कथ तिरिय-
लोगस्स सखेज्जदिभागत्त ? बुच्चदे— असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपढमपुढरीनाहल्लम्मि
हेट्ठिमजोयणसहस्सं णेरइएहि सब्बकाल ण छुप्पदि त्ति ऋद्धु जोयणसहस्समणिय सेस-
बाहल्ल रज्जुपदर ठविय उस्सेधेण एग्गणचाममेत्तसडाणि कादूण पदरागारेण ठइदे
तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो होदि, ' एगरज्जुरुदो सत्तरज्जुआयदो जोयणलक्ख-
बाहल्लो तिरियलोगो ' त्ति उपदेसादो । जे पुण जोयणलक्खबाहल्लरज्जुपदु तिरियलोग-
पमाणं भणति तेसिमुत्तदेमेण तिरियलोगादो सादिरेयं मारणं तिय-उप्पादखेत्त होदि ।

और अर्द्धाईवीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि असख्यात
योजन त्रिष्वम्भगले नारकावासोंके घनफलको स्थापित करके तत्प्रायोग्य सख्यात विलशाला-
काओंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके असख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्र उपलब्ध होता है ।
मारणान्तिकसमुदात्त और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आधि-
तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और अर्द्धाईवीपसे अस-
ख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शुका—यद्वापर तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग कैसे कहा ?

समाधान—एक लाख अस्सी हजार योजन प्रथम पृथिवीके बाहल्यमेंसे नीचेका
एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्र नारकियोंने किसी भी समय नहीं छुआ है, ऐसा करके उक्त
प्रमाणमेंसे एक हजार योजन निकालकर शेष एक लाख अन्यासी हजार बाहल्यवाले राजु
प्रतरको स्थापित करके उस्सेधके उनचास खड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर
तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग हो जाता है, क्योंकि, ' एक राजु ख्वाला, सात राजु लम्बा
और एक लाख योजन बाहल्यवाला तिर्यग्लोक है ' ऐसा उपदेश है । किन्तु जो आचार्य एक
लाख योजन बाहल्यवाला और एक राजु गोलार्धवाला तिर्यग्लोकका प्रमाण कहते हैं, उनके
उपदेशानुसार तिर्यग्लोकसे साधिक मारणान्तिक ओर उपपाद क्षेत्र होता है ।

निशेषार्थ—यद्वा पर प्रथम नरकके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक और उपपाद
क्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग इस प्रकार सिद्ध किया गया है—यदि हम तिर्यग्लोकके
एक राजु लम्बे चौडे व मोटाईके सप्तमाश प्रमाण मोटे खड करें तो १४२८५५ योजन मोटाई-
वाले ४९ खड होते हैं । अब यदि एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी और एक राजु
लम्बी चौड़ी प्रथम पृथ्वीके प्रमाणमेंसे नारकियोंसे सदैव अदृष्ट एक हजार योजन मोटा

णं च एदं घडदे, एदम्हि उपदेमे पडिगहिदे लोगम्हि तिणिसद तेदालमेत्तणरञ्जणम-
णुप्पत्तीदो, ' रञ्जु सत्तगुणिदा जगमेठी, सा वग्गिदा जगपदर, सेठीए गुणिदजगपदर
घणलोगो होदि ' ति परिपम्मसुत्तेण सञ्जाहरियसम्मदेण त्रिरोहपसगादो च । कदजुम्मेहि

अवस्तन भाग पृथक् करके शेष १०९००० योजनके एक राजु लम्बे चौड़े ४९ अड करे तो प्रत्येक खडकी मोटाई ३६५३३ $\frac{३}{४}$ योजन प्रमाण होगी जो पूर्णोक्त तिर्यग्लोकके तर्जुनी मोटाईसे लगभग चतुर्धाश पडती है। इस प्रकार यह समस्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग सिद्ध हो जाता है। किन्तु लोककी मृदगाकार मान्यताके अनुसार उक्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग नहीं, किन्तु तिर्यग्लोकसे भी अधिक पड जाता है, क्योंकि, यदि एक राजु व्यासवाले गोल तथा एक लारु योजन मोटाईवाले तिर्यग्लोकके पूर्वप्रकार ४९ अड करे तो प्रत्येक खड एक राजु व्यासवाला गोल तथा २०४० $\frac{३}{४}$ योजन मोटा होगा। इसी प्रकार वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणातिकक्षेत्रके खड भी एक राजु व्यासवाले गोल तथा ३६५३३ $\frac{३}{४}$ योजन मोटे होंगे और उनका समस्त घनफल वर्तुलाकार तिर्यग्लोकके घनफलसे हीन न रहकर अधिक हो जायगा।

उदाहरण—

$$(१) \text{ आयत चतुरस्र तिर्यग्लोक } १ \times ७ \times १००००० \text{ यो} = १ \times \frac{१०००००}{७} \times \frac{४९}{१}$$

$$(२) \text{ उक्त मारणातिकक्षेत्र } १ \times १ \times १७९००० = १ \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

$$(३) \text{ वर्तुलाकार तिर्यग्लोक } १ \times ३ \times \frac{१}{४} \times १००००० = \frac{३}{४} \times \frac{१०००००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

(४) वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणातिकक्षेत्र—

$$\frac{३}{४} \times १७९००० = \frac{३}{४} \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

इस प्रकारके उक्त क्षेत्रोंमें प्रथम दूसरेसे $\frac{१७९}{७} = २५\frac{३}{७} =$ कुछ कम चौगुना अर्थात् सख्यातगुणा सिद्ध होता है। तथा, चौथा तीसरेसे कुछ कम दुगुना अर्थात् सातिरेक सिद्ध होता है।

किन्तु यह घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस उपदेशके स्वीकार करनेपर लोकाकाशमें तीनोंसे तेतालीस घनराजुओंकी उत्पत्ति नहीं होती है। दूसरे, ' राजुको सातसे गुणा करने पर जगध्रेणी होती है, जगध्रेणीकी जगध्रेणीसे गुणा करने पर जगप्रतर होता है, और जगप्रतरकी जगध्रेणीसे गुणा करने पर घनलोक होता है ' इस सर्व आचार्योंसे सम्मत परिकर्मे सूत्रसे विरोध भी प्राप्त होता है। पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त,

पंचिदियतिरिक्ख पज्जत्त-जोणिणि जोदिसिय-वैतरदेव-अवहारकालेहि सुद्दाबंधमुत्तसिद्धेहि अरुद्धजुम्मजगपदरे भागे हिदे एदाओ रासीओ सछेदाओ होज्ज ? ण च एत्त, जीवाणं छेदाभावा । किं च दब्बाणियोगहारवक्खाणाभिह वुत्तहेट्ठिम उपरिमणियप्पा अभावमुवहुक्कते, अवग्गसमुट्ठिदलोगत्तादो । तिण्णिसदत्तेदालघणरज्जुपमाणो उमालोओ णाम । एदम्हादो अण्णो पचदब्बाहारलोगो, तदो सब्बमेद घडदि ति वुत्ते ण, उवमेयाभावे उवमाए अण्णत्थ अणुवलंभादो । तम्हा उममेयेसु उस्सेह-पमाणंगुलपलिदोवम सागरोउमसण्णिदेसु खेत्त-कालेसु सत्तेसु उमाम्भूदउस्सेह पमाणगुल पल्ल-सागराणमत्थित्तमुवल्लम्भदे । तम्हा एत्थ मि उममेएण लोणेण पमाणदो उमालोगाणुसारिणा पचदब्बाहारेण हेदव्व, अण्णहा एदस्स उवमालोगत्ताणुवत्तीदो ।

पचेन्द्रियतिर्यचयोनिमती, ज्योतिष्क और व्यन्तरदेवोंके सुद्दाबंधसूत्र सिद्ध, कृतयुग्मराशिवाले अवहारकालोंसे अकृतयुग्म जगप्रतरमें भाग देने पर ये उक्त राशिया सछेद हो जायेंगी, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उन जीवोंके छेदका अभाव है । (कृतयुग्म आदि राशियोंके लिये देखो तीसरा भाग, पृ २५९) ।

दूसरी बात यह है कि द्रयानुयोगद्वारके व्याख्यानमें कहे गये अघस्तन और उपरिम विकल्प अभावको प्राप्न होते हैं क्योंकि, उक्त प्रकारसे लोक वर्गविहीनराशिसे समुत्पन्न होता है ।

शुद्धा—तीन सौ तेतालीस घनराजुप्रमाण लोकका नाम उपमालोक है । इससे अन्य पाच द्रव्योंका आधारभूत लोक भिन्न है । यदि ऐसा माना जाय, तो यह सत्र उपर्युक्त कथन घटित हो सक्ता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपमेयके अभाजमें उपमाकी अयत्र उपलब्धि नहीं होती है । अथात् यदि उपमाके योग्य किसी पदार्थका अस्तित्व न माना जायगा, तो फिर उपमाकी सार्थकता रुद्धा पर होगी ? इसलिए उत्सेधागुल और प्रमाणागुल सक्षिक क्षेत्ररूप उपमेयोंके तथा पल्योपम और सागरोपम सक्षिक कालरूप उपमेयोंके विद्यमान होने पर उपमारूप उत्सेधागुल, प्रमाणागुल, पल्य और सागरका अस्तित्व पाया जाता है । अतएव यहाँ पर भी उपमेयरूप लोकके साथ प्रमाणाकी अपेक्षा उपमालोकका अनुसरण करनेवाला पाच द्रव्योंका आधारभूत लोक होना चाहिये, अन्यथा इसका नाम उपमालोक हो नहीं सकता ।

१ खेत्तेण पचिदियतिरिक्ख पचिदियतिरिक्खपज्जत्त पचिदियतिरिक्खजोणिणि पचिदियतिरिक्खअपज्जत्तपट्ठि पदरमवहिरादि देवअवहारकालादो असत्तेज्जगुणहीणेण कालेण सत्तेज्जगुणहीणेण कालेण सत्तेज्जगुणेण कालेण असत्तेज्जगुणहारेण कालेण ॥ सुद्दाबंधसूत्र, अ प्र प ५१९ एदे अवहारकाउ जहाकमेण सलागभूदे ठविय पचिदियतिरिक्ख-पचिदियतिरिक्खपज्जत्त पचिदियतिरिक्खजोणिणि-पचिदियतिरिक्खअपज्जत्तपमाणेण जगपदरे अवहिरिक्खनाणे सलागाओ जगपदर च उगत समपति । घवला अ प्र प ५१९

सामणसम्माइड्ढि सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण वेदण-कमाय वेउक्खिय मारण-
तियसमुग्घादगदखेत्तपरूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा । सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण
वेदण कसाय-वेउक्खियसमुग्घादगदेहि सामणसम्मादिड्ढीहि अदीदकाले^१ चदुण्ह लोगाणम
सखेज्जदिमागो, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ पज्जवट्टियपरूवणा मिञ्जा

विशेषार्थ—यद्वा घवलाकारने लोकनी घर्तुलाकार मान्यताके विरुद्ध पांच हेतु दिये
हैं । जो इस प्रकार है—

(१) प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यंग्लोकका सत्यताका
भाग कहा गया है । किन्तु यदि लोकको आयतचतुरस्र न मानकर घर्तुलाकार माना जाये
तो यह क्षेत्र तिर्यंग्लोकसे हीन नहीं कि तु साधिक हो जाता है । (देखो पृ १८४)

(२) परिकर्ममें राजु, जगधेणी, जगप्रतर और लोकका सम्बन्ध बतलाकर घनलोकको
३४३ राजुप्रमाण सिद्ध किया है । यह प्रमाण व व्यवस्था घर्तुलाकार लोकमें नहीं पाई जाती ।

(३) सुहाधर्ममें पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त, पचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती,
ज्योतिषी और व्यतर देवोंके अघट्टारकालोंको कृतयुग्मराशि अर्थात् चारसे पूर्णत भाजित
होनेवाला कहा है, और इनसे जगप्रतर निरवशेष भाजित हो जाता है, जिससे जगप्रतर भी
एतयुग्मराशि सिद्ध हुआ । किन्तु घर्तुलाकार लोककी मायतमें जगप्रतर अकृतयुग्मरूप
पक्षेण जिससे उक्त अघट्टारकालोंद्वारा वह पूर्णत भाजित नहीं होनेसे वे पचेन्द्रिय तिर्यंच,
पर्याप्त, योनिमती आदि राशिया सछेद हो जाती ह ।

(४) द्रव्याणुयोगद्वारके व्याख्यानमें गुणस्थानों व मार्गणस्थानोंके भीतर जीवोंका
प्रमाण उपरिमविकल्प और अघस्तनविकल्पों द्वारा भी समझाया गया है । किन्तु यदि लोकको
उक्त प्रकार वगुलाकार मान लिया जाय तो उसमें वर्ग व वर्गमूल प्रमाण नहीं प्राप्त होनेसे
वे विकल्प बन ही नहीं सकेंगे । (देखो तीसरा भाग, प्रस्तावना पृ ४८)

(५) यदि यह कहा जाय कि तीन सौ तैतालीस राजुप्रमाणवाले लोककी द्रव्याभार
लोक न मानकर केवल कल्पित उपमालोक ही माना जाय, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि,
उपमेयके अभावमें उपमाका अस्तित्व ही नहीं रहता है । तथा अगुल, पल्योपम, सागरोपम
आदि जो अन्य उपमाप्रमाण माने गये हैं उन सबके आधाररूप उपमेय प्राप्त है । अत
प्रमाणलोकको भी काल्पनिक न मानकर सोपमेय ही स्वीकार करना आवश्यक है ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारव-स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैत्रियिक और मारणान्तिक-
समुद्घातगत सासादनसम्पदृष्टि नारकी जीवोंके वतमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा
क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवस्वस्थान, वेदना, कपाय और वैत्रि-
यिकसमुद्घातगत सासादनसम्पदृष्टि नारका जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका वसन्ध्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर

दिद्विसमाणा । मारणंतियममुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तादो असखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ कारण मिच्छाईद्वीणं व वत्तव्व ।

सम्मामिच्छादिद्वि-असजदसम्मादिद्वीणं अप्पणो सच्चपदानं वट्टमाणकाले खेत्त-
भगो । एदेहि दोहि गुणट्टणोहि अदीदकाले सत्थाणसत्थाण पिहारदिसत्थाण-त्रेदण-
कमाय वेउच्चियसमुग्घादगदेहि चट्ठुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाईज्जादो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदो, एगणिरयानासस्स असखेज्जघणगुलाणि ठत्रिय तप्पाओग्गाहि सखेज्जत्रिल-
सलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असखेज्जदिभागमेत्तदंसणादो । मारणतिय-उववाद्गदेहि
असजदसम्मादिद्वीहि चट्ठुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाईज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो ।
कुदो ? सट्ठुकसभदुवाहाण खादफलस्स तिरियलोगस्स असखेज्जदिभागत्तुलंभादो ।
जदि त्रि उट्ठु गत्तू गसगधिलग्गमूलत्रिकसभेण मणुसगइ गच्छति, तो त्रि तिरियलोगस्सा-
सखेज्जदिभागो, तिरिच्छेण लट्ठुखेत्तस्स त्रिलेखेत्तवग्गमूलगुणिदसेटीए संखेज्जदिभाग-
पमाणत्तादो । एदमत्थपदं सच्चत्थ जहासभय जाणिऊण जोजेयव्व ।

पर्यायाविक्रमनयलम्बधी स्पर्शनक्षेत्रत्री प्ररूपणा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके समान है । मारणा-
न्तिकसमुद्घातगत नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी सपेक्षा सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर कारण मिथ्यादृष्टियोंके समान कहना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि ओर असयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके अपने सर्वपदोंकी स्पर्शन-
प्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारयस्वस्थान,
वेदना, कपाय और वेक्रियिकसमुद्घातगत उक्त दोनों ही गुणस्थानवाले जीवोंने अतीतकालमें
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, एक नारकावासके असख्यात घनागुलोंको स्थापन करके तत्पा-
योग्य सख्यात विलशालाकाओंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका असख्यातवा भागमात्र क्षेत्र
देखा जाता है । मारणागतकसमुद्घात और उपपाद्गत असयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है, क्योंकि, (असख्यात योजन विस्तृत श्रेणीरुद्धादि बिलोंके मारणान्तिक व
उपपाद्गत उक्त नारकीयोंका) अपने दोनों ओरके वडाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका घनफल
तिर्यग्लोकका असख्यातवा भाग पाया जाता है ।

यद्यपि ऊपर जाकर अपने विलके घर्गमूलप्रमाण धिक्कमसे नारकी मनुष्यगतिकी
जाते हैं, तो भी तिर्यग्लोकका असख्यातवा भाग ही स्पर्शनक्षेत्र रहता है, क्योंकि, तिरिच्छे-
रूपसे लम्ब उस क्षेत्रका प्रमाण, त्रिलसम्बन्धी क्षेत्रके घर्गमूलसे गुणित जगश्रेणीका संख्या-
तवा भाग ही होता है । यह अर्थपद सर्वत्र यथासभय जान करके जोड़ना चाहिए ।

विदियादि जाव छट्टीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्टि-सासण-
सम्मादिट्टीहि केवडिय खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥१७॥

सत्याणसत्याण-विहारवदिमत्थाण-वेदण कमाय-वेडविय-मारणतिय उत्रादगद
मिच्छादिट्टीण उत्रादगिरहिदसेतपदट्टिदसासणतन्मादिट्टीण च परुत्तणाए खेतमगो,
वट्टमाणकालपडिदत्तादो ।

एग वे तिण्णि चत्तारि पंच चौदसभागा वा देसूणा' ॥ १८ ॥

एथ 'वा' सद्वचिदत्य ताज वचइस्सामो । सत्याणसत्याण विहारवदिसत्याण
वेदण-कमाय वेडवियसपुग्धादगदेहि विदियादि पचपुढविमिच्छादिट्टि-सामणमम्मादिट्टीहि
चदुण्ह लोगणमसरोज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असरोज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो । एथ
कारणं पुब्बं व वत्तच्च । मारणतिय उत्रादगदेहि मिच्छादिट्टीहि अदीदकाले एगो चौदस
भागो विदियाण पुढवीए फोमिदो । तदियाए वे चौदसभागा, चउत्थीए तिण्णि चौदसभागा,

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंमें मिथ्या-
दृष्टि और सासादनसम्बन्धदृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवा
भाग स्पर्श किया है ॥ १७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारतस्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक और मारणात्मिक
समुदात तथा उपपादपदको प्राप्त मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंकी तथा उपपादविरहित और
शेष पदभक्तिष्ठित सासादनसम्बन्धदृष्टि जीवोंकी स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा वर्तमानकालसे
प्रतिषद् होनेसे क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक, दो, तीन,
चार और पाच भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८ ॥

यहापर पहले 'वा' शब्दसे सूचित अर्थको कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहार
वस्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुदातगत द्वितीयादि पांच पृथिवियोंके मिथ्या
दृष्टि और सासादनसम्बन्धदृष्टि नारकियोंने सामा यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा
भाग और अदाहरीवसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । यहापर कारण
पूर्वके समान ही कहना चाहिये । दूसरा पृथिवीमें मारणात्मिकसमुदात और उपपादगत
मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें एक बडे चौदह (१४) भाग स्पर्श किया है ।
तीसरी पृथिवीके नारकी जीवोंने दो बडे चौदह (१४) भाग, चौथी पृथिवीके नारकियोंने

१ द्वितीयादिपु माफतकम्भा मिथ्यादृष्टिमिः सासादनसम्बन्धदृष्टिनिर्लोकरथासंख्येयभाग, एका ही वद
वाराः पंच वदुदसभागा वा दधाना । स वि १, ८

पचमाए चत्तारि चोदमभागा, छट्ठीए पच चोदसभागा, सव्वत्थ णेरइयाणमगम्मखेत्तेणूणा
त्ति वत्तव्व । एअं सामणसम्मादिट्ठीण पि वत्तव्व । णवरि उव्वारादो णत्थिय । किमट्ठमेदेसि
मदीदकाले एत्थिय खेत्त होदि ? णिग्गमण-पवेमण पडि सम्मादिट्ठीण व णियमाभावा ।
भोगभूमिमठाणसट्ठिदा अमखेज्जदीर ममुद्दा णेरइएहि कथ पुमिज्जति ? ण, तत्थ वि
णेरइयाण णिग्गमण पवेमं पडि विरोहाभावादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

एदेसि दोण्ह गुणट्ठाणाण उट्ठमाणकाले सत्याणादिपचपदट्ठियाणं मारणंतियपदट्ठिय-
अमंनदसम्मादिट्ठीण च पररूपाणए खेत्तभगो । एदेहि चेव जदीदकाले सत्याणादिपचपद-

तीन घटे चौदह (१३) भाग, पाचवौं पृथिवीके नारकियोंने चार गटे चौदह (१३) भाग
और छठी पृथिवीके नारकियोंने पाच गटे चौदह (१३) भाग प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया
है । इन सभी पृथिवियोंके नारकियांका देशोन क्षेत्र नारकियोंके अगभ्यक्षेत्रसे कम रहना
चाहिए । इसी प्रकारसे उक्त पृथिवियोंके सर्व पदगत सासादनसम्यग्दृष्ट जीवोंका भी
स्पर्शनक्षेत्र रहना चाहिए । विशेष यात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है ।

शुक्रा— उक्त नारकियोंका अतीतकालमें इतना (सूत्रोक्त) स्पर्शनक्षेत्र क्यों होता है ?

समाधान— इतना अधिक् स्पर्शनक्षेत्र इसलिये होता है कि उक्त पृथिवियोंमें निर्गमन
और प्रवेशनके प्रति अर्थात् जाने और आनेकी अपेक्षा सम्यग्दृष्ट जीवोंके समान मिथ्यादृष्टि
जीवोंका नियम नहीं है ।

शुक्रा— भोगभूमिकी रचनासे सस्थित असख्यात द्वीप समुद्र नारकियोंने कैसे
दर्श किया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यहापर भी नारकियोंका निर्गमन और प्रवेश होनेमें
कोई विरोध नहीं है । अर्थात् मारणाभितकसमुद्रातमी अपेक्षा नारकी जीवोंका उक्त क्षेत्रमें
प्रवेश और निर्गमन वम जाता है ।

द्वितीय पृथिवीमे लेकर छठी पृथिवी तरु प्रत्येक पृथिवीके सम्यग्निध्यादृष्टि
और अमयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका अमख्या-
तरां भाग स्पर्श किया है ॥ १९ ॥

सम्यग्निध्यादृष्टि और अमयतसम्यग्दृष्टि इन दोनों गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान,
विहारव्यवस्थान, चेदना, कषाय और वैकियिक्त्समुद्रात, इन पाच पदोंपर स्थित नारकी
जीवोंकी तथा मारणाभितकसमुद्रस्थित अमयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी वर्तमानकालमें स्पर्शनकी
परुपणा क्षेत्रपरुपणाके समान है । द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके उक्त गुण

द्विदेहि मारणतियपदद्विदमजदमम्मादिद्वीहि य निदियादि-उद्विपुढनिविसेमिएहि चहुण्
 लोमाणमसखेज्जदिभागो, जह्वाडज्जादो अमखेज्जगुणो फोसिदो । कारण पुच्च व वच्च ।
 निदियादि छसु पुढीसु अमजदमम्मादिद्वीणिगुणवादो णटिय ।

सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिद्वीहि केवडिय खेत्तं पेसिदं,
 लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

एदं सुच्च उद्वमाणखेत्तपरुणय, उवरिमसुत्तेण अदीदाणागडकालभिसिद्धयेत्तपरु
 णादो । एदस्म परुणणाण खेत्तमगो ।

छ चौदसभागा वा देसूणा ॥ २१ ॥

सत्याणमत्याग विहारउदिसत्याण वेदण रुमाय वेउन्नियसमुग्वाद्गदेहि मिच्छा
 दिद्वीहि तीदाणागदकालेसु चहुण् लोमाणमसखेज्जदिभागो, जह्वाडज्जादो अमखेज्जगुणो
 फोसिदो । एत्थ कारण पुच्च व वच्च । एमो 'वा' सहत्थो । मारणतिय उपाद्गदेहि
 मिच्छादिद्वीहि तीदाणागडकालेसु छ चौदसभागा चित्ताए जोयणसहस्सेणूण हेट्ठिमचुदुहि

स्थानवर्ती अरवाणादि पाच पदस्वित जीवोंने और मारणातिरुदस्वित असयतमग्गट्टि
 जीवोंने अतीतकालमें सामा यलोक आदि चार लोकोंका असत्प्रातवा भाग और अद्वा
 हीपसे असत्प्रातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।
 द्वितीयादि छह पृथिवियोंमें असयतसम्पट्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

सातवीं पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
 लोकका असत्प्रातवा भाग स्पर्श किया है ॥ २० ॥

यह सूत्र वर्तमानकालिक क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेवाला है, क्योंकि, आगेके सूत्रद्वारा
 अतीत अनागत कालविशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है । इसकी अर्थात् वर्तमानकालके
 दर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह
 षटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थ नस्त्रस्थान, विहारवत्स्थान, वेदना कवाय और धैर्यिकसमुद्घातगत
 मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सामा यलोक आदि चार लोकोंका
 असत्प्रातवा भाग और अद्वाहीपसे असत्प्रातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर भी कारण
 पूर्वके समान कहना चाहिए । यही 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणात्मिकसमुद्घात और
 उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागतकालमें चित्रा पृथिवीके एक

१ सत्तमा पृथिवी मिथ्यादृष्टिभोंकरवासास्ययमागः पद चतुर्दशभागा वा देवोना । स वि १, ६

२ अत्रिपु 'परुणय' इति पाठ ।

सहस्तेहि ऊणा फोसिदा । ण केवल हेट्टिल्लजोयणेहि चेत्त ऊणा, किंतु अणो पि देमो लोगणालीए अब्भंतरे णेरइएहि अचुत्तो अत्थि । त कध णव्वदे ? ' निदियाए पुटवीए एगो चोइसभागो देसूणो ' इदि सुत्तवयणादो । जणहा एदस्स देसूणत्त पिंडिदूण सपुण्णो एगो चोइसभागो होज्ज, चित्ताए जोयणसहस्सपवेसादो । एत्थ पुणो केग खेत्तेणूणो एगो चोइसभागो त्ति वुत्ते वुच्चदे—णिरयगइपाओग्गाणुपुण्डि-पंचिदियतिरिक्कउगइपा-ओग्गाणुपुच्चीहि पडिउद्वखेत्तं मोत्तूण अण्णखेत्तेणूणो । वादरुद्वसव्वखेत्तेणूणत्त किण्ण वुच्चदे ? ण, तत्थ पि आणुपुण्डिपिवागपाओग्गखेत्ताण संभत्त पडि विरोहामात्तादो ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२ ॥

हजार योजनासे कम ओर अधस्तन चार पृथिवियोंसम्बन्धी चार हजार योजनासे कम छद्द घटे चौदह (१४) भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर केवल पृथिवियोंके अधस्तन एक एक हजार योजनासे ही कम क्षेत्र नहीं समझना, किन्तु अन्य भी देश (क्षेत्र) लोकनालीके भीतर नारकियोंसे अद्भुता (अस्पृष्ट) है ।

शुका—यह कैसे जाना ?

समाधान—' द्वितीय पृथिवीका स्पर्शन देशोन एक घटे चौदह भाग है ' इस सूत्र-घवनसे उक्त बात जानी जाती है । यदि ऐसा न माना जाय, तो इस पृथिवीका देशोन क्षेत्र पिंडित अर्थात् एकरित होकर सम्पूर्ण एक घटे चौदह (१४) भाग हो जायगा, क्यों कि चित्रा पृथिवीका एक हजार योजना उस एक राजुमें ही प्रविष्ट है ।

शुका—यहा पर एक घटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम कहा है ?

समाधान—ऐसी आशङ्का करनेपर उत्तर देते हैं कि नररगतिप्रायोग्यानुपूर्वी ओर पचेन्द्रियनिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, इन दोनोंसे प्रतिबद्ध क्षेत्रको छोडकर अन्य शेष क्षेत्रसे कम कहा है ।

शुका—वायुसे रुके हुए सर्वक्षेत्रसे कम उक्त क्षेत्र क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहापर भी जानुपूर्वनामकर्मके विचारके प्रायोग्यक्षेत्रके सभय होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्पगृष्टि, सम्पग्मिध्यादृष्टि और असयतसम्पगृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असरयात्ता भाग स्पर्श किया है ॥ २२ ॥

१ म प्रतो ' पवेहदो ' इति पाठ ।

२ वेपथिमिळोकरपासरयेयमाग । स सि १, ८

एदेसिं तिण्ह गुणद्वाराण सत्तमाए पुढरीए मारणतिय-उच्चमादपदा णत्तिय । सेसपंच पदद्विएहि तिण्हिगुणद्वाराणजीवेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु चदुण्ह लोगाणममखेज्जदिभागो, माणुमसेत्तादो असखेज्जगुणो फोमिदो । कारण पुच्च व चत्तव ।

तिरिक्खसगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय सेत्त फोसिद,
ओघ' ॥ २३ ॥

सत्थाणसत्थाण पेदण कसाय मारणतिय-उच्चमादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागद वट्टमाणकालेसु सच्चलोगो फोमिदो । निहारवदिमत्थाणपणिगदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्ह लोगाणममखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो । असखेज्जेसु ममुदेषु तमजीवरिहिदेसु कथ निहारवदिमत्थाणपरिणदाण तिरिक्खाण समगो ? ण तत्थ पुच्चवेरियदेमाण पयोगदो निहारविरोहाभाणादो । अदीदकाने विहरततिरिक्खेहि छुच्चसेचायणविहाण बुच्चदे-पुच्चवेरियदेरपयोगादो उरि जोयणलक्ख

इन तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीवोंके सातवाँ पृथिवीमें मारणात्मिक और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । शेष स्वस्थानादि पाच पदोंपर विद्यमान उक्त तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातया भाग ओर मनुष्यलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

तियेच्चगतिमें तियेच्चोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ओषके समान सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ २३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुदात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि तियेच्च जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सबलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानसे परिणत तियेच्च मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमें सामा यलोक आदि तान लोकोंका असख्यातया भाग, तियेच्चलोकका सख्यातया भाग ओर अट्टाईट्ठीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शुक्रा—प्रस जीवोंसे विरहित असख्यात समुद्रोंमें विहारव स्वस्थानसे परिणत हुए तियेच्चोंका अस्तित्व कैसे समझ है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वभरके वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनामें कोई विरोध नहीं है । और इसलिए चहा पर डाका अस्तित्व भी समझ है ।

अथ अतीतकालमें विहार करनेवाले तियेच्चोंसे स्पर्श तिये गण क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—पूर्वभयके वैरी देवोंके प्रयोगसे चित्रा पृथिवीसे ऊपर एक लाख योजन

चित्तमेरु कुलसेल कुडल रुजग माणसुत्तर णिंटरपरव्वदादिरुद्धसेच मोत्तूण सव्वं फुमंति
 चि लक्खज्जोयणवाहल्लं रज्जुपदर ठविय उद्धमेगूणपचाससड्डाणि करिय पदरागारेण ठइदे
 तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागमेत्तरेच होदि । वेउच्चियसमुग्घादगदाणं वड्डमाणकाले
 सेवभंगो । तीदाणागदकालेसु तिण्ह लोगाण सखेज्जदिभागो, दोहि लोगेहिंतो असखेज्ज-
 गुणो फोसिदो । कारण, वाउक्काइयजीरा पलिदोमस्स असखेज्जदिभागमेचा निउच्चण-
 कसमा वड्डमाणकाले होंति, ते रज्जुपदर पचरज्जुनाहल्ल अदीदकाले फुसति चि ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असखेज्जदि-
 भागो ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेतमिह परुपिदो ।

सत्त चौदसभागा वा देसूणा ॥ २५ ॥

एत्थ 'वा' सद्व्हे जुच्चदे- मत्थाणमत्थाण-विहारमदिसत्थाण-वेदण-कसाय-
 वेउच्चियसमुग्घादग-सामणसम्मादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो,

मेरुप्रमाण, तथा कुलाचल, कुडलगिरि, रुचरुगिरि, मानुषोत्तर और नगेन्द्रवर पर्वतादिकोंसे
 रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर समी तिर्यच सर्व द्वीप और समुद्रोंका स्पर्श करते हैं । इसलिय एक
 लाख योजन बाह्यवाले राजुप्रतरको रथापन कर ऊपरकी ओरसे उनवास खड करके
 प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यगोक्षके सत्यातर्वे भागप्रमाण क्षेत्र हो जाता है । वैज्जि-
 यिकसमुद्रातगत तिर्यचोंका स्पर्शन वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अर्थात् और
 अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका सत्यातवा भाग और तिर्यग्लोक तथा
 मनुष्यलोक, इन दोनों लोकोंसे असत्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि
 पर्योपमक असत्यातवे भागमान वायुकायिक जीव वर्तमानकालमें विक्रिया करनेमें समर्थ
 होते हैं, और वे पाच राजु बाह्यवाले एक राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रको अर्थात्कालमें स्पर्श करते हैं ।

सासादनसम्पग्घट्टि तिर्यच जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका अस-
 त्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्ररूपणामें कहा जा चुका है ।

सासादनसम्पग्घट्टि तिर्यचोंने भूत और भविष्यकालकी अपेक्षा कुछ कम सात
 बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५ ॥

इस सूत्रमें स्थित 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्व
 स्थान, वेदना, कपाय और वैज्जियिकसमुद्रातगत सासादनसम्पग्घट्टि जीवोंने अर्थात् और

तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागो, अशुद्धज्जादेो असखेज्जगुणो फोसिदेो । एत्थ तत्र तिरिक्ख
सासणसत्थाणसत्थाणखेत्ताणयणविवाण युच्चदे- लउण कालोदग सयभुरमणसमुद्रे मोत्तूण
सेससमुद्रेसु णत्थि सत्थाणसत्थाणसासणा, तत्तुप्पणगतसजीवाणमभानादेो । सखेसु दीवेसु
अत्थि सत्थाणमत्थाणसासणा, तत्थ तमजीवाणमुप्पचिदंसणादेो । सत्थाणसत्थाणसामणेहि
सखे दीना तिण्णि समुदा तीदकाले पुसिज्जति ति तेसिमाणयणद्धमिमा परूवणा कीरेदे ।
जम्बूदीपो रोचगुणिदेण-

सत्त णत्त सुण्ण पच्च य छण्णत्त चट्ठ एक पच्च सुण्ण च ।

जम्बूदीपस्सेद गणिदफउ होइ णायच्च' ॥ ४ ॥

अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सत्या
तथा भाग और अर्द्धद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अथ यहापर तियच सासा
दानसम्यग्दष्टि जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निश्चालनेके विधानको कहते हैं-

लउणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष समुद्रोंमें
स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादानसम्यग्दष्टि जीव नहीं होते है, क्योंकि, यहापर उत्पन्न
होनेवाले अस जीवोंका अभाव हे । हा, सर्वद्वीपोंमें स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादान
सम्यग्दष्टि जीव होते है, क्योंकि, यहापर असजीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । स्वस्थान
स्वस्थानपदस्थित सासादानसम्यग्दष्टि तियच जीवोंने सर्वद्वीप और तीन समुद्र अतीतकालमें
स्पर्श किये है, इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र लानेकेलिए यह प्ररूपणा की जाती है ।
जम्बूद्वीपके क्षेत्रका गणित करनेपर--

सान, नौ, शस्य, पाच, छट्ठ, नौ, चार, एक, पाच और शस्य अर्थात् ७९०५६९४१५०
अगयोजन प्रमाण जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ४ ॥

१ अवरपचेकचउणव छ णत्त सुण्ण णत्तय सत्तो व । अक्कमे जीयणया जम्बूदावस्स खेत्तफल ॥ ५८ ॥
७९०५६९४१५० । एकका कोवी दवा सहस्समेवकं हुवदि पच्च सया । तेवण्णाए सत्ति किंउ हत्थे ससुण्णाए ॥ ५९ ॥
को १ देव १५५३।०।० । एकको होदि विहत्था सुण्ण पादम्मि अशुल्लं एकक । जव छ तिय जूवा त्रिवत्ताउ तिण्णि
णादव्वा ॥ ६० ॥ १।०।१।६।३ । कम्मवसोणाए इव वाटग्गा अवरमोगभूमिए । सच्च हुवते मच्चित्तममोगखिदाए वि
तिण्णि पुत्त ॥ ६१ ॥ २।० ३ सच्च य सण्णासण्णा ओत्तण्णासण्णया तदा एकको । परमाणूण अणनात्ता सत्ता इमा
होदि ॥६२॥ ७।१ । अट्ठालसहस्साए पणवण्णत्तर चउत्तया अत्ता । हारो एक लक्ख पच्च सहस्साणि चउ सया णवव
॥ ६३ ॥ इत्थं इत्थं इत्थं ति प माणसलोया । पण्णासमेकदाल णव छप्पणात्त सुण्ण णव सददा । साहियकोत्त च देवे
अग्दीवस्स सुट्टमफल ॥ ६३ ॥ ति सा

एदस्म एया सलामा होदि १ । एदेण पमाणेण लणसमुद्दे कीरमाणे सो जंबू-
दीपादो खेत्तगुणिदेण चउवीमगुणो होदि । पुत्त च-

वाहिरमूर्खगो अन्मतरसूडवग्गपरिहीणो ।

जंबूदीपपमाणा खटा ते होति चउवीसा' ॥ ५ ॥

एदीए गाहाए सन्वेमि दीप-समुद्दाण पुध पुध खेत्तफलसलामाओ आणेदव्वाओ ।
तत्थ अट्टण्ह खेत्तफलसलामाओ एदाओ-

१ | २४ | १४४ | ६७२ | २८८० | ११९०४ | ४८३८४ | १९५०७२ |

लणसमुद्दखेत्तफलवृप्पणो पमाणेण एगं होदि । लणसमुद्दपमाणेण धादइसंडम्हि
कीरमाणे छग्गुणो होदि । कालोदयसमुद्दो अट्टाणीसगुणो होदि । पोक्करदीपो वीसुत्तर-
सदगुणो होदि । पोक्करसमुद्दो चदुसदछण्णउदिगुणो होदि । एवं लणसमुद्दजंबूदीव-

इसकी अर्थात् जम्बूद्वीपके उक्त क्षेत्रफलकी एक शलाका (१) होती है। इस प्रमाणसे
लवणसमुद्रका माप करनेपर वह जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे चौबीस गुणा होता है। कदा भी है-
लवणसमुद्रकी बाह्यसूचीके घर्गको उसीकी आभ्यन्तर सूचीके घर्गके प्रमाणसे कम
करनेपर जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलप्रमाण उसके चौबीस खड होते हैं ॥ ५ ॥

इस गाथाके अनुसार समस्त द्वीप और समुद्रोंकी पृथक् पृथक् क्षेत्रफल शलाकाए
ले आता चाहिए। उनमेंसे जाठ द्वीप समुद्रोंकी क्षेत्रफल शलाकाए इस प्रकार होती हैं—
१, २४, १४४, ६७२, २८८०, ११९०४, ४८३८४, १९५०७२

उदाहरण—(१) लवणसमुद्र बाह्यसूची ५ लाख, आभ्यन्तरसूची १ लाख योजन.

$$५' - १' = २५ - १ = २४$$

(२) धातकीखडद्वीप बाह्यसूची १३ लाख, आभ्यन्तरसूची ५ लाख योजन.

$$१३' - ५' = १६९ - २५ = १४४$$

(३) कालोदधि-बाह्यसूची २९ लाख, आभ्यन्तरसूची १३ लाख योजन

$$२९' - १३' = ८४१ - १६९ = ६७२ । इत्यादि ।$$

लवणसमुद्रका उत्पन्न हुआ क्षेत्रफल अपने प्रमाणकी अपेक्षा एक होता है। लवण
समुद्रके प्रमाणसे धातकीखडका प्रमाण करनेपर धातकीखड छह गुणा होता है। कालोदधि-
समुद्र अष्टाईसगुणा है। पुक्करवरद्वीप एक सौ बीसगुणा है। पुक्करवरसमुद्र चारसौ छयानवें
गुणा है। इस प्रकारसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाणशलाकाओंसे द्वीप और सागरोंसम्बन्धी

१ वाहिरमूर्खगो अ मतरसूडवग्गपरिहीणो । लवणस कदिमि हिदे इच्छिपदीवद्विखंडपमाण ॥ ति प.

५, २६ वाहिरमूर्खगो अ मतरसूडवग्गपरिहीण । जंबूवासविमघ वत्तिपवेचाणि खडणि । ति, सा ३१६,

खेत्तफले गुणिदे कालोदयममुद्दस्त खेत्तफलं होदि । लणममुद्दादो पोक्खरसमुद्दो
 खेत्तगुणिदेण चत्तारिसदछण्णउदिमेत्तगुणो होदि । तम्हि गुगगारे आणिज्जमाणे
 तिण्णि समुद्दा त्ति कट्ठु रूवूण करिय विरलिय रूप्प पडि सोलस दादूण अण्णोण्ण-
 ञ्मासे कदे वेमदछप्पणा हँति । ते दुगुणिय पुध द्वयिय पुणो पुच्चिल्ल-
 विरलगमेव विरलिय रूप्प पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णगुण करिय उप्पणगराभिं दुगुण-
 रासीदो अण्णिदे पोक्खरसमुद्दस्स गुणमारमलागा हँति । तेहि लणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे
 पोक्खरसमुद्दस्त खेत्तफल होदि । पुणो चउत्थसमुद्दो लणसमुद्द ददूणङ्गणीससदाहिय
 अद्वसहस्सगुणो होदि । एदस्त गुणमारस्स उप्पत्ती बुच्चदे- चत्तारि रूप्पे करिय विर-
 लिय रूप्प पडि सोलस दादूण अण्णोण्णगुणे कदे छण्णउदिरूपाहियचत्तारिमहस्सणि हँति ।
 ते दुगुणिय पुध द्वयिय पुच्चिल्लविरलगगराभिं विरलिय रूप्प पडि चत्तारि दादूण अण्णोण-

उदाहरण—कालोदधि लणसमुद्दसे दूसरा समुद्र है, अत क्रमशलाका २

१६

२-१=१; १=१६; १६×२-४=२८ कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाका
 कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाकाओं द्वारा लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने
 पर कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । लवणसमुद्रकी अपेक्षा पुष्करसमुद्र क्षेत्रफलकी
 अपेक्षा चारसो छयानधे गुणा है । उसका गुणनार निकालनेके लिए पुष्करसमुद्र तीसरा है,
 इसलिये तीनमेंसे एक कम करके शेष बचे दोमा विरलनर एक एक रूपके प्रति सोलह
 देकर परस्परमें गुणा करने पर दो सो छप्पन होते हैं । उन्हें दुगुणा करके पृथक् स्थापित कर
 पुन पहिलेके विरलनको ही विरलित कर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर और परस्परमें गुणा
 करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे उसीकी दूनी राशिमेंसे घटाने पर पुष्करसमुद्रकी
 गुणकारशलाकाए होती है ।

उदाहरण—पुष्करसमुद्रकी क्रमशलाका ३

१६ × १६

३-१=२; १ १=२५६; २५६×२=५१२

४ × ४

विरलनराशि २, १ १=१६; ५१२-१६=४९६ पुष्करसमुद्रकी गुणकारशलाका,
 इन गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर पुष्करसमुद्रका
 क्षेत्रफल हो जाता है । पुन चौथा समुद्र लणसमुद्रकी देसते हुए आठ हजार एक सो
 महारिस गुणा है । इन गुणकारकी उत्पत्ति कहते हैं—
 चारमेंसे एक कम करके शेषको विरलनर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर
 परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छयानधे होते हैं । उन्हें दुगुणाकर पृथक् स्थापनकर
 पहिलेकी विरलनराशिको विरलित कर रूपके प्रति चार देकर परस्पर गुणा करनेपर

सलागाहि दीन सायरजंजूदीवसलागाओ ओरद्विय गुणगारा उप्पादेदव्वा । १।६।१८।
 १२०।४९६।२०१६।८१२८ । एउ ठीदगुणगारसलागाहि लरणममुदजवूदीरसलागाओ
 गुणिय जवूदीरजोयणपदराणि गुणिदे इच्छिददीन-सायराण खेत्तफल हेदि । सपहि समुदाण
 चेव खेत्तफलमाणेदुमिन्नामो चि उप्पणो इच्छिद इच्छिदसमुदाण लरणसमुदगुणगार
 सलागाणयणनिधान वृच्छेदे- लरणोदयसमुदादो कालोदयसमुदो खेत्तफलेण अट्टापीमगुणो ।
 तम्हि उप्पाइज्जमाणे दो खेत्त ठीय पठमस्म वड्डी णत्थि चि एगरुवमणिय सेसेगम्प
 विरलिय सोलस दादूण अण्णोण्णमासे कदे सोलम होंति । ते दुगुणिय चचारि अवणिदे
 कालोदयसमुदस्म अट्टापीस गुणगारसलागा उप्पज्जति । तेहि लरणोदयसमुदस्म

जम्बूद्वीपप्रमाण शलाकाए अपवतितकर गुणकार उ पत्र करना चाहिए जो इस प्रकार होते हैं— १, ६, २८, १२०, ४९६, २०१६, ८१२८ ।

उदाहरण—(१) लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपशलाकाए २४। ल स की छीप सा सम्पर्धी
 शलाकाए २४। $\frac{१}{३४} = १$ लवणसमुद्रकी गुणकारशालाना ।

(२) धातकीछीपकी प्रमाणशालाना १४४। $\frac{१}{१४४} = ६$ गुणकारशलाकाए ।

(३) कालोदकसमुद्रकी प्रमाणशलाका ६७० । $\frac{१}{६७०} = २८$ गुणकार
 शलाका । इत्यादि ।

इस प्रकार स्थापन की गई गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाण
 शलाकाओंसे गुणित करनेपर पुन उसे जम्बूद्वीपके प्रतरात्मक योजनोंसे गुणा करनेपर
 इच्छित द्वीप और सागरोंका क्षेत्रफल जाता है ।

उदाहरण—(१) धातकीछीप गुणकारशलाका ६।

$६ \times २४ \times ७९०५६९४१५०$ धातकीछीपका क्षेत्रफल ।

(२) कालोदक गुणकारशलाका २८।

$२८ \times २४ \times ७९०५६९४१५०$ कालोदकका क्षेत्रफल ।

(३) पुष्करछीप गुणकारशालाना १२०।

$१२० \times २४ \times ७९०५६९४१५०$ पुष्करछीपका क्षेत्रफल । इत्यादि ।

अब केवल समुद्रोंका ही क्षेत्रफल निजालना चाहते हैं, इसलिए अपने अपने इष्ट
 समुद्रोंकी लवणसमुद्रप्रमाण गुणकारशलाकाओंके निकालनेका विधान करते हैं—

लवणोदकसमुद्रसे कालोदकसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा अट्टाईस गुणा है । उसे
 कल्पन करनेके लिए दो रूपमें स्थापनकर प्रथमसमुद्रकी वृद्धि नहीं है, इसलिए एक रूप
 कमकर दोप एक रूपकी विरलन कर उसके ऊपर सोलइ देकर परस्परमें गुणित करनेपर
 सोलइ ही होते हैं । उन्हें दूना कर उनमेंसे चार कम कर देने पर कालोदकसमुद्रकी अट्टाईस
 गुणकारशलाकाए उत्पन्न होती है ।

खेत्तफले गुणिदे कालोदयसमुद्दस्य खेत्तफलं होदि । लयणममुद्दादो पोक्करसमुद्दो
 खेत्तगुणिदेण चत्तारिसदच्छणउदिमेत्तगुणो होदि । तम्हि गुणगारे आणिज्जमाणे
 तिणिण समुद्दा त्ति कट्टु रूवूण करिय निरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण-
 न्भासे कदे वेपदछप्पणा होति । ते दुगुणिय पुघ ड्विय पुणो पुव्विल्ल-
 निरलगमेव निरलिय रूव पडि चत्तारि दादूण अण्णोणगुण करिय उप्पणगराभिं दुगुण
 रासीदो अण्णिदे पोक्करसमुद्दस्य गुणमारसलागा होति । तेहि लयणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे
 पोक्करसमुद्दस्य खेत्तफलं होदि । पुणो चउत्थसमुद्दो लयणसमुद्द ददूणट्टानीससदाहिय
 अट्टसहससगुणो होदि । एदस्य गुणमारस्य उप्पत्ती वुच्चदे— चत्तारि रूवूण करिय विर-
 लिय रूव पडि सोलस दादूण अण्णोणगुणे कदे छण्णउदिरूनाहियचत्तारिसहससाणि होति ।
 ते दुगुणिय पुघ ड्विय पुव्विल्लनिरलगराभिं निरलिय रूव पडि चत्तारि दादूण अण्णोण-

उदाहरण—कालोदधि लयणसमुद्दसे दूसरा समुद्र है, अतः क्रमशालाका २

१६

२-१=१; १=१६; १६×२-४=२८ कालोदकसमुद्रकी गुणकारशालाका

कालोदकसमुद्रकी गुणकारशालाकाओं द्वारा लयणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । लयणसमुद्रकी अपेक्षा पुष्करसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा चारसा छयानवे गुणा है । उसका गुणकार निकालनेके लिए पुष्करसमुद्र तीसरा है, इसलिए तीनमेंसे एक कम करके शेष बचे दोका विरलनकर एक एक रूपके प्रति सोलह देकर परस्परमें गुणा करने पर दो सो छयान होते हैं । उन्हें दुगुणा करके पृथक् स्थापित कर पुन पहिलेके विरलनको ही विरलित कर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर और परस्परमें गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे उसीकी दूनी राशिमेंसे घटाने पर पुष्करसमुद्रकी गुणकारशालाकाप होती है ।

उदाहरण—पुष्करसमुद्रकी क्रमशालाका ३

१६×१६

३-१=२; १=१६; १६×२=३२; ३२×२=६४

४×४

विरलनराशि २, १ १=१६; ५१२-१६=४९६ पुष्करसमुद्रकी गुणकारशालाका,

इस गुणकारशालाकाओंसे लयणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर पुष्करसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । पुन चौथा समुद्र लयणसमुद्रकी वेपते हुए आठ हजार एक सौ बहाईस गुणा है । इस गुणकारकी उत्पत्ति कहते हैं—

चारमेंसे एक कम करके शेषको विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छयानवे होते हैं । उन्हें दुगुणाकर पृथक् स्थापनकर पहिलेकी विरलनराशिको विरलित कर रूपके प्रति चार देकर परस्पर गुणा करनेपर

गुणे कदे चउसद्धी उप्पज्जदि । पुणो पुवित्रल्लदुगुणिदरासिम्हि एदमग्गिदे चउत्थसमुद्दस्स गुणगारमलगा हेति । एदाहि लगणसमुद्दसेत्तफले गुग्गिदे चउत्थसमुद्दसेत्तफले हेदि । एग्गणेण वीजपदेण सव्वसमुद्दण सेत्तफलमाणेद्व्व ।

तथ सव्वपच्छिमस्स सपभूरमणसमुद्दस्स सेत्तफलाणयणं भण्णदे- दीप सागर रूपाणि अद्विदे समुद्दमग्गा हेदि । ताओ समुद्दमलगाओ रूपाओ करिय विरलिय रूपा पडि सोलम दादूग जण्णाण्णवमत्थे कदे जोयणलक्कमग्गेण छत्तीममदरूपाहिय निमहस्सपट्टपण्णेण जगपदरम्हि भागे हिदे एग्गभागो आगन्ठदि । पुणो एद दुगुणिय पुध द्व्विय पुवित्रल्लविरलग विरलिय रूपा पडि चनारि टादूण अण्णोण्णवमत्थे कदे छप्पण्णजोयणलक्काए सेदि खड्दूण एग्गलडमामन्ठदि । त पुवित्रल्लदुगुणिदरासिम्हि अवणिदे सयभूरमणसमुद्दस्स गुणगारमलगा हाति । एदाहि लगणसमुद्दसेत्तफले गुग्गिदे

चौंसठ सरया उत्पन्न होनी है । पुन पहलेकी दुगुणित राशिमैसे इस राशिको षमा देनेपर चौद समुद्रकी गुणकारशालाए हो जाती है ।

उदाहरण—चतुर्थसमुद्रकी समशालाए,

$$४ - १ = ३; \quad \frac{१६ \times १६ \times १६}{१ \quad १ \quad १} = ४०९६, \quad ४०९६ \times २ = ८१९२;$$

$$\frac{४ \times ४ \times ४}{१ \quad १ \quad १} = ६४; \quad ८१९२ - ६४ = ८१२८ \text{ चतुर्थ समुद्रकी गुणकारशालाए}$$

इस गुणकारशालाएके लक्षणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करनेपर चौथे समुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । इस प्रकार इस उक्त धीजपदसे सभी समुद्रोंका क्षेत्रफल निकालता जाहिे ।

उनमें सबसे अंतिम जो स्वयम्भूरमणसमुद्र है, उसके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान कहते हैं—सर्वथा और समुद्रोंकी जितनी संख्या है, उसे आधा करने पर सूर्य समुद्रोंकी संख्या हो जाती है । उन समुद्रशालाओंको एक कम करके विरलिनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर आपसमें गुणा करने पर तीन हजार एक सौ छत्तीससे गुणित एक लाख योजनाके घनसे जगत्प्रतरमें भाग देने पर एक भाग आता है । पुन इसे दूना करके पृथक् स्थापित कर पहलेके विरलिनको विरलिनकर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर आपसमें गुणा करने पर छपन लाख योजनाके प्रमाणसे जगत्पृथ्वीको खडित करनेपर एक खड आ जाता है । उसे पहले दूनी की गई राशिमैसे घटा देनेपर स्वयम्भूरमण समुद्रकी गुणकारशालाए हो जाती है ।

सयभुरमणसमुद्दस्स खेत्तफल जगपदरस्स वासीदिभागो सादिरेगो होदि' । एत्थ करणगाहा-

सोलह सोउसहिं गुणे रूवूणोअहिसलागसखा ति ।

दुगुणग्धि तग्धि सोहे चउक्कपहद चउक्क तु ॥ ६ ॥

संपदि सव्वसमुद्दाण खेत्तफलसंकलणा बुच्चदे-लणसमुद्दस्स एगा गुणगारसलागा, कालोदयममुद्दस्स अट्टावीस । एदेसिं सकलणमाणिज्जमाणे ' रूपोनामादिसगुणमेकोनगुणो-न्मवितमिच्छा' एदेण अज्जासडेण आणेदव्व । एगमादिं कादूण सोलसगुणरूमेण गदा ति

इन शलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणित करनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल जगप्रतरका साधिक व्यासीवा भाग आता है । इस त्रिपयमें करणगाथा इस-प्रकार है—

विवक्षित समुद्रकी क्रमशलाकाकी सत्पामेंसे एक कम करके शेष सत्पयाके प्रमाण सोलहको सोलहसे गुणाकर उपलब्ध राशिको दूना कर दे और निरलन राशिप्रमाण चारको चारसे गुणाकर लब्धको उस द्विगुणित राशिमेंसे घटा देनेपर विवक्षित समुद्रकी गुणकार-शलाकाए आ जाती हं ॥ ६ ॥

उदाहरण—सर्वेर्डीप समुद्रोंकी सत्पया = २अ, सर्वसमुद्रोंकी सत्पया $\frac{२अ}{२} = अ$

$$१६^अ - १ = \frac{२७^३ (जगप्रतर)}{१०००००^३ \times ३१३६} = स, स \times २ = २ स$$

$$४^अ - १ = \frac{२७}{५६०००००} = स, २ स - स = स्वयम्भूरमणसमुद्रकी गुणकारशलाका$$

$$(२२ - स) \times ल का क्षेत्रफल = स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल = \frac{२७^३}{२२}$$

अथ सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलका सकलन कहते हैं—लणसमुद्रकी गुणकारशलाका एक है, कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाकाए अट्टाइस है । इनका सकलन लानेके लिए उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे ' एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे और पुन एक कम गुणकार शलाकाका भाग देनेसे इच्छित राशि उत्पन्न हो जाती है ' इस आर्यापद्धसे इच्छित सकलन ले आना चाहिये । चूँकि एकको आदि लेकर सोलह गुणितक्रमसे राशि बढी है, इसलिए दो

१ सयभुरमणसमुद्दस्स खेत्तफल जगमेदीए षण्ण परवूवेदिं गुणिय सत्तदचउसीदिरूवेहिं मज्जिदनेत्त पुणो एक्कलक्ख मात्तसद्दस्ससयत्रोयणेत्ति गुणियदरज्जूए । ति प पत्र १०९

कद्दु दो ह्ये ठनिय' अद्विय पुध ठनिय उतरि एगरूय दादव्य । पुणो त सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गण' एदेण अज्जासडेण लद्धनिसदल्लप्पणेसु रूवूणेषु आदि समुणेषु रूवूणगुणगारेण भजिदेसु ज लद्ध त दुगुणिय पच अनणिदे पक्खे सलागसमलणा होदि । कध पच समुप्पणा ? पुच्चपत्तिरत्तएगादिचदुगुणरुमेण गदरात्तिं मेलाविदे अनणयणरासी आगच्छदि । एदाहि पुच्चसकलणसलागाहि लणसमुद्दस्येत्तफल गुणिदे लण कालोदयसमुद्दाण खेत्तफल होदि । तिहं समुद्दाण खेत्तफलसकलणा वुच्चदे—तिसु रूपेषु एगरूयमनणिय पुध द्विविय सेसमद्विय रूवस्सुतरि वर्गण ठनिय तस्सुतरि रूव ठनिय हेड्ढिम उतरिमरूपाणि सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गण' एदेण अज्जा-

रूपोंको स्थापितकर आधा करके पृथक् स्थापितकर ऊपर एक रूप दे देना चाहिए । पुन उसे सोलहसे गुणितकर 'रूपोंमें गुणा जार अर्थोंमें वर्गणा' इस नार्याखंडसे प्राप्त दोसौ छपन रूपोंमेंसे एक कम कर आदिसे समुणित करनेपर तथा एक कम गुणकारसे भाग देनेपर जो राशि लघ हो उसे दुगुनाकर उसमेंसे पाच घटा देनेपर एक पक्षमें अर्थात् केवल समुद्रोंसम्बन्धी शलाकाओंकी सकलना हो जाती है ।

उदाहरण—लघणोदक और कालोदककी गुणकारशलाकाओंका सकलन—

कालोदककी शलाका २, १×१६ , १×१६ , $१६ \times १६ = २५६$

$$\left(\frac{२५६ - १}{१६ - १} \right) = \frac{२५५}{१५} = १७, \quad १७ \times २ = ३४, \quad ३४ - ५ = २९$$

शलाका—यद्वापर पाच कैसे उत्पन्न हुए ?

समाधान—पूर्वोक्त एकको आदि लेकर चतुर्गुणितक्रमसे वृद्धिगत राशिको मिला देनेपर अपनयनराशि आ जाती है ।

उदाहरण—पाचकी उत्पत्ति— $१+४=५$ अपनयनराशि (दो समुद्रोंकी अपनयनशलाका ।

इन पूर्वोक्त सकलनशलाकाओंसे लणसमुद्रसम्बन्धी क्षेत्रफलको गुणित करने पर लणसमुद्र और कालोदकसमुद्र, इन दोनोंका क्षेत्रफल हो जाता है ।

उदाहरण—लणसमुद्रका क्षेत्रफल— ७९०५६९४१५०×२४ ,

लघणोदक और कालोदककी सकलित गुणकारशलाका २९,

$७९०५६९४१५० \times २४ \times २९$ लघणोदक और कालोदकका सकलित क्षेत्रफल

अब तीन समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं—तीन रूपोंमेंसे एक रूपको घटाकर उसे पृथक् स्थापित करे । पुन शेषको आधा कर रूपके ऊपर वर्गणराशिको स्थापित कर और उसके ऊपर रूपको स्थापितकर अधस्तन और उपरिम रूपोंको सोलहसे गुणाकर

१ प्रतिबु 'विपु' इति पाठ ।

२ प्रतिबु 'सुण्य' इति पाठः ।

संडेण लद्धा चारि सहस्सा छण्णउदी । 'रूपोनमादिमगुणमेकोनगुणोन्मथितमिन्डा' एदेण अज्जारसंडेण लद्धाणि वे सदाणि तेहत्तराणि, एदाणि दुगुणिय एक्कावीममण्णिदे गुणगारमलागासकलणा होदि । कथमेक्कावीसस्स उप्पत्ती ? एगरूप विरलिय चत्तारि दादूण अण्णोण्णभत्थ करिय पचहि गुणिय एगादिचदुगुणसकलण पक्खित्ते अण्णयणसलागपमाण एक्कावीस होदि । एत्थ करणगाहा —

इद्वसलागासुत्तो चत्तारि परोप्परेण सगुणिय ।

पचगुणे खित्तत्ता एगादिचदुगुणा सकलणा ॥ ७ ॥

एत्थ सवत्थ दुरूवणगच्छ विरलेद्वय ५ । २१ । ८५ । ३४१ । १३६५ । ५४६१ ।

एदाओ अण्णयणधुवरासीओ अणत्तरहेट्ठिम चदुहि गुणिय रूप पक्खित्ते उप्पज्जति जाण

'रूपोंमें गुणा आर अर्थोंमें वर्गणा' इस आर्याखडसे चार हजार छयानवै (४०९६) सख्या प्राप्त होती है। पुन उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे 'एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे, पुन एक कम गुणकारशलाकाका भाग दे, तो इष्टराशि उत्पन्न हो जाती है' इस आर्याखडके अनुसार दो सौ तेहत्तर (२७३) सख्या प्राप्त होती है। इस सख्याको दूनाकर उसमेंसे इत्तीस घटा देनेपर गुणकारशलाकाका सकलन हो जाता है।

उदाहरण—प्रथम तीन समुद्रोंका सकलन— शलाका ३,

$$१ \times १६$$

$$१ \times १६$$

$$१ \times १६,$$

$$१६ \times १६ \times १६ = ४०९६,$$

$$\frac{४०९६ - १}{१६ - १} = \frac{४०९५}{१५} = २७३, \quad २७३ \times २ = ५४६, \quad ५४६ - २१ = ५२५$$

तीन समुद्रोंकी संकलित गुणकारशलाका ।

शुद्धा—यहापर घटाई जानेवाली इत्तीस सरयायी उत्पत्ति कैसे हुई ?

समाधान—एकरूपको विरलित कर उसके ऊपर चारको देयरूपसे देकर अन्योया भ्यास करके उसे पाचसे गुणाकर एक आदि चतुर्गुणसकलनको प्रक्षेप करने पर अपनयनशलाकाका प्रमाण इत्तीस हो जाना ह ।

उदाहरण—२१ की उत्पत्ति— $३ - २ = १, \quad १ = ४, \quad ४ \times ५ = २०, \quad २० + १ = २१$

तीन समुद्रोंकी अपनयनशलाका

इस विषयमें यह करणगाथा है—

इष्ट शलाकाराशिका जो प्रमाण हो उतने चार चारको रूपकर परस्परमें गुणा करे, पुन उसे पाचसे गुणा करे और फिर एक आदि चतुर्गुणसकलनराशिको प्रक्षेप करना चाहिए। ऐसा करनेपर अपनयनराशिका प्रमाण आ जाता है ॥ ७ ॥

यहापर सर्वत्र दो रूप कम गच्छराशिका विरलन करना चाहिए। ५, २१, ८५, ३४१, १३६५, ५४६१, ये घटाई जाने वाली ध्रुवराशिया जनतर मध्यस्तन राशिको चारमे गुणाकर

सयभूरमणसमुद्रो चि । सपदि सयभूरमणसमुद्रनिरहिदसन्समुद्रखैतफलाणयणविधान
 शुच्यदे- दीन सायररुणार्ण अद्द रूवूण निरलिय रूय पडि वेणि द्दादूण अण्णोण्णम्मामे
 क्कदे चोद्दमगुणिदजोयणलक्कणमूलेण सडिदसेटीए चग्गमूलस्स अद्दमागच्छदि । अथ
 पुच्चनिरलणाए रूय पडि जदि चत्तारि रूयानि द्दादूण अण्णोण्णम्मामो कीरदे, तो चोद्दम
 गुणजोयणलक्कणेण सडिदे सेटीए चट्टुमागो आगच्छदि । अथ रूय पडि सोलस द्दादूण
 अण्णोण्णम्मामो कीरदि, तो जोयणलक्कणवग्गेण तिसहस्सठ्ठीसत्तदरूयगुणिदेण जगपदरभि
 मागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो तं रूवूण करिय एगेण आदिणा गुणिय पण्णारस

और उनमें एक प्रक्षेप करनेपर उत्पन्न होती हैं, और इसी क्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक
 उत्पन्न होती हुई चली जाती हैं ।

उदाहरण—(१) $४ - २ = २$, $४ \times ४ = १६$; $१६ \times ५ + ५ = ८५$ चार स
 १ १

(२) $५ - २ = ३$, $४ \times ४ \times ४ = ६४$; $६४ \times ५ + २१ = ३४१$ पांच स
 १ १ १

(३) $६ - २ = ४$, $४ \times ४ \times ४ \times ४ = २५६$; $२५६ \times ५ + ८५ = १३६५$ छह स
 १ १ १ १

(४) $७ - २ = ५$, $४ \times ४ \times ४ \times ४ \times ४ = १०२४$, $१०२४ \times ५ + ३४१ = ५४६१$ सात स
 १ १ १ १ १ इत्यादि

अथ स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफल निकालनेका विधान
 कहते हैं— धीप और समुद्रोंकी जितनी सख्या है उसे आधाकर उसमेंसे एक घटावे । पुनः
 शेष राशिका विरलनकर प्रत्येक रूपके प्रति देयरूपसे दो को देकर परस्पर गुणा करनेपर
 चतुर्विंश-गुणित लक्ष योजनके घर्गमूलसे सडित जगधेणीके घर्गमूलका भागा प्रमाण आता
 है । अथ यदि पूव विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति चार रूपोंको देयरूपसे देकर परस्पर
 गुणा किया जाता है, तो चतुर्विंश गुणित लक्ष योजनसे सडित जगधेणीका चौथा भाग आता
 है । और यदि उसी विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति सोलहको देयरूपसे देकर परस्पर
 गुणा किया जाता है तो तीन हजार एक सौ छत्तीस (३१३६) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके
 षणसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है ।

उदाहरण—(१) $\frac{२४}{२} = १२$, $२४ - १ = \frac{\sqrt{२७}}{२}$
 $\sqrt{१४०००००}$ यो

(२) $४४ - १ = \frac{२७}{४}$
 १४००००० यो

(३) $१६४ - १ = \frac{२७}{१००००० \times ३१३६}$

रूवेहि भागे हिदे जोयणलम्बनग्गेण चालीसाहियसचेतालसहस्ररूवगुणिदेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । एदं दुगुणिय सेढिअसंसेज्जदिभागमेत्तमवणयणरासि पुव्विल्लकरणगाहाए आणिदमवणिय लणसमुदसेत्तफलेण गुणिदे सयंभूरमणनिरिहिद-समुदाणं सेत्तफल होदि । त केत्तियमिदि भणिदे एगूणचालीसाहियबारससदरूवेहि जग-पदरम्हि भागे हिदे एगभागपमाणं होदि । तत्थ मूलिल्लदोसमुदसेत्तफल संसेज्ज-नोयणपदरमेत्तमवणिय रज्जुपदरम्हि अण्णिदे एकवचासरूवेहि सादिरेगेहि जगपदरम्हि खडिदे एगरंडो आगच्छदि । त संसेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्म संसेज्जदि-

पुन उसे, अर्थात् १६ के गुणितक्रमसे उपलब्ध राशिको, एक कम करके आदि स्थानवर्ती एकसे गुणितकर, पन्द्रह रूपोंसे भाग देनेपर चालीस अधिक सैंतालीस हजार अर्थात् सैंतालीस हजार चालीस (४७०४०) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके घर्गसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{\left(\frac{२७}{१००००० \times ३१३६} - १ \right)}{१६ - १} = \frac{२७}{१००००० \times ४७०४०}$$

इस प्रमाणको दुगुणाकर उसमेंसे पूर्णोंक करणगाथासे निकाली हुई जगध्रैणिके भसख्यातवें भागप्रमाण अपनयनराशिको घटाकर लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे गुणा करनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समस्त समुद्रोंका क्षेत्रफल हो जाता है । यह क्षेत्रफल कितना होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि यह उनतालीस अधिक बारह सौ अर्थात् बारहसौ उनतालीस (१२३९) रूपोंसे भाजित जगप्रतरका एक भाग प्रमाण होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \left\{ २ \left(\frac{२७}{१००००० \times ४७०४०} \right) - \frac{२७}{४} \right\} \times ८ = \frac{२७}{१२३९} \text{ स्वयम्भूरमणको छोड़ शेष समुद्रोंका क्षेत्रफल}$$

(इसी प्रमाणको उत्पन्न करनेकी प्रक्रियाके विस्तारके लिये देखो गोमटसार जीयकांड स टीका व हिन्दी अनुवाद गाथा ५४७, पृ ९६४ आदि)

स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समुद्रोंके उक्त क्षेत्रफलमेंसे मूल अर्थात् आदिके छवणोदधि और कालोदधि इन दो समुद्रोंके प्रतरात्मक सख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रफलको घटाकर पुन शेष राशिको प्रतरात्मक राजुके प्रमाणमेंसे घटा देनेपर साधिक इकायन रूपोंसे जगप्रतरके खडित करनेपर एक खड आ जाता है ।

$$\text{उदाहरण—} २ - \left(\frac{२७}{१२३९} - २९ \right) = \frac{२७}{५१} \text{ (३७ अधिक) तिर्यंग्लोकका सख्यातयां}$$

भाग तिर्यंज सासादन जीवोंका स्त्रस्थानक्षेत्र

भागमेतत्तिरिक्तसामणसन्धानमेतत्तद्देहि । मेमपदसासणसम्मादिद्विष्टि सच्चे दीप समुदा
पुत्रपेरियदेयमत्रेण पुमिज्जति त्ति कट्टु जीयणलक्खवाहल्ल तप्पाओग्गनाहल्ल वारज्जु
पत्तमुत्तमेगूणपचापसुदाणि रुणिय पत्तगाणेण द्दुडे तिरियलोगस्स सत्वेज्जदिभागो होदि ।
'जा' सहम्म जत्थो गणे ।

मारणतियसमुदादगदेहि मत्त चोद्धतभागा देवणा पोत्तिदा । तिरिक्तसामणा
मेरुमूलादो हेट्ठा ऋण्ण मारणतिय करेति त्ति पुत्ते णेरइएसु ऋण्ण उप्पज्जति ? समारदो ।
जदि एव, तो हेट्ठा समारदो चेत्त मारणतिय ण भेलति त्ति ऋण्ण घेप्पदे ? जदि सामण
सम्मादिद्विष्टिो हेट्ठा ण मारणतिय संलति, तो तेमिं मरणनासियदेवेसु मेरुनलादो हेट्ठा
द्विडेसु उप्पत्ती ण पावदि त्ति पुत्ते ण एत्त दोमो, मेरुनलादो हेट्ठा सामणसम्मादिद्विष्टिण
मारणतिय णत्थि त्ति एत्त सामग्गपयण । विमत्तदो पुण भण्णमाणे णेरइएसु हेट्ठिम

उक्त एक खडको तियचोके अरगाहनासम्भन्धी सख्यात सूत्रगुलोसे गुणा करनेपर
तिर्यंलोकके सत्प्राथम्य भागप्रमाण तिर्यंथ सासादनसम्पदष्टि जीवोका स्वस्वानक्षेत्र हो
जाता है । चूँकि, विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदस्थित तिर्यंथ सासादनसम्पदष्टियोंके द्वारा
समस्त जीव और समुद्र पूर्वभरणे वैरी देवाके सम्बन्धसे स्पर्श किये गये हैं, इमलिए लक्ष
भोजन पाहल्यवाले अथवा तत्प्रायोग्य बाहल्यवाले राजुप्रवरके ऊपरकी ओरसे उनचास खड
करके प्रतारकारसे स्थापित करनेपर तिर्यंलोकका सपथानवा भाग हो जाता है । इसप्रकारसे
यह सुस्पष्टित 'या' शब्दका अर्थ हुआ ।

मारणान्तिक्कसमुदात्तरो प्राप्त तिर्यंथ सासादनसम्पदष्टियोंने कुछ कम सात घडे
चाँदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

शुद्धा—तिर्यंथ सासादनसम्पदष्टि जीव सुमेरुपर्यंतके मूलभागसे नीचे मारणा
न्तिक्कसमुदात्त क्यों नहीं करते हैं ?

प्रतिशुद्धा—यदि ऐसा शका करते हैं, तो आप ही बताइए कि तिर्यंथ सासादन
सम्पदष्टि जीव नारकियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—ये नारकियोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं होते हैं ।

प्रतिसमाधान—यदि ऐसा है तो सुमेरुपर्यंतके मूलभागसे नीचे भी ये स्वभावसे
मारणान्तिक्कसमुदात्त नहा करते हैं, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हैं ?

शुद्धा—यदि सासादनसम्पदष्टि जीव मेरुनलसे नीचे मारणान्तिक्कसमुदात्त नहीं
करते हैं तो मेरुतलसे नीचे स्थित भयनवासी देवोंमें उनकी उत्पत्ति भी नहीं प्राप्त होती है ?

समाधान—उक्त शकापर ध्वलाकार उत्तर देते हैं कि, यह कोई दोष नहीं,
क्योंकि, 'मेरुतलसे नीचे सासादनसम्पदष्टि जीवोंका' नहीं है ।
मह सामाय अर्थात् द्रव्याधिकनयका यत्न

एहंदिएसु वाण मारणतिय मेलंति त्ति एस परमत्यो । ऋधमेत्थ देसूणत्त ? ण ताव हेट्ठिम-
जोयणसहस्सेण ऊणा सत्त चोद्दमभागा, तिरिक्खसामणेहि भरणमामिएसु मारणतिय
मेल्लमाणेहि तस्स पि उणममभयोलभादो । मेरुमूलादो हेट्ठा देसूणतोयणलरूप फुसताण
सासादणाण सत्त चोद्दमभागेहि सादिरेगेहि होदच्चभिदि ? ण एम दोमो, छमग्ग पयट्ठेहि
पडिणिययउप्पत्तिट्ठाणेहि तसजीवेहि थिरतर ण सत्त रज्जु फुसिज्जंति, तथा सभयामंभया ।
सो पि कध णव्वदे ? देसूणयणणहाणुणत्तदीदो । उणमादस्म एवारह चोद्दमभागा पोमिदा
त्ति वत्तव्व । सुत्ते अउत्त ऋग्गमेद णव्वदे ? ऋग्गदयकायजोगिमानणागमेवारह चोद्दम-

विचक्षासे कथन करने पर तो ये नारकियोंमें अथवा मेरुतलसे अघोभ गयना एकेन्द्रियजीवोंमें
मारणान्तिकसमुदात नही करते हैं, यही परमार्थ है ।

शंका—यहापर अर्थात् मारणान्तिकसमुदातगत सामादनसम्यग्दृष्टियोंके क्षेत्रमें
देशानता अर्थात् कुछ कम सात बटे चौदह भागका कथन तलसे किया, क्योंकि, मेरुतलके
अघोभागवर्ती एक हजार योजनसे कम सात बटे चौदह (१४) भाग तो माने नहीं जा
सकते । इसका कारण यह है कि भयनवासियोंमें मारणान्तिकसमुदातको करनेवाले तिर्यच
सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा तलके भी कुछ जानेकी सम्भावना पाई जाती है । इसलिए मेरु
तलसे नीचे कुछ कम एक लक्ष योजन प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करनेवाले तिर्यच सामादन-
सम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र साधिक सात बटे चौदह (१४) भाग होना
चाहिए, न कि देशान सात बटे चौदह भाग ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं । इसका कारण यह है कि उहाँ मार्गोंको प्रवृत्त,
अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व ओर अधोदिशा सम्यग्नी उहाँ मार्गोंसे जानेवाले,
एव प्रतिनियत उत्पत्ति स्थानवाले प्रसजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु स्पर्श नहीं किये
जाते हैं, क्योंकि, उस प्रकारकी सम्भावनाका अभाव है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—‘देशान’ वचनकी अन्वया अनुपपत्तिले । अर्थात् यदि मारणान्तिक-
समुदात करनेवाले प्रसजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया जाता, तो
सूत्रमें ‘देशान’ यह वचन नहीं दिया जाता । इस अन्वयानुपपत्तिले जाना जाता है कि
मारणान्तिकसमुदात करनेवाले प्रसजीवोंके द्वारा सात राजुके स्पर्श किये जानेकी निरन्तर
सम्भावना नहीं है ।

उपपद्यको प्राप्त तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह (१४) भाग
स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

शंका—सूत्रमें नहीं कही गई यह बात कैसे जानी जाती है ?

भागपोसगपरूपयसुत्तादो', सुहावंचमि उत्रादपरिणयसासणामेककारह चोदममाग
पोसणपरूपयसुत्तादो च णवदे । एत्थ महंते उत्रादपोसणखेत्ते सते मारणतियफोसणमेव
किमट्ट परमिद ? ण', एत्थ उत्रादवित्रकत्ताए अभावादो । तद्विप्रक्सा किण्णवपणा',
सामणणमेहदिएसु अणुप्पज्जमाणण तत्थ मारणतियविहाणणिवधणा । तेण उत्रादस्त
एवकारह चोदममागा फोमणसुरलब्भदे ।

सम्मामिच्छादिद्वीहि केवडिय खेतं फोसिदं, लोगस्त असंखे-
ज्जदिभागो ॥ २६ ॥

एदस्म सुत्तस्म वट्टमाणकाले सव्वपदपरूपणाए खेतमगो । सत्थाणसत्थाण
विहारवदिमत्थाण वेदण कसाय वेउत्तियपदद्विदमम्मामिच्छादिद्वीहि तीदाणागदकालेसु तिष्ठ

समाधान—कामेणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके ग्यारह बटे चौदह (११)
भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक भागे कहे जानेवाले इसी स्पर्शनप्ररूपणके सूत्रसे, तथा सुहा
वधमें कहे गये उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ग्यारह बटे चौदह (११) भागप्रमाण
स्पर्शन करनेकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि उपपादपदको प्राप्त नियंत्र
सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—उक्त प्रकारसे इतना अधिक उपपादपदका स्पर्शनक्षेत्र होते हुए भी यहां
पर मारणात्मिक स्पर्शनक्षेत्र ही किसलिये प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहां पर उपपादपदका विवक्षाका अभाव है ।

शंका—उपपादपदकी विवक्षा न होनेका क्या कारण है ?

समाधान—उपपादपदकी विवक्षा न होनेका कारण ऐकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होने
वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जाघोंका उनमें मारणात्मिकसमुदायका विघात है । अर्थात् सासा
दनसम्यग्दृष्टि जीव ऐकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, फिर भी वे उनमें मारणात्मिकसमुदाय
करते हैं । इसलिये यहां पर उपपादकी विवक्षा नहीं की गई, और इसीलिये उपपादपदका
ग्यारह बटे चौदह (११) भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र प्राप्त हो जाता है ।

सम्यग्मिच्छादृष्टि नियंत्रोंके कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकरूपा असंख्यातवा
भाग स्पर्श किया है ॥ २६ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालमें स्वस्थानादि सर्व पदसदरथी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्रक
पणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकसमुदाय,
इन पांच पदोंवाले सम्यग्मिच्छादृष्टि नियंत्रोंके भूत और भविष्य इन दोनों कालोंमें सामायलोक
भावि तीन लोकोंका असंख्यानवा भाग, त्रियलोकका संख्यातवा भाग और अहर्हर्द्वीपसे

१ कम्मस्यङ्गयजोगीसु ×× सासणसम्मामिच्छादि ×× एकारह चोदममागा देवूपा । जी फो १६ १८.

२ म मती 'ण' इति पाठो नास्ति ।

३ प्रतिपु 'किण्णवपणा' इति पाठ ।

४ सम्मामिच्छादृष्टिभिलोकस्यासंख्येयमाण । उ. वि. १, ८.

लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो अमखेज्जगुणो ।
एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा सासणपरूवणाए तुल्ला ।

असंजदसम्मादिट्ठि-सजदासजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स

असंखेज्जदिभागो ॥ २७ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु चि महाधिकारो अणुवट्ठे । एदं सुव वट्ठमाणकाल-
त्रिसिद्धअसंजदसम्मादिट्ठि-सजदामजदखेत्त जदो परूवेदि, तदो एदस्म परूवणाए खेत्तमगो ।

छ चोइसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

अमंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाणपदे वट्ठमाणेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो अदीदकाले पोमिदो । एदे
असंजदसम्मादिट्ठिणो सत्थाणपदे सव्वदीप्पेसु होत्ति, लवण कालोदय सयभूरमणसमुद्देसु
च । तम्हा ससममुद्दखेत्तूणरज्जुपदर एत्थ सत्थाणखेत्त होदि । एदस्साणयणविधान पुञ्ज व
कादव्व । विहार-वेदण-रुसाय वेउवियपदेसु वट्ठेता अदीदकाले तिण्ह लोगाणमसखेज्जदि-

असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यद्वापर पर्यायार्थिनयमी स्पर्शनप्ररूवणा सासादन-
गुणस्थानकी स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य जानना चाहिए ।

असयतसम्पग्दष्टि और सयतामंयत गुणस्थानउती तियंचोने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ २७ ॥

‘तियंचगतिमें तियंचोमें’ इस महाधिकारकी यद्वापर अनुवृत्ति होती है । चूकि यह
सूत्र वर्तमानकालविशिष्ट असयतसम्पग्दष्टि आर सयतासयत तियंचोके स्पशनक्षेत्रका प्ररूपण
करता है, इसलिए इसकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान ही है ।

उक्त दोनों गुणस्थानउती तियंच जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा
कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श क्रिये हैं ॥ २८ ॥

स्वस्थानपदपर वर्तमान असयतसम्पग्दष्टि तियंचोने सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असख्यातवा भाग, तियंचलोकका सख्यातवा भाग और अट्टाहज्जादोने असख्यातगुणा
क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । ये असयतसम्पग्दष्टि तियंच स्वस्थानस्वस्थानपदपर सर्व
दोषोंमें होते हैं, तथा लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रमें भी होते हैं ।
इसलिए दोष समुद्राके क्षेत्रसे हीन राजुप्रतर यद्वापर स्वस्थानक्षेत्र होता है । इसके
निकालनेका विधान पूर्वके समान ही करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय
और वेन्नियिकसमुद्धान, इन पदोंपर वर्तमान जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन

भाग, तिरियलोगस्य सरोज्जदिभाग, अड्डाडज्जादो असरोज्जगुण फुमति । कुदो ? पुव्व
 वेरियदेरपयोगदो जोयणलम्पचाहल्ल मयेज्जजोयणराहल्ल वा रज्जुपदर सव्वमदीदकाले
 फुमति चि । मारणतियपदे वट्टमाणेहि छ चोहसभागा देवणा पेसिदा । कुदो ? अचुद
 कप्पादो उररि तेमिमुप्पत्तीए अभावादो तत्थ गमणाभावा । ण च उप्पत्तिसेत्तमुल्लघिय
 गमण मभरदि, अड्ढप्पमगा । उररि णरगेरज्जेसु मिच्छादिद्विणो जदि उप्पज्जति, तो
 जमन्दमम्मादिद्विण मज्जदामनदाण च उप्पत्ती किमिदि ण होज्ज ? मिच्छादिद्विणो दव्व
 लिगेण उप्पज्जति चे, एदे वि दव्वलिगेण चेण उप्पज्जतु, ण कोपि दोमो । उप्पज्जतु चे,
 ण, सेत्तस देवणसत्त चोहसभागत्तप्पमगादो ? ण एस दोसो, जदि वि णरगेरज्जेसु
 दव्वलिगेणो अमज्जदमम्मादिद्वि सज्जदामज्जदा च उप्पज्जति, तो वि सत्त चोहसभागा ण
 होति, माणुमसेचादो चेण त-पुप्पत्तीदो । उरवादगदेहि अदीदकाले तिण्ह लोमाणम

लोकोंका अनप्यातग भाग, तिर्यग्लोकरा सस्थानवा भाग और अदार्शद्वीपसे असख्यातगुणा
 क्षत्र स्पश क्रिया है, क्योंकि, पूर्वभक्ते वेरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन बाह्यवाला
 अयथा सख्यात याजन ग्राह्यप्राला रानुप्रतररूप सर्वक्षेत्र अतीतकालमें स्पश किया है ।
 मारणातिषसमुदातपदपर यतमान जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग (१४) स्पर्श किये
 हैं क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर उनकी उत्पात्तिका अभाव होनेसे घटापर गमनका अभाव
 है । और, उत्पात्तिक्षेत्रको उल्लघा करके गमन समभव नहीं है, अथवा अतिप्रसंग दोष प्राप्त
 हो जायगा ।

शुक्रा— अच्युतकल्पसे ऊपर यदि नवग्रहेयकोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं
 तो असयतसम्पददृष्टि आर सयतासयत तिर्यकोंकी उत्पात्ति क्यों नहीं होना चाहिए ? यदि कहा
 जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिङ्गसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिङ्गसे ही उत्पन्न होवें
 इसमें कोई दोष नहीं है । यदि कहा जाय कि ये नवग्रहेयकोंमें उत्पन्न होवें, तो ऐसा भी
 नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, फिर स्पशनक्षेत्रके दर्शन सात बटे चौदह (१४) भाग
 प्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यद्यपि नवग्रहेयकोंमें द्रव्यलिङ्गी मिथ्या
 दृष्टि, असयतसम्पददृष्टि आर सयतासयत जीव उत्पन्न होते हैं, तो भी सात बटे चौदह
 (१४) भागप्रमाण दर्शनक्षेत्र नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, उन नवग्रहेयकोंमें मनुष्यक्षेत्रसे ही
 उत्पात्ति होता है । अतएव उनमें मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, तिर्यक नहीं ।

उपपादगत असयतसम्पददृष्टि गुणस्थानवर्ती तिर्यक जीवोंने अतीतकालमें सामान्य

१ मनु ' दस ' इति पाठ ।

२ परतिरिय दम अयदा उक्कमणत्तुदो चि निग्गथा । णर अयद देव मिक्कान्गेरेत्ततो चि गप्पति
 वि हा ५१५

संसेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संसेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंसेज्जगुणो पोसिदो । त जहा— तिरिक्खेसु तिरिक्ख देव-गेरइयसम्मादिट्ठिणो ण उप्पज्जति चि । कुदो? सहापादो । मणुससइयसम्मादिट्ठिणो चेव उप्पज्जति, पुव्व मिच्छत्तसंसिदेहि बद्धतिरिक्खाउअत्तादो । ते नि भोगभूमीसु चेव उप्पज्जति, दाणादिसयलदसधम्मो निज्जमाणाणुमोदादो । तेण सयपहपव्वदोवरिमभागो सव्वो चेव उपादपरिणदसम्मादिट्ठीहि पुसज्जदि चि तस्साणयण-निधान वुच्चदे— सयंपहपव्वदादो परभागो दोहि नि पोसेहि रज्जुपंचड्डमागो रज्जूए तप्पाओग्गा संसेज्जा भागा वा होति । तेसु रज्जुनिकखमम्हि फेडिदेसु अवसेसा तिण्णि अट्टभागो रज्जूए संसेज्जदिभागो वा होदि । एदेण त्रिक्खंभायामेण ट्ठिदसम्मादिट्ठि-उपादसेत्तं—

त्रिक्खमत्रगदसगुणकरणा वट्टस्स परिट्ठो होदि ।

त्रिक्खमचउम्भागो परिट्ठयगुणिदो हवे गणिद' ॥ ८ ॥

एदीए गाहाए पदरागारेण कदे जगपदर अट्टसत्ताणणभागवमहियचालीसोत्तर-चट्टुहि सदेहि खंडिद-एयभागो सादिरेगो आगच्छदि, तप्पाओग्गसखेज्जरूपेहि छिण्णेग-

लोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और अद्वाइंसीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है— तिर्यचोंमें तिर्यच, देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है । केवल क्षायिक-सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, उन्होंने पूर्वमें मिथ्यात्वसे ससिक्त परिणामोंके द्वारा तिर्यच आयुको बांध लिया है । सो वे भी जीव भोगभूमिके तिर्यचोंमें ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंकी दान आदि समस्त दश धर्मोंमें अनुमोदना विद्यमान रहती ही है । इसलिए स्वयंप्रभ पर्वतका उपरिम सर्व भाग उपादपरिणत असयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, अत उसके निकालनेके निधानको कहते हैं—

स्वयंप्रभ पर्वतसे परभागवर्ती क्षेत्र दोनों ही पार्श्वोंसे राजुके पांच बटे आठ (५) भाग अथवा राजुके तत्प्रायोग्य सख्यात बहुभाग प्रमाण होता है । उन भागोंको राजुके विष्कम्भमेंसे घटा देनेपर तीन बटे आठ (३) भाग अवशेष क्षेत्र अथवा राजुका सख्यातवा भागप्रमाण होता है । इस विष्कम्भ और आयामसे स्थित सम्यग्दृष्टिके उपादक्षेत्रको—

विष्कम्भका वर्गकर उसे दशसे गुणा करके उसका वर्गमूल निकाले, यही वृत्त अर्थात् गोलाकृति क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण हो जाता है । पुन विष्कम्भके चतुर्भागसे परिधिको गुणा करनेपर क्षेत्रफल हो जाता है ॥ ८ ॥

इस गाथासूत्रके अनुसार प्रतराकारसे करनेपर आठ बटे सत्तावन भागसे अधिक चार सौ चालीस (४४० ६६) भागोंसे खंडित सातिरेक एक भागप्रमाण जगप्रतर होता है ।

भागो वा । त उस्मेधसंसेज्जगुलेहि गुणिदे तिरिक्खसम्मादिद्विउववादखेत्तं होदि । सज्जदासज्जदेहि सत्थाणपदद्विएहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स ससेज्जदि भागो, अद्वाइज्जादो अससेज्जगुणो । एत्थ सत्थाणसेत्तमाणिज्जमाणे तिरिक्खसम्मादिद्वि उववादपदरसेत्तमुस्मेधगुणगारमज्जिद रज्जुपदरम्हि अवणिदे जगपदर सादिरेयपचपचास रूवेहि भजिदएगभागो जागच्छदि । त ससेज्जुस्मेधगुलेहि गुणिद सज्जदासज्जदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागमेत्तं होदि । विहारमदिसत्थाण वेदण रुसाय वेत्तञ्चियपरिण देहि सज्जदामज्जेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स ससेज्जदिभागो, अद्वाइ

उदाहरण—विष्कम्भ $\frac{3}{2}$ $\sqrt{\frac{3}{2} \times \frac{3}{2} \times \frac{10}{1} \times \frac{3}{32} \times \frac{1}{89}} = \sqrt{\frac{90}{68} \times \frac{3}{32} \times \frac{1}{89}}$

$$= \frac{19}{16} \times \frac{3}{32} \times \frac{1}{89} = \frac{49}{25000} \quad \frac{27}{880 \frac{1}{49}} \quad \text{तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंके}$$

उपपादका क्षेत्रफल

भिक्षोपार्थ—यहा उपलब्ध भागप्रमाणको सातिरेक कहनेका अभिप्राय यह है कि जो $\frac{19}{16}$ का वर्गमूल $\frac{19}{16}$ ले लिया गया है वह यथार्थ वर्गमूलसे कुछ अधिक हो गया है जिससे भागदार कुछ बढ़ गया है । पहले इसी विष्कम्भको लेकर परिधिके भिन्न प्रमाण द्वारा भिन्न क्षेत्रफल निकाला गया है । (देखो पृ १६९)

अथवा तत्प्रयोग्य सख्यात रूपोंसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है । उसे सख्यात उत्सेधगुल्लोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थानपदस्थित सयतासयत तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तियलोकका सख्यातवा भाग और अर्द्धार्द्धीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको निकालनेपर उत्सेधगुणकारसे रहित तिर्यंच असयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद प्रतरक्षेत्रको राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर साधिक पचपन रूपोंसे भाजित एक भाग जगप्रतर आता है ।

उदाहरण—तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंका उपपादप्रतरक्षेत्र =

$$\frac{27}{880 \frac{1}{49}} = \frac{49 \times 89}{25000}; \quad 1 - \frac{49 \times 89}{25000} = \frac{844}{412} = \frac{27}{44 \frac{1}{49}}$$

उसे सख्यात उत्सेधगुल्लोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच सयतासयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तियलोकका सख्यातवा भागमात्र होता है ।

विहारवत्स्वस्थान, वेदाना, कषाय और वैकृतिकसमुदात, इन पदोंसे परिणत तिर्यंच सयतासयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तियलोकका

ज्जादो असखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो । कुदो ? सजदासंजदाणं वेरियदेवसंबंधेणं जोयणलक्खमाहल्लं तिरियपदरस्स अदीदकाले पोसो अत्थि चि । मारणंति यसमुग्घादग्देहि, सजदासंजदेहि छ चोदसभागा देवणा फोसिदा, तिरिक्खसंजदासंजदाणमच्चुदकप्पो चि मारणंति एण गमणसभनादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु मिच्छादि-
द्वीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २९ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालसग्घि चि एदस्स परूणणाए खेत्तभंगो ।

सव्वलोगो वा ॥ ३० ॥

परिसेसादो एदं सुत्तं तीदाणागदकालसंबंधी । एत्थ ताव 'वा' सद्वट्टो उच्चदे-
ति-पिसेमणपिसिद्धसत्थाणतिरिक्खमिच्छादिद्वीहि तिण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाद्वज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एदं खेत्तमाणिज्जमाणे
असखेज्जेसु समुद्देसु भोगभूमिपडिभागदीवाणमंतरेसु द्विदेसु सत्थाणपदद्विदतिविहा तिरिक्खां

सख्यातवा भाग ओर अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि,
सयतासयत तिर्यंचोंका वरी देवोंके हरणसम्बन्धसे एक लाख योजन याहख्यवाले तिर्यक्-
प्रतरका अतीतकालमें स्पर्श किया गया है । मारणान्तिकसमुद्दातगत तिर्यंच सयतासयतोंने
कुछ कम छह घटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच सयतासयतोंका
अच्युत्तकल्प तक मारणान्तिकसमुद्दातसे गमन सम्भव है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें
मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श
किया है ॥ २९ ॥

पह सूत्र धर्तमानकालसम्बन्धी है, इसलिए इसकी स्पर्शनपरूणणा क्षेत्रपरूणणाके
समान जानना चाहिए ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सर्वलोक स्पर्श
किया है ॥ ३० ॥

पारिशेषन्यायसे यह सूत्र भूत और भविष्यकालसम्बन्धी है । यहाँपर पहले 'वा'
शीघ्रका अर्थ कहते हैं—पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और योनिमती इन तीन विदेश-
पणोंसे विशिष्ट स्वस्थानपदस्थित तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असख्यातवा भाग, तिर्यंचलोकका सख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है । इस क्षेत्रको निकालनेपर असख्यात समुद्रोंमें और भोगभूमिके प्रतिभागरूप द्वीपोंके
अन्तरालोंमें स्थित क्षेत्रोंमें स्वस्थानपदस्थित उक्त तीन प्रकारके तिर्यंच नहीं हैं, इसलिए इस

सव्वलोगो वा ॥ ३३ ॥

पचिंदियतिरिक्त्तअपज्जत्तेत्ति अणुत्तद्धे । एत्थ ताव 'वा' सद्व्हे उच्चदे-
सत्थाण वेदण कसायपदग्देहि पचिंदियतिरिक्त्तअपज्जत्तएहि तिण्हं लोमाणमसखेज्जदि-
भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ?
अट्टाइज्जदीय समुद्देसु कम्मभूमिपडिभागो सयपहपव्वदपरभागे च तेमिं संभवादो । अदीद
काले सयपहपव्वदपरभाग सव्व ते पुत्तति चि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं खेच
होदि । तस्साणपपरिधाण बुच्चदे--सयपहपव्वदव्वमतरखेत्त जगपदरस्स संखेज्जदिभाग
रज्जुपदरग्ग्हे अण्णिदे सेम जगपदरस्स संखेज्जदिभागो होदि । त संखेज्जच्चिअगुलेहि
गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । अपज्जत्ताणमगुलासंखेज्जदिभागोमाहणाण
कध संखेज्जगुलस्सेवो लव्वभदे ? ण, मुअपचिंदियादित्तमक्खलेत्तरेसु अगुलस्स संखेज्जदि
भागमादिं कादूण जाव संखेज्जजोयणाणि चि कम्मत्तूए द्विदेसु उपपज्जमाणणमपज्जत्ताण
संखेज्जगुलस्संध पडि विरोहाभावादो । अधवा सव्वसु दीव-समुद्देसु पचिंदियतिरिक्त्त

पचेन्द्रियतिर्यंच लब्धपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ३३ ॥

इस सूत्रमें 'पचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त' इस पदकी अनुवृत्ति होती है। अर्थ यहाँपर
'घा' शब्दका अर्थ कहते हैं—स्थान, वेदना और कषायसमुदाय, इन पदोंको प्राप्त
पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंने सामा यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग,
तिर्यंग्लोकका सख्यातवा भाग और अदार्शदीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,
अदार्शदीप और दो समुद्रोंमें, तथा कर्मभूमिके प्रतिभागवाले स्थयप्रभपर्वतके परभागमें पचे
न्द्रियतिर्यंच लब्धपर्याप्त जीवोंका होना सम्भव है। अतीतकालमें स्थयप्रभपर्वतके सम्पूर्ण
परभागको ये जीव स्पर्श करते हैं, इसलिये यह क्षेत्र तिर्यंग्लोकका सख्यातवा भागमात्र
होता है। मत्र उस क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—स्थयप्रभपर्वतका आभ्यन्तर
क्षेत्र जगप्रतरके सख्यातवै भागप्रमाण है। उसे राज्जप्रतरमेंसे घटा देनेपर शेष क्षेत्र जगप्रतरका
सख्यातवा भाग होता है। उसे सख्यात सूच्यगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकका सख्यातवा
भाग हो जाता है।

प्रश्न—अंगुलके असख्यातवै भागमात्र अवगाहनवाले लब्धपर्याप्तक जीवोंके सख्यात
अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान—महाँ, क्योंकि, मृत पचेन्द्रियादि त्रसजीवोंके अंगुलके सख्यातवै भागकी
आदि करके सख्यात योजनों तक अमधुद्विसे स्थित शरीरोंमें उत्पन्न होनेवाले लब्धपर्याप्त
जीवोंके सख्यात अंगुल उत्सेधके प्रति कोई विरोध नहीं है।

अथवा, सभी दीप और समुद्रोंमें पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्त जीव होने हैं, क्योंकि,

१ मत्थि 'दण्णिदेहि' इति पाठः ।

अपज्जत्ता अत्थि । कुदो, पुव्वेरेरियदेवसन्धेण एगवधणवद्धच्छजीवणिकाओगाढ-
कम्मभूमिपडिभागुप्पण्णओरालियदेहमच्छादीण सव्वदीप समुदेसु संभवोरलमादो । महा-
मच्छोगाहणंमिह एगवधणवद्धच्छजीवणिकायाणमत्थित्तं कथं णव्वदे ? वग्गणमिह उच्च-
अप्पाबहुगादो । तं जहा- ' सव्वत्थोवा महामच्छसरीरे पदरस्स असखेज्जदिभागमेत्ता
तसकाइयजीवा । तेउकाइया जीवा असखेज्जगुणा । को गुणमारो ? असखेज्जा लोगा ।
पुढविकाइया जीवा विसेसाहिया । केत्थियमेत्तो विसेसो ? असखेज्जलोगमेत्तो । तेसिं पडि-
भागो वि असखेज्जलोगमेत्तो । एवं आउकाइया विसेसाहिया । वाउकाइया विसेसाहिया ।
वणप्फइकाइया अणंतगुणा ति ' । ण च सव्वे ते पज्जत्ता चैव, तसअपज्जत्ताणं पि' तेउ-
काइयाण च सभनादो । ण च मुदसरीरे चैव पंचिदियअपज्जत्ताणं संभवो ति वोत्तु जुत्त,
तस्स विधाययसुत्ताभावा । महामच्छादिदेहे तेसिमत्थित्तस्स सूचग पुण इदमप्पाबहुगसुत्तं
होदि । तसपज्जत्तरासीदो तसअपज्जत्तरासी असखेज्जगुणो । तेण जत्थ तसजीवाण

पूर्वमचके वैरी देवोंके सम्बन्धसे एक वधनमें यद्ध पदकायिक जीवोंके समूहसे व्याप्त और
कर्मभूमिके प्रतिभागमें उत्पन्न हुए औदारिकदेहवाले महामच्छादिकोंकी सर्वद्वेष और
समुद्रोंमें सभाषना पाई जाती है ।

शुका—महामच्छकी अवगाहनामें एक धन्यसे यद्ध पदकायिक जीवोंका अस्तित्व
कैसे जाना जाता है ?

समाधान—वर्गणाखण्डमें कहे गये अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे जाना जाता है । यह इस
प्रकार है— 'महामत्स्यके शरीरमें सरसे कम जगप्रतरके असख्यातवें भागमात्र त्रसकायिक
जीव होते हैं । उन त्रसकायिक जीवोंसे तेजस्कायिक जीव असख्यातगुणे होते हैं । गुणकार
क्या है ? असख्यात लोक गुणकार है । तेजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष
अधिक होते हैं । कितने प्रमाण विशेषसे अधिक होते हैं ? असख्यात लोकमात्र विशेषसे अधिक
होते हैं । उनका प्रतिभाग भी असख्यात लोकमात्र होता है । इसी प्रकारसे पृथिवीकायिक
जीवोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक होते हैं । अप्कायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष
अधिक होते हैं और वायुकायिक जीवोंसे घनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे होते हैं ।'

महामच्छके शरीरमें ऊपर कहे गये ये सब जीव केवल पर्याप्त ही नहीं होते हैं,
किन्तु उसके शरीरमें त्रसकायिक लक्ष्यपर्याप्त जीव और तेजस्कायिक जीवोंका भी
होना समभव है । तथा मृत शरीरमें ही पचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त जीव समभव हैं
ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, इस बातके विधावक सूत्रका अभाव
है । किन्तु महामच्छादिके देहमें उनके अस्तित्वका सूत्रक यही उक्त अल्पबहुत्वसूत्र है ।
असपर्याप्तराशिसे त्रसअपर्याप्तराशि असख्यातगुणी होती है, इसलिये जहा पर त्रसजीवोंकी

समो हेदि, तत्थ सव्वत्थ पि पज्जत्तेहिंतो अपज्जत्ता असखेज्जगुणा होंति । तम्हा सखेज्जगुलवाहल्ल तिरियपदरमेग्गणत्तासत्तडाणि करिय पदरागारेण उद्दे तिरिय लोगस्स सखेज्जदिभागमेत्त पंचिदियतिरिक्खत्तापज्जत्तत्थाण वेदण कसायखेत्त हेदि । 'वा' सहद्धो गदो । मारणत्तिय उत्रादग्देहि सव्वलोगो पोसिदो, सव्वत्थ गमणागमण पडि निरोहामाना ।

मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्धीहि केव डियं खेत्त पोसिद्, लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ ३४ ॥

एदस्म सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगदारे परुत्तिदो त्ति णेह परुत्तिज्जदे ।

सव्वलोगो वा ॥ ३५ ॥

एत्थ ताए 'वा' सहद्धो उच्चदे- सत्थाणसत्थाण विहारत्तदिमत्थाण वेदण कसाय वेत्तव्वियपरिणदेहि चट्ठण्ह लोगणमसखेज्जदिभागो पोसिदो, तीदाणागदकालेसु घेरियदेव सवधेण पि माणुमोत्तरसेलादो परदो गमणाभारा । माणुमखेत्तस्स पुण सखेज्जदिभागो

समायाना होती है यहा पर सर्वत्र ही पयाप्त जीवोंने अवस्थापन जीव अवस्थातगुणे होते हैं । अतएव संख्यात अगुल वाइस्यवाले तियक्कप्रवरके उनचास खट्ट करके प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातत्रै भागमान पचेन्द्रिय तिर्येच लब्धपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान घेदना और कपायसमुद्घातगत क्षेत्र होता है । इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत पचेन्द्रियतिर्येच लब्धपर्याप्त जीवोंने सबलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनके सर्व लोकमें गमनागमनके प्रति विरोधका अभाव है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्याम मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातता भाग स्पर्श किया है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहापर पुनः प्ररूपण नहीं किया जाता है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्याम अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३५ ॥

अब यहापर पहिले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं- स्वस्थानस्वस्थान, विहार वत्तस्वस्थान, घेदना, कपाय और धैत्रियिकसमुद्घातसे परिणत उपयुक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातता भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीत और अनागतकालमें वैरी देवोंके सम्बन्धसे भी माणुमोत्तर शीलसे परे मनुष्योंके गमनका अभाव है । किन्तु मनुष्यक्षेत्रका

मिच्छादिद्वीण आगामगमणादिनिमित्तिनिगहिदाण जोयणल्लसहाहल्लेण फासाभावादे ।
अधया मच्चपदेहि माणुमल्लो गो देखुणो पोमिदो, पुच्चोेरियदेवसत्रघेण उद्धं देवणजोयण-
ल्लसुप्पायणमंभवादे । एमो 'वा' मद्धे । मारणतिय-उत्तादगरेहि सच्चल्लो गो पोसिदो,
सच्चल्लो गो गमणलगमणे विरोहाभावादे ।

सासणसम्मादिद्वीहि केवडियं सेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ३६ ॥

एदस्म सुत्तस्म अत्थो पुच्चं परुविदो ।

सत्तं चोदसभागा वा देसूणा ॥ ३७ ॥

सत्याणसत्याण विहारवदिमत्याण वेदण रुमाय-वेउच्चियसमुग्घादगरेहि सासण-
सम्मादिद्वीहि च्चदुण्हं लोमाणमसेज्जदिभागो पोमिदो । माणुमरेत्तस्म मसेज्जदिभागो
पोमिदो । अधया विहारादि उवरिमपदेहि माणुमरेत्तं देखुण पोसिद । केण ऊणं ? चित्त-

संख्यातया भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, आकाशगमनादि विशिष्ट शक्तिले विरहित मिथ्या
दृष्टि जीवोंके एक लाख योजनके बाह्यस्थले सर्वत्र स्पर्शका अभाव है। अथवा, सर्व पदोंकी
अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्योंने देवोत मनुष्यलोकका स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वमवके धैरी
देवोंके अक्षयस्थले ऊपर कुछ कम एक लाख योजन तक उतका जाना घाना संभव है। इस
प्रकार यह 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ ।

मारणात्तिकसमुद्धान और उपपादपद्गन उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टि
जीवोंने सचलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, इन तीनों पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकके भीतर जाने
भागमें कोई विरोध नहीं है ।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मामादनमस्यगृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है ? लोकका असत्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ ३६ ॥

इस मूलका अर्थ पढ़ते वहा जा चुका है ।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मामादनमस्यगृष्टि जीवोंने अतीत और
अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ३७ ॥

स्वस्थानस्थस्थान, विहारस्थस्थान, चेदना, कपाय और धैरियिकममुदातगत सासा
दनमस्यगृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक भादि चार लोकोंका अत्यथाया भाग स्पर्श किया है,
अथवा मनुष्यप्रकार सबदातया भाग स्पर्श किया है। अथवा, विहारवास्थस्थानादि ऊपरके
पदोंकी अपेक्षा देवोत मनुष्यक्षेत्रकी स्पर्श किया है ।

शुद्धा—यहा देवोत पदसे विगतना कम क्षेत्र विपक्षित है ?

१ सहादनस्यगृष्टिमिलोहरवायस्येवमा। ६५ च्चदुदहमागा वा दपोना । ४ मि. १, ८

कुलसेल मेरुपञ्चद जोइसाधामादिणा । माणुसेहि अगम्भपदेमस्म तस्स कथ माणुमखेत्त वणएसो ? ण, लद्धिसपण्णमुणीणमगम्भपदेसाभाया । भारणतियसमुग्गादग्देहि सत्त चोइत्त भागा देखणा पोमिदा । किं कारण ? सामणाणं मारणतिएण भणणार्णमयलोणादो हेइया गमणाभायादो, उतरि सव्वत्थ मारणतिएण गमणमभयादो । उतरादग्देहि तिण्ह लोणाणम सखेज्जदिभागो पोसिदो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो पोमिदो । ण ताव णेइय सासणाण मणुमेसुप्पज्जमाणण पोसण तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो होदि, दुक्खम दुवाहुत्तेत्तफलस्स णेइयअमज्जसम्मादिट्ठिमारणतियत्तेत्तकलस्सेत्त तिरियलोणासखेज्जदि भागत्तुपलभादो । णादीदक्काले अट्टरज्जुमाळरिय ट्ठिददेवमामणाण मणुस्सेसुप्पज्जमाणण सुववादपोमण तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो होदि, छक्कात्तकमणियमयलेण पण्णदालीम

समाधान— चित्रापृथिवी, कुलाचल, मेरुपर्वत और ज्योतिष् आवास आदिसे हीन प्रदेश विचक्षित है ।

शंका— मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशगले इस कुलाचल आदिने क्षेत्रको 'मनुष्यक्षेत्र' यह सहा कैसे प्राप्त है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, लघिसम्पन्न मुनियोंके लिए (मनुष्यलोकके भीतर) अगम्य प्रदेशका अभाव है ।

मारणातिकसमुद्घातगत सासादनसम्पन्नदृष्टि मनुष्योंने कुछ कम सात बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । इसका कारण यह है कि सासादनसम्पन्नदृष्टियोंका मारणातिकसमुद्घातके द्वारा भयनवासियोंके निवासलोकसे नीचे गमन नहीं होता है । किन्तु ऊपर सर्वत्र मारणातिकसमुद्घातके द्वारा गमन संभव है । उपपादगत उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्पन्नदृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका अस्पर्शात्त भाग स्पर्श किया है और तिर्यग्लोकका सख्यात्त भाग स्पर्श किया है ।

शंका— मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी सासादनसम्पन्नदृष्टियोंका स्पर्शक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका सख्यात्त भाग नहीं होता, क्योंकि, (अस्पर्शात्त योजन विस्तृत श्रेणीवद्भावि त्रिलोकके) अपने दोनों ओरके दहानार व भुजाकार क्षेत्रोंका क्षेत्रफल, नारकी अस्पर्शात्तसम्पन्नदृष्टियोंके मारणातिकक्षेत्रफलके समान, तिर्यग्लोकके अस्ख्यात्त भागप्रमाण पाया जाता है । और न अस्पर्शात्तलमें ही आठ राजुप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित और मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले सासादनसम्पन्नदृष्टि देवोंका उपपादसम्पन्न भी स्पर्शक्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यात्त भाग

१ 'दुक्खमदुवाहुत्तेत्तफलस्स' इस पदका अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं हुआ । प्रायः यही पद पहले भा आ चुका है । (देखो पृ, १८७) इस पदकी यथाशक्य सार्थकता निम्नांकित अर्थ कर दिया गया है । संभव है ये उक्त नररुके उडे स बडे बिलोंके नाम हों । त्रिनेत्रप्रज्ञासिमें त्रिलोकके नाम इस प्रकारके मिलते हैं, किन्तु ये नाम हमें अभी तक नहीं मिले ।

ज्योणलम्बनिकपम-अट्टरज्जुस्सेहचदुपाणालीसु मणुअलोगमागच्छंताणमुनवादखेचफलस्स तिरियलोगादो सखेज्जगुणत्तुनलभादो । ण तिरिक्खेहिता मणुस्सेसुप्पज्जमाणसासणाण-मुनवादखेच पि तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो होदि, तत्थ पि चदुहि चेव पंथेहि आगमणदसणादो चि ? एत्थ परिहरो उच्चदे-ण ताव णेरइयसासणे अस्सिदूण उच्चदोसो, तण्णिअणुनवादफोमणत्तलेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्ताणब्भुनगमादो । ण देव-सासणे अस्सिदूण उच्चदोसो पि, अट्टरज्जुस्सेहलोगणालीए समचउरस्साए अतोद्धिददेव-सासणाणं हेट्ठिम उतरिमाण च षडुज्जुआए गईए चठणोयरणत्तारेण मणुवलोगपणिधि-मागतूण एग दोपिग्गह करिय मणुत्तेसुप्पज्जमाणानं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्त-फोमणस्सुत्तलभादो । तिरिच्छ गत्ता विग्गह करिय देसासणा मणुत्तेसु किण्ण उप्पज्जति ? मणुसगइरिहियदिसाए सहाउदो चेव तेसिं गमणाभावादो । ण च मणुसगइसमुहमागतूण पिग्गह करिय मणुस्सेसुप्पणाण खेच न्हुअमुत्तलम्बइ, तस्सेत्तस्म तिरियलोयस्स सखे-

भाग होता है, क्योंकि, भवांतरमें सक्रमणके समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे, इसप्रकार छह दिशाओंमें गमनागमनरूप पद अपक्रम नियमके तलसे पैतालीस लाख योजन विष्कम्भजाले व आठ राजु उत्सेधजाले क्षेत्रमें चारों ओरसे मनुष्यलोकको आनेवाले जीवोंका उपपादसम्बन्धी क्षेत्रफल, तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा पाया जाता है । और न तिर्यचौसे मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्बन्धितियोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग होता है, क्योंकि, यहाँर भी चारों ही दिशाओंके मार्गोंसे आगमन देखा जाता है ?

समाधान—अप उपर्युक्त आशङ्काका परिहार करते हैं— न तो नारकी सासादन-सम्बन्धितियोंको आश्रय करके उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, तन्निमित्तक उपपादसम्बन्धी स्पर्शके दलस तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग नहीं स्वीकार किया गया है । और न वेध सासादनसम्बन्धितियोंका आश्रय करके भी उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, आठ राजु उत्सेधवाली समचतुरस्र लोकनाटीके अन्वस्थित येव सासादनसम्बन्धितियोंका और अधस्तन तथा उपरिम जीवोंका भी घाणकी तरह सीधी गतिले चढने और उतरनेरूप व्यापारसे मनुष्यलोककी प्रणिधि (तट) को आकर और एक या दो विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका तिर्यग्लोकके सख्यातवै भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है ।

शङ्का—तिरछे जाकर पुनः विग्रह करके सासादासम्बन्धितियेव, मनुष्योंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते ह ?

समाधान—मनुष्यगतिले रहित दिशामें स्वभापसे ही उनका गमन नहीं होता है । तथा, मनुष्यगतिके सम्मुख जाकर ओर विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका भी क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, उस क्षेत्रके तिर्यग्लोकके सख्यातवै

ज्जदिभागपहाणचादो । तम्हा एतंविहणियमरसेण तलफोमणमेतस्सेण सगहो ऋयव्वो । मणुसोपनादिणो देवसामणा मूलमरीर पणिसिय काल करेति चि भणताणमभिप्पायेण तिरियलोगस्म सरोज्जदिभागमेचमेद्द फोमण ममत्थेदव्व । तिरिकरसासणेसु मणुस्सेसु प्पज्जमाणेसु वि तिरियलोगस्म मरसेज्जदिभागो फोमणमुपलब्ध, तिरिकरसामणसम्मा इट्ठीण चउग्गईसुप्पज्जमाणाण तिरिकरसमाभिमुहमेसग्गजीवाण च तिरिन्ठ गतुग्ग पिग्गह करिय उप्पत्तिदसणादो । अतएव च ' तिरोऽञ्चन्तीति तिर्यञ्चः ' । एदेसिमेरविहा गई अत्थि चि कुदो णचन्दे ? देवसामणोपनादस्स पच चोद्दमभागपोमणपरुणण्णहाणुव्वचीदो । तदो ण पुव्वुत्तदोसप्पसगो चि महहेयव्व ।

सम्मामिच्छाद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ ३८ ॥

सम्मामिच्छाद्विप्पहुडिण वट्टमाणकाले सगसव्वपदेहि खेत्तमगो । सत्थाणपदद्विपदि चदुण्ह लोगाणमसरोज्जदिभागो, माणुमखेत्तस्स सरोज्जदिभागो पोमिदो । विहारवदि

भागकी ही प्रधानता है। इसलिए इस प्रकारके नियमके वशसे मेरुके तलभागके स्पर्शनमात्रका ही संप्रद करना चाहिए। मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देव सासादनसम्पग्गद्विप्प जीव मूलशरीरमें प्रवेश करके मरण करते हैं, ऐसा कहन वाले जाचार्योंके अभिप्रायसे तिर्यग्लोकका सख्यातया भागमात्र स्पर्शन होता है, ऐसा समर्थन करना चाहिए। तथा तिर्येव सासादनसम्पग्गद्विप्पियोंमें और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होने वाले जीवोंमें तिर्यग्लोकके सख्यातये भागप्रमाण स्पर्शनसेत्र पाया जाता है, क्योंकि, चारों गतिकोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्येव सासादनसम्पग्गद्विप्पियोंके और तिर्येवमरुके अभिमुख शेष गतिकोंके जीवोंके तिरछे जाकर और विग्रह करके उतरसि देखी जाती है। और इसीलिए ये ' तिरछे जाते हैं अतएव तिर्येव हैं ' ऐसी व्युत्पत्ति की गई है।

शुक्रा—इत तिर्येचोकी इस प्रकारकी तिरछी गति होती है, यह कैसे जाना जाता है? समाधान—अथवा देव सासादनसम्पग्गद्विप्पियोंके उपपादसम्बन्धी पांउ घटे चौवह (१४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं हो सकती थी। इसलिए पूर्वोक्त दोष नहीं प्राप्त होता है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

मनुष्योंमें सम्पग्गिध्याद्विप्प गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ ३८ ॥

सम्पग्गिध्याद्विप्प मनुष्योंका वर्तमानकालमें स्पर्शनक्षेत्र अपने सर्व पदोंकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्यस्थान पवस्थित उक्त गुणस्थानवर्ती मनुष्योंने सामान्य लोक आदि चार लोकोंका असख्यातया भाग और मानुषक्षेत्रका सख्यातया भाग स्पर्श

सत्याण वेदण कसाय पेउवियपदेहि चटुह लोगाणमसंसेज्जदिभागो, माणुमस्सेनस्म सखे-
ज्जदिभागो' पोमिदो । अदीदाणागदणट्टमाणकालेसु मणुसअसजटसम्मादिट्ठीणं मणुमतमा-
मिच्छादिट्ठिमगो । णरि मारणतियममुग्घादग्देहि तिण्ह ले.गाणमससेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्म सखेज्जदिभागो पोसिदो । त रुध ? मणुमसम्मादिट्ठिदेसेसु मारणातिय कग्ता
सखेज्जपय सखेज्जनिमाणेसु चेव मारणतिय करेत्ति, णाणनेतर जोदिसेएसु तेमिमुप्पत्तीए
अभावादो । तत्थ एक्केक्किस्से वट्टाए जदि वि अमखेज्जजोयणलकसबाहल्ल होदि, तो वि
तिरियलोगस्म असखेज्जदिभागमेत्त चेव येत्त फोमिद होज्ज । तेणेदमप्पण । मणुमा
पुव्व तिरिकसेसु वट्टायुगा पन्च्छा सम्मत्त घेत्तूण तिरिकसेसु उप्पज्जति, एद सेत्त पवाण ।
कधमेदमाणिज्जे ? सयपहपव्वदादो उतरिमसेत्तविकसम ठविय--

व्यास षोडशगुणित षोडशसहित त्रिरूपरूपहत ।

व्यासत्रिगुणितसहित सूक्ष्मादपि तद्भेदेत्सूक्ष्मम् ॥ ९ ॥

किया है । विहारवत्सव्यान वेदना, कथाय और वैकृतिकसमुद्घात, इन पदोंकी अपेक्षा
मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यलोकको सख्यातवा
भाग स्पर्श किया है । अतीत, जनागत आर वर्तमान, इन तीनों कालोंमें मनुष्य असयत-
सम्पद्दृष्टियोंकी स्पर्शनप्ररूपणा मनुष्य सम्पत्तिमत्वाद्दृष्टियोंके समान है । विशेष यात यह है
कि मारणाग्निफलसमुद्घातगत असयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा
भाग और तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग स्पर्श किया है ।

शुका—मारणाग्निफलसमुद्घातगत असयतसम्पद्दृष्टि मनुष्योंने तिर्यग्लोकका सख्या-
तवा भाग कैसे स्पर्श किया ?

समाधान—देवोंमें मारणाग्निफलसमुद्घात करने वाले सम्पद्दृष्टि मनुष्य संख्यात
मार्ग वाले सख्यात विमानोंमें ही मारणाग्निफलसमुद्घात करते हैं, क्योंकि, उनका वानस्पत्यर
और उग्रानिष्क देवोंमें उग्रवित नहीं होती है । उनमें एक एक मारणाग्निफलसमुद्घातके मार्गका
यद्यपि असख्यात लास योजन बाहव्य होता है तो भी यह क्षेत्र (सब मिलकर) तिर्य-
ग्लोकके असख्यातव भागमान ही स्पर्श किया गया होगा । इसलिए यह क्षेत्र यदा पर
सप्रधान है । पहले तिर्यचोम जिह्मोंने आयु पाव ली है, वैसे मनुष्य पीछे सम्पद्दृष्टको ग्रहण
करके तिर्यचोम उत्पन्न होते हैं, यह क्षेत्र यदा पर प्रधान है ।

शुका—यद्यप्युष्क मनुष्योंका यह उपग्राक्षेत्र कैसे निकाला जाता है ?

समाधान—स्वयम्भुव पर्यन्तसे उपरिम क्षेत्रके विष्कम्भको स्थापित करके—

ध्यासको सोलहसे गुणा करे, पुन सोलह जोड़े, पुन तीन, एक और एक बर्षात्
एकसी तेरह (११३) का भाग देवे । पुन व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म
परिधिका प्रमाण आ जाता है ॥ ९ ॥

एदीए गाहाए परिभिभाणीय निम्नमचउरुभागैग गुणिय सखेज्जगुलेहि गुणिद तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो मागणतियसेच हेदि । अट्टाइज्जादो अमखेज्जगुणं । उरुवाग्ग्रेहि जसज्जदमम्मादिट्ठीहि तिण्ह लोमाणममखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखे ज्जदिभागो । त जहा-जदि नि अट्टरज्जुसेत्त रज्जुनिम्नभमदीदकाले चउत्विहा देवा आऊरिय ट्ठिदा अवज्जदमम्मादिट्ठिणो मणुमेसु उप्पज्जति, तो नि तिरियलायस्स सखेज्जदिभागो पोमण, देवनामणण च तत्थतणजसज्जदमम्मादिट्ठीण मणुसेसुप्पज्जमाणण मागणणियमोरलभादो । धमो अत्थो अण्णत्थ नि चचच्चो । अट्टाइज्जादो अमखेज्जगुणो पोमिदो । सज्जदामज्जदाण वडुमाणपरूणणा खेत्तभगो । सत्थाणमत्थाणेण अदीदकाले मज्जासज्जेहि चउण्ह लोमाणममखेज्जदिभागो, माणुत्तसेत्तस्स सखेज्जदिभागो पोमिदो । विहारयदिसन्धाण वेदण कमाय पेउत्तियममुग्घादग्घेहि चउण्ह लोमाणममखेज्जदिभागो,

इस गाथाके अनुसार परिधिको निकालकर ओर विष्णुके चतुर्भागसे गुणाकर पुन सख्यात नगुलोसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागप्रमाण मारणातिकक्षेत्र हो जाता है । यह क्षेत्र अट्टाइट्ठीपसे असख्यातगुणा होता है ।

उदाहरण—त्रयप्रभ पर्यन्ते उरिम भाग अर्थात् भीतरी क्षेत्रका विष्णुम्भ—

$$१ - \frac{५}{८} = \frac{३}{८}, \quad \frac{३}{८} \times \frac{१९}{१} + \frac{१९}{१} + \frac{९}{८} \times \frac{३}{३२} = \frac{३१७९}{२९०१६} \text{ राजु प्रतर,}$$

यह मारणातिकम्मुदातगत अस्यतसम्भग्घट्टि मनुष्योंका क्षेत्र है जो राजुप्रतरके अष्टमांशसे कुछ अधिक होनेके कारण तिर्यग्लोक अर्थात् ७ x १ राजुका सख्यातवा भाग तथा पैनालीस लाख योजन विष्णुम्भ वाले अट्टाइट्ठीपसे असख्यातगुणा बड़ा है ।

- उपपादपदगत अस्यतसम्भग्घट्टि जीवोंने सामान्यलोक अर्थात् तीन लोकोंका असख्यातवा भाग जोर तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग स्वप्न किया है । यह इन्द्रप्रकार है—यद्यपि अर्थात्कात्रमें आठ राजु आयत और एक राजु विस्तृत क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित चारों प्रकारके अस्यतसम्भग्घट्टि देव, मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तो भी वह स्पर्शाक्षेत्र निर्भग्लोकका सख्यातवा भाग ही होता है, क्योंकि, साक्षात्सम्भग्घट्टि देवोंके समान वहाके मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले अस्यतसम्भग्घट्टियोंके आगमनका नियम पाया जाता है । यह अर्थ अन्यत्र भी कहना चाहिए । उन्हीं जीवोंने अट्टाइट्ठीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

स्यतास्यत मनुष्योंकी प्रतमानकारिक स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । इस्थानस्वस्थानपदकी अपेक्षा स्यतास्यत मनुष्योंने अर्थात्कालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रका सख्यातवा भाग स्पर्श किया है । विहारयत्स्यस्थान, घेदना, वषाय और वैक्रियिकम्मुदातगत मनुष्य स्यतास्यतोंने सामान्य

माणुसखेत्तस्म सखेज्जदिभागो, सखेज्जा भागा वा पोसिदा । मारणतियसंमुग्धादग्देहि च्चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो असखेज्जगुणो पोमिदो । कारणं चित्तिय वत्तन्न । पभत्तसजदप्पहुडि जाण अजोगिकेणलि त्ति ओध ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्त फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ ३९ ॥

एदस्म सुत्तस्म अत्थो पुब्ब उच्चो त्ति मपदि ण उच्चदे । एण पज्जत्तमणुस मणुसिणीसु । णवरि मणुमिणीसु असजदग्ग्मादिट्ठीण उन्नदादो णत्थिय । पमत्ते तेजाहारणत्थिय ।

मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदि-
भागो ॥ ४० ॥

सत्याण पेदण कमायमग्ग्धादग्देहि च्चदुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुम-
खेत्तस्स सखेज्जदिभागो पोसिदो । मारणतिय-उन्नदादग्देहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो,
दोलोगेहिदो असखेज्जगुणो पोमिदो ।

लोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग जोर मनुष्यक्षेत्रका सख्यातवा भाग अथवा
सख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिक्कममुद्धातगत सयतासयत मनुष्योंने
सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अर्द्धाईपमे असख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है । इसका कारण त्रिचार फेर कहना चाहिए । प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लगाकर
व्यागिकेवली गुणस्थान तत्र प्रत्येक गुणस्वाभ्यां मनु योंका स्पर्शनक्षेत्र जोघप्रप्पणाके
समान लोकका असख्यातवा भाग है ।

सजोगिकेवली जिनेने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग,
असख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले वह थाये ह, इसलिय अत्र नहीं कहते हैं । इसी प्रकारसे
पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनियोंका स्पर्शाक्षेत्र जनाना चाहिए । विशेष यात यह है कि
मनुष्यनियोंमें असयतसम्पग्घट्टि जीवोंका उपपाद नहीं हाता हे, और प्रमत्तसयतगुणस्थानमें
तेजस एव आहारवसमुद्धात नहीं होते हैं ।

लब्धपर्याप्त मनुष्योंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा
भाग स्पर्श किया है ॥ ४० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और उपायसमुद्धातगत लब्धपर्याप्त मनुष्योंने सामान्य-
लोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रका सख्यातवा भाग स्पर्श किया
है । मारणान्तिक्कसमुद्धात और उपपादपदगत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असख्यातवा भाग और मनुष्य तथा तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्विहि पच चोदमभागा देहणा पोसिदा, सहस्सररुप्पादो उवरी मेदेमिमुत्रवादाभावा । उक्तावकमणियमे सते पचचोदसभागफोसण ण जुज्जदि चि णासरुणज, चदुण्ह दिमाण हेदुवरिमदिसाण च गच्छतेहि तदा मारण पडि विरोहाभावादो ।

का दिसा णाम ? सगट्टाणादो ऋज्जुना दिसा णाम । ताओ उच्चेव, अण्णेमि सभवादो । का विदिसा णाम ? सगट्टाणादो कण्णायारेण द्विद्वेत्त विदिसा । जेण सत्थे जीना कण्णायारेण ण जाति तेण छत्रावकमणियमो जुज्जेदे । ण च एगदडेण उप्पत्ति द्वाणेण उवरि सरिसा होति चि णियमो, एगगुलादिप्रियप्पेहि तिरिकखेण आयद पढमदद काऊण तिरिकव मणुसाण विदियदडेण सगुप्पत्तिद्वानपावणे विरोहाभावादो । भरणमिणसु उप्पज्जमाणतिग्गिस्सुवरात्थेत्ते गहिदे पच रज्ज सादिरेया ऋण्ण होति चि उत्ते ण होति,

क्रिये ह । उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम पाच घटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये ह, क्योंकि, सहस्रारकल्पसे ऊपर इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

शुक्रा—छहा दिशाओंमें जाने जानेका नियम होनेपर सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका स्थानक्षेत्र पाच घटे चौदह भागप्रमाण नहीं बनता है ?

समाधान—पेसी आशाना नहीं करना चाहिये, क्योंकि, चारों दिशाओंको और ऊपर तथा नीचेकी दिशाओंको गमन करनेवाले जीवोंके मारणातिकसमुद्घातके प्रति कोह विरोध नहीं है ।

शुक्रा—दिशा किसे कहते ह ?

समाधान—अपने स्थानसे बाणकी तरह सीधे क्षेत्रको दिशा कहते हैं ।

ये दिशाएँ छह ही होती है, क्योंकि, अन्य दिशाओंका होना असंभव है ।

शुक्रा—विदिशा किसे कहते ह ?

समाधान—अपने स्थानसे कणरेखाके आकारसे स्थित क्षेत्रको विदिशा कहते हैं ।

चूंकि मारणातिकसमुद्घात और उपपाद पदगत सभी जीव कर्णरेखाके आकारसे अर्थात् तिरछे मार्गसे नहीं जाते हैं, इसलिए छह दिशाओंके अपक्रम अर्थात् गमनागमनका नियम बन जाता है । तथा, एक दड़के द्वारा ही सब जीव ऊपर उत्पत्तिस्थानकी अपेक्षा समतलस्थ हो जाते हैं, ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, एक अगुल आदिके विरूपसे तिरछे रूपसे आयत प्रथम दड़को करके तिर्यच और मनुष्योंका द्वितीय दड़के द्वारा अपने उत्पत्तिस्थानको पानेमें कोई विरोध नहीं है ।

शुक्रा—भवनवासियोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्यचोंके उपपादक्षेत्रको ग्रहण करने पर साधिक पाच राजु स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

अद्विचयेत्तादो ऊणसेत्तस्म बहुलुपदेसा । सं रुधं णचन्दे ? हेट्टा दंढायारेण ओयरिय विग्गह काऊण भरण्णासिएसुपपणाण पढम विदियदडेहि अदीदकाले रुद्धसेत्तादो सहस्सा-
रुग्गदसेज्जाए उपरिमभागस्स सपेज्जगुणत्ता । विमाणसिहरमुस्सेहजोयणपमाणत्ति ण थोत्रो
उपरिमभागो, महस्सारुग्गपरिमपज्जपसाणस्स लम्पपमाणजोयणेहितो बहुअत्तादो । त कुदो
णचन्दे ? देसुणपच-चोइसमागफोसणणाहाणुपउत्तीदो ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४४ ॥

एदम्म सुत्तस्स अत्थो खेतपरूवणाए उत्तो त्ति इह ण उच्चदे ।

अट्ट चोइसमागा वा देसूणा ॥ ४५ ॥

समाधान—ऐसी शका करने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा कम क्षेत्रकी अधिकताका उपदेश पाया जाता है ।

शका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नीचे दंडाकार आत्मप्रदेशोंसे उतरकर धोर विग्रह करके भजनवासियोंमें उम्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रथम और द्वितीय ब्रह्मोंके द्वारा अतीतकालमें रज्जक्षेत्रसे सहस्रार कलाकी उपपादशय्याका उपरिम भाग सख्यातगुणा है, इसलिए जाना जाता है कि नीचेके अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरका हीन क्षेत्र प्रधानतया विरक्षित है । देवोंके विमानोंका माप उत्तरेधयोजनके प्रमाणसे है, इसलिए उपपादशय्यासे ऊपरी भाग अर्थात् विमानशिखरसे लेकर उसी कल्पके अन्त तकका क्षेत्र स्तोत्र अर्थात् वर्ष नहीं हैं, क्योंकि, मेरुतलसे नीचेके एक लाख भ्रमाणयोजनोंकी अपेक्षा सहस्रारकल्पके विमानशिखरसे ऊपरी पर्यन्तभागका प्रमाण बहुत है ।

शका—यह कैसे जाना ?

समाधान—अप्यथा सानाइनसम्पग्घट्टि देवोंका देवोत्तम पाच षट्ठे चौदह (१४) भाग स्पर्शनक्षेत्र वन नहीं सकता है, इस अययानुपपत्तिसे जाना जाता है कि भग्नाग्नी देवोंके क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरके विमानवासी देवोंका क्षेत्र यद्वा पर प्रधानतासे ग्रहण किया गया है ।

सम्पग्गिम्य्याट्टि और असयतसम्पग्घट्टि देवान कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकरूता असख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्रवृत्तयामें कहा गया है, इसलिए यद्वा पर नहीं कहा जाता है ।

मासादनसम्पग्घट्टि और असयतसम्पग्घट्टि देवोंने अतीत और अनागतकालमें कुछ कम आठ षट्ठे चौदह भाग स्पर्श किया है ॥ ४५ ॥

सत्याणसत्याणपरिणदेहि मम्मामिच्छादिष्टि-असजदसम्मादिष्टीहि तिण्ह लोगणम
सरोज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सरोज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असरोज्जगुणो पोसिदो ।
एसो 'वा' सहडो । विहारवदिसत्याण वेदण कमाय वेउच्चिय मारणतियसमुग्घादग्देहि
असजदसम्मादिष्टीहि अट्ट चोदसभागा देवणा पोमिदा । उग्गादग्देहि छ चोदसभागा
पोसिदा, अच्चुदकप्पादो उग्गरि मणुसग्गदिरिच्छाणमुग्गादाभागा । एग्ग सम्मामिच्छादिष्टीण
पि । णग्गि मारणतिय उग्गादग्गा णत्थि ।

भ्रवणवासिय-वाणवेतर-जोदिसियदेवेषु मिच्छादिष्टि सासणसम्मा
दिष्टीहि केवडिय खेत पोमिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ ४६ ॥

वाणवेतर जोदिसियमिच्छादिष्टि सासणसम्मादिष्टीण खेतभगो । भ्रवणवासिय
मिच्छादिष्टीहि सत्याणमत्याण विहारवदिसत्याण वेदण कमाय वेउच्चियसमुग्घादग्देहि वट्ट
माणकाले चट्टण्ह लोगणमसरोज्जदिभागो पोसिदो । अट्टाइज्जादो असरोज्जगुणो । उववाद्
परिणदाण पि एव चेव वत्तव्व । जदि नि एद्द वट्टमसरोज्जसेदीमेत्तं, तो नि तिरिय

स्वस्थानस्वस्थानवदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्य
लोक भादि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तियल्लोकका सख्यातवा भाग और अट्टाइष्टीपसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना,
कषाय, धैर्यिक और मारणातिकसमुद्घातगत असत्यतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम आठ घटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपद्मगत असत्यतसम्यग्दृष्टि देवोंने छह घटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर मनुष्योंको छोड़कर अन्य जीवोंके
उत्पन्न होनेका अभाव है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका भी स्पर्शन जानना चाहिये,
विशेष बात यह है कि इनके मारणातिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

भ्रवणवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्य
ग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया
है ॥ ४६ ॥

वानव्यन्तर और ज्योतिष्क मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शन
क्षेत्रप्रकरणके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और धैर्य
यिकसमुद्घातगत भ्रवणवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक भादि चार
लोकोंका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है । तथा मनुष्यलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है । उपपादपदपरिणत उक्त देवोंका भी इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिये । यद्यपि
यह उपपादपदपरिणत उक्त देवोंका भी इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिये । यद्यपि
यह उपपादपदपरिणत उक्त देवोंका भी इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिये । यद्यपि

१ प्रतिष्ठा 'दम्भ-' इति पाठः ।

लोगस्य असखेज्जदिभागं चेव उववादेण वट्टमाणकाले फुमदि, तिरियलोगमज्झमि तद-
सखेज्जदिभागे चेव भवणासाणमज्झाणादो, तद्वट्टिददिसं मोत्तूणणदिसाए गमणा-
भाणादो, हेट्ठा ओयरिय उप्पज्जमाणाण सुट्टु थोत्तादो । मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं
लोगाणमसखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असखेज्जगुणो । भणणासियसासणसम्मा-
दिट्ठीण खेत्तमगो ।

अट्टुट्टा वा, अट्ट णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४७ ॥

भवणासियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चट्टुण्ह लोगाणमसखेज्जदि-
भागो, अट्टाडज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो । विहारदिसत्थाण पेदण कसाय वेउत्तिय-
पदेहि अट्टुट्टा वा अट्ट चोद्दसभागा वा देसूणा । अट्टुट्टरज्जू सयमेव विहरति । कधमाहुट्ट-
रज्जू जादा ? मदरतलादो हेट्ठा दोण्णि, उररि जाव सोधम्मविमाणसिहरघज्जदो त्ति
दिउट्टरज्जू । उवरिमदेवपयोगेण अट्ट रज्जू । मारणतियसमुग्घादगदेहि णव चोद्दसभागा

तयें भागप्रमाण क्षेत्र ही उपपादके द्वारा वर्तमानकालमें स्पर्श किया जाता है, फ्योंकि,
तिर्यंग्लोकके मध्य भागमें और उसके भी असख्यातयें भागमें ही भवनवासी देवोंके आवासोंका
अवस्थान है । तथा, जिस दिशमें विमान अवस्थित हैं उस दिशाको छोडकर अन्यदिशामें
गमन करनेका अभाव है, तथा, नीचे उतरकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण बहुत कम है ।
मारणान्तिकसमुद्रातगत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग
और मनुष्यलोक तथा तिर्यंग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । भवन्-
वासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भ्रनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साडे तीन भाग, आठ भाग
और नौ भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४७ ॥

स्यस्थानस्वस्थानपरिणत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असख्यातवा भाग और अट्टाईपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-
पत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और धैत्रियिकसमुद्रातपदवाले उक्त देवोंने चौदह भागोंमेंसे
देशोन साडे तीन भाग, (३८) अथवा आठ भाग (१६) प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । भवन
वासी देव साडे तीन राजु स्वय ही विहार करते ह ।

शंका—साडे तीन राजु कैसे हुए ?

समाधान—मदराचलके तलभागसे नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु और ऊपर
सौधर्मकल्पके विमानके शिखरपर स्थित घज्जादड तक डेढ़ राजु, इस प्रकार मिलाकर साडे-
तीन राजु हुए ।

उपरिम अर्थात् ऊपरके आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंके प्रयोगसे आठ राजुप्रमाण

देवूणा पोसिटा । उवरि मत्त, हेट्टा दोण्णि, एण णन रज्जू । उन्नदादपरिणदेहि तिण्ह
 लोमाणमसरोज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सरोज्जदिभागो, जट्टाड्ज्जादो असरोज्जणुणो ।
 जोयणलक्खणमाहृत्त तिरियपदरमदीदक्काले ऋण्ण पुमिज्जदि ? ण, तिरिच्छेण भवणद्धिदपदेस
 गत्तूण हेट्टा मुक्कमारणतियाणमुन्नदादेण हेट्टुवरिमासेसरोत्तफुमणाभावादो । पुणो व
 तिरियलोगस्स सरोज्जदिभागत्त जुज्जदे ? सगावद्धिदपदेमादो हेट्टा गत्तूण तिरिच्छेण
 पल्लद्धिय सगभवणेसुप्पण्णाण तिरियलोगस्स सरोज्जदिभागो उन्नदादफोमण होदि । अण्णाहा
 ऋण्ण होदि ? भवणत्तासियपाजोग्गाणुपुच्छिपडिबद्धागामपदेमाणमत्तद्वणत्तमेण मारणतिय
 समत्तादो । भवणत्तासियसामणमम्मादिद्धिसव्वपदाण भवणत्तासियमिच्छादिद्धिमगो । वाण
 वत्तरमिच्छाद्धि सामणमम्मादिद्धीहि सत्त्वाणेण् तिण्ह लोमाणमसरोज्जदिभागो, तिरियलोगस्स

विहार करते ह । मारणातिक्कसमुद्धातगत उहाँ भवनवासी देवोंने नो वटे चौदह (१४)
 भाग स्पश किये हैं । मदराचलसे ऊपर लोकके अत तक सात राजु और नीचे तीसरी
 पृथिवी तक दो राजु, इस प्रकार नौ राजु होते हैं । उपपादपरिणत उक्त देवोंने सामायलोक
 आदि तीन लोकोंका असव्यातता भाग, तियग्लोकका सख्यातता भाग और अद्वारद्वीपसे
 असव्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शुक्रा— भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने अतीतकालमें एक लाख योजन बाह्यव्याला
 तिर्यक्प्रतरप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं स्पर्श किया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, तिर्यग्रूपसे भवनस्थित प्रदेशको जाकर नीचे मार
 णातिक्कसमुद्धातको करनेवाले जीवोंने उपपादपदकी अपेक्षा नीचे और ऊपरके समस्त
 क्षेत्रको स्पशन करनेका अभाव है ।

शुक्रा— तो फिर भवनवासी देवोंके उपपादपदकी अपेक्षा तियग्लोकका सख्यातता
 भाग स्पर्शनक्षेत्र कैसे बन सकता है ?

समाधान— अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर पुन तिरछे रूपसे पलट करके
 अपने भवनोंमें उत्पन्न होने वाले जीवोंका तिर्यग्लोकके सख्याततवें भागप्रमाण उपपादपद
 सम्बन्धी स्पशनक्षेत्र हो जाता है ।

शुक्रा— यह स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे क्यों नहीं होता है ?

समाधान— क्योंकि, भवनवासी देवोंके योग्य जातुपूर्वोनामकर्मसे प्रतिबद्ध आकाश
 प्रदेशोंके अस्थानके वशासे मारणातिक्कसमुद्धात होता है, इसलिए उक्त स्पर्शनक्षेत्र अन्य
 प्रकारसे नहीं बन सकता है ।

भवनवासी सासादनसम्पदृष्टि देवोंके स्वस्थानादि सभी पदोंका स्पर्शनक्षेत्र भवनवासी
 मिथ्यादृष्टि देवोंके समान है । मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्पदृष्टि चानव्यतर देवोंने
 स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा सामा यलोक आदि तीन लोकोंका असव्यातता भाग, तिर्य

सखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो अमखेज्जगुणो । त जहा— एग जगपदरं ठणिय तप्पाजोग्ग-
सखेज्जपदरं गुलेहि भागे हिदे पंतराणासाण पमाण हेदि । तमेगानासोगाहणाए सखेज्जघण-
गुलपमाणाए गुणिदे सखेज्जगुलाणि चाहछु तिरियलोगस्म मखेज्जदिभागमेत्तं जगपदरं
हेदि । अमखेज्जजौयणमित्थडा पंतराणा अप्प प्राणा चि ऋट्टु इइ भणिद । जह जइ ते
चेय पहाणा, जगपदरस्स असखेज्जाणि पदरगुलाणि भागहार ठणिय असखेज्जघणं-
गुलेहि एगानासुप्पणेहि गुणिदे तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो हेदि । विहारउदिसत्थान-
वेदण कमाय वेउत्तियपदपरिणदमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिहि सगपच्चएण आहुट्ट-
चोइमभागा देसुणा पोसिदा । परपच्चएण जइ चोइसभागा देसुणा पोमिदा । मारणंतिय-
समुग्घादगदेहि ण चोइमभागा पोसिदा । उपपादेण तिण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्म मखेज्जदिभागो अद्वाइज्जादो अमखेज्जगुणो पोसिदो । उपपादेण तिरिय-
लोगादो अमखेज्जगुण खेत्त चट्टमाणकाले अरुभिय ट्ठिदेवतरा अदीदकाले कध
तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागं पुसति चि उत्ते ण एम दोसो, खेत्त णाम सव्वजीणान-

ग्लोकका सख्यातवा भाग और अद्वाइद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह
इस प्रकार है— एग जगप्रतरजे स्थापित करके तत्प्रायोग्य सख्यात प्रतरागुलोंसे भाग
देनेपर सख्यात घनागुलप्रमाण व्यन्तर देवोंके आवासोंका प्रमाण हो जाता है । उसे
सख्यात अगुलप्रमाण एक आवासकी अवगाहनासे गुणा करनेपर सख्यात घनागुल चाहल्य-
पाला और तिर्यग्लोकके सख्यातयें भाग प्रमाण जगप्रतर होता है । यद्यपि असख्यात योजन
विस्तारवाले भी व्यन्तरोंके आवाम होते हैं, किन्तु वे यहापर प्रधानरूपसे विवक्षित नहीं
हैं, इस अपेक्षासे यह उक्त स्पर्शनक्षेत्र कहा है । और यदि वे ही अर्थान् असख्यात योजन
विस्तार वाले विमानोंको ही प्रधान माना जाय, तो जगप्रतरका असख्यात प्रतरागुलप्रमाण
भागहार स्थापित करके एक आवासके क्षेत्रफलकी अपेक्षा उपपन्न होने वाले असख्यात
घनागुलोंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग हो जाता है ।

विहारवास्वस्थान, वेदना, वषाय और वैत्रियिक्कपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सामा-
दनसम्पग्घादि भजनवासी देवोंने स्वप्रत्ययसे अर्थात् अपने आप कुछ कम साठे तीन बटे
चौदह (३८) भाग स्पर्श किये हैं । किन्तु परप्रत्ययसे अर्थात् अन्य देवोंके प्रयोगसे कुछ
कम आठ बटे चौदह (३४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुदागत उक्त दोनों
गुणस्थानतर्ती व्यन्तर देवाने नौ बटे चौदह (३४) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादकी अपेक्षा
उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा
भाग और अद्वाइद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शुद्धा— उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें क्या
परके स्थित व्यन्तर देव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके सख्यातयें भागको स्पर्श करते हैं ?

मोगाहणाओ उवनादपिसिद्धाओ एगदु करिय गहिदे होदि । तेण तिरियलोगादो वेंत-
मिच्छादिद्वि उवनादखेचमसखेज्जगुण जाद । पोसणमिह पुण जीवप्पडिद्विदोमोगाहणाओ
ण घेप्पति, किंतु तीदकाले उवनादपरिणदमिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्विउंतरेहि च्छिच
खेचमेण घेप्पदि, वेंतरेसु णि ण देना णेरइया वा उप्पज्जति, ण च एइदिया णिग
लिंदिया, किंतु सण्णि असण्णिपच्चिंदियतिरिक्ख मणुसा चेव । ण च वेंतराणमात्राभा
सोधम्मादिसु तिरियलोगवाहिरेसु कप्पेसु अत्थि, तधोपदेसाभावा । ण च लक्खजोयण
बाहल्लतिरियपदरमिह सब्बत्थ वेंतरानासा चेव, जोदिसियासाण वेलवरपण्णागादिआसाण
च अभानप्पसगा । ण च भूमीए चेव वेंतरानासा होंति चि णियमो अत्थि, आगासपदि
द्वियाण पि वेंतरानासाण सभनादो । ण च तिरियलोमे चेव वेंतरानासाणमत्थिचणियमो,
हेहा पक्कडुलपुट्ठीए वि भूत रक्खसासासाणमुलभादो । तम्हा किंचूणमजोएदूण वेलक्ख
बाहल्लतिरियपदर ठणिय सच्चरुदीए ओउद्विय पदरागारेण उडदे तिरियलोगम्म सखेज्जदि
भागवाहल्ल जगपदर होदि । एव चेव जोदिसियाण पि वत्तव, णवरि उवनादखेचे

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्व जीवोंकी उपपादविशिष्ट अवगाहना
आँको एकट्ठा करके ग्रहण करने पर 'क्षेत्र' यह नाम होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टि व्यंत्तर
देवोंका उपपादक्षेत्र तियग्लोकसे असरयात गुणा हो जाता है । पर स्पर्शनमें जीवोंसे
प्रतिष्ठित अवगाहनाए नहीं ग्रहण की जाती हैं, किन्तु अतीतकालमें उपपादपरिणत मिथ्यादृष्टि
और सासादनसम्पदादृष्टि व्यंत्तर देवोंसे स्पर्शित क्षेत्र ही ग्रहण किया जाता है । व्यन्तरोंमें
भी न तो वेध अथवा नारकी जाँ उ-पन्न होते हैं और न एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीव ही,
यहा केवल सही व असही पचेन्द्रियतियच और मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं । तथा तिर्यग्लोकसे
बाहिर स्थित सौधर्मादि कल्पोंमें भी व्यन्तर देवोंके आवास नहीं होते हैं, क्योंकि, उस
प्रकारके उपदेशका अभाव है । और न लाख योजन बाहल्यवाले तियक्प्रतरमें ही सर्वत्र व्यंत्तर
देवोंके आवास होते हैं, अन्यथा चंद्र, सूर्यादि ज्योतिष्क देवोंके आवासोंका और बेलघर,
पन्नग आदि मनुनवासी देवोंके आवासोंके अभावका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । तथा भूमिमें
ही व्यंत्तर देवोंके आवास होते हैं, ऐसा भी नियम नहीं है, क्योंकि, आकाशमें प्रतिष्ठित
व्यन्तरोंके आवास सम्भव हैं । और न तिर्यग्लोकमें ही व्यन्तर देवोंके आवासोंके अस्तित्वका
नियम है, क्योंकि, नीचे रत्नप्रभा पृथिव्याके पकवहुल भागमें भी भूत और राक्षस नामके व्यंत्तर
देवोंके आवास पाये जाते हैं । इसलिए कुछ कम क्षेत्रको नहीं जोड़कर दो लाख योजन
बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको स्थापित करके सातकी वृत्ति अर्थात् चर्गसे अपचतितकर प्रतराकारसे
स्थापित करने पर तियग्लोकके संस्थातवें भागप्रमाण बाहल्यवाला जगप्रतर हो जाता है ।

इसी प्रकारसे ही ज्योतिष्क देवोंका भी स्पष्टानक्षेत्र कहना चाहिये । विशेष बात यह

१ रत्नरुद्री गुणितरा णवणउदिसइहा अवियलवल्लण । तम्म से तिरियप्पा वेंत देवाण होंति पुा ॥
मन्न मन्नपुराणि आवासा इय सवति तिरियप्पा । जिणमुहकमलतिणिग्गद्वेंतरपण्णाचिणाभाए ॥ एणप्पहणुत्तीए
मन्नपुराणि दीव उवदिउवदिग्गि । मन्नपुराणि दइणिरिपहुदीण उवरी आवासा ॥ ति प प १९६

आणिज्जमाणे णजोयणसदवाहल्ल तिरियपदरं सत्तकदीए सडिदे पंदरागारेण द्दुह्दे तिरिय-
लागस्स सखेज्जदिभागवाहल्ल जगपदर होदि' ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण वेदण कमाय-पेउच्चिय-
मारणतियपदपरिणदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि असजदसम्मादिट्ठीहि भणणवासिय पेंतर जोदि-
सिएहि चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो ।

अट्टुट्टा वा अट्ट चोदसभागा वा देसूणा ॥ ४९ ॥

सत्थाणमत्थाणभणणवासिय वाणपेंतर जोदिसिय सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मा-
दिट्ठीहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो
असखेज्जगुणो पोमिदो । णपरि भणणवासिएसु चदुण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोमिदो ।
चि वत्तच्च । विहारवदिसत्थाण वेदण कमाय पेउच्चिय-मारणतियपदपरिणदेहि सम्मा-

है कि उनके उपपादक्षेत्रको लाते समय नौ सौ योजन वाहृत्यवाले तिर्यकप्रतरको सातके
वर्गद्वारा खडितकर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागप्रमाण वाहृत्य-
वाला जगप्रतर होता है ।

सम्यग्मिध्याहृष्टि और अमयतसम्यग्दृष्टि भननत्रिक देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
क्रिया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श क्रिया है ॥ ४८ ॥

अइस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना,
कपाय, वैकियिक और मारणान्तिरुसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिध्याहृष्टि और
असयतसम्यग्दृष्टि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असख्यातवा भाग आर अढाईठोपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सम्यग्मिध्याहृष्टि और अमयतसम्यग्दृष्टि भननत्रिक देवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा कुछ कम सादे तीन भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श
क्रिये हैं ॥ ४९ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदवाले भननवासी, वानयन्तर ओर ज्योतिष्क सम्यग्मिध्याहृष्टि
और असयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग,
तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग ओर अढाईठोपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विशेष
थात यह है कि भननवासियोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग स्पर्श
क्रिया है, ऐसा कहना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैकियिक और मारणा

१ उट्टकदी शुण्दिद्वय एकपदसुवरेहि जोयणए । तदिद्व अगम्भदेस साधिव सेसग्गि जोदिसिया ॥
ति ५, ७, ५

मिच्छादिद्वि असंजदसम्मादिद्वीहि अदुद्धा चोदसभागा देसणा सगपच्चएण; परपच्चएण अदु
चोदसभागा देसणा पोमिदा । णवरि सम्मामिच्छादिद्वीण मारणंतियपद णत्थि ।

सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव असंजद-
सम्मादिद्वि ति देवोष ॥ ५० ॥

सत्याणसत्थाण निहारउदिसत्थाण-पेदण कसाय-वेउच्चियपदपरिणदेहि मिच्छा-
दिद्वीहि चट्टमाणकाले चटुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो ।
मारणतिय उवणदपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, णर-तिरियलंगेहिंतो असखेज्ज-
गुणो पोमिदो । सेसगुणद्वानजीवेहि अप्पणो पदेसु वट्टमाणेहि चटुण्ह-लोगाणमसखे
ज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो । तीदे काले सोधम्मीसाणकप्पवासिय
मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वीहि सत्याणसत्थाणपदपरिणदेहि चटुण्ह लोगाणमसखेज्जदि-
भागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो । त जहा- सव्णे इदया सखेज्जोपण
वित्थडा, सेठीबद्धा असखेज्जोपणवित्थडा, पडण्यया मिस्सा' । एत्थ जदि वि सव्व

निष्कसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिध्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने
स्वप्रत्ययसे कुछ कम साठे तीन घटे चौदह (३६) भाग स्पर्श किये हैं, तथा परप्रत्ययसे
कुछ कम आठ घटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिध्या
दृष्टि देवोंके मारणान्तिकपद नहीं होता है ।

सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंमें मिध्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयत
सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके औघस्पर्शनके
समान है ॥ ५० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विद्वारयत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकपदपरिणत
मिध्यादृष्टि देवोंने घतमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और
अद्वारद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदसे
परिणत सौधर्म-पेशान देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तथा
नरलोक और तिर्यगलोक, इन दोनों लोकोंसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान
स्वस्थान आदि अपने अपने पदोंमें वर्तमान सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती देवोंने सामान्य
लोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अद्वारद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है । अतीतकालमें सौधर्म और ईशान कल्पवासी स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिध्यादृष्टि
और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और
अद्वारद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह इस प्रकार है— सभी इन्द्रकविमान
सख्यात योजन विस्तरवाले होते हैं, असख्यात योजन वि

विमाणानि असंखेज्जजोयणनित्यडाणि चि घेप्पंति, तो वि सव्वविमाणखेचफलसमासे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेत्त होदि । त जहा— एगविमाणायामो असंखेज्जजोयणमेत्तो चि कट्ठु असंखेज्जजोयणविकरुभेणायामं गुणिय विमाणुस्सेहसंखेज्जगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि, एककेकविमाणायाम विकरुभाणं सेट्ठिपढमवग्गमूलादो असंखेज्जगुणपमाणत्तादो । तं सोधम्मीमाणविमाणसंखाए गुणिदे पि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि चि । एत्थ सव्वकप्पाण कमेण विमाणसंखापरुवयणाहाओ—

वत्तीस सोहम्मे अट्ठासीस तद्देव ईसाणे ।

वारह सगक्कुमारो अट्ठेव य होति माहिंदे ॥ १० ॥

बग्हे कप्पे बग्हेत्तरे य चत्तारि सयसहस्साइ ।

छट्ठु कप्पेसु य एय चउरासीदो सयसहस्सा ॥ ११ ॥

पण्णास तु सहस्सा छतय काट्ठिपएसु कप्पेसु ।

सुक्क-महासुक्केसु य चत्तालीस सहस्साइ ॥ १२ ॥

प्रकीर्णकविमान मिश्र अर्थात् सख्यात और असख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं । यहाँपर यदि सभी विमान असख्यात योजन विस्तारवाले हैं, ऐसा समझकर ग्रहण करते हैं तो भी सभी विमानोंके क्षेत्रफलका जोड़ तिर्यंग्लोकके असख्यातवर्ग भागप्रमाण ही होता है । यह इस प्रकारसे है— एक विमानका आयाम असख्यात योजनप्रमाण होता है । इसलिए असंख्यात योजन विष्कम्भसे आयामको गुणा करके विमानके उत्सेधसम्बन्धी सख्यात अगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोकका असख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, एक एक विमानका आयाम और विष्कम्भ जगध्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे असख्यातगुणित (हीन) प्रमाण होता है । उसे सौधर्म ईशानकरूपकी विमानसख्यासे गुणा करनेपर भी तिर्यंग्लोकका असख्यातवा भाग ही रहता है । यहाँपर सभी करणोंके विमानोंकी क्रमसे सख्याओंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथाए इस प्रकार हैं—

सौधर्मकल्पमें वत्तीस लाख विमान हैं, उसी प्रकारसे ईशानकल्पमें अट्ठाईस लाख, सनत्कुमारकल्पमें बारह लाख तथा माहेन्द्रकल्पमें आठ लाख विमान होते हैं ॥ १० ॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पमें दोनों कल्पोंके मिलाकर चार लाख विमान हैं । इस प्रकार इन ऊपर बताए गये छह कल्पोंमें विमानोंकी सख्या चौरासी लाख होती है ॥ ११ ॥

जैसे— $3200000 + 2800000 + 1200000 + 800000 + 400000 = 8400000$ सौधर्मादि छह स्वर्गोंकी विमानसख्या.

सान्तव और कापिष्ठे इन दोनों कल्पोंमें पचास हजार विमान होते हैं । शुक्र और महाशुक्र कल्पमें चत्तालीस हजार विमान हैं ॥ १२ ॥

छच्चेन महत्साइ सयाकप्पे तहा सहस्सारे ।
 सत्तेन विमाणसया आरणरूप्पञ्चुदे चैय ॥ १३ ॥
 एक्कारसय तिसु हेट्ठिमेसु तिसु मग्गमेसु सत्तहिय ।
 एक्काणउदविमाणा तिसु गेउग्जेसुग्गिमेसु ॥ १४ ॥
 गेउग्जाणुग्गिमया णम चेउ अणुदिसा विमाणा ते ।
 तह य अणुत्तरणामा पचेउ हवति सत्ताए ॥ १५ ॥

विहार वेदण कसाय त्रेउच्चियपदेहि अट्ट चोइसभागा देखणा पोसिदा । मारणतिय परिणदेहि मिच्छादिट्ठि सासणेहि णव चोइसभागा पोसिदा । उववादपरिणदेहि दिव्वु चोइसभागा पोसिदा । सोधम्मरूपो धरणीतलादो दिग्गुज्जुमोस्सरिय द्विदो ति सम्मा मिच्छादिट्ठिहि सत्थाणमत्थाणपरिणदेहि च्चदुण्ह लोमाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाज्जनादो असखेज्जगुणो पोसिदो । विहारग्गिसत्थाण वेदण कसाय त्रेउच्चियपदपरिणदेहि अट्ट चोइस भागा देखणा पोसिदा । एउ असज्जदसम्मादिट्ठिण पि । णग्गि मारणतिणण अट्ट चोइस भागा, उववादेण दिव्वु चोइसभागा देखणा पोसिदा । जेणेव देउवादो सोधम्मरूपे ण

शतार और सहस्रार कल्पमें छह हजार विमान होते हैं । आनत, प्राणत, भारण और अन्युत, इन चार कल्पोंमें मिलाकर सातसौ विमान होते हैं ॥ १३ ॥

अधस्तन तीन प्रेयैयकोंमें एक सौ ग्यारह विमान, मध्यम तीन प्रेयैयकोंमें एक सौ सात विमान और उपरिम तीन प्रेयैयकोंमें इन्धानयें विमान होते हैं ॥ १४ ॥

नव प्रेयैयकोंके ऊपर अनुदिश सप्तगाले नौ विमान होते हैं । उनके ऊपर अनुत्तर सहाय्याले पाच विमान होते हैं ॥ १५ ॥

विहारवत्सत्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुद्धान, इन पदोंको प्राप्त सौधर्म ईशान कल्पके मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणन्यानवर्ती देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणातिकपदसे परिणत उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि देवोंने नौ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उर्ध्वी जीवोंने डेढ़ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, यद्यपि, सौधर्मकल्प धरणीतलसे डेढ़ रालु ऊपर जाकर स्थित है । स्वस्थानस्थनानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातया भाग, और अद्वैतदृष्टिसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्सत्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुद्धान, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसी प्रकारसे असयतसम्यग्दृष्टि देवोंने भी स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए । विशेष ध्यान यह है कि असयतसम्यग्दृष्टि देवोंने मारणातिकसमुद्धानती अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग और उपपादकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

विमेषो अत्यि तेण देवोघमिदि सुत्तवयण सुद्धु सुघडमिदि ।

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेषु मिच्छा-
दिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेतं पोसिद, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

एदेसिं पचण्ह कप्पण चदुगुणट्ठाणजीवेहि जहासभय सत्थाणमत्थाण-विहारपदि-
सत्थाण वेदण रुमाय वेउच्चिय मारणतिय उत्रवादपरिणदेहि चदुण्ह लोगाणमसखेज्जदि
भागो, अट्टाइज्जादो अमखेज्जगुणो पोसिदो । एमा वट्टमाणपरूवणा ।

अट्ट चोदहसभागा वा देसूणा ॥ ५२ ॥

पचकप्पवासियचदुगुणट्ठाणजीवेहि सत्थाणमत्थाणपदपरिणदेहि अदीदमाले चदुण्ह
लोगाणममखेज्जदिभागो, अट्ट इज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण वेदण-
कमाय वेउच्चिय- मारणतिय-पदपरिणदेहि अट्ट चोदहसभागा देखणा पोमिदा । उत्राद-
परिणदेहि सणक्कुमार माहिंददेवेहिं तिण्णि चोदहसभागा देखणा पोमिदा । वम्ह वम्हुत्तर-

चूकि देवोंके ओघस्पर्शनसे सोधर्मरूपमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए 'देवोघ'
यह सूत्र वचन भले प्रकार सुघटित होता है ।

सनत्कुमाररूपसे लेकर शतार सहस्राररूप तत्रके देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे
लेकर असयतसम्पद्दृष्टि गुणस्थान तत्र प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ! लोकात्ता असरयातना भाग स्पर्श किया है ॥ ५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैकियिक, मारणात्तिकसमुदात्त
और उपपाद, इन पदोंसे यथासभव परिणत उक्त पाचों कल्पोंके चारों गुणस्थानोंमें रहने
वाले देवोंन सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अट्टाईशीपसे अस-
ख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह वर्तमानकालिक स्पर्शनके क्षेत्रकी प्ररूपणा है ।

सनत्कुमाररूपसे लेकर सहस्राररूप तत्रके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुण-
स्थानवर्ती देवोंने अतीत और अनागत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श
किये हैं ॥ ५२ ॥

सनत्कुमारादि पाच कल्पोंके चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानस्वस्थान पदपरिणत देवोंने
अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अट्टाईशीपसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैकियिक और मार-
णात्तिकसमुदात्त, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श
किये हैं । उपपादपरिणत सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम तीन बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवोंने कुछ कम छान्दे

सर्वलोगो पोसिदो । एष वादेरहृदियअपज्जत्ताण पि वत्तञ्जं । णवरि वेउच्चियं णत्थि ।
सुहुमेहृदिय सुहुमेहृदियपज्जचापज्जचएहि सत्थाणसत्थाण पेदण कम्मम मारणत्थि उव्वार
परिणदेहि तिसु वि कालेषु सर्वलोगो पोसिदो, 'सुहुमा जल धलागामे मच्चत्य होति'
त्ति वयणादो ।

वीहृदिय तीहृदिय चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडिं
खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो' ॥ ५८ ॥

एदस्मत्थो- वेहृदिय तेहृदिय-चउरिंदिएहि तेसिं पज्जत्तेहि य सत्थाणमत्थाल
विहारवदिसत्थाण पेदण कसायपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जनादो असखेज्जगुणो पोसिदो । मारणात्थि-उव्वारादपरिणदेहि तिण्ह
लोगाणमसखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असखेज्जगुणो पोसिदो । तेसिं चेर अपज्जत्तेहि
सत्थाणसत्थाण पेदण कसायपरिणदेहि चट्टण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुमत्तेत्तादो

सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे वादर एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र
कहना चाहिये । विशेष यात यह है कि उनके वैश्विकसमुदायत नहीं होता है । स्वस्थान
स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणात्तिकसमुदायत और उपपादपरिणत सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म
एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने तीनों ही फाटोंमें सर्वलोक स्पर्श
किया है, क्योंकि, 'सूक्ष्मकायिन्त्रीय जल, स्थल और आकाशमें सर्वत्र होते हैं' ऐसा
आगमका ध्यन है ।

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियपर्याप्त, द्वीन्द्रियअपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रियपर्याप्त,
त्रीन्द्रियअपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपर्याप्त और चतुरिन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने
कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ५८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारउत्स्वस्थान, वेदना और कषाय
समुदायतसे परिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तियलोकका सख्यातवा भाग और अट्टाईद्वापसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणात्तिकसमुदायत और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग और नरलोक तथा तियलोक, इन दोनों
लोकोंसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुदायत
परिणत उर्हा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह

असखेज्जगुणो फोसिदो । एसा वड्डमाणपरूणणा पुच्चुत्तरसभालणणिमित्तं कदा ।

सव्वलोगो वा ॥ ५९ ॥

एत्थ ताव 'वा' सद्दुहो उच्चदे- वीहंदिद्य तीहंदिद्य-चउरिदिण्हि तेसिं चेन पज्जेत्तेहि य सत्थाणसत्थाण-विहारयदिसत्थाण वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसंखे-ज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, माणुससेत्तादो असखेज्जगुणो अदीदकाले पोसिदो । विगल्लिदियसत्थाणत्था सयपहपव्वदस्स परभागे चेन होंति चि तदे परभागे पुव्व व पदरागारेण ठइदे विगल्लिदियसत्थाणसत्थाणसेत्तं तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागमेत्त होदि । सेसपदेहि वहरिसनधेण विगल्लिदिया सव्वत्थ तिरियपदरव्वतरे होंति चि पदरागारेण ठइदे एद नि सेत्तं तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागमेत्तं चेन हेदि । मारणंतिय-उत्तादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो । तेसिं चेन अपज्जेत्तेहि सत्थाण-वेदण-कसाय-परिणदेहि तिण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागो, अड्डाहज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय उत्तादपरिणदेहिं सव्वलोगो पोसिदो । पच्चिदिय-

धर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा पूर्ण और उत्तर अर्थके अर्थात् अतीत और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके समालनेके लिए की गई है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५९ ॥

यहापर पहले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारस्वस्थान, घेवना और कपायसमुद्धातपरिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है ।

स्वस्थानस्वस्थानस्य त्रिकलेन्द्रिय जीव स्वयम्प्रभपर्यतके परभागमें ही होते हैं, इसलिए परभागवर्ती क्षेत्रको पूर्वके समान प्रतराकारसे स्थापित करनेपर त्रिकलेन्द्रिय जीवोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोकके सख्यातवर्त भागमात्र होता है । शेष पदोंकी अपेक्षा धैरी जीवोंके सम्य धसे त्रिकलेन्द्रिय जीव सर्वत्र तिर्यकूप्रतरके भीतर ही होते हैं, इसलिए प्रतराकारसे स्थापित करनेपर यह क्षेत्र भी तिर्यग्लोकके सख्यातवर्त भागमात्र ही होता है । मारणात्तिकसमुद्धात और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । उन्हीं जीवोंमेंसे स्वस्थानस्वस्थान, घेवना और कपायसमुद्धातपरिणत अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग तथा अदृष्टद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणात्तिकसमुद्धात तथा उपपादपरिणत त्रिकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । पचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र

पंचिंदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असं
खेज्जदिभागो ॥ ६४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूग्गा खेतमंगा । उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे, फला
माना ? ण, मदवुद्धिभयियजणमभालणदुवारेण फलोत्तलभादो ।

सत्त्वलोगो वा ॥ ६५ ॥

सत्याण वेदण-रूसायपरिणदेहि तीदे काले तिण्ह लोगागमसखेज्जदिभागो, तिरिय
लोगस्स मखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो अमखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ पंचिंदियतिरिक्ख
अपज्जत्ताण व तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागत्तं दरिसेदच्च । एसो 'वा' सदस्यचिदत्थो ।
मारणात्तिय उववादपरिणदेहि सत्त्वलोगो पोसिदो, सत्त्वलोगमिह एदेहि पदेहि सह सत्त्व
अपज्जत्ताण गमणागमणपडिसेद्दाभावा ।

एभिंदियमग्गणा समत्ता ।

लक्ष्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असं
ख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ ६४ ॥

इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

शका—कहीं गई बात ही पुन क्यों कहीं जाती है, क्योंकि, कहे हुएके पुन कहनेमें
कोई फल नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मदवुद्धि भयजनोके समालनेकी अपेक्षा पुन कथन
करनेका फल पाया जाता है ।

लक्ष्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ६५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और वपयसमुदात्तपरिणत उक्त लक्ष्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय
जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातया भाग, तिर्यग्लोकका
संख्यातया भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर लक्ष्यपर्याप्त
पंचेन्द्रिय तिर्यग्लोकके समान ही तिर्यग्लोकका संख्यातया भाग विद्वाना आदिप । यह
सूत्रोक्त 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणात्तियसमुदात्त और उपपादपरिणत लक्ष्यपर्याप्त
पंचेन्द्रिय जीवोंने सप्तलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, सप्तलोकमें इन दोनों पदोंके साथ
सभी पंचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त जीवोंके गमन और अनागत । अभाव है ।

इसप्रकार इन्द्रिय

कायाणुवादेण पुढविकाइय आउकाइय-तेउकाइय वाउकाइय-
वादरपुढविकाइय--वादरआउकाइय-वादरतेउकाइय-वादरवाउकाइय-
वादरवणफदिकाइयपत्तेयसरीर-तस्सेवअपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-
आउकाइय सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय-तस्सेवपज्जत्त -अपज्जत्तएहि
केवडियं खेतं पोसिदं, सब्वलोगो' ॥ ६६ ॥

पुढविकाइय-आउकाइय तेहिं चैन मव्वसुहुमेहि सत्थाणसत्थाण पेदण-कसाय-
मारणतिय उपादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सब्वलोगो पोमिदो । वादरपुढविकाइय-
वादरआउकाइय तेहिं चैन अपज्जत्त वादरतेउकाइय तस्सेव अपज्जत्तणफदिकाइयपत्तेय-
सरीरवादरणिगोदपदिद्धिद-तेहिं चैन अपज्जत्तएहि य सत्थाण-पेदण कसायपरिणदेहि
तीदाणागदद्वमाणकालेसु तिण्ह लोमाणममखेज्जिभागो, तिरियलोगादो ससेज्जगुणो,
माणुससेचादो जसखेज्जगुणो पोमिदो । तिरियलोगादो ससेज्जगुणत्त कथ णव्वदे ?

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक
जीव तथा वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर वायु-
कायिक और वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पाचोंके वादर काय-
सम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक,
सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्म जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणास्तिकसमुदात्त और उपपादपदपरिणत
पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव और उन्हींके सर्व सूक्ष्मवायिक जीवोंने तीनों ही
कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायपदपरिणत वादर पृथिवी-
कायिक, वादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, वादर अग्निकायिक और उन्हींके
अपर्याप्त जीवोंने, वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर वादरनिर्गोदप्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त
जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असख्यातयां भाग, तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा तथा मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है ।

शुद्धा — उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, यह कैसे जाना ?

पंचिदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असं
सेज्जदिभागो ॥ ६४ ॥

एदस्स सुत्तस्स पस्वणा खेतगगा । उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे, फला
भावा ? ण, मदबुद्धिभनियजणमभालणदुवारेण फलोलभादो ।

सच्चलोगो वा ॥ ६५ ॥

सत्थाण वेदण-कसायपरिणदेहि तीदे काले तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरिय
लोगस्स सखेज्जदिभागो, माणुमखेचादो असखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ पंचिदियतिरिक्ख
अपज्जत्ताण व तिरियलोगस्स मग्गेज्जदिभागत्त दरिसेदच्चं । एसो 'ग' सहस्रचिदत्थो ।
मारणनिय उतवादपरिणदेहि सच्चलोगो कोमिदो, सच्चलोगमिह एदेहि पदेहि सह सच्च
अपज्जत्ताण गमणागमणपडिसेहाभात्त ।

एवमिदियमग्गणा समत्ता ।

लब्धपर्याप्त पञ्चिन्द्रिय जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असं
ख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ६४ ॥

इस सूत्रमें स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

शुक्रा—यही गई बात ही पुन क्यों कही जाती है, क्योंकि, कहं हुएके पुन कहनेमें
कोई फल नहीं है ?

ममावान—नहीं, क्योंकि, मदबुद्धि भयजनोंके सम्मलनेकी अपेक्षा पुन कथन
करनेका फल पाया जाता है ।

लब्धपर्याप्त पञ्चिन्द्रिय जीवाने अतीत और अनागत जालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ६५ ॥

स्यस्थानस्वस्थान, वेदना और वप यसमुद्धातपरिणत उक्त लब्धपर्याप्त पञ्चिन्द्रिय
जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका
संख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे अन्वख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर लब्धपर्याप्त
पञ्चिन्द्रिय तिर्यक् जीवोंके समान ही तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग दिखाना चाहिये । यह
सूत्रोक्त 'पा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपरिणत लब्धपर्याप्त
पञ्चिन्द्रिय जीवोंने सचलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, सस्यपूर्ण लोकमें इन दोनों पदोंके साथ
सभी पञ्चिन्द्रिय लब्धपर्याप्त जीवोंके गमन और आगमनके प्रतिषेधका अभाव है ।

इसप्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय आउकाइय-तेउकाइय वाउकाइय-
 वादरपुढविकाइय--वादरआउकाइय-वादरतेउकाइय-वादरवाउकाइय-
 वादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयसरीर-तस्सेवअपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-
 आउकाइय सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेवपज्जत्त अपज्जत्तएहि
 केवडिय खेतं पोसिदं, सब्वलोगो' ॥ ६६ ॥

पुढविकाइय-आउकाइय तेषिं चेव सव्वसुहुमेहि सत्थाणसत्थाण वेदण-कसाय-
 मारणंतिय उपादापरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोमिदो । वादरपुढविकाइय-
 वादरआउकाइय तेषिं चेव अपज्जत्त वादरतेउकाइय तस्सेव अपज्जत्तणफ्फदिकाइयपत्तेय-
 सरीरवादरणिगोदपदिड्ढिद तेषिं चेव अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि
 तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्ह लोमाणममसेज्जदिभागो, तिरियलोगादो ससेज्जगुणो,
 माणुसस्सेचादो अससेज्जगुणो पोमिदो । तिरियलोगादो ससेज्जगुणत्तं कध णव्वदे ?

कायमार्गणाके अनुपादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक
 जीव तथा वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर वायु-
 कायिक और वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पाचोंके वादर काय-
 सम्बन्धी अपर्याप्त जीव; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक,
 सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्म जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र
 स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६६ ॥

सस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्भात और उपपादपदपरिणत
 पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव और उन्हींके सर्व सूक्ष्मकायिक जीवोंने तीनों ही
 कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायपदपरिणत वादर पृथिवी-
 कायिक, वादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, वादर अग्निकायिक और उन्हींके
 अपर्याप्त जीवोंने, वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर वादरानिगोदप्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त
 जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
 असख्यातया भाग, तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा तथा मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
 किया है ।

शुद्धा — उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, यह कैसे जाना ?

उच्चदे- एदे पुढरीओ चेर असिद्ध अन्तति । सव्यपुढरीओ, चं सत्तरज्जुआयदाओ, पढमपुढरी सादिरगएगरज्जुरुदा [१] । त्रिदियपुढरी छहि सत्तभागेहि समहियएगरज्जुरुदा [१६] । तदियपुढरी पच सत्तभागाहिय वे रज्जुरुदा [२१] । चउत्थपुढरी चत्तारि सत्तभागाहिय तिण्णिरज्जुरुदा [३६] । पचमपुढरी तिण्णिमत्तभागाहिय चत्तारिरज्जुरुदा [४६] । छट्ठपुढरी वे सत्तभागाहियपचरज्जुरुदा [५६] । सत्तमपुढरी एग सत्तभागाहिय छरज्जुरुदा [६६] । अट्ठमपुढरी सादिरेयएगरज्जुरुदा । पढमपुढरिमाहल्ल अमीदिसहस्मा हियजोयणलक्खपमाण होदि १८०००० । त्रिदियपुढरी वचीसजोयणमहस्समाहल्ल ३२००० । तदियपुढरी अट्ठामीमजोयणसहस्समाहल्ल २८००० । चउत्थपुढरी चउतीम जोयणसहस्समाहल्ल २४००० । पचमपुढरी वीसजोयणसहस्समाहल्ल २०००० । छट्ठपुढरी सोलमजोयणसहस्समाहल्ल १६००० । सत्तमपुढरी अट्ठजोयणसहस्समाहल्ल ८००० । अट्ठमपुढरी अट्ठजोयणमाहल्ल ८ । एदाओ अट्ठपुढरीओ पदरागारेण उदे तिरियलोगमाहल्लादो सरेज्जगुणमाहल्ल जगपदर होदि । मारणतिय-उत्तमादपरिणदेहि

समाधान - ये यादर पृथिवीकायिक आदि जीव पृथिवीयोंका ही आश्रय लेकरे रहते हैं । और सभी पृथिवीया सात राजुप्रमाण आवत हैं । प्रथम पृथिवी साधिक एक राजु चौड़ी है (१) । द्वितीय पृथिवी छइ बटे सात भागोंसे अधिक एक राजु चौड़ी है (१६) । तृतीय पृथिवी पाच बटे सात भागोंसे अधिक दो राजु चौड़ी है (२६) । चोथी पृथिवी चार बटे सात भागोंसे अधिक तीन राजु चौड़ी है (३६) । पाचवी पृथिवी तीन बटे सात भागोंसे अधिक चार राजु चौड़ी है (४६) । छठी पृथिवी दो बटे सात भागोंसे अधिक पाच राजु चौड़ी है (५६) । सातवीं पृथिवी एक बटे सात भागोंसे अधिक छइ राजु चौड़ी है (६६) । आठवीं पृथिवी कुछ अधिक एक राजु चौड़ी है (१) । प्रथम पृथिवीका मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है (१८००००) । द्वितीय पृथिवी चत्तारस हजार योजन मोटी है (३२०००) । तृतीय पृथिवी अट्ठारस हजार योजन मोटी है (२८०००) । चोथी पृथिवी चौबीस हजार योजन मोटी है (२४०००) । पाचवीं पृथिवी तीस हजार योजन मोटी है (२००००) । छठी पृथिवी सोलह हजार योजन मोटी है (१६०००) । सातवीं पृथिवी आठ हजार योजन मोटी है (८०००) । आठवीं पृथिवी आठ योजन मोटी है (८) । इन आठों पृथिवीयोंके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे सख्यातगुणा बाहल्यप्रमाण जगप्रतर होता है (देखो पृ ९१) । इसलिए उक्त जीवोंका सर्धानक्षेत्र तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा है, यह जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुदात्त और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान

तीदाणागदप्रमाणकालेसु सच्चलोगो पोसिदो । कुदो ? तस्तहाप्रचादो । तेजुणं पुढविभंगो
णपरि वेउच्चियपरिणदेहि वड्डमाणकाले पचण्ह लोगाणममखेज्जदिभागो, तीदे तिण्हं
लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो । त जघा- तेउक्काइया पज्जत्ता
चेव वेउच्चियसरीर उट्ठावेति, अपज्जत्तेसु तट्ठमाणा । ते च पज्जत्ता कम्मभूमीसु चेव होंति चि ।
सयपहपवदपरभागखेत्त जगपदरे वट्ठे तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो होदि चि । अधवा
वादरतेउक्काइयपज्जत्ता कम्मभूमीए उप्पण्णा वाउससंधेण सखेज्जजोयणवाहल्ल तिरियपदरं
अदीदकाले सच्चमात्रिय निउच्चति चि गहिदे तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो चेव होदि ।
नादरतेउक्काइया वादरपुढविभंगो, नादरपुढपिक्काइया इय वादरतेउक्काइया नि सच्चपुढवीसु
अच्छंति चि । णपरि वेउच्चियपदस्स तेउक्काइयवेउच्चियपदभंगो । वाउक्काइयाणं तीदाणा-
गदकालेसु तेउक्काइयाण भंगो । णपरि वेउच्चियस्स प्रड्डमाणकाले माणुसखेत्तगदप्रिसेसो ण
जाणिज्जदि । अदीदकाले वेउच्चियपरिणदेहि वाउक्काइएहि तिण्हं लोगाण सखेज्जदिभागो,
दोलेणेहिंते जसखेज्जगुणो पोसिदो । सत्थाण-प्रेदण कमायपरिणदेहि वादरनाउक्काइएहि

इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनका यह स्पर्शनक्षेत्र स्वभावे ही है ।
अग्निस्कायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पृथिवीस्कायिक जीवोंके समान जानना चाहिए । विशेष बात
यह है कि वैज्ञानिकसमुदायतदपरिणत अग्निस्कायिक जीवोंने वर्तमानकालमें पाचों प्रकारके
लोकोंका असत्यातवा भाग तथा भूतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असत्यातवा
भाग और तिर्यग्लोकका सत्यातवा भाग स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है—

तेजस्कायिक पर्याप्त जीव ही वैज्ञानिकशरीरको उत्पन्न करते हैं, क्योंकि, अपर्याप्त
जीवोंमें वैज्ञानिकशरीरके उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव है । और वे पर्याप्त जीव कर्मभूमिमें
ही होते हैं, इसलिए स्वयम्प्रमर्षतके परभागजतीं क्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर तिर्य-
ग्लोकका सत्यातवा भाग होता है । अथवा कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए वादर तेजस्कायिक पर्याप्त
जीव वायुके सम्बन्धसे अतीतकालमें सत्यातवा योजन वाहल्लयवाले सर्व तिर्यक् प्रतरको व्याप्त
करके विक्रिया करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करनेपर तिर्यग्लोकका सत्यातवा भाग ही होता
है । वादर तेजस्कायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र वादर पृथिवीस्कायिक जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके
समान है, क्योंकि, वादर पृथिवीस्कायिक जीवोंके समान वादर तेजस्कायिक जीव भी सभी
पृथिवियोंमें रहते हैं । विशेष बात यह है कि वैज्ञानिकपदका स्पर्शन तेजस्कायिक जीवोंके
वैज्ञानिकपदके समान जानना चाहिए । वायुस्कायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अतीत और
अनागतकालमें तेजस्कायिक जीवोंके समान है । विशेष बात यह है कि वर्तमानकालमें
वैज्ञानिकपदकी मनुष्यक्षेत्रगत विशेषता नहीं जानी जाती है । अतीतकालमें वैज्ञानिकपद-
परिणत वायुस्कायिक जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका सत्यातवा भाग और
मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असत्यातवागुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान-
स्वस्थान, वेदना और कषायसमुदायपरिणत वादरवायुस्कायिक जीवोंने अतीत, अनागत और

तीदाणागदमद्वमाणकालेषु तिण्ह लोगाण सखेज्जदिभागो दोलोणेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । वेउच्चियपदस्स वद्वमाणकाले खेत्तभंगो । तीदे काले वेउच्चियपदस्स वाउमाइय वेउच्चियभंगो । मारणतिय उगवादपरिणदेहि वादरवाउकाइएहि सव्वलोगो पोसिदो । एव वादरवाउकाइयअपज्जत्ताण । णररि वेउच्चियपदं णत्थि । सुदुमतेउवाइय सुदुमनाउकाइया तेमि पज्जत्त-अपज्जत्तएहि य मत्थाण वेदण कसाय मारणतिय-उगवादपरिणदेहि तीदाणा गदमद्वमाणकालेषु सव्वलोगो पोसिदो ।

वादरपुढविकाइय वादरआउकाइय वादरतेउकाइय वादरवणफ्फदि-
काइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असखे
ज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जथा खेत्ताणिओगदारे उचो तथा वत्तच्यो ।

सव्वलोगो वा ॥ ६८ ॥

एत्थ ताव 'वा' सहद्वो युच्चे- वादरपुढविकाइयपज्जत्त-वादरआउकाइयपज्जत्त
वादरणिगोदपदिद्विद्वपज्जत्तएहि य सत्थाण वेदण कसायपरिणदेहि तिण्ह लोगाणममसे

वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका सख्यातयां भाग और मनुष्य लोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैभियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीतकालमें वैभियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वायुकायिक जीवोंके वैभियिकपदके स्पर्शनके समान है । मारणात्तिक समुद्घात और उपपादपदपरिणत वादरवायुकायिक जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे वादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए । विशेष धात यह है कि इनके वैभियिकसमुद्घातपद नहीं होता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणात्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है ।

वादर पृथिवीकायिक, वादर अष्कायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने नितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातयां भाग स्पर्श किया है ॥ ६७ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६८ ॥
यहापर 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात परिणत वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त और वादरनिगोदप्रतिष्ठि

ज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-
उववादपरिणदेहि सब्बलोगो पोसिदो । चादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताएहि य सत्थाण-
वेदण कसायपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो । किं
कारणं ? सब्बपुढवीसु चादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता णत्थि, ' चित्ताए उवरिमभागो
चेव अत्थि ' त्ति आहरियवयणादो । अधया, पत्तेयसरीरपज्जत्ता तिरियलोगादो सखेज्जगुणं
खेत्त पुंसंति । कुदो ? चादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं तिरियलोगादो सखेज्जगुणपोसणखेत्त-
ब्भुवगमादो । ण च पत्तेयसरीरपज्जत्तादिरित्तादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता अत्थि ।
चादरणिगोदपदिट्ठिदा सच्चे पत्तेयसरीरा चेषेत्ति कथ णव्वदे ?

वीणे जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा ।

जे नि य मूलादीया ते पत्तेया पट्टमदाए ॥ १६ ॥

इदि सुत्तवयणादो णव्वदे ।

पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे सख्यात-
गुणा और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और
उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्व लोको स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषाय-
समुद्घातपदपरिणत पादर वनस्पतिकार्यिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असख्यातवा भाग और तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग स्पर्श किया है ।

शंका—चादर वनस्पतिकार्यिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके तिर्यग्लोकके सख्यातवें
भागमात्र स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है ?

समाधान—सर्व पृथिवियोंमें चादरवनस्पतिकार्यिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव नहीं
होते हैं, क्योंकि, ' चित्रापृथिवीके उपरिम भागमें ही चादरवनस्पतिकार्यिकप्रत्येकशरीर
पर्याप्त जीव होते हैं ' इस प्रकार आचार्योंका वचन है ।

अथवा, प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणे क्षेत्रको स्पर्श करते हैं,
क्योंकि, चादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा स्पर्शनक्षेत्र
स्वाकार किया गया है । तथा प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंको छोड़कर चादरनिगोदप्रतिष्ठित
पर्याप्त नामके कोई अन्य जीव नहीं होते हैं । इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे
सख्यातगुणा वन जाता है ।

शंका—चादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी ही होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—' योनीभूत योजमें वही पूर्व पर्याप्तवाला जीव अथवा अन्य दूसरा भी
जीव चक्रमण करता है । और जो बीज मूलादिक चादरनिगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिकार्यिक
जीव हैं वे सब प्रथम अवस्थामें प्रत्येकशरीर ही होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रवचनसे जाना जाता है कि चादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी
ही होते हैं ।

तीक्ष्णमागदप्रवृत्तमाणाकालेषु तिष्ठ लोमाण सरोज्जदिभागो दोलोगेहिंको असखेज्जगुणो फोसिदो । वेउच्चियपदस्स वट्टमाणकाले सेत्तभगो । तीदे काले वेउच्चियपदस्स वाउकाइय वेउच्चियभगो । मारणतिय उत्रवादपरिणदेहि वादरवाउकाइएहि सच्चलोगो पोसिदो । एत्तं वादरवाउकाइयअपज्जत्ताण । णत्तरि वेउच्चियपदं णत्थि । सुट्टुमतेउकाइय सुट्टुमराउकाइया तेसि पज्जत्त अपज्जत्तएहि य सत्थाण वेदण-कसाय मारणतिय-उत्रवादपरिणदेहि तीक्ष्णाणा गदप्रवृत्तमाणाकालेषु सच्चलोगो पोसिदो ।

वादरपुढविकाइय वादरआउकाइय वादरतेउकाइय वादरवणफदि काइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त पोसिदं, लोमस्स असखे ज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जघा सेत्ताणिओगदारे उत्तो तथा वत्तव्वो ।

सच्चलोगो वा ॥ ६८ ॥

एत्थ तां 'वा' सहट्ठो बुच्चदे- वादरपुढविकाइयपज्जत्त-वादरआउकाइयपज्जत्त वादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तएहि य सत्थाण वेदण कसायपरिणदेहि तिष्ठ लोमाणममखे

वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका सख्यातया भाग और मनुष्य लोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीतकालमें वैक्रियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके स्पर्शनके समान है । मारणातिक समुद्घात और उपपादपदपरिणत वादरवायुकायिक जीवोंने सर्वत्र स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे वादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए । विशेष धात यह है कि इनके वैक्रियिकसमुद्घातपद नहीं होता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, वपाय, मारणातिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है ।

वादर पृथिवीकायिक, वादर अप्कायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर घनस्पातिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने जिनना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ ६७ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६८ ॥
यहापर 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और वपायसमुद्घात परिणत वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त और वादरनिगोदप्रतिष्ठित

अदिभागो, तिरियलोगादो सखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-
उववादपरिणदेहि सब्बलोगो पोसिदो। वादरवणप्फड्काइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि य सत्थाण-
वेदण रुसायपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो। किं
कारणं? सब्बपुढवीसु वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता णत्थि, 'चित्ताए उअरिमभागो
चेव अत्थि' त्ति आइरियवयणादो। अधवा, पत्तेयसरीरपज्जत्ता तिरियलोगादो संखेज्जगुण
खेत्त पुसति। कुदो? वादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं तिरियलोगादो सखेज्जगुणपोसणखेत्त-
ब्भुवगमादो। ण च पत्तेयसरीरपज्जत्तदिरित्तमादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता अत्थि।
वादरणिगोदपदिट्ठिदा सब्बे पत्तेयसरीरा चेत्तेत्ति कथं णव्वदे?

वीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।

जे नि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥ १६ ॥

इदि सुत्तयणादो णव्वदे।

पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यात-
गुणा और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणातिकसमुद्घात और
उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कपाय-
समुद्घातपदपरिणत वादर वनस्पतिक्रायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असख्यातवा भाग और तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग स्पर्श किया है।

शंका—वादर वनस्पतिक्रायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके तिर्यग्लोकके सख्यातधें
भागमात्र स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है?

समाधान—सर्व पृथिवियोंमें वादरवनस्पतिक्रायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव नहीं
होते हैं, क्योंकि, 'चित्रापृथिवीके उपरिम भागमें ही वादरवनस्पतिक्रायिकप्रत्येकशरीर
पर्याप्त जीव होते हैं' इस प्रकार आचार्योंका वचन है।

अथवा, प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणे क्षेत्रको स्पर्श करते हैं,
क्योंकि, वादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा स्पर्शनक्षेत्र
स्पर्कार किया गया है। तथा प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंको छोडकर वादरनिगोदप्रतिष्ठित
पर्याप्त नामके कोई अन्य जीव नहीं होते हैं। इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे
सख्यातगुणा वन जाता है।

शंका—वादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी ही होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—'योनीभूत वीजमें वही पूर्व पर्याप्तवाला जीव अथवा अन्य दूसरा भी
जीव चक्रमण करता है। और जो वीज मूलादिक वादरनिगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिक्रायिक
जीव हैं वे सब प्रथम अवस्थामें प्रत्येकशरीर ही होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रवचनसे जाना जाता है कि वादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी
ही होते हैं।

बादरणिगोदपदिद्विदपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु अत्थि त्ति कध णव्वदे ? सव्वपुढवीसु विज्जमाणपुढविकाइयपज्जत्तपोसणेण सह एगत्तेणुवदिद्वअसत्तेज्जजाणि तिरियपद्दगणि त्ति वक्कसाणवयणादो णव्वदे । तम्हा पत्तेयसरीरपज्जत्तेहि पोसिदत्तेत्तेण तिरियलोमादो सत्तेज्ज गुणेण होदव्वमिदि । जधा पत्तेयसरीरवणप्फादिकाइयपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु होति, तथा बादरआउवाइयपज्जत्तेहि वि सव्वासु पुढवीसु होदव्व । अधना बादरणिगोदपदि द्विदपज्जत्तपत्तेगसरीरा चेत्त सव्वपुढवीसु होति । बादरणिगोदानमजोणीभूदपत्तेयसरीर पज्जत्ता चित्ताए उपरिमभागे चेत्त हाति त्ति कट्टु बादरवणप्फादिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त बादरणिगोदानमजोणीभूदे चेत्त घेत्तूण तिरियलोगस्स सत्तेज्जदिभागो त्ति घेत्तव्व । भारणत्तिय-उवात्तपरिणदेहि सव्वलोमो पोसिदो । एत्त बादरत्तेउकाइयपज्जत्ताण वि वत्तव्वं । णवरि वेत्तव्वियस्स तिरियलोगस्स सत्तेज्जदिभागो वत्तव्वो ।

बादरवाउपज्जत्ताएहि केवडिय खेत्तं पोसिद, लोमस्स सत्तेज्जदि भागो ॥ ६९ ॥

शका—बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—'सर्व पृथिवियोंमें विद्यमान पृथिवीनायिक पर्याप्त जीवोंके स्पर्शनके साथ एकत्वसे उपदिष्ट असख्यात तियद् प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र होता है' इस प्रकारके व्याख्यानवचनेसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं ।

इसलिये प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंसे स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा होना चाहिए । जिस प्रकारसे प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव सभी पृथिवियोंमें होते हैं, उसी प्रकारसे बादर जलनायिक पर्याप्त जीव भी सभी पृथिवियोंमें होना चाहिए । अथवा, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येकशरीरवाले जीव ही सर्व पृथिवियोंमें होते हैं । बादर निगोदके अयोनीभूत प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव चित्रा पृथिवीके उपरिम भागमें ही होते हैं, इसलिये बादर निगोदोंके अयोनीभूत बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव ही ग्रहण करके अथवा उनकी अपेक्षा 'तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग होता है' ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । मारणान्निकसमुदाय और उपपादपपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे बादर तेजस्वायिक पर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि तेजस्वायिक जीवोंके धैर्यनियमसमुदाय पदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग होता है, ऐसा कहना चाहिए ।

बादरनायिकायिक पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका सख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ६९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा खेत्ताणिओगदारे उत्तो तथा वत्तञ्चो, वट्टमाणकाल
मस्सिदूण ड्ढिदत्तादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ७० ॥

सत्थाणमत्थाण-वेदण कमाय-त्रेउच्चियपरिणदेहि तिण्हं लोमाणं सखेज्जदिभागो,
दोलोमेहिंते असखेज्जगुणो योमिदो । मारणंतिय-उव्वादपदपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

वणप्फदिकाइयणिगोदजीववादरसुहुम पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केव-
डियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवसुहुमपज्जत्त अपज्जत्तएहि सत्थाण वेदण-कमाय मारण-
तिय-उव्वादपरिणदेहि तिसु मि कालेसु मव्वलोगो पोसिदो । वादरवणप्फदिकाइय-
वादरणिगोद तेहिं पज्जत्त अपज्जत्तएहिं सत्थाण वेदण-कमायपरिणदेहि तिसु मि कालेसु

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर कहना
चाहिए, क्योंकि, वर्तमानकालको आश्रय करके यह सूत्र स्थित है अर्थात् कहा गया है ।

वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ७० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकृतिकसमुद्धानपरिणत उक्त जीवोंने
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका सत्प्राप्तवा भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन
दोनों लोकोंसे असत्प्राप्तगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिसमुद्धान और उपपादपद-
परिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक वादर जीव, वनस्पति-
कायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक वादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक वादर
अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त
जीव, निगोद वादर पर्याप्त जीव, निगोद वादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त
जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श
किया है ॥ ७१ ॥

स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणांतिकसमुद्धान और उपपाद, इन पक्षोंसे परिणत
वनस्पतिकायिक निगोद जीव और उनके सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही
कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्धानपदपरिणत वादर वन
स्पतिकायिक, वादर निगोद उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्य-

तिष्ठ लोमानमसमेज्जदिभागो, तिरियलोगादो सगेज्जगुणो, माणुसगुत्तादो अमसेज्जगुणो पोमिदो । मारणतिय उपादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु मच्चलोगो पोमिदो ।

तसकाइय तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगि केवलि त्ति ओघ' ॥ ७२ ॥

वृद्धमाणकालमदीदकाल च अस्सिदूण जघा ओघमिह सामणादिगुणाण परूणा कदा, तथा एत्थ वि कादच्चा । जग्गि मिच्छाद्विण पच्चिदियमिच्छादिद्विमगो, मारणतिय-उपादपद मोत्तूण अणत्थ सच्चलोगत्ताभावा ।

तसकाइयअपज्जत्ताण पच्चिदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ ७३ ॥

वृद्धमाणकालमस्सिदूण जघा पच्चिदियअपज्जत्ताण परूणा कदा, तथा एत्थ वि वृद्धमाणकालमस्सिदूण परूणा कादच्चा । जघा अदीदकालमस्सिदूण मत्थाण वेदण कसायपदेहि तिष्ठ लोमानममगेज्जदिभागो, तिरियलोगस्म सगेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो

लोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, निर्यलोकसे सख्यातगुणा और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणातिकरसमुदात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है ।

त्रसकायिक और तसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेगुली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७२ ॥

वर्तमानकाल और अतीतकालको आधय करके जैसी ओघ स्पर्शनप्ररूपणामें सासात्त भादि गुणस्थानोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहापर भी करना चाहिए । विशेष पात यह है कि त्रसकायिक और तसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा पचेन्द्रियमिथ्यादृष्टि जीवोंके समान जानना चाहिए, क्योंकि, मारणातिकरसमुदात और उपपादपदको छोड़कर अन्यत्र अथात् क्षेत्र पदोंमें सर्वलोकप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रका अभाव है ।

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवोंके समान लोकका असख्यातवा भाग है ॥ ७३ ॥

वर्तमानकालका आधय करके जिस प्रकारसे पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी स्पर्शन प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहापर भी वर्तमानकालका आधय करके स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए । तथा जैसे अतीतकालका आधय करके त्रस्थान, वेदना और कपायसमुदात परिणत जीवोंने सामा यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तियलोकका सख्यातवा

असंखेज्जगुणो, मारणतिय-उत्तादपदेहि सच्चलोगो पोमिदो चि पंचिदियअपज्जत्ताण परूणणा कदा, तथा एत्थ वि कायव्वा ।

एउ कायमगणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पचमणजोगि पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केव-
डियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ ७४ ॥

एद सुत्त वट्टमाणकालमस्मिदूण ढिदमिदि एदस्म परूण फीरमाणे जधा सेत्ताणि-
ओगहारे पचमण वचिजोगिमिच्छादिट्ठीण परूणणा कदा, तथा एत्थ वि मंदउद्धिसिस्म-
समालणट्ट परूणणा कादव्वा ।

अट्ट चोहसभागा देसूणा, सच्चलोगो वा ॥ ७५ ॥

पचमण-पचवचिजोगिमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसखे-
ज्जदिभागो, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो अमखेज्जगुणो पोसिदो ।
एत्थ सत्थाणसेत्ताणयणविधाण जाणिय कादव्वा । एमो ' वा ' सहसूचिदत्थो । विहार-

भाग और अढाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा मारणान्निक्कसमुद्धात ओर
उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्धलोक स्पर्श किया है, इसप्रकारसे जैसी पचेन्द्रियलभ्यपर्याप्त
जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहापर भी स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणोके अनुवादसे पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि
जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥७४॥

यह सूत्र वर्तमानकालका आश्रय करके शिक्षत है, इसलिए इसकी प्ररूपणा करनेपर
जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारमें पाचों मनोयोगी ओर पाचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा
की गई है, उसी प्रकारसे यहा पर भी मद्गुद्धि शिष्योंके समालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपण
करना चाहिए ।

पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ पदे चौदह भाग और सर्धलोक स्पर्श किया है ॥ ७५ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि
जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग
और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके
निकालनेका विधान जान करके करना चाहिए । यह ' वा ' शब्दसे सूचित अर्थ है । विहार-

१ योगाणुवादेण वाट्टमाणसयोगिमिथ्यादृष्टिमिर्लोकरत्तापरयेवमग अथा चतुर्दशभागा वा देशेना स्व-
लोको वा । स वि १, ८

वेदण कसय वेउच्चियपरिणदेहि अट्ट चोदसभागा देखणा पोमिदा । घणलोगमद्वभागूण तेदालीमन्त्रेहि छिण्णेमभागो, अधोलोग साद्वचउच्चवीसरूरेहि छिण्णेमभागो, उट्टलोगमद्व भागूणसाद्वद्वारस रूरेहि छिण्णेमभागो, णर तिरियलोगेहिंतो असरेज्जगुणो पेसिदो ति ज उच्च होदि । मारणतियपदेण सच्चलोगो पेसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव सजदासंजदा ओघ' ॥ ७६ ॥

घट्टमाणकालमस्सिदूण जधा खेत्ताणिओगहारस्स ओघमिह एदेमि चट्टुण्ह गुण द्वाणानं खेत्तपरूणणा कदा, तथा एत्थ नि मिस्समभालणहं परूणणा कादच्चा, णत्थि कोइ त्रिसेमो । अदीलकालमस्सिदूण जधा पेसणाणिओगहारस्स ओघमिह तीदाणागदकालेसु

यत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैश्वियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम भाठ घटे चोदह (६६) भाग स्पर्श किये ह, जो कि घनाकार लोकको भाठयें भागसे कम तेनालीस (४२५) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा अधोलोकको साढ़े चौबीस (२४३) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा ऊर्ध्वलोकको आठवें भागसे कम साढ़े अठारह (१८३) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग प्रमाण होता ह । अर्थात् उक्त तीनों ही पद्धतियोंसे क्षेत्र निकालने पर घहा देशोन आठ राजु प्रमाण आ जाता है ।

$$\text{उदाहरण—(१) घनलोक—३४३ - \frac{३४३}{८} = ८ \text{ राजु}$$

$$(२) अधोलोक—१२६ - \frac{४२}{२} = ८ \text{ राजु}$$

$$(३) ऊर्ध्वलोक—१४७ - \frac{१४७}{८} = ८ \text{ राजु}$$

इसप्रकार सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका सख्यातथा भाग और नरलोक तथा तियलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया हे । मारणाग्निकपदपरिणत जीवोंने सबलोक स्पर्श किया है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुण स्थानवर्ती पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

घतमानकालना आश्रय करके जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारके ओघमें इन चारों गुणस्थानोंकी क्षेत्रप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारमे यहा पर भी शिष्योंके सभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिये । इससे अनिरिक्त अथ कोई विशेषता नहीं है । अतीतकालका आश्रय करके जैसी स्थानानुयोगद्वारके ओघमें अतीत और अनागत कालोंकी अपेक्षा इन चार गुणस्थान

एदेहि चहुगुणद्वान्नाजीपेहि तुत्तखेत्तपरूणा कदा, तथा एत्थ पि कादव्वा, विसैसाभावा ।
परि सामणम्मदिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिसु उव्वादेो णत्थि, उव्वादेण पचमग-वच्चि-
जोगाण सहअणद्वान्नालक्खणविरोहा ।

पमतसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ ७७ ॥

एदेसिमद्वण्ह गुणद्वान्नाणं जधा पोसणाणिओगहारस्म-ओवम्हि तिण्णि काले
अस्मिदूण परूणा कदा, तथा एत्थ पि कादव्वा । जदि एणं, तो सुत्ते ओघमिदि किण्ण
परूदि ? ण, तथा परूणाए कायजोगाणिणाभाविमजोगिचउच्चिहममुग्घादसेत्तपडिसेह-
फलत्तादेो ।

वर्ती जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहा पर भी करना चाहिये,
क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है । विशेष बात यह है कि सात्तार्दनसम्भ्यदृष्टि और
असंयतसम्भ्यदृष्टियोंमें उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, उपपादके साथ पाचों मनोयोग
और पाचों वचनयोगोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है, अर्थात् उपपादमें उक्त योग संभव
नहीं हैं ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातता भाग स्पर्श किया
है ॥ ७७ ॥

इन बातों गुणस्थानोंकी स्पर्शनाउपयोगकारके ओघमें तीनों कालोंका आश्रय करके
जैसी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहा पर भी करना चाहिये ।

झन्ना—यदि पेसा है, तो सूत्रमें 'ओघ' पेसा पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी प्ररूपणा काययोगके अत्रिनाभावी सयोगि-
केवलीके चारों प्रकारके समुद्धानक्षेत्रके प्रतिषेध करनेके लिए है ।

विशेषार्थ—यदि सूत्रमें 'असंखेज्जदिभागो' पदके स्थान पर 'ओघ' पेसा पद
दिया जाता तो केवल मनोयोगी और वचनयोगियोंका स्पर्शनक्षेत्र बताते समय, जो केवल
काययोगके निमित्तसे ही केवलीके समुद्धान होता है जिसका कि स्पर्शनक्षेत्र लोकका
असख्यातता भाग, असख्यात बहुभाग और सर्वलोक है, उसका प्रतिषेध नहीं हो पाता, अर्थात्
अनिष्ट प्रसंग उपस्थित हो जाता । उसी अनिष्टावृत्तिके प्रतिषेधके लिए सूत्रमें 'ओघ' पद न
देकर 'असंखेज्जदिभागो' पद दिया है ।

कायजोगीसु मिच्छादिद्वी ओघं ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कमाय त्रेउच्चिय-मारणतिय-उपवादपरिणदकायजोगिमिच्छा
दिद्वीण तिसु त्रि कालेसु सन्नलोगत्तुयलमादो, विहारवदिसत्थाण-वेउच्चियपदेहि वज्जुमाण
काले तिण्ह लोमाणमसखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो
असखेज्जदिगुणत्तेण, अदीदकाले अट्ट-चोदसभागत्तेण च तुल्लत्तुवलमादो, सुत्तेण ओघ
मिदि उच ।

सासणसम्मादिद्विण्हुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ७९ ॥

एदेसिमेकारसण्ह गुणद्वाणाणं त्रिपिह कालमस्सिदण सत्थाणादिपदाण परूवणा
कीरमाणे पोसणाणिओगहारोघमिह जधा त्रिपिहकालमस्सिदण एकारसण्ह गुणद्वाणाण
सत्थाणादिपरूवणा कदा, तथा कादव्या, णत्थि एत्थ कोवि त्रिसेसो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥७८॥
स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, क्पाय, वैक्रियिक, मारणात्तिकसमुदात और उपपाद
पदपरिणत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तीनों ही कालोंमें सर्वलोक पाया जाता
है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने धर्तमानकालमें सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागसे, त्रियलोकके सख्यातवें भागसे, और मनुष्यक्षेत्रसे
असख्यातगुणे क्षेत्रकी अपेक्षा, तथा अतीतकालमें आठ घटे चौदह (१४) भागप्रमाण
स्पर्शनसे तुल्यता पाई जाती है, इसलिये सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

इन ग्यारह गुणस्थानोंकी तीनों कालोंको आश्रय करके स्वस्थानादि पदोंकी प्ररूपणा
करने पर स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें जिस प्रकारसे तीनों कालोंका आश्रय लेकर ग्यारह
गुणस्थानोंकी स्वस्थानादि पदसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहा पर भी
करना चाहिए, क्योंकि, यहा पर कोई विशेषता नहीं है ।

काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असख्यातवें
भाग, असख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ८० ॥

एदस्स सुत्तस्स पुधारंभो किंफलो ? ण, सजोगिकेवलि-चचारिसमुग्घादा काय-जोगाविणाभाविणो त्ति मद्मेहानिजणान्नोहणफलत्तादो । एगजोग कादण ओघमिदि उत्ते नि ओघत्तणहोणुववत्तीदो कायजोगी वि चदुण्ह समुग्घादानमत्थिचं परिच्छिज्जदे चे, ण एस दोसो, ओघमिदि उत्ते इमाणि पदाणि अत्थि, इमाणि च णत्थि त्ति (ण) णव्वदे । जाणि सम्बंधंति पदाणि तेसिं परुवणाओ ओघपरुवणाए तुल्ला त्ति एत्थियमेत्त चेव णव्वदे । तेण पुध सुत्तारंभो कायजोगिग्घि चउव्विहसमुग्घादानमत्थिचपदुप्पायणफलो त्ति ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८१ ॥

दञ्चट्टियपरुवणाए ओघत्त जुज्जदे । पज्जवट्टियपरुवणाए पुण ओघत्तं णत्थि, ओरालियजोगे णिरुद्धे त्रिहार-त्रेउच्चियपदानमद्द-चोद्दसभागत्ताणुवलभादो । तदो एत्थ भेदपरुवणा कीरदे- सत्थाणसत्थाण-वेदण कसाय-मारणात्थियपरिणदेहि तिसु नि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो । उत्रादो णत्थि, दोण्हं सहाणउट्टाणलक्षणनिरोहा । वट्टमाणकाले

शका— इस सूत्रके पृथक् आरम्भ करनेका क्या फल है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, सयोगिकेवलीमें दड, कपाटादि चारों समुद्रात काययोगके अविनाभावी होते हैं, इस बातका मद्मेधावी जनोंको ध्यान करानेके लिए इस सूत्रका पृथक् निर्माण किया गया है, और यही सूत्रके पृथक् निर्माणका फल है।

शका— पूर्वसूत्र और इस सूत्रका एक योग अर्थात् एक समास करके 'ओघ' ऐसा कहने पर भी ओघत्व-अम्यथानुपपत्तिसे काययोगी सयोगिकेवलीमें दड कपाटादि चारों समुद्रातोंका अस्तित्व जाना जाता है, फिर पृथक् सूत्र निर्माणकी क्या उपयोगिता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'ओघ' ऐसा कहनेपर भी ये अमुक विवक्षित पद होते हैं, और ये अमुक पद नहीं होते हैं, ऐसा, विशेष नहीं जाना जाता है। किन्तु जो पद सम्भव हैं उनकी प्ररूपणाए ओघप्ररूपणाके साथ समान होती हैं, इतनामात्र ही जाना जाता है। इसलिये पृथक् सूत्रका आरम्भ काययोगी सयोगिकेवलीमें चारों प्रकारके समुद्रातोंका अस्तित्व प्रतिपादन करनेरूप फलके लिए है।

औदारिककाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्व-लोक है ॥ ८१ ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणामें तो ओघपना घटित होता है, किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें ओघपना घटित नहीं होता है, क्योंकि, औदारिककाययोगके निरुद्ध करनेपर विहारव्यवस्थान और वैभ्रियिक पक्षोंके स्पर्शनका क्षेत्र आठ घटे चौदह (१४) भाग नहीं पाया जाता है। इससे यहाँपर भेदप्ररूपणा की जाती है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कदाय और मारणान्तिकपदपरिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। यहापर उपपादपद नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोग और उपपादपद, इन दोनोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है। वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदपरिणत

वेउन्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणो पोमिदो।
तीदाणागदेसु तिण्ह लोगाण सखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असखेज्जगुणो, वाउक्कइय
वेउन्वियफोसणस्स पाधण्णत्रिकत्ताप । त्रिहारपरिणदेहि ओरालियकायजोगिमिच्छादिद्विद्विहि
वट्टमाणकाले तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो
असखेज्जगुणो पोसिदो । तीदाणागदकालेसु तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो ।

सासणसम्मादिद्विद्विहि केवडिय खेतं पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदि
भागो ॥ ८२ ॥

एदस्स वट्टमाणकालसवधिसुत्तस्स खेत्ताणिओमइारे ओरालियकायजोगिनासण
सुत्तस्सेव परूणणा कादणा ।

सत्त चोइसभागा वा देसूणा ॥ ८३ ॥

सत्थाणसत्थाण-त्रिहारवदिसत्थाण वेदण-कमाय वेउन्वियपरिणदेहि सासणसम्मा

उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवां भाग, और मनुष्यक्षेत्रसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीत और अनागत, इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका सख्यातवा भाग, और त्रिलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहा पर वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपद
सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रकी प्रधानतासे विवक्षा की गई है। विहारवत्स्वस्थानपदसे परिणत
औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है। उर्हीं जीवोंने अतीतकाल और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है।

औदारिककाययोगी सासादनसम्पगदृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ८२ ॥

इस वर्तमानकालसम्बन्धी सूत्रकी क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहे गये औदारिककाययोगी
सासादनसम्पगदृष्टियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा करनेवाके सूत्रके समान स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिये।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह
भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८३ ॥

स्वस्थानसस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकपदपरिणत

दिट्टीहि तिण्ह लोगणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणो पोसिदो । उववादो णत्थि । मारणतियपरिणदेहि सत्त चोदसमागा देष्णा पोसिदा । केण ऊणा ? इत्तिपन्मारपुढवीए उवरिमत्राहल्लेण ।

सम्मामिच्छादिट्टीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्ताणिओगद्दारोराणियकायजोगसम्मामिच्छादिट्टिसुत्तः परूवणाए तुल्ला । सत्थाणसत्थाण विहारउदिसत्थाण वेदण कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि ओरालियमम्मामिच्छादिट्टीहि तीदाणागदकालेसु तिण्ह लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो अमखेज्जगुणो पोसिदो । मारणतिय-उववादा णत्थि ।

असंजदसम्मामिच्छादिट्टीहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और मानुषक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इन जीवोंके उपपाद-पद नहीं होता है । मारणात्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम सात घटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

शका—यहापर कुछ कमसे कितना कम क्षेत्र समझना चाहिए ?

समाधान—ईपत्रागमार पृथिवीके उपरिम भागके बाह्यप्रमाणसे कुछ कम क्षेत्र समझना चाहिए ।

औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकाका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ८४ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रानुयोगद्वारमें उणित औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका वर्णन करनेवाले सूत्रकी प्ररूपणाके तुल्य है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैत्रियिकपदपरिणत औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और अट्टाईपीसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धांत और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

औदारिककाययोगी, असयतसम्यग्दृष्टि और संयतासयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकाका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ८५ ॥

सत्याणसत्याण विहारवदिसत्याण वेदण कसाय वेउन्विय-मारणंतियपरिणदेहि असं जदसम्मादिद्वीहि संजदासजदेहि चहुण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो अमखेज गुणो वहुमाणद्वाए फोसिदो ।

छ चौहसभागा वा देसूणा ॥ ८६ ॥

सत्याणमत्याण विहारवदिसत्याण वेदण-कसाय वेउन्वियपरिणदेहि असजदसम्मा दिद्वीहि सजदामजदेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्त सखेज्जदिभागो, अहुआज्जादो असखेज्जगुणो । एसो 'वा' सहस्रचिदत्थो । मारणंतिय (-उववाद-) परिणदेहि छ चौहसभागा देसूणा पोमिदा, अच्छुदकप्पादे उवरि असंजदसम्मादिद्वि सजदासजदाणधुवरादाभागादो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्त असखेज्जदिभागो ॥ ८७ ॥

एदेसिमहुण्ह गुणद्वानाण तिणिण रि काले अस्सिदण परूणं कीरमाणे खेच

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुदातपदपरिणत असयतसम्यग्दृष्टि और संयतासयत जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोका असख्यातवा भाग, और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है ।

औदारिककाययोगी उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह घंटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुदात, इन पदोंसे परिणत भौतिककाययोगी असयतसम्यग्दृष्टि और संयतासयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग और अर्द्धद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुदात और उपपाव पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह घंटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, मनुष्यकल्पसे ऊपर असयतसम्यग्दृष्टि और संयतासयत जीवोंका उपपाव नहीं होता है ।

प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ८७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी तीनों ही कालोंका आश्रय करके स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर

पोसणाणं मूलोघपमत्तादिरुवणाए समाणा परुवणा कादव्वा । णवरि सजोगिकेवलिम्हि क्वाड-पदर लोगपूरणाणि णत्थि' । त कथं णव्वदे ? सजोगिकेवलीहि लोगस्स असखेज्जा भागा सव्वलोगो वा फोसिदो ति सुत्तेण अणिदिट्ठत्तादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण रुमाय-मारणंतिय उवपादपरिणदेहि ओरालियमिस्सकाय-जोगिमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण ओघचमेदेसिं ण विरुज्जेदे । निहारवदिसत्थाण वेउच्चियपदाणमेत्याभाना णोघत्तं जुज्जेदे ? होदु णाम

क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके मूलोघ प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी प्ररूपणाके समान प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष यात यह है कि सयोगिकेवली गुणस्थानमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुदात नहीं होते हैं, (क्योंकि, औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दृढसमुदात ही होता है।)

शुका—यह कैसे जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिकेवलीके कपाट आदि तीन समुदात नहीं होते हैं ?

समाधान—'यह यात सयोगिकेवलियोंने लोकका असव्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है' इस सूत्रसे निर्दिष्ट नहीं की गई है। (अतः हम जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिजिनमें कपाटादि तीन समुदात नहीं होते हैं।)

निशेपार्थ—औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दृढसमुदात ही होता है, कपाटसमुदात आदि नहीं। इसका कारण यह है कि कपाटसमुदातमें औदारिकमिश्रकाययोग, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुदातमें कर्मणकाययोग होता है, ऐसा नियम है। इसलिए यहा, औदारिककाययोगकी प्ररूपणा करते समय सयोगिकेवलीमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुदात नहीं होते हैं, ऐसा कहा है।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ८८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपाय, मारणान्तिकसमुदात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूकि सर्वलोक स्पर्श किया है, इसलिए ओघपना इन पदोंवाले जीवोंसे विरोधकी प्राप्त नहीं होता है।

शुका—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें निहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुदात, इन दो पदोंका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ पद नहीं देना चाहिए ?

समाधान—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमु-

एदेसि दोण्ह पि पदाणमभागे, तथापि पदसखाविक्खाभागा विज्जमाणपदाण फोमणस्स ओघपदफोसणेण तुल्लत्तमत्थि चि ओघत्त ण विरुज्जेदे ।

सासणसम्माइट्ठि असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ ८९ ॥

एदेसिं तिण्ह गुणट्टाणाण चट्टमाणपरूणणा खेतभगो । सत्थाणसत्थाण पेदण कमाय उपवादपरिणदजोरालियमिस्ससासणसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्ह लोगाणमसखेज्जदि भागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जनादो असखेज्जगुणो । कथ तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागत्त ? देव णेरइयमणुस्स तिरिक्खसामणमम्मादिट्ठीहि तिरिक्खमणुस्सेसुप्पज्जिप सरोर घेत्तूण ओरालियमिस्सकायजोगेण सह सासणगुणमुव्वहत्तेहि अदीदकाले सखज्जगुल वाहट्टरज्जुपदर मज्झिज्जममुदरज्ज सव्व जेण फुसिज्जदि तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदि भागो चि वयण जुज्जेदे । एत्थ विहार पेउळिय मारणतिय-पदाणि णत्थि, एदेसिमोरालिय मिस्सकायजोगेण सहअवट्टाणविरोहा । उपादो पुण अत्थि, सासणगुणेण सह अक्रमेण

अत, इन दो पदोंका अभाव भले ही रहा थावे, तथापि पदोंकी सख्याकी विवक्षा न करनेसे उनमें विद्यमान पदोंके स्पर्शनकी ओघपदके स्पर्शके साथ तुल्यता है ही, इसलिए ओघपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनमग्यगृष्टि, अमयतमग्यगृष्टि और सयोगी केवली जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८९ ॥

इन तीनों ही गुणस्थानोंके स्पर्शनकी वर्तमानकालिक प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपायसमुदात्त और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसग्यगृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवां भाग और अर्द्धादीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शुद्धा—तिर्यग्लोकका सख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान—चूंकि देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच सासादनसग्यगृष्टि जीवोंने (यथासमय) तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शरीरको ग्रहण करके औदारिकमिश्रकाय योगके साथ सासादनगुणस्थानको धारण करते हुए अतीतकालमें बीचके समुद्रको छोड़कर सख्यात अंगुल वाहन्यवाले सम्पूर्ण राजुप्रतररूप क्षेत्रका स्पर्श किया है, इसलिए 'तिर्यंग्लोकका सख्यातवां भाग' यह वचन युक्तियुक्त है ।

यहां पर विहारय स्वस्थान, वैभित्तिक और मारणान्तिरु पर नहीं होते हैं, क्योंकि, इन पदोंका औदारिकमिश्रकाययोगीके साथ अवस्थानका विरोध है । किन्तु उपपादपद होता है, क्योंकि, सासादनगुणस्थानके साथ अक्रमसे (युगपत्) उपात्त भवशरीरके प्रथम समयमें

उवाच भवसरीरपठमसमए उववादोवलभा । मिच्छादिद्वीणं पुण मारणतिय उववादपदाणि लभति, अणतो ओरालियमिस्सेइदियअपज्जचरासी सट्ठाणे परट्ठाणे च वक्कमणोवक्कमणं करेमाणो लभदि चि । सत्थाणसत्थाणपेदण कसाय-उववादपरिणदेहि असंजदसम्मादिद्वीहि ओरालियमिस्सकायजोगीहि तीदे काले तिह्ण लोगाणमसखेज्जादिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जादिभागो, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो । कथं तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागत्त ? ण, पुच्च तिरिक्ख-मणुस्सेसु आउअ वधिय पच्छा सम्मत्त घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय वट्ठाउवसेण भोगभूमिसठाणअभरेज्जदवेसु उप्पण्णेहि भवसरीरगहणपठमसमए वट्ठमाणेहि ओरालियमिस्सकायजोगअसजदसम्मादिद्वीहि अदीदकाले पोसिदतिरियलोगस्स सखेज्जदिभागुत्तलभा । कवाडगदेहि सजोगिकेत्तलीहि ओरालियमिस्सकायजोगे वट्ठमाणेहि तिह्ण लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असखेज्जगुणो; अदीदेण तिरियलोगादो सखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ कनाडरेत्तादो जगपदरूप्यायणविधान जाणिय वत्तन्वं ।

उपपाद पाया जाता है । मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी मारणान्त्रिक और उपपादपद पाये जाते हैं, क्योंकि, अनन्तसंख्यक औदारिकमिश्रकाययोगी एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि, स्वस्थान और परस्थानमें अपक्रमण और उपक्रमण करती हुई, अर्थात् जाती आती, पाई जाती है । स्वस्थान-स्वस्थान, घेदना, कपायसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी असयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अट्ठाईहीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका— औदारिकमिश्रकाययोगी असयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपादक्षेत्रको तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग कैसे कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वमें तिर्यच ओर मनुष्योंमें आयुको वाधकर पंडित सम्यकको ग्रहण कर, और दर्शनमोहनीयका क्षय करके बाधी हुई आयुके वशसे भोगभूमिकी रचनावाले असख्यात द्वीपोंमें उत्पन्न हुए, तथा, भव शरीरके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान, ऐसे औदारिकमिश्रकाययोगी असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा अतीतकालमें स्पर्श किया गया क्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग पाया जाता है ।

कपाटसमुद्घातको प्राप्त, औदारिकमिश्रकाययोगमें वर्तमान सयोगिकेवलियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अट्ठाईहीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकालकी अपेक्षासे तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर कपाटसमुद्घातगत क्षेत्रकी अपेक्षासे स्पर्शक्षेत्रसम्यन्धी जगप्रतरके उत्पादनका विधान जान करके कहना, चाहिए । (इसके लिए देखो क्षेत्ररूपणा पृ. ४९ आदि) ।

वेउच्चियकायजोगीसु मिच्छादिद्वीहि केवडियं सेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

एद सुच जेण वडुमाणकाले पडिवद्ध तेणेदस्स वक्खाणे कीरमाणे जथा सेत्ताणि
ओगद्दारे वेउच्चियकायजोगिमिच्छादिद्विप्पहुडि नद्धसुत्तस्स वक्खाण कदं, तथा एत्थ
वि कायर्थं ।

अट्ट तेरह चौदसभागा वा देसूणा ॥ ९१ ॥

सत्याणसत्याणपरिणद वेउच्चियमिच्छादिद्वीहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो,
निरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जमुणो फोसिदो । निहारवदिसत्याण-
वेदण कसाय वेउच्चियपरिणदेहि अट्ट चौदसभागा फोसिदा । उववादो णत्थि । मारणतिय
परिणदेहि तेरह चौदसभागा फोमिदा, हेट्ठा छ, उवणि सच रज्जु । घणलोगमेगरूपस्स अट्ट-
तेरसभागूण सत्तानीसरूणेहि खडिदपगसुड फोसति त्ति बुच होइ ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ९० ॥

चूँकि यह सूत्र धर्तमानकाउसे सम्यक् है, इसलिए इसका व्याख्यान करने पर जिस
प्रकारसे क्षेत्राणुयोगद्वारमें वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिक जीवोंसे प्रतिबद्ध सूत्रका
व्याख्यान किया है, उसी प्रकारसे यहाँ पर भी करना चाहिए ।

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ
घंटे चौदह, और कुछ कम तेरह घंटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और मनुष्यलोकसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिक
समुदात्तपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ घंटे चौदह (१३) भाग स्पर्श किये हैं ।
यहाँ पर उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, मिश्रयोग और कार्मणकाययोगके सिवाय अन्य
योगोंके साथ उपपादपदका सहानुस्थानलक्षण निरोध है) । मारणान्तिकसमुदात्तपद
परिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) तेरह घंटे चौदह (१३) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि भेद
तलसे नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए । घनाकारलोकको एक रूपके
आठ घंटे तेरह (१३) भागसे कम सत्ताइस (२६३) रूपोंसे खडित (विभक्त) करने
पर एक खंड प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श करते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूणणा खेत्तमंगो । सत्थाणसत्थाणपरिणदप्रेउब्बियकायजोगि-
सासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोमाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाह-
ज्जादो असखेज्जगुणो । एत्थ तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागपरूणं पुव्वं व वत्तव्वं ।
विहारवदिसत्थाण वेदण-कसाय-प्रेउब्बियपरिणदेहि अट्ट चोद्दसभागा फोसिदा । उवनादो
णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि तारह चोद्दसभागा फोमिदा । तेणोघमिदि जुज्जे ।

सम्भामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९३ ॥

जेणेदेसिं वट्टमाणपरूवणा खेचोघपरूवणाए तुल्ला, तेणोघ होदि । अदीदपरूवणा
वि फोसणोघेण तुल्ला । त जहा— सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोमाणमसखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-
वेदण कसाय प्रेउब्बिय मारणंतियपरिणदेहि अट्ट चोद्दसभागा देसणा फोसिदा । असंजद-

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघस्पर्शनके
समान है ॥ ९२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान-
पदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागकी प्ररूपणा पूर्वके समान ही
करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत
वैक्रियिककाययोगी जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । इनके
उपपादपद नहीं होता है । मारणान्तिकसमुद्घातपदसे परिणत उक्त जीवोंने बारह बटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं । इसलिये सूत्रमें दिया गया ' ओघ ' यह पद युक्तिसंगत है ।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्भिज्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन
ओघके समान है ॥ ९३ ॥

चूकि इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रसम्बन्धी
ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिये उनकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके तुल्य होती है । अतीत-
कालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी ओघस्पर्शनप्ररूपणाके समान है । वह इस प्रकारसे है— स्वस्थान-
स्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अट्टाईद्वीपसे
असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक और
मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

सम्मादिद्विस्त उववादो णत्थि । सम्मामिच्छादिद्विस्त मारणत्थिय उववादो णत्थि । तेष्वपि ओधत्तमेदेसिं जुज्जेद ।

वैज्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वि असंजदसम्मादिद्विहि केवडियं खेत्त पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि भागो ॥ ९४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूणा खेत्तभगो । सत्थाणसत्थाण वेदणे कमाय उववादपरिणद्वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिद्विहि अदीदकाले तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण वैउच्चिय मारणत्थियपदाणि णत्थि । सासणसम्मादिद्विस्त वि एव चेत्त चत्तव्व, वाणवेत्त जोदिसियदेवाणमसखेज्जाणसेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमोद्वहिय द्विदे सासणाण सुप्पत्तिदसणादो । असजदसम्मादिद्विहि सत्थाणसत्थाण वेदण-कमाय उववादपरिणदेहि चउत्तह लोगाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो, वाणवेत्त जोदिमिय

वैक्रियिककाययोगी असयत्तसम्यग्दष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है । वैक्रियिककाययोगी सम्मामिच्छादिद्वि जीवोंके मारणात्तिकसमुदात्त और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । इसलिये यहा पर भी ओषपत्ता यत्त जाता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादष्टि, सासादनसम्यग्दष्टि और असयत्तसम्यग्दष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा-भाग स्पर्श किया है ॥ ९४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपाय और उपपादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादष्टि जीवोंने अतात्कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग, और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणात्तिकसमुदात्त, ये पद नहीं होते हैं । सासादनसम्यग्दष्टि गुणस्थानकी भी स्पर्शनप्ररूपणा इसी प्रकारसे कहना चाहिये । तिर्यग्लोकके सख्यातव्व भागको ध्यात्त करके स्थित वानम्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके असख्यात आवासोंमें सासादनसम्यग्दष्टि जीवोंकी उपत्ति देखी जाती है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपाय और उपपादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असयत्तसम्यग्दष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,

परिणयसिद्धसु एदेसिमुत्रनादाभागा, सम्मादिद्विउवनादपाओगसोधम्मादिउव्वरिमन्निमाणंणं
तिरियलोगस्स असखेज्जदिभागे चैव अउट्ठाणादे ।

आहारकायजोगि आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं
खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वड्डमाणपरूणणा खेत्तमंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कसायपरिणदेहि आहारकायजोगिपमत्तसंजदेहि तीदे काले चदुण्ह लोगाणमसंखेज्जदि-
भागो, माणुसखेत्तस्स सखेज्जदिभागो फोसिदो । उउवाद वेउच्चिय णत्थिय । भारणत्थिय-
परिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो अमखेज्जगुणो । आहारमिस्स-
कायजोगिपमत्तसंजदेहि सत्थाण वेदण कमायपरिणदेहि चदुण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओधं ॥ ९६ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उउवादपरिणदेहि मिच्छादिट्ठीहि तिसु पि कालेसु

धान-यन्तर, ज्योतिष्क और भवनवासी देवोंम इनका, अर्थात् चैत्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका,
उपवाद नहीं होता है, सम्यग्दृष्टि-जीवोंके उपवादके प्रायोध्य सौधर्मादि उपरिम धिमानोंका
तिर्यग्लोकके असत्थातवें भागमें ही अउस्थान देखा जाता है ।

आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रमत्तसंयतीने कितना
क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असत्थातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रकी चर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कपायसमुदातपरिणत आहारकाययोगी प्रमत्त-
संयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असत्थातवा भाग, और मनुष्य
क्षेत्रका सत्थातवा भाग स्पर्श किया है । आहारकाययोगियोंके उपवाद और चैत्रियिकपद नहीं
होते हैं । मारणातिकपदपरिणत आहारकाययोगी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असत्थातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असत्थातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना
और कपायसमुदात, इन पक्षोंपरिणत आहारमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतीने सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असत्थातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रका सत्थातवा भाग स्पर्श किया है ।

कर्मणकाययोगी जीवोंमें मिच्छादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओषके समान
है ॥ ९६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपाय और उपवादपदपरिणत कर्मणकाययोगी मिथ्या
दृष्टि जीवोंने तीनोंही कालोंमें चूकि सर्वलोकस्पर्श किया है, इसलिये सूत्रमें 'ओय' 'येसा

जेण सञ्चलोगो फोसिदो, तेण सुत्ते ओघमिदि युत्त । एत्थ विहारवदिसत्वाण-वेउक्खिप
मारणतियपदाणि गत्थि ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असस्सेज्जदि
भागो ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभगा ।

एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा ॥ ९८ ॥

एत्थ उरनादवदिरित्तसपदाणि गत्थि, कम्मइयकायजोगनिवक्खतादो । उरवादे
वट्टमाणा सासणा हेट्ठा पच, उररि छ रज्जूओ फुसंति त्ति एक्कारह चोद्दसभागा फोसिद
खेत्त होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असस्से
ज्जदिभागो ॥ ९९ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभगो, वट्टमाणकालपडिवद्धत्तादो ।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०० ॥

पद कहा हे । यहा, अर्थात् कार्मणकाययोगी मिध्यादृष्टियोंके, विहारवत्स्थान, धैरियिक और
मारणान्तिकसमुदात्त, इतने पद नहीं होते हैं ।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्पग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ९७ ॥

इस सूत्रकी वतमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्पग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम
ग्यारह घंटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९८ ॥

यहापर उपपादपदको छोडकर शेष पद नहीं हैं, क्योंकि, कार्मणकाययोगकी विवक्षा
की गई है । उपपादपदमें वतमान सासादनसम्पग्दृष्टि जीव मेरुके मूलभागसे नीचे पांच राडु
और ऊपर अच्युतकम्पतक छह राडु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिये ग्यारह घंटे
चौदह ($\frac{11}{12}$) भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है ।

कार्मणकाययोगी असयत्तसम्पग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ९९ ॥

वतमानकालसे प्रतिशब्द होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

कार्मणकाययोगी असयत्तसम्पग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षासे कुछ कम
छह घंटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०० ॥

एतथ वि उववाडपदमेकरं चेर । तिरिक्खासजदसम्माइट्टिणो जेणुपरि छ रज्जूओ गतूणुप्पज्जति, तेण फोमणखेत्तपरुवण छ-चोइसभागमेत्त होदि । हेट्ठा फोसणं पचरज्जु-पमाणं ण लब्भदे, णेरहयासजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसुग्गादाभावा ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा ॥ १०१ ॥

पदरगदकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा फोसिदा, लोगपेरतट्टिदवादनलएसु अपविट्टिजीवपदेसत्तादे । लोगपूरणे सव्वलोगो फोसिदो, वादवलएसु वि पविट्टिजीव-पदेसत्तादे ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ १०२ ॥

एदस्स सुत्तस्स परुवणा खेत्तभागो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादे ।

यहा पर भी केवल उपपादपदही होता है । तिर्यंच असयतसम्यग्दृष्टि जीव चूकि मेरुतलसे ऊपर छह राजु जाकरके उत्पन्न होते हैं, इसलिये स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा छह धटे चौदह र्च भाग प्रमाण होती है । मेरुतलसे नीचे पाच राजु प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि, नारकी असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है ।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असरपात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०१ ॥

प्रतरसमुद्धातको प्राप्त क्षेत्रलियोने लोकके असख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, लोकपयत स्थित वातबलयोंमें केवली भगवान्के आत्मप्रदेश प्रतरसमुद्धातमें प्रवेश नहीं करते हैं । लोकपूरणसमुद्धातमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, लोकके चारों ओर ध्यान्त वातबलयोंमें भी केवली भगवान्के आत्मप्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं ।

इसप्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुनादमे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातना भाग स्पर्श किया है ॥ १०२ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

१ वेदानुवाकन सारुवेदीमिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासरयेपमाण स्पृष्ट अष्टा नव चतुदशमाणा वा देशाना सर्व-लोको वा । स सि १, ८

अट्टचोदसभागा देसूणा, सञ्जलोगो वा ॥ १०३ ॥

सत्याणत्थेहि मिच्छादिद्वीदि अदीदकाले तिण्ह लोमाणमसंवेज्जदिभागो, तिरिक्-
लोगस्स सरोज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असरोज्जगुणो फोसिदो । एत्थ णाणंतर-आदि-
सिमात्तासे मंगेज्जजोयणत्ताहल्ल रज्जुपदर च घेत्तूण तिरियलोगस्स सरोज्जदिभागो साइदवो ।
विहारदिमत्थाण पेदण-कमाय वेउळियपरिणदेहि अट्ट चोइमभागा फोसिदा, अट्टरञ्जु
वाहल्ल रज्जुपदरपरिणममणमत्तिजुत्तदेवित्थि पुरिसवेदमिच्छादिद्वीणमुलभादो । मारणत्थि
उवनाद् परिणदेहि सञ्जलोगो फोसिदो, दुपदपरिणदमिच्छादिद्वीणमगम्मपदेसाभाभादो ।

सासणसम्मादिदीहि केवडिय खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्ज
दिभागो ॥ १०४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परुणणा खेत्तभगो, षट्ठमाणकालपडिबद्धत्तादो ।

अट्ट णव चोदसभागा देसूणा ॥ १०५ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०३ ॥

सस्यानस्य स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक भादि
तीन लोकोंका असत्यातवां भाग, त्रियलोकका सत्यातवा भाग और ब्रह्माईदीपसे असत्यात
गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहा पर धानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके आवासोंको, तथा सस्यात
योजन प्रमाण बाहस्यवाले राजुप्रतरको ग्रहण करके त्रियलोकका सत्यातवा भाग सापलेब
चाहिब । विहारघत्सस्यान, वेदना, कपाय और चैन्नियिकसमुदात्तपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, ब्राह्म राजु बाहस्यवाले राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रमें
परिधमणकी शक्तसे युक्त क्षेत्र स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं । मार
णान्तिकसमुदात्त और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि,
मारणान्तिक और उपपाद, इन दोनों पदोंसे परिणत स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके
अमम्यप्रदेशना अभाव है ।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्पग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असत्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १०४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्पग्दृष्टियोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह तथा नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०५ ॥

सत्थाणत्थेहि सासणसम्मादिट्ठीहि तिण्ह लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाहज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो, अदीदकालविनक्खादो । एत्थ वि पुच्च व तिण्णि खेत्ताणि धेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो दरिसेदणो । एसो ' वा ' सहट्ठो । निहारदिसत्थाण वेदण कसायपरिणदेहि अट्ठ चोदसभागा देखणा फोसिदा, अट्ठ-रज्जुनाहल्लरज्जुपदरब्भतरे देवित्थि-पुरिससासणाण गमणागमण पडि पडिसेहाभावा । मारणतियपरिणदेहि णव चोदसभागा देखणा फोसिदा । हेट्ठा पंच रज्जू फोसण किण्ण लब्भदे ? ण, णेरइएहिंतो इत्थि पुरिसवेदे सासणाणं तिरिक्ख मणुस्सेसु मारणंतियमेल्ल-माणाणमभावादो, तिरिक्खित्थि पुरिसवेदसासणाण णिरयगदिं मारणंतिय मेल्लमाणाणम-भावादो च । उपादपरिणदेहि एककारह चोदसभागा देखणा फोसिदा । सुत्ते उववाद-फोसण किण्ण वुत्त ? ण, फोसणसुत्ते उपादविनक्खाभावा । णिरयादो आगच्छंतेहि पंच

उक्त दोनों घेदवाले स्वस्थानस्थ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और अटोईट्ठीपसे असख्यात गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहापर अतीतकालकी विवक्षा है । यहापर भी पूर्वके समान तीनों क्षेत्रोंको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग दर्शाना चाहिए । यही सूत्रपठित ' वा ' शब्दका अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और धेक्कियिकसमुद्घात-परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाले राजुप्रतरके भीतर देव स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है । मारणातिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम नो बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

शुक्रा—मेरुतलसे नीचे पाच राजुप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र फ्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नारकियोंसे स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यचों और मनुष्योंमें मारणातिकसमुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अभाव है, तथा नरकगतिके प्रति मारणातिकसमुद्घात करनेवाले स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी अभाव है ।

उपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

शुक्रा—सूत्रमें उपादपदसम्यग्दृष्टि स्पर्शनका प्रमाण फ्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुगमसम्यग्दृष्टि सूत्रमें उपादपदकी विवक्षाका अभाव है ।

नरकगतिले आनेवाले जीवोंकी अपेक्षा पाच राजु, और देवगतिले आनेवाले जीवोंकी

रज्जु, देवेहितो आगच्छतेहि छ रज्जु फोसिदा चि एकारह चोइसभागा फोसणसेच होदि।

सम्माभिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टीहि केवडिय खेतं फोसिदं,
लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ १०६ ॥

एदस्स सुचस्स परूणणा खेतंभंगो, वट्टमाणकालपिणक्कादो ।

अट्ट चोइसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ १०७ ॥

सत्याणत्थेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो,
अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो, तीदकालपिणक्कादो । त्रिहारवदिसत्याण वेदण
कमाय त्रेउट्टिय मारणतियपरिणदेहि अट्ट चोइसभागा देखणा फोसिदा । गवरि सम्मा
मिच्छाडट्टीण मारणतिय णत्थि । उत्रादपरिणदेहि छ चोइसभागा देखणा फोसिदा । गवरि
सम्माभिच्छादिट्टीण उत्रादो णत्थि । इत्थिपेदेसु असजदसम्मादिट्टीण उत्रादो णत्थि ।

सजदासंजदेहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असखेज्जदि
भागो ॥ १०८ ॥

अपेक्षा छह राजु स्पर्श किये गये ह । इस प्रकार ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग उपपादका स्पर्शनक्षेत्र है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १०६ ॥

वर्तमानकालकी विषयता होनेसे इस क्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये ह ॥ १०७ ॥

सस्यानस्य स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी तृतीय व चतुर्थ गुणस्थानधता जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहा पर अतीतकालकी विषयता भी गई है । विहारय-स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैनियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणातिषसमुदात्तपद नहीं होता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग स्पर्श किये ह । विशेषता यह हे कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है । स्त्रीवेदी जीवोंमें असयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सयतासयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १०८ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूणणा खेत्तमगो, निवक्खिदवट्टमाणकालत्तादो ।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०९ ॥

सत्याणसत्याण वेदण-कामाय पेउञ्जियपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, निवक्खिददातीदकालत्तादो । मारणतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोमिदा, अच्चुदकप्पादो उगरि तिरिक्खसज्जदासंजदाणमुत्रवादाभावा ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११० ॥

एदस्म सुत्तस्म वट्टमाणपरूणणा खेत्तमगा । अदीदकाले एदेहि सत्याण-निहार-वेदण कामाय पेउञ्जियपरिणदेहि चट्टण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तस्म सखेज्जदिभागो फोसिदो । पमत्तसज्जे तेजाहारपदाण नि एउ चेउ तत्तच्च । णउरि इत्थिवेदे तेजाहारं

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सयतासयत जीवोंने अतीत और अनागतकालकी विवक्षासे कुछ कम छह गटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, क्पाय और वैकियिकरूपदपरिणत स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सयतासयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अट्टाईठीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहापर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह गटे चौदह ($\frac{14}{1}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर तिर्यच सयतासयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अनिष्टचिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ११० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्सस्थान, वेदना, क्पाय और वैकियिकरूपदपरिणत इन्हीं उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग, और मनुष्यक्षेत्रका सख्यातवा भाग स्पर्श किया है । प्रमत्तसयत गुणस्थानमें वैजससमुद्धान और आहारकसमुद्धान, इन दोनों ही पदोंमें इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि स्त्रीवेदमें

णतिय । मारणतिय परिणदेहि चदुण्ह लोमाणमसखेज्जादिभागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो पोमिदो ।

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १११ ॥

सत्याणसत्याण-पदण-कमाय मारणतिय-उत्रादपरिणदणयुसयवेदमिच्छादिट्ठीहि ति सु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो, निहारपरिणदेहि तिसु वि कालेसु तिण्हं लोमाणम सखेज्जदिभागो, तिरियलोगसम सखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो ति; तेण ओघच जुज्जेदे । किंतु वेउत्तियपदस्स ओघभगो ण होदि, तत्थ वेउत्तियपद वट्ट माणकाले तिरियलोगसम सखेज्जदिभागमेत्तमदीदकाले उमयत्थ वि अट्ट पंच चोदसमाणा चि ? ण, पदविसेसनिवक्खामाणेण ओघणिहेमसम निरोहाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेतं फोसिद, लोगसम असखेज्जदि भागो ॥ ११२ ॥

-- --

संज्ञस और आहारकसमुदाय, ये दोनों पद नहीं होते ह । मारणातिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातया भाग, और अट्टाहज्जापसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

नपुसकवेदी जीवोंने मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ १११ ॥

शुद्धा—सस्यानसस्यान, घेदना, कपाय, मारणातिक और उपपाद, इन पदोंसे परिणत नपुसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूकि सर्वलोक स्पर्श किया है । तथा विहारचत्तरस्यानपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातया भाग, त्रियलोकका सख्यातया भाग, और अट्टाहज्जापसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसलिए सूत्रमें कहा गया ओघपना घटित हो जाता है । किन्तु धेक्कियिकपदका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, यहा पर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें (देखो पृ १४८), वैक्कियिकपदका वर्तमानकालमें त्रियलोकका सख्यातया भागमात्र, और अतीतकालमें दोनों ही स्थलोंपर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें और आवेशप्ररूपणाके अन्तर्गत, वेद प्ररूपणामें आठ बटे चौदह (१४) तथा पाच बटे चौदह (१४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पदविशेषकी विवक्षाका अभाव होनेसे सूत्रमें ओघपदका निर्वेश विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

नपुसकवेदी सासादनसम्पग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोक असख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ ११२ ॥

एदस्स वड्डमाणपरूणणा खेत्तमगो ।

वारह चौदसभागा वा देसूणा ॥ ११३ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण वेदण कसाय वेउच्चियपरिणदेहि णवुंसयसासणेहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइ-ज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो, पहाणीरुदतिरिक्खसामणरासिचादो । उत्रादपरिणदेहि एक्का रह चौदसभागा देसूणा फोसिदा, णवुसगवेदतिरिक्खसासणेषुप्पज्जमाणदेण णेरइयाण छ पंचरज्जुवाहल्लतिरियपदरफोसणोउलभादो । मारणतिय परिणदेहि वारह चौदसभागा फोसिदा, णेरइय-तिरिक्खणं पच सत्तरज्जुवाहल्लरज्जुपदरफोसणोउलभादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असखे-ज्जदिभागो ॥ ११४ ॥

एदस्स सुत्तस्म वड्डमाणपरूणणा खेत्तमगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेउच्चियपरिणदेहि णवुंसयवेदमम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणम-

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम वारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपु-सकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अटाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहापर तिर्यच सासादन जीवराशिकी प्रधानता है । उपपादपद-परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (११) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, नपु-सकवेदी तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंकी अपेक्षा छह राजु, और नारकियोंकी अपेक्षा पाच राजु, इसप्रकार मिलकर ग्यारह राजु बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । मारणातिकपदपरिणत उक्त जीवोंने वारह बटे चौदह (११) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, नारकियोंके पाच राजु और तिर्यचोंके सात राजु, इसप्रकार वारह राजु बाहल्यवाला राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ ११४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका

सखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियरामिस्स पाघण्णादो । मारणतिय उववादा णत्थि ।

असंजदसम्मादिट्ठि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एदस्स सुदस्स वट्टमाणपरुत्तणा खेत्तभगा ।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ ११६ ॥

सत्थाणमत्थाण विहारवदिसत्थाण पेदण कसय वेउत्तियपरिणेदहि णपुसगोदे अजदसम्मादिट्ठि संजदासंजदेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो । एसो 'वा' सद्धो । मारणतियपरिणेदहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोपिदा, अच्चुदरुप्पादो उवरि तिरिक्कासजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदाण गमणाभावा । उववादपद णत्थि । णवरि असंजदसम्मादिट्ठि उववादपरिणेदहि चट्टण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो ।

पमत्तंसंजदपह्णुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघं ॥ ११७ ॥

सख्यातवां भाग, और अट्टाईडीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर तिरियं वराक्षिकी प्रधानता है । यहांपर मारणात्तिकसमुदात और उपवाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

नपुसकवेदी असयतसम्पग्दट्ठि और सयत्तासयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकां असख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह घंटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कयाय और धैकियिकपदपरिणत नपुसकवेशी असयतसम्पग्दट्ठि और सयत्तासयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवां भाग, तिरियंलोकका सख्यातवां भाग, और अट्टाईडीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणात्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह घंटे चौदह (१५) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर असयतसम्पग्दट्ठि और सयत्तासयत तिरियंलोकके गमनका अभाव है । यहांपर उपवादपद नहीं होता है । विशेष बात यह है कि उपवादपदपरिणत असयतसम्पग्दट्ठि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवां भाग और अट्टाईडीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

उक्त नपुसकवेदी जीवोंमें प्रमत्तमयत गुणस्थानसे लेकर अनिष्टचिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असख्यातवां भाग है ॥ ११७ ॥

पमत्ते तेजाहाराभावादो ओघत्त ण जुज्जदे ? ण, सुत्ते पदनिम्बसाए विणा साम-
ण्णिद्देमादो । सेस चित्तिथ वत्तव्व ।

अपगदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति
ओघं ॥ ११८ ॥

एदस्स सुत्तस्म वट्टमाणादीदकालपरूखणा ओघादो ण भिज्जदि ति सुत्ते ओघ-
मिदि भणिद ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ११९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, पुव्वसेत्तेण सजोगिसेत्तस्स अदीद वट्टमाणकालेसु
तुल्लत्तामाणादो एगजोगत्ताणुमनत्तीए । एदस्म वि सुत्तस्स अत्थो सुगमो ति ण किंचि
युच्चदे ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

शुक्रा — प्रमत्त गुणस्थानमें नपुंसकवेदी जीवोंके तैजस और आहारकसमुद्रातका
अभाव होनेसे सूत्रोक्त ओघपना नहीं घटित होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, सूत्रमें उक्त दोनों पदविशेषोंकी विवक्षाके बिना सामान्य
निर्देश किया गया है ।

शेष पदोंका स्पर्शनक्षेत्र विचार करके कहना चाहिए ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान ओर अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा ओघस्पर्शनप्ररूपणासे
भिन्न नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११९ ॥

शुक्रा — ऊपरके सूत्रका ओर इस सूत्रका, अर्थात् दोनों सूत्रोंका, एक योग (समास)
क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, प्रमत्तसयतादिके क्षेत्रसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रके अतीत
ओर वर्तमानकालमें समानताका अभाव होनेसे एकयोगपना नहीं बन सकता है ।

इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, इसलिए विदोष कुछ भी नहीं कहा जाता है ।

इसप्रकारसे वेदभार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ लोभकसाईसु
मिच्छादिद्विष्णुहृदि जाव अणियट्टि ति ओघं ॥ १२० ॥

एदस्म सुचस्त अदीद उट्टमाणकाले अस्सिदूण परूणणे कीरमाणे फोसणमूलोपादो
ण केण वि अमेण भिज्जदि ति ओघमिदि सुचउपण सुट्टु मनद्ध । तदो मूलोघपरूवणं सुट्टु
संभालिय एत्थ मिम्माण पडियोहो कायव्वो ।

लोहणयविसेमाउरोहणद्वमुचरसुच भण्णेदे—

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥ १२१ ॥

कुदो ? जोधसुहुमसांपराइयउवसम-राउगेहितो एदेमिं विसेसाभावा । सो च
विसेसाभाउो सिस्माण सण्णिदरिसेयव्वो ।

अकसाईसु चट्टुद्वानुमोघं ॥ १२२ ॥

कपायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधरूपायी, मानरूपायी, मायारूपायी और लोभ
रूपायी जीवोंमें मिश्रवादिष्टि गुणस्थानसे लेकर अनितृचिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुण
स्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२० ॥

इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालको आश्रय करके प्ररूपणा करनेपर स्पर्शनानु
योगद्वारकी मूल ओघप्ररूपणासे किसी भी अशान्ते भेद नहीं है, इसलिए 'ओघ' देसा सूत्र
यवन सुसम्बद्ध है । अतएव मूल ओघप्ररूपणाको भलेप्रकार समाल करके यहापर शिष्योंको
प्रतिप्रोधित करना चाहिए ।

अथ लोभरूपायगत विशेषताके अथबोधनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि लोभरूपायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उप
शुमरु और क्षपरु जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ १२१ ॥

क्योंकि, ओघनिरूपित सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ता उपशुमरु और क्षपरुके
कपायमार्गणाकी दृष्टिसे प्ररूपित इन जीवोंके कोई विशेषता नहीं है । यह विशेषताका अभाव
शिष्योंके लिए भर्त्साभाति दिखाना चाहिए ।

अरूपायी जीवोंमें उपशान्तरूपाय आदि चार गुणस्थानजालोंका स्पर्शनक्षेत्र
ओघके समान है ॥ १२२ ॥

१ कपायानुवादत चट्टु कपायणां सामायोन स्पर्शनम् । स ति १, ८

२ अथरूपाया च सामायान स्पर्शनम् । स ति १, ८,

णामेगदेसग्गहणे वि णामिल्लमपच्चजे होदि त्ति चदुट्ठाणसद्देण चीदरागाण चदुण्हं
गुणट्ठाणाण गहण होदि । तेसिं परुवणा सुगमा, ओघसमाणत्तादो ।

एउ कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं
॥ १२३ ॥

जेण सत्थाण वेदण कमाय मारणतिय उरसादपरिणदमदि-सुदअण्णाणिमिच्छादिट्ठीहि
तिसु वि कालेसु सच्चलोगो, विहार-वेउवियपरिणदेहि अट्ट चोद्दसभागा फोसिदा, तेण
ओघमिदि जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२४ ॥

ओघो जेण अणेयपयारो मिच्छादिट्ठिओघादिभेदेण, तेण कस्सोघस्स एत्थ गहणं
होदि त्ति ण णच्चदे ? जेणोधेण सासणसम्मादिट्ठीण पगरिमेण पचासत्ती अत्थि, तस्सेव

‘किसी भी नामके एक देशके ग्रहण करनेपर भी नामवालोंका सम्प्रत्यय हो जाता
है’ इस न्यायके अनुसार ‘चतु स्यान’ शब्दसे उपशान्तरूपाय आदि वीतरागी चारों
गुणस्थानोंका ग्रहण हो जाता है । उनके स्पर्शनकी प्ररूपणा ओघके समान होनेसे सुगम है ।

इसप्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादमे मत्त्वज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका
स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२३ ॥

चूँकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपाय, मारणान्तिरुसमुद्धात और उपपादपद-
परिणत मत्त्वज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श
किया है, तथा विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातपदपरिणत जीवोंने आठ वटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिए सूत्रोक्त ‘ओघ’ यह वचन घटित हो जाता है ।

उक्त दोनों प्रकारके अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके
समान है ॥ १२४ ॥

शंका—चूँकि, मिथ्यादृष्टि ओघ, सासादनसम्यग्दृष्टि ओघ, आदिके भेदसे ओघ
अनेक प्रकारका है, इसलिए यद्वापर किस ओघका ग्रहण किया जा रहा है, यह नहीं जाना
जाता है ?

समाधान—जिस ओघके साथ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूप्यतासे प्रत्यासत्ति
है, उसका ही ग्रहण यद्वापर किया जा रहा है ।

गहण । केण सह एत्थ पुण पगरिसेण पचासची निज्जदे ? सासणसम्मादिट्ठिस्स ओवेण । वट्टमाणकाले चटुण्ह लोमाणमसखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो अमखेज्जगुणो सगमवपद खेनुवलमादो । तीदे काले त्रि सत्थाणेण तिण्ह लोमाणमखेज्जदिभागस्स, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागस्स, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणस्स, विहारवदिसत्थाण वेदण कसाय-वेउव्विय पदेसु अट्ट चोइसभागमेत्तस्स, मारणंतिय उववादपदेसु धारमेकारस्स चोइसभागखेत्तस्सुल भादो । एदमत्थपद सव्वत्थ वत्तच्च ।

विभगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२५ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभगा, वट्टमाणकालसंबंधित्तादो ।

अट्ट चोइसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १२६ ॥

सत्थाणपरिणदेहि विभगणाणमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्ह लोमाणमसखेज्जदि भागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो फोसिदो । एसो 'वा'

शंका—तो यहापर किस ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है ?

समाधान—सासादनगुणस्थानके ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है, क्योंकि, वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और अट्टाईपसे असख्यातगुणा अपने सर्वपदोंका स्पर्शक्षेत्र पाया जाता है । अतीतकालमें भी स्वस्थानपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग और अट्टाईपसे असख्यातगुणा; तथा विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय और वैत्रियिक पदोंमें आठ घटे चौदह (१४) भागप्रमाण; तथा मारणातिक और उपपाद, इन दो पदोंमें प्रमश धारह घटे चौदह (१४) और ग्यारह घटे चौदह (१४) भागप्रमाण स्पर्शका क्षेत्र पाया जाता है । यह अधपद सचत्र पहना चाहिए ।

विभगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १२५ ॥

वर्तमानकालसे सम्बन्ध होनेके कारण इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

विभगज्ञानी जीवाने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा आठ घटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १२६ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत विभगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्य लोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अट्टाईपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । विहारवत्त्वस्थान, वेदना,

१ विभगज्ञानी मिथ्यादृष्टीना लोन्स्यात्तरपयमाग अर्थात् चतुदशभागा वा देशोना, सर्वलोको वा ।

सदृष्टो । निहारवदिसत्थाण वेदण-कसाय-पेउच्चियपरिणदेहि अट्ट चोदसभागा देवणा; मारणतियपरिणदेहि सच्चलोगो फोसिदो । सेस सुगम ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२७ ॥

कुदो ? वट्टमाणकाले सगसच्चपदाणं चट्टुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, अट्टाड-ज्जादो असखेज्जगुणत्तेण, तीदे काले सत्थाणस्स तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागत्तेण, अट्टाडज्जादो असखेज्जगुणत्तेण; निहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय पेउच्चियपदाण देवण-अट्ट-चोदसभागत्तेण मारणतियस्स देवण-चारह-चोदस-भागत्तेण, ओघसासणसम्मादिट्ठिखेत्तेण सरिसत्तुवलमादो । कधं सारिच्छे एगत्त ? ण, दच्चट्ठियणयणिउधणउपहारणं सरिसे नि एगत्तालणणाणमुत्तमा ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव स्त्रीणकसायवीदरागच्छट्टुमत्था ति ओघं ॥ १२८ ॥

कपाय, और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ पटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । शेष अर्थ सुगम है ।

विभग्नानी सासादनमम्पग्दष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२७ ॥

विभग्नानी सासादनसम्पग्दष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान होनेका कारण यह है कि वर्तमानकालमें स्वकीय सर्पपदोंके स्पर्शनक्षेत्रकी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तथा अट्टाईट्ठीपसे असख्यातगुणितक्षेत्रसे; अतीतकालमें स्वस्थानस्यस्थानपदका सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागसे, तथा अट्टाईट्ठीपसे असख्यातगुणित क्षेत्रसे, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंका कुछ कम आठ पटे चौदह (१४) भागसे, और मारणान्तिकसमुद्घातका कुछ कम धारह पटे चौदह (१४) भागकी अपेक्षा, ओघप्ररूपित सासादनसम्पग्दष्टिगुणस्थानके स्पर्शनक्षेत्रके साथ सदृशता पाई जाती है ।

शुक्रा—सादृश्यमान होनेपर सूत्रोंमें 'ओघ' पद द्वारा एकत्व कैसे कहा जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्र-याधिजनयनिबन्धनक व्यरहारोंकी सदृशता होनेपर भी एकत्वायल्म्बी व्यवहार पाये जाते हैं ।

आभिनिबोधिक्कज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अनधिज्ञानियोंमें अमयतसम्पग्दष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायतीतरागच्छस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२८ ॥

१ सासादनसम्पग्दष्टीनां सामा योण स्पञ्जनम् । स वि १, ८

२ आभिनिबोधिक्कज्ञानिण पयक्केवल्लहानिणा सामायोनी स्पञ्जनम् । स वि १, ८

एदम्भ सुत्तसा जत्थो सुगमो, मूलोघम्हि त्रित्यरेण परविदत्तादो । तत्थ णाण
विसेसणेण विणा सामणेण परविदमिदि चे ण, सामणेण परविदे वि सा मदि सुदणाण
परुत्तणा चेष, मदि सुदणाणपरिचित्तछदुमत्थमम्मादिट्ठीणमणुत्तलभा । ओधिणाणविरोहिद
सम्मादिट्ठीणमणुत्तलभा ओधिणाणस्म ओघत्त ण जुज्जेदे चे ण, एत्थ दच्चपमाणेण अहियात्ता
भासा । ओघजमजदसम्मादिट्ठिआदिकोमणेहि ओधिणाणअसजदमम्मादिट्ठिआदिकोमणाण
सरिसत्तुत्तलभादो ओधिणाणस्स ओघत्तं जुज्जेदे चेष ।

मणपञ्जवणाणीसु पमत्तसजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग
छदुमत्था त्ति ओघ ॥ १२९ ॥

अतीद उट्टमाणकाले सच्चपदानमोघमच्चपदेहि सरिसत्तुत्तलभादो एत्थ वि ओत्त
सुज्जेदे ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघ ॥ १३० ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, मूलोघमें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका है।
शुक्रा—उस मूलोघ स्पर्शनप्ररूपणमें तो ज्ञानमार्गणारूप विरोधणके बिना सामा
न्यसे ही कथन किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सामान्यसे प्ररूपित होनेपर भी वह मतिज्ञान और धृत
ज्ञानकी ही प्ररूपणा है, क्योंकि, मतिज्ञान और धृतज्ञानसे रहित छन्दस्य सम्यग्दृष्टि जाव
नहीं पाये जाते हैं।

शुक्रा—अवधिज्ञानसे रहित सम्यग्दृष्टि जीव तो पाये जाते हैं; इसलिये अवधिज्ञानके
ओघपना नहीं घटित होना है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहा पर द्रव्यप्रमाणके अधिकार या प्रकरणका अभाव
है। ओघ असयतसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके साथ अवधिज्ञानी असपत्तसम्य
ग्दृष्टि आदिकोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंकी सदृशता पाये जानेसे अवधिज्ञानके ओघपना घटित
हो ही जाता है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसयतगुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछन्दस्य गुण
स्थान तरु प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२९ ॥

अतीत और वतमानकालमें मन पर्ययज्ञानियोंमें समवित सत्पदोंके स्पर्शनका क्षेत्र
घणित सर्वपदोंके स्पर्शनके साथ सदृशता पाई जानेसे यहा पर भी ओघपना युक्तिसंगत है।
केवलज्ञानियोंमें सयागिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३० ॥

एदस्म अत्थो सुगमो, ओघमिह परूविदत्तादो, केवलणाणमदिरिचसजोगिकेवलीणम-
भावा ओघसजोगिपरूवणाण पडि सामण्णा ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ १३१ ॥

‘एदस्स वि अत्थो सुगमो, ओघमिह परूविदत्तादो । पुध सुत्तारमो किमट्ठो ? ण,
सजोगि अजोगिकेवलीणं वट्टमाणादीदरूलेण पच्चामतीण अमाणादो एगजेगचाणु-
ववचीए ।

एव णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमतसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि
त्ति ओघं ॥ १३२ ॥

एत्थ ओघपरूवणादो ण को वि' भेदो अत्थि, विवक्सिदसजममामण्णादो । ण
च संजमसामण्णारिहिदा सजदा अत्थि, तेसिमसजदत्तप्पसगादो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १३३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, ओघमें प्ररूपण किया जा चुका है । दूसरी बात
यह भी है कि वेधलज्ञानसे रहित सयोगिकेवलियोंके अभाव होनेसे ओघवाणित सयोगि-
जिनोंकी प्ररूपणाओंके प्रति समानता है ।

केवलज्ञानियोंमें अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३१ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है ।

शुक्रा—तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगी और अयोगिकेवलियोंके वर्तमान और अतीत
कालके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे एक योगपना बन नहीं सकता था, अतः पृथक्
सूत्रारंभ किया गया है ।

इसप्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे सयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानमे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३२ ॥

यहापर ओघपररूपणासे कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि, संयमसामान्यकी विरक्षा है ।
और संयमसामान्यसे रहित संयत होते नहीं हैं । यदि संयमके-बिना भी संयमी होने लगे,
तो फिर असंयतपनेका प्रसंग प्राप्त हो जायगा ।

सयतोंमें सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है-॥ १३३ ॥

१ संयमसुवादेण संयदाना सर्वथा × × सामायोत्तं स्पष्टनम् । स ति १, ८, -

१ प्राप्तिः को वि' न प्रतो ' को छि' इति पाठः ।

पृथ सुचारंगो किमद्धो ? न, पुत्रिल्लेहि सह फोसणेण पन्चामत्तित्रमारप्पदंसण फलचादो । तेस सुगमं ।

सामाहयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणि यट्ठि ति ओघं ॥ १३४ ॥

एदं पि सुत्त सुगममिदि ण एत्थ किञ्चि वत्तच्चमत्थि ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ १३५ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूणणा खेत्तभगा । सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण-वेदण कमाय वेउच्चियपरिणदेहि चट्टण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स सखेज्जदिभागो, मारणंतियपरिणदेहि चट्टण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असखेज्जगुणो तीदि काले फोसिदो । पमत्ते तेजाहार णत्थि, लद्धीए उररि लद्धीणमभारा ।

शंका— तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंके स्पशनके साथ स्वयोंगिकेजलीके स्पर्शनसे प्रत्यासत्तिके अभावका प्रदर्शन करना ही पृथक् सूत्रका फल है ।

शेषार्थ सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसयतोंमें प्रमत्तसयत गुणस्थानमें लेकर अनि शृचिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, इसलिये यहाँपर कुछ भी वक्तव्य नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लेकरना असख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान स्वरस्थान, विहारवत्स्वरस्थान, वेदना, कथाय और वैश्विकपदपरिणत तक जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका सख्यातवां भाग, तथा मारणान्तिक पदपरिणत तक जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवां भाग और मनुष्य क्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । विशेष बात यह है कि प्रमत्तगुणस्थानमें तेजससमुदात और आहारकसमुदात, ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, लब्धिके ऊपर दूसरी लब्धियाँ नहीं होती हैं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय उवसमा खवा
ओघं ॥ १३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, ओघमिह परूविदत्तादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्टाणी ओघं ॥ १३७ ॥

चटुट्टाणां समाहारो चटुट्टाणी; सा ओघ भग्नि, जहाक्खादसंजदचटुगुण-
ट्टाणाण परूवणा ओघसरिसा त्ति जं वुत्त होदि ।

संजदासंजदा ओघं ॥ १३८ ॥

सजमाणुवादेण संजमासजम असंजमाण कध गहण होदि ? एत्तो सजमाणुवादो
ण संजममेव परूवेदि, किंतु संजम सजमासंजमसंजमं च । तेणेदेसिं पि गहणं होदि ।
जदि एवं, तो एदिस्से मग्गणाए सजमाणुवादववदेसो ण, जुज्जेदे ? ण, अव-णिचवण व
याधण्णपदमासेज्ज सजमाणुवादववदेसजुत्तीए । सेसं सुगम ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक और क्षपक जीवोंका
स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र
ओघके समान है ॥ १३७ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतु स्थानी कहते हैं । उन चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शन
प्ररूपणा ओघके समान होती है । अर्थात्, यथाख्यातसयमवाले अन्तिम चार गुणस्थानोंकी
प्ररूपणा ओघके सदृश होती है, ऐसा कहा गया समझना चाहिए ।

संयतासयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३८ ॥

शका—संयममार्गणाके अनुवादसे सयमासयम और असयम, इन दोनोंका ग्रहण
कैसे होता है ?

समाधान—संयममार्गणाके अनुवादसे न केवल सयमका ही ग्रहण होता है, किन्तु
संयम, सयमासयम और असयमका भी ग्रहण होता है ।

शका—यदि ऐसा है तो इस मार्गणाको सयमानुवादका नाम देना युक्त नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'आम्रयन' वा 'निग्घवन' के समान प्राधान्यपदका
आश्रय लेकर 'सयमानुवादसे' यह व्यपदेश करना युक्तियुक्त हो जाता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

१ × × सयतासयतानां × × सामायोक स्पर्शनम् । स ति १, ८,

केवलदंमणी केवलणाणिभगो ॥ १४५ ॥

एह पि सुगम ।

एव दमणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय नीललेस्सिय काउलेस्सियमिच्छादिद्वी
ओघं ॥ १४६ ॥

जेण सत्त्याण वेदण रुमाय मारणतिथ उत्रवाद्परिणोदेहि - किण्ह नील माउलेस्सिय
मिच्छादिद्वीहि तिसु पि मालेसु सव्वलोगो, विहारपरिणोदेहि अदीद उट्टमाणेण तिण्ह
लोमाणमसरोज्जदिभागो, तिरियलोगसस सरोज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असरज्जगुणो,
उट्टमाणकाले वेउवियपरिणोदेहि (तिण्ह लोमाणमसरोज्जदिभागो,) तिरियलयमस
सरोज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असरोज्जगुणो, अदीदे पच चोदसभागो पोसिदा, जेण
ओघत्त जुज्जेदे । विहार-वेउवियपदेसु देसणहु चोदसभागपोसणत्ताभावा ओघत्त ण वडदे
इदि पच्चउट्टाण ण कापच्च, सुत्ते पदविसेसाभावा । सव्वलोगचमेत्तेण सरिमत्तमालोपिप
ओघत्तुवत्तणीए ।

केवलदर्शनी जीर्वाका स्पर्शनक्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥
यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादमे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले मिथ्या
दृष्टि जीर्वाका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४६ ॥

धृति स्थानस्थान, वेदना सपाय, मारणातिकममुद्धात और उपपादपदपरिणत
कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीर्वाके तीनों ही कालोंमें सब लोक स्पर्श किया
है, विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीर्वाके अतीत और वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि
तीन लोकोका असत्यातवा भाग, तियग्लोकका सत्यातवा भाग, और अट्टाईजीपसे वस
स्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा वर्तमानकालमें धेक्कियिक्कपदपरिणत उक्त जीर्वाके
(सामान्यलोक आदि तीन लोकाना असत्यातवा भाग,) तियग्लोकका सत्यातवा भाग और
अट्टाईजीपसे असत्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा अतीतकालमें उक्त जीर्वाके पाच वट्टे
चोदह (५) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिये ओघपत्ता घन जाता है ।

शका—विहारवत्स्थान और धेक्कियिक्कसमुद्धात, इन दो पक्षोंमें देशान आठ वट्टे
चोदह (५) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपत्ता घटित नहीं होता है ?

समाधान—येभी शका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, सूत्रमें पदविशेषकी विवक्षाका
अभाव है । सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका सदृशताको देखते हुए ओघपत्ता घन जाता है ।

१ सत्त्याणुवादेण कृष्णलेश्याकापोतलेश्यामिथ्यादृष्टिमि सबलोक स्पृष्ट । स मि १, < फास सव्व लण
विद्वाने अट्टलेस्साण । गो जी ५४५

सासणसम्मादिट्टीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १४७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूणणा खेत्तमंगो, अल्लीणउट्टमाणत्तादो ।

पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १४८ ॥

सत्याणसत्याण विहार वेदण-रूसाय वेउच्चियपरिणदेहि क्रिण्ड णील फ़ाउलेस्सिय-
सासणेहि तीदे काले तिण्ड लोगणममखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइ-
ज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो । देवे मोत्तूण णेरइय-अपज्जत्तभवणणासिय-चाणवेत्तर-जोदि-
सिय-तिरियंतिरिन्सेसु चेप एदस्स खेत्तस्सुपलभादो तिरियलोगस्स मखेज्जदिभागत्त-
मुपण्ण । मारणतिय उपपादपरिणदेहि क्रिण्ड-णील-फ़ाउलेस्सियसामणेहि जहाकमेण देसूणा
पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा पोसिदा । णेरइएहिंतो तिरिकमेसु उप्पज्जमाणमामणे पेक्कि-
दूण एसा फोमणपरूणा कदा । देवेहिंतो एइंदिणसु मारणंतिय मेल्लमाणसामणखेत्ते गहिदे

उक्त तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
क्रिया है ? लोकरू असख्यातना भाग स्पर्श क्रिया है ॥ १४७ ॥

वर्तमानकालको व्याप्त करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच घंटे चौदह, चार घंटे चौदह और दो घंटे चौदह भाग
स्पर्श क्रिये है ॥ १४८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारयन्त्रस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत कृष्ण,
नील ओर कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असख्यातना भाग, तिर्यग्लोकना सख्यातना भाग और अर्द्धद्वीपसे असख्यात
गुणा क्षेत्र स्पर्श क्रिया है । वरुणवासी देवोंको छोडकर नारकी जपर्याप्त भवनवासी, वानयतर
और ज्योतिष्कदेव तथा तिर्यग्लोकरुतर्ती तिर्यचामें ही यह उक्त क्षेत्र पाया जानेसे तिर्यग्लोकके
सख्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रका वचन युक्तिसंगत है । माग्णातित्तसमुट्ठात और उपपादपद-
परिणत छठी पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि कृष्णलेश्यावाले जीवोंने कुछ कम पांच
घंटे चौदह (१४) भाग, नीललेश्यावाले पांचवीं पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने
कुछ कम चार घंटे चौदह (१३) भाग, ओर कापोतलेश्यावाले तीसरी पृथिवीके नारकी
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम दो घंटे चौदह (१२) भाग स्पर्श क्रिये हैं । नारकि-
योंसे तिर्यचामें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे
यह स्पर्शनप्ररूपणा की गई है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिमिळास्वसात्तयेयमाग पंच चत्तारो वो चतुर्दसभागा वा देसूणा । स. डि. १, ८,

१ क प्रती ' तिरिय ' इति पाठो नास्ति ।

पुब्विल्लखेत्तेण सह जहाकमेण वारम एकारम णउ-चोदसभागमेत्तयेत्तं किण्ण लब्भदि ति उत्ते ण लब्भदि, देवाणमप्पणो जाउअचरिमसमओ ति पुब्विल्लतेउ पम्म सुअकलेस्माण विणासाभावा । किण्ह-णील-काउलेस्सियतिरिक्ख-मणुमसामणाणमेइदिण्णु मारणतिय मेल्ल माणाण सत्त चोदसभागा उअरि लब्भति ति हेट्ठिल्लयेत्तेहि सह वारसेक्खरस णउ-चोदस भागमेत्तयेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, तिरिक्ख-मणुसउअसमसम्माइट्ठीण उअसमसम्मत्तकालम्भरे सुट्ठु सकिलिद्वान पि सज्जदासज्जदाण व किण्ह-णील-काउलेस्साओ ण होंति ति गुस्वदे सत्तरजाणाअण्ह तहाणुअदेसादो । देवेसु तिरिक्खगईए उअण्णेसु उअपादस एकारस-दम अट्ठ-चोदसभागमेत्तयेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, किण्ह-णील-काउलेस्साहि सह अच्चिउअण पच्छा ताहि सह उअवादाभावादो । ण च लेस्सा उअपादसमाणकालभाविणी मग्गणा हीह,

शुक्रा—देवोंके पक्षे त्रिद्वयोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले जीवोंके सासादन गुण स्थानसम्बन्धी क्षेत्रके ग्रहण करनेपर पूर्वांक क्षेत्रके साथ यथाक्रमसे चारह घटे चौदह (१४) भाग, ग्यारह घटे चादह (१४) भाग, और नौ घटे चौदह (१४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—ऐसी शका पर उत्तर देते हैं कि नहीं पाया जाता है, क्योंकि, देवोंके अपनी आयुके अन्तिम समय पर्यन्त अपनी पूर्ववर्ती तेज, पद्म और शुक्र लेदयाओंका विनाश नहीं होता है, इसलिए उक्त प्रकारका क्षेत्र नहीं कहा गया ।

शुक्रा—वृष्ण नील और कापोत लेदयावाले तथा एकेन्द्रियोंमें मारणात्तिकसमुद्घात करनेवाले साम्पादनसम्बन्धि त्रियच और मनुष्योंके सात घटे चौदह (१४) भाग तो ऊपर स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, इसलिए उसे अधस्तन उक्त क्षेत्रोंके साथ ग्रहण करने पर चारह घटे चौदह (१४) भाग, ग्यारह घटे चौदह (१४) भाग और नौ घटे चौदह (१४) भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसमयकावकालके भितर अत्य त सङ्घेदको प्राप्त हुए भी त्रियच और मनुष्य उपशमसम्बन्धि जीवोंके सयतासयताके समान वृष्ण, नील और कापोत लेदयाए नहीं होती हैं, इस प्रकारका एक दूसरा शुकका उपदेश है, यह बात बतलानेके लिए ऐसा उपदेश नहीं दिया है ।

शुक्रा—त्रियचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें उपपादपदका ग्यारह घटे चौदह, दस घटे चौदह और आठ घटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वृष्ण, नील और कापोत लेदयाओंके साथ रहकर पीछे उन्हींके साथ उपपाद नहीं पाया जाता है ।

निशेपार्थ—देवोंमें तीनों अशुभलेदयाए अपर्याप्तकागमें ही होती हैं । पीछे नियमसे

आधेयपुव्वुत्तरालेसु असतीए आहारचिरोहादो । तम्हा सुत्तुत्तमेण होदु, णिवज्जचादो ।

सम्मामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४९ ॥

एदस्म वट्टमाणपरूवणा खेतभगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण पेदण कसाय-

शुभलेद्या हो जाती है। अतएव वृष्ण, नील ओर कापोतेलेद्याके साथ रहनेवाले देवोंके उपपादा का अभाव घटलाया, क्योंकि, देवोंका मरण न तो अपर्याप्तकालमें ही होता है और न पूरी आयुके समाप्त हुए बिना ही। अत यह कहना युक्तिसंगत ही है कि वृष्ण, नील और कापोत लेद्याओंके साथ रहकर पीछे उपपाद नहीं होता है।

दूसरी बात यह है कि लेद्यामार्गणा उपपाद समान कालभाविनी नहीं है, क्योंकि, आधेयरूप पूर्व ओर उत्तर कालोंमें अविद्यमान लेद्याके आधारपनेका विरोध है। इसलिये सूत्रोक्त ही स्पर्शनक्षेत्रका प्रमाण होना चाहिये, क्योंकि, वही प्रमाण निर्दोष पाया जाता है।

निशेपार्थ—यद्वापर लेद्यामार्गणा उपपाद समानकाल भाविनी नहीं है, ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकारसे विवक्षित जीवके पूर्व भ्रमको छोड़नेके पश्चात् उत्तर भ्रमको ग्रहण करनेके साथ ही गति, योग, आहार आदि यथासम्भव मित्तनी ही मार्गणाए परिवर्तित हो जाती हैं, उस प्रकार लेद्यामार्गणा परिवर्तित नहीं होती है। इसका कारण यह है कि जीव जिस लेद्यासे मरण करता है उसी लेद्यासे ही उत्पन्न होता है, ऐसा एवान्त नियम है। आर इसी नियमके कारण भ्रमनाजिक देवोंके अपर्याप्तकालमें तीन अशुभ लेद्याओंका अस्तित्व माना गया है। इसी बातको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया गया है, उसका भी अभिप्राय यही है कि यदि उपपाद होनेके साथ ही लेद्याके परिवर्तनका नियम अशुभभावी होता, तो मरण करनेके पूर्वकालमें और उत्तरकालमें विवक्षित लेद्याके परिवर्तित हो जानेसे आधार आधेयपना बन जाता, अर्थात्, मरणकाल और उपपादकालरूप पूर्वोत्तरकाल आधेय बन जाते और उनमें होनेवाली लेद्या आधार बन जाती। किन्तु भव-परिवर्तनके हो जाने पर भी लेद्यापरिवर्तन होता नहीं है, इसलिये कहा गया है कि आधेयरूप पूर्व ओर उत्तर कालोंमें विवक्षित लेद्याका परिवर्तन न होनेसे आधारपना नहीं बन सकता है।

उक्त तीनों अशुभलेद्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातमा भाग स्पर्श किया है ॥ १४९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्सस्थान, घेदना, कपाय और वैत्रियिरूपदपरिणत तीनों अशुभलेद्यावाले

वेउच्ययपरिणदेहि तिलेस्मितयमम्भामिच्छादिद्वि अमजदसम्भामिद्विहि तिण्ड लोमाणमस्ये
 ज्जदिभागो, (तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागो,) अद्वाइज्जादो अमजेज्जगुणो । कुदो ?
 पहाणीरुयतिरिक्कपरासिचादो । मारणतिय-उत्पादपरिणदेहि तिण्ड-णीलेस्मितयअसजद-
 सम्भामिद्विहि चट्टण्ड लोमाणमसखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो असखेज्जगुणो, छट्ट पचम
 पुढवीहिंते माणुमेसु आगच्छमाणअसजदसम्भामिद्विणि पणदालीमजेयणलसुअधिकरभ-
 पच चत्तारिज्जुआयदखेत्तलभादो । मारणतिय उत्पादपरिणदकाउलेस्मितयअमजदसम्भामि-
 दिद्विहि तिण्ड लोमाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागो, अद्वाइज्जादो
 असखेज्जगुणो, ऱाउलेस्साए सह असखेजेसु दीपेसु पढमपुढवीए च उप्पज्जमाणमदय-
 सम्भामिद्विच्छत्रखेत्तमहाणादो ।

तेउलेस्मितसु मिच्छादिद्वि-भासणसम्भामिद्विहि केवडिय खेत्त
 पोमिद, लोगस्म असखेज्जदिभागो ॥ १५० ॥

एदस्स पट्टवगा खेत्तमगा, अछीणउट्टमाणत्तादो ।

सन्ध्यादिपद्यादृष्टि ओर असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंने असख्या
 तना भाग, (नियन्त्रोक्का सख्यातना भाग,) और अडाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
 किया है, क्योंकि, यहापर तियञ्च राशिका प्रधानता है । मारणाभिक्कममुद्धान ओर उत्पाद
 पदपरिणत दृष्ण ओर नीलेदृश्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार
 लोकोंने असख्यातना भाग ओर अडाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,
 छट्टी ओर पाचवीं पृथिव्यासे मनुष्योंमें आनेवाले जमश दृष्ण और नील लेदुयाके धारक
 असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पतालीस लाख योजनप्रमाण विष्कम्भभारता, छट्टी पृथिवीकी
 अपेक्षा पाच राजु और पाचवीं पृथिवीकी अपेक्षा चार राजु आयत (लम्बा) स्पर्शनक्षेत्र पाया
 जाता है । मारणाभिक्कसमुद्धान ओर उत्पादपदपरिणत त्रापोतलेदुयावाले असयतसम्यग्दृष्टि
 जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंने असख्यातना भाग, तिरियलोकका सख्यातना भाग
 ओर अडाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि यहापर कापोत
 लेदुयाके साथ असख्यात छीपोंमें और प्रथम पृथिव्यामें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि
 जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रका ग्रहण किया गया है ।

तेजोलेदुयानालोंमें मिच्छादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र
 स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातना भाग स्पर्श किया है ॥ १५० ॥

वतमानकालको ग्रहण करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

१ म प्रसो पीळ काड ' इति पाठ ।

२ तेजोलेदुयानिच्छादृष्टिसामान्यसम्यग्दृष्टिभिर्लाङ्कश्यासन्धियमाण अथे नव तनुदंसनाया वा देशीनाम् ।

अट्ट णव चोइसभागा वा देसूणा ॥ १५१ ॥

सत्याणपदपरिणदेहि तेउलेस्सियमिच्छादिट्टि सामणसम्मादिट्टीहि तीदे काले तिण्ह लोगणमसखेज्जदिभागो, तिरियलीगसस सखेज्जदिभागो, अट्टाडज्जादो जमसखेज्जगुणो पोमिदो । एसो 'वा' सहट्टो । विहार पेदण कमाय-वेउच्चियपरिणदेहि अट्ट-चोइस-भागा, मारणतिय-उत्तादपरिणदेहि ण टिउट्टु-चेइमभागा पोसिदा ।

सम्मामिच्छादिट्टि असंजदसम्मादिट्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं,
लोगसस असखेज्जदिभागो ॥ १५२ ॥

एदस्स परुणणा खेत्तभागा ।

अट्ट चोइसभागा वा देसूणा ॥ १५३ ॥

सत्याणपरिणदेहि दोगुणट्टाणजीविहि तिण्ह लोगणमसखेज्जदिभागो, तिरिय-

तेजोलेइयाणाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ घंटे चौदह और कुछ कम नौ घंटे चौदह भाग स्पर्श क्रिये हैं ॥ १५१ ॥

स्वस्थानम्वस्थानपदपरिणत तेजोलेइयाणाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असत्यातया भाग, तिर्यग्लोकका सत्यातया भाग, और अट्टाडज्जापसे असत्यातया क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारपेदणस्वस्थान, वेदना, उपाय और वैकथिकरूपसे परिणत जीवोंने आठ घंटे चौदह (१४) भाग, मारणातिउत्तादपरिणत उक्त जीवोंने नौ घंटे चौदह (१४) भाग और उपपाद पदपरिणत उ हों जीवोंने डेढ घंटे चौदह (१४) भाग स्पर्श क्रिये हैं ।

तेजोलेइयाणाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अययत्तसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असत्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ १५२ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ घंटे चौदह भाग स्पर्श क्रिये हैं ॥ १५३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अययत्तसम्यग्दृष्टि, इन दोनों गुणस्वस्थानवर्ती तेजोलेइयाणाले जीवोंन सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असत्यातया भाग, तिर्यग्लोकका

१ तेउस्स य सट्टाणे लोगस्स अवल्लमाममेत्त तु । अट्टचोइसभागा वा देसूणा इति विषयेण ॥ गो जी ५४६

२ एव तु समुत्थादे णव चोइसभागाय व निचूण । उववाद् पदमपद दिउट्टुचोइम य निचूण ॥ गो जी ५४७

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टपयत्तसम्यग्दृष्टिमिर्लाक्ख्यामरुपेयमाग अतो चतुर्दशभागा वा देसोना । स वि १, ८

लोगस्स सखेज्जिभागो, अट्टाइज्जादो अमतेज्जगुणो । विहार वेदण कमायवेउत्तिय मारणनियपणिदेहि देवण अट्टाचाइसमागा । उपपादपरिणदेदि दिवडु चौदसमागा देवण पोसिदा । णरि सम्मामिच्छादिट्ठिस्स माणनिय उपपादा णत्थि । मणक्कुमार माहिं दे तेउलेस्सा अत्थि चि उपपादम्म देवण तिणिग चोम्ममागा ऋण होंति ? ण, सोपम्मो साणादो सखेज्जाणि चैत्र जोयणाणि भतूय मणक्कुमार माहिंदरुप्पपारभो होदूण दिवडु रब्बुम्हि परिमत्तदीदो । तस्सुखरिमवेगते तेउलेस्सिया ऋण होंति ? ण, तस्म हेट्ठिम विमाणे चैत्र तेउलेस्सामंभरोपदेसा ।

मज्झिमसज्जेहि केवडिय सेत्त पोसिद, लोगस्स असंखेज्जिदि भागो ॥ १५४ ॥

एदस्स परूण्णा खेत्तभगा, वट्टमाणकालमत्तदा ।

दिवडु चौदसमागा वा देसूणा ॥ १५५ ॥

सख्यातवा भाग, और अट्टाईजीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारयास्वस्थान, वेदना, कषाय, वैधियिक और मारणातिरुपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम भाट बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्निध्याएट्टि जीवोंके मारणान्तिक समुदात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

शंका—सानकुमार और माहेन्द्रकल्पमें तेजोलेइया होती है, इसलिए उपपादका देशोन तीन बटे चौदह (१४) भागप्रमाण स्पशनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहा, क्योंकि, सौधर्म और इशानकल्पसे सत्पात योजन ही ऊपर जाकर सानकुमार और माहेन्द्रकल्प प्रारम्भ होकर डेढ़ राजुपर समाप्त हो जाता है ।

शंका—सानकुमार माहेन्द्रकल्पके उपरिम विमानके अन्ततक तेजोलेइयावाले जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उक्त कल्पके अधस्तन विमानोंमें ही तेजोलेइयाके होनेका उपदेश पाया जाता है ।

तेजोलेइयावाले सयत्तासयत्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका अमख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १५४ ॥

धर्तमलकालसे सम्बद्ध होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

तेजोलेइयावाले सयत्तासयत्त जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारउदिसत्थाण-वेदण-क्रमाय-वेउन्वियपरिणद्वतेउलेस्सियसंजदा-
संजदेहि तीदे काले तिण्ह लोगणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो
असखेज्जगुणो पोसिदो । मारणतियपरिणदेहि दिवड्डु-चोइसमागा पोसिद्दा । उत्रवादो णत्थि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ १५६ ॥

एद सुत्त सुगमं, ओघमिह परुव्विट्तादो ।

पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केव-
डियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५७ ॥

सुगममेदं सुत्त, खेतमिह उच्चत्थादो ।

अट्ट चोइसमागा वा देसूणा ॥ १५८ ॥

सत्थाणपरिणदपम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तीदे
काले तिण्ह लोगणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असं-

स्वस्थानस्वस्थान, विहारघत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और मैत्रियिकपदपरिणत तेजो-
लेश्यावाले सयत्तसयत्त जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा
भाग, तिर्यलोकका सख्यातवा भाग, और अट्टाईद्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र-स्पर्श किया है ।
मारणान्तिकसमुदात्तपदपरिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) डेढ घटे चौदह (-२३) भाग-स्पर्श
किये हैं । इन जीवोंके उपपादपद नहीं द्योता है ।

तेजोलेश्यावाले प्रमत्तसयत्त और अप्रमत्तसयत्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके
समान है ॥ १५६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे यह सूत्र सुगम है ।

पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयत्तसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां भाग
स्पर्श किया है ॥ १५७ ॥

क्षेत्रप्ररूपणमें कहे जानेके कारण यह सूत्र सुगम है ।

पद्मलेश्यावाले उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ घटे चौदह-भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५८ ॥

स्वस्थानपदपरिणत पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असयत्त-
सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग,

१ प्रमत्ताप्रमत्तेल्लोकस्यासरवेयमाण । स वि १, ८

२ पद्मलेश्यावादिप्यादृष्ट्यासयत्तसम्यग्दृष्ट्यन्तेल्लोकस्यासरवेयमाण, अथै - चतुर्दशमागा वा देशिना,
स वि, १, ८.

खेज्जगुणो, निहार वेदण कमाय वेउत्त्रिय मारणतियपरिणदेहि देसणङ्ग चोद्दसभागा पोसिदा ।
उववादपरिणदेहि देसणपच चोद्दसभागा पोसिदा । णररि सम्मामिच्छादिट्टिस्स मारणतिय-
उपपादा णतिय ।

सजदासजदेहि केवडिय खेत्त पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदि-
भागो ॥ १५९ ॥

एद पि मुत्त सुगम, खेत्ताणिलोगदारे उच्चत्थादो । उच्चमेव किमिदि पुणो उच्चदे ?
ण, मद्वुद्धिसिस्सम्म सभालणङ्ग तप्परूपादो ।

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६० ॥

सत्याणसत्याण-निहारदिसत्याण वेदण कमाय वेउत्त्रियपरिणदेहि पम्मलेस्सिय-
सजदासजदेहि तिण्ह लोगणममखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाज्जजादो
असखेज्जगुणो, मारणतियपरिणदेहि देसणा पच चोद्दसभागा पोसिदा ।

तिर्यग्लोकना सत्यातया भाग और अटार्द्धीपसे असत्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार
चत्सस्थान, वेदना, कपाय, धैत्रियिक और मारणात्तिपदपरिणत पञ्चलेइयावाले उक्त
जीवोंने कुछ कम आठ घंटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उक्त
जीवोंने कुछ कम पाच घंटे चादह (१५) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष यात यह है कि
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणात्तिकसमुदात ओर उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

पञ्चलेइयावाले सयतासयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असरयातया भाग स्पर्श किया है ॥ १५९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है ।

शंका—पहले कही गई यात ही पुन क्यों कही जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मद्वुद्धि शिष्योंके सभालनेके लिए पुन उसका प्ररूपण
किया गया है ।

पञ्चलेइयावाले सयतासयत जीवाने जतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ
कम पाच घंटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६० ॥

स्वस्थानसस्थान, विहारघटस्वस्थान, वेदना, कपाय और धैत्रियिकपदपरिणत पञ्च
लेइयावाले सयतासयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असत्यातया भाग, तिर्यग्लोकका
सत्यातया भाग, और अटार्द्धीपसे असत्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणात्तिकसमुदात
पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पाच घंटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

१ पम्मस्त य सड्ढासणुवादइगह इदि पदमपद । अउचोद्दसभागा वा देसूणा हति णियमेण ॥
गो जी ५४८

२ उववाद पमपद ण चादस मागय च देसूण । गो जी ५४९

३ सयतासयतलोकस्यासत्त्वयमाग पच चतुदशभागा वा दशोना । स वि १, ८

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ १६१ ॥

सुगममेद सुत्त ।

सुकलेस्सिएसु मिच्छादिद्विष्णुहडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं
खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥

एद सुत्त सुगम, खेत्ताणिओगहारे उच्चत्यादो ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६३ ॥

सत्याणपरिणदसुकलेस्सियमिच्छादिद्वि-साणणसम्मादिद्वि-सम्मामिच्छादिद्वि-असंजद-
सम्मादिद्विहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो
अमखेज्जगुणो, निहार वेदण कमाय वेउच्चिय मारणातियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा
पोसिदा । उपपादपरिणदसुकलेस्सियमिच्छादिद्विहि साणणसम्मादिद्विहि य चदुण्ह लोगा-
णमसखेज्जदिभागो, अट्टाज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो, तिरिक्कसमिच्छादिद्वि-साणण-

सुकलेश्यात्राले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १६१ ॥

यह छत्र सुगम है ।

शुकलेश्यात्रालोमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातना भाग
स्पर्श किया है ॥ १६२ ॥

यह छत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

शुकलेश्यात्राले उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह
घंटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६३ ॥

स्वस्वज्ञानपदपरिणत शुकलेश्यात्राले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातना भाग
तिर्यग्लोकका संख्यातना भाग और अडाईठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । निद्वार-
घटस्वस्वज्ञान, वेदना, कपाय, बैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह घंटे
चौदह ($\frac{14}{6}$) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपरिणत शुकलेश्यात्राले मिथ्यादृष्टि और
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातना भाग और
अडाईठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि तिर्यक् मिथ्यादृष्टि
और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुकलेश्यात्राले साथ देवोंमें उपपाद नहीं होता है । पैतालीस

१ प्रमथानमधेळोक्कस्यावरयेयमाग । ए मि १, ८

२ शुकलेश्यात्रालेपादिसयतामवतातेलोक्कस्यावरयेयमाग पद चतुदशभागा वा देवताः । स मि. १, ८.

३ छह घंटे व छिद्राणे पदमी च्चोदश हीणा ॥ गो जी ५४९.

पमत्तादिगुणद्वाराणं ओषधंभौ, त्रिसेसाभावा ।

सजोगिकेवली ओषधं ॥ १७० ॥

एह सुच सुगम, ओषध्नि परुनिदत्तादौ ।

वेदगसम्मादिद्वीसु असजदसम्मादिद्विप्पहुडि जात्र अप्पमत्तसंजदा
त्ति ओषधं ॥ १७१ ॥

एदस्स सुत्तस्स जेण अदीद बहुमाणपरुवणा मूलोषध्नि उच्चचदुगुणद्वाराण अदीद-
घट्टमाणपरुवणाए तुत्था, सेण ओषधत्त जुज्जदे ।

उवसमसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वी ओषधं ॥ १७२ ॥

बहुमाणपरुवणाए सञ्जपदाण ओषधत्त होदुष्णाम, त्रिसेसाभावा ॥ अदीद-परुवणाए
वि सत्थाणस्सतिरियलोगस्स सखेज्जदिभागमेत्तखेत्तुत्तलभादौ । विहार-वेदण-कत्ताय-वेत्तन्विय-
पदाण य देसुणट्ट चोदसभागमेत्तखेत्तुत्तलभादौ ओषधत्त जुज्जदे । किंतु मारणविय-उत्तवाद्-

'परुवणा ओषधके समान है, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

सजोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओषधके समान है ॥ १७० ॥

यह सुच सुगम है, क्योंकि, ओषधमें इसका प्ररूपण किया जा चुका है ।

वेदकमस्यग्दृष्टि जीवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें लेकर अप्रमत्तमयत
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओषधके समान है ॥ १७१ ॥

चूँकि, इस धृत्तिकी अतीत और वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा-मूलोषधमें वही गई
उक्त चारों गुणस्थानोंकी अतीत और वर्तमानकालिक प्ररूपणाके समान है, इसलिए ओषध
पना बन जाता है ।

औपगमिकसम्यग्दृष्टियोंमें असयतमस्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओषधके समान
है ॥ १७२ ॥

शुद्धा—वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणामें सर्व 'पदोंके-ओषधना भले ही रहा
भावे, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है। अतीतकालिक प्ररूपणामें भी सर्व पदोंके ओषधना
रहा भावे, क्योंकि, अतीतप्ररूपणामें भी स्वस्थानपदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका सख्यातर्था
भागमात्र प्राया जाता है। तथा, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कथाय, और वैश्रियिकपदोंका
स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भागप्रमाण पाये जानेसे ओषधपना बन जाता है।

१ शशिवशमिकस्यग्दृष्टीनां सामायितम् । स, ति १, ८

२ जीवधमिकस्यक्त्वानामसयतसम्यग्दृष्टीनां सामायितम् । स, ति १, ८

परिणदाणमोघत्त णत्थि, ओपमिह उच्च अट्ट-चोइसभागखेत्तं मोत्तूण चदुण्हं लोणाणम-
सखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तादो असखेज्जगुणमेत्तपोसणखेत्तुत्तलमा । कुदो ? मणुसगदि
मोत्तूण अण्णत्थ उत्रसमसम्मत्तेण सह मरणाणुत्तलमा ? ण एस दोसो, मारणत्तिय उत्रवादे
मोत्तूण सेसपदेहि सरिसत्तमत्थि त्ति ओघत्तुत्तचीदो ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछट्टुमत्थेहि केवडियं
खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाण त्रिहार-वेदण कसाय-वेउच्चिय-
परिणदउत्रसमसम्मादिट्टि-संजदासजदेहि तीदे काले तिण्ह लोणाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो, जट्टाज्जजादो असखेज्जगुणो पोसिदो । मारणात्तियपरिणदेहि
चदुण्हं लोणाणमसखेज्जदिभागो, जट्टाज्जजादो असंखेज्जगुणो पोमिदो, मणुसगदीए चेत्त
मारणात्तियदंसणादो । सेमसत्तगुणट्टाणाणमोघभगो ।

किन्तु मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत जीवोंके ओघपना नहीं बनता है,
क्योंकि, ओघमें कहा गया आठ वटे चोदह (४६) भागप्रमाण क्षेत्र छोडकर सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असख्यातया भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणे प्रमाणवाला स्पर्शन-
क्षेत्र पाया जाता है । और इसका कारण यह है कि मनुष्यगतिको छोडकर अन्यत्र उपशम-
सम्यक्वचके साथ मरण नहीं पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, इन
दोनों पदोंको छोडकर शेष पदोंके साथ सदृशता है, इसलिए ओघपना बन जाता है ।

सयत्तासयत्त गुणस्थानसे लेकर उपशान्तरूपायत्रीतरागछट्टुस्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असंख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ १७३ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान
स्वस्थान, विहारवस्वस्थान, वेदना, कपाय और वैकल्पिकपदपरिणत उपशमसम्यग्दृष्टि
सयत्तासयत्त जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातया भाग,
तिर्यग्लोकका सख्यातया भाग और जडाईटीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मार-
णान्तिकसमुद्धातपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातया
भाग और जडाईटीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि मनुष्य-
गतिके ही उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धात देखा जाता है । शेष सर्व गुण-
स्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १७४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७५ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७६ ॥

एदाणि तिणिं वि सुत्ताणि अगदत्थाणि, ओघमिह परुविदत्तादो । तदो एदेसिं परुणणा ण कीरदे ।

एउ सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेतं पोसिदं,
लोगस्स असखेज्जदिभागो ॥ १७७ ॥

एदस्म सुत्तस्म परुणणा खेत्तमगा, समल्लीणउट्टमाणकालवाटो ।

अट्ट चोदसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १७८ ॥

सत्थाणपरिणदेहि सण्णिमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो,

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७४ ॥

सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७५ ॥

मिध्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७६ ॥

ये उक्त तीनों ही सूत्र ओघमें प्ररूपित होनेसे अवगतार्थ हैं, अर्थात् इनका अर्थ जाना हुआ है । इसलिये इनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्तमार्गेणा समाप्त हुई ।

सनीमार्गेणके अनुवादमे सजी जीवोंमें मिध्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकाका अमख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १७७ ॥

वर्तमानकालको आश्रय करनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

सनी जीवोंने अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ घंटे चौदह भाग और सर्वाधिक स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत सक्षी मिध्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और अहाइक्षीवसे असख्यात

१ सासादनसम्यग्दृष्टिस्पर्शनक्षेत्रमिध्यादृष्टिस्पर्शनक्षेत्राणां समा पोतम् । स सि १, ८

२ सनीमार्गेण सक्षिनां चतुर्दशनिवत् । स सि १, ८

तिरियलोगस्म सखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो पोसिदो । विहार वेदण-कमाय-वेउच्चियपरिणदेहि अट्ट चोइमभागा, मारणतिय-उत्तमादपरिणदेहि सच्चलोगो पोसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछट्टुमत्था ओघं

॥ १७९ ॥

एदेसिमोघादो ण को नि^१ भेदो अत्थि, सण्णिरहिदसासणादीणमभागा ।

असण्णीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सच्चलोगो ॥ १८० ॥

सत्थाण-वेदण कमाय मार्गणतिय-उत्तमादपरिणदेहि असण्णीहि तिसु वि अट्टासु सच्चलोगो पोसिदो । विहारपरिणदेहि तिण्ह लोगाणमसखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असखेज्जगुणो तिसु वि कालेसु पोसिदो । वेउच्चियपरिणदेहि चट्टुण्हं लोगाणमसखेज्जदिभागो, मायुमखेत्तादो अमखेज्जगुणो वट्टुमाणे पोसिदो । तीदे पच चोइसभागा चि वत्तव ।

एउ सण्णिमग्गणा समत्ता ।

गुणा क्षेत्र स्पर्श क्रिया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और धैत्रियिकपदपरिणत संक्षी मिथ्यादृष्टि जीवोंने आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिरुसमुद्धात और उपपादपदपरिणत सक्षी जीवोंने सर्वलोक स्पर्श क्रिया है ।

सक्षी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुण-स्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७९ ॥

इन गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणाका ओघस्पर्शनप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है, क्योंकि, सन्नित्वसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है ।

असक्षी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श क्रिया है ? सर्वलोक स्पर्श क्रिया है ॥ १८० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक ओर उपपादपदपरिणत असक्षी जीवोंने तीनों ही कालोंमें सच्चलोक स्पर्श क्रिया है । विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग, और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र तीनों ही कालोंमें स्पर्श क्रिया है । धैत्रियिकपदपरिणत असक्षी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श क्रिया है । अतीतकालमें पाच बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिये ।

इस प्रकार सक्षीमार्गणा समाप्त हुई ।

१ प्रतियु 'कोत्थि' इति पाठ, म प्रती 'को उ' इति पाठः ।

२ असक्षिभिः सर्वलोक एगुध । स ति १, ८

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १८१ ॥

उपवादस्स रज्जुआयामो आहारणिरुद्धे ण लब्भति, तेण सव्वलोगो पोसणामानो घोघं जुज्जेदं ? ण, सरीरगहिदपढमसमए वट्टमाणजीगेहि आऊरिदसव्वलोगुवलमादो । सेस सुगम ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजटासजदा ओघ ॥ १८२ ॥

एदस्म वट्टमाणपरुणणा पेत्तममा । तीदकालपरुणण भण्णमाणे पोसणोघं हि घट्टण्ह गुणद्वानाण जहा उच्च तथा वत्तच्च । णरि सामणसम्मादिट्ठि असजदसम्मादिट्ठिहि उपवादपरिणद्विहि तिण्ह लोमाणमसपेज्जदिभागो, तिरियलोगस्म मपेज्जदिभागो, अट्टाइ-चनादो अमपेज्जगुणो पोसिदो ।

पमत्तसजदपहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडिय खेतं पोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदिभागो ॥ १८३ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८१ ॥

शुद्धा—आहारमार्गणाकी अपेक्षा कथन करनेपर उपपादपदका रात्रुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता है, इसलिए सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रके स्पर्शनका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है ?

समाधान—नहा, क्याकि, शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान जीवोंसे व्याप्त स्वलोकके पाये जानेसे ओघपना बन जाता है ।

क्षेत्र अर्थ सुगम ही है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनपरूपणा क्षेत्रके समान है । अतीतजन्मकी प्ररूपणा कहेनेपर स्पर्शनसे ओघमें अंसा कि इन चारों गुणस्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष धात यह है कि उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टि ओर असयत्सम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असख्यातया भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातया भाग ओर अलार्हंक्षीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

आहारक जीवोंमें प्रमत्तमयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेत्रली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातया भाग स्पर्श किया है ॥ १८३ ॥

१ आहाराणुवादेण आहारकानां मिथ्यादृष्ट्यादिकीणकथायां तातां सामायोनम् । स. सि १, ८.

२ सयोगिकेत्रलीनां लोकस्यासंश्लेषमागः । स. सि १, ८.

एदस्त सुत्तस्त परूणणा अदीद-वट्टमाणेहि ओपतुल्ला । णवरि सजोगकेवली
पदर-लोगपूरणपदा णत्थि ।

आहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो' ॥ १८४ ॥

कुदो ? कम्मइयकायजोगीसु सब्बेसु अणाहारित्तुवलभादो ।

अजोगिअणाहारिपरूणणड्डमुत्तरसुत्त भणदि-

णवरिविसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो' ॥ १८५ ॥

एद सुत्त सुगम ।

(एण अशरमगणा समत्ता)

एण फोसणाणुगमो त्ति सम्मत्तमणिओगहार ।

इस सूत्रकी प्ररूपणा अतीत और वर्तमान इन, दोनों कालोंकी अपेक्षा ओघप्ररूपणाके
समान है । विशेष बात यह है कि सयोगिकेवलीके प्रतर और लोरूपूरणसमुद्घात, ये दो पद
नहीं होते ह ।

अनाहारक जीवोंमें समन्वित गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र कार्मणकाय-
योगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ १८४ ॥

इसका कारण यह है कि सभी कार्मणकाययोगियोंके अनाहारकपना पाया जाता है ।
अनाहारी अयोगिजिनके स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते ह—

निशेष वात यह है कि अयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असख्यातवा भाग स्पर्श किया है ॥ १८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार स्पर्शानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ अनाहारकपु भिष्यादधिमि सर्वलोक स्पृष्टः । साहादनसम्पत्थिमिळोक्स्यासस्सपेयमाग, एकादस
अद्दुद्धमागा वा देथीना । सयोगिकेवलिनां लोकस्यासस्सपेयमाग सबळोको वा । स वि १, ८

२ अयोगिकेवलिनां लोकस्यासस्सपेयमाग । स ति १, ८

कालाणुगमो

पडिनादीर्णमुवलंभा । सो एमो इदि अण्णमिह बुद्धीए अण्णारोणं ठवणा णाम । सा दुनिहा, सम्भावामभावभेदेण । अणुहरतए अणुहरतस्स अण्णस्स बुद्धीए समारोण सम्भावद्ववणा । तच्चदिरिचा असन्भावद्ववणा । तत्थ सम्भावद्ववणा कालो णाम' पल्लविय-
कुरिय कुलिद करलिद फुलिद भवुलिद-कलकोइलपुण्णालात्रणमहुज्जोइयचिचालिहियवसतो ।
असन्भावद्ववणकालो णाम मणिभेद' गेरुअ मट्टी ठिकरादिसु वसतो चि बुद्धिबलेण ठनिदो ।
दच्चकालो दुनिहो, आगमदो णोआगमदो य । आगमदो कालपाहुडजाणगो अणुअजुचो ।
णोआगमदो दच्चकालो जाणुगसरीर भनिय तच्चदिरिचभेदेण तिनिहो । तत्थ जाणुगसरीर-
णोआगमदच्चकालो भविय-गद्वमाण समुज्झादभेदेण तिनिहो । सो नि बहुसो पुव्व पस्सिदो
चि णेह चुच्चदे । भवियणोआगमदच्चकालो भविस्सकाले कालपाहुडजाणओ जीणो । वव-
गददोणघ पचरमद्वपात पचवण्णो कुमारचक्केट्टिमसिलच्च वचणालक्खणो लोमागासपमाणो

प्रतिपादक शब्द पाये जाते हैं । 'वह यही है' इसप्रकारसे अन्य वस्तुमें बुद्धिके द्वारा अन्यका आरोपण करना स्थापना है । यह स्थापना सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारकी है । अनुकरण करेवाली वस्तुमें अनुकरण करनेवाले अथ पदार्थका बुद्धिके द्वारा समारोप करना सद्भावस्थापना है । उससे भिन्न या विपरीत असद्भावस्थापना होती है । उनमेंसे पल्लवित, अकुरित, कुलित, करलित, पुष्पित, मुकुलित, तथा फोयलके कलकल आलापसे परिपूर्ण वनच्छसे उद्योतित, धिन्नलिखित वसन्तकालको सद्भावस्थापनाफलनिक्षेप कहते हैं । मणिविशेष, गेरुक, मट्टा, ठीकरा इत्यादिकमें 'यह वसत है' इसप्रकार बुद्धिके बलसे स्थापना करनेको असद्भावस्थापनाकाल कहते हैं ।

आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यकाल दो प्रकारका है । कालविययक प्राभृतका धायक किन्तु यत्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यकाल है । धायकशरीर, भय और तद्द्रव्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यकाल तीन प्रकार हैं । उनमें धायकशरीर नोआगम द्रव्यकाल भावी, वर्तमान और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । वह भी पहले बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहापर पुन नहीं कहते हैं । भविष्यकालमें जो जीव फालप्राभृतका धायक होगा, उसे भावीनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं ।

जो दो प्रकारके गध, पाच प्रकारके रस, आठ प्रकारके स्पश और पाच प्रकारके घणसे रहित है, बुम्भकारके घनकी अधस्तन शिला या कीलके समान है, वर्तना ही जिसका

१ आ प्रतो 'परिधिवादीण', क प्रती 'ववादाण इति पाठ ।

२ अ-क प्रलो 'सम्भावद्ववणा वचसस्थानादिनाजुक्कवत्त विवादावारोपित कालो णाम' इति पाठ । अत्र सस्सत्तभावयोग कवल सद्भावस्थापनाया स्वरूपभावक विषयक प्रतिभाति, न तु मूलमर्थात् । क प्रतो सम्भाव शब्दे विषयमूलक = इति विद्वयपल्लगत । तत्र कस्सिवात्तुमानस्य पुडिजोपते । आ प्रती स संस्सत्तभावयोगो नोपल्लग्यते ।

३ प्रतियु 'मणिभेद भेदअ' इति पाठ । म प्रती 'मणिभेदः' इति पाठो नोपल्लग्यते ।

अत्यो तव्रदिरित्तणोआगमद्व्यकालो' णाम । वुत्तं च पचत्थिपाहुडे—

काले त्ति य वरएसो सन्मानपरुखओ हवइ णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धसी, असो दीहतरद्दाई' ॥ १ ॥
कालो परिणाममवो परिणामो द्व्यकालसभूओ ।
दोण्ह एस सहाओ कालो खणभगुरो णियदो' ॥ २ ॥
ण य परिणमइ सय सो ण य परिणमेइ अणमण्णेहिं ।
त्रिविहपरिणामियाणं हवइ सुहेऊ सय कालो ॥ ३ ॥
लोयायासपदेसे, एक्केत्तके जे द्विया दु एक्केत्तका ।
रयणाण रासी इन ते कालाणू मुणेयव्वा' ॥ ४ ॥

जीवसमासाए णि उच्च—

उप्पचणवविहाण अयाण जिणरोवइट्टाण ।
आणाए अहिगमेण य सदहण होइ सम्मत्त' ॥ ५ ॥

लक्षण है, और जो लोकाकाशप्रमाण है, ऐसे पदार्थको तद्ध्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं । पचास्तिकायप्राभृतमें कहा भी है—

'काल' इस प्रकारका यह नाम सत्त्वरूप निश्चयकालका प्ररूपक है, और यह निश्चयकालद्रव्य अविनाशी होता है । दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न और प्रभ्रस होनेवाला है । तथा आवली, पत्य, सागर आदिके रूपसे दीर्घकाल तक स्थायी है ॥ १ ॥

व्यवहारकाल पुद्गलोंके परिणमनसे उत्पन्न होता है, और पुद्गलादिका परिणमन द्रव्यकालके द्वारा होता है । दोनोंका ऐसा स्वभाव है । यह व्यवहारकाल क्षणभंगुर है, परन्तु निश्चयकाल नियत अर्थात् अविनाशी है ॥ २ ॥

यह कालनामक पदार्थ न तो स्वयं परिणमित होता है, और न अन्यको अन्यरूपसे परिणमाता है । किन्तु स्वतः नाना प्रकारके परिणामोंको प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका काल स्वयं सुदेतु होता है ॥ ३ ॥

लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिके समान जो एक एक रूपसे स्थित हैं, वे कालाणु जानना चाहिये ॥ ४ ॥

जीवसमासमें भी कहा है—

जिनवरके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, अथवा पच अस्तिकाय, अथवा नव पदार्थोंका आहासे और अधिगमसे श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥ ५ ॥

१ वक्कगदपणवण्णरामो वक्कददागंघ अडुकासो य । अणुइलहुगो जणुवो वट्टणलवखो य कालो त्ति ॥
पचारित गा १४, २ पचारित गा १०८ ३ पचारित गा १०७,
४ गो, जी ५८८ ५ गो जी ५६०,

नेनेति कालशब्दव्युत्पत्तेः । कालः समय जडा इत्येकोऽर्थः । समयादीणमर्थो वुच्चदे-
 अणोरण्प्रतरव्यतिक्रमकाल' समयः । चोद्दसरज्जुआगासपदेमक्रमणमेतकालेण जो
 चोद्दसरज्जुकमणस्समो परमाणू तस्स एगपरमाणुक्रमणकालो समओ णाम । अससेज्ज
 समए धेत्तण एया अपरलिया होदि । तप्पाओग्गससेज्जापरलियाहि एगो उस्सामणिस्सातो
 होदि । सत्तहि उस्सासेहि एगो ओरमणिदेो कालो होदि । सत्तहि थोरेहि लपो णाम
 कालो होदि । साद्ध-अद्धत्तीसलेहेहि णाली णाम कालो होदि । वेहि णालियाहि मुहुत्तो होदि ।

उद्दसाणां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च ।

प्रिसप्तति पुनस्तेषां मुहूर्तो ह्येव श्यते (३७७३) ॥ १० ॥

निमेषाणां सहस्राणि पञ्च भूय शत तथा ।

दश चैन निमेषां स्युर्मुहूर्ते गणिता बुधै (५११०) ॥ ११ ॥

त्रिंशन्मुहूर्तां दिवसः । मुहूर्तानां नामानि-

रीद्र इनेतश्च मैत्रश्च तन सारभटोऽपि च ।

देवो वैरोचनश्चाथो वैश्वदेवोऽभिनित्था ॥ १२ ॥

रोहणो बलनामा च त्रिनयो नैऋतोऽपि च ।

गारुणधार्यमा च स्युर्मास्य पञ्चदशो दिने (१५) ॥ १३ ॥

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिमके द्वारा कम, भय, पाय और आयुकी स्थितिया
 कल्पित या सख्यात की जाती हैं, अर्थात् कही जाती हैं, उसे काल कहते हैं' इस प्रकारकी
 काल शब्दकी व्युत्पत्ति है । काल, समय और अज्ञा, ये सब एकार्थवाची नाम हैं ।

समय आदिका अर्थ कहते हैं । एक परमाणुका दूसरे परमाणुके व्यतिक्रम करनेमें
 जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं । अर्थात्, चोदह राजु आकाशप्रदेशोंके अतिक्रमण
 मात्र कालसे जो चोदह राजु अतिक्रमण करनेमें समय परमाणु है, उसके एक परमाणु अति
 क्रमण करनेके कालका नाम समय है । असख्यात समयोंको ग्रहण करके एक आवली होती है ।
 तत्रायोग्य सख्यात आयुषियोंसे एक उभ्यास नि श्वास निष्पन्न होता है । सात उभ्यासोंसे
 एक स्तोत्रसन्निक काल निष्पन्न होता है । सात स्तोत्रोंसे एक लय नामका काल निष्पन्न
 होता है । साढ़े बहतीस लयोंसे एक नाली नामका काल निष्पन्न होता है । दो नालिकाओंसे
 एक मुहूर्त होता है ।

उन तीन हजार सान सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वालोंका एक मुहूर्त कहा जाता
 है ॥ १० ॥

त्रिंशन्निमेषां एक मुहूर्तमेव पञ्च हजार एक सौ दश (५११०) निमेष गिने हैं ॥ ११ ॥

तीस मुहूर्तोंका एक दिन अर्थात् अष्टोद्यम होता है । मुहूर्तोंके नाम इस प्रकार हैं—

१ रीद्र, २ श्वेत, ३ मैत्र, ४ सारभट, ५ वैश्य, ६ वैरोचन, ७ वैश्वदेव, ८ अभिनित्थ,

सावित्री धुर्धसउध दानको यन एन च ।
 यायुहुताशनो मारुर्नयनोऽष्टमो निशि ॥ १४ ॥
 सिद्धार्थ सिद्धसेनथ विज्ञोभो योग्य एन च ।
 पुष्पदन्त सुग धर्मो मुहूर्तोऽयोऽष्टमो मत (१५) ॥ १५ ॥
 समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्तोश्च समा सृता ।
 षष्णुहूर्ता दिन यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा ॥ १६ ॥

पंचदश दिवसाः पक्षः । दिवमाना नामानि—

नग्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च त्रियय क्रमात् ।
 देवताधद्रसूर्येन्द्रा आश्विनो धर्म एन च ॥ १७ ॥

९ रोहण, १० मल, ११ विजय, १२ नैऋत्य, १३ वारुण, १४ अयंमन् और १५ भाग्य । ये पंद्रह मुहूर्त दिनमें होते हैं ॥ १२-१३ ॥

१ सावित्र, २ धुर्य, ३ दानक, ४ यम, ५ यायु, ६ हुताशन, ७ भानु, ८ धंजयन्त, ९ सिद्धार्थ, १० सिद्धसेन, ११ विशोभ, १२ योग्य, १३ पुष्पदन्त, १४ सुगन्धर्व और १५ अरण । ये पंद्रह मुहूर्त रात्रिमें होते हैं, वेसा माना गया है ॥ १४-१५ ॥

रात्रि और दिनका समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं । हा, कभी दिनको छह मुहूर्त जाते हैं, और कभी रात्रिको उह मुहूर्त जाते हैं ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—समान दिन और रात्रिकी अपेक्षा तो पंद्रह मुहूर्तका दिन और इतने ही मुहूर्तकी एक रात्रि होती है । किन्तु सूर्यके उत्तरायणकालमें अठारह मुहूर्तका दिन और वारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । तथा सूर्यके दक्षिणायनकालमें वारह मुहूर्तका दिन और अठारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । इसलिए अनेकमें कहा है कि छह मुहूर्त कभी दिनको और कभी रात्रिको प्राप्त होते हैं । अर्थात् दिनके तीन और रात्रिके तीन, इस प्रकार छह मुहूर्त कभी दिनसे रात्रिमें और कभी रात्रिसे दिनकी गिनतीमें ध्यते जाते रहते हैं ।

पंद्रह दिनोंका एक पक्ष होता है । दिनोंके नाम इस प्रकार हैं—

नग्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, इस प्रकार प्रथमे पांच तिथिया होती हैं । इनके देयता प्रथमे अश्वि, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—नग्दा आदि तिथियोंके नाम प्रतिपदासे प्रारम्भ करना चाहिये, अर्थात् प्रतिपदाका नाम नन्दानिधि है । द्वितीयाका नाम भद्रानिधि है । तृतीयाका नाम जयानिधि है । चतुर्थीका नाम रिक्तानिधि है । पचमीका नाम पूर्णानिधि है । षु षष्ठीका नाम नग्दा तिथि है, इत्यादि । इस प्रकारसे प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीका नाम न्दानिधि है । द्वितीया रातमी और द्वादशीका नाम भद्रानिधि है । तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीका नाम जयानिधि है । चतुर्थी, नवमी और अशुद्धीका नाम रिक्तानिधि है । पचमी, द्वादमी तथा पूर्णिमाका नाम पूर्णानिधि है । इमी क्रमसे बाके देयता भी समझ लेना चाहिये ।

द्वौ पयौ मासः । ते च श्रावणादयः प्रसिद्धाः । द्वादशमासं वर्षम् । पचमिर्-
 पर्युगं । एतमुपरि नि वत्तव्यं जाय रूपो चि । एमो कालो णाम । कस्म इमो कालो ?
 जीव पोग्गलाण । कुदो ? तत्परिणामत्तादो । अधया इमो सुज्जमडलस्स परियट्ठणलम्बणस्स,
 तदुदयत्थमणेहितो दिवसादीणमुप्पत्तीए । केण कालो कीरदि ? परमट्ठकालेण । कत्थ
 कालो ? माणुसखेचेवसुज्जमडले तियालमोपराणतपज्जाएहि आरुरिदे' । जदि माणुम-
 एत्तेकसुज्जमडले कालो ट्ठिदो होदि, रुध तेण सव्वपोग्गलाणमणत्तगुणेण पदीवो च स-
 परप्पयासकारणेण जजरासि च समयभावेणात्तट्ठिदेण छद्दव्वपरिणामा पयासिज्जते ? ण
 एस दोसो, मिणिज्जमाणदव्वेहितो पुधभूदेण मागहपत्थेणेण मणजिरोहाभाया । ण
 चाणत्था, पद्देण पिउचाग । देउलोम कालाभावे तत्थ कथं कालमहारो ? ण, इहत्थेणव

दो पक्षांका एक मास होता है । ये मास श्रावण आदिकके नामसे प्रसिद्ध हैं । बारह
 मास का एक वर्ष होता है । पाच वर्षोंका एक युग होता है । इस प्रकार ऊपर ऊपर भी कल्प
 उत्पन्न होते तक करते जाना चाहिये । यह सब काल कहलाता है ।

शुक्ला—यह काल किसका है, अर्थात् कालका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीव और पुद्गलोंका, अर्थात् ये दोनों कालके स्वामी हैं, क्योंकि, काल
 तत्परिणामात्मक है ।

अथवा, परिवर्तन या प्रदक्षिणा लक्षणवाले इस सूर्यमंडलके उदय और अस्त होनेसे
 दिन और रात्रि आदिकी उत्पत्ति होती है ।

शुक्ला—काल किससे लिया जाता है, अर्थात् कालका साधन क्या है ?

समाधान—परमार्थकालसे काल, अर्थात् व्यवहारकाल, निष्पन्न होता है ।

शुक्ला—काल कहाँपर है, अर्थात् कालका अधिकरण क्या है ?

समाधान—त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे परिपूरित एकमात्र मानुषक्षेत्रसम्बन्धी
 सूर्यमंडलमें ही काल है, अर्थात् कालका आधार मनुष्यक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडल है ।

शुक्ला—यदि एकमात्र मनुष्यक्षेत्रक सूर्यमंडलमें ही काल अस्तित्व में है, तो सर्व
 पुद्गलोंसे अनन्तगुणे तथा प्रदीपके समान सपरप्रकाशनके कारणरूप, और यजरादिके
 समान समयरूपसे अस्तित्व उस कालके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये
 जाते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मापे जानेवाले द्रव्योंसे पृथग्भूत मापघ
 (देशीय) प्रस्थके समान मापनेमें कोई विरोध नही है । न इसमें कोई अनवस्था दोष ही
 आता है, क्योंकि, प्रदीपके साथ व्यभिचार आता है । अर्थात् जैसे दीपक, घट, पट आदि
 अन्य पदार्थोंका प्रकाशक होनेपर भी स्वयं अपने आपका प्रकाशक होता है, उसे प्रकाशित

कालेण तेसिं वनहारदो । जदि जीव पोग्गलपरिणामो कालो होदि, तो सव्वेसु जीव-पोग्गलेसु संठिएण कालेण होद्वय, तदो माणुसयेत्तेक्कुञ्जमंडलद्धिदो कालो ति ण घडदे ? ण एस दोसो, गिरवज्जत्तादो । किंतु ण तहा लोगे समए वा संववहारो अत्थि, अणाइणि-हणरूपेण सुज्जमडलकिरियापरिणामेसु चेव कालसववहारो पयटो । तम्हा एदस्सेव गहणं कायवं । केवचिर कालो ? अणादिओ अपज्जसिदो । कालस्स कालो किं तत्तो पुघभूदो, अणणो वा ? ण ताव पुघभूदो अत्थि, अणवट्ठाणप्पसगा । णाणणो ति, कालस्स काला-भाणप्पसगा । तदो कालस्स कालेण गिद्देशो ण घडदे ? ण, एस दोसो, ण ताव पुघ-

करनेके लिए अन्य दीपककी आवश्यकता नहीं हुआ करती है, इसी प्रकारसे कालद्रव्य भी अन्य जीव पुद्गल, आदि द्रव्योंके परिवर्तनमें निमित्तकारण होता हुआ भी अपने आपका परिवर्तन स्वयं ही करता है, उसके लिए किसी अन्य द्रव्यकी आवश्यकता नहीं पड़ती है । इसीलिए अनवस्था दोष भी नहीं आता है ।

शंका—देवलोकमें तो दिन रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहा पर कालका व्यवहार कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहाके कालसे ही देवलोकमें कालका व्यवहार होता है ।

शंका—यदि जीव और पुद्गलोंका परिणाम ही काल है, तो सभी जीव और पुद्गलोंमें कालको सांस्थित होना चाहिए । तब ऐसी दशामें ' मनुष्यक्षेत्रके एक सूर्यमंडलमें ही काल स्थित है ' यह बात घटित नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उक्त कथन निरवघ (निर्दोष) है । किंतु लोकमें या शास्त्रमें उस प्रकारसे सांयवहार नहीं है, पर अनादिनिघनस्वरूपसे सूर्यमंडलकी क्रिया-परिणामोंमें ही कालका सांयवहार प्रवृत्त है । इसलिए इसका ही ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—काल कितने समय तक रहता है ?

समाधान—काल अनादि और अपर्यवसित है । अर्थात् कालना न आदि है, न अन्त है ।

शंका—कालका परिणमन करनेवाला काल क्या उससे पृथग्भूत है, अथवा अनन्य (अपृथग्भूत) ? पृथग्भूत तो कहा नहीं जा सकता है, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग प्राप्त होगा । और न अनन्य (अपृथग्भूत) ही, क्योंकि, कालके कालका अभाव प्रसंग आता है । इसलिए कालका कालसे निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं । इसका कारण यह है कि पृथक् पक्षमें कहा गया

पक्खुचदोसो सभवदि, अणवभुगमा । णाणण्णपक्खुदोसो वि, इह्त्तादो । ण च कालस्स कालेण णिहेसो णत्थि, सुज्जमंडलतरट्टियक्काटेण तचो पुघभूदसुज्जमडलट्टियकालीणिद्दादो ।
अघवा, जघा घडस्स भागो, मिलाउचयस्स सरीरमिच्चादिसु एक्कमिह वि भेदवपहारो, तद्दा एत्थ वि एक्कमिह काले भेदेण वपहारो जुज्जे । कदिनिधो कालो ? सामण्णेण एयविहो ।
तीदो अणागदो वट्टग्गो चि तिनिहो । जघना गुणट्टिदिकालो भन्नट्टिदिकालो कम्मट्टिदि-
कालो कापट्टिदिकालो उग्गादकालो भाउट्टिदिकालो चि छव्विहो । अहवा अणेयनिहो परिणामे-
हिंत्तो पुघभूदकालामाणा, परिणामाण च आणत्तिओउलभा । जहत्थमनयोहो अणुगमो ।
कालस्स अणुगमो कालाणुगमो, तेण कालाणुगमेण । णिहेसो कहण पयासण अहिंवात्ति-
जणपमिदि एयट्टो । सो च दुनिहो, ओघेण आदेसेण चेदि । तत्थ ओघणिहेसो दव-
ट्टियणयपदुप्पायणो, सगहिदत्थादो । अदेसणिहेसो पज्जउट्टियणयपदुप्पायणो, अत्थभेदा-

दोप तो सभव है मद्धा, क्योंकि, हम कालके कालको कालसे भिन्न मानते ही नहीं है । और न अन्य या अभिन्न पक्षमें दिया गया दोप ही प्राप्त होता है, क्योंकि, यह तो हमें इष्ट ही है, (और इष्ट वस्तु उसीके लिए दोषदायी नहीं हुआ करती है) । तथा, कालका कालसे निर्देश नहीं होता हो, ऐसी भी बात नहीं है, क्योंकि, अन्य सूर्यमंडलमें स्थित कालद्वारा उससे पृथग्भूत सूर्यमंडलमें स्थित कालका निर्देश पाया जाता है । अथवा, जैसे घटना भाषा-
शिलापुत्रकका (पाषाणमूर्तिका) शरीर, इत्यादि लोकोक्तिश्रीमें एक या अभिन्नमें भी भेद व्यवहार होता है, उसी प्रकारसे यहां पर भी एक या अभिन्न कालमें भी भेदरूपसे व्यवहार
यन जाता है ।

शुका—काल कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—सामान्यसे एक प्रकारका काल होता है । अतीत, अनागत और घट-
मानकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है । अथवा, गुणस्थितिकाल, भवस्थितिकाल, कर्मस्थिति-
काल, कायास्थितिकाल, उपपादकाल और भावस्थितिकाल, इस प्रकार कालके छह भेद हैं ।
अथवा काल अनेक प्रकारका है, क्योंकि, परिणामोंसे पृथग्भूत कालका अभाव है, तथा
परिणाम अनन्त पाये जाते हैं ।

यथार्थ अवबोधको अनुगम कहते हैं, कालके अनुगमको फालानुगम कहते हैं । उस
कालानुगमसे । निर्देश, कथन, प्रकाशन, अभिव्यक्तिजनन, ये सब एककार्यक नाम हैं । वह
निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उक्त दोनों प्रकारके निर्देशोंमेंसे
ओघनिर्देश द्रव्याधिक्वनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें समस्त अर्थ संगृहीत
हैं । आदेशनिर्देश पर्यायाधिक्वनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें अर्थभेदका

वलवणादो । किमिदं दुविहो णिहेसो उसहसेणादिगणहरदेनेहि कीरदे ? ण एस दोसो, उहय-
णपमत्रलयिय द्विदसत्ताणुग्गहद्व तधोपदेसादो ।

ओघेण मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा' ॥ २ ॥

'जहा उदेसो तथा णिहेसो होदि' त्ति जाणावणद्व ओघणिहेसो रुदो । सेसगुणद्वान-
पडिसेहफलो मिच्छादिद्विणिहेसो । कालादो कालेण णिहालिज्जमाणे केवचिरं हंति त्ति
पुच्छा जिणपणत्तथमिदं सुत्तमिदि पदुप्पायणफला । वृत्तुसु णाणाजीवमिदि एगवयण-
णिहेसो जादिणिबंधणो त्ति ण दोसयरो । सव्वद्धा इदि कालमिसिद्धवहुजीवणिहेसो । कुदो ?
सव्वा अद्धा कालो जेति जीवाणमिदि न समासत्तेण वज्जद्वप्पवुत्तीए । अत्ता, सव्वद्धा
इदि कालणिहेसो । कव ? मिच्छादिद्वीण कालचणणपरिणामिणो परिणामेहितो कथंचि
अभेदमामेज्ज मिच्छादिद्वीण कालत्तारिरोहा । सव्वकाल णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिद्वीणं
वोच्छेदो णरिय त्ति भणिदं होदि ।

अत्रलभ्यन किया गया है ।

शुक्रा — वृषभसेनादि गणधरदेवोंने दो प्रकारका निर्देश किसलिप किया है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक ओर पर्यायार्थिक, इन दोनों
नयींको अत्रलभ्यन करके स्थित प्राणियोंके अनुग्रहके लिए दो प्रकारके निर्देशका उपदेश
किया है ।

ओघमे मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ २ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है' यह धातु जल-
लानेके लिए सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश किया । 'मिथ्यादृष्टि' पदका निर्देश, दोष गुणस्थानोंके
प्रतिषेधके लिए है । 'कालमे' अर्थात् कालकी अपेक्षा जीवोंके समालने पर 'कितने काल तक
होते हैं' इस प्रकारकी यह पृच्छा 'यह सूत्र जिनप्रवृत्त है' इस बातके बतानेके लिए है । जीवोंके
बहुत होनेपर भी 'नाना जीव' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश जातिनिषेधनक है,
इसलिए कोई दोषोत्पादक नहीं है । 'सर्वाद्धा' यह पद कालविशिष्ट बहुतसे जीवोंका निर्देश
करनेवाला है, क्योंकि, सर्व अद्धा अर्थात् काल जिन जीवोंके होता है, इस प्रकारसे 'घ'
समास अर्थात् बहुव्रीहिसमानके वशसे बाह्य अर्थकी प्रवृत्ति होती है । अथवा 'सर्वाद्धा'
इस पदसे कालका निर्देश जानना चाहिए, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वसे अमिश्र
परिणामीके परिणामोंसे कथंचित् अभेदका आश्रय करके मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वका कोई
भेद नहीं है । अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सर्वकाल वदुच्छेद नहीं
होता है, यह कहा गया है ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्ज
वसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स
इमो णिद्वेसो । जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

अमपमिद्वियजीवमिच्छत्त पटुच्च जणादिअपज्जवमिदमिदि मणिद, अमप
मिच्छत्तस्स आदिमज्जताभारादो । मपमिद्वियमिच्छत्तकालो अणादिओ सपज्जवमिदो ।
जहा उद्दणकुमारस्स मिच्छत्तकालो । अण्णेणो मपसिद्वियमिच्छत्तकालो सादिओ सपज्ज
वमिदो । जहा कण्हादिमिच्छत्तकालो । तन्थ जो सो सादिओ सपज्जवमिदो मिच्छत्तकालो,
तस्स इमो णिद्वेसो । सो दुविहो, जहण्णो उक्कस्सो वेदि । तत्थ जहण्णकालपरुवणाज्जाणा
वण्ह जहण्णेणोत्ति उत्त । मुहुत्तस्मतो अंतोमुहुत्त, एमो मिच्छत्तजहण्णकालणिद्वेसो । त
जधा-सम्मामिच्छादिद्वी वा अमज्जदमम्मादिद्वी वा सज्जदासज्जदो वा पमत्तमज्जदो वा
परिणामपच्चएण मिच्छत्त गदो । सच्चजहण्णमतोमुहुत्त अच्छिय पुणरति सम्मामिच्छत्त
वा असंजमेण सह मम्मत्त वा सज्जमासन्नम वा अप्पमत्तभायेण सज्जम वा पडिउण्णस

एक जीवकी अपेक्षा काल तीन प्रकार है, अनादि अनन्त, अनादि सान्त और
सादि-सान्त । इनमें जो सादि और सान्त काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है— एक
जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सादि-सान्तकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

अभयसिद्धिक जीवोंके मिथ्यात्वकी अपेक्षा 'काल अनादि अनन्त है' ऐसा कहा
गया है, क्योंकि, अभयके मिथ्यात्वका आदि, मध्य और अन्त नहीं होता है । भयसिद्धिक
जीवके मिथ्यात्वका काल एक तो अनादि और सान्त होता है, जैसा कि वर्द्धनकुमारका
मिथ्यात्वकाल । तथा एक और प्रकारका भयसिद्धिक जीवोंका मिथ्यात्वकाल है, जो कि
सादि और सान्त होता है, जैसे वृष्ण जादिका मिथ्यात्वकाल । उनमेंसे जो सादि और सान्त
मिथ्यात्वकाल होता है उसका यह निर्देश है । यह दो प्रकारका है, जघन्यकाल और उद्दण
काल । उनमेंसे जघन्यकालकी प्ररूपणा की जाती है, यह बतलानेके लिए 'जघन्यसे' ऐसा
पद कहा । मुहूर्तके भीतर जो काल होता है, उसे अन्तर्मुहूर्तकाल कहते हैं । इस पदसे मिथ्या
त्यके जघन्यत्वका निर्देश कहा गया है, जो कि इस प्रकार है—

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सयतासयत अथवा प्रसत
सयत जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वकी प्राप्त हुआ । सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह
करने, फिर भी सम्यग्मिथ्यात्वकी, अथवा असयमके साथ सम्यक्त्वकी, अथवा सयमा
सयमकी, अथवा अप्रमत्तभावके साथ सयमकी प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे प्राप्त होनेवाले जीवके

२ एहजीवपथया तपो महा। अनादिपर्यवसान अनादिपर्यवसान सादिपर्यवसानमेति । तत्र सादि
वपववसात्ता अपवसात्तुत्ता । व डि १, ६

सर्वजहणो मिच्छत्तकालो होदि । सामणसम्मदिट्ठी मिच्छत्तं किण्ण पडिअजाविदो ? ण, सामणसम्मत्तपन्थायदमिच्छादिट्ठिस्स अइतिच्चसकिलिडस्स मिच्छत्तमहा निणडिअस्स^१ सर्वजहणकालेण गुणतरसकमणाभावा । उअरुम्मकालपदुप्पायणदुमुत्तरसुत्त भणदि-

उअरुस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ठं देसूणं ॥ ४ ॥

अद्धपोग्गलपरियट्ठं नाम किं ? बुच्चदे- अणाइमसारे हिंडताणं जीवाणं दव्वपरियट्ठण सेत्तपरियट्ठणं कालपरियट्ठणं भवपरियट्ठणं भावपरियट्ठणमिदि पच परियट्ठणाणि होंति । जं त दव्वपरियट्ठणं तं दुविह, णोरुम्मपोग्गलपरियट्ठणं कम्मपोग्गलपरियट्ठणं चेदि । तत्थ णोरुम्मपोग्गलपरियट्ठं वत्तइस्सामो । त जहा- जदि वि पोग्गलाणं गमणागमण पडि

मिथ्यात्वका सर्वजघन्य काल होता है ।

शंका — सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ? अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टिको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुँचाकर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वसे पीछे आनेवाले, अतितीव्र संश्लेशवाले मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे विडम्बित मिथ्यादृष्टि जीवके सर्व जघन्यकालसे गुणान्तर-सकमणका अभाव है, अर्थात् गुणस्थान परिवर्तन नहीं हो सकता है ।

अथ मिथ्यात्वके उत्कृष्टकालके बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

एक जीवकी अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४ ॥

शंका — अर्धपुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं ?

समाधान — इस अनादि ससारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्र-परिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन, इस प्रकार पांच परिवर्तन होते रहते हैं । इसमेंसे जो द्रव्यपरिवर्तन है, वह दो प्रकारका है— नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन और कर्मपुद्गलपरिवर्तन । उनमेंसे पहले नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनको कहते हैं । वह इस प्रकार है—

यद्यपि पुद्गलोंके गमनागमनके प्रति कोई विरोध नहीं है, तो भी बुद्धिसे (किसी

१ प्रतिपु^१ निणदिअस्स^१ इति पाठ ।

२ उत्कृष्टेणार्धपुद्गलपरिवर्तों देशेन । स ति १, ८

३ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम त्रयाणां धराणां वर्णां पयासीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन पृकरिभन् समये शृङ्गीता सिध्वरुक्कवर्णैरग्धादिभिरतीव्रमन्दप्रथममावेन च यथावस्थिता त्रितीयादिषु समयेऽपि निर्जीर्णा अशृङ्गीतान्तन तत्रारानतीत्य मिथ्यकाभानतत्रारानतीत्य मध्ये शृङ्गीताश्चान्तत्रारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जावस्य नोकर्मभावमापयत्ये यावचावसत्सुदित नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । स ति २, १०, णो जी जी प्र, ५६०.

निरोहो णत्थि, तो णि बुद्धीए आदिं काद्दूग णोरुम्मपोग्गलपरियट्टे भण्णमाणे अप्पिद-
पोग्गलपरियट्टुभत्तेर सव्वपोग्गलरासिम्हि एदक्को णि परमाणू ण भुत्तो चि सव्वपोग्गलणम
गहिदसण्णा पोग्गलपरियट्टुपढमसमए कादव्या । अदीढकाले णि सव्वजीविहि सव्व
पोग्गलणमणत्तिमभागो सव्वजीवरासीदो अणत्तगुणो, सव्वजीवराभिउत्तरिमग्गमादो अणत्त
गुणहीणो पोग्गलपुजो भुत्तुज्झिदो । कुदो ? अभयसिद्धिएहि अणत्तगुणेण मिद्वाणमणत्तिम-
भागेण गुणिदादीढकालमेत्तसव्वजीवरासिसमाणभुत्तुज्झिदपोग्गलपरिमाणोत्तलभा ।

सणे णि पोग्गल एत्त एगे^१ भुत्तुत्तिदा इ जायेण ।

अमइ अणत्तवुत्तो पाग्गलपरियट्टससारे^२ ॥ १८ ॥

एदीए सुत्तगाहाए सह निरोहो किण्ण होदि चि भणिदे ण होदि, सव्वेगदेमहि
गाहत्थमव्वमइप्पुत्तोदी । ण च सव्वम्हि पयट्टमाणस्स सदस्स एगदेसपउत्ती असिद्धा,
गामो दट्ठो, पदो दट्ठो, इच्चादिसु गाम-पदाणमेगदेसपयट्टसद्दुलमादो । तेण पोग्गल

विचक्षित पुद्गलपरमाणुपुजको) आदि करके लोकमपुद्गलपरिवर्तनके कहनेपर विचक्षित
पुद्गलपरिवर्तनके भीतर सव्वपुद्गलराशिमेंसे एक भी परमाणु नहीं भोगा है, ऐसा समझकर
पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सर्व पुद्गलोंकी अग्रहीतसंज्ञा करना चाहिए । अतीतकालमें
भी सव्व जीवोंके द्वारा सर्वपुद्गलोंका अनन्तथा भाग, सर्वजीवराशिसे अनन्तगुणा, और सर्व
जीवराशिसे उपरिम वगैरे अनन्तगुणहीन प्रमाणयाला पुद्गलपुज भोगकर छोड़ा गया है ।
इसका कारण यह है कि अभयसिद्ध जायोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तथय भागसे गुणित
अतीतकालप्रमाण सर्वजीवराशिसे समान भोग करके छोड़े गये पुद्गलोंका परिमाण पाया
जाता है ।

शुद्धा—यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो—

इस पुद्गलपरिवर्तनरूप ससारमें समस्त पुद्गल इस जीवने एक एक करके पुन पुनः
अनन्तवार भोग करके छोड़े हैं ॥ १८ ॥

इस सूत्रगाथाके साथ निरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—उक्त सूत्रगाथाके साथ विरोध प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, गायामें
स्थित सर्व शब्दकी प्रवृत्ति सबके एक भागमें की गई है। तथा, सर्वके अर्थमें प्रवर्तित होनेवाले
शब्दकी एकदेशमें प्रवृत्ति होना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, ग्राम जल गया, पद (जनपद)
जल गया, इत्यादिक वाक्योंमें उक्त शब्द ग्राम और पदोंके एक देशमें प्रवृत्त हुए भी पाये
जाते हैं ।

१ श्रुति ' एगे ' इति पाठ ।

२ इति १, १ गो जी, जी प्र. ५६०

परियद्वादिसमए अगहिदसण्णिदे चेव पोग्गले तिण्हेककटरसरीरणिप्पायणट्टमभउसिद्धिइदि
अणत्तगुणे' सिद्धानमणंतिमभागमेत्ते गेण्हदि । ते च गेण्हंतो अप्पणो ओगाढेत्तच्चिदे चेव
गेण्हदि, णो पुघ खेत्तच्चिदे । वुत्तं च—

एयक्खेतोगाढ सवपदेसेहि कम्मणो जोग्ग ।

वथइ जहुत्तहेदू सादियमघ णादिय चाणि' ॥ १९ ॥

त्रिदियसमए वि अप्पिदपोग्गलपरियद्दुब्भंतरे अगहिदे चेव गेण्हदि । एउमुक्कस्तेण
अणत्तकालमगहिदे चेव गेण्हदि । जहण्णेण दो समएसु चेव अगहिदे गेण्हदि, पढम-
समयगहिदपोग्गलाण त्रिदियसमए णिज्जरिय अरुम्मभाव गदाण पुगो तदियसमए तग्गिह
चेव जीरे णोरुम्मपज्जाएण परिदाणमुत्तलभादो । तं कध णव्वदे ? णोरुम्मस्म आनाघाए
विणा उदयादिणिमेगुत्तसा । एसो पोग्गलपरियद्दुकालो तिविहो होदि, अगहिदगहणद्वा

अतएव पुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें औदारिक आदि तीन शरीरोंमेंसे किसी एक
शरीरके निष्पादन करनेके लिए जीव अभ्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तमें भाग-
मात्र अगृहीत सन्नाधाले पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है । उन पुद्गलोंको ग्रहण करता हुआ भी
अपने आश्रित क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है, किन्तु पृथक् क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको
नहीं ग्रहण करता है । वक्षा भी है—

यह जीव एक क्षेत्रमें अग्राह्यरूपसे स्थित, और कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गल
परमाणुओंको यद्योक्त (आगमोक्त मिथ्यात्व आदि) हेतुओंसे सर्व प्रदेशोंके द्वारा बांधता है ।
वे पुद्गलपरमाणु सादि भी होते हैं, अनादि भी होन्ते हैं, और उभयरूप भी होते हैं ॥ १९ ॥

द्वितीय समयमें भी विरक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण
करता है । इस प्रकार उत्पत्तिकालकी अपेक्षा अनन्तकाल तक अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण
करता है । किन्तु जघन्यकालकी अपेक्षा दो समयोंमें ही अगृहीत पुद्गलोंको ग्रहण करता है,
पहलौं, प्रथम समयमें ग्रहण किये गये पुद्गलोंकी द्वितीय समयमें निर्जरा करके अकर्मभाव
(कर्मरहित अवस्था) को प्राप्त हुए वे ही पुद्गल पुन तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्म
पर्यायसे परिणत हुए पाये जाते हैं ।

शुद्धा — प्रथम समयमें गृहीत पुद्गलपुन द्वितीय समयमें निर्जरा हो, अकर्मरूप
अवस्थाको धारण कर, पुन तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्मपर्यायसे परिणत हो जाता
है, यह कैसे जाना ?

समाधान — क्योंकि, आवाधाकालके विना ही नोकर्मके उदय आदिके निषेधोंका
उपदेश पाया जाता है ।

यद्द पुद्गलपरिवर्तनकाल तीन प्रकारका होता है—अगृहीतग्रहणकाल, गृहीतग्रहणकाल

जीवण नोकरम्मसरुण गहिदा पोगला ते विदियादिसमएसु
अरुम्मभाय गंतूण जम्हि काले ते चेर सुद्धा आगच्छति
सो कालो पोगगलपरियट्टेत्ति भण्णादि ।

०	+	+	१
+	०	१	+
१	१	०	०

आदिम समयमें जापके द्वारा नोकमग्ररूपमे जो पुद्गल ग्रहण किये थे वे ही पुद्गल द्वितीयादि
समयमें अक्षमभावको प्राप्त होकरके जिस कालमें वे ही शुद्ध पुद्गल आने लगते हैं, उक्त काल
'पुद्गलपरिवर्तन' इस नामसे कहा जाता है ।

विशेषार्थ— परिवर्तन पाच प्रकारका है—द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरि
वर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन । इनमें से द्रव्यपरिवर्तनके दो भेद हैं—नोकर्मद्रव्य
परिवर्तन और अक्षमद्रव्यपरिवर्तन । यहा नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप यनलाया गया है ।
उसी स्वरूपके समझनेके लिए मूलमें सहाष्टि दी गई है । जिसमें अगृहीतसूचक रूप (०)
पुनः मिश्रसूचक इसपद (+) और गृहीतसूचक एकका अंक (१) दिया गया है । इसका
अभिप्राय यह है कि अनन्तवार अगृहीत परमाणुपुनके ग्रहण करनेके बाद एक बार मिश्र
परमाणुपुजका ग्रहण होता है । पुन अनन्तवार उक्त क्रमसे मिश्रग्रहण करनेके बाद एक
बार गृहीत परमाणुपुजका ग्रहण होता है । इस प्रकार अनन्तवार गृहीतग्रहण हो जाने पर
नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका प्रथम भेद समाप्त होता है । यह सहाष्टि प्रथम कोष्ठक पत्तिका अर्थ
है । तत्पश्चात् अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकबार अगृहीतका ग्रहण होता है ।
और अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकबार गृहीतका ग्रहण होता है । इस
प्रकारसे अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका दूसरा भेद समाप्त
होता है । यही दूसरी कोष्ठक पत्तिका अभिप्राय है । पुन अनन्तवार मिश्रका ग्रहण हो जाने
पर एकबार गृहीतका, और अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकबार अगृहीतका
ग्रहण होता है । इस प्रकार अनन्तवार अगृहीतग्रहण होने पर नोकर्मपुद्गलका तीसरा भेद
समाप्त होता है । यही तीसरी कोष्ठक पत्तिका अर्थ है । पुन अनन्तवार गृहीतका ग्रहण होनेके
पश्चात् एकबार मिश्रका और अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकबार अगृहीतका
ग्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरि
वर्तनका चौथा भेद समाप्त होता है । इस सबके समुदायको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कहते
हैं । तथा इनमें जितना समय लगता है उसको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका काल कहते हैं ।

१ अति

०	०	१	१
+	१	०	+
१	+	+	०

इति पाठ ।

एतथ अप्पानहुग । सवत्थोना अगहिदगहणद्धा । मिस्सयगहणद्धा अणंतगुणाओ । जहण्णिपा गहिदगहणद्धा अणतगुणा । जहण्णओ पोग्गलपरियट्ठो विसेसाहिओ । उक्कस्सओ पोग्गलपरियट्ठो विमेमाहिओ । किं कारणम-
गहिदगहणद्धा थोना जादा ? बुच्चदे— जे णोरुम्मपज्जाएण परिणमिय अरुम्मभाम
गंतूण तेण अरुम्मभायेण जे थोयकालमच्छिया ते बहुवारमागच्छति, अण्णिण्डुचउच्चिहपा-
ओग्गादो । जे पुण अप्पिदपोग्गलपरियट्ठभतरे ण गहिदा ते चिरेण आगच्छति, अरुम्म-
भाम गंतूण तत्थ चिरकालावृत्ताणेण ण्णिण्डुचउच्चिहपाओग्गात्तादो । भणिद च—

सुद्धमट्ठिदिसजुत्त आसण्ण कम्मणिञ्चरामुक्क ।

पाएण एदि गहण दवमणिद्विट्ठसठाण ॥ २० ॥

अत्र उक्त अगृहीत, मिश्र और गृहीतसम्बन्धी तीनों प्रकारके कालोंका अल्पग्रहणत्व कहते हैं—सबसे कम अगृहीतग्रहणका काल है । अगृहीतग्रहणके कालसे मिश्रग्रहणका काल अनन्तगुणा है । मिश्रग्रहणके कालसे जघ य गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । जघन्य गृहीतग्रहणके कालसे जघ य पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है । जघन्य पुद्गलपरिवर्तनके कालसे उत्कृष्ट गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । और उत्कृष्ट गृहीतग्रहणके कालसे उत्कृष्ट पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है ।

शंका—अगृहीतग्रहणकालके सबसे कम होनेका कारण क्या है ?

समाधान—जो पुद्गल नोकर्मपर्यायसे परिणमित होकर पुन अकर्मभावको प्राप्त हो, उस अकर्मभावासे अल्पकाल तक रहते हैं वे पुद्गल तो बहुतवार आते हैं, क्योंकि, उनकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप चार प्रकारकी योग्यता नष्ट नहीं होती है । किन्तु जो पुद्गल विधक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर नहीं ग्रहण किये गये हैं, वे चिरकालके बाद आते हैं, क्योंकि, अकर्मभावको प्राप्त होकर उस अवस्थामें चिरकाल तक रहनेसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संस्कारका विनाश हो जाता है । कहा भी है—

जो कर्मपुद्गल पहले बद्धावस्थामें सूक्ष्म अर्थात् अल्प स्थितिसे संयुक्त थे, अतएव निर्जरा द्वारा कर्मरूप अवस्थासे मुक्त अर्थात् रहित हुए, किन्तु आसन्न अर्थात् जीवके प्रदेशोंके साथ जिनका एकक्षेत्रावगाह है, तथा जिनका आकार अनिर्दिष्ट अर्थात् कहा नहीं जा सकता है, इस प्रकारका पुद्गल द्रव्य बहुलतासे ग्रहणको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

१ अत्रागृहीतग्रहणकाल अनतोपि सर्वत्र स्तोक्त । कुत, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालमात्रनस्त्रात्पुद्गलानां बहुवारग्रहणापरत्वात् । अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये बहुवारग्रहण समवती युक्तं भवति । गो जी जी प्र ५६०

२ अल्पस्थितिसंयुक्त जीवप्रदेशेषु स्थित निर्जरया विमोचितार्मस्वरूप पुद्गलद्रव्य अनिर्दिष्टसंस्थान विवक्षितपरावर्तनप्रथमसमयोत्स्वरूपाहित जावेन प्रव्यावृत्त्या स्वीक्रियते । कुत ? द्रव्यादिचतुर्विधसंस्कारसंपत्तत्वात् । गो जी जी प्र ५६०

एदेण कारणेण अगहिदगहणद्वा थोवा जादा । एसे णोरुम्मपोग्गलपरियट्टो णाम । जघा णोरुम्मपोग्गलपरियट्टो, युत्तो, तथा चेव कम्मपोग्गलपरियट्टो' वच्चव्वो । णरि तिससेतो णोरुम्मपोग्गला आहारवग्गणादो आगच्छति । कम्मपोग्गला पुण कम्मइयग्गणादो । णोरुम्मपोग्गलाण तदियसमए चेव मिस्सयगहणद्वा होदि । कम्मपोग्गलाण पुण तिसमयाहियावलियाए । कुदो ? बघानलियादीदाण समयाहियावलियाए ओरुद्धणवसेण पचोदयाण दुसमयाहियावलियाए अरुम्मभाण गदाण कम्मपोग्गलाण तिसमयाहियाव लियाए कम्मपज्जाएण परिणमिय अण्णपोग्गलेहि सह जीने बघ गदाणमुत्तलभा । णवरि दोसु नि पोग्गलपरियट्टेसु' सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण पढमसमयतत्तमरत्थेण पढम समयआहारएण जहण्णुववादजोगेण गहिदकम्म णोकम्मदच्च धेत्तूण आदी कायच्चा । एत्थ उवउज्जती गाहा—

गहणसमयग्धि जाणो उप्पादेदि हु गुणसपच्चयदो ।

जीवेहि अणतगुण कम्म पदेसेसु सव्वेसु ॥ २१ ॥

इस सूत्रके कारणसे अगृहीतग्रहणका काल अल्प होता है ।

इस प्रकार इस सबका नाम नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन है ।

जिस प्रकारसे नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन कहा है, उसी प्रकारसे कर्मपुद्गलपरिवर्तन भी कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि नोकर्मपुद्गल आहारवर्गणासे आते हैं । किन्तु कर्मपुद्गल कर्मणवर्गणासे आते हैं । नोकर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तृतीय समयमें ही होता है । किन्तु कर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तीन समय अधिक आवली प्रमाण कालके व्यतीत होने पर होता है; क्योंकि, जो धन्वावलीसे अतीत ह, एक समय अधिक आवलीके द्वारा अपरुर्वणके वशसे जो उदयको प्राप्त हुए हैं, और दो समय अधिक आवलीके रहनेपर जो अकर्मभावको प्राप्त हुए ह, ऐसे कर्मपुद्गलोंका तीन समय अधिक आवलीके द्वारा कर्मपर्यायसे परिणमन होकर अन्य पुद्गलोंके साथ जीवमें बधको प्राप्त होना पाया जाता है । विशेष बात यह है कि दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंमें प्रथम समयमें तद्भवस्थ अर्थात् उत्पन्न हुए, तथा प्रथम समयमें ही आहारक हुए सूक्ष्म निगोदिया लक्ष्यप्राप्त जीवके द्वारा जघय उपपाद्योगसे गृहीत कर्म और नोकर्मद्रव्यको ग्रहण करके आदि ध्यात् परिवर्तनका प्रारम्भ करना चाहिए । यहा पर उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

कर्मग्रहणके समयमें जाव अपने गुणाश प्रत्ययोंसे, अर्थात् स्वयोन्य वधकारणोंसे, स्व प्रदेशोंमें उत्पाद

एव द्वापोगलपरियट्टण गदं । खेच काल भव-भावपोगलपरियट्टा भाणिद्वण
गेण्हिदव्वा । तेसिं गाहाओ—

सव्वे त्रि पोगला खल्ल एगे भुत्तुञ्जिदा इ जीवेण ।
असइ अणतखुत्तो पोगलपरियट्टससारे' ॥ २२ ॥
सव्वमहि लोमखेत्ते कमसो तण्णथि जण्ण ओच्छुण्ण ।
ओगाहणओ वहुसो हिंढते खेत्तससारे' ॥ २३ ॥
ओसपिण्णि-उत्तसपिणि समयात्रिया गिरतरा सज्जा ।
जादो मुदो य वहुसो हिंढतो कालससारे' ॥ २४ ॥
'गिरआउआ जहण्णा जान दु उवरिल्लओ दु गेउत्तो ।
जीयो मिच्छत्तवसा भवीद्वि हिंढिदो वहुसो ॥ २५ ॥

इस प्रकार द्रव्यपुद्गलपरिवर्तन समाप्त हुआ । क्षेत्र, काल, भव और भावपुद्गलपरि-
वर्तनोंको कहलाकर ग्रहण करा देना चाहिए । उन परिवर्तनोंकी (सक्षेपसे अर्थ प्रतिपादक)
गाथाएँ इस प्रकार हैं—

इस जीवने इस पुद्गलपरिवर्तनरूप ससारमें एक एक करके पुन पुन अनन्तवार
सम्पूर्ण पुद्गल भोग करने छोड़े हैं ॥ २२ ॥

इस समस्त लोकरूप क्षेत्रमें एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जिसे कि क्षेत्रपरिवर्तनरूप
ससारमें क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुतवार नाना अवगाहनाओंसे इस जीवने न हुआ
हो ॥ २३ ॥

कालपरिवर्तनरूप ससारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अघसर्पिणी
कालके सर्व समयोंकी आयुलियोंमें निरतर बहुतवार उत्पन्न हुआ और मरा है ॥ २४ ॥

अपरिवर्तनरूप ससारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव मिथ्यात्वके वशसे जघन्य
नारकायुसे लगाकर (तिर्यच, मनुष्य और) उपरिम प्रवेयक तर्ककी भवस्थितिको बहुतवार
प्राप्त हो चुका है ॥ २५ ॥

१ स ति १, १० पर तत्र 'एगे' इति स्थानं 'कमसो' इति पाठः । सर्वेऽपि पुद्गला छत्तु एकेना-
द्यानिताम जीवेन । अणतखनतहत्तमः पुद्गलपरिवर्तससारे ॥ गो जी जी प्र ५६०

२ स ति २, १० पर तत्र 'ओच्छुण्ण' इति स्थाने 'उत्तसपिणि' इति पाठः । सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न
अस्ति जतुनाच्छुण्ण । अवगाहनाणि बहुसो नभ्रमता क्षेत्रससारे ॥ गो जी जी प्र ५६०

३ स ति २, १० पर तत्र द्वितीयवचने 'समयात्रलियासु गिरवत्सेसासु' इति पाठः । उत्सर्पणावसर्पण
समयात्रलियासु गिरवत्सेसासु । जातो मृतम बहुस परिभ्रमन् कालससारे ॥ गो जी जी प्र ५६०

४ प्रतिपु गाथेय २६ तमाश्रितगाथाया पश्चादुपलभ्यते ।

५ गिरयादिजहणादिषु जात्र इ उवरिल्लया इ गेउत्तमा । मिच्छत्तससिद्धेण इ बहुसो वि सक्खिद्वी मयिदा ॥

६ ति १, १० नरकजययायुष्पापुपारिभ्रमैवेयकावसानेऽह । मिथ्यात्वसधितेन हि भवस्थितिर्माविता बहुसः ॥
गो, जी जी प्र, ५६०

ण, एकमिह समए पिंडागारेण विणट्ट घडाऋगेणुप्पण मट्टियदच्चस्सुवलभा । सच्च-
जहणमतोमुहुत्तमुत्तमसम्मत्तद्वाए अच्छिदूण मिच्छत्त गदो । तदो मिच्छत्तेण सादिओ
जादो, विणट्टो सम्मत्तपज्जाएण । तदो मिच्छत्तपज्जाएण उवड्ढुपोग्गलपरियट्ट परिपट्टिदूण
अपच्छिमे भग्गहणे मणुस्सेसु उत्तण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तात्तसत्ते ससारे तिण्णि वि कर-
णाणि कादूण पटमम्मत्त पडिवण्णो (२) । तदो वेदग्गसम्मादिट्ठी जादो (३) । अतो
मुहुत्तेण अणत्ताणुत्तधि विसजोएदूण (४) तदो दसणमोहणीय खोएदूण (५) पुणो
अप्पमत्तो जादो (६) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्स कादूण (७) तग्गसत्तेट्ठिमारहमाणो
अप्पमत्तसज्जदद्वाणे अघापत्तविसेहीए विसुज्झिदूण (८) अपुव्वरुणखग्गो (९) अण्णि-
यट्टिखग्गो (१०) सुहुमखग्गो (११) खीणरुमाओ (१२) सजोगी (१३) अनोगी
होदूण सिद्धो जादो (१४) । एवमेदेहि चोद्दमेहि अतोमुहुत्तेहि ऊणमद्दपोग्गलपरियट्ट
सादिसपज्जत्तसिद्धिमिच्छत्तकालो होदि ।

मिच्छत्त णाम पज्जाओ । सो च उप्पाद विणासलक्खणो, ट्ठिदीए अमानादो । अह
जइ तत्स ट्ठिदी वि इच्छिज्जदि, तो मिच्छत्तस्स दच्चत्त पसज्जदे; 'उप्पाद-ट्ठिदि-भग्गा हदि

समाधान— नहाँ, क्योंकि, जैसे एक ही समयमें पिण्डरूप आकारसे विनष्ट हुआ
और घटरूप आकारसे उत्पन्न हुआ मूर्त्तिकारूप द्रव्य पाया जाता है; उसी प्रकार कोई जीव
सबसे कम अतर्मुहूर्तप्रमाण उपशमसम्यक्त्वके कालमें रहकर मिध्यात्वको प्राप्त हुआ । इस
लिए मिध्यात्वसे यह आदि सहित उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्यायसे विनष्ट हुआ ।
तत्पश्चात् मिध्यात्वपर्यायसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण सत्कारमें परिधमण कर,
अंतिम भग्नके ग्रहण करने पर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुन अन्तर्मुहूर्तकाल सत्कारके
अवशेष रह जाने पर तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुन
वेदकसम्यग्दृष्टि हुआ (३) । पुन अतर्मुहूर्तकालद्वारा अनतानुबन्धा कपायका विसर्जजन
करके (४), उसके बाद दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५) पुन अप्रमत्तसयत्त हुआ (६) । फिर
प्रमत्त और अप्रमत्त, इन दोनों गुणस्थानोंसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (७), क्षपकधेणी
पर चद्रता हुआ अप्रमत्तसयत्तगुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धिसे शुद्ध होकर (८), अपूर्व
करण क्षपक (९), अनिशुत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्भराय क्षपक (११), क्षीणकपाय
वीतरागलभस्य (१२), सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली होना हुआ सिद्ध हो गया
(१४) । इस प्रकार इन चंद्रद अतर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण सादि और सात्त
मिध्यात्वका काल होता है ।

शुक्रा— मिध्यात्व नाम पर्यायका है । यह पर्याय उत्पाद और विनाश लक्षणवाला है,
क्योंकि, उत्तम स्थितिका अभाव है । और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं, तो मिध्यात्वके
द्रव्यपना प्राप्त होता है, क्योंकि, 'उत्पाद, स्थिति और भग्न, अर्थात् व्यय, ही द्रव्यका लक्षण है'

१ देवमद्दपोग्गलपरियट्टपुव्वपाग्गलपरियट्टमिदि मण्णदे । जयध

दन्विलक्षणं' इचारिसादो चि ? ण एस दोमो, जमकमेण तिलक्षणं तं दव्व; ज पुण कमेण उप्पाद-द्विदि-भगिल्ल सो पज्जाओ चि जिणोपदेसादो' । जदि एण, तो पुट्ठि-आउ-तेउ-पाऊण पि पज्जायत्त पमज्जदि चि बुत्ते, होटु तेसिं पज्जायत्त, इट्ठत्तादो । तेसु दव्व-वपहारो पि लोए दिस्सदीदि चे ण, तस्स दुणयणिउधणणेगमणयणिवधणत्तादो । सुट्ठे दव्वद्वियणए अलविदे छच्चेय दव्वणि; असुट्ठे दव्वद्वियणए अलविदे पुट्ठिआदीणि अणेयाणि दव्वणि होंति चि वजणपज्जायस्स दव्वत्तम्भुवगमादो । सुट्ठे पज्जायणए अप्पिदे पज्जायस्स उप्पाद पिणामा दो चेण लक्षणणि । असुट्ठे अस्सिदे कमेण तिण्णि पि लक्षणणि, उप्पणपज्जयस्स वज्जमिलार्थंभादिसु वजणमणिदस्म अउट्ठणुलभादो । मिच्छत्तं पि वजणपज्जाओ, तम्हा एदस्स उप्पाद-द्विदि-भंगा कमेण तिण्णि पि अनिरुद्धा चि धेत्तव्व ।

उप्पज्जति विद्यति य भाया णियमेण पज्जवणयस्सा

दव्वद्वियस्स सव्व सदा अणुप्पणमविण्ह' ॥ २९ ॥

इस प्रकार आप वचन है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जो क्रमसे (युगपत्) उत्पाद, व्यय और भौय, इन तीनों लक्षणोंवाला होता है, वह द्रव्य है । और जो क्रमसे उत्पाद, स्थिति और व्ययवाला होता है वह पर्याय है । इस प्रकारसे जिनेन्द्रका उपदेश है ।

शुद्धा—यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज और वायुके पर्यायपना प्रसक्त होता है ?

समाधान—भले ही उनके पर्यायपना प्राप्त हो जाये, क्योंकि, वह हमें इष्ट है ।

शुद्धा—किन्तु उन पृथिवी आदिकोंमें तो द्रव्यका व्यवहार लोकमें दिखाई देता है ?

समाधान—नहीं, वह व्यवहार शुद्धाशुद्धात्मक समग्र व्यवहाररूप नयद्रव्य निरुधनक नैगमनयके निमित्तमे होता है । शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करने पर उहाँ ही द्रव्य हूँ । और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करने पर पृथिवी, जल आदिक अनेक द्रव्य होते हैं, क्योंकि, व्यजनपर्यायके द्रव्यपना माना गया है । किन्तु शुद्ध पर्यायार्थिकनयकी विवक्षा करने पर पर्यायके उत्पाद और विनाश, ये दो ही लक्षण होते हैं । अशुद्ध पर्यायार्थिकनयके आश्रय करने पर क्रमसे तीनों ही पर्यायके लक्षण होते हैं, क्योंकि, वज्रशिला, स्तम्भादिमें व्यजनसाक्षिक उत्पन्न हुई पर्यायका अवस्थान पाया जाता है । मिश्रता भी व्यजनपर्याय है, इसलिए इसके उत्पाद, स्थिति और भंग, ये तीनों ही लक्षण क्रमसे अनिरुद्ध हैं, ऐसा जानना चाहिये ।

पर्यायनयके नियमसे पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और ययको भी प्राप्त होते हैं । किन्तु द्रव्यार्थिकनयके नियमसे सर्व वस्तु सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट है, अर्थात् भौव्यात्मक है ॥२९॥

१ दव्व पज्जवियय दव्वविउवा य पत्तवा णिय । उप्पाय द्विदि भंगा इदि दव्विलक्षण ण्य ॥ स त १, १२

२ उप्पाद-द्विदिभंगा विज्जेते पज्जवण पज्जाया । दव्वदि सति णियद तम्हा दव्व इवादि सव्व ॥ प्रव

सा २, ९

३ म त १, ११

इदि एमा वि गाहा ण विरुज्जदे, सुद्धदब्ब पज्जवट्टियणए अनलविय ट्टिदत्तादो ।
 ' भनिया मिट्ठी जेसि जीराण ते हवति भससिद्धा ' इदि जयणादो मच्चोसिं भव्वनीवाणं
 वोच्छेदेण होदब्ब, अण्णहा तत्तलक्खणपिरोहादो । ण च सव्वओ ण णिट्ठादि, अण्णत्थ
 तथाणुलभादो ति ? ण एस दोसो, तस्साणतियादो । सो अणतो बुच्चदि, जो सखेज्जा
 सखेज्जरासिच्चए सते अणतेण वि कालेण ण णिट्ठादि । वुत्त च—

सते वए ण णिट्ठादि कालेणाणतएण वि ।

जो रासी सो अणतो ति विणिट्ठो महेसिणा ॥ ३० ॥

जदि एव, तो अद्धपोगगलपरियट्ठादिरासीण सव्वयाणमणतत्त फिट्ठदि ति वुत्ते
 फिट्ठदु णाम, को दोसो ? तेसु अणतवहारो मुत्ताडरियत्तक्खणपसिद्धो उवलब्भदे चे ण,
 तस्म उपयारणिवधणत्तादो । त जहा— पच्चक्खेण पमाणेण उवलब्भो जो थभो सो जहा

यह उक्त गाथा भी विरोधको नहीं प्राप्त होती है, क्योंकि, इसमें किया गया व्याख्यान
 शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और शुद्ध पर्यायार्थिकनयको अवलम्बन करके स्थित है ।

शुक्रा—' जिन जीवोंकी सिद्धि भविष्यकालमें होनेवाली है, वे जीव भयसिद्ध
 कहलाते हैं', इस गचनके अनुसार सर्व भय जीवोंका व्युच्छेद होना चाहिये, अन्यथा
 भयसिद्धोंके लक्षणम विरोध आता है । तथा, जो राशि व्ययसहित होती है, वह कर्मा नष्ट
 नहीं होती है, ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र ऐसा पाया नहीं जाता; अर्थात्
 सव्यय राशिका अवस्थान देखा नहीं जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, भयसिद्ध जीवोंका प्रमाण अनन्त है ।
 और अनन्त वही कहलाता है जो सख्यात या असख्यातप्रमाण राशिके व्यय होने पर भी
 अनन्तकालमें भी नहीं समाप्त होता है । कहा भी है —

व्ययके होते रहने पर भी अन्त कालमें द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे
 महर्षियोंने ' अनन्त ' इस नामसे विनिश्चित किया है ॥ ३० ॥

शुक्रा—यदि ऐसा है, तो व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियोंका अनन्तत्व
 नष्ट हो जाता है ?

समाधान—उनका अनन्तपना नष्ट हो जाय, इसमें क्या दोष है ?

शुक्रा—किन्तु उन अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदिकोंमें अनन्तका व्यवहार सूत्र तथा
 व्याख्यानसे प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उन पुद्गलपरिवर्तन आदिमें अनन्तत्वका व्यवहार उपचार
 निषेधनक है । अथ इसी उपचारनिषेधनताको स्पष्ट करते हैं— जो पापणादिका स्तम्भ

उपयारेण पच्चक्खो चि लोए बुच्चदे, तथा ओहिणाणमिसयमुल्लघिय ट्टिदरासीओ केन-
लस्स अणंतस्स मिसओ चि उपयारेण ताओ अणताओ चि बुच्चति । तम्हा तेसु सुचाइ-
रियवक्खाणपसिद्धेण अणंतमहारेण णेद वक्खाण विरुद्धेदे । अहमा वए सते पि अक्खयो
को पि रासी अत्थि, सव्वस्स सपडिमस्सस्सेयुलभादो । एसो पि भव्वरासी अणतो, तम्हा
संते पि वए अणतेण पि कालेण ण णिट्ठिस्सड चि सिद्ध ।

सासणसम्मादिट्टी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमओ ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अणयत्थो पुव्व परुत्तिदो चि णेह बुच्चदे, पुणरुत्तमया । एत्थ
एगसमयनिरूपाणा कीरुंटे । त जथा— दो मा तिण्णि वा एगुत्तरवड्डीए जाण पलिदोवमस्स
असरोज्जदिभागमेचा वा उपसमसम्मादिट्टिणो उपसमसम्मत्तद्वाए एगो समओ अत्थि चि
सासणच पडिमणा एगसमय दिट्ठा । त्रिदियसमये सव्वे वि मिच्छत्त गदा, तिसु वि
लोएसु सासणाणमभात्रो जादो चि लद्धो एगसमओ ।

प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध है, वह जिस प्रकार उपचारसे 'प्रत्यक्ष हे' ऐसा लोन्में
कहा जाता है, उसी प्रकारसे अधिज्ञानके विषयका उद्घनन करके जो राशिया स्थित हैं, वे
सब अनन्त प्रमाणवाले केवलज्ञानके विषय हैं, इसलिए उपचारसे 'अनन्त ह' इस प्रकारसे
कही जाती हैं । अतएव सूत्र ओर आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध अनन्तके व्यवहारसे यह
व्याख्यान विरोधको प्राप्त नहीं होता है । श्रवण, व्ययने होते रहने पर भी सदा अक्षय रहने-
वाली कोई राशि है जो कि क्षय होनेवाली सभी राशियोंके प्रतिपक्षके समान पाई जाती है ।

इसी प्रकार यह भव्यराशि भी अनन्त है, इसलिए व्ययके होते रहनेपर भी अनन्त
कालद्वारा भी यह नहीं समाप्त होगी, यह बात सिद्ध हुई ।

मामादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
जघन्यसे एक समय तक होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अर्थयवार्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए पुनरुक्त दोषके भयसे यहां
पर नहीं कहने हैं । अथ यहा पर एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकारसे है—
दो अथवा तीन, इस प्रकार एक अधिक बुद्धिसे उठते हुए पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र
उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्यके कालमें एक समयमात्र काल अवशिष्ट रह जाने
पर एक साथ सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए एक समयमें दिखाई दिये । दूसरे समयमें
सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये । उस समय तीनों ही लोन्में सासादनसम्यग्दृष्टियोंका
अभाव हो गया । इस प्रकार एक समयप्रमाण सासादनगुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा
काल प्राप्त हुआ ।

केचियं कालं लभामो चि इच्छागुणिदफलम्हि पमाणेणोपट्टिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो
सासणकालो होदि चि धेत्तव्व । जदि वि एत्थ सुत्त णत्थि, तो वि एदं वक्खणं सुत्त
व सद्देदव्व ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ' ॥ ७ ॥

एदस्मत्थो- एक्को उपसमसम्मदिट्ठी उपसमसम्मत्तद्वाए एगममओ अत्थि चि
सामणं गदो । जदि उपसमसम्मत्तद्वा महती होदि, तो जो दोसो ? ण, सासणगुणद्वाए
बहुत्तप्पसगा । जेत्थियाए उपसमसम्मत्तद्वाए सेसाए जीवो सामण पडिउज्जदि, तेत्थिओ
चेव सामणगुणकालो होदि चि आइरियपरपरागदुअदेमा । बुत्त च-

उवमसम्मत्तद्वा जत्थियेत्ता इ होइ असिद्धा ।

पडिउज्जता साण तत्थियेत्ता य तस्सद्वा ॥ ३१ ॥

भागमात्र उपक्रमण चारोंका कितना काल प्राप्त होगा ? इस प्रकार इच्छाराशिसे गुणित फल-
राशिसे प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर अपनी राशिसे असत्यातगुणा सासादनगुणस्थानका
काल होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए । यद्यपि इस विषयमें कोई सूत्रप्रमाण उपलब्ध
नहीं है, तो भी यह व्याख्यान सूत्रके समान श्रद्धान करने योग्य है ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्यकाल एक समय है ॥ ७ ॥

अथ इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके
कालमें एक समय अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ ।

शुद्धा— यदि उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक हो, तो क्या दोष है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक माननेपर सासादन
गुणस्थानकालके भी बहुतवरा प्रसंग प्राप्त होता है, अर्थात् सासादनगुणस्थानका काल बहुत
मानना पड़ेगा । इसका कारण यह है कि जितने उपशमसम्यक्त्वकालके शेष रहनेपर जीव
सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, उतना ही सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा
आचार्य परम्परागत उपदेश है । वहा भी है—

जितने प्रमाण उपशमसम्यक्त्वका काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादन
गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी उतने प्रमाण ही उसका, अर्थात् सासादनगुण-
स्थानका, काल होता है ॥ ३१ ॥

एगसमयं सासाणगुणेण सह द्विदो, विदियसमए मिच्छत गदो । एउ मासणगुणम्म लद्धो एगममओ ।

उक्कस्सेण छ आवलिआओ' ॥ ८ ॥

एदस्म अत्थो बुच्चदे- एकको उपसमसम्माइट्ठी उपसमसम्मत्तदाए छ आव लियाओ अत्थि चि सामण गदो । तत्थ सासणगुणम्मिह छ आपलियाओ अत्थिदूण मिच्छत गदो । कुदो ? साहियासु छसु आपलियासु सेसासु सासणगुणपडिवज्जणामाया । पुत्त च--

उपसमसम्मत्तदा जइ छावलिआ हनेज्ज अपसिट्ठा ।

तो सासण पवज्जइ णो हेट्ठकट्ठकालेसु ॥ ३२ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो हांति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९ ॥

इम ऊपर बतलाए हुए प्रकारसे उक्त जीव एक समय मात्र सासादनगुणस्थानके साथ, अर्थात् उस गुणस्थानमें, दिखाइ दिया, और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया । इस प्रकार सासादनगुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समयप्रमाण उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल छइ आपलीप्रमाण है ॥८॥

अत्र इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छइ आवलियोंके श्रेय रद्दनेपर सासादनगुणस्थानमें गया । उस सासादनगुणस्थानमें छइ आवली रह करके मिथ्यात्वमें गया, क्योंकि, साधिक छइ आवलियोंके श्रेय रद्दनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेका अभाव है । कहा भी है—

यदि उपशमसम्यक्त्वका काल छइ आवलीप्रमाण अवशिष्ट होवे, तो जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है । यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे, तो सासादनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

(इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा छइ आवलीप्रमाण ही सासादनगुणस्थानका उत्कृष्टकाल है ।)

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अयन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ९ ॥

१ एकमेव वडावलिआ । स वि १, ८

२ उपसमसम्मत्तदा आवलिनेतो इ समयनेतो चि । अवाटिडे आसाणो अणअणदददयदो होदि ॥
कवि १००

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टेनानाजीवापेक्षया अयनान्तर्मुहूर्त । स वि. १, ८

एदस्स अत्थो— अट्टाणीसमतकम्मियमिच्छादिद्वी वेदगसम्मत्तसहिदअसजद संजदा-
संजद पमत्तसंजदा सत्तट्ट जणा ना, आनलियाए असखेज्जदिभागमेत्ता वा, पलिदोवमस्स
असखेज्जदिभागमेत्ता वा परिणामपन्चएण सम्मामिच्छत्त गदा । तत्थ सब्बलहुमंतोमुहुत्त-
मच्छिट्ठण मिच्छत्त वा असजमेण सह सम्मत्त वा पडिवण्णा । णट्ट सम्मामिच्छत्तं । एवं
सम्मामिच्छत्तस्म अंतोमुहुत्तकालो सिद्धो । अप्पमत्तसजदो किमिदि सम्मामिच्छत्त ण
णीदो ? ण, तस्स सक्खिस-निमोहीहि सह पमत्तापुव्वगुणे भोत्तूण गुणतरगमणाभावा ।
मदस्स त्रि असजदसम्मादिद्विरित्तिगुणंतरगमणाभावा । पच्छा सम्मामिच्छादिद्वी संजमं
सजमासंजम वा किण्ण णीदो ? ण, तस्स मिच्छत्त सम्मत्तसहिदासंजदगुणे भोत्तूण गुणतर-
गमणाभावा । किं कारणं ? सहाजदो चेय । ण हि सहाजो परपज्जणिओगारुहो, विरोहा ।

“ ”

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले
मिथ्यादृष्टि, अथवा चेद्रूसम्यक्त्वसहित असयत्तसम्यग्दृष्टि, सयत्तासयत्त तथा प्रमत्तसयत्त
गुणस्थानवाले सात आठ जन, अथवा आचलीके असत्त्यातर्षे भागमात्र जीव, अथवा पत्थो-
पमके असत्त्यातर्षे भागमात्र जीव, परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त
हुए । चहापर सबसे कम अतर्मुहूर्तकालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको, अथवा असयमके
साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुए । तब सम्यग्मिथ्यात्व नष्ट हो गया । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका
अतर्मुहूर्तप्रमाण काल सिद्ध हुआ ।

शंका— यहा पर अप्रमत्तसयत्त जीव, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त
कराया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यदि अप्रमत्तसयत्त जीवके सङ्घे शक्ती वृद्धि हो, तो प्रमत्त-
सयत्तगुणस्थानको, और यदि विशुद्धिकी वृद्धि हो तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोड़कर दूसरे
गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है । यदि अप्रमत्तसयत्त जीवका मरण भी हो, तो असयत्तसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमन नहीं होता है ।

शंका— सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे सयमको अथवा संयमा
सयमको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वसहित मिथ्या-
दृष्टिगुणस्थानको, अथवा सम्यक्त्वसहित असयत्तगुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें
गमनका अभाव है ।

शंका— अन्य गुणस्थानोंमें नहीं जानेका क्या कारण है ?

समाधान— ऐसा स्वभाव ही है । और स्वभाव दूसरेके प्रश्नके योग्य नहीं हुआ
करता है, क्योंकि, उसमें विरोध आता है ।

अदीदानागद ऋतुमाणकालेषु अमजदसम्मादिद्विरोच्छेदो णरिय । कुदो ? सहापदो ।
 एसो सहाओ अमजदसम्मादिद्विरामिस्मत्थि चि कध णच्छेदे ? सव्वद्वा णयणादो । रुध
 पम्सो चेत् साहणत्त पडिणज्जे ? ण, उभयपम्सत्तिसद्विजुत्तस्स जिणयणस्स एकस्स
 नि पम्ससाहणत्ते निरोहाभासा । दिवापरो सुओ उदेदि चि वयणस्सेत्त क्रियानिसेसणत्तादो
 सव्वदमिदि पापेदि ? ण, तथा विक्कसाभासा । पुणो कधमेत्थत्तणनिग्गमा ? उच्छेदे-
 सव्वा अद्वा जेमि ते सव्वद्वा, सत्तकालत्तणनिणो चि युत्त होदि ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

त कध ? अद्वापीसमवक्रमियमिच्छादिद्वी वा सम्मामिच्छादिद्वी वा सज्जासपदो
 वा पम्सत्तसज्जदो वा पुव्व सात्तजमम्मत्ते ऋत्तार परियद्वतो अच्छिदो असज्जो जाणे ।

इसका कारण यह है कि अतीत अनागत और घतमान, इन तीनों ही कालों
 असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका व्युच्छेद नहीं है ।

शुक्रा—त्रिकालमें भी असयतसम्यग्दृष्टि राशिका व्युच्छेद क्यों नहीं होता ?
 समाधान—ऐसा स्वभाव ही है ।

शुक्रा—असयतसम्यग्दृष्टि राशिका ऐसा स्वभाव है, यह कैसे जाना ?

समाधान—सूत्र पठित 'सर्वाद्वा' अर्थात् सर्वकाल रहते हैं, इस वचनसे जाना ।

शुक्रा—विद्यार्थ्य पक्ष ही हेतुपनेको केने प्राप्त हो जायगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उभय पक्षके अतिशय युक्त अर्थात्, उभयपक्षातीत, एक
 भी जिनवचनके पक्ष और साधनसे होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शुक्रा—'दिवाकर स्वत उदित होता है' इस वचनके समान क्रियानिशेषण होनेसे
 'सत्तज्ज' ऐसा पाठ होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है ।

शुक्रा—तो यद्वा पर तिस प्रकारको निश्चय है ?

समाधान—यह विवक्षा इस प्रकारकी है—सब काल जिन जीवोंके होता है, वे
 सव्वद्वा कहलाते हैं, अर्थात् 'सव्वकालसम्पन्नी जीव' यह 'सर्वाद्वा' पदका अर्थ है ।

एक जीवकी अपेक्षा असयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१४॥

शुक्रा—यह काल कैसे समभव है ?

समाधान—जिसने पहले असयतसहित सम्यक्त्वमें बहुतवार परिवर्तन
 किया है, ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अद्वाईस प्रवृत्तियोंकी मत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव,
 अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा सयनासयत, अथवा प्रमत्तसयत जीव असयतसम्यग्दृष्टि जीव ।

सञ्चलहुमतोमुहुत्तद्धमन्डिय मिञ्छत्त वा सम्मामिञ्छत्त वा संजमासंजमं वा अप्पमत्त-
भायेण सजम वा पडिवण्णो । उपरिमगुणट्टाणेहितो सक्किलेसेण जे असंजदसम्मत्त पडि-
वण्णा, ते अविणट्टेण तेण सक्किलेसेण सह मिञ्छत्त सम्मामिञ्छत्त वा णेदव्वा । जे हेड्डिम-
गुणट्टाणेहितो विमोहीए सामंजमं सम्मत्त पडिवण्णा, ते ताए चेय निसोहीए अविणट्टाए
सह सजमासजम अप्पमत्तभायेण सजमं वा णेदव्वा, अण्णहा जहण्णकालाणुपवत्तीदो ।

उक्कस्सेण तेतीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ १५ ॥

त कय ? एकको पमत्तो अप्पमत्तो वा चट्ठण्हमुत्तसामगाणभेत्तकरो वा समउण-
तेचीमसागरोत्तमाउट्टिदिएसु अणुत्तरपिमाणवासियदेवेषु उपरण्णो । सासजमसम्मत्तस्स
आदी जादो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुमेसु उपरण्णो । तत्थ असंजदसम्मादिट्ठी
होदूण ताए ट्ठिदो जाय अतोमुहुत्तमेत्ताअउ तेस ति । तदो अप्पमत्तभायेण सजमं पडि-
वण्णो (१) । तदो पमत्तापमत्तपरानत्तमहस्स कादूण (२) सजमेडिपाओगगनिसोहीए
निसुद्धो अप्पमत्तो जादो (३) । अपुव्वसजगो (४) अणियट्टिसजगो (५) सुद्धम-
सजगो (६) खीणकमाओ (७) सजोगी (८) अजोगी (९) होदूण सिद्धो जादो ।

फिर वह सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मिथ्यात्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा
सयमासयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ सयमको प्राप्त हुआ । ऊपरके गुणस्थानोंसे
सज्जेशके साथ जो असयतसम्पत्त्वको प्राप्त हुए हैं वे जीव उसी अधिनष्टसज्जेशके साथ
मिथ्यात्व अथवा सम्पग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराना चाहिए । जो अधस्तन गुणस्थानोंमें विशुद्धिके
साथ असयमसहित सम्पत्त्वको प्राप्त हुए हैं, वे जीव उसी अधिनष्टविशुद्धिके साथ सयमा-
सयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ सयमको ले जाना चाहिए, अन्यथा असयतसम्पत्त्वका
जघन्य काल नहीं बन सकता है ।

असयतसम्पत्त्वदृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल सातिरेक तेतीस सागरोपम है ॥ १५ ॥

शंका—यह सातिरेक तेतीस सागरोपमकाल कैसे समझ है ?

समाधान—एक प्रमत्तसयत, अथवा अप्रमत्तसयत, अथवा चारों उपशामकोंमेंसे
कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुर्मकी स्थितिवाले अनुत्तर-
विमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ, और इस प्रकार असयमसहित सम्पत्त्वकी आदि हुई ।
इसके पश्चात् वहामे च्युत होकर पूर्वोक्तिरूपकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहपर वह
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुके शेष रह जानेका असयतसम्पत्त्वदृष्टि होकर रहा । तत्पश्चात् अप्रमत्त
भावसे सयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें सहस्रों परिवर्तन
करके (२), क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिन विशुद्ध हो, अप्रमत्तसयत हुआ (३) । पुनः
अपूर्वकरणक्षपक (४), अनिर्गृह्यकरणक्षपक (५), सूक्ष्मसात्पगायक्षपक (६), क्षीणकपाय-
घीतरागउन्नस्थ (७), सयोगिकेजली (८), और अयोगिकेजली (९) होकरके निश्च हो गया ।

१ उत्पन्न यथाशक्तिसागरोपमाले सातिरेकाले । स ति १, ८.

एदेहि णपहि अतोमुहुचेहि ऊणपुव्वकोडीए अदिरिचाणि समऊणतेत्तीससागरोम्भाणि असजदसम्मादिट्ठिस्स उन्नरुसकालो होदि । किमट्ठ समऊणतेत्तीससागरोपमाउठ्ठिदिएसु देवेसुप्पादिदो ? ण, अण्णहा असंजदद्वाए दीहचाणुत्तमा । कुदो ? जिदि तेत्तीससागरोपमाउठ्ठिदिएसु देवेसु उप्पादिच्चदि, तो त्तासपुव्वत्तापग्गेमे आउए णिच्छण्ण सत्तम पडि-वज्जति । जो पुण समऊणतेत्तीससागरोपमाउठ्ठिदिएसु देवेसुत्तजिय मणुसेसु उवरण्णो, सो अतोमुहुत्तणपुत्तरोडिमसजमेण सह जच्छिय पुणो णिच्छण्ण सजदो होदि, तेण समऊणतेत्तीससागरोपमाउठ्ठिदिएसु देवेसुप्पादिदो ।

संजदासजदा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च सब्बद्धा ॥ १६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुग्गो, असजदसम्मादिट्ठिम्हि परुत्तिदत्तादो ।

इन नो अतमुहुत्तोसे कम पूर्वकोटि कागसे अतिरिक्त तेतीस सागरोपम असयतसम्यग्दष्टिका उत्कृष्ट काल होता है ।

ज्ञाना — ऊपर असयतसम्यग्दष्टि गुणस्वानका उत्कृष्ट काल गतलाते हुए एक जीवको एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें ही किसलिए उत्पन्न कराया गया है ?

समाधान — नहीं, अर्थात् एक समय कम तेतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें यदि उत्पन्न न कराया जाय तो, असयतसम्यग्दष्टि गुणस्वानके कालमें दीर्घता नहीं पाई जा सकती है, क्योंकि, यदि पूरे तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराया जायगा तो, षषपृथक्त्वप्रमाण आयुके अत्रोप रद्दने पर निश्चयसे वह समयको प्राप्त हो जायगा । किंतु जो एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होगा, वह अतमुहुत्त कम पूर्वकोटि प्रमाणकाल असयमके साथ रह कर पुनः निश्चयसे सयत होगा । इसलिए, अर्थात्, असयतसम्यक्त्वके कालकी दीर्घता यतानके लिए, एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न कराया गया है ।

सयतासयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, असयतसम्यग्दष्टिगुणस्वानके कालमें उसका प्ररूपण किया जा चुका है ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेणंतोमुहुत्तं ॥ १७ ॥

त कथ ? एक्को अट्टावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी पमत्तसंजदो वा पुत्तं पि बहुमो सजमासजमगुणद्वारे परियट्ठिदो परिणामपच्चएण सजमासजम पडिवणो । सच्चलहुमतोमुहुत्तद्वमन्धिदूण पमत्तसजदचरो मिच्छत्त वा सम्मामिच्छत्त वा अमजदमम्मत्त वा पडिवणो । पच्छाकदमिच्छत्ता सासजमसम्मत्ता च अप्पमत्तभावेण सजम पडिवणो । कुदो ? अण्णाहा सजदासजदद्वारे जहण्णात्ताणुत्तरीए । किमद्दु सम्मामिच्छादिट्ठी सजमासजम गुण ण, पीदो ? ण, तस्स देसविरदिपज्जाएण परिणमणत्तरीए असभया । वुत्त च—

ण य मरइ पेण संजममुद्दे तह देससजम वापि ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ण उ मरणत्त समुग्घाओ' ॥ ३३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा सयतासंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७ ॥

यह काल इस प्रकार सभय है— जिसने पहले भी बहुतवार सयमासयम गुणस्थानमें परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्या दृष्टि, अथवा असयतसम्यग्दृष्टि अथवा प्रमत्तसयत जीव पुन परिणामोंके निमित्तसे सयमासयम गुणस्थानको प्राप्त हुआ । वहापर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसयतचर है, अर्थात् प्रमत्तसयतगुणस्थानसे सयतासयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ है, तो मिथ्यात्तको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्तको, अथवा असयतसम्यग्त्तको प्राप्त हुआ । अथवा, यदि वे पश्चात्कृत मिथ्यात्त या पश्चात्कृत असयमसम्यग्त्तकाले हैं, अर्थात् सयतासयत होनेके पूर्व मिथ्यादृष्टि या असयतसम्यग्दृष्टि रहे हैं, तो अप्रमत्तभावके साथ सयमको प्राप्त हुए, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो सयतासंयत गुणस्थानका जघन्य काल नहीं बन सकता ।

शुका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सयमासयम गुणस्थानको किसलिप नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके देशविरातिरूप पर्यायसे परिणामनकी शक्तिका होना असंभव है । कहा भी है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरता है, न संयमको प्राप्त होता है, न देशसंयमको भी प्राप्त होता है । तथा उसके मारणान्तकसमुद्घात भी नहीं होता है ॥ ३३ ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स सि १, ८,

२ सो संजम ण गिण्णदि देसजम वा ण बंधदे आउ । सम्मं वा मिच्छं वा पडिवग्गिय मरदि गियमेण ॥ सम्मत्तमिच्छपरिणामेद्दु जहि आउग पुत्ता नद्ध । तदि मरणं मरणत्तसमुग्घादो वि य ण भिस्सग्गि ॥ गो जी २३ २४

उमकस्सेण पुव्वकोडी देस्सा' ॥ १८ ॥

त कथं ? एकस्मिं तिरिस्सो मणुस्सो वा अट्टाणीससतरुम्मिगो मिच्छाड्ढी सण्णि पचिंदियतिरिक्खसमुच्छिमपज्जत्तएसु मच्छ क्खत्तम मट्टकादिसु उमण्णो । मव्वलहुएण अतोमुट्टत्तकालेण सव्वाहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो जादो (१) । विस्सतो (२) विसुद्धा (३) होदूण सजमामनम पड्डिण्णो । पुव्वकोडिकाल मंजमासजममणुपालिदूण मदो सोवम्मदि-आरणच्चुटतेसु देवेषु उमण्णो । णट्ठो सजमामंजमो । एवमादिल्लेहि तीहि अतोमुट्टत्तेहि ऊगा पुव्वकोडी सजमामजमकालो होदि ।

पमत्त-अपमत्तसंजदा केवचिर कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वदा' ॥ १९ ॥

जेण तिसु वि कालेषु पमत्तापमत्तसज्जेहि विरहिदो एगो वि समओ णत्थि, तेण सव्वद्व हवति ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय' ॥ २० ॥

सयतासयत जीवका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥ १८ ॥

यह काल इस प्रकार समझ है—मोहकर्मकी अट्टारंस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव, सभी पचेन्द्रिय और पर्याप्तक, ऐसे समूच्छेन तिर्यंच मच्छ, कच्छप, मंडकादिश्रीमें उत्पन्न हुआ, सर्प-शु अन्तमुहूर्तकाल द्वारा सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ (१) । पुन विधाम लेता हुआ (२), विशुद्ध हो करके (३), सयमासयमको प्राप्त हुआ । वहा पर पूर्वकोटी काल तक सयमासयमको पालन करके मरा और साधर्मकल्पको आवि लेकर आरण अच्युतान्त कर्पोंके देवोंमें उत्पन्न हुआ । तत्र सयमासयम नष्ट हो गया । इस प्रकार आविसे तीन अन्तमुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटिप्रमाण सयमासयमका काल होता है ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसयत कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९ ॥

चूकि, तीनों ही कालोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंसे विरहित एक भी समय नहीं है, इसलिए ये सर्वकाल होते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसयतका जघन्य काल एक समय है ॥ २० ॥

१ उक्तयेण पूर्वकोटी पक्ष ना । स ति १८

२ प्रमत्ता-मव्वयोर्नानाजीवपेसुया सर्व काल । स ति १, ८

३ पृच्छीनें प्रति नषयनेक समय । स ति १, ८

त जधा- पमत्तस्स ताए एगममओ उच्चदे । एक्को अप्पमत्तो अप्पमत्तद्वाए सीणाए एगममय जीविदमत्थि चि पमत्तो जादो । पमत्तगुणेण एगसमय दिट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो । गट्ठो पमादणिसिद्धसजमो । एव पमत्तस्स एगममयपरूवणा गदा । अप्पमत्तस्स बुच्चदे- एक्को पमत्तो पमत्तद्वाए सीणाए एगममय जीवियमत्थि चि अप्पमत्तो जादो । अप्पमत्तगुणेण एगममय दिट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो । गट्ठमप्पमत्तगुणट्ठण । अधत्ता उवममसेहीदो ओदरमाणो अप्पुच्चरुणो एगममय जीविदमत्थि चि अप्पमत्तो जादो, विदियसमए मदो देवेसुअण्णो । एए देहि पयारेहि अप्पमत्तस्स एगसमयपरूवणा कटा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१ ॥

पमत्तस्स ताए उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो पमत्तपज्जाएण परिणमिय सन्वुअरुस्स मतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्त गदो । एए पमत्तस्स उक्कस्सकालपरूवणा गदा । अप्पमत्तस्स बुच्चदे- एक्को पमत्तो अप्पमत्तो होदूण सच्चुक्कस्समतोमुहुत्तमच्छिय पमत्तो जादो । एसा अप्पमत्तस्स बुक्कस्सकालपरूवणा ।

यह इस प्रकार है— पहले प्रमत्तसयतका एक समय कहते हैं । एक अप्रमत्तसयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवित शेष रहनेपर प्रमत्तसयत हो गया । प्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिया, और दूसरे समयमें मरकर देव उत्पन्न हो गया । तब प्रमादणिसिद्ध सयम नष्ट हो गया । इस प्रकारसे प्रमत्तसयतके एक समयकी प्ररूपणा हुई । अब अप्रमत्तसयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— एए प्रमत्तसयत जीव प्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, तथा एक समयमात्र जीवितके शेष रह जाने पर अप्रमत्तसयत हो गया । तब अप्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिया, और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया । पुन अप्रमत्तगुणस्थान नष्ट हो गया । अथवा, उपशमश्रेणीसे उतरता हुआ अपूर्णकरणसंयत एक समयमात्र जीवितके शेष रहनेपर अप्रमत्त हुआ, और द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हो गया । इस तरह दोनों प्रकारोंसे अप्रमत्तसयतके एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१ ॥

पहले प्रमत्तसयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक अप्रमत्तसयत, प्रमत्तसयतपर्यायसे परिणत होकर और सर्वात्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके मित्याचको प्राप्त हुआ । इस प्रकार प्रमत्तसयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा हुई । अब अप्रमत्तसयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक प्रमत्तसयतजीव, अप्रमत्तसयत होकर, चहापर सर्वात्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके प्रमत्तसयत हो गया । यह अप्रमत्तसयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा है ।

चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जह-
ण्णेण एगसमयं ॥ २२ ॥

त कथं ? दो वा तिण्णि वा अणियट्ठिउवसामगा सेटीदेो ओदरमाणा एगसमयं जीविदमत्थि ति अपुव्वकरणउवसामगा जादा । एगममपमपुव्वकरणेण सह दिट्ठा विदिय समय मदा देना जादा । एवमपुव्वकरणस्स एगसमयपरूणा कदा । अप्पमत्तमपुव्वकरण करिय विदियममए काल कराविय अपुव्वकरणस्स एगसमयपरूणा किण्ण कदेत्ति वुत्ते ण, अपुव्वकरणपदमसमयादो जाप णिहा पयलाण वयो ण वोच्छिज्जदि ताप अपुव्व करणाण मरणाभाया । एव चेप तिण्हमुवसामगाणमेगसमयपरूणा णाणाजीवे अस्सिण्ण कायव्वा । णरि अणियट्ठि सुहुमउवसामगाण चढत-ओदरतजीवे अस्सिदूण देहि पयासेहि एगममयपरूणा कादव्वा । उवसतकसायस्स चढतजीवे चेय अस्मिदूण एगसमय परूणा कादव्वा ।

उक्खसेण अतोमुहुत्तं ॥ २३ ॥

चारों उपशामक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जयम्यसे एक समय होते हैं ॥ २२ ॥

यह इस प्रकार है— उपशामकश्रेणीसे उतरनेवाले दो, अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवनके शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए। तब एक समयमात्र अपूर्वकरणगुणस्थानके साथ दिये। पुन द्वितीय समयमें मरे और देव हो गये। इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा की।

शुक्रा—अप्रमत्तसयतको अपूर्वकरणगुणस्थानमें ले जा करके और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरणगुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—इसलिए नहीं की, कि अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर जब तक निद्रा और प्रचला, इन दो प्रवृत्तियोंका बंध व्युच्छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती सयतोंका मरण नहीं होता है।

इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा नाना जीवोंका आग्रह करके करना चाहिए। विशेष थात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाग्रहाय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवोंके एक समयकी प्ररूपणा उपशामकश्रेणी चढ़ते हुए और उतरते हुए जीवोंको आश्रय करके दोनों प्रकारोंसे करना चाहिए। किन्तु उपशातकपाय उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवोंको ही आश्रय करके करना चाहिए।

चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३ ॥

१ श्रुतशेषपद्यकाना नानाजीवापेक्षया जवयेनैक समय । स ति २ ८

२ उत्कर्षणत्तर्पुदत । स ति १ ८

। त कथं ? सत्तद्वा वा चउत्तणा वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणउत्तसामगा जादा जाव ते अणियट्टिद्धाणं ण पावैति ताव अण्णे त्रि अण्णे त्रि अप्पमत्ता अपुव्वकरणगुणट्टाण पडि-
वज्जावेदव्वा । ओयरमाणअणियट्टिणो त्रि अपुव्वकरण पडिवज्जावेदव्वा । एव चढत-
ओयरतज्जेहि असुण्णं होट्ठण अपुव्वकरणगुणट्टाणं अच्छदि जाव तप्पाओग्गउक्कस्संतो-
मुहुत्त ति । तदेो णिच्छएण तिरहो । एव चेव तिण्हमुत्तसामगाणमुक्कस्सकालपरत्तणा
कादव्वा । णरि उतमतकसायस्स उक्कस्सकाले भण्णमाणे एगो उतसंतकसाओ चडिय
जाव णोअरदि ताव अण्णे सुहुमसापराइया उतसंतकसायगुणट्टाण चडावेदव्वा । एव पुणो
सखेज्जनार चडाविय उतमतकालो वड्डुवेदव्वा जाव तप्पाओग्गुक्कस्सअंतोमुहुत्त
पचो ति ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २४ ॥

त कथं ? एकतो अणियट्टिउत्तसामगो एगसमय जीविदमत्तिव ति अपुव्वउत्तसामगो
जादो एगसमय टिट्ठो विदियसमए मदो लयसत्तमो देवो जादो । एव तिण्हमुत्तसामगाण-
भेगसमयपरत्तणा उत्तव्वा । णरि अणियट्टि-सुहुमउत्तसामगाणं चढणोयरणविहाणेण वेहि

यह इस प्रकार है— सात आठसे लेकर चौपन तक अप्रमत्तसयत जीव एकसाथ
अपूर्वकरणगुणस्थानी उपशामक हुए। जब तक वे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको नहीं प्राप्त
होते हैं, तब तक अन्य अन्य भी अप्रमत्तसयत जीव अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त करना
चाहिए। इसी प्रकारसे उपशामकेणसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरणगुणस्थानी उपशामक भी
अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त कराना चाहिए। इस प्रकार चढते और उतरते हुए जीवोंसे
अदृश्य (परिपूर्ण) होकर अपूर्वकरणगुणस्थान उसके योग्य उत्तरे अन्तर्मुहूर्तकाल पूरा
होने तक रहता है। इसके पश्चात् निश्चयसे तिरह (अंतराल) हो जाता है। इसी प्रकारसे
तीनों ही उपशामकोंके उत्तरे फालकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि
उपशांतकषाय उपशामकके उत्तरे कालको कहनेपर एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके
जब तक नहीं उतरता है, तब तक अन्य अन्य सद्धमसाभ्यरायिक सयत उपशांतकषायगुण-
स्थानको चढ़ाना चाहिए। इस प्रकारसे पुन सख्यातचार जीवाको चढाकर उपशान्तकाल
उसके योग्य उत्तरे अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक चढ़ाना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २४ ॥

यह इस प्रकार है— एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीव
शेष रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ, एक समय दिला, और द्वितीय समयमें मरणको
प्राप्त हुआ, तथा उत्तम जातिका अनुचरविमानवासी देव हो गया। इसी प्रकार शेष तीनों
उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण

पयारेहि, चट्टणमस्मिदूण उमंतंरुमायस्स एगपयारेण एगसमयपरूणणा कायव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५ ॥

तं जहा- एकको अप्पमत्ता अपुव्वउत्तसामगो जादो । तत्थ सव्वुक्कस्समतोमुहुत्तमच्छिय अनियद्विद्वान पडिवण्णो । एव तिण्हमुत्तसामगाण वत्तव्व ।

चट्टण्ह सव्वगा अजोगिकेवली केवचिर कालादो होति, णाणा जीवं पडुव्व जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

त कथ ? मत्तद्ध जणा अट्टुत्तरमद मा अप्पमत्ता अप्पमत्तद्वाए सीणाए अपुव्व करणसव्वगा जादा । अतोमुहुत्तमच्छिय अनियद्विद्वान गदा । एउ चेउ चट्टण्ह सव्वगाण जाणिदूण भाणिदव्व ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७ ॥

त जघा- सत्तद्ध जणा वा चट्टणा वा अप्पमत्तमज्जा अपुव्वसव्वगा जादा । ते तत्थ

और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानी उपशामकोंके चढने ओर उतरनेके विधानकी अपेक्षा दोनों प्रकारोंसे तथा आरोहणका आशय करके उपशा तकपाय उपशामककी एक प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५ ॥

यह इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसयत जीव अपूर्णकरण गुणस्थानी उपशामक हुआ । वहा पर सद्योत्पद्य अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तरु होते हैं ॥ २६ ॥

यह इस प्रकार है— सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सो आठ अप्रमत्तसयत जीव, अप्रमत्तनालक क्षीण हो जाने पर, अपूर्णकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए । वहा पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुए । इसी प्रकारसे अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकपायवीतरागद्वेषस्थ और अयोगिकेवली, इन चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा जान करके कहलाना चाहिए ।

चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७ ॥

यह इस प्रकार है — सात आठ जन अथवा बहुतसे अप्रमत्तसयत जीव अपूर्णकरण

१ उत्कृष्टकालमुहूर्त । स वि १, ८

२ चट्टणों उपशामकपायकवर्तिना च नानाजावापक्षया एकजावापक्षया च जघन्यसद्योत्पद्यान्तर्मुहूर्त । स वि १, ८

अतोमुहुत्तमच्छिय अणियद्विणो जादा । तन्दि चेन समए अण्णे अप्पमत्ता अपुच्चखवगा जादा । एन पुणो पुणो सयेज्जपार चढणक्रियाए कदाए णाणाजीवे अस्सिदूण अपुच्च-करणुक्कस्सकालो होदि । एअं चेव चदुण्ह सनगाण जाणिदूण वत्तव्व ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८ ॥

तं जहा—एक्को अप्पमत्तो अपुच्चकरणो जादो अतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियद्विखनगो जादो । एअं चेन चदुण्ह सनगाण जहणकालपरूणा कादव्व ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

एक्को अप्पमत्तो अपुच्चखवगो जादो । तत्थ सच्चुक्कस्समतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियद्विगुणद्व्याण पडिवण्णो । एगजीवमस्सिदूण अपुच्चकरणुक्कस्सकालो जादो । एअं चेन चदुण्ह सनगाण जाणिदूण वत्तव्व । एत्थ जहणुक्कस्सकाला वे वि सरिसा, अपुच्चादि-परिणामाणमणुक्कट्टीए' अभानादो ।

गुणस्थानी क्षपक हुए । ये वहा पर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी हो गये । उसी ही समयमें अन्य अप्रमत्तसयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए । इस प्रकार पुनः पुन सख्यातवार आरोहणत्रियाके करने पर नाना जीवोंका आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपकका उत्कृष्ट काल होता है । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८ ॥

यह इस प्रकार है — एक अप्रमत्तसयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुआ और अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण क्षपक हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९ ॥

एक अप्रमत्तसयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ । वहा पर सार्त्कृत अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । यह एक जीवको आश्रय करके अपूर्वकरणका उत्कृष्ट काल हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए । यहा पर जघन्य और उत्कृष्ट, ये दोनों ही काल सहस्र हैं, क्योंकि, अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिका अभाव होता है ।

विशेषार्थ—यहा पर अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिके अभाव कहनेका

१ अतोमुहुत्तमे पडिमयमसखलोपपरिणामा । कयडडुपु-इगुणे अणुक्कटा णत्थिय गियमेण ॥ गो जी ५३
मग्हा चवरिममात्ता हेडिममावदि सरियगा णत्थि । तग्हा विदिप्य कण अणुवकरण ति पिदिडं ॥ छपि ५१ तत्र
अनुकृष्टिर्णम अवस्तनसमयपरिणामखडाना उपरितनसमयपरिणामदेहे सान्दय मवति । गो जी, जी प्र ४९,
अपूर्वकरणगुणस्थाने नियमेन अवश्यमावेन अनुकृष्टिर्णित, तत एव प्रतिसमयपरिणामामा बहुत्ववधिधामामाव, ।
गो जी मं. प्र ५३.

सयोगिकेवली केवचिरं कालादो ह्येति, पाणाजीवं पडुच्च
सच्चन्द्रा ॥ ३० ॥

तिसु नि कालेसु जेण एको नि समओ सयोगिनिरिहदो णत्थि तेण सच्चन्द्रत्तण
जुज्जदे ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ३१ ॥

त रुध ? एको खीणस्माओ मज्जेगी होदूग अतोमुहुत्तमच्छिप ममुग्वाव करिय
पच्छा जोगिनिरोह किञ्चा अतोगी जादो । एग सयोगिस्म जहण्णफालपरुवणा एगनीव-
मल्लीणा गदा ।

उक्कस्सेण पुण्णकोडी देसणां ॥ ३२ ॥

अभिप्राय इस प्रकार है— विप्रभित समयमें विद्यमान जीवके अधस्तन समयवर्ती जीवोंके
परिणामोंके साथ सहशता होनेको अनुवृष्टि कहने है । अथ प्रवृत्तकरणमें भिन्न समयवर्ती
जीवोंके परिणामोंमें सहशता पाई जाती है, इसलिये वहा पर अनुवृष्टि रचना यतलाई
गई है । किन्तु अपूर्णकरण आदिमें उपरितन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अधस्तन
समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सहशता नहीं पाई जाती है, इसलिये अपूर्णकरण
आदिमें अनुवृष्टि रचनाया अभाव होता है । इसी कारण अपूर्णकरण आदि गुणस्थानोंके
जघन्य काल और उच्छ्रुत काल, सहश यतलाये गये हैं ।

सयोगिकेवली जिन कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व
काल होते हैं ॥ ३० ॥

चूँकि, तीनों ही कालोंमें एक भी समय सयोगिकेवली भगवानसे विरहित नहीं है,
इसलिये सर्व कालपना धन जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१ ॥

यह इस प्रकार है — एक क्षीणकपायगीतरागछन्दस्य सयत जीव सयोगिकेवली हो,
अन्तर्मुहूर्त काल रह, समुद्रात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोगिकेवली हुआ । इस प्रकार
सयोगिजिनके जघन्य कालकी प्ररूपणा एक जीवका आश्रय करके कही गई ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ ३२ ॥

१ सयोगिकेवलीनां नानानिवापक्षया सर्व काल । स ति १, ८

२ एकजीव प्रति जघन्यनाममुहूर्त । स ति, १, ८

३ उत्कृष्टण पूर्वकोटी दशोना । स ति १, ८

तं जघा- एको खड्यसम्मादिट्ठी देवो वा णेरइओ वा पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उवण्णो । सत्त मासे गन्धे अच्चिदूण गन्धपपेसणजम्मेण अट्टवस्सिओ जादो (८) । अप्पमत्तभायेण सजम पडियण्णो (१) । पुणो पमत्तापमत्तपरापत्तसहस्म कादूण (२) अप्पमत्तट्ठाणे अधापमत्तकरण कादूण (३) अपुच्चररणो (४) अणियट्ठिकरणो (५) सुहुमसवगो (६) सीणकमाओ (७) होदूण सजोगी जादो । अट्टहि वस्सेहि सत्तहि अतोमुहुचेहि ऊणपुव्वकोडिकाल विहरित्ता अजोगी जादो (८) । एउ अट्टहि वस्सेहि अट्टहि अंतोमुहुचेहि य ऊणपुव्वकोडी सजोगिकेरलिकालो होदि ।

(ओघपरूपा समात्ता) ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ ३३ ॥

कुदो ? णिरयगदिमिह सव्वकाल मिच्छादिट्ठियोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४ ॥

यह इस प्रकार है — एक क्षायिकसम्यग्दीष्ट देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटीकी आयुजाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । सात मास गर्भमें रह करके गर्भमें प्रवेश करनेवाले जन्म-दिनसे आठ वर्षका हुआ (८) । आठ वर्षका होने पर अप्रमत्तभावसे समयको प्राप्त हुआ (१) । पुन प्रमत्त ओर अप्रमत्तसयतगुणस्थान सम्प्रन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) अप्रमत्त सयत गुणस्थानमें अध प्रवृत्तकरणको करके (३) क्रमश अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६), और क्षीणकपायवीतरागलज्जस्थ होकर (७), सयोगि केवली हुआ । पुन चहा पर उक्त आठ वर्ष ओर सात अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण विहार करके अयोगिकेवली हुआ (८) । इस प्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण सयोगिकेवलीका काल होता है ।

(इस प्रकार ओघ प्ररूपणा समाप्त हुई) ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३ ॥

फ्योंकि, नरकगतिमें सर्वकाल मिथ्यादृष्टियोंके व्युच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४ ॥

१ विभवेण गल्लुवादेन नरकगतो नारकेषु सत्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टिर्नानाजावपेक्षया सर्वं काल ।
स वि १, ८.

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । स वि. १, ८.

त जथा- एको सम्मामिच्छादिद्वी असजदसम्मादिद्वी वा पुत्र्य पि वदुत्तरपरि-
णमिदमिच्छतो सकिलेम पूरेदूग मिच्छादिद्वी जादो । सब्रजहृणमतोमुदुत्तरकालमिच्छय
विसुदो होदूण सम्मच सम्मामिच्छच वा पडिवणो । एव मिच्छादिद्विस्म जहृणकाल
परूणणा गदा ।

उकस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ ३५ ॥

त जहा- एको तिरिक्खो मणुसो वा मत्तमाए पुट्टीए उररणो । तत्थ मिच्छत्तेण
सह तेत्तीस सागरोवमाणि अच्छिय उररिदो । लद्धाणि णेरइयमिच्छादिद्विस्स तेत्तीमि
सागरोवमाणि ।

सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी ओघं ॥ ३६ ॥

कुदो ? णिरयगदिमिह एदेमिं दोण्ह गुणङ्काणाण णाणेगजीवजहृण्युक्कस्सपरूणणां
एदेसिं चेव ओघणाणेगजीवजहृण्युक्कस्सपरूणणाहिंते भेदाभावा ।

असजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वदां ॥ ३७ ॥

यह इस प्रकार है - एक सम्यग्मिध्यादष्टि, अथवा असयतसम्यग्दष्टि जीव, जो कि
पहले भी बहुत बार मिध्यात्वको परिणत हो चुका है, सन्देशको पूरित करके मिध्यादष्टि हो
गया । यहा पर सब जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, विन्दुज होकर, सम्यक् को अथवा
सम्यग्मिध्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे मिध्यादष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिध्यादष्टिका उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागरोवम है ॥ ३५ ॥

यह इस प्रकार है - एक तिर्यच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । यहा
पर मिध्यात्वके साथ तेत्तीस सागरावम काल रह कर बाहर निकला । इस प्रकार नारकी
मिध्यादष्टिके तेत्तीस सागरावम उपलब्ध हुए ।

सासादनसम्यग्दष्टि और सम्यग्मिध्यादष्टि नारकी जीवोंता एक और नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ३६ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें इन दोनों गुणस्थानोंके नाना जीव और एक जीवसमग्रभी
जघन्य काल और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंका इन्हीं दोनों गुणस्थानोंकी ओघगत नाना
जीव और एक जीवसमग्रभी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंसे भेद नहीं है ।

असयतसम्यग्दष्टि नारकी कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
काल होते हैं ॥ ३७ ॥

१ सासादनसम्यग्दष्टिः सम्यग्मिध्यादष्टिश्च सासाद्योन कालः । स ति. १, ६.

२ असयतसम्यग्दष्टेर्नानाजीवेषुपि सर्वैः कालः । स ति. १, ६.

कुदो ? गिरयगदिग्धि असजदसम्मादिट्टिगिरिहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ३८ ॥

त जहा— एगो मिच्छादिट्टी या सम्मामिच्छादिट्टी वा सम्मत्ते बहुवार पुत्रं परिवट्टिदूण अन्निदो विसुद्धो होदूण सम्मत्त पडिण्णो । तत्थ सच्चलदुमंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मामिच्छत्त मिच्छत्त या गदो । एव गिरयगदिअसजदसम्मादिट्टिस्स जहण्णकालपरूणणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३९ ॥

तं जधा— एको तिरिको मणुस्सो वा अट्टानीससत्तकम्मिओ मिच्छादिट्टी सत्तमाए पुट्ठीए उपण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्मत्तो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्त पडिण्णो । पुणो अतोमुहुत्तापसेसआउट्टिदीए मिच्छत्तं गदो (४) । आउग वधिदूण (५) अतोमुहुत्त विस्ममिय (६) उपट्टिदो । एव छहि अतोमुहुत्तेहि उणाणि तेत्तीस सागरोवमाणि असजदसम्मादिट्टिस्स उक्कस्सकालो ।

क्योंकि, नरकगतिमें असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असयतसम्यग्दृष्टि नारकीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८ ॥

वह इस प्रकार है— एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, जो कि सम्यक्त्वमें पहले बहुतवार परिवर्तन कर चुका है, पुन विशुद्ध हो करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । वहा पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके सम्यग्मिथ्यात्वकी, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे नरकगतिमें असयतसम्यग्दृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस मागरोपम है ॥ ३९ ॥

वह इस प्रकार है — मोहकर्मकी अट्टाईस प्रतियोगी सत्ता रखने वाला एक तिर्यक अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । पुन छहों पर्यातियोंसे पर्याप्त हो (१), विधाम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुन अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण आयुर्कर्मकी स्थितिके अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । वहा आगामी भवकी आयुको बाधकर (५), अन्तर्मुहूर्त काल विधाम लेकर (६), निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम प्रमाण असयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है ।

पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं
कालादो हांति, णाणजीव पडुच्च सब्बद्धा ॥ ४० ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिरिहदसत्तह पुढवीण सब्बद्धा अभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ४१ ॥

तं जहा- अप्पप्पो पुढीसु द्विदअसंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी वा बहुसो
मिच्छत्तचरो परिणामपच्चएण मिच्छत्त गदो । सब्बजहणमतोमुहुत्तमच्छिय पुब्बिल्लगुणेषु
अण्णदरगुण गदो । एउ मत्तह पुढीण मिच्छादिट्ठिपादेकमतोमुहुत्तपरूणणा कदा ।

उक्कस्सेण मागरोवम तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं
सागरोवमाणिं ॥ ४२ ॥

पढमाए पुढीए एक सागरोवम, त्रिणियाए पुढवीए तिण्णि सागरोवम, तदिपाए
पुढवीए सत्त सागरोवमाणि, चउत्थीए पुढवीए दस सागरोवमाणि, पचमीए पुढवीए
सत्तारस सागरोवमाणि, छट्ठीए पुढवीए वावीस सागरोवमाणि, सत्तमीए पुढवीए तेत्तीस

प्रथम पृथिवीमे लेकर मातवीं पृथिवी तरु नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने
काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४० ॥

पर्यंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित सातों पृथिवियोंके नारकियोंका सर्वकाल अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४१ ॥

यह इस प्रकार है — अपनी अपनी पृथिवियोंमें स्थित, तथा जिसने पहले भी
बहुतवार मिथ्यात्वको प्राप्त किया है वैसे कोई असयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि
जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । यहा पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके पूर्वोक्त दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे
सातों पृथिवियोंके प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की गई ।

उक्त सातों पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि जीवोंका उद्भूत काल क्रमशः एक मागरो
पम, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेत्तीस सागरोपमप्रमाण है ॥ ४२ ॥

प्रथम पृथिवीमे एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवीमें तीन सागरोपम, तृतीय पृथिवीमें
सात सागरोपम, चौथी पृथिवीमें दस सागरोपम, पाचवीं पृथिवीमें सत्तरह सागरोपम, छठी
पृथिवीमें बाईस सागरोपम, और सातवीं पृथिवीमें तेत्तीस सागरोपम मिथ्यादृष्टि नारकोंका

१ त-नरुत्तिसुदससुदसद्वानिउतिनयसिधत्तागरोपमा सर्वानां पमा स्थिति । तत्त्वार्थं ३, ५
पपात्तत्वं एव नि सत्त दस सत्तदच द्वाविधति त्रयसिधत्तागरोपमाणि । स वि १, ८

सागरोवमाणि मिच्छादिद्विस्त उक्त्सकालो । कुदो ? एदेहिंतो अधिगमघाभावा । तं पि कुदो णच्चवे ?

एक तिय' सत्त दस तह सत्तारह दु तिहदेकअधिय दस ।

उवही उक्त्सद्विदी सत्तण्ह होइ पुढवीण ॥ ३४ ॥

इदि णिरयाउवंधसुत्तादो ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४३ ॥

कुदो ? दोण्ह गुणट्ठाणाण णाणाजीवे पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण दोण्ह पि पलिदोमस्स असखेज्जदिभागो । एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छ आवलियाओ अतोमुहुत्तमेवमादिणा भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च संबद्धा ॥ ४४ ॥

त जहा- सत्तण्ह पुढवीणं असंजदसम्मादिद्विविरहिदाणं संबद्धाणुवलभादो ।

उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, इनसे अधिक आयुष्यघटा अभाव है ।

शुका— यह कैसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके वधका अभाव है ?

समाधान— एक, तीन, सात, दश, तथा सत्तरह सागरोपम, तथा दोसे गुणित एक अधिक दश (२×११=२२) अर्थात् धार्इस सागरोपम, तथा तीनसे गुणित ग्यारह (३×११=३३) अर्थात् तेतीस सागरोपम, इस प्रकार सातों पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ॥ ३४ ॥

इस नारकायुके वधप्रदर्शक सूत्रसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके वधका अभाव है ।

सातों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीव सम्यन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल ओषके समान है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमशः एक समय और अन्तमुद्भूत है । तथा उत्कृष्ट काल दोनों गुणस्थानोंका पत्योपमके असत्प्यातर्वे भाग है । एक जीवकी अपेक्षा दोनों गुणस्थानोंका क्रमशः जघन्य काल एक समय और अन्तमुद्भूत है । तथा उत्कृष्ट काल छह आवलिया और अन्तमुद्भूत है । इत्यादि रूपसे कोई भेद नहीं है ।

सातों पृथिवियोंमें असयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४४ ॥

यह काल इस प्रकार समव है — कि सातों पृथिविया किसी भी कालमें असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित नहीं पाई जाती हैं ।

१ आ क प्रलो ' एकद्विदा ' अपती ' एकद्विय ' इति पाठ ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ४५ ॥

त जहा—सत्तसु पुढीसु द्विद्वद्दसो सम्मत्तचरअट्टाणीससंतकम्मियमिच्छादिही
सम्मामिच्छादिही वा सम्मत्त पडिवज्जिय अतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्त सम्मामिच्छत्त वा
पडिवण्णो । एतो सत्तसु पुढीसु अजदसम्मादिद्विजहण्णकालो परुविदो ।

उक्कस्स सागरोपमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेतीम
सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४६ ॥

त जवा—एको तिरिक्खो मणुमो वा अट्टाणीससंतकम्मिओ मिच्छादिही पडमाए
पुढीए वा एज जाज सत्तमीए वा उजण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो
(२) निसुदो (३) वेदगमम्मत्त पडिवण्णो (४) । सम्मत्तेण अप्पण्णो उक्कस्साउट्टिदि
मच्छिय णिप्फिडिदूण मणुसेसु उजण्णो । एव नीहि अतोमुहुत्तेहि ऊणा अप्पण्णो
उजस्साउट्टिदी अजजदसम्मादिद्विउक्कस्सकालो होदि । णवरि सत्तमाए छहि अतो
मुहुत्तेहि ऊणा उक्कस्साउट्टिदि ति वत्तव्व, तत्थ मिच्छत्तगुणेण विणा णिग्गमाभाजा ।

एक जीवकी अपेक्षा सातों पृथिवियोंके अमयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका जघन्य
काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४५ ॥

यह इस प्रकार है— सातों ही पृथिवियोंमें स्थित पूर्वमें अनेकवार सम्यक्त्वको प्राप्त
हुआ मोहकर्मकी अट्टार्यस प्रतियोंकी सत्ताजाला मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव सम्य
क्त्वको प्राप्त हो कर और अतमुहूर्त काल रह कर पुन मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको
प्राप्त हुआ । यह सातों ही पृथिवियोंमें असयतसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल प्ररूपण किया गया ।

सातों पृथिवियोंके असयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः बुद्ध
कम एक सागरोपम, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम है ॥ ४६ ॥

यह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्टार्यस प्रतियोंकी सत्ता रखने वाता एक निर्यत्त
अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव पहली पृथिवीमें, अथवा दूसरी पृथिवीमें, इस प्रकारसे लगा
कर सातों पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्यायोंसे पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२),
निशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्त हुआ (४), सम्यक्त्वके साथ अपनी अपनी
पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुक्रमकी स्थितिप्रमाण रह करके वहासे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न
हुआ । इस प्रकारसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुस्थिति ही
उस उस पृथिवीके असयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है । विशेष बात यह है कि सातों
पृथिवीमें छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम उत्कृष्ट स्थिति होता है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, वहासे
मिथ्यात्वगुणस्यात्के बिना निर्गमनका अभाव है, अर्थात् मिथ्यात्वके अतिरिक्त अन्य गुणस्या

असजदसम्मादिट्टिमि आउअ वधिय विस्संतो होदूण मिच्छत्त गत्तूण सत्तमपुढरीदो
णिस्सरिदे सम्मत्तकालो बहुगो लब्भदि त्ति पुत्ते ण, सत्तमपुढाणिगेरइयाण मणुसेसुव-
वादाभावा । असजदसम्मादिट्टीण पि णिरयतिरिक्खाउवधामाना । जेण गुणेण आउअ-
वधस्स सभनो अत्थि, तेणेय गुणेण णिग्गमादो च ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्टी केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ ४७ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्टीहि णिणा सव्वद्धा तिरिक्खगदीए अणुवलभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४८ ॥

त जहा— एकको सम्मामिच्छादिट्टी असजदसम्मादिट्टी संजदासंजदो या बहुसो
मिच्छत्तचरो मिच्छत्त पडिण्णो । सच्चजहणमतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्तगुणेषु अण्णदरगुणं

नोंसे निकलना नहीं हो सकता है ।

शुक्रा— असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें आगामी भवकी आयुको बाधकर विश्रान्त
होता हुआ मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सातवां पृथिवीसे निकलने पर सम्यक्त्वका काल बहुत
प्राप्त होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सातवां पृथिवीके नारकोंका मनुष्योंमें उपपाद नहीं होता
है । तथा, असयतसम्यग्दृष्टियोंके भी नारक और तिर्यंच आयुके घटका अभाव है । दूसरी
बात यह भी है कि जिस गुणस्थानसे आयुका घट समझ है, उस ही गुणस्थानसे उसका
निर्गमन भी होता है ।

तिर्यंचगतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तरु होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके विना किसी भी कालमें तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ४८ ॥

यह इस प्रकार है— पहले बहुतवार मिथ्यात्वमें भ्रमण किया हुआ एक सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सयतासयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।
यद्वा पर सत्रसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुण-

१ तिर्यंगतो निर्ध्वा मिथ्यादृष्टीना नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । स वि १, ८.

२ एकजीव प्रति जघनेनातर्मुहूर्त । स वि १, ८.

गदो । एवं जहण्णकालपरूपाणा गदा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ॥ ४९ ॥

एको मणुसो देवो णेरइओ वा अणादियल्लव्वीससत्तकम्मिओ मिच्छादिट्ठी तिरि
 ष्वेसु उववण्णो । आवलियाए अससेज्जदिभागमेत्ताणि पोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिह
 अण्णमदि गदो । अससेज्जपोग्गलपरियट्टाणि चि वयणादो अणंतोउलदी होदि चि
 अणत्तग्गहण णिणावणिज्जदे ? ण, अणत्तग्गहणमंतरेण पोग्गलपरियट्टस्स अणत्तुउलदीए
 उवापाभावादो । पोग्गलपरियट्टाणि आरलियाए अमखेज्जदिभागमेत्ताणि चैवेत्ति क्व
 णव्वदे ? आइरियपरपरागदत्तकाणा तद्वगदीए ।

सासणमम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओधं ॥ ५० ॥

कुदो ? णाणेगजीउजहण्णुकस्सपरूवणाहि तिसेसाभावा ।

स्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अनन्त कालप्रमाण
 असख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४९ ॥

मोहब्रह्मकी छत्रांत प्रवृत्तियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य, देव अथवा मारकी अनादि
 मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । चढापर आवलीके असख्यातयें भागमात्र पुद्गलपरि-
 वर्तनोंको परिवर्तित करके अन्य गतिको चला गया ।

शंका— 'असख्यात पुद्गलपरिवर्तन' इस प्रकारसे चचनसे अनन्तताकी उपलब्धि
 होनी है, इसलिये सूत्रमेंसे 'अनन्त' पदका ग्रहण क्यों नहीं निकाल दिया जाय ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अनन्तपदके ग्रहण किए बिना पुद्गलपरिवर्तनके अनन्त
 ताकी उपलब्धिका और कोई उपाय नहीं है ।

शंका— तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके धताये गये उक्त पुद्गलपरिवर्तन, 'आवलीके असख्या
 तयें भागमात्र ही होते हैं,' यह कैसे जाना ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आचार्य-परम्परागत ध्यायानसे उक्त वातका ज्ञान
 होता है ।

सासादनसम्पद्यदृष्टि और सम्पग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका काल ओधके समान
 है ॥ ५० ॥

क्योंकि, ज्ञाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणामेंके
 साथ इन दोनोंकी कालप्ररूपणाओंमें कोई विशेषता नहीं है ।

१ उत्पन्नानन्त कालो वक्ष्येया पुद्गलपरिवर्तना । स ति १, ८

२ सासादनसम्पद्यदृष्टिसम्पग्मिथ्यादृष्टिसंघतासंघताना नामा योतः काल । स ति १, ८

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा' ॥ ५१ ॥

हुदो ? तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदतिरिक्खगदीए
अभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५२ ॥

त जघा—एक्को मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा सजदासंजदो वा परि-
णामपच्चएण असजदसम्मादिट्ठी जादो । सव्वलहुमतोमुहुत्तमच्छिय विसोहीए दुक्कओ
सजमासंजमं गदो, संकिलेमेण दुक्कओ मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा गदो । एवं जहण्ण-
कालपरुवणा गदा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि' ॥ ५३ ॥

त जघा— एक्को मणुस्तो ब्रद्धतिरिक्खाउओ सम्मच्च घेत्तूण दंसणमोहणीयं खानिय
देवुत्तरकुरुतिरिक्खेसु उववणो । तिण्णि पलिदोवमाणि तत्थ सम्मत्तेण सह अच्छिय मदो

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि
जीवोंसे रहित तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ५२ ॥

यह इस प्रकार है— एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा सयतासयत
तिर्यंच जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ । वहा सर्वलयु अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके विगुद्धिसे बढ़ता हुआ सयमासयमको प्राप्त हो गया । पुन सक्केससे बढ़ता हुआ
मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य कालकी पररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचना उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम है ॥ ५३ ॥

यह इस प्रकार है— यद्धतिर्यंगायुष्क एक मनुष्य सम्यक्त्वको ग्रहण करके, और
वर्शनमोहनीयका क्षय कर, देवकुरु या उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर तीन
पल्योपम कालप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रह कर मरा, और देव हो गया । इस प्रकारसे

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया सर्व कालः । स ति १, ८

२ एकजीवं प्रति जघनेनात्तर्मुहूर्तं । स ति १, ८

३ उत्तरेण त्रीणि पल्योपमाणि । स ति १, ८.

देवो जादो । एव तिरिकसेसु असंनदमम्मादिद्विस्स उपरुस्सकालो परुरिदो ।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ५४ ॥

कुदो ? तिसु नि कालेसु सजदामंजदनिरिहदतिरिक्खाभावा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

त जहा— अट्टाणीससत्तकम्मियमिच्छादिद्वी असजदसम्मादिद्वी वा परिणाम
पच्चएण सजमामजम गदो । सच्चलहुमतोमुहुत्तमच्छिय पुच्चुत्ताणमेक्कदर गदो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ ५६ ॥

एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिद्वी अट्टाणीससत्तकम्मओ सण्णिपचिदिय
तिरिक्खसमुच्छिमपज्जत्तमइक्क क्खल मन्डयादीसु उवण्णी । छहि पज्जत्ताहि पज्जत्तपदो
(१) निस्सतो (२) तिसुद्धो (३) सनमासत्तम पडिण्णो । एदेहि तीहि अतोमुहुत्तेदि
उणपुव्वकोडिकाल मंजमासत्तममणुपालिदूण मदो देवो जादो ।

तिर्यचोमें असयत्तसम्पन्नादिका उत्कृष्ट काल कहा ।

सयत्तासयत्त तिर्यच कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, तानों ही कालोंमें सयत्तासयत्तोंसे रहित तिर्यचोंका अभाव है ।

एक नीरकी अपेक्षा सयत्तासयत्त तिर्यचका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५५ ॥

यह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्टारस प्रवृत्तियाकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि, अथवा
असयत्तसम्पन्नादिय जीव परिणामोंके निमित्तसे सयत्तासयत्तको प्राप्त हुआ । वहा पर सर्वलघु
अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हो गया ।
(इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल सिद्ध हुआ ।)

एक जीवकी अपेक्षा सयत्तासयत्त तिर्यचका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि
वर्षप्रमाण है ॥ ५६ ॥

मोहकर्मकी अट्टारस कर्मप्रवृत्तियोंकी सत्तावाला एक तिर्यच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि,
सौम्य पचेन्द्रिय सम्मुखिण्य पर्याप्त मइक्क, कच्छप आदि तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्वसि
धोंसे पर्वसि होना हुआ (१), विधाम लेखर (२), और विगुद्ध होकर (३), सयत्तासयत्तको
प्राप्त हुआ । इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालप्रमाण सयत्तासयत्तको परिपालन
करके मरा और देव हो गया । (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ ।)

पंचिंदियतिरिक्ख—पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त—पंचिंदियतिरिक्ख—
जोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ५७ ॥

कुदो ? तिसु नि कालेसु पंचिंदियतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठिनिरहिदपंचिंदियतिरिक्ख-
तियाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ५८ ॥

एगको सम्मामिच्छादिट्ठी असज्जदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो वा टिठ्ठमग्गो मिच्छत्त
पडिवण्णो । मव्वलहुमतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदर गुणं गदो । तेण अतोमुहुत्तमिदि
सुत्ते बुत्तं ।

उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोटिपुधत्तेण अन्म-
हियाणि ॥ ५९ ॥

त जथा— एकको देवो णेरडओ मणुस्सो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खवदिरित्त-
तिरिक्खो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो । सण्णि इरिय-पुरिस-णधुसगग्गदेसु

पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें
मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्पकाल होते
हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें तीनों प्रकारके पचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंसे रहित
उक्त तीनों प्रकारके पचेन्द्रिय तिर्यंच नहीं पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

जिसने मिथ्यात्वका मार्ग पहले कई बार देखा है ऐसा एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा
असयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सयतासयत तिर्यंच मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहा पर सर्वलघु
अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस लिए
सूत्रमें ' अन्तर्मुहूर्तकाल ' ऐसा कहा है ।

उक्त पचेन्द्रिय तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्लो-
पम है ॥ ५९ ॥

जैसे, एक देव, नारकी, मनुष्य, अथवा विवाक्षित पचेन्द्रिय तिर्यंचसे विभिन्न अन्य
तिर्यंच जीव, विवाक्षित पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर सक्की स्त्री, पुरुष और

कमेण अद्दुपुत्रकोडीओ हिंडिदूण अमणि-इत्थि पुरिस-णउमयेदेसु वि एवं चेव
 अद्दुपुत्रकोडीओ पारेभमिय तदो पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उमण्णो । तत्थ
 अतोमुहुत्तमच्छिय पुणो पंचिदियतिरिक्खअमणिपज्जत्तएसु उमज्जिय तत्थतणइत्थि
 पुरिस णउमयेदेसु पुणो वि अद्दुपुत्रकोडीओ परिभमिय पच्छा सणिपंचिदियतिरिक्ख
 पज्जत्तइत्थि-णउसयेदेसु अद्दुपुत्रकोडीओ पुरिमयेदेसु सत्त पुत्रकोडीओ हिंडिदूण
 तदो देव-उत्तरकुरुतिरिक्खेसु पुव्विल्लाउवसेण इत्थियेदेसु वा पुरिसयेदेसु वा उमण्णो ।
 तत्थ तिणि पलिदोमणि जीविदूण मदो देवो जादो । एदाओ पचाणउदि पुत्रकोडीओ
 पुत्रकोडिवारसपुधत्तसणिदाओ चि एदासिं पुत्रकोडिपुधत्तवदेसो सुचणिहिद्वो ण
 जुज्जे ? ण एस दोसो, तस्स वइल्लनाइत्तादो । वारसण्ह पुत्रकोडिपुधत्ताण कथ
 मेगत्तं ? ण, जाइमुहेण सहस्साण वि एगत्तविरोहामाना । णरि पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त
 एसु सचेतालीसपुत्रकोडीओ हिंडाणिय पच्छा तिपलिदोमियेसु तिरिक्खेसु उप्पादेदव्वो ।

नपुसक वेदोंमें क्रमसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण भ्रमण करके, असंखी स्त्री, पुरुष और
 नपुसक वेदोंमें भी इसी प्रकारसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण परिभ्रमण करके, इसके
 पश्चात् पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । यहा पर अन्तमुहूर्त रद्द कर, पुनः
 पचेन्द्रिय तिर्यंच असंखी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, उनमेंके स्त्री, पुरुष और नपुसक वेदी
 जीवोंमें फिर भी आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, पीछे सबी पचेन्द्रिय तिर्यंच
 पर्याप्त स्त्री और नपुसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटिया, तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूव
 कोटिया भ्रमण करके उसके पश्चात् देवकुरु अथवा उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें पूर्वली आयुके वशसे
 स्त्रीवेदियोंमें अथवा पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । यहा पर तीन पल्लोपम तक जीवित रद्द कर
 मरा और देव हो गया ।

शुक्रा—ये ऊपर कही गई पचानेय पूर्वकोटिया पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्व सन्नारूप हैं।
 इसलिये, इनकी सूत्रनिर्दिष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व ऐसी सन्ना नहीं बनती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह पृथक्त्व शब्द वैपुत्रवधाची है, (इस
 लिये कोटिपृथक्त्वसे यथासंभव विवाक्षित धनेक कोटिया ग्रहण की जा सकती है ।)

शुक्रा—शरह पूर्वकोटिपृथक्त्वोंमें एकपना कैसे बन सकता है ?
 समाधान—नहीं, क्योंकि, जातिके मुलसे, अर्थात् जातिकी अपेक्षा, सहस्रोंके भी
 एकत्व होनेमें विरोधना अमान है ।

विशेष बान यह है कि पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकोंमें सैतालीस पूर्वकोटियों तक भ्रमण
 कराके पीछे तीन पल्लोपमवाले तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराना चाहिये क्योंकि, अपर्याप्तकताके

कुदो ? अपज्जत्तेण एदेसिमपरिणदाणं पन्त्था सेसपुच्चकोडीओ परिग्गमणे संभवा-
माणा । अपज्जत्तेसु कधमित्थियेदस्स सभवो ? ण, अपज्जत्तित्थियेदाणमण्णोणविरोहा-
माणा । पंचिदियतिरिक्खजोगिणीसु पण्णारस पुच्चकोडीओ ममाविय पच्छा देवुत्तरकुत्तेसु
उप्पादेदव्वो । कुदो ? वेदतरसंरुतीए अभावादो । णत्थि अण्णो कोइ त्तिसेसो ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिसु नि पंचिदियतिरिक्खेसु द्विददोगुणट्ठाणाणं णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमओ, अतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोपमस्स असखेज्जदिभागो । एगजीवं
पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छावलिपाओ अतोमुहुत्तमिदि एदेहि
त्तिसेसाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालदो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ६१ ॥

कुदो ? तिसु नि पंचिदियतिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिनिरिद्धकालाभावा ।

साथ अपरिणत हुए, अर्थात् लक्ष्यपर्याप्तक हुए त्रिणा, उक्त जीवोंके पश्चात् शेष पूर्वकोटियों
परिभ्रमण करना संभव नहीं है ।

शुक्रा— लक्ष्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेद कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, लक्ष्यपर्याप्त और स्त्रीवेद, इन दोनों अवस्थाओंमें पर-
स्पर कोई विरोध नहीं है ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें पट्टह पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पश्चात् देवकुट
और उत्तरकुटमें उत्पन्न कराना चाहिये, क्योंकि, भोगभूमिमें वेद परिवर्तनका अभाव है । इसके
सिवाय अन्य कोई विशेषता नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका
काल ओघके समान है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें स्थित उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी
अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उल्टे काल पल्लोपमका असत्यातवा
भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त, तथा उल्टे काल छह
आगलिया और अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकार इन दोनों गुणस्थानोंसे उक्त तीनों पचेन्द्रिय
जीवोंके कालोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच असयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तरु होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६१ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित
कालका अभाव है ।

कमेण अद्दुह्णुव्वकोडीओ हिंडिदण अमणि इत्थि पुरिम-णट्टमयेदेसु वि एवं वेत्त
 अद्दुह्णुव्वकोडीओ परिभमिय तद्दो पच्चिदियतिरिक्खअपज्जत्तणसु उतरणो । तत्थ
 अतोमुह्णुत्तमच्चिय पुणो पच्चिदियतिरिक्खअमणिपज्जत्तणसु उतरणज्जिय तथतणइत्थि
 पुरिम णट्टसययेदेसु पुणो वि अद्दुह्णुव्वकोडीओ परिभमिय पच्छा सणिपच्चिदियतिरिक्ख
 पज्जत्तइत्थि-णउत्तमयेदेसु अद्दुह्णुव्वकोडीओ पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिदण
 तद्दो देव-उत्तरकुत्तितिरिक्खेसु पुव्विल्लाउवसेण इत्थियेदेसु वा पुरिसयेदेसु वा उतरणो ।
 तत्थ तिणिण पलिदोममणि जीविदण मद्दो देवो जादो । एदाओ पंचाणउदि पुव्वकोडीओ
 पुव्वकोट्टियारसपुधत्तंसणिदाओ चि एदामि पुव्वकोट्टिपुधत्तवन्देसो सुत्तणिहिद्वो ण
 सुज्जेदे ? ण एस दोमो, तस्स त्थइउरलयाइत्तादो । चारसण्ह पुव्वकोट्टिपुधत्ताण क्व
 मेगत्त ? ण, जाइमुहेण सहस्समाण वि एगत्तयिरोहामाया । णरि पच्चिदियतिरिक्खअज
 एसु सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ हिंडामिय पच्छा विपलिदोममियसु तिरिक्खेसु उप्पादेद्वो ।

नपुसक वेदोंमें कमसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण भ्रमण करके, असंखी स्त्री, पुरुष और
 नपुसक वेदोंमें भी इसी प्रकारसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण परिभ्रमण करके, इसके
 पश्चात् पचेन्द्रिय तिर्यच लभ्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । यहा पर अतर्मुहूर्त रह कर, पुनः
 पचेन्द्रिय तिर्यच असंखी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, उनमेंके स्त्री, पुरुष और नपुसक वेदी
 जीवोंमें फिर भी आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, पीछे सभी पचेन्द्रिय तिर्यच
 पर्याप्त स्त्री और नपुसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटिया, तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्व
 कोटिया भ्रमण करके उसके पश्चात् देवकुल अथवा उत्तरकुलके तिर्यचोंमें पूर्वकी आयुके बराबर
 स्त्रीवेदियोंमें अथवा पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । यहा पर तीन पल्योपम तक जीवित रह कर
 मरा और देव हो गया ।

श्रुति—ये ऊपर कही गई पचानवे पूर्वकोटिया पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्व सन्नारूप हैं।
 इसलिय, इनकी सूत्रनिर्दिष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व ऐसी सखा नहीं बनती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह पृथक्त्व शब्द वैपुत्र्यवाची है, (इस
 लिय कोटिपृथक्त्वसे यथासंभव विवक्षित अनेक कोटियां ग्रहण की जा सकती हैं ।)

श्रुति—बारह पूर्वकोटिपृथक्त्वोंमें एकपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जातिके मुलसे, अर्थात् जातिकी अपेक्षा, सहस्रोंके भ्रम
 एकरय होनेमें विरोधका अभाव है ।

विशेष बात यह है कि पचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्तकोंमें सैतालीस पूर्वकोटियों तक भ्रमण
 करके पीछे तीन पल्योपमवाले तिर्यचोंमें उत्पन्न कराना चाहिये, क्योंकि, अपर्याप्तकता

पलिदोत्रमाणि सम्मत्तमणुपालिय देवेसुत्तवण्णस्स देसुत्ततिण्णिपलिदोत्रममेत्तसम्मत्त-
कालुत्तलभादो ।

संजदासंजदा ओघं ॥ ६४ ॥

कुदो ? तिसु रि पंचिदियतिरिक्खेसु णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा, एगजीव पडुच्च
जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्खस्सेण पुव्वकोडी देसुत्ता, इच्चाइणा भेदाभावा । णरि जोण्णिणीसु
वे मासे जतोमुहुत्तेहि ऊणिया चि उत्तव्व ।

पंचिदियतिरिक्खअपजत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६५ ॥

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खअपजत्तपरिहिदकालाणुत्तलभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण ॥ ६६ ॥

कुदो ? एडदिय वेइदिय तेइदिय-चउरिदियपज्जत्त-अपज्जत्त पचिदियतिरिक्खअपजत्त
मणुत्तपज्जत्तापज्जत्तएसु अण्णदरस्स सुद्दाभवग्गहणावुट्ठिदपचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु

प्रात करके मुहूर्तेपृथक्त्वसे अधिक दो मास कम तीन पत्योपम तक सम्यक्त्वको अनुपालन
करके देहोंमें उत्पन्न होने वाले जीवके कुछ कम तीन पत्योपमप्रमाण सम्यक्त्वका काल
पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके पचेन्द्रिय संयत्तासंयत तिर्यचोंका काल ओघके समान
है ॥ ६४ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक
जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अतमुहूर्त, और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण होता है,
इत्यादि रूपसे भेदका अभाव है । विशेष बात यह है कि योनिमतियोंमें दो मास और कुछ
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम, अर्थात् जन्मसे लेकर शीघ्रातिशीघ्र समयमासयमको ग्रहण करने तकके
कालसे हीन, ऐसा काल कहना चाहिए ।

पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६५ ॥

क्योंकि, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यच जीवोंसे रहित कोई भी काल नहीं
पाया जाता ।

एक जीवकी अपेक्षा पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त तिर्यचोंका जघन्य काल क्षुद्रभय-
ग्रहणप्रमाण है ॥ ६६ ॥

क्योंकि, एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक,
पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तक, तथा मनुष्य पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमेंसे किसी एक जीवके
क्षुद्रभयग्रहणकी आयुस्थितिवाले पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर,

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त ॥ ६२ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्वी सम्मामिन्नादिद्वी सज्जसासज्जो वा तिसोहि सक्किलेसवत्तेण असंजदसम्मादिद्वी होदुम सव्वनहण्णमतोमुहुत्तमच्चिय अरिणद्धसक्किलेस विमोहीहि पडिणण्णगुणतरस्म अतोमुहुत्तमेत्तकालुत्तलमादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पल्लिदोवमाणि, तिण्णि पल्लिदोवमाणि, तिण्णि पल्लिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ६३ ॥

पच्चिदियतिरिग्ग पच्चिदियतिरिग्गपज्जचाण संपुण्णाणि तिण्णि पल्लिदोवमाणि । कुदो ? मणुस्मस्म बद्धतिरिक्खाउअस्म मम्मत्त घेत्तूण दसणमोहणीय रग्गिय देवचरकुट्ट पच्चिदियतिरिग्गसुवज्जिनय अप्पणो आउट्टिटिमणुपालिय देवेसुप्पणस्म संपुण्णतिण्णि पल्लिदोवमाणेत्तसामजमसम्मत्तकालुत्तलमादो । पच्चिदियतिरिक्खजोणिणीसु देसूणातिण्णिपल्लिदोवमाणि । कुदो ? तिरिग्गस्म मणुस्मस्म वा अट्टाणीमसत्तकम्मियमिच्छादिद्विस्स देवचरकुट्टपच्चिदियतिरिक्खजोणिणीसु उप्पज्जिय वे मासे गव्भे अच्छिदूण णिक्खंतस्म मूहुत्तपुधत्तेण तिसुट्ठो होदूण वेदगामम्मत्त पडिचज्जिय मुहुत्तपुधत्तव्वहिय वे माम्मणतिण्णि

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके पचेन्द्रिय त्रियंच असयतसम्पग्दष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

क्योंकि, कोई मिथ्यादष्टि, अथवा सम्पग्मिथ्यादष्टि, अथवा सयतासयत त्रियंच यथाक्रमसे विशुद्धि, अथवा सहेन्द्रके वशसे असयतसम्पग्दष्टि होकर सत्रसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रद्द कर, अथिनष्ट सहेन्द्र और विशुद्धिके साथ यथाक्रमसे दूसरे गुणस्थानको प्राप्त हुआ, ऐसे जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों पचेन्द्रिय त्रियंच असयतसम्पग्दष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे तीन पल्लोपम, तीन पल्लोपम और कुठ कम तीन पल्लोपम है ॥ ६३ ॥

पचेन्द्रिय त्रियंच आर पचेन्द्रिय त्रियंच पर्याप्तियोंका सम्पूर्ण तीन पल्लोपम उत्कृष्ट काठ है, क्योंकि, उद्धतिर्यगायुष्क मनुष्यके, सम्पत्त्वको ग्रहण करके, दर्शनमोहनीयका क्षण कर, देवकुट्ट या उत्तरकुट्टके पचेन्द्रिय त्रियंचोंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके तो सम्पूर्ण तीन पल्लोपममात्र असयतसम्पग्दष्टि सम्पत्त्वका काल पाया जाता है । पचेन्द्रिय त्रियंच योनिमतियोंमें कुछ कम तीन पल्लोपम काल है । क्योंकि, मोहकर्मकी अट्टाईस प्रवृत्तियोंकी सत्ताजाले त्रियंच अथवा मनुष्य मिथ्या दष्टि जीवके देवकुट्ट अथवा उत्तरकुट्टके पचेन्द्रिय त्रियंच योनिमतियोंमें उत्पन्न होकर, और दो मास गममें रद्दकर, जन्म लेनेवाले, और मुहूर्तपृथक्तरसे विशुद्ध होकर वेदकसम्पत्त्वको

वसेण मिच्छत्त गतूय सव्वजइण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्म तिसु वि
मणुस्सेसु अतोमुहुत्तमेत्तमिच्छत्तकालुत्तलभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदेवमाणि पुव्वकोडिपुत्तेणव्वमहियाणि

॥ ७० ॥

कुदो ? अपिपदजीवस्स अपिपदमणुमेसुअज्जिय इत्थि-पुरिस-णवुत्तययेदेसु
अट्टट्टुपुव्वकोडीओ परिमभिय अपज्जत्तएमुअवज्जिय तत्थ अतोमुहुत्तमच्छिय पुणो इत्थि-
णवुत्तययेदेसु अट्टट्टुपुव्वकोटीओ, पुरिसयेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिय देवुत्ताकुरवेसु
तिण्णि पलिदेवमाणि अच्छिय देवेसुअवण्णस्स पुव्वकोडिपुत्तव्वमहियतिण्णिपलिदेवम-
सुत्तलभा । णपरि मणुसमिच्छादिट्टिस्स चेष सत्तेत्तालीसपुव्वकोडीओ अहिया होंति, ण
सेसाण । पज्जत्तमिच्छादिट्टीग तेरीसपुव्वकोडीओ, मणुसअपज्जत्तएसु तेसिसुप्पचीए
अभावादो । मणुसिणीमिच्छादिट्टीसु सत्तपुव्वकोडीओ अहियाओ, वेदंतरसकतीए
अभावादो ।

सत्रेशके वशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पूर्वोक्त गुण-
स्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें अन्तर्मुहूर्त-
मात्र मिथ्यात्वका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि-
पृथक्त्ववर्षसे अधिक तीन पल्योपमप्रमाण है ॥ ७० ॥

क्योंकि, अधिवक्षित जीवके विरक्षित मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, स्त्री, पुरुष और
नपुंसकवेदियोंमें क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, लक्ष्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न
होकर, वहा पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, पुन स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्व-
कोटिया तथा पुंसवेदियोंमें सात पूर्वकोटिया भ्रमण करके, देवकुल अथवा उत्तरकुलमें तीन
तीन पल्योपमों तक रह करके, वेदोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक
तीन पल्योपम पाये जाते हैं । विशेष बात यह है कि मनुष्य मिथ्यादृष्टिके ही तीन पल्योपमोंसे
अधिक संतालीस पूर्वकोटिया होती हैं; शेष मनुष्योंके नहीं । पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके
तेरहस पूर्वकोटिया अधिक होती है, क्योंकि, मनुष्यलक्ष्यपर्याप्तकोंमें उनकी उत्पत्ति नहीं
होती है । मनुष्यनी मिथ्यादृष्टियोंमें सात पूर्वकोटिया अधिक होती है; क्योंकि, उनके वेदपरि-
वर्तन नहीं होता ।

उववज्जिनय सच्चजहण्णकालमच्छिप पुच्चुत्ताणमण्णदर गदस्स सुद्धाभयगहणमेत्तअप
ज्जत्तकालुत्तलभा ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

कुदो ? पुच्चुत्ताणमण्णदरस्स पच्चिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववज्जिनय सण्णि
असण्णि अपज्जत्तएसु अट्टट्टारमुप्पज्जिनय णिस्सरिदूण पुच्चुत्ताणमण्णदर गदस्स अतो
मुहुत्तमेत्तुवस्सकालुत्तलभा ।

मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्वी केवचिर्
कालादो हेत्ति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६८ ॥

कुदो ? तिग्घेसु वि मणुस्सेसु मिच्छादिद्वि निरहिदकालाणुत्तलभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ६९ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिद्विस्स असजदसम्मादिद्विस्स सजदामजदस्स वा सक्खिलेस

और वहाँ पर सर्व जघन्य काल रह कर, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए
जीवके क्षुद्रभयग्रहणमात्र अपर्याप्तकाल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकाल तिर्यचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ६७ ॥

क्योंकि, पूर्वम कहे गये एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकके पचेन्द्रियतिर्यच लब्ध्य
पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, सक्षी और असक्षी लब्ध्यपर्याप्तकोंमें आठ आठ धार उत्पन्न होकर,
और उनमेंसे निकलकर, पूर्वोक्त जीवोंमेंसे किसी एक जीवकी पर्यायको प्राप्त हुए जीवके
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

मनुष्यगतिमें, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्यातोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कोई काल नहीं
पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, सम्पत्तिमिव्यादृष्टिके, अथवा असत्यसम्पत्तिमिव्यादृष्टिके, अथवा सत्यतासत्यके

१ मनुष्यगती मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वं कालं । स ति १, ८ ।

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स ति १, ८ ।

उक्कस्सं छ आवलियाओ' ॥ ७४ ॥

कृदो ? उवसमसम्मादिद्धिस्स उवसमसम्मचद्वाए छ आपलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिपज्जिय छ आपलियाओ तत्थ गमिय मिच्छत्त पडिषण्णस्म छ-आपलिओ-वलमा ।

सम्मामिच्छादिद्धी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ७५ ॥

पमत्तमंजद-सज्जदासज्जद-अट्टावीसमोहसतरुम्मियमिच्छादिद्धि-असंजदसम्मादिद्धि-पच्छायदाण सत्तेज्जसम्मामिच्छादिद्धीणं सब्वजहण्णमतोमुहुत्तमच्छिय विसोहि सक्किलेस-वसेण सम्मत्त मिच्छत्ताणि उगदाण सत्तजहण्णतोमुहुत्तुत्तलभा ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ ७६ ॥

सम्मामिच्छादिद्धीण सब्वुक्कस्ससम्मामिच्छत्तद्वाण मिच्छाद्दि-असज्जदसम्माद्दि-

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल छह आलीप्रमाण है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलीप्रमाण काल बहा पर पिताकर मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके छह आवलीप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तरु होते हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, प्रमत्तसयत, अथवा सयतासयत, अथवा मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा अमयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे पीछे आये हुए संख्यात सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विद्युद्धि और संकेशके घशसे यथाक्रमसे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७६ ॥

मिथ्यादृष्टि, अमयतसम्यग्दृष्टि, सयतामयत और प्रमत्तसयत जीवोंसे सख्यात चारमें

१ उत्तर्येण पढावलिका । स ति १, ८

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टीनानातीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघयथोदृष्टधान्तर्मुहूर्त । स ति १, ८.

सासणसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ ७१ ॥

कुदो ? उपसमसम्मादिद्वीण सत्तद्धजणाण उपसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि
त्ति मासणगुणं गदाण तत्थेगममयमच्छिय मिच्छत्त पडिवण्णाणमेगसमओवलभादो ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ ७२ ॥

कुदो ? सत्तेज्जणाण उपसमसम्मादिद्वीणमुपमसम्मत्तद्वाए एगसमयमादि कादूण
जावुक्कस्सेण छ जावलियाओ अत्थि त्ति सामण पडिवण्णाण सत्तेज्जजाराणुसच्चिटसाम्ण
द्वानमनोमुहुत्तनुवलभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७३ ॥

कुदो ? उपसमसम्मादिद्विस्त उपसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि त्ति मासण
पडिवज्जिय विदियसमए चेव मिच्छत्त पडिवण्णासासणस्म एगसमयदसणादो ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमें एक समय होते हैं ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि सात आठ जनोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय
शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए, तथा वहा पर एक समय रह कर मिध्यात्वको
प्राप्त होनेवाले जीवोंके एक समयप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, सत्यात उपशमसम्यग्दृष्टियोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको
आदि करके उत्कर्षसे छ आवलिया शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवोंके
सत्यात वारोंसे अनुसचित सासादनगुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य
काल एक समय है ॥ ७३ ॥

क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने
पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर, दूसरे समयमें ही मिध्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके एक समयप्रमाण काल देखा जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिजीवोंकी अपेक्षा जघन्यमें एक समय । स वि १, ८

२ अतियु ' सासणण ' इति पाठ ।

३ उत्कृष्टेणोत्कर्षेण । स वि १, ८

४ एकजीवं प्रति जपयेनैक समय । स वि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८० ॥

दिट्ठमग्गमिच्छोदिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि सज्जदासज्जद-पमत्तसज्जदगुणद्वुणेहितो आग-
दस्स सच्चजहण्णमतोमुहुत्तद्वमच्छिय जहण्णकालानिरोहेण गुणतर गदस्स जहण्णगतोमुहुत्त-
मेत्तकालवलभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पल्लिदोवमाणि, तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरे-
याणि, तिण्णि पल्लिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ८१ ॥

एत्थ सादिरेयसद्दो दोसु वि तिपल्लिदोवमेसु सवधणिज्जो, दोण्हं पञ्चासत्तिवसेण
एगत्तमुवगयाण विसेसणरूवेण पयड्ढत्तादो । तम्हा मणुस-मणुसपज्जत्तपसु सादिरेयाणि
तिण्णि पल्लिदोवमाणि, अण्णत्थ देसूणाणि । कुदो ? ' जहा उद्देशो, तथा णिद्देशो ' ति
णायादो । क्व सादिरेयत्त ? अट्ठावीसत्तत्तम्मियमिच्छादिट्ठिस्स पुव्वकोडितिहाए सेसे
वद्वमणुमाउअस्स तदो अतोमुहुत्त गत्तूण सम्मत्त चेत्तूण दसणमोहणीय खविय सम्मत्तेण

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके अमयतमभ्यगृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८० ॥

क्योंकि, देखा है मार्गकी जिसने ऐसे, मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा
सत्यतासयत, अथवा प्रमत्तमयत गुणस्थानोंसे आये हुए, तथा सर्व जगत् अन्तर्मुहूर्त काल रह
करके जघन्य कालके अधिरोधसे गुणस्थानान्तरको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण
काल पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके असंयतसम्यगृष्टि मनुष्योंका यथाक्रमसे उत्कृष्ट काल तीन पल्लो-
पम, तीन पल्लोपम सातिरेक, और देशोन तीन पल्लोपम है ॥ ८१ ॥

यहां पर सातिरेक शब्द दोनों ही त्रिपल्लोपमों पर सवद्ध करना चाहिए, क्योंकि
प्रत्यासत्तिके वशमे एकत्वको प्राप्त हुए दोनों पदोंके विशेषणरूपसे यह शब्द प्रवृत्त हुआ है
इसलिये मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तकोंमें तो साधिक तीन पल्लोपम उत्कृष्ट काल है । और
अन्यत्र अर्थात् मनुष्यनियोंमें, देशोन तीन पल्लोपम उत्कृष्ट काल है । क्योंकि, ' जिस प्रकारसे
ब्रह्म होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है ' ऐसा न्याय है ।

शुक्रा — तीन पल्लोपमसे सातिरेक अर्थात् अधिक काल कैसे समभव है ?

समाधान— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तथा पूर्वकोटीके
त्रिभाग शेष रहने पर बाधी है मनुष्य आयुको जिसने ऐसे मिथ्यादृष्टि मनुष्यके तत्पश्चात् अन्त-
र्मुहूर्त जाकर सम्यक्त्वको ग्रहण करके दर्शनमोहनीयका क्षण कर सम्यक्त्वके साथ देशोन

१ एक जीव प्रति जपयेनान्तर्मुहूर्त । स सि १, ८

२ उत्कृष्टेण त्रिणि पल्लोपमानि सातिरेकाणि । स सि १, ८

सजदामजद पमत्तसंजदेहि सखेज्जवारमणुसचिदद्वाणमतोमुहुत्तुलमा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ७७ ॥

सम्मामिच्छादिद्विस्त दिद्वमग्गस्स पुच्चुत्तचदुगुणद्वाणेषु एगनीवण्णदरगुणपच्चाय
दस्स सच्चजहण्णद्वमच्छिदूण सक्किलेम विसोहिद्वमेण मिच्छादिद्वि असजदसम्मामिच्छिदुणे
पडिवण्णस्म सच्चजहण्णतोमुहुत्तमेत्तकालुलमा ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ ७८ ॥

पुच्चुत्तचदुगुणद्वाणेषु अदिद्वमग्गेगजीवण्णदरगुणपच्छायदसम्मामिच्छादिद्विस्म
दीहद्वमच्छिद्व देस सयलसजमपिरिद्विददोणुणद्वाणे गदस्म सच्चुक्कस्सतोमुहुत्तुलमा ।

**असजदसम्मामिच्छी केवचिर कालादो होत्ति, णाणाजीव पडुच्च
सव्वद्दा ॥ ७९ ॥**

कूदो ? असजदसम्मामिच्छिपिरिद्विमणुम्माण सच्चकालमणुलमा ।

सचित हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सवा दृष्ट सम्यग्मिथ्यात्वका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७७ ॥

क्याकि, जिसने पूर्वमें मार्ग देखा है, ऐसे पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुण स्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सब जघन्य काल रह कर सङ्घेश और विशुद्धिके घरासे मिथ्यादृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे नहीं देखा है मार्ग को जिसने, ऐसे जीवके किसी एक गुणस्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके दीर्घ मार्ग तय रह करके देशसयम और सफलसयमसे रहित हो गुणस्थानोंमें, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें गये हुए जीवके सर्वात्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके असत्यतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि असत्यतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित मनुष्योंका कोई भी काल नहीं पाया जाता ।

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८३ ॥

एइदियवादर-सुहुम वि-ति-चउरिंदिय-सण्णि-असण्णिपचिंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मणुस-
पज्जत्ताणं वा मणुसअपज्जत्तएसु उरवज्जिय खुद्दाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिं गमिय पुच्चुत्त-
जीवेसुप्पण्णाणं त्ताळुनलभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

पुच्चुप्पणमणुसअपज्जत्तएसु गदेसु तक्काले चेअ अण्णणे जीवे मणुसअपज्जत्ते-
सुप्पादिय उप्पादिय अणुसधिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तअणुसंधाण-
वारसलागुनलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८५ ॥

पुच्चुत्तजीवेहिंतो आगतूण मणुसअपज्जत्तएसु उरवण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्त-
जहण्णाउट्ठिदिं कालदसणादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८६ ॥

लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
जघन्यसे क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण काल तरु होते हैं ॥ ८३ ॥

फ्योंकि, एकेन्द्रिय, वादर और सुहुम, तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, भसबी
और सत्री पचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके, अथवा मनुष्यपर्याप्तक जीवोंके, लक्ष्य
पर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभयग्रहणमात्र आयुस्थितिको रिताकर पूर्वोक्त जीवोंमें
उत्पन्न होनेवाले जीवोंके उक्त काल, अर्थात् क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण काल पाया जाता है ।

लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातना भाग
है ॥ ८४ ॥

फ्योंकि, पूर्वात्पन्न लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें चले जाने पर उसी कालमें ही अन्य अन्य
जीवोंको लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न करा कराके अनुसंधान करने पर पल्योपमके
असंख्यातवें भागमात्र अनुसंधानवारोंकी शलाकाए पाई जाती हैं ।

लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण
है ॥ ८५ ॥

फ्योंकि, पूर्वात् एकेन्द्रियादि जीवोंसे आकर लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होने-
वाले जीवके क्षुद्रभयग्रहणमान जघन्य आयुस्थितिकाल देखा जाता है ।

उक्त लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८६ ॥

सह देहणपुत्रकोडितिभागं गमिय त्रिपलिदोत्रमाउद्विदिदेउत्तरकुरवेसुप्पज्जिय अप्पणो
आउद्विदिमणुपालिय देवेसुप्पणस्स त्रिण्णिपलिदोत्रमाणमुपरि देहणपुत्रकोडितिभाणु
बलभा । मणुसिणीसु देहणतिण्णि पलिदोत्रमाणि, अण्णदरअट्टानीसत्तत्तम्मियमिच्छा
दिद्विस्स त्रिपलिदोत्रमिएसु मणुमेसुपरज्जिय णत्त मासे गम्भे अच्छिदूण णिकत्तस्म उत्ताण
सेज्जाए अणुलिआहारेण सत्त दिवसे, रंगतो सत्त दिवसे, अधिरगमणेण सत्त दिवसे, धिर
गमणेण सत्त दिवसे, कलामु सत्त दिवसे, गुणेषु सत्त दिवसे, अण्णे वि सत्त दिवसे गमिय
विसुद्धो होदूण सम्मत्त पडिउज्जिय अप्पणो आउद्विदि जीविदूण देवेसु उअवण्णस्स
एगूणवण्णदिवसेहि अहियणवमाहणतिण्णिपलिदोत्रमुअलभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ ८२ ॥

कुदो ? ओषादो भेदाभावा । णरि सजदासजदाणं सव्वलहु जोगिणिकसमण
जम्मणुअरइवस्सेहि ऊणा पुत्रकोटी संजमासजमकालो वत्तव्वो, तिरिक्काण व मणुस्साण
अतोमुहुत्तकालेण अणुअयगहणामारा ।

पूर्वकोटीका त्रिभाग विताकर ती पल्योपमप्रमाण आयुर्कर्मकी स्थितिवाले देहद्वय और
उत्तरद्वयमें उपन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके
तीन पल्योपमोंके ऊपर देशोन पूर्वकोटीका त्रिभाग अधिक पाया जाता है ।

मनुष्यनियमोंमें देशोन ती पल्योपम उत्कृष्ट काल है । वह इस प्रकारसे है—मोहकर्मकी
अट्टारसं प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले
भोगभूमिया मनुष्योंमें उपन्न होकर और नौ मास गर्भमें रह कर निकलता हुआ उत्तानशय्या
पर अगुष्ट चूसनेरूप आहारसे सात दिन, रंगते हुए सात दिन, अस्थिर गमनसे सात दिन,
स्थिर गमनसे सात दिन, कलाओंमें सात दिन, गुणोंमें सात दिन, तथा अन्य भी सात दिन
विताकर, विशुद्ध होकरके सम्यक्त्वको प्राप्त हो, अपनी आयुस्थिति प्रमाण जीवित रह कर
देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उनचास दिवसोंसे अधिक नव मासोंसे कम तीन पल्योपम का
पाया जाता है ।

सयतासयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तरु तीनों प्रकारके मनुष्योंका
उत्कृष्ट या जघन्य काल ओषके समान है ॥ ८२ ॥

क्योंकि, ओषवर्णित कालसे इनमें कोई भेद नहीं है । विशेष धात यह है कि सयता
सयतोंके सफलधु योनि निष्क्रमणरूप जन्मसे उत्पन्न हुए जीवके आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटी
प्रमाण सप्तमासयमका काल कहना चाहिये, क्योंकि, नियमोंके समान मनुष्योंके जन्म लेनेके
पश्चात् अन्तर्गृह्यते कालसे ही अणुअतोंके ग्रहण करनेका गभाव है ।

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८३ ॥

एइंदियवादर-सुहुम नि-ति-चउरिंदिय-सण्णि-असण्णिपंचिंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मणुस-
पज्जत्ताण वा मणुसअपज्जत्तएसु उववज्जिय खुदाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिं गमिय पुव्वुत्त-
जीविसुप्पण्णाणं तकालुमलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

पुव्वुप्पण्णमणुसअपज्जत्तएसु गदेसु तक्काले चेव अण्णणे जीने मणुसअपज्जत्ते-
सुप्पादिय उप्पादिय अणुसंधिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तअणुसंधाय-
वारसलागुमलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८५ ॥

पुव्वुत्तजीनेहिंतो आगतूण मणुसअपज्जत्तएसु उववण्णस्स खुदामवग्गहणमेत्ते-
जहण्णाउट्ठिदिकालदमणादो ।

उक्कस्सेण अंतोसुहुत्तं ॥ ८६ ॥

लब्धपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाम

जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक होते हैं ॥ ८३ ॥

पर्योकि, एकेन्द्रिय, वादर और सुहुम, तथा द्वीन्द्रिय, और सखी पचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके, अथवा पर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र उत्पन्न होनेवाले जीवोंके उक्त काल, अर्थात्

लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उन्वृष्ट है ॥ ८४ ॥

पर्योकि, पूर्वोत्पन्न लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें असत्यातर्क भागमान अनुसंधानवाले

लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उन्वृष्ट है ॥ ८५ ॥

पर्योकि, पूर्वोत्पन्न लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें असत्यातर्क भागमान अनुसंधानवाले

उक्त लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उन्वृष्ट है ॥ ८६ ॥

पृच्छुत्तजीरेहितो आगतुं मणुम अपञ्जत्तएसु उप्पणस्स अतोमुहुत्तादो उवरिम
कालनियप्पाणमुक्कस्माउट्टिदिअपञ्जत्तस्स पि अणुअलभा ।

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणा
जीव पडुच्च सव्वद्धा' ॥ ८७ ॥

देवमिच्छादिट्ठिरिदकालाभावा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त' ॥ ८८ ॥

असंजत्तसम्मादिट्ठिस्म सम्मामिच्छादिट्ठिस्म वा सक्किलेसेण मिच्छत्त गंतुण सव्व
जहण्णकालमच्छिय पृच्छुत्तदोगुणट्ठाणमण्णदर गदस्म अतोमुहुत्तमेत्तकालुअलभा ।

उक्कस्सेण एक्कत्तीस सागरोवमाणि' ॥ ८९ ॥

मणुसमिच्छादिट्ठिस्म दव्वसंजमअलेण एक्कत्तीससागरोवमाउट्टिदिदेसुप्पज्जिय
मिच्छत्तेण सह उप्पणो आउट्टिदिमणुपालिय मणुसेसुवअण्णस्स एक्कत्तीससागरोवममेत्त
देवमिच्छादिट्ठिकालदमणादो ।

क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंसे मरर लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके अत
मुहूर्त काल पाया जाता है, तथा अतमुहूर्तसे उपरिम कालके विकल्प उत्पन्न आयुस्थिति
पाले लक्ष्यपर्याप्तक जीवके भी नहीं पाये जाते ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ८७ ॥

क्योंकि, देवोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है ॥ ८८ ॥

असंजतसम्यग्दृष्टिके, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके, सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वकी प्राप्त
होकर, वहा पर सारे जघन्य काल रह कर पूर्वोक्त दो गुणस्थानोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए
जीवके अन्तमुहूर्त काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल इक्कीस सागरोपम है ॥ ८९ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्यके इव्वसयमके बलसे इक्कीस सागरोपमकी आयुस्थितिपले
द्वयोंमें उपपन्न होकर मिथ्यात्वके साथ अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके मनुष्योंमें
उपपन्न होनेपले जीवके इक्कीस सागरोपमप्रमाण देवोंके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल
देखा जाता है ।

१ देवगती देवेषु मिथ्यादृष्टिनानाजीवपक्षया सर्व कालः । स वि १, ८

२ एक्कत्तव प्रति जवयेनान्तमुहूर्त । स वि १, ८

३ उत्कृष्टमिथ्यादृष्टिसागरोवमाणि । स वि १, ८

सासेणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

सन्वपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च
सन्वद्धा ॥ ९१ ॥

देवेषु असजदसम्मादिट्ठिविरह्दिदकालाभावा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा तिसोहियमेण सम्मत्त पडिवज्जिय सन्व-
जहण्णसम्मत्तद्धमच्छिय मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णदर गदस्स अतोमुहुत्तकालदसणादो ।

उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणिं ॥ ९३ ॥

उत्तंरुत्साउट्ठिदिदेवेषुप्पणमजदस्स भुजमाणाउअस्स घादाभावादो अप्पणो उक्कस्स-
ट्ठिदिं जीणिय मणुभेसु उप्पण्णदेअसजदसम्मादिट्ठिस्स तेत्तीम सागरोवममेत्तकालुत्तलद्धीए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥९०॥
क्योंकि, सर्व प्रकारसे, अर्थात् एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा, जघन्य और उत्कृष्ट
कालसे ओघप्ररूपणाके साथ कोई भेद नहीं है ।

असयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ९१ ॥

क्योंकि, देवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥९२॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके विशुद्धिके वशसे सम्यक्त्वको
प्राप्त होकर, वहा सर्व जघन्य सम्यक्त्वके कालप्रमाण रह करके, पश्चात् मिथ्यात्व अथवा
सम्यग्मिथ्यात्वमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल देखा
जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल तेतीस मागरोवम
है ॥ ९३ ॥

उत्कृष्ट आयुकी स्थितिधारक देवोंमें उत्पन्न हुए सयतके भुग्पमान आयुके घातका
अभाव होनेसे अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जीवित रह कर, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले
असयतसम्यग्दृष्टि देवके तेतीस मागरोवममात्र काल पाया जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टे सम्यग्मिथ्यादृष्टेभेदाभावात् काल । स सि १, ८ ।

२ असयतसम्यग्दृष्टेनाजीवोपेक्षा सर्व काल । स सि १, ८ ।

३ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । स सि १, ८ ।

४ उत्कृष्टेण वयस्सिद्धसागरोवमाणि । स सि १, ८ ।

पुच्युत्तजीवेहितो आगतूणं मणुसअपज्जत्तएसु उप्पण्णस्स अतोमुहुत्तादो उवरिम
कालवियप्पाणमुक्कस्साउट्ठिदिअपज्जत्तस्स वि अणुमलमा ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणा
जीवं पडुच्चं सब्बद्धां ॥ ८७ ॥

देवमिच्छादिट्ठिपिरहिदकालामाग ।

एगजीवं पडुच्चं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८८ ॥

असज्जदेसम्मादिट्ठिस्म सम्मामिच्छादिट्ठिस्म वा सकिलेसेण मिच्छत्त गतूणं सब्ब
जहण्णकालमच्छिय पुच्युत्तदोगुणद्वानाणमण्णदरं गदस्स अतोमुहुत्तमेत्तकालुमलमा ।

उक्कस्सेण एक्कत्तीस सागरोवमाणिं ॥ ८९ ॥

मणुसमिच्छादिट्ठिस्स दव्यसज्जमरलेण एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसुप्यग्निप
मिच्छत्तेण सह जप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय मणुमेसुपण्णस्स एक्कत्तीससागरोवममेत्त
देवमिच्छादिट्ठिकालदसणादो ।

क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंसे आकर लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके अन्त
मुहूर्त काल पाया जाता है, तथा अन्तमुहूर्तसे उपरिम कालके विकल्प उत्पन्न आयुस्थिति
पाले लक्ष्यपर्याप्तक जीवके भी नहीं पाये जाते ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ८७ ॥

क्योंकि, देवोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है ॥ ८८ ॥

असयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके, सर्वेशसे मिथ्यात्वको प्राप्त
होकर, वहा पर सत्र जघन्य काल रह कर पूर्वोक्त देव गुणस्थानोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए
जीवके अन्तमुहूर्त काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल इकतीस सागरोपम है ॥ ८९ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्यके द्रव्यसयमके बलसे इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिप्राप्त
देवोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके साथ अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके मनुष्योंमें
उत्पन्न होनेवाले जीवके इकतीस सागरोपमप्रमाण देवोंके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल
देखा जाता है ।

१ देवगती देवसु मिथ्यादृष्टेनानाजीवापेक्षया सर्वो कालः । स. सि १, ८

२ एकजीव प्रति जघ येनान्तमुहूर्तं । स. सि १, ८

३ उत्कृष्टेण इति सागरोवमाणि । स. सि १, ८

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

सच्यपर्यारोग औघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च

सव्वद्धा ॥ ९१ ॥

देवेषु असजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा तिमोहिपमेण सम्मत्त पडिवज्जिय सच्य-
जहण्णसम्मत्तदमन्थिय मिच्छत्त सम्मामिच्छत्ताणमण्णदर गदस्म अतोमुहुत्तकालदमणादो ।

उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणिं ॥ ९३ ॥

उर्वरुस्माउट्ठिदिदेरेसुप्पण्णमजदस्म भुजमाणाउअस्स घादाभावादो अप्पणो उक्कस्स-
ट्ठिदिं जीविय मणुमेषु उप्पण्णदेवअसजदसम्मादिट्ठिस्स तेत्तीस सागरोवममेत्तकालुत्तलद्धीए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥९०॥

क्योंकि, सर्व प्रकारसे, अर्थात् एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा, जघन्य और उत्कृष्ट कालसे ओघपरुषणके साथ कोई भेद नहीं है ।

असयतंसम्यग्दृष्टि देव जितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९१ ॥

क्योंकि, देवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥९२॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके विगुण्डिके चशसे सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, वहा सूर्य जघन्य सम्यक्त्वके कालप्रमाण रह करके, पश्चात् मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल देखा जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल तैत्तीस मांगरोपम है ॥ ९३ ॥

उत्कृष्ट वायुकी स्थितिधारक देवोंमें उत्पन्न हुए सयतके भुग्रेयमान वायुके घातका अभाव होनेसे अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जीवित रह कर, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले असयतसम्यग्दृष्टि देवके तैत्तीस मांगरोपममात्र काल पिया जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टे सम्यग्मिथ्यादृष्टे सामायोन काल । स-सि १, ८.

२ असयतसम्यग्देवोंकाजीवनेक्षया सब कालः । स-सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघनेनान्तर्मुहूर्त । स-सि १, ८

४ ३ केवल त्रयसिद्धसागरोवमानी । स-सि १, ८.

भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेषु मिच्छा
दिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सच्चद्धा ॥ ९४ ॥

तिण्ह पि कालाण देवमिच्छादिट्ठि अमजदसम्मादिट्ठिविरहिदाणमभाया ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त ॥ ९५ ॥

एदस्स अत्थो जथा देवोघमिह एदेसिं दोण्ह गुणद्वाणाण जहण्णकालपरूवणा बुत्ता,
तथा भवणवासियप्पहुडि जाव सदार महस्सारकप्पो ति मिच्छादिट्ठि-अमजदसम्मादिट्ठीण
जहण्णकालपरूवणा कादच्चा ।

उक्कस्सेण सागरोवम पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त दस चोइस
सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९६ ॥

एदस्सुदाहरण- एकको तिरिकखो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी भवणवासियदेवेषु
उत्तवण्णो । पलिदोवमस्स अमरोज्जदिभागवमहिथ सागरोवम जीविदूण मिच्छत्तेणव उत्त
--- --

भवनवासी देवोंसे लेकर शतार सहस्सार कल्पवासी देवों तक मिथ्यादृष्टि और
असत्यतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि देवोंसे विरहित तीनों ही कालोंका
भगवत् है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य
काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रका अर्थ, जैसा देवोंके ओषधमें इन दोनों गुणस्थानोंकी जघन्य कालपरूपणा
बही है उसी प्रकारसे भवनवासीको ब्यादि लेकर शतार सहस्सारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि
और असत्यतसम्यग्दृष्टि देवोंकी भी जघन्य कालकी परूपणा करना चाहिए ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल साधिक सागरोपम,
साधिक पर्योपम, साधिक दो सागरोपम, साधिक सात सागरोपम, साधिक दस
सागरोपम, साधिक चौदह सागरोपम, साधिक सोलह सागरोपम और साधिक अठारह
सागरोपम है ॥ ९६ ॥

इसका उदाहरण— एक तिर्यक् अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव भवनवासी देवोंमें
उत्पन्न हुआ । यहाँ पर पर्योपमके असत्यातर्षे भागसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर

द्विदो । एसो मिच्छादिद्विणो बद्धआउअघाद पडुच्च कालो बुत्तो । अधमा, अतोमुहुत्तूण-
अद्धसागरोपमेण सादिरंगं सागरोपम जीविदूण उव्वद्विदो । एमो सम्मादिद्विणो बद्ध-
आउअघाद पडुच्च उत्तो । एसो भगगनासियमिच्छादिद्वि उक्कस्सकालो । एक्को निरा-
हियसंजदो वेमाणियदेवेषु आउअ वधिदूण तमोवट्टणाघादेण घादिय भगगनासियदेवेषु
उपपण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१) तिससंतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्त
पडिवण्णो । अतोमुहुत्तूणसागरोपमद्वेण अहियं सागरोपम तीहि अतोमुहुत्तेहि ऊणयं
सम्मत्तेण सह जीविदूण उव्वद्विय मणुमो जादो । एसो भगगनामियअसजदसम्माद्विदिसस
उक्कस्सकालो । वाणवेंतर-जोदिसियाण पि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि अतोमुहुत्तूणपलिदो-
वमद्वेण अहिय पलिदोवम मिच्छउक्कस्सकालो होदि । एसो चेव कालो तीहि अतो
मुहुत्तेहि ऊणओ असजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्सकालो होदि । सोघम्मीसाणे मिच्छा-
दिद्विस्स उक्कस्सकालो वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्म असखेज्जदिभागेण अन्नहियाणि ।
एसो मिच्छादिद्विणो बद्धाउअस्स घाद पडुच्च कालो बुत्तो । सम्मादिद्विणो बद्धदेवाउअघादं
पडुच्च अतोमुहुत्तूणअद्धसागरोपमेण अन्नहियाणि वे सागरोपमाणि मिच्छउक्कस्सकालो

मिथ्यात्वके साथ ही पर्यायसे च्युत हुआ । यह मिथ्यादृष्टि जीवका बद्ध आयुष्कघातकी अपेक्षा
काल कहा । अथवा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हुआ । यह सम्यग्दृष्टि जीवका बद्धायुष्कघातकी अपेक्षा काल कहा । इस
प्रकार यह भजनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल है । विराधना की है सयमकी जिसने
पेक्षा कोई सयत मनुष्य वैमानिक देवोंमें आयुको घाघ करके उसे उद्धर्तनाघातसे घात करके
भजनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । ओर छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता हुआ (१) विधान्त
हो (२), विमुद्ध होकर (३), सम्यक्कारको प्राप्त हुआ । पुन अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरो-
पमसे अधिक तथा तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम एक सागरोपम काल सम्यक्त्वके साथ जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हो मनुष्य हुआ । यह भजनवासी असपतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल है ।
पानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका भी इसी प्रकारसे काल कहना चाहिए । विशेषता यह
है कि एक अन्तर्मुहूर्तसे कम आधे पल्लोपमसे अधिक एक पल्लोपम व्यन्तर और ज्योतिष्क
देवोंमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है । यह उपर्युक्त काल ही तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करने
पर असपतसम्यग्दृष्टि व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका उत्कृष्ट काल हो जाता है । सौघर्म और
ईशानकर्ममें मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट काल पल्लोपमके असखयातवें भागसे अधिक दो
सागरोपम है । यह मिथ्यादृष्टिके बद्धायुके घातकी अपेक्षा काल कहा । सम्यग्दृष्टि जीवके
बद्धदेवायुके घातकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम
मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है ।

भ्रमणवासिपपहुडि जाव सदार-सहस्रारकप्पवासियदेवेषु मिच्छा
दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हाति, णाणाजीव पडुच्च
सच्चद्धा ॥ ९४ ॥

तिण्ह पि कालाण देवमिच्छादिट्ठि-अमजदसम्मादिट्ठिविरहिदाणमभारा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ॥ ९५ ॥

एदस्म अत्थो जघा देवोधन्दि एदेसिं दोण्ह गुणद्वानाण जहण्णकालपरूणा बुत्ता,
तहा भ्रमणवासिपपहुडि जाव सदार सहस्रारकप्पो त्ति मिच्छादिट्ठि अमजदसम्मादिट्ठीण
जहण्णकालपरूणा कादव्या ।

उक्त्सेण सागरोवम पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त दस चोदस
सोलस अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९६ ॥

एदस्सुदाहरण- एकको तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी भ्रमणवासिपदेवेषु
उपवण्णो । पलिदोवमस्स असरेज्जदिभागमहिंयं सागरोवम जीविदूण मिच्छत्तेण उ

भवनवासी देवोंसे लेकर शतार सहस्रार कल्पवासी देवों तक मिथ्यादृष्टि और
असत्यतत्त्वम्यगृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असत्यतत्त्वम्यगृष्टि देवोंसे विरहित तीनों ही बालोंका
भगवाय है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असत्यतत्त्वम्यगृष्टि देवोंका जघन्य
काल अन्तर्भूत है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रका अर्थ, जैसा देवोंके अर्थमें इन दोनों गुणस्थानोंकी जघन्य कालपरूणा
बद्धी है उसी प्रकारसे भवनवासीको आदि लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि
और असत्यतत्त्वम्यगृष्टि देवोंकी भी जघन्य कालकी परूणा करना चाहिये ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असत्यतत्त्वम्यगृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल साधिक सागरोवम,
साधिक पल्लोपम, माधिक दो सागरोवम, साधिक सात सागरोवम, साधिक दस
सागरोवम, साधिक चौदह सागरोवम, साधिक सोलह सागरोवम और माधिक अठारह
सागरोवम है ॥ ९६ ॥

इसका उदाहरण- एक तिरिच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव भवनवासी देवोंमें
कल्पन हुआ। चहा पर पल्लोपमके असत्यातत्त्वें भागसे अधिक एक सागरोवम तक जीवित रह कर

द्विदो । एसो मिच्छादिद्विणो बद्धआउअघाद पडुच्च कालो बुत्तो । अधया, अतोमुहुत्तण-
अद्धसागरोपमेण सादिरेग्गं सागरोपम जीविदूण उव्वद्विदो । एमो सम्मादिद्विणो उद्ध-
आउअघादं पडुच्च उत्तो । एसो भगगामियमिच्छादिद्वि-उक्कस्सकालो । एकको विरा-
हियसजदो वैमाणियदेत्सेसु आउअ वधिदूण तमोवट्टणाघादेण घादिय भवणवासियदेवसेसु
उववण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१) निस्सतो (२) तिसुद्धो (३) सम्मत्तं
पडिवण्णो । अतोमुहुत्तणसागरोपमद्वेण अहिय सागरोपम तीहि अतोमुहुत्तेहि ऊणय
सम्मत्तेण सह जीविदूण उव्वद्विय मणुमो जादो । एसो भवणवामियअसजदमम्माद्विद्विस्स
उक्कस्सकालो । वाणवेंतर-जोदिसियाण पि एवं चैव उत्तव्व । णपरि अतोमुहुत्तणपलिदो-
वमद्वेण अहिय पलिदोपम मिच्छत्तुक्कस्सकालो होदि । एसो चैव कालो तीहि अतो
मुहुत्तेहि ऊणओ असजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्सकालो होदि । सोधम्मीसाणे मिच्छा-
दिद्विस्स उक्कस्सकालो वे मागरोपमाणि पलिदोपमस्म असत्तेज्जदिभागेण अब्भहियाणि ।
एसो मिच्छादिद्विणो बद्धाउअस्स घाद पडुच्च कालो बुत्तो । सम्मादिद्विणो बद्धदेवाउअघादं
पडुच्च अतोमुहुत्तणअद्धसागरोपमेण अब्भहियाणि वे सागरोपमाणि मिच्छत्तुक्कस्सकालो

मिथ्यात्वके साथ ही पर्यायसे च्युत हुआ । यह मिथ्यादृष्टि जीवका बद्ध आयुष्कघातकी अपेक्षा
काल कहा । अथवा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हुआ । यह सम्यग्दृष्टि जीवका उद्धायुष्कघातकी अपेक्षा काल कहा । इस
प्रकार यह भजनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल है । विराधना की है समयकी जिसने
पेसा कोई समयत मनुष्य वैमानिक देवोंमें आयुको बाध करके उसे उद्वर्तनाघातसे घात करके
भजनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । और छद्मों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता हुआ (१) विश्रान्त
हो (२), निगुद्ध होकर (३), सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुन अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरो-
पमसे अधिक तथा तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम एक सागरोपम काल सम्यक्त्वके साथ जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हो मनुष्य हुआ । यह भजनवासी असयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल है ।
यानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका भी इसी प्रकारसे काल कहना चादिए । विशेषता यह
है कि एक अन्तर्मुहूर्तसे कम आधे पत्योपमसे अधिक एक पत्योपम व्यन्तर और ज्योतिष्क
देवोंमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है । यह उपर्युक्त काल ही तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करने
पर असयतसम्यग्दृष्टि व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका उत्कृष्ट काल हो जाता है । सौचर्म और
ईशानकल्पमें मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट काल पत्योपमके असद्व्यातर्धे भागसे अधिक हो
सागरोपम है । यह मिथ्यादृष्टिके बद्धायुके घातकी अपेक्षा काल कहा । सम्यग्दृष्टि जीवके
बद्धदेवायुके घातकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम
मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है ।

होदि । ' वे सत्त दस' चोइस सोलमट्टारस य वीस वाणीसा' एदीए गाहाए सह एदस्म सुत्तस्म क्रिण्ण निरोहो होदि ? ण होदि निरोहो, भिण्णविसयत्तादो । त जहा— वुत्त सुत्त वधप्पडिबद्ध, कालमुत्त पुण सतमपेत्तिअय द्विदमिदि' । सणक्कुमार माहिंदे मत्त सागरो वमाणि सादिरेयाणि । बम्ह बम्हुत्तरकप्पे दम सागरोपमाणि सादिरेयाणि । लतव कापिट्ट कप्पे चोइस सागरोपमाणि सादिरेयाणि । सुक्क महासुक्केसु सोलम सागरोपमाणि सादिरे याणि । सदर सहस्सारकप्पेसु अट्टारस सागरोपमाणि सादिरेयाणि । जथा दोहि पयारेहि सोधम्मीसाणे सादिरेयत्त परुत्तिद, तथा एत्थ नि वत्तव्व । सोधम्मादि जाय सहस्मारो ति अमज्जदसम्मादिद्विस्म उक्कस्मकालो वे सत्त दम चोइस सोलम अट्टारस सागरोपमाणि अतोमुहुत्तणअट्टमागरोपमेण सादिरेयाणि होति', एदस्म हेट्टदो सम्मादिद्विस्सुववादाभावा ।

शुक्रा—' सौधर्म ईशानकल्पसे लगाकर आरण अच्युत कल्प तक क्रमश 'दो, सात, दश, चौदह, सोलह, अठारह, बीस और बाइस सागरोपमकी स्थिति होती है' इस गाथाके साथ, इस उक्त सूत्रका निरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—विरोध नहीं होगा, क्योंकि, सूत्र और गाथा, इन दोनोंका विषय भिन्न भिन्न है । यह इस प्रकारसे है कि उक्त गाथासूत्र तो धधकी अपेक्षा है, किन्तु कालसूत्र विद्यमान आयुकी अपेक्षा स्थित है ।

सानत्कुमार माहेन्द्र कल्पमें कुछ अधिक सात सागरोपम, ब्रह्म ज्योत्तर कल्पमें साधिक दश सागरोपम, लातव कापिट्ट कल्पमें साधिक चौदह सागरोपम, शुक्र महाशुक्र कल्पमें साधिन सोलह सागरोपम, और शतार सहस्वार कल्पमें साधिक अठारह सागरोपम मिथ्यादृष्टियोंका उत्पृष्ट काल है । जिस तरह दोनों प्रकारोंसे सौधर्म और ईशान कल्पमें आयुकी साधिनता प्ररूपण की है, उसी प्रकार यथा पर भी कहना चाहिए । सौधर्म कल्पको आदि लेकर सहस्वार कल्प तक असयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्पृष्ट काल क्रमश एक अन्त मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, चौदह सागरोपम, सोलह सागरोपम और अठारह सागरोपम प्रमाण होता है, क्योंकि, इस कालके नीचे सम्यग्दृष्टि जीवके उपपादका अभाव है ।

१ प्रतिपु ' दम ' इति पाठो नास्ति ।

२ ५२मे त्रिदिप उगल बम्हादिस चउसु आयदइगभि । आरणइग सुदसणपहुदिसु एकारसेसु कमे । दुग सत्त दस चउदस सोलस अट्टारस वीस वाचीसा । तवो एककइदा उक्कस्माउ सपुणउवमाणा । ति प ८, ४५८ ४५९

३ बदाउ पडि मणिद उक्कस्म मा' त्तमं जइण्णाणि । वादाउवमान' व अण्णररुण परुवेमो । ति प ८, ४९१

४ सग्गे पादउण सायरदलमइयमाउहरसारा । जलहिदलपुडुवराउ पडल पाडे जाण' हाणिचय । ति प ५३३

सासणसम्मादिट्ठी सम्माभिच्छादिट्ठी ओवं ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुमो परुपिदत्तादो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेषु मिच्छादिट्ठी असंजद-

सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा ॥९८॥

कुदो ? एदेषु मिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठिविरह्दिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९९ ॥

विशेषार्थ—यद्वा पर जो बद्ध आयुघातकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवोंके दो प्रकारके कालकी प्ररूपणा की है, उसका अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्यने अपनी सयम अवस्थामें देवायुका वध किया । पीछे उसने सङ्केदा परिमाणोंके निमित्तसे सयमकी विराधना कर दी और इसीलिए अपवर्तनाघातके द्वारा आयुका घात भी कर दिया । सयमकी विराधना कर देने पर भी यदि वह सम्यग्दृष्टि है, तो मर कर जिस कल्पमें उत्पन्न होगा, वहाकी साधारणतः निश्चित आयुसे अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमप्रमाण अधिक आयुका धारक होगा । कल्पना कीजिए— किसी मनुष्यने सयत अवस्थामें अच्युतकल्पमें सभय यार्हस सागरप्रमाण आयुका वध किया । पीछे सयमकी विराधना और याधी हुई आयुकी अपवर्तना कर असयतसम्यग्दृष्टि हो गया । पीछे मरण कर यदि सहस्रारकल्पमें उत्पन्न हुआ, तो वहाकी साधारण आयु जो अठारह सागरकी है, उससे घातायुष्क सम्यग्दृष्टि देवकी आयु अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर अधिक होगी । यदि वही पुरुष सयमकी विराधनाके साथ ही सम्यक्त्वकी भी विराधना कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है और पीछे मरण कर उसी सहस्रारकल्पमें उत्पन्न होता है, तो उसकी आयु वहा की निश्चित अठारह सागरकी आयुसे पल्योपमके असत्प्रायतर्धे भागसे अधिक होगी । ऐसे जीवको घातायुष्क मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

भवनवासीसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९७ ॥

आनत प्राणतऋणसे लेकर नव ग्रैयेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९८ ॥

फ्योंकि, इन कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानरती देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९९ ॥

एदस्त सुत्तस्स अत्थो सुगमो, विहुमो परनिदचादो ।

उक्कस्सेण वीसं चावीसं तेवीसं चउवीस पणवीसं छव्वीसं सत्ता-
वीसं अट्ठावीस एगूणतीसं तीसं एककत्तीस सागरोवमाणि ॥ १०० ॥

एदसु एक्कारससु उक्कस्साउअ चधिय अप्पप्पणो देवेसुप्पज्जिय आउट्ठिदिमणु-
पालिय मणुसेसुप्पणमिच्छादिट्ठि असंजदमम्मादिट्ठीणमप्पप्पणो घुत्तुक्कस्सकालुवलभा ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघ ॥ १०१ ॥

ओघादो णाणेगजीव पडुच्च भेदाभाया ।

अणुद्दिस-अणुत्तरविजयचइजयत जयंत अवराजिदविमाणवासिय-
देवेसु असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ १०२ ॥

कुदो ? असजदसम्मादिट्ठिविरहितेरसण्ह विमाणण सच्चकालमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एककत्तीसं, वत्तीसं सागरोवमाणि सादि-
र्याणि ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, बहुतवार पढ़ले प्ररूपण किया जा चुका है ।

उक्त कल्पवासी देवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बीस, चाईस, तेईस, चौबीस,
पचीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम है ॥१००॥

इन सूत्रोक्त कारण अच्युतादि ग्यारह कल्पोंमें उत्कृष्ट आयुको बाधकर और देवोंमें
उत्पन्न होकर, अपनी अपनी आयुस्वितिको परिपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले
मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अपने अपने कल्पका कदा गया उत्कृष्ट काल
पाया जाता है ।

उक्त ग्यारह कल्पोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल
ओघके समान है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, ओघसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा इनके कालमें फेर भेद नहीं है ।

अनुदिश विमानवासी देवोंमें तथा अनुत्तरनामक विजय, वैजयन्त, जयन्त और
अपराजित विमानवासी देवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १०२ ॥

क्योंकि, असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित उक्त तेरह विमान किसी भी कालमें
नहीं पाये जाते हैं ।

नौ अनुदिश विमानोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल सातिरेक इकतीस
सागरोपम और चार अनुत्तर विमानोंमें साधिक बत्तीस सागरोपम है ॥ १०३॥ ।

कुदो ? गुणंतरं संकंतीए जभावादो । एत्थ सादिरियपमाणेमैगो समओ, हेट्टिल्लु-
क्कस्मट्टिदी समयाहिया उवरिल्लाण जहण्णट्टिदी होटि ति आडरियपरंपरागदुवदेमादो ।

उक्कस्सेण वत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ १०४ ॥

णवसु हेट्टिमेसु अणुदिसत्रिमाणेसु वत्तीस सागरोवमाणि । चहुसु अणुत्तरत्रिमाणेसु
तेत्तीसं सागरोवमाणि सपुण्णाणि, सुत्ते हि ऊणाहियवयणामाया ।

सव्वट्टुसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्टी केवचिरं
कालादो होत्ति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०५ ॥

तिसु वि कालेसु तत्थ असंजदसम्मादिट्टिनिरहाभाया ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०६ ॥

पुथ सुत्तारभादो चेव णव्वदे मव्वट्टुसिद्धिभिह जहण्णुक्कस्मट्टिदी सरिसा ति ।
पुणो जहण्णुक्कस्मगहण किमट्ट कीरटे ? ण तस्स मदवुद्धिजणार्थुंग्गहट्टत्तादो ।

एव गदिमग्गणा समत्ता ।

क्योंकि, इन विमानोंमें अन्य गुणस्थानके सक्रमणका अभाव है। यहाँ पर सातिरेक
(साधिक) का प्रमाण एक समय है, क्योंकि, एक समय अधिक नीचेके विमानकी उत्कृष्ट
स्थिति ही ऊपरके विमानकी जघन्य स्थिति होती है, ऐसा आचार्य परम्परागत उपदेशसे
जाना जाता है।

उक्त विमानोंमें उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे वत्तीस सागरोपम और तेत्तीस
सागरोपम है ॥ १०४ ॥

अवस्तन नो अनुदिश विमानोंमें पूरे वत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है। चारों
अनुत्तरविमानोंमें पूरे तेत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, सूत्रमें हीन और
अधिकताके प्रतिपादक वचनका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तरु होते
हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०५ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें वहा, अर्थात् सर्वार्थसिद्धिमें, असयतसम्यग्दृष्टि देवोंके
विरहका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागरोपम
है ॥ १०६ ॥

शंका—पृथक् सूत्रके आरम्भसे ही जाना जाता है कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और
उत्कृष्ट स्थिति सहश है। फिर भी सूत्रमें जघन्य और उत्कृष्ट पदका ग्रहण किस लिए किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस पदका ग्रहण मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिए
किया गया है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इंद्रियाणुवादेण एंड्रिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्धा' ॥ १०७ ॥

तिसु वि कालेषु एइदियाण निरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण' ॥ १०८ ॥

अणेइदियस्म एइदिएसुप्पज्जिय सच्चजहण्णमेइदियद्धमच्छिय अणेइदिए उप्पण्णस्स
खुद्दामग्गहणमेत्तएइदियकालुत्तलमा ।

उक्कस्सेण अणत्तकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं' ॥ १०९ ॥

अणेइदिओ षइदिएसुप्पज्जिय अदिवहुअ काल जदि अच्छदि तो आगलियाए
असखेज्जदिभागमेत्ताणि चेय पोग्गलपरियट्टाणि अच्छदि । कुदो ? एदग्गहो उवरी
अच्छणसत्तीए अभावा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादमे एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल सुदृढभयग्रहणप्रमाण
है ॥ १०८ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियसे रहित अन्य हीन्द्रियादिक जीवका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर,
सर्वजघय एकेन्द्रिय जीवकी आयुके कालप्रमाण रह करके, पुन एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य
हीन्द्रियादि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके सुदृढभयग्रहणप्रमाण एकेन्द्रिय जीवका काल
पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक
असख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १०९ ॥

एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य कोई जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर यदि अत्यधिक काल
रहता है, तो आचलकी असख्यातयें भागमात्र ही पुद्गलपरिवर्तन रहता है, क्योंकि, इस उक्त
कालसे ऊपर एकेन्द्रियोंमें रहनेकी शक्तिका अभाव है ।

१ इंद्रियाणुवादेण एकद्रियाणां नानाजीवोपेक्षया सर्व काल । स ति १, ८

२ एकजीव प्रति जघयन सुदृढभयग्रहणम् । स ति १, ८

३ उत्कृष्टेनान्त कालोऽसख्यात पुद्गलपरिवर्तना । स ति १, ८

वादरएङ्गदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ११० ॥

वादेरेङ्गदियविरहिदकालाभावादो । किमद्दु तेमि णत्थि विरहो ? सहावादो ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ १११ ॥

अणेङ्गदियस्म सुहुमेङ्गदियस्स वा वादेरेङ्गदिएसु सव्वजहण्णाउउएसुप्पज्जिय अण्णि-
दियं गदस्स खुदाभग्गहणमेत्तनादेरेङ्गदियभग्गद्विदीए उउलभा ।

उक्कस्सेण अगुलस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जासंखेज्जाओ
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ११२ ॥

अगुलस्म असखेज्जदिभागो अणेयमियप्पो चि कडु पदरावलिआदिहेट्टिमिय-
प्पाण पडिसेह कादूण उवरिमियप्पगहणद्दु जमखेज्जासखेज्जाणि चि णिहेसो कदो ।
पदर पल्लादिउउरिमियप्पपडिसेहद्दु ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिणिहेसो कदो । अणेङ्गदियो सुहुमे-
ङ्गदियो वा वादेरेङ्गदिएसु उप्पज्जिय तत्थ जदि सुहु महल्लं कालमच्छदि तो अमखेज्जा-

वादर एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ११० ॥

क्योंकि, वादर एकेन्द्रिय जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

शुद्धा—उनका विरह क्यों नहीं होता है ?

समाधान—क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा वादर एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभग्गहणप्रमाण
है ॥ १११ ॥

क्योंकि, किसी अन्य द्वीन्द्रियादि जीवका, अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका सर्व
जघन्य आयुवाले वादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पुन अन्य द्वीन्द्रियादिमें उत्पन्न हुए जीवके
क्षुद्रभग्गहणप्रमाण वादर एकेन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा वादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातमें
भागप्रमाण असंख्यातासख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण है ॥ ११२ ॥

अंगुलका असख्यातभाग अनेक निरूपरूप है, इसलिये प्रतरावली आदि
अर्धस्तन विकल्पोंका प्रतिषेध करके उपरिम विकल्पोंके ग्रहण करनेके लिए सूत्रमें 'अस
ख्यातासख्यात' ऐसा निर्देश किया । प्रतर, पर्य आदि उपरिम 'विकल्पोंके प्रतिषेध करनेके
लिए अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी' इस पदका निर्देश किया है । अन्य द्वीन्द्रियादि अथवा
सूक्ष्म एकेन्द्रिय कोई जीव वादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, चक्षा पर यदि अति दीर्घकाल

१ त्रिविध 'पदरावलिआओ' इति पाठ ।

संखेज्जाओ ओसप्पिणि उस्सप्पिणीओ अच्छदि । पुणो णिच्छएण अण्णत्थ गच्छदि त्ति जं
 वुत्त होदि । कम्मद्विदिमात्रलियाए असखेज्जदिभागेण गुणिदे वादरद्विदी जादा त्ति परि
 यम्मवयणेण सह एद सुत्त रिरुज्जदि त्ति णेदस्स ओक्खत्त, सुत्ताणुसारि परियम्मवयण
 ण होदि त्ति तस्सेव ओक्खत्तप्पसगा ।

वादरेइदियपज्जता केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च
 सब्बद्धा ॥ ११३ ॥

कुदो ? वादरेइदियपज्जत्ताण तिसु पि कालेसु विरहाभावा ।

एगजीव पडुच्च जहणणेण अतोमुहुत्तं ॥ ११४ ॥

खुद्दाभवग्गहण संखेज्जावलियमेत्त, एग मुहुत्त छासद्विसहस्स तिसद-च्छत्तीसरूव
 मेत्तखडाणि कादूण एगसडमेत्तत्तादो । एद पि कथ णव्वदे ?

तिग्णि सया उत्तीसा छान्दि सहस्स चेव मरणाइ ।

अतोमुहुत्तकाले तात्रदिया होति खुद्दभावा ॥ ३५ ॥

तक रहता है, तो असख्यातासख्यात अवसर्पिणी ओर उरसर्पिणी तक रहता है। पुन निश्चयसे
 अयत्र चला जाता है, ऐसा अथ कहा गया समझना चाहिए ।

शुका—'कमस्थिति-को आवलीके असख्यातवें भागसे गुणा करने पर वादर स्थिति
 होती है' इस प्रकारके परिकर्म घचनके साथ यह सूत्र विरोधको प्राप्त होता है ?

समाधान—परिकर्मके साथ विरोध होनेसे इस सूत्रके अवक्षिप्तता (विरुद्धता)
 नहीं प्राप्त होती है; किन्तु परिकर्मका उक्त घचन सूत्रका अनुसरण करनेवाला नहीं है,
 इसलिये उसके ही अवक्षिप्तताका प्रसंग आता है ।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
 सर्वकाल होते हैं ॥ ११३ ॥

क्योंकि, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
 है ॥ ११४ ॥

धुद्रभयग्रहणका काल सख्यात आवलीप्रमाण होता है, क्योंकि, एक मुहूर्तके छयासठ
 हजार तीन सौ छत्तीस रूपप्रमाण खड करने पर एक खडप्रमाण धुद्रभवका काल होता है ।

शंसा—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—एक अन्तर्मुहूर्त कालमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते
 हैं, और इतने ही धुद्रभय होते हैं ॥ ३५ ॥

१ छयासठ तिग्णि सया छान्दिसहस्रवारमरणाणि । अतोमुहुत्तकाले पचोत्ति विगोयवासम्मि ॥ भावना १६ ।

त्ति गाहासुत्तादे । मुहुत्तस्स एवदिक्कभागो संखेज्जाणलियमेत्तो त्ति कथं णव्वदे ?

आणलिय अणागारे चक्किंउदिक्क-सोद-धाण-निहाण ।

मण-वयण ञायफासे अणाय-ईहासुदुत्तासे ॥ ३६ ॥

केणउदसग-णाणे कमायसुक्केक्कए पुणत्ते य ।

पडिणादुणसामेत्तय खवेत्तए सपराए य ॥ ३७ ॥

माणद्धा कोधद्धा मायद्धा तह चैव लोभद्धा ।

खुदभणगाहण पुण निहीतरण च बोद्धव्व^१ ॥ ३८ ॥

इस गाथासूत्रसे जाना जाता है कि क्षुद्रभवका काल अन्तर्मुहूर्तका छयासठ हजार तीन सौ छत्तीसवा भाग है ।

शंका—मुहूर्तका छयासठ हजार तीन सौ छत्तीसवा भाग सख्यात आवलीप्रमाण होता है, यह कैसे जाना ?

समाधान—अनाकार दर्शनोपयोगका जघन्य काल आगे कहे जानेवाले सभी पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है । (तथापि वह सरयात आवलीप्रमाण है ।) इससे चक्षुरिन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्य काल विशेष अधिक है । इससे, धोषेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे प्राणेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे जिह्वेन्द्रियजनित अग्रग्रहज्ञान, इससे मनोयोग, इससे पचनयोग, इससे काययोग, इससे स्पर्शनेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे अवायज्ञान, इससे ईहाज्ञान, इससे श्रुतज्ञान और इससे उच्छ्वास, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३६ ॥

तद्भवस्थ केजलीके केवलज्ञान और केवलदर्शन, तथा सकपाय जीवके शुक्लेष्ट्या, इन तीनोंका जघन्य काल (परस्पर सदश होते हुए भी) उच्छ्वासके जघन्य कालसे विशेष अधिक है । इससे एकत्ववितर्कअवाचारशुक्लध्यान, इससे पृथक्त्ववितर्कवाचारशुक्लध्यान, इससे उपशमश्रेणीसे गिरनेवाले सूक्ष्मसाम्परायसयत, इससे उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्परायसयत, और इससे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्परायसयत, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३७ ॥

क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके जघन्य कालसे मानरूपाय, इससे क्रोधरूपाय, इससे मायारूपाय, इससे लोभरूपाय और इससे लज्जपयती जीवके क्षुद्रभवग्रहणका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है । क्षुद्रभवग्रहणके जघन्य कालसे कृष्टीकरणका जघन्य काल विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

इति ग्राह्यासुतादौ । अतोमुद्रुत्त पि मखेञ्जापलियमेत्त चेष, तदो एदेसि दोण्डं
 निसेसो णत्थि चि अतोमुद्रुत्तयण सुत्तरथ सदेहमुत्पादेदि चि' युत्ते णत्थि संदेहो,
 सुदाभनग्गहणमभणिय अतोमुद्रुत्तमिदि भणिदजिणाणादो ताण निसेसो अत्थि चि अब
 गम्मदे । घादसुदाभनग्गहणादो वादरेइदियपज्जत्तजहण्णाउअं सखेज्जगुणमिदि भणिद
 वेअणकालविधानअप्पानहुगादो य । वादरेइदियपज्जत्तत्तदिरित्तो सखेज्जहण्णाउअवादेरे-
 इदियपज्जत्तएसु उत्पज्जिनय जणत्तथ गदे वादरेइदियपज्जत्तस जहण्णकालो लब्भदि चि
 भणिदं होदि ।

उक्कस्सेण सखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ११५ ॥

पुढनिकाइएसु वापास वाससहस्साणि उक्कस्माउअ सुप्पसिद्धमत्थि । वादरेइदिय
 पज्जत्तभग्गिदी अमखेज्जनासमत्ता ऋण्ण होदि चि युत्ते ण होदि, तत्थासखेज्जवार-

इत गावान्नोंसे जाना जाता है कि सुद्रभयका काल भी सख्यात आयुलीप्रमाण
 होता है ।

शुद्धा—अतमुद्रुत्त भी तो सख्यात आयुलीप्रमाण ही होता है, इसलिए अतमुद्रुत्त
 और सुद्रभयग्रहण काल इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है । अतएव यह अतमुद्रुत्तका घचनरूप
 स्यात् सदेहको उत्पन्न करता है ?

समाधान—इसमें कोई सदेह नहीं है, क्योंकि, हममें 'सुद्रभयग्रहण' ऐसा पाठ
 न करके 'अतमुद्रुत्त' ऐसा घचन कहनेवाली जिं भाषासे उन दोनोंमें भेद जाना जाता
 है । तथा, 'घातसुद्रभयग्रहणकालसे वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवकी जघय आयु
 सख्यातगुणी है' इस प्रकारके कहे गये वेदनाकालविधानसम्बन्धी अल्पबहुत्वद्वारासे भी
 जाना जाता है ।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे व्यतिरिक्त किसी जीवके सर्व जघय आयुवाले वादर
 एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, पुन अय पर्यायमें चले जाने पर, वादर एकेन्द्रिय
 पर्याप्तका जघय काल पाया जाता है, ऐसा अब कहा गया समझना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल सख्यात
 हजार वर्ष है ॥ ११५ ॥

पृथिवीवायिन जीवोंमें वाइस हजार वर्षकी उत्कृष्ट आयु सुप्पसिद्ध है ।

शुद्धा—वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असख्यात वर्षप्रमाण क्यों
 नहीं होती है ?

समाधान—नहीं होती है, क्योंकि, उनमें असख्यातवार एक जीवकी उत्पात्ति

१ प्रातयु 'सुप्पादत्ति' इति पाठ ।

२ प्रातयु 'सुवासिद्ध' इति पाठ ।

३ प्रातयु 'जहण्णाउअ' इति पाठ ।

मेगजीवस्त उपपत्तीए असंभवा । उक्तस्तसरोज्जमेचं तस्त सरोज्जभागमेच वा वारं
जदि उपपज्जदि तो वि असरोज्जाणि वस्साणि होंति चि वुत्ते ण होंति, सखेज्जाणि
वाससहस्साणि चि सुत्तण्णहाणुपत्तीदो तप्पाजोग्गसरोज्जमारुप्पत्तिमिद्धीए । अणप्पिदो
वादेरेइंदियपज्जत्तएसु सरोज्जाणि वाससहस्साणि उक्तस्सेण तत्थ परिभमिय पुणो अण-
प्पिदेषु णिच्छएण उपपज्जदि चि भणिद होदि ।

वादेरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, गाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ११६ ॥

कुदो ? एदेमिं सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्धाभवग्गहणं ॥ ११७ ॥

कुदो ? अपज्जत्तएसु जहणियाए आउट्टिदीए तत्तियमेत्ताए' उवलंमा ।

उक्तस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

कुदो ? अणप्पिदिंदिओ वादेरेइंदियअपज्जत्तएसु उपपज्जिय जदि वि सरोज्ज-

असंभव है ।

शुक्रा— यदि कोई जीव वादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट सख्यातप्रमाण वार, अथवा उसके
सरयातवें भागप्रमाण वार उत्पन्न होता है, तो भी असरयात वर्ष तो हो ही जाते हैं ?

समाधान— नहीं होते हैं, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय, तो वादर एकेन्द्रिय
जीवोंका उत्कृष्ट काल 'सरयात हजार वर्षप्रमाण है' यह खूब वचन नहीं बन सकता है ।
इसलिए तत्प्रायोग्य सरयातवार ही वादर एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सिद्ध होती है ।

अविचक्षित कोई जीव वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सरयातसहस्र
वर्षप्रमाण अधिकसे अधिक काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुन अविचक्षित जीवोंमें
निश्चयसे उत्पन्न होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

वादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११६ ॥

पर्योकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ११७ ॥

पर्योकि, लब्धपर्याप्तक जीवोंमें जघन्य आयुकी स्थिति उतनेमान अर्थात् क्षुद्रभव,
ग्रहणप्रमाण ही पाई जाती है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११८ ॥

पर्योकि, अविचक्षित इन्द्रियवाला कोई जीव वादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंमें

१ प्रविष्टु ' तत्तियमेत्ता ' इति पाठ ।

सहस्रवार तत्थेव तत्थेव उप्पज्जदि, तो वि तेसु सब्बेसु अतोमुहुत्तेसु एगद्ध कदेसु वि एगमुहुत्तपमाणाभावा ।

सुहुमएइदिया केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११९ ॥

कुदो ? सच्चद्धा सुहुमेइदियविरहाभावा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ १२० ॥

अणप्पिदिदियस्म सुहुमेइदियजपज्जत्तएसु सच्चजहण्णकालमच्छिय अणप्पिदिदिय गदस्स खुदाभवग्गहणुत्तलभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १२१ ॥

त जहा- अण्णिदिद्विहो आगतूण सुहुमेइदियसुप्पज्जिनय असंखेज्जलोगमेत्त तेषि षुक्कस्सभगद्धिदि तत्थ गमिय अण्णिदिय गच्छदि । कुदो ? हेउसरूग्गजिणयणोवलमादो ।

सुहुमेइदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२२ ॥

उत्पन्न होकर यद्यपि सरयात सहस्रवार उन उनमें ही उत्पन्न होता है, तथापि उन सभी अन्तर्मुहूर्तोंके एकत्रित करने पर भी एक मुहूर्तप्रमाणका अभाव है, अथात् फिर भी पूरा एक मुहूर्त नहीं होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके विश्रहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १२० ॥

क्योंकि, आवरक्षित इन्द्रियवाले जीवके सूक्ष्म एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तकोंमें स जघन्य काल रह करके अविश्रित इन्द्रियवाले जीवोंमें गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असरयात लोकरुके जितने प्रदेश है, तत्प्रमाण है ॥ १२१ ॥

जैसे, अविश्रित अथ इन्द्रियवाले जीवोंस आकर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर कोई जीव असरयात लोकरुप्रमाण उनकी उत्कृष्ट भवस्थितिको वदा पर विताकर अन्य इन्द्रियवाले जीवोंमें चला जाता है, क्योंकि, इस प्रकारके हेतुस्वरूप जिन वचन पाये जाते हैं

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२२ ॥

सन्वद्वासु त्रिरहाभासा । सो नि ऋध णव्यदे ? अण्णहाणुवत्तित्तेउलक्खणोव-
लक्खियजिणवयणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

केम्महत ? तेसिं जहण्णाउट्ठिदिमेत्त । एत्थ सुद्धाभवग्गहण किण्ण लब्भदे ? ण,
अपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ तस्स समयाभासा ।

उक्खस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२४ ॥

एगाउट्ठिदी सखेज्जाणलियमेत्ता चि ऋट्ठु संसेज्जमार वा तत्थेव पुणो पुणो
उप्पज्जमाणस्स दिवम-पक्ख माम-उट्ठु-जयण-सयच्छरादिकालो किण्ण लब्भदे ? ण, तेत्थिय-
चार तत्तुप्पत्तीए असभवा । सो नि क्व वण्यदे ? अतोमुहुत्तयणणहाणुवत्तीदो । कध

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके विरहका अभाव है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—अन्यथाणुपपत्तिस्वरूप हेतुके लक्षणसे उपलक्षित जिन वचनसे जाना
जाता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव सर्वादा रहते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

शंका—यह अन्तर्मुहूर्त काल कितना वर्ष लेना चाहिए ?

समाधान—उनकी, अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुके
कालप्रमाण लेना चाहिए ।

शंका—इस सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' के स्थानपर 'धुद्भभवग्रहण' इस पदका उपादान
क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, लब्धपर्याप्तक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र उसका, अर्थात्
धुद्भभवका होना संभव नहीं है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२४ ॥

शंका—जर कि एक आयुर्मकी स्थिति सख्यात आरलीप्रमाण है, तब सख्यात
घर घटा पर ही पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, अथवा
सवत्सर आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उतने चार उस पर्यायमें उत्पत्ति होना असंभव है,
जितने चारमें कि मास, वर्ष आदि प्रमाण स्थितिकाल पाया जा सके ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—अन्यथा, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन नहीं हो सकता था, इस
अन्यथाणुपपत्तिसे जाना ।

सज्ज साहणाणमेयत्तं ? ण, पमाणेणाणेयता । किंतु एगनीपजहण्णआउट्टिदिकालादो सस्सेवुक्कस्सभउट्टिदिकालो सस्सेज्जगुणो, णाणाआउट्टिदिसमूहणिप्फणत्तादो ।

सुहमेइदियअपज्जत्ता केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२५ ॥

सुगममेद सुत्तं, बहुमो परुत्तिदत्ताणे । क्रमेण उहुत्तयणाणमेगमहियरण ? ण एस दोसो, मव्वत्थ दोण्हमण्णोण्णाणिणाभाउत्तलभा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण सुद्धाभवग्गहण ॥ १२६ ॥

अयजदसम्मादिट्ठीणमउहारकालो आउलियाए असखेज्जदिभागमेत्तो वि होंतो अत्तोमुट्टत्तमिदि सुत्ते णिदिट्ठो । एसो अपज्जत्ताउट्टिदी जहण्णिणा संसेज्जाउलियमेत्तो अत्तोमुट्टत्तमिदि सुत्ते किण्ण वुत्ता ? ण एस दोमो, पज्जत्ताउत्तादो अपज्जत्तजहण्णाउत्त सस्सेज्जगुणहीणमिदि पदुप्पायणट्ठ सुद्धाभवग्गहणस्सुउदेसा ।

शुका—साध्य और साधन, इन दोनोंके परस्पर कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उक्त कथनमें प्रमाणसे अनेकान्त है, अर्थात्, प्रमाण स्वयं साध्य होते हुए भी अर्थका साधक होता है ।

किन्तु यथायं यात यह है कि एक जीवकी जघन्य आयुस्थितिके कालसे उसीकी उरुत्पन्न भवस्थितिका काल सरयानगुणा होता है, क्योंकि, वह नाना आयुस्थितियोंके समूहसे निष्पन्न होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२५ ॥

यह मूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले बहुतवार प्ररूपण किया गया है ।

शुका—एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका एक अधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्वत्र ही एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका अविनाभावसम्बन्ध पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण है ॥ १२६ ॥

शुका—असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अयहारकाल आधलीके असत्प्रायतवें भागमात्र होता हुआ भी 'अन्तमुहूर्त है' ऐसा सूत्रमें निर्देश किया गया है । फिर यह लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुस्थिति सख्यात आत्मीयप्रमाण होते हुए भी 'अन्तमुहूर्तप्रमाण है' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंकी (जघन्य) आयुसे लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयु सख्यातगुणा हीन होती है, यह बतलानेके लिए सूत्रमें क्षुद्रभवप्रदणका उपदेश दिया गया है ।

उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२७ ॥

सुगममेद सुत्तं, बहुसो परुविदत्तादो ।

वीडंदिया तीडंदिया चउरिदिया वीडंदिय तीडंदिय चउरिदिय-
पज्जत्ता केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा' ॥ १२८ ॥

उवदेसेण विणा जाणिज्जदि चि सुगममेद सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, अंतोमुहुत्तं ॥ १२९ ॥

'जहा उद्देमो तथा णिद्देसो' चि णायादो वि ति चउरिंदियाण जहण्णकालो
खुद्दाभवग्गहण, तत्थ अपज्जत्ताण सभवा । पज्जत्ताण अतोमुहुत्त, तत्थ खुद्दाभवग्गहणस्म
संभवाभावा ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि' ॥ १३० ॥

तीडंदियाणमेगूणवण्णदिग्गसा उक्कस्साउट्टिदिग्गमाण, चउरिंदियाण छम्मासा, वीडंदि-

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२७ ॥

पहले बहुतवार प्ररूपण किये जानेसे यह सूत्र सुगम है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रियपर्याप्तक, त्रीन्द्रियपर्याप्तक
और चतुरिन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ १२८ ॥

उपदेशके बिना ही जाना जाता है कि यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण और
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १२९ ॥

'जैसा उद्देश होता है, वैसा ही निर्देश होता है' इस न्यायसे सामान्य द्वीन्द्रिय,
त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है, क्योंकि, उनमें
लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंकी संभावना है । किन्तु पर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि,
उनमें क्षुद्रभवग्रहणकी संभावना नहीं है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल मरुयात हजार वर्ष है ॥ १३० ॥

त्रीन्द्रिय जीवोंकी उनवास दिग्गस उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण है, चतुरिन्द्रिय

१ विक्लेन्द्रियाणां नानाजीवपेक्षया सर्वे काल । स ति १, ८

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. ति १, ८

३ उत्कृष्टेण सत्येयानि वर्षसहस्राणि । स ति १, ८

याण वारस वासा । जदो एण, तदो सखेज्जाणि वामसहरमाणि चि ण घडदे ? ण एस दोसो, एदाओ एगाउट्टिदीओ । एदाहि ण एत्थ ऋज्जमत्थि, भगट्टिदीए अहियागदो । का भग ट्टिदी णाम ? आउट्टिदिसमूहो । जदि ण्ण, तो अमखेज्जाणि वामसहरमाणि भवट्टिदी किण्ण होदि ? ण एस दोसो, अमखेज्जमार सखेज्जनागमहस्सविरोहिमखेज्जमार ना तत्थुप्पत्तीए सभगामाया । अणप्पिदिदिदिहितो जागतूण अप्पिदिदिदिण्णु उप्पज्जिय सखे ज्जाणि चैव हिंइदि, असखेज्जाणि ण परिभमट्टि चि उच्च होदि ।

वीइदिय तीइंदिय-चउरिदिया अपज्जत्ता केवचिर कालादो होंति,
णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३१ ॥

उवदेमेण विणा एदस्म सुत्तस्स अत्थो णव्वदे ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण ॥ १३२ ॥

सुगममेद सुच ।

जीवोंकी छह मास और छीन्द्रिय जीवोंकी चारह वर्ष उत्कृष्ट आयुस्थिति होती है ।

शका—यदि ऐसा है, तो स्वप्नमें कहीं गई सख्यात हजार वर्षोंकी स्थिति नहीं घटित होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ये घतलाई गई स्थितिया एक आयु सम्बन्धी हैं, इनसे यद्वा पर कोई काय नहीं है । किन्तु यद्वा पर भवस्थितिका अधिकार है ।

शका—भवस्थिति किसे कहते है ?

समाधान—अनेक आयुस्थितियोंके समूहको भवस्थिति कहते हैं ।

शका—यदि ऐसा है, तो असख्यात हजार वर्षप्रमाण भवस्थिति क्यों नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, असख्यातघार, अथवा सख्यात वर्ष सहस्रके विरोधी सख्यातवार भी उनमें उत्पत्ति होनेकी सम्भावनाका अभाव है । अविचक्षित इन्द्रियवाले जीवोंसे आ करके विचक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर, सख्यातसहस्र वर्ष ही भ्रमण करता है, असख्यातवर्ष भ्रमण नहीं करता है, ऐसा अर्थ कहा हुआ समझना चाहिये ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३१ ॥

उपदेशके विना ही इस सूत्रका अर्थ प्राप्त है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१३२॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३३ ॥

एद पि सुगम चेव । णरि वीइदिय-तीइदिय-चउरिंदियअपज्जत्ताणं जहाकमेण अंतरिरीहिया असीदि-सट्ठि-चालीसअपज्जत्तमना । जदि वि एत्थिवारमेगो जीवो' तत्थ-तणुक्कस्सट्ठिदीए उप्पज्जदि, तो नि तन्मवट्ठिदिकालसमानो अतोमुहुत्तमेचो चेव । कधमेदं णव्वेदं ? अतोमुहुत्तुपदेमणहाणुवचीदो ।

पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ १३४ ॥

सुगममेद सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३५ ॥

एदस्म सुत्तस्स अत्थो जघा मूलोघग्धि मिच्छत्तस्स जहण्णकालपरुणणासुत्तस्स बुत्तो तथा वत्तव्वो ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है । विशेष बात यह है कि इन्द्रिय, प्रीन्द्रिय और चतु रिन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंके यथाक्रमसे अन्तररहित होकर अस्सी, साठ और चालीस लक्ष्यपर्याप्तक भव होते हैं । यद्यपि इतने बार एक जीव उनकी उत्कृष्ट स्थितिमें उत्पन्न होता है, तो भी उनकी भवस्थितिके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमान ही होता है ।

शंका—यह कैसे जानते है ?

समाधान—अन्यथा, सूत्रमें अन्तर्मुहूर्तका उपदेश हो नहीं सकता था । इस अन्य धानुपपत्तिसे जानते हैं कि उन भवोंका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा कालपरुणणके मूलोघर्मे मिथ्यात्वके जघन्य कालकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रका कहा है, वैसा ही यदा कहना चाहिये ।

१ प्रतिपु 'बाओ' इति पाठ ।

२ पचिदियेण मिथ्यादृष्टेनानामावापेक्षया सर्व काल । स सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघनेनान्तर्मुहूर्त । स सि १, ८.

उक्कस्सेण सागरोपमसहस्साणि पुव्वकोटिपुधत्तेणम्भियाणि,
सागरोपमसदपुधत्त' ॥ १३६ ॥

'जहा उदेशो तद्वा णिदेशो' चि णायादो पंचिदियाण पुव्वकोटिपुधत्तेणम्भियाणि सागरोपमसहस्साणि, पंचिदियपज्जत्ताण सागरोपमसदपुधत्त । एदस्सुदाहरण-एकौ एह दियादो निगळिदियादो वा आगतूग पंचिदिय पंचिदियपज्जत्तएसु उग्रजिय सगट्टिदि मच्छिय अण्णिदिय गदो । एवस्सेण सागरोपमसहस्सम् सुगतम्भूदवहुत्तमणेक्खिय सागरोपमसहस्साणि चि सुत्ते वहुत्तयणणिदेशो कदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघ' ॥ १३७ ॥

कुदो ? ओघादो णाणेगजीवमासणादिक्कालाणं भेदाभावा ।

पंचिदियअपज्जता वीइंदियअपज्जत्तभगो ॥ १३८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १३६ ॥

'जैसा उद्देश होता है, तथैय निर्देश होता है' इस न्यायसे सामान्य पचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र है, तथा पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ।

अथ इन दोनों बालोंका उदाहरण कहते हैं— कोई एक जीव पचेन्द्रिय या विकलेन्द्रियसे आकर पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्तकमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थिति तर्क रह कर, अथ इन्द्रियको चला गया । यद्वा पर एक ही सागरोपमसहस्रके, अपने अन्तर्गत बहुयुक्तो देखकर 'सागरोपमसहस्र' ऐसा सूत्रमें बहुयुक्तका निर्देश किया गया है ।

सासादनसम्पगदष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तरुके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १३७ ॥

क्योंकि, ओघप्ररूपणासे नाना और एक जीवसम्पन्धी सासादनादि गुणस्थानोंके बालोंमें भेदका अभाव है ।

पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका काल द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कालके समान है ॥ १३८ ॥

१ उत्कृष्टेण सागरोपमसहस्र पूर्वकोटीपृथक्त्वचैरन्याधिकम् । स ति १, ८

२ ओघाणां सामान्योक्त काल । स नि, १, ८.

णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदाभग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तामिच्चाइणा भेदाभाणा । णरि पंचिदियअपज्जत्तएसु गिरंतरुप्पज्जणभववारा चउतीत होति ।

एवमिदियमग्गणा समत्ता ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ १३९ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु एदेसिं सताणस्स विच्छेदाभाणा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभग्गहणं' ॥ १४० ॥

एदस्सुदाहरण— एगो अणप्पिदकाइओ जीमो अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्व-
जहण्ण कालमच्छिय अणप्पिदकाइय गदो । लद्धो जहण्णेण खुदाभग्गहणकालो ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा' ॥ १४१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण-
प्रमाण है, उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादिक रूपसे कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि
पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंमें लगातार निरन्तर उत्पन्न होनेके भववार चौबीस होते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादमे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायु-
कायिक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते
हैं ॥ १३९ ॥

पर्यंकि, सभी कालोंमें इन पृथिवीकायिकादिकोंकी सतान परम्पराका विच्छेद नहीं
होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४० ॥

इसका उदाहरण—अविद्यक्षित कायवाला कोई एक जीव विद्यक्षित कायवाले जीवोंमें
उत्पन्न होकर सर्व जघन्य काल रह कर अविद्यक्षित कायको प्राप्त हुआ । तब क्षुद्रभवग्रहण
प्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असख्यात लोकप्रमाण
है ॥ १४१ ॥

१ कायानुवादन पृथिव्यप्तेजावायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्व कालः । स. सि. १, ८

२ एकजन्म प्रति जघ येन क्षुद्रमन्मग्रहणम् । स. सि. १, ८

३ उत्कर्षेणापरिवेद्य कालः । स. सि. १, ८

एदस्सुदाहरण- एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पजिनय सच्चुक्कस्सिय अप्पिदकाइयट्ठिदिममग्गेज्जलोगमेत्त परिभमिय अणप्पिदकाय गदो ।

वादरपुढविकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवाउ काइया वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होति, णाणा- जीवं पडुच्च सच्चुद्धा ॥ १४२ ॥

बुद्धो ? सच्चकालमणुच्छिण्णसताणत्तादो ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एदस्सुदाहरण- एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइयअपञ्जत्तणसु उप्पजिनय सच्च जहण्णमाउट्ठिदिं गमिय अणप्पिदकाइएसु उप्पणो । लद्धो जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणकालो ।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ १४४ ॥

कम्मट्ठिदि ति युत्ते किं सच्चोमिं कम्माण ट्ठिदीओ घेप्पति, आहो एक्कस्स चेय ट्ठिदी घेप्पदि ति ? सच्चकम्माण ट्ठिदीओ ण घेप्पति, किंतु एक्कस्सेण कम्मट्ठिदी घेप्पदि ।

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें उत्पन्न होकर विवक्षित कायकी असरयात लोकप्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक परिभ्रमण करके पुन अविवक्षित कायसे प्राप्त हो गया ।

वादरपृथिवीकायिक, वादरजलकायिक, वादरतेजस्कायिक, वादरायुकायिक और वादरअनस्पतिककायिकप्रत्येकशरीर जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४२ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोंके जीवोंकी सर्वकाल अविच्छिन्न सतान पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायके लक्ष्य पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर वहा की सर्व जघन्य आयुस्थितिको बिताकर पुन अविवक्षित कायिकोंमें उत्पन्न हो गया, तब क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है ॥ १४४ ॥

शुक्रा—'कर्मस्थिति' इस प्रकार कहने पर क्या सर्व कर्मोंकी स्थितिया ग्रहण की जा रही हैं, अथवा, एक ही कर्मकी स्थिति ग्रहण की जा रही है ?

समाधान—सब कर्मोंकी स्थितिया नहीं ग्रहण की जा रही हैं, किन्तु एक मोह कर्मकी ही स्थिति यहा पर 'कर्मस्थिति' शब्दसे ग्रहण की जा रही है, क्योंकि, इस प्रकारका

कुदो ? गुरुवदेसादो । तत्थ वि दसणमोहणीयस्स चेय उक्कस्सट्ठिदीए सत्तरिसागरो-
चमकोडाकोडिमेत्ताए गहणं कादव्व, पाहणियादो । कुदो पहाणत्तं ? सगाहिदासेसकम्म-
ट्ठिदीए । के वि आडरिया कम्मट्ठिदीदो वादरट्ठिदी परियम्मे उप्पणा ति कज्जे कारणोव-
यारमवलविय वादरट्ठिदीए चेय कम्मट्ठिसणमिच्छति, तन्न घटते, 'गौण-मुख्ययोर्मुख्ये
सप्रत्यय' इति न्यायात् । य च वादराण सामण्णेण युत्तकालो वादरेगदेसाण वादरपुढनि-
काइयाण पि सो चेय होदि ति, विरोहा । सामण्णवादरट्ठिदिमण्णपयारेण परुत्तिय सपहि
वादरपुढनिट्ठिदिं भण्णमाणे उत्रयारात्तलत्तणे पजोत्तणामाना च । एदस्सुदाहरण-अण-
प्पिदवादरकाइओ अप्पिदवादरकाइएसु उप्पज्जिय तत्थ सत्तरिसागरोत्तमकोडाकोडिमेत्त-
कालमच्छिय अणप्पिदवादरकाइयं गदो ।

वादरपुढविकाइय-वादरआउकाइय-वादरतेउकाइय-वादरवाउ-
काइय-वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो हौंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४५ ॥

गुरुका उपदेश है । उसमें भी केवल दर्शनमोहनीयकर्मकी ही सत्तर कोटाकोठी सागरोत्तम-
प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वही प्रधान है ।

शुद्धा—दर्शनमोहनीयकर्मकी स्थितिको प्रधानता कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, उसमें सर्व कर्मोंकी स्थिति संगृहीत है ।

कितने ही आचार्य 'कर्मस्थितिसे वादरस्थिति परिकर्ममें उत्पन्न है' इसलिये कार्यमें
कारणके उपचारका अचलमन करके वादरस्थितिकी ही 'कर्मस्थिति' यह सदा मानते हैं,
किन्तु वह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, 'गौण और मुख्यमें त्रिवाद होने पर मुख्यमें ही
सप्रत्यय होता है' ऐसा न्याय है । दूसरी बात यह है कि वादरकायिक जीवोंका सामान्यसे
पक्षा हुआ काल, वादरकायिक जीवोंके एकदेशभूत वादर पृथिवीकायिकोंका भी वही ही नहीं
हो सकता है, क्योंकि, इसमें विरोध आता है । तथा, सामान्य वादरकायिक स्थितिको
अन्य प्रकारसे प्ररूपण करके अब वादरपृथिवीकायिककी स्थितिको कहने पर उपचारके
आलम्बनमें कोई प्रयोजन भी नहीं है ।

अब उक्त कर्मस्थितिप्रमाण कालका उदाहरण कहते हैं—अविवक्षित वादरकायवाला
कोई जीव विवक्षित वादरकायिकोंमें उत्पन्न होकर वहा पर सत्तर कोटाकोठी सागरोत्तम-
प्रमाण काल तक रह करके अविवक्षित वादरकायिकमें चला गया ।

वादरपृथिवीकायिकपर्याप्त, वादरजलकायिकपर्याप्त, वादरतेजस्कायिकपर्याप्त,
वादरवायुकायिकपर्याप्त और वादरअनस्पातिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त जीव कितने काल
तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४५ ॥

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा, एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण
अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण असस्सेज्जा लोगा । पज्जत्ताणमपज्जत्ताण च अतोमुहुत्तमिच्चेदेहि
मुहुमेइदियपज्जत्तापज्जत्तेहि निसेमाभारा ।

वणप्फदिकाइयाण एइंदियाण भगो' ॥ १५२ ॥

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा । एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं,
उक्कस्सेण अणत्तकालमसस्सेज्जपोग्गलपरियट्टमिन्चेदेण एइदिएहिंतो वणप्फदिकाइयाण
भेदाभावा ।

णिगोदजीवा केवच्चिर कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ १५३ ॥

सुगममेद सुत्त ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण ॥ १५४ ॥

एदं पि सुत्त सुगम चेय ।

उक्कस्सेण अट्टाइज्जादो पोग्गलपरियट्टं ॥ १५५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल, क्षुद्रभव
ग्रहणप्रमाण और अतर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल असख्यात लोक है । पर्याप्तक और अपर्याप्तक
जीवोंका काल अतर्मुहूर्त है, इत्यादि रूपसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक
जीवोंके साथ सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिक्षेपे कालमें विशेषताका अभाव है ।

वनस्पतिकार्यिक जीवोंका काल एकेन्द्रिय जीवोंके कालके समान है ॥ १५२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभव
ग्रहण और उत्कृष्ट काल अनत्तकालात्मक असख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस रूपसे एकेन्द्रियोंसे
वनस्पतिकार्यिक जीवोंके कालका कोई भेद नहीं है ।

निगोद जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ १५३ ॥

यद्द सुत्त सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा निगोद जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
है ॥ १५४ ॥

यद्द भी सुत्त सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अट्टाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १५५ ॥

तं जघा- एगो अण्णकायादो आगतूण णिगोदेसुवण्णो । तत्थ अङ्गुइज्जा पोग्गलपरियट्ठाणि परियट्ठिदूण अण्णकाय गदो ।

वादरणिगोदजीवाणं वादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ १५६ ॥

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च सब्बद्धा, एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी इच्चेएण वादरणिगोदाणं वादरपुढविकाइएहिंतो भेदाभारा ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा' ॥ १५७ ॥

सुगममेद सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५८ ॥

तसकाइयाण तेसिं पज्जत्ताणं च जहण्णकालो अतोमुहुत्त । तसकाइयाणमतोमुहुत्त-मिदि अभणिय खुद्दाभवग्गहण ति ऋण्ण वुत्त ? ण, खुद्दाभवग्गहणं पेन्निखदूण जहण्ण-मिच्छत्तकालस्स थोवत्तादो । सेस सुगम ।

जैसे— कोई एक जीव अथ कायसे आ करके निगोदिया जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर अढाई पुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके अन्य कायको प्राप्त हो गया ।

वादरनिगोद जीवोंका काल वादरपृथिवीकायिक जीवोंके समान है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभव ग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है, इस रूपसे वादरनिगोदिया जीवोंके कालका वादरपृथिवीकायिक जीवोंके कालसे कोई भेद नहीं है ।

असकायिक और असकायिकपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५८ ॥

असकायिक ओर उनके पर्याप्तकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुद्धा— 'असकायिक जीवोंका अन्तर्मुहूर्त काल है, ऐसा न कह कर 'क्षुद्रभव ग्रहणप्रमाण काल है,' ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षुद्रभवग्रहणके कालको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षा जघन्य मिथ्यात्वका काल और भी छोटा है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ असकायिकेणु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापक्षया सर्वं काल । स सि १, ८

२ एक जीव प्रति जघनेनात्तमुहूर्तं । स सि १, ८

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेण्वभहियाणि,
वे सागरोवमसहस्साणि ॥ १५९ ॥

त जघा- दो जीवा थावरकायादो आगतून एगो तसकाइएसु, अण्णेगो तसकाइय पज्जत्तमु उवण्णो । तत्थ जो सो तसकाइएसु उवण्णो सो पुव्वकोडिपुधत्तवभहिय वे सागरोवमसहस्साणि तत्थ परिभमिय यावरकाय गदो । इदरो पि वे सागरोवमसहस्स परिभमिय यावर गदो, एत्तो उतरि तत्थच्छणसभवाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥१६०॥

हुदो? ओघमासणादिमयलगुणद्वानाण णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहितो तमकाइय तसकाइयपज्जत्तसामणादिसयलगुणद्वानाणो गजीवजहण्णुक्कस्सकालाण भेदाभावादो ।

तसकाइयअपज्जत्ताण पचिदियअपज्जत्तभंगो ॥ १६१ ॥

हुदो? णाणाजीव पदुच्च सच्चद्रा, एगजीव पदुच्च जहण्णेण खुद्दाभन्नगहण,

त्रसकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूरे दो हजार सागरोपमप्रमाण है ॥ १५९ ॥

जैसे— दो जीव एक साथ स्थावरकायसे आकर एक तो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें और दूसरा त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । उनमेंसे जो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न हुआ, वह जीव पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम काल उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकायको प्राप्त हुआ । तथा दूसरा जीव भी दो हजार सागरोपमप्रमाण उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकायमें चला गया, क्योंकि, इसके ऊपर त्रसकायमें रहना संभव नहीं है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ १६० ॥

क्योंकि, ओघके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंसे त्रसकायिक तथा त्रसकायिकपर्याप्तकोंके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका कोई भेद नहीं है ।

त्रसकायिकलब्ध्यपर्याप्तकोंका काल पचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ॥१६१॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सबकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रमव

१ उत्कृष्टेण द्व सागरोपमसहस्से पूर्वकोदायुक्कवेरियधिके । म सि १, ८

२ धराणां पचेन्द्रियवर् । स सि १, ८

उक्त्स्मेण वीईदिय-तीईदिय-चउरिंदिय-पंचिदियअपज्जत्तएसु जहाकमेण असीदि-सद्धि-
चालीस चदुवीस-अणुअद्दमंसु बहुसदवारपरियट्ठणसभूदअतोमुहुत्तकालो इच्चेदेहि
विसेसाभावा ।

एव कायमगणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असं-
जदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली
केवचिरं कालदो होति, गाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा ॥ १६२ ॥

कुदो ? मणजोग-त्रिजोगेहि परिणमणकालादो तदुक्कमणकालतरस्स थोवत्तादे।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थणिच्छयसमुत्पायणट्ठ मिच्छादिट्ठीआदिगुणट्ठाणाणि अस्सिदूण
एगसमयपरुक्वणा कीरदे । एत्थ ताव जोगपरावत्ति-गुणपरावत्ति मरण वाघादेहि मिच्छत्त-
गुणट्ठाणस्स एगसमओ परुत्तिज्जदे । तं जघा- एक्को सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असं-
जदसम्मादिट्ठी संजदासजदो पमत्तसजदो वा मणजोगेण अच्छिदो । एगसमओ मण-
ग्रहण, उत्कृष्ट काल, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय लब्धयपर्याप्तकोंमें यथाक्रमसे
अस्ती, साठ, चालीस और चौरीस धुद्रभवोंमें कोई सौ चार परिवर्तनसे उत्पन्न हुआ
अन्तर्मुहूर्तकाल होता है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंमें
मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत, प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत और सयोगि-
केवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६२ ॥

फ्योंकि, मनोयोग और वचनयोगके द्वारा होनेवाले परिणमन कालसे उनके उप-
क्रमणकालका अन्तर अल्प पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६३ ॥

इस सूत्रके अर्थ निश्चयके समुत्पादनार्थ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंको आध्रय
करके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है—उनमेंसे पहले योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन
मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा मिथ्यात्वगुणस्थानका एक समय प्ररूपण किया
जाता है । वह इस प्रकार है—सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि,
सयतासयत अथवा प्रमत्तसयत गुणस्थानवर्ती कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान का

१ योगानुवादेन वाचनसयोगिणु मिथ्यादृष्टयसयतसम्यग्दृष्टिसयतासयतप्रमत्तप्रमत्तसयोगिकेवलिना न
नीवापसया सर्व काल । स मि १, <

२ एक्कीवापेक्षया जघयेनैक समय । स मि १, <

जोगद्वारे अस्थि ति मिच्छत्त गदो । एगसमय मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठ । विदिय समए मिच्छादिट्ठी चेव, किंतु वचिजोगी कायजोगी वा जादो । एव जोगपरापचीए पंच विहा एगसमयपरहणणा कदा । कथ समयभेदो ? सासणादिगुणद्वानेपच्छारुपत्तेण । गुणपरापचीए एगसमओ वृच्चदे । त जहा— एको मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तस्स वचिजोगद्वानु कायजोगद्वानु खीणासु मणजोगो आगदो । मणजोगेण सह एगसमये मिच्छत्त दिट्ठ । विदियसमए त्रि मणजोगी चेव । किंतु सम्मामिच्छत्त वा असंजमेण सह सम्मत्त वा सजमासजम वा अपमत्तभावेण सजम वा पडिवण्णो । एवं गुणपरापचीए चउच्चिहा एगसमयपरहणणा कदा । कथमेत्थ समयभेदो ? पडिवज्जमाण गुणभेएण । पुच्चिल्लपत्तसु समएसु सपहिल्लच्चदुसमए पक्खित्ते णव भगा होंति (९) । एको मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसिं खएण मणजोगो आगदो । एगसमय मणजोगेण सह मिच्छत्त दिट्ठ । विदियसमए मदो । जदि तिरिक्खेसु वा मधु

मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहा पर एक समयमात्र मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया । द्वितीय समयमें भी वह जीव मिथ्यादृष्टि ही रहा, किन्तु मनोयोगसे वह वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया । इस प्रकार योगपरिवर्तनके साथ पाच प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शुका—यहा पर समयमें भेद कैसे हुआ ?

समाधान—सासादनादि गुणस्थानोंको पीछे करनेसे, अर्थात् उनमें पुन वापिस आनेसे, समय भेद हो जाता है ।

अथ गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहते है । वह इस प्रकार है—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । उसके वचनयोग अथवा काययोगका काल धीण होने पर मनोयोग आगया और मनोयोगके साथ एक समयमें मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पश्चात् द्वितीय समयमें भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी ही है, किन्तु सम्प्रतिमिथ्यात्वने, अथवा असमयके साथ सम्प्रत्यको, अथवा समयमासयमको, अथवा अपमत्तभावके साथ समयको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे गुणस्थानके परिवर्तनद्वारा चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शुका—यहा पर समय भेद कैसे हुआ ?

समाधान—आगे प्राप्त होनेवाले गुणस्थानके भेदसे समयमें भेद हुआ ।

पूर्वोक्त योगपरिवर्तनसम्बन्धी पाच समयोंमें साम्प्रतिक लब्ध गुणस्थानसम्बन्धी चार समयोंको प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भग हो जाते हैं । कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । पुन योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और

सेसु वा उप्पणो, तो कम्मइयकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वा । अध देव-णेरइएसु जइ उवणणो तो कम्मइयकायजोगी वेउच्चियमिस्सकायजोगी वा जादो । एवं मरणेण लद्धएगभगे पुच्चिल्लणवभगेसु पक्खित्ते दस भंगा होंति (१०) । वाघादेण एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्चिदो । तेसिं वचि कायजोगाणं खएण तस्स मणजोगो आगदो । एगसमय मणजोगेण मिच्छत्त दिट्ठ । विदियसमए वाघादिदो काय-जोगी जादो । लद्धो एगसमओ । एद पुच्चिल्लदसभंगेसु पक्खित्ते एक्कारस भगा (११) । एत्थ उज्जती गाहा—

गुण-नोगपरावत्ती वाघादो मरणमिदि इ चत्तारि ।

जोगेसु होंति ण वर पच्चिल्लदुगुणना जोगे ॥ ३९ ॥

एदमिह गुणट्ठाणे ट्ठिदजीना इम गुणट्ठाण पडिउज्जति, ण पडिउज्जति त्ति णादूण गुणपडिउण्णा वि इमं गुणट्ठाण गच्छति, ण गच्छति त्ति चित्ति असजदसम्मादिट्ठि-सजदासजद-पमत्तसजदाण च चउच्चिहा एगसमयपरुणणा परुणिवव्या । एवमप्पमत्त-सजदाण । णरि वाघादेण त्रिणा त्रिधा एगसमयपरुणणा कादव्या । किमट्ठं वाघादो

दूसरे समयमें मरा । सो यदि वह तिर्यचोंमें या मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ तो कर्मणकाययोगी, अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया । अथवा, यदि देव या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ तो कर्मणकाययोगी अथवा वैकियिकमिश्रकाययोगी हो गया । इस प्रकार मरणसे प्राप्त एक भगको पूर्वोक्त नो भगोंमें प्रक्षिप्त करने पर दश भग हो जाते हैं (१०) । अब व्याघातसे लब्ध होनेवाले एक भगकी प्ररूपणा करते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । सो उन वचनयोग अथवा काययोगके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दृष्ट हुआ और द्वितीय समयमें वह व्याघातको प्राप्त होता हुआ काययोगी हो गया । इस प्रकारसे एक समय लब्ध हुआ । पूर्वोक्त दश भगोंमें इस एक भगके प्रक्षिप्त करने पर ग्यारह भग होते हैं (११) । इस विषयमें उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

गुणस्थानपरिवर्तन, योगपरिवर्तन, व्याघात और मरण, ये चारों बातें योगोंमें अर्थात् तीनों योगोंके होने पर, होती हैं । किन्तु सयोगिकेवलीके पिछले दो, अर्थात् मरण और व्याघात, तथा गुणस्थानपरिवर्तन नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥

इस त्रिपक्षित गुणस्थानमें विद्यमान जीव इस अप्रिवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, पा नहीं, ऐसा जान करके गुणस्थानोंको प्राप्त जीव भी इस त्रिपक्षित गुणस्थानको जाते हैं, अथवा नहीं, ऐसा चिन्तन करके असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत और प्रमत्तसयतोंकी चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । इसी प्रकारसे अप्रमत्तसयतोंकी भी प्ररूपणा होती है, किन्तु विशेष बात यह है कि उनके व्याघातके बिना तीन प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

जोगद्वारे अतिथि ति मिच्छत्त गदो । एगसमय मणजोगेण सह मिच्छत्त दिट्ठं । विदिय समए मिच्छादिट्ठी चेव, किंतु वचिजोगी कायजोगी वा जादो । एव जोगपरावत्तीए पच विहा एयसमयपरूणा कदा । कथ समयभेदो ? सासणादिगुणद्वानपच्छारूधत्तेण । गुणपरावत्तीए एगसमयं वृत्तं । त जहा— एकको मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तस्स वचिजोगद्वान्नु कायजोगद्वान्नु रीणासु मणजोगो आगदो । मणजोगेण सह एगसमये मिच्छत्त दिट्ठं । विदियसमए पि मणजोगी चेव । किंतु सम्मामिच्छत्त वा असजमेण सह सम्मत्त वा सजमासजम वा अपमत्तभावेण सजम वा पडिवणो । एवं गुणपरावत्तीए चउच्चिहा एगसमयपरूणा कदा । कथमेत्थ समयभेदो ? पडिवज्जमाण गुणमेण । पुच्चिल्लपत्तसु समएसु सपहिलद्धचदुसमए पक्खित्ते णव भग्ना होति (९) । एकको मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसि एएण मणजोगो आगदो । एगसमय मणजोगेण सह मिच्छत्त दिट्ठं । विदियसमए भदो । जदि तिरिक्खेसु वा मण्णु

मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । घटा पर एक समयमात्र मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया । द्वितीय समयमें भी वह जीव मिथ्यादृष्टि ही रहा, किन्तु मनोयोगसे वह वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया । इस प्रकार योगपरिवर्तनके साथ पांच प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शुका—यहा पर समयमें भेद कैसे हुआ ?

समाधान—सासादनादि गुणस्थानोंको पाँछे करनेसे, अर्थात् उनमें पुन वापिस आनेसे, समय भेद हो जाता है ।

अब गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं । वह इस प्रकार है—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । उसके वचनयोग अथवा काययोगका काल क्षीण होने पर मनोयोग आगया और मनोयोगके साथ एक समयमें मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पश्चात् द्वितीय समयमें भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी ही है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा सयमासयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ सयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे गुणस्थानके परिवर्तनद्वारा चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शुका—यहा पर समय भेद कैसे हुआ ?

समाधान—आगे प्राप्त होनेवाले गुणस्थानके भेदसे समयमें भेद हुआ ।

पूर्वोक्त योगपरिवर्तनसम्यग्धी पांच समयोंमें साम्प्रतिक लब्ध गुणस्थानसम्बन्धी चार समयोंको प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भग हो जाते हैं । कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । पुन योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और

कुदो ? पाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असं-
खेज्जदिभागो; एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आपलियाओ; इच्चेदेहि
पचमण वचिजोगसासणाण ओघसासणेहिंते भेदाभावा । एत्थ वि जोग गुणपरावत्ति-मरण-
वाघादेहि समयोअिरोहेण एगसमयपरुत्तमा कायव्वा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालदो होति, पाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

उदाहरण- सत्तट्ठ जणा वहुगा वा मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासजदा
पमत्तसंजदा वा अप्पिदमण वचिजोगेसु ट्ठिदा अप्पिदजोगट्ठाए एगसमओ अत्थि च्चि
सम्मामिच्छत्त गदा । एगसमयमप्पिदजोगेण सह दिट्ठा, निदियसमए सब्बे अणप्पिदजोगं
गदा । एवं मरणेण त्रिणा जोग गुणपरावत्ति वाघादेहि एगसमयपरुत्तमा चित्तिव वत्तव्वा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६७ ॥

कुदो ? अप्पिदजोगेण सहिदसम्मामिच्छादिट्ठीण पत्ताहस्स अच्छिण्णरूपस्स पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागायामस्सुत्तमा ।

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पत्योपमका असं-
ख्यानवा भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलिया, इस
रूपसे पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघ-
सम्बन्धी सासादनोंके कालसे कोई भेद नहीं है । यहा पर भी योगपरावर्तन, गुणस्थानपरा-
वर्तन, मरण और व्याघातके द्वारा आगमके अत्रिरोधसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल
तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा एक समय होते हैं ॥ १६६ ॥

उदाहरण- विवक्षित मनोयोग अथवा वचनयोगमें स्थित सात आठ जन, अथवा
बहुतसे मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत अथवा प्रमत्तसयत जीव उस विवक्षित
योगके कालमें एक समय अनुश्लिष्ट रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए और एक
समयमात्र विवक्षित योगके साथ दृष्टिगोचर हुए । द्वितीय समयमें सभीके सभी अविवक्षित
योगको छले गये । इसी प्रकार मरणके विना शेष योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन और
व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा चिंतन करके करना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पत्योपमके अमंख्यातमें भाग है ॥१६७॥

क्योंकि, विवक्षित योगसे सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अविच्छिन्नरूप प्रयाह
पत्योपमके असंख्यातमें भाग लम्बे काल तक पाया जाता है ।

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघनेतरः समय । स ति १, ८

२ उत्कर्षेण पत्योपमासख्येयमाय । स ति. १, ८.

गतिय ? अप्यमा-वाघादाय सहजगमद्वान्तरागविरो-

पन्वणा कीरदे । उ जघा-एकसो गीनरगा-

समयो अरिय सि मनोगी जादो ।

वचिनोगी वा जादो ।

समयपन्वणा वा

उक्त

त -

सजदो

तत्

१३१ ॥
 १३२ ॥
 १३३ ॥
 १३४ ॥
 १३५ ॥
 १३६ ॥
 १३७ ॥
 १३८ ॥
 १३९ ॥
 १४० ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्पत्तिभ्यादृष्टि जीवोंका जपन्य काल एक समय

है ॥ १६८ ॥

यहाँ पर श्री मरणाके विना गुणस्थानपरिपतन, योगपरिपतन और मरणाके दोनोका भाग्य करके एक समयकी प्ररूपणा जात करके बहता चादिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्पत्तिभ्यादृष्टि जीवोंका उच्छेद काल अन्वर्द्ध

है ॥ १६९ ॥

उदाहरण—अविशक्षित योगमें विद्यमान कोई एक सम्पत्तिभ्यादृष्टि जीव विपक्षित योगको प्राप्त हुआ । यहाँ पर अपने योगके प्रायोग्य उच्छेद अन्वर्द्ध काल तक रह करके अविशक्षित योगको गला गया । इस प्रकारसे एक अन्तमुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

पाँचों मनोयोगी और पाँचों पपनयोगी चारों उपशामक और धूपक रितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जपन्यते एक समय होते हैं ॥ १७० ॥

उपशामक जीवोंके व्याघातके विना योगपरिपतन गुणस्थानपरिपतन और मरणाके द्वारा मात्र जीवोंका भाग्य करके एक समयकी प्ररूपणा करना चादिए । शक जीवोंकी मरण और व्याघातके विना योगपरिपतन और गुणस्थानपरिपतन, एत दोनोका भाग्य करके ही एक समयकी प्ररूपणा बहता चादिए ।

१ एक जीव प्रति जपन्यतेक समय । त, सि १, ८

२ ५ वर्षेवाप्यर्द्धते । त, सि १, ८

३ ५३ वर्षेवाप्यर्द्धते । त, सि १, ८

उक्तस्तेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७१ ॥

त जघा-चत्तारि उपसामगा चत्तारि सगगा च अणप्पिदजोगे डिदा अद्दाक्ख-
एण अप्पिदजोग गदा । तत्थ अतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि अणप्पिदजोग पडिवण्णा ।
लद्धमतोमुहुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७२ ॥

एत्थ एगसमयपरूणणा सगगुवसामगाण दोहि तीहि पयारेहि जाणिय वत्तव्वा ।

उक्तस्तेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७३ ॥

एत्थ अंतोमुहुत्तपरूणणा जाणिय वत्तव्वा । एत्थ एगसमयत्रियप्पपरूणणद्ध गाहा-

एक्काप्प सत्त य एक्काप्प दस य णय य अट्ठे वा ।

पण पच पच निण्णि य द्दु द्दु द्दु एणे य समयगणा ॥ ४१ ॥

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ।

कायजोगीसु मिच्छादिद्धी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं

पडुच्च सन्वद्धां ॥ १७४ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

यह इस प्रकार है—अविचक्षित योगमें स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव'उस योगके कालक्षयसे त्रिचक्षित योगको प्राप्त हुए। यहा पर अन्तर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि त्रिचक्षित योगको प्राप्त हो गए। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७२ ॥

यहा पर एक समयकी प्ररूपणा क्षपकोंके योगपरावर्तन और गुणस्थानपरावर्तनकी अपेक्षा दो प्रकारसे और उपशामकोंकी व्याघातके दिना शेष तीन प्रकारोंसे जान करके कहना चाहिए।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७३ ॥

यहा अन्तर्मुहूर्तकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए। यहा पर एक समय सम्बन्धी विकल्पोंके प्ररूपण करनेके लिए यह गाया है—

मिध्यादृष्ट्यादि गुणस्थानोंमें क्रमशः ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दश, नौ, आठ, पाच, पाच, पाच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक, इतने एक समयसम्बन्धी प्ररूपणाके विकल्प होते हैं। ११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ॥ ४० ॥

काययोगियोंमें मिध्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७४ ॥

१ उत्कृष्टकालमुहूर्त । स मि १, ८

२ काययोगियु मिध्यादृष्टेर्नानाजीवोक्तव्या सर्वे काल । स मि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६८ ॥

एतथ वि मरणेण विणा गुण जोगपरावत्ति-वाघादे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा

जाणिय वचन्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६९ ॥

उदाहरण—एकौ सम्मामिच्छादिह्री अणप्पिदजोगे द्विदो अणप्पिदजोग पडिण्णो ।
तत्थ तप्पाओग्गुवस्ममतोमुहुत्तमच्छिय जणप्पिदजोग गदो । लद्धमतोमुहुत्त ।

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो हांति, णाणाजीवं
पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

उपमामगाण वाघादेण विणा जोग गुणपरावत्ति मरणेहि णाणाजीने अस्मिदूण
एगसमयपरूवणा कादव्वा । खवगाण मरण वाघादेहि विणा जोग-गुणपरावत्तीओ दो
चेअ अस्सिदूण एगसमयपरूवणा परूवेदव्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय
है ॥ १६८ ॥

यहा पर भी मरणके विना गुणस्थानपरावर्तन, योगपरावर्तन और व्याघात, इन
तीनोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा जात करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ १६९ ॥

उदाहरण—अविवक्षित योगमें विद्यमान कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विवक्षित
योगको प्राप्त हुआ । घटा पर अपने योगके प्रायोग्य उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त काल तक रह करके
अविवक्षित योगको चला गया । इस प्रकारसे एक अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १७० ॥

उपशामक जीवोंके व्याघातके विना योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणके
द्वारा नाना जीवोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । क्षपक जीवोंकी
मरण और व्याघातके विना योगपरिवर्तन और गुणस्थानपरिवर्तन, इन दोनोंका आश्रय
रहेकर ही एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

१ एक जीव प्रति जघन्यक समय । स, सि १, ८

२ उत्कृष्टकालमुहूर्तः । स सि १, ८

३ चतुस्रुपशमकाना क्षपकाना च नानाजीवपेक्षया एकजीवपेक्षया च अन्तर्वेनेक समय । स सि १, ४

उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७१ ॥

त जघा-चत्तारि उपसामगा चत्तारि खवगा च अणप्पिदजोगे द्विदा अद्दाक्ख-
एण अप्पिदजोगं गदा । तत्थ अतोमुहुत्तमन्डिय पुणो नि अणप्पिदजोग पडिवण्णा ।
लद्धमतोमुहुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७२ ॥

एत्थ एगसमयपरुखणा समगुवसामगणं दोहि तीहि पयारेहि जाणिय वत्तच्चा ।

उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७३ ॥

एत्थ अतोमुहुत्तपरुखणा जाणिय वत्तच्चा । एत्थ एगसमयनियप्पपरुखणद्ध गाहा-

एक्कारसं उ सत्तं य एक्कारसं दसं य णं य अट्ठे जा ।

पणं पचं पचं तिण्णिं यं दु दु दु दु एगो य समयणा ॥ ४१ ॥

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ।

कायजोगीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो ह्यंति, णाणाजीवं

पडुच्च सव्वद्धा ॥ १७४ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

यह इस प्रकार है—अधिवक्षित योगमें स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव उस योगके कालक्षयसे विरक्षित योगको प्राप्त हुए । यहा पर अन्तर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि अधिवक्षित योगको प्राप्त हो गए । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७२ ॥

यहा पर एक समयकी परुखणा क्षपकोंके योगपरावर्तन और गुणस्थानपरावर्तनकी अपेक्षा दो प्रकारसे और उपशामकोंकी व्याघातके बिना शेष तीन प्रकारसे जान करके कहना चाहिए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७३ ॥

यहा अन्तर्मुहूर्तकी परुखणा जान करके कहना चाहिए । यहा पर एक समय समयकी विकल्पोंके परुखण करनेके लिए यह माथा है—

मिध्यादृष्ट्यादि गुणस्थानोंमें क्रमशः ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दस, नौ, आठ, पाच, पाच, पाच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक, इतने एक समयसमयकी परुखणाके विकल्प होते हैं । ११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ॥ ४० ॥

काययोगियोंमें मिध्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७४ ॥

१ उत्कृष्टकालमुहूर्त । स वि १, ८

२ काययोगियु मिध्यादृष्टिनामीवापेक्षया सर्व काल । स वि १, ८

कुदो ? सच्चिदासु कायजोगिमिच्छादिद्वीण विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७५ ॥

त जथा— एगो सासनमम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी असजदसम्मादिद्वी सनदा सजदो पमत्तमजदो वा कायजोगद्वाए अच्छिदो । तिससे एगसमयानसेसे मिच्छादिद्वी जादो । कायजोगेण एगममय मिच्छत्त दिट्ठ । विदियसमए अण्णजोग गदो । अधवा मण वचिजोगेसु अच्छिदस्स मिच्छादिद्विस्स तेसिमद्वाक्खण्ण कायजोगो आगदो । एगसमयं कायजोगेण सह मिच्छत्त दिट्ठ । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं वा असजमेण सह सम्मत्त वा सजमासजम अप्पमत्तभायेण मजम वा पडिवण्णो । लद्धो एगसमओ । एत्थ मरण वावा देहि एगसमओ' णत्थि । कुदो ? मुदे वाघादिदे वि कायजोग मोत्तूण अण्णजोगामाना ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसखेज्जा पोग्गलपरियट्ठं ॥ १७६ ॥

त जथा— एगो मिच्छादिद्वी मण वचिजोगेसु अच्छिदो अद्वाप्पण कायजोगी

क्योंकि, सभी कालोंमें काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७५ ॥

जैसे— एक सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असत्यतसम्यग्दृष्टि, अथवा सत्यतासत्यत, अथवा प्रमत्तसत्यत जीव काययोगके कालमें विद्यमान था । उस योगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गया । तब काययोगके साथ एक समय मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुन द्वितीय समयमें वह अन्य योगको चला गया । अथवा, मनोयोग और चचनयोगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि जीवके उन योगोंके कालक्षयसे काययोग भा गया । तब एक समय काययोगके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुन द्वितीय समयमें सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असत्यमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा सत्यमासत्यमको, अथवा अप्रमत्तमाद्यके साथ सत्यमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय लब्ध हो गया । यहा पर मरण अथवा घ्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं है, क्योंकि, मरण होने पर अथवा घ्याघात होने पर भी काययोगको छोड़कर अन्य योगका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असमयात् पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १७६ ॥

जैसे— मनोयोग अथवा चचनयोगमें विद्यमान एक मिथ्यादृष्टि जीव, उस योगके

१ एक जीव प्रति जघन्यक समय । स सि १, ८

२ प्रतिपु 'सगसमओ' इति पाठः ।

३ उक्कस्सेणत वाडोप्पण्णेषा पुद्गलपरिवर्तना । स सि १, ८

जादे, सञ्चुकस्समतोमुहुत्तमच्छिदूण एइदिएसु उप्पणो । तत्थ अणत्तकालमसखेज्ज-
पोग्गलपरियट्ठं कायजोगेण सह परियट्ठिदूण आपलियाए असखेज्जदिभागमेत्तपोग्गल-
परियट्ठेसुप्पणेषु तसेसु आगंतूण सञ्चुकस्समतोमुहुत्तमच्छिय वच्चिजोगी जादे । लद्धो
कायजोगस्स उक्कस्सकालो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति मणजोगि-
भंगो ॥ १७७ ॥

एद सुत्तं सुगम, मणजोगे णिरुद्धे परचेण परूत्रिदत्तादे । णवरि मरण वाघादा
सम्मामिच्छादिट्ठि-असज्जदसम्मादिट्ठीणं णत्थि । सासणसम्मादिट्ठि सज्जदासज्जद-पमत्तसंज्जदणं
वाघादेण एगसमओ णत्थि, मरणेण पुण अत्थि ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सञ्चद्धा ॥ १७८ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठिसत्ताणस्स सञ्चद्धासु वोच्छेदाभावा ।

कालक्षय हो जानेसे काययोगी हो गया । घटा पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके
एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । घटा पर अनन्तकालप्रमाण असख्यात पुद्गलपरिवर्तन काययोगके
साथ परिवर्तन करके आवलीके असख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंके शेष रहने पर
प्रसर्जियोंमें आकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके घटतयोगी हो गया । इस
प्रकारसे काययोगका उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काय-
योगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, मनोयोगके निरुद्ध करनेपर पहले प्रपञ्चसे (विस्तारसे)
प्ररूपण किया जा चुका है । विशेष घात यह है कि काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत-
सम्यग्दृष्टियोंके मरण और व्याघात नहीं होते हैं । तथा काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि,
संयतासयत और प्रमत्तसयतोंके व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं होता है, किन्तु मरणकी
अपेक्षा एक समय होता है ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७८ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके सभी कालोंमें विच्छे-
दका अभाव है ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७९ ॥

एत्थ मरण गुण जोगपरावत्तीहि एगसमयो पस्सेद्वो । वाघादेण एगसमओ ण लब्भदि, तस्म कायजोगाणिणाभिच्चादो ।

उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

त जधा- एगो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा वावीससहस्सवासाउट्टिदिएसु एइदिएसु उवण्णो । सच्चजहण्णेण अतोमुहुच्चकालेण पज्जत्तिं गदो । ओरालियअपज्जत्तकालेणूण वावीसनाससहस्साणि ओरालियकायजोगेण अच्छिय अण्णजोग गदो । एव देसूणानीस वाससहस्साणि जादाणि । अ इवा देवो ण उप्पादेद्वो, तस्स जहण्णअपज्जत्तकालाणुपलभा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगि भंगो ॥ १८१ ॥

एदस्म सुचस्स अत्थो सुगमो, पुच्च परुदिच्चादो । णरि वाघादेण एत्थ एग समयपरुवणा परुदेव्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७९ ॥

यहा पर मरण, गुणस्थानपरावतन ओर योगपरावर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करनी चाहिये । किन्तु यहा पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वह काययोगका अविनाभावी है ।

उक्त जीवका उत्कृष्ट काल कुछ कम बार्हस हजार वर्ष है ॥ १८० ॥

जैसे- एक तिर्यच, मनुष्य, अथवा देव, बार्हस हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले एके द्वियौमें उत्पन्न हुआ । सर्वजघन्य अतर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ । पुन इस औदारिकशरीरके अपर्याप्तकालसे कम बार्हस हजार वर्ष औदारिककाययोगके साथ रह करके पुन अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे कुछ कम बार्हस हजार वर्ष हो जाते हैं । अथवा, यहा पर देव नहीं उत्पन्न कराना चाहिये, क्योंकि, देवोंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके जघन्य अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाययोगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १८१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, पूर्वमें कहा जा चुका है । विशेष बात यह है कि यहा पर व्याघातकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिये ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्टी केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १८२ ॥

बुद्धो ? ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्टिसतानपोच्छेदस्स सव्वद्धासु अमावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ १८३ ॥

त जहा- एगो एइंदिओ सुद्धमराउरुइएसु अधोलोगते ट्टिएसु खुद्दाभवग्गहणाउ-
ट्टिदिएसु तिण्णि निग्गहे काऊण उतरण्णो । तत्थ तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणमपज्जत्तो
होदूण जीविय मदो, विग्गह कादूण कम्मइयकायजोगी जादो । एवं तिसमऊणखुद्दाभव-
ग्गहणमोरालियमिस्सजहणकालो जादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८४ ॥

त जधा- अपज्जत्तएसु उवरज्जिय सखेज्जाणि भग्गहणाणि तत्थ परियद्विय
पुणो पज्जत्तएसु उवरज्जिय ओरालियकायजोगी जादो । एदाओ सखेज्जभग्गहणद्धाओ
मिलिदाओ वि मुहुत्तस्सतो चेव होंति ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १८२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टियोंकी परम्पराके विच्छेदका सर्व
कालोंमें अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
तीन समय कम क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण है ॥ १८३ ॥

जैसे— एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमें स्थित और क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण आयु-
स्थितियाले सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विप्रह करके उत्पन्न हुआ । वहा पर तीन समय कम
क्षुद्रभयग्रहणकाल तक लब्धपर्याप्त हो, जीवित रह कर मरा । पुन विप्रह करके कामेण-
काययोगी हो गया । इस प्रकारसे तीन समय कम क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण औदारिकमिश्रकाय
योगका जघन्य काल सिद्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८४ ॥

जैसे— कोई एक जीव लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सख्यात भयग्रहणप्रमाण
उनमें परिघर्तन करके पुन पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो गया । इन सब
सख्यात भवोंके ग्रहण करनेका काल मिल करके भी मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है, अधिक
नहीं होता है ।

सासणसम्मादिट्टी केवचिरं कालदो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमय ॥ १८५ ॥

त जघा— सत्तद्द जणा बहुआ वा सासणा सगद्दाए एगसमओ अत्थि चि ओत्ता
लियमिस्सकायजोगिणो जादा । एगसमयमच्छिद्दण निदियसमए मिच्छत्त गदा । लद्धो
ओरालियमिस्सेण सासणाणमेगसमओ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८६ ॥

त जघा— सत्तद्द जणा बहुआ वा सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा ।
सासणगुणेण अतोसुद्दुत्तमत्थिय ते मिच्छत्त गदा । तस्समए चेय अण्णे सामणा ओरा-
लियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक्क टो-तिण्णि आदिं काद्दण जाव उक्कस्सेण पलिदो-
वमस्स अमंखेज्जदिभागमेत्ताए सासणा ओरालियमिस्सकायजोग पडिबज्जापेदच्चा । तदो
णियमा अतर होदि । एवमेस कालो मेलाविदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १८७ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्पग्दष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १८५ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्पग्दष्टि जीव, अपने योगके कालमें
एक समय अथशेष रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गये । उसमें एक समय रह करके
द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकारसे औदारिकमिश्रकाययोगके साथ
सासादनसम्पग्दष्टियोंका एक समय लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातमें भागप्रमाण है ॥ १८६ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्पग्दष्टि जीव औदारिकमिश्रकाय
योगी हुए । सासादनगुणस्थानके साथ अन्तमुद्घर्त काल रह करके पीछे वे मिथ्यात्वको प्राप्त
हुए । उसी समयमें ही अथ दूसरे सासादनसम्पग्दष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी
हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि करके उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातमें भागमात्र
पर सासादनसम्पग्दष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त कराना चाहिए । इसके पश्चात्
नियमसे अंतर हो जाता है । इस प्रकारसे यह सब मिलाया गया काल पल्योपमके अत्र
अथावध भागमात्र होता है ।

एक जीवोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १८७ ॥

त जघा- एको सासणो सगद्धाए एगसमओ अरिथि चि औरालियमिस्सकायजोगी जादो । विदियममए मिच्छत्तं गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ १८८ ॥

तं जघा- देरो वा णेरइओ वा उउसमसम्मादिट्ठी उउसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अरिथि चि सासणं गदो । एगममयमच्छिय काल करिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु उजु-गदीए उववज्जिय औरालियमिस्सकायजोगी जादो । समऊण छ आवलियाओ अच्छिय मिच्छत्त गदो ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालदो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

त जघा- सत्तट्ठ जणा बहुगा मा असंजदसम्मादिट्ठिणो णेरइया औरालियमिस्स-कायजोगिणो जादा । सव्वलहु पज्जत्तिं गदा, बहुमागरोउमाणि पुव्व दुक्खेण सह द्विदत्तादो ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ १९० ॥

जैसे— एक सासादनसम्यग्दष्टि जीव अपने कालमें एक समय अशिश्ट रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आगलीप्रमाण है ॥ १८८ ॥

जैसे— कोई एक देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आगली कालके शेष रहने पर सासादनगुणस्वानको प्राप्त हुआ । वहा पर एक समय रह करके मरण कर तिर्यच और मनुष्योंमें ऋजुगतिसे उत्पन्न होकर औदारिकमिश्र-काययोगी हो गया । वहा पर एक समय कम छह आगली तक रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।

औदारिकमिश्रकाययोगी अस्यतसम्यग्दष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्गृह्यते काल तक होते हैं ॥ १८९ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे अस्यतसम्यग्दष्टि नारकी जीव औदारिक-मिश्रकाययोगी हुए । और बहुतसे सागरोपम काल तक पहले दु खोंके साथ रहे हुए होनेसे सर्वलघु कालसे पर्याप्तियोंको प्राप्त हुए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्गृह्यते है ॥ १९० ॥

त जघा- देव णेरहया मणुस्मा मत्तट्ट जणा वट्टआ चा सम्मादिट्ठिणो ओरालिय
मिस्सकायजोगिणो जादा । ते पज्जत्ति मदा । तस्समए चैय अण्णे अमनदसम्मानिट्ठिणो
ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेव दो तिण्णि जाणुवस्सेण सरोज्जवारा चि ।
एदाहि सरोज्जमलागाहि एगमपज्जत्तद्ध गुणिदे एगमट्टहचस्म अतो चैय जेण होदि, तेण
अतोमट्टहत्तमिदि वुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९१ ॥

त जघा- एको सम्मादिट्ठी गरीम सागरोपमाणि दुक्खेवरसो होट्टण जीविदो ।
छट्ठीदो उच्चट्ठिय मणुसेसु उप्पण्णो । निग्गहगदीए तस्म सम्मत्तमाहप्पेण उवमज्जिदपुण्ण
पोगलस्स ओरालियणामकम्मोदण्ण सुअथ सुरम सुण्ण-सुहपासपरमाणुपोगलवहुला
आगच्छति, तस्म जोगवट्टहत्तसणादो । एदस्स जहण्णिया ओरालियमिस्सकायजोगस्स
अट्ठा होदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

जैसे— देव, नारकी, अथवा मनुष्य सात आठ जन, अथवा बहुतसे सम्यग्दृष्टि
जीव, औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । वे सब पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अथ
असयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकार एक, दो, तीन इत्यादि
क्रमसे उत्कृष्ट सरयातवार तक अन्य अथ असयतसम्यग्दृष्टि जीव मिश्रकाययोगी होते गये ।
इन सद्यथात शालाकाओंसे एक अपयाप्तकालको गुणित करने पर वह सब काल चूक एक
मुहूर्तके अंतर्गत ही होता है, इसलिए सूत्रकारने अंतर्मुहूर्त काल कहा है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९१ ॥

जैसे— छठी पृथिवीका कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी वार्धम सागर तक दुष्टोंसे एक
रस अर्थात् अत्यन्त पीड़ित होकर जीता रहा । पुन छठी पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें
उत्पन्न हुआ । विप्रहगतियों, सम्यक्त्वके माहात्म्यसे उद्यममें आये हैं पुण्यप्रकृतिके पुद्गलपरमाणु
जिसके ऐसे उस जीवके औदारिकनामकर्मके उद्यमसे सुगन्धित, सुरस, सुवण और सुम
स्पर्शवाले पुद्गलपरमाणु बहुलतासे आते हैं, क्योंकि, उस समय उसके योगकी बहुलता देखी
जाती है । ऐसे जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९२ ॥

एदं कस्त होदि ? सञ्चट्टसिद्धिनिमाणवासियटेनस्स तेत्तसि सागरोनमाणि सुहलालियस्स पमुद्धदुक्खस्स माणुसगन्धे गूह-मुत्त पिच्च खरिस-वस सेंभ लोहि-सुक्कामाद्धिदे अइदुग्गंधे दूसे दुच्चण्णे दुप्पासे चमारकुडोपमे उच्चणस्स, तत्थ मदो जोगो होदि चि आहरियपरपरागदुवदेसा । मज्जोगेण थोपे पोगगले गेण्हतस्स ओरालियमिस्सद्धा दीहा होदि चि उच्च होदि । अधवा जोगो एत्थ महल्लो चेन होदु, जोगसेण बहुआ पोगगला आगच्छतु, तो पि एदस्स दीहा अपज्जचद्धा होदि, निलिमाए दूसियस्स लहु पज्जचित्तिसमाण्णे असामत्थियादो ।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९३ ॥

एतो एगसमओ कस्त होदि ? सत्तट्टजणण दंडादो कवाडं गंतूण तत्थ एगसमयमच्छिय रुजग गदाण, रुजगादो कनाड भत्तूण एगसमयमच्छिय दंडं गदकेवलीण वा ।

शंका—यह उत्कृष्ट काल किस जीवके होता है ?

समाधान—तेतीस सागरोपमकाल तक सुप्तसे लालित पालित हुए तथा दु खोंसे रहित सर्वांगसिद्धिनिमाणवासी देवके विष्टा, मूत्र, आतडी, पिच्च, खरिस (कफ) चर्बी, नासिकामल, लोह, शुक्र और आमसे व्याप्त, अतिदुर्गन्धित, कुत्सितरस, दुर्बल और दुष्ट स्पर्शवाले चमारके कुडके सदृश मनुष्यके गर्भमें उत्पन्न हुए जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल होता है, क्योंकि, उसके विग्रहगतिमें तथा उसके पश्चात् भी मद्योग होता है, इस प्रकारका आचार्य-परम्परागत उपदेश है । मद्योगसे अल्प पुद्गलोंको ग्रहण करनेवाले जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है । अथवा, यहा पर चाहे योगकाल बसा ही रहा आवे, और योगके वशसे पुद्गल भी बहुतसे आते रहें, तो भी उक्त प्रकारके जीवके अपर्याप्तकाल बसा ही होता है, क्योंकि, विलाससे दूषित जीवके शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियोंके सम्पूर्ण करनेमें असामर्थ्य है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सजोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १९३ ॥

शंका—यह एक समय किसके होता है ?

समाधान—दंडसमुदातसे कपाटसमुदातको प्राप्त होकर और वहा एक समय रह कर प्रतरसमुदातको प्राप्त हुए सात आठ केवलियोंके यह एक समय होता है । अथवा, रुचकसमुदातसे कपाटसमुदातको प्राप्त होकर और एक समय रह करके दंडसमुदातको प्राप्त होनेवाले केवलियोंके यह एक समय होता है ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमय ॥ १९४ ॥

एदे संखेज्जसमया कम्हि होंति ? क्काडे चडण-ओपरणकिरियावानददड पदर पज्जायपरिणदसंखेज्जकेवलीहि संखेज्जसमयपतीए द्विदेहि अधिउत्तेहि ।

एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण एगसमओ ॥ १९५ ॥

एसो कम्हि होदि ? क्काडगदकेवलिम्हि चडणोदरणकिरियावानददड पदरपज्जाय-परिणदकेवलीहिंतो जागदम्हि । बहुआ समया किण्ण होंति ? ण, क्काडम्हि एगसमयं मोत्तूण बहुसमयमच्छणाभावा । कधमेक्कस्सेण जहणुक्कस्सववएसो ? ण एस दोसो, कणिट्ठो वि जेट्ठो वि एसो चेव मम पुत्तो चि लोमे वणहारुणलभा ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका उत्कृष्ट काल सख्यात समय है ॥ १९४ ॥

शका—ये सख्यात समय किसमें होते हैं ?

समाधान—कपाटसमुदातकी आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए कप्तशः दडसमुदात और प्रतरसमुदातरूप पर्यायसे परिणत सख्यात समयोंकी पक्तिमें स्थित, ऐसे सख्यात केवलियोंके द्वारा अधिष्ठत अवस्थामें उक्त सख्यात समय पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥ १९५ ॥

शका—यह एक समय कहा पर होता है ?

समाधान—आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें व्यापृत, ऐसे दडसमुदात और प्रतरसमुदातरूप पर्यायसे प्रमश परिणत हो उक्त समुदात केवली भवस्थासे आये हुए कपाटसमुदातगत केवलीके यह एक समय पाया जाता है ।

शका—उक्त प्रकारके जीवोंके बहुत समय क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कपाटसमुदातमें एक समयको छोड़कर बहुत समय तक अहमेका अभाव है ।

शका—तो फिर एक ही समयके जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश कैसे किया ?

समाधान—यह कोई दोष न  और ज्येष्ठ भी 'यही हमारा मूल है' इस प्रकारका लोकमें व्य
 ३०६२५। व्यपदेश हो सकता है ।

वेउच्चियकायजोगीसु मिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालदो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १९६ ॥

बुदो ? सव्वद्धासु वेउच्चियकायजोगिमिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विसताण-वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १९७ ॥

तं जघा- एगो मिच्छादिद्वी मण-वचिजोगेसु अच्छिडदो अद्वारएण वेउच्चिय-कायजोगी जादो । एगममय वेउच्चियकायजोगेण दिद्वो । विदियसमए मदो अण्णजोग गदो । मरणेण विणा सम्मामिच्छादिद्वी असजदसम्मादिद्वी वा जादो । अधवा सासण-सम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी अमंजदसम्मादिद्वी वा वेउच्चियकायजोगद्धाए एगो समओ अत्थि ति मिच्छादिद्वी जादो । विदियसमए अण्णजोग गदो । वाघादेण एगममओ पत्थि, गिरुद्धजायनोगादो । एगमसजदसम्मादिद्विस्स वि एगममयरूपरणा तीहि पयारेहि कायच्चा ।

उयकस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें वैक्रियिककाययोगीजाले मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी परम्पराके निच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १९७ ॥

जैसे- कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव, मत्तयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान था । वह उस योगके कालके क्षय हो जानेसे वैक्रियिककाययोगी हो गया । तब वह एक समय वैक्रियिककाययोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । द्वितीय समयमें मरा और अन्य योगको प्राप्त हो गया । अथवा, मरणके बिना सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असयतसम्यग्दृष्टि हो गया । अथवा, सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असयतसम्यग्दृष्टि कोई जीव, वैक्रियिककाययोगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर, मिथ्यादृष्टि हो गया और द्वितीय समयमें अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय लघ होता है । यद्वा पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, काययोगकी अपेक्षा कथन हो रहा है । (व्याघात तो मन या वचनयोगमें पाया जाता है ।) इसी प्रकार असयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी एक समयकी प्ररूपणा तीन प्रकारसे करना चाहिए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९८ ॥

सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८
सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८
सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८

सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८ ॥

सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८, उक्तमेण
सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८, उक्तमेण छ आवलिषा, ११०
सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८

सुम्नादिद्विषो द्वा षड्वा ८ ॥ २०० ॥

पाणाजीवं पटुच्च जहणोण एत्तस्सो उक्कस्सेण
पाणाजीवं पटुच्च जहणोण एत्तस्सो उक्कस्सेण अतोमुहुत्तमिच्चैव
मिच्छादिद्विषो द्वा षड्वा ८, उक्तमेण अतोमुहुत्तमिच्चैव
मिच्छादिद्विषो द्वा षड्वा ८, उक्तमेण अतोमुहुत्तमिच्चैव

पैठियगिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि अत्तं
पैठियगिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि अत्तं
पैठियगिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि अत्तं

असे - सतांभोम भा वसतयोगमें स्थित मिथ्यादृष्टि और
पैठियगिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि अत्तं
पैठियगिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि अत्तं
पैठियगिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि अत्तं

हे ॥ २०० ॥

माना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक
कथनकी भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे
एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उक्तमेण छह
कारणों, ११०

एतथ ताव मिच्छादिद्विस्स जहणणकालो बुच्चदे— सत्तद्ध जणा बहुआ वा दन्वलिगिणो उपरिमगेणज्जेसु उववण्णा सन्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा । सपहि सम्मादिट्ठीणं बुच्चदे— सरेज्जा सजदा^१ सव्वड्ढेवेषु दो विग्गहं कादूण पज्जत्ति गदा । किमद्ध दो विग्गहे करा- विदा ? बहुपोग्गलग्गहणद्ध । तं पि किमद्ध ? थोउरकालेण पज्जत्तिसमाणद्धं । मिच्छादिद्वी दो विग्गहे किण्ण करापिदो ? ण, तत्थ वि पडिसेहाभावा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०२ ॥

सत्तद्ध जणा उक्कस्सेण असरेज्जसेट्ठिमत्ता वा मिच्छादिद्विणो देव णेरहएसु उव- वञ्चिय वेउच्चियमिस्सकायजोगिणो जादा, अतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा । तस्समए चैव अण्णे मिच्छादिद्विणो वेउच्चियमिस्सकायजोगिणो जादा । एउमेक्क-दो-तिण्णि उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ^२ लब्भति । एदाहि वेउच्चियमिस्सद्ध

यहा पर पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल कहते हैं— सात आठ जन, अथवा बहुतसे द्रयलिगी जीव उपरिम श्रेणिकोंमें उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तकरणके प्राप्त हुए। अत्र सम्पददृष्टिका जघन्य काल कहते हैं—सख्यात सयत दो विग्रह करके सर्वायसिद्धिनिमानवासी देवोंमें पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए ।

शंका—दो विग्रह किस लिए कराये गये हैं ?

समाधान—बहुतसी पुद्गलवर्गणाओंके ग्रहण करानेके लिए दो विग्रह कराये गये हैं ?

शंका—बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण भी किसलिए कराया गया ?

समाधान—अल्पकालके द्वारा पर्याप्तियोंके सम्पन्न करनेके लिए बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण आवश्यक है ।

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवके दो विग्रह क्यों नहीं कराये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें भी प्रतिषेधका अभाव है, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और भी दो विग्रह कर सकते हैं ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्पददृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भाग है ॥ २०२ ॥

सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे असख्यातश्रेणिमान मिथ्यादृष्टि जीव देव, अथवा शारकियोंमें उत्पन्न होकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए, और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर पल्योपमके असख्यातवें भागमान

१ अ वा क प्रतिपु 'सखेग्गासखेग्गा सजदा', म २ प्रतो तु इरीरुण पाठः ।

२ अ वा क प्रतिपु 'सलागाओ' इति पाठो नास्ति । म २ प्रतो तु अस्ति ।

शुण्दि पलिदोमस्म असखेज्जदिभागमेचो वेउच्चियमिस्सकालो होदि । असंनदसम्मा दिट्ठीण पि एव चेव उच्चवं । णपरि एदे एगममएण पलिदोमस्म असंखेज्जदिभाग मेचो उक्कस्सेण उप्पज्जति, रासीदो वेउच्चियमिस्सकालो असंखेज्जगुणो । त कथ णज्जे । आइरियपरपरागदुपदेमादो । देवलोण उप्पज्जमाणमम्मादिट्ठीहिंतो देव णेरइएसु उप्पज्ज माणमिन्डादिट्ठी असंखेज्जसंदिगुणिदमेत्ता हंति चि कालो पि तापदिगुणो किण्ण होदि चि बुत्ते, ण होदि, उहयत्थ वेउच्चियमिस्सद्व्वासलागाण पलिदोमस्म असंखेज्जदि भागमेत्तुवदेसा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ २०३ ॥

तं जथा— एगको दन्त्रलिगी उपरिमगेपेज्जेमु दो विग्गहे कादूण उच्चण्णो, मच्चलहु मंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो । सम्मादिट्ठी एको सज्जेदो सच्चड्डेपेसु दो विग्गहे कादूण उच्चण्णो, सच्चलहुमतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो ।

वैत्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंकी शलाकाए पाई जाती है । इनसे वैत्रियिकमिश्रकाय योगके कालकी गुणा करने पर पश्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण वैत्रियिकमिश्रकाय योगका काल होता है । असयतसम्यग्दृष्टियोंका भी काल इसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि ये असयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें पश्योपमके असख्यातवें भाग मात्र उत्पन्नरूपसे उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, इस उत्पन्न होनेवाली राशिसे वैत्रियिकमिश्रकाय योगका काल असख्यातगुणा है ।

शुक्रा—यह कैसे जाना ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है कि एक समयमें उत्पन्न होनेवाली असयतसम्यग्दृष्टिराशिसे उक्त काल असख्यातगुणा है ।

शुक्रा—देवलोकेमें उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टियोंसे देव या नारकियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव अमख्यात श्रेणियोंसे शुणितप्रमाण होते हैं, इसलिये वैत्रियिक मिश्रकाय काल भी असख्यात श्रेणियुगित क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि वैत्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें, वैत्रियिकमिश्रकायकी शलाकाओंके पश्योपमके असख्यातवें भागमात्र होनेका उपदेश है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०३ ॥

एक दन्त्रलिगी साधु उपरिम पश्योपमोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ । एक सम्यग्दृष्टि भावलिनी सयत सर्वाथलिङ्गि विमानवासी देवोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूणताको प्राप्त हुआ ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०४ ॥

तं जघा- एको तिरिकसो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी सत्तमपुढत्रिणेरइएसु उजवण्णो सव्वचिरेण अतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । सम्मादिट्ठिस्स- एको बद्धणिरयाउओ सम्मत्तं पडिउज्जिय दसणमोहणीय सत्रिय पढमपुढत्रिणेरइएसु उजवज्जिय सव्वचिरेण अतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । दोण्ह जहण्णकालेहिंतो उक्कस्सकाला दो वि संखेज्जगुणा । कधमेदं णव्वेदे ? गुरूदेसादो ।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०५ ॥

तं जघा- सत्तइ जणा बहुआ वा सासणसम्मादिट्ठिणो सगद्धाए एगो समओ अत्थि चि देवेषु उजवणा । त्रिदियमए सव्वे मिच्छत्तं गदा । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०४ ॥

जैसे—कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ । अब असयतसम्यग्दृष्टिकी कालप्ररूपणा करते हैं—कोई एक बद्धनरकायुक्क जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दर्शनमोहनीयका क्षपण करके और प्रथम पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ । दोनोंके जन्म कालोंसे दोनों ही उत्कृष्ट काल सख्यातगुणे हैं ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—गुरुके उपदेशमें जाना कि वैकियिकमिथकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा बतलाए गए जघन्य कालोंसे उन्हींके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होते हुए भी सख्यातगुणित हैं ।

वैकियिकमिथकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०५ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अशेष रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुए और द्वितीय समयमें सबके सब मिथ्याओंको प्राप्त हुए । इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पत्योपमके असख्यातमें भागप्रमाण है ॥ २०६ ॥

१ शब्द 'सव्वमिच्छत्तं' इति पाठः ।

त जघा-एको पमत्तसजदो मणजोगे वचिजोगे वा अचिउदो आहारकायजोगे गदो । विदियसमण मदो, मूलसरीर वा पविट्टो ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ २१२ ॥

त जघा-मणजोगे वचिजोगे वा द्विदपमत्तसजदो आहारकायजोगे गदो, सञ्चु-क्कस्ममतोमुहुत्तमाठिय अण्णजोगे गदो ।

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ २१३ ॥

त जघा-सत्तद्ध जणा पमत्तमजदा दिट्ठमग्गा आहारमिस्सजोगीणो जादा, सञ्चलहुमतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा । एव जहण्णकालो परुत्तिदो ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ २१४ ॥

त जघा-सत्तद्ध जणा पमत्तमजदा दिट्ठमग्गा अदिट्ठमग्गा वा आहारमिस्सकाय जोगीणो जादा, अतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा । तस्समए चेव अण्णे आहारमिस्सकाय जोगीणो जादा । एवमेक दो तिण्णि जाय सखेज्जमलागा जादा ति कादच्च । पुणो

जैसे-मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसयत जीव आहारक काययोगको प्राप्त हुआ और द्वितीय समयमें मरा, अथवा मूल शरीरमें प्रविष्ट होगया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१२ ॥

जैसे-मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसयत जीव आहारककाय योगको प्राप्त हुआ । वडा पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योगको प्राप्त हुआ ।

आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसयतनीय कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तकाल होते हैं ॥ २१३ ॥

जैसे- देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे सात भाग प्रमत्तसयत जीव आहारकमिश्र काययोगी हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए । इस प्रकार जघन्य काल कहा ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१४ ॥

जैसे- देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे, अथवा अष्टमार्गी सात भाग प्रमत्तसयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य भी प्रमत्तसयत जाय आहारकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर जय तरु सख्यात शलाकाए पूरी हों, तब तक सरया बढाते जाना

एदाहि सलागाहि आहारमिस्सकायजोगद्ध गुणिदे आहारमिस्सकायजोगस्स उक्कस्सकालो जतोमुहुत्तमेतो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१५ ॥

त जथा— एको पमत्तसजदो पुव्वमणेगवारमुट्ठापिदआहारसरीरो आहारमिस्सकाय-जोगी जादो, सव्वलहुमतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । लद्धो जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

तं जथा— एको पमत्तसजदो अदिट्ठमग्गो आहारमिस्सो जादो । सव्वचिरेण अंतो-मुहुत्तेण जहण्णकालादो सस्सेज्जगुणेण पज्जत्तिं गदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणा-जीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २१७ ॥

कुदो ? निग्गहगदीए वट्टमाणजीवाण सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

चादिए । पुन इन शलाकाओंसे आहारकमिश्रकाययोगके कालको गुणा करने पर आहारक-मिश्रकाययोगका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१५ ॥

जैसे— पूर्वमें जिसने अनेक बार आहारकशरीरको उत्पन्न किया है ऐसा कोई एक प्रमत्तसयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ और मरसे लुपु अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे जघन्य काल प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१६ ॥

जैसे— नहीं देखा है मार्गको जिसने ऐसा कोई एक प्रमत्तसयत जीव आहारक-मिश्रकाययोगी हुआ, और जघन्य कालसे संयतगुणे सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तद्वारा पर्याप्तको प्राप्त हुआ ।

कर्मणसाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव जितने काल तक हैं वे ही नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २१७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें विप्रवृत्तियोंमें विद्यमान जीवोंके विरुद्ध कर्मों

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २१८ ॥

त जहा- एगो मिच्छादिद्वी विग्गहगदिणामकम्मरसेण एगविग्गहे मारणंतियं गदो । पुणो अतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण चट्ठाउवसेण उप्पणपट्टमसमए कम्मइयकाय जोगी जादो । विदियममए ओरालियमिस्म वेउव्वियमिस्स वा गदो । लद्धो एगममओ ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१९ ॥

त जघा- एगो सुहुमेइदियो अहो सुहुमनाउकाइएसु तिण्णि विग्गहं मारणंतियं गदो । अतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण उप्पणपट्टमसमयप्पहुडि तिसु विग्गहेसु तिण्णि समय कम्मइयजोगी होदूण चउत्थसमए जोरालियमिस्म गदो । सुहुमेइदियाण सुहुमे इदिएसु उप्पज्जमाणाण तिण्णि विग्गहा हाति सि णियमो कधं णव्वदे ? णत्थि एत्थ णियमो, किंतु समय पडुच्च सुहुमेइदियग्गहण कद । वादरेइदिया सुहुमेइदिया तसकाया वा सुहुमेइदिएसु उववज्जमाणा तिण्णि विग्गहं करेति त्ति एस णियमो धेत्तव्वो, आइरिय परपरागदचांदो । तिण्णिविग्गहाकरणदिसा उच्चदे- धम्मलोगुहेसे वामदिसालोगेपरतादो

जैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव, विग्रहगतिनामकर्मके वशसे एक विग्रहवाले मारणांतिकसमुदायको प्राप्त हुआ । पुन अन्तमुहूर्तसे छिन्नायुक्त होकर वाधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें कर्मणकाययोगी हुआ । पुन द्वितीय समयमें औदारिकमिश्र काययोगको, अथवा धार्मिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २१९ ॥

जैसे—एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अधरतन सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रहवाले मारणांतिकसमुदायको प्राप्त हुआ । पुन अन्तमुहूर्तसे छिन्नायुक्त होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमें तीन समय तक कर्मणकाययोगी होकर चौथे समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हो गया ।

शुका—सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके तीन विग्रह होते हैं, यह नियम कैसे जाना ?

समाधान—यद्यपि इस विषयमें कोई नियम नहीं है, तो भी संभावनाकी अपेक्षा यद्वा पर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका ग्रहण किया है । अतएव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले वादर एकेन्द्रिय या सूक्ष्म एकेन्द्रिय अथवा प्रसक्तायिक जीव हीं तीन विग्रह करते हैं, यह नियम ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, यही उपदेश आचार्यपरम्परासे आया हुआ है । जब तीन विग्रह करनेकी दिशाको कहते हैं— ब्रह्मलोकवर्ती प्रवेशपर धामदिशा

तिरिच्छेण दक्षिणं तिष्णि रज्जुमेत्तं गंतूण तदो साद्धदसरज्जूणि अधो कंडुज्जुव गंतूण तदो संमुहं चदुरज्जुमेत्त आगतूण कोणदिसाठिद्लोगपेरंतसुहुमवाउकाइएसु उप्पजमाणस्स^१ तिष्णि विग्गहा हंति ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२० ॥

त जघा— सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी एगविग्गह कादूणुप्पण्णपढमसमए एगसमओ कम्मइयकायजोगेण लब्भदि ।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २२१ ॥

त जघा— सासणसम्मादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिणो दोष्णि विग्गहं कादूण च्छाउ-वसेणुप्पजिजय दोष्णि समए अच्छिय ओरालियमिस्स वेउच्चियमिस्स वा गदा । तस्ममए चेव अण्णे कम्मइयकायजोगिणो जादा । एवमेव कंडय कादूण एरिसाणि^१ आवलियाए अमंखेज्जदिभागमेत्तं कडयाणि हंति । एदाणं सलागाहि दोष्णि समए गुणिदे आवलियाए असंखेज्जभागमेतो कम्मइयकायजोगस्स उक्कस्सकालो होदि ।

सम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिणकी ओर तीन राजुप्रमाण जाकर पुनः साढ़े पदा राजु नीचेकी ओर घाणके समान सीधी गतिसे जाकर पश्चात् सामनेकी ओर चार राजुप्रमाण आकर कोणवर्ती दिशामें स्थित लोकके अन्तवर्ती सूक्ष्म वायुकायिकोंमें समुत्पन्न होनेवाले जीवके तीन विग्रह होते हैं ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दष्टि और असयतसम्यग्दष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२० ॥

जैसे— कोई सासादनसम्यग्दष्टि और असयतसम्यग्दष्टि जीव एक विग्रह करके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें एक समय कर्मणकाययोगके साथ पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवर्ण भागप्रमाण है ॥ २२१ ॥

जैसे— पूर्व पर्यायको छोड़नेके पश्चात् कितने ही सासादनसम्यग्दष्टि और असयत सम्यग्दष्टि जीव बाधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होकर विग्रहगतिके दो विग्रह करके, दो समय रह कर, पुनः औदारिकमिथकाययोगको अथवा धैमियिकमिथकाययोगको प्राप्त हुए । इसी समयमें ही दूसरे भी जीव कर्मणकाययोगी हुए । इस प्रकार इसे एक काडक करके, इसी प्रकारके अन्य अन्य आवलीके असंख्यातवर्ण भागमात्र काडक होते हैं । इन काडकोंकी शलाकाओंसे दोनों समयोंको गुणा करने पर आवलीका असंख्यातवा भागमात्र कर्मणकाययोगका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ अ क प्रश्नो ' काइयाए समुत्पजमाणस्स ' ; आ प्रती ' काइयाण्ण उप्पजमाणस्स ' इति पाठ ।

२ प्रथिणु ' परिभागे ' इति पाठ ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ॥ २२२ ॥

सुगममेद सुत्त ।

उक्कस्सेण वे समयं ॥ २२३ ॥

कुटो ? एदेसिं सुहमेइदिएसु उप्पत्तीए अभात्ता, वड्ढि हाणिक्रमेण द्विदलोगतं

उप्पत्तीए अभात्तादो च ।

सजोगिकेवली केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जह-
ण्णेण तिण्णि समय ॥ २२४ ॥

त जहा— सत्तह जणा या सजोगिणो समग क्काड गदा, पदर लोगपूरण गत्तूण
भूओ पदर गत्तूण तिण्णि समय कम्मइयक्कायजोगिणो होदूण क्काड गदा ।

उक्कस्सेण सखेज्जसमयं ॥ २२५ ॥

हुदो ? तिण्णि समइय कडयं काऊण सखेज्जकडयाणमुवलभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं ॥ २२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल दो समय है ॥ २२३ ॥

पर्यंकि, इन सासादन या असपतगुणस्थानवर्ती जीवोंकी सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें
उत्पात्तिका अभाव है । तथा वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकके अन्तमें भी उनकी
उत्पात्तिका अभाव है ।

कार्मणक्काययोगी सयोगिकेवली कितने समय तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा जघन्यसे तीन समय होते हैं ॥ २२४ ॥

जैसे— सात अथवा आठ सयोगिजिन एक साथ ही कपाटसमुदातको प्राप्त हुए,
और प्रतर तथा लोकपूरणसमुदातको प्राप्त होकर पुन प्रतरसमुदातको प्राप्त हो, तीन समय
तक कामणक्काययोगी रह करके कपाटसमुदातको प्राप्त हुए ।

कार्मणक्काययोगी सयोगिजिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल सरयात
समय है ॥ २२५ ॥

पर्यंकि, तीन समयवाले कांडको करके उनके सख्यात कांडक पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणक्काययोगी सयोगिजिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल
दो समय है ॥ २२६ ॥

कुदो ? पदरादो लोगपूरणादो ना कनाडस्स गमणामाना ।

एव जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति,
णाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ २२७ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु इत्थिवेदमिच्छादिद्वीण निरहामाना ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २२८ ॥

त जघा— एको इत्थिवेदगो सम्मामिच्छादिद्वी असजदसम्मादिद्वी सजदासंजदो
पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्त गतूण सव्वजहण्णकालमच्छिय अण्णाणुणं गदो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ २२९ ॥

त जघा— एको अणप्पिदवेदो इत्थिवेदेसु उग्रण्णो । पुणो तत्थ इत्थिवेदेण
पलिदोवमसदपुधत्तं परियद्विय अणप्पिदवेद गदो ।

क्योंकि, कार्मणकाययोगी सयोगिजिनका प्रतर और लोकपूरणसमुदायसे लोटकर
कपाटसमुदायमें जानेका अभाव है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २२७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें स्त्रीवेदियोंके मिथ्यादृष्टि जीवोंके निरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२८ ॥

जैसे— कोई एक स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा
सयतासयत, अथवा प्रमत्तसयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सयसे
जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्लोपमशतपृथक्त्व है ॥ २२९ ॥

जैसे— अविवाहित वेदवाला कोई एक जीव स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । पुन वहा पर
स्त्रीवेदके साथ पल्लोपमशतपृथक्त्व काल तक परिवर्तन करके अविवाहित वेदको चला गया ।

१ स्त्रीवेदेषु सिध्दादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वे काल । स सि १, ८

२ एकजीव प्रति जघयेनाप्तमुहूर्त । स सि १, ८

३ उत्कृष्टेण पल्लोपमशतपृथक्त्वम् । स सि १, ८

सासणसम्मादिट्टी ओघं ॥ २३० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण रासीदो असखेज्जगुणो, पलिदो-
पमस्त असखेज्जदिभागो; एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलि-
याओ, इधेएण ओघादो वित्तेसामाना ओघमिदि वुत्त ।

सम्मामिच्छादिट्टी ओघं ॥ २३१ ॥

दुदो ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण सगरासीदो असखेज्जगुणो
पलिदोपमस्त असखेज्जदिभागो, एगजीव पडुच्च जहण्णुकस्सेण अतोमुहुत्त, इच्छेदेण
ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्टी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धां ॥ २३२ ॥

दुदो ? इत्थिवेदग्घि असजदसम्मादिट्टिविरहिदकालाणुलमा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३३ ॥

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे असख्यातगुणा
पत्त्योपमका असख्यातघा भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छद्
शापलीप्रमाण काल है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है, अतएव ओघ
यद् यद् गूढमें कहा ।

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल अपनी
राशिसे असख्यातगुणित पत्त्योपमके असख्यातयें भाग है, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य
और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें अमयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३२ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें अमयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कोई काल नहीं पाया
जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टिजीवोंका काल । स वि १, ८

२ किंत्तु अमयतसम्यग्दृष्टिनानाजीवोंका सर्व काल । स वि १, ८

३ अमयतसम्यग्दृष्टिः । स वि १, ८

त जथा— एगो मिच्छादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी सजदासजदो पमचसंजदो वा इत्यिवेदगो परिणामपचएण असजदसम्मादिद्वी होदूण सब्जहण्णमतोमुहुचमच्छिय जहण्ण-कालनिरोहेण गुणतर गदो । लद्धो जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि^१ ॥ २३४ ॥

कुदो ? अणप्पिदवेदस्स पणवण्णपलिदोवमाउट्टिदिदेरीसु उववजिय छ पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुचं निस्समिय पुणो अंतोमुहुचं विसुद्धो होदूण वेदगसम्मत्त पडिवजिय सम्मत्तेण आउट्टिदिमणुपालिय काल कादूण पुरिसवेद पडिवण्णस्स तीहिं^२ अंतोमुहुचेहि ऊणपणवण्णपलिदोवसुवलभा ।

संजदासंजदपहुडि जाव अणियट्टि ति ओघं ॥ २३५ ॥

कुदो ? ओघ पेक्खिदूण उत्तगुणट्ठाणाणं मेदाभारा । णवरि मंजदासंजदउक्कस्स-कालमिह अत्थि विसेसो । तं जथा— एको अट्ठवीससंतरुम्मिओ त्थीवेदेसु कुक्कुड-

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या सयतासयत अथवा प्रमत्तसयत स्त्रीवेदी जीव परिणामोंके निमित्तसे असयतसम्यग्दृष्टि होकर और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त रह करके जघन्य कालके अनिरोधसे किसी दूसरे गुणस्थानको चला गया । इस प्रकार जघन्य काल लघ्य हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंको उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्योपम है ॥ २३४ ॥

क्योंकि, किसी अविवक्षित अन्य वेदवाले जीवके पचवन पल्योपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उत्पन्न हो, छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न कर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, पुन अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर सम्यक्त्वके साथ अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, मरणको करके पुरुषवेदको प्राप्त हुए जीवके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पचवन पल्योपमप्रमाण काल पाया जाता है ।

संयत्तासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिष्टचिकरण गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीवोंको काल ओघके समान है ॥ २३५ ॥

क्योंकि, ओघके कालको देखते हुए सूत्रोक्त गुणस्थानोंके कालोंमें कोई भेद नहीं है । केवल सयतासयतके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । वह इस प्रकार है—मोहकर्मकी अट्टारिस

१ उत्कृष्टेण पचपवाणत्वस्योपमानि देशोनानि । स सि १, ८

२ क प्रती ' विदि ' इति पाठ ।

मकडादिसु उपज्जिय वे मासे गवमे अन्धिदूण णिफ्फडिय मुहुत्तपुधत्तसुपरि सम्मत्त सजमासजम च जुमार' धेत्तूण वेमाममुहुत्तपुवत्तूणपुव्वकोडिं सजमासजममणुपालिय मद्रो देसो जादो चि । ओघमिह पुण अतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिसजदासजदउवस्सफालो सण्णि- सम्मुच्छिमपज्जत्तमच्छ-कच्छं मंद्दकादिसु लद्धो, एत्थ मो ण लब्भदि, सम्मुच्छिमेसु इत्थि वेदामाना ।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ २३६ ॥

तिसु नि अद्वासु पुरिसवेदमिच्छादिद्वीण रिहासभना ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त' ॥ २३७ ॥

हुसो ? असजदसम्मादिद्विस्स सम्मामिच्छादिद्विस्स सजदासजदस्स पमत्तसजदस्स वा दिद्वमग्गस्स मिच्छादिद्वी होदूण सव्वजहण्णमच्छिय गुणतर पडिवण्णस्स अतो- मुहुत्तुपलभा ।

प्रतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव खीवेदी पुच्छट, मकंड आदिमें उत्पन्न होकर, ओर दो मास गर्भमें रह, निकट करके मुहूर्तपृथक्करके ऊपर सम्यक्त्वे और सयमासयमको युगपत् ग्रहण करके दो मास और मुहूर्तपृथक्त्वेसे कम पूर्वकोटीउपप्रमाण सयमासयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया । किन्तु ओघफालप्ररूपणामें जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी वप सयतासयतका उत्पन्न काल कहा है वह सखी सम्मुच्छिम पर्याप्त मच्छ, कच्छय मडकादिफांमें ही पाया जाता है, वह यहा पर नहीं पाया जाता है; क्योंकि, सम्मुच्छिम जीवोंमें खीवेदका अभाव है ।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३६ ॥

क्योंकि, तीर्ना ही कालोंमें पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका चिरह असंभव है ।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिनसे, वेसे असयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा सयतासयत, अथवा प्रमत्तसयतके, मिथ्यादृष्टि होकर और सवजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्वानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

१ अ प्रती 'णिफ्फडिय मुहुत्त' आ प्रती 'णिफ्फडियमतामुहुत्त', क प्रती 'णिफ्फडिय मुहुत्त',

म प्रती 'णिफ्फडिय मुहुत्त' इति पाठ ।

२ प्रतियु 'दुग्द' इति पाठः ।

३ प्रतियु कच्छमदि' इति पाठ ।

४ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवा ज्ञेयाः ॥ ४६ काल । स सि १, ८

५ एक जीव प्रति जघन्यनान्तमुहूर्त । स, सि १, ८

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २३८ ॥

एदस्सुदाहरण—एको त्थी-णउसयवेदेसु बहुवार परियट्टिदजीवो पुरिसवेदेसु उव-
वण्णो । पुरिसवेदो होदण सागरोवमसदपुधत्त परिभमिय अणप्पिदवेद' गदो । तिसदमादिं
करिय जान णमसद ति एदिस्से संसाए सदपुधत्तमिदि सण्णा ।

सासणसम्मादिट्टिप्पह्णुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २३९ ॥

कुदो ? एदेसिं उच्चगुणट्टाणाणं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्मकालेहि ओघादो
भेदाभावा । णवरि संजदासजदाणमित्थिवेदभंगो ।

णवुसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्धां ॥ २४० ॥

कुदो ? सव्वद्धासु एदेसिं विरहाभावा ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २३८ ॥

इसका उदाहरण— स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोंमें बहुत बार परिभ्रमण किया हुआ
कोई एक जीव पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । पुरुषवेदी होकर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक
परिभ्रमण करके अधिषक्षित वेदको चला गया । तीन सौ को आदि करके नौ सौ तककी
सप्त्याकी 'शतपृथक्त्व' यह सज्ञा है ।

सासादनसम्यग्हाट्टिसे लेकर अनितृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
पुरुषवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३९ ॥

पर्योकि, इन सूत्रोंके गुणस्वानोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य
और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई भेद नहीं है । विशेष थात यह है कि पुरुषवेदी
सयतासयतोंका काल एतवेदी सयतासयतोंके समान है ।

नपुंसकवेदियामें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २४० ॥

पर्योकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

१ उक्कप्पेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स सि १, ८

२ अ आ क प्रथियु 'अप्पिदवेद' इति पाठ, म प्रती तु स्वीहृतपाठ ।

३ सासादनसम्यग्हाट्टिभाएनितृत्तिवादान्तानां सामान्योक्त काल । स सि १, ८

४ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवेषु सर्व काल । स सि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४१ ॥

कृदो ? सम्मामिच्छादिद्विस्त असंनदसम्मादिद्विस्त सजदासजदस्त संजदस्त वा मिच्छच्च गतूण सच्चजहण्णद्धमच्छिय गुणतर गदस्त अतोमृदुत्तुलभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २४२ ॥

एदस्सुदाहरण- एकस्मिन् परिममिदत्वी पुरिसवेदद्विदिगो णत्तुसयवेदं पडिवाज्जिय तमच्छदंतो आवलियाए असखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परिममिय अण्णेवेद गदो ।

सासणसम्मादिद्वी ओधं ॥ २४३ ॥

सम्मामिच्छादिद्वी ओधं ॥ २४४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्वं ॥ २४५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४१ ॥

पर्यन्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असयत्सम्यग्दृष्टि या संयत्सयत्, अथवा सयत् जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहा पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तकाल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ २४२ ॥

इसका उदाहरण— जिसने पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया है, ऐसा कोई एक जीव नपुसकवेदको प्राप्त होकर, उसे नहीं छोडता हुआ आचलीके असख्यातवेद भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनतक परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नपुसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नपुसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

असयत्सम्यग्दृष्टि नपुसकवेदी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २४५ ॥

१ एकजीव प्रति जघनेना तमुहूर्तः । स सि १, ८

२ उत्कर्षेणानन्त कालो-अस्येया पुद्गलपरिवर्तः । स सि १, ८

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्यापनिवृत्तिवादात्तानां सामान्यत्वं । स सि १, ८

४ अस्मिन्सयत्सम्यग्दृष्टेनानाजीवेषुसया सर्वे कालः । स सि. १, ८.

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४६ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्विस्स संजदासंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स असंजदसम्मत्त पडिवज्जिय

सच्चजहण्णद्धमाच्छय गुणतरं गदस्सतोमुहुत्तुत्तलभा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २४७ ॥

कुदो ? अट्ठावीससत्तकम्मिगस्स सत्तमपुट्ठीए^१ उप्पज्जिय छ पज्जत्तीओ समा-

णिय विस्समिय विसुद्धो होदूण सम्मत्त पडिवज्जिय अतोमुहुत्तावसेसे आउए मिच्छत्त

गतूण आउअ वधिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय णिग्गदस्स छहि अंतोमुहुत्तेहि उण्वेत्तीस-

सागरोवलभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ॥ २४८ ॥

कुदो ? णाणेगजीनजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो विमेषाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४६ ॥

फ्योंकि, दृष्टमार्गों मिथ्यादृष्टि या सयत्तासयत जीवके असयतसम्पत्तको प्राप्त होकर सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतमि सागरोपम है ॥ २४७ ॥

फ्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठावीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी जीवके सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर, छह पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके, विश्राम कर और विगुञ्ज होकर, तथा सम्पत्तको प्राप्त होकर, आयुके अन्तर्मुहूर्त अशेष रहने पर, मिथ्यात्वको जाकर, आगामी भयसम्बन्धी आयुको वाधकर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके निकलनेवाले जीवके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतिस सागरोपम काल पाया जाता है ।

सयतासंयतमे लेरर अनिट्ठित्ठिकरण गुणस्थान तक्क नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४८ ॥

फ्योंकि, नाना ओर एक जीवकी अपेक्षा जघन्य ओर उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है ।

१ एकत्रोव मति जवयेतात्तर्मुहूर्तं । स ति १, ८

२ उक्कस्सेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशेनानि । स ति १, ८.

३ प्रतिपु 'सत्तपुट्ठीए' इति पाठ ।

अपगदवेदएसु अणियद्विष्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघ^१
॥ २४९ ॥

हुदो ? णाणेगनीजहण्णुककस्सकालेहि ओघादो विमेषाभावा ।

एव वेदमग्गगा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु
मिच्छादिद्विष्पहुडि जाव अपमत्तसजदा ति मणजोगिभगो ॥ २५० ॥

हुदो ? दव्वद्वियणयावलवणेण । पज्जजद्वियणए अरलविज्जमाणे अत्थि विमेषो ।
त वत्तइस्सामो । त जजा- कोवकसाई मिच्छादिद्वी एगनीज पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।
एत्थ कसाय-गुणपरावत्ति मरणेहि एगममओ उच्चवो । वाधादेण एगममओ ण लच्चमदि,
कोवस्मेव तत्तुप्पत्तीदो । त जधा-एकओ सासणो सम्मामिच्छादिद्वी अमजदसम्मादिद्वी सजदा
सजदो पमत्तसजदो वा कोधकसाई एगममय कोधकसायद्धा अत्थि ति मिच्छुत्त गदो ।
एगसमय कोवेण मिच्छुत्त दिद्व । विदियसमए अण्णकसाय गदो । एसा कसायपरावत्ती ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अपेक्षामागमे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तरुके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४९ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्तर कालके साथ ओघसे
कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार वेदमागणा समाप्त हुई ।

कपायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधरूपायी, मानरूपायी, मायाकृपायी और लोभ
कपायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसयत तरुका काल मनोयोगियोंके
समान है ॥ २५० ॥

क्योंकि, सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है । किन्तु पर्यायार्थिकनयके
अवलम्बन करने पर विशेषता है । उसे कहते हैं । जैसे— क्रोधकपायी मिथ्यादृष्टि जीवका
एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है । यहा पर कपायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन
और मरणके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिये । व्याघातकी अपेक्षा एक
समय नहीं पाया जाता है क्योंकि, व्याघातके होने पर तो प्रोवकी ही उत्पत्ति होती है ।
जैसे— कोई सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असयतसम्यग्दृष्टि, या सयता
सयत, अथवा प्रमत्तसयत क्रोधकपायी जीव क्रोधकपायके कालमें एक समय अवशेष
रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । एउ समय क्रोधके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ,
और द्वितीय समयमें किसी और कपायको प्राप्त हो गया । यह कपायपरिवर्तनसम्यग्धी एक

१ अपगतवेदानां सामायवत् । स ति १, ८

२ कपायानुवादेन चतुष्कपायानां मिथ्यादृष्ट्याद्यवमवातानां मनोयोगिवत् । स ति १, ८

एको मिच्छादिद्वी अण्णकमाएणच्छिदो, तस्स अद्वाक्खएण कोधकसाओ आगदो, एगममय कोहेण सह दिट्ठो । त्रिदियसमए सम्मामिच्छत्त असजदसम्मत्त सजमासजमं अप्पमत्त-
माणेण सजम वा पडिक्खणो । एमा गुणपरावत्ती । एको मिच्छादिद्वी अण्णकमाएणच्छिदो,
तस्सद्वाक्खएण कोहकमाई जादो । एगसमय कोहेण सह दिट्ठो । त्रिदियसमए मदो अण्ण-
कमाएसु उव्वण्णो । एसो मरणेण एगसमओ । कोहेण मदो णिरयगदीएण उप्पादेदव्वो,
तत्तुप्पण्णज्जावाण पढम कोधोदयम्मुत्तलभा । माणेण मदो मणुमगदीएण उप्पादेदव्वो,
तत्तुप्पण्णाण पढमसमए माणोदयणियमोव्वेसा । मायाए मदो तिरिक्खगईएण उप्पादे-
दव्वो, तत्तुप्पण्णाण पढमसमए माओदयणियमोव्वेसा । लोभेण मदो देवगदीएण उप्पादे-
दव्वो, तत्तुप्पण्णाणं पढम चेय लोहोदओ होदि ति आइरियपरपरागदुव्वेसा । एव
सेसगुणट्ठाणाण पि णादूण वत्तव्व । एं माण माया लोभाण वत्तव्व । णत्तरि कमाय गुण-
परावत्ति मरण वाघादेहि चउहि नि एगसमयपरूपाणा वत्तव्वा ।

समयकी प्ररूपणा है । एक मिथ्यादृष्टि जीव जो कि अन्य कपायमें वर्तमान था, उस कपायके कालक्षयसे क्रोधकपायको प्राप्त हुआ । एक समय वह क्रोधकपायके साथ दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समयमें सभ्यगमिथ्यात्वको अथवा असयतसम्यक्त्वको, अथवा सयमासयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ सयमको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थानपरिवर्तन है । एक मिथ्यादृष्टि जीव अथ कपायमें निचमान था । उस कपायके कालक्षयसे वह क्रोधकपायी हो गया । एक समय क्रोधकपायके साथ दृष्टिगोचर हुआ । पुन द्वितीय समयमें मरा और अन्य कपायोंमें उत्पन्न हुआ । यह मरणभी अपेक्षा एक समय हुआ । क्रोधकपायके साथ मरा हुआ जीव नरकगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, नरकोंमें उतरनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम क्रोधकपायका उदय पाया जाता है । मानकपायसे मरा हुआ जीव मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें मानकपायके उदयके नियमका उपदेश देखा जाता है । मायाकपायसे मरा हुआ जीव तिर्यग्गतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, तिर्यच्चोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मायाकपायके उदयका नियम देखा जाता है । लोभ कपायसे मरा हुआ जीव देवगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम लोभकपायका उदय होता है, ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है । इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी काल जान कर कहना चाहिए । इसी प्रकार मानकपाय, मायाकपाय और लोभकपायोंके कालोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । विशेष बात यह है कि कपायपरिवर्तन, गुणपरिवर्तन, मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

१ णारयतिरिक्खणरहरगईए उप्पण्णपढमकालदि । कोहो माया माणो लोहोदओ अणियमो भावि ॥
गा जी २८८

दोष्णि तिष्णि उवसमा केवचिरं कालादो ह्यंति, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ २५१ ॥

तिसु वि कमाएसु दोष्णि उवसामगा, अणियट्ठीदो उवरि तिष्ण कमायाणमभावा ।
लोभरूमाए तिष्णि उवसामगा, उवसतरूमाए लोभोदयाभावा । एदेमिं कमायपरानचि-
गुणपरारत्ति वाघादेहि एगसमओ णत्थि । कुदो ? तहाभिहुरएसामावा । किंतु अणियट्ठी-
सुहुमसापराइयाण चढत ओयरत-पढमसमए मदाण एगममओ लब्भइ । अपुब्बस्स पुण
ओयरतस्स पढमसमए चेव । कुदो ? चढमाणअपुब्बस्स पढमसमए मरणामावा ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ २५२ ॥

कुदो ? चढत-ओयरतपञ्जयपग्णिदजीरेहि अतोमुहुत्तकाल एदेसिं गुणद्वानाणम-
सुण्णत्तुवलभा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

क्रोध, मान और माया, इन तीनों कपायोंकी अपेक्षा दो उपशामक अर्थात् आठवें
और नवें गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव, और लोभकपायकी अपेक्षा तीन उपशामक
अर्थात् आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशामकश्रेण्यारोहक जीव, कितने काल तक
होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २५१ ॥

क्रोधादि तीनों ही कपायोंमें अपूर्णकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती
उपशामक जीव होते हैं; क्योंकि, अनिवृत्तिकरणसे ऊपर तीनों कपायोंका अभाव है। लोभ
कपायमें अपूर्णकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक
जीव होते हैं क्योंकि, उपशातकपाय गुणस्थानमें लोभकपायके उदयका अभाव है। इन
उपर्युक्त दो और तीन गुणस्थानवर्ता उपशामकोंमें कपायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और
व्याघात इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश
नहीं पाया जाता है। किन्तु, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके चढ़ने या
उतरनेके प्रथम समयमें मरे हुए जीवोंके एक समय पाया जाता है। अपूर्णकरण गुणस्थानके
उत्तरनेके प्रथम समयमें ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उपशामश्रेणी पर चढ़नेवाले
अपूर्णकरण गुणस्थानवर्ती जीवके प्रथम समयमें मरणका अभाव है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उपशामश्रेणी पर चढ़ती और उतरती हुई पर्यायसे परिणत जीवोंकी अपेक्षा
अन्तर्मुहूर्त काल इन गुणस्थानोंके अज्ञान्य अर्थात् परिपूर्ण रूपसे पाया जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २५३ ॥

१ द्वयोस्समकयो ×× केवललोभरय च ×× सामायीत काल । घ नि १, ८.

कुदो ? तिण्हसुवमामगाणं मरणेण एगममओरलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? कसायाणमुदयस्म अतोमुहुत्तादो उवरि णिच्छएण विणासो होदि चि गुरूदेसा ।

दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५५ ॥

एत्थ एगसमओ किण्ण लब्भदे ? उच्चदे- ण तान कसायपरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, खगुणसामगे सकमायुदयस्म जहण्णकालस्म वि अतोमुहुत्तपरिमाणुदेसा । ण गुणपरावत्तीए वि एगसमओ, एगसमइयस्स कमायुदयस्स खगुणसमसेठीसु अभावा । ण वाघादेण, खवगुवसमसेठीसु वाघादस्म पडिसेधा । ण मरणेण वि, खगोसु मरणामावा । तदो जहण्णकालेण णिच्छएण अंतोमुहुत्तेण होदव्वमिदि ।

फ्योंकि, अपूर्वकरण, अनिष्टाकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशामक जीवोंके मरणके साथ एक समय पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५४ ॥

फ्योंकि, कषायोंके उदयका अन्तर्मुहूर्त कालसे ऊपर निश्चयसे विनाश होता है, इस प्रकार गुदका उपदेश है ।

अपूर्णकरण और अनिष्टाकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा अपूर्णकरण, अनिष्टाकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २५५ ॥

शुद्धा—इन सूत्रोक्त क्षपक जीवोंके एक समयप्रमाण काल फ्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—उक्त भाशकापर उत्तर कहते ह कि उक्त दोनों या तीनों गुणस्थानोंमें न तो कषायपरिवर्तनसे एक समय पाया जाता है, फ्योंकि, क्षपक या उपशामकोंमें अपनी उदयागत कषायके उदयका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है, ऐसा वाचार्थ परम्पराका उपदेश है । और न गुणपरिवर्तनके द्वारा ही एक समयप्रमाण काल पाया जाता है, फ्योंकि, एक समयवाले कषायके उदयका क्षपक और उपशाम श्रेणियोंमें अभाव है । न व्याघातके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, फ्योंकि, क्षपक और उपशामश्रेणियोंमें व्याघातका प्रतिपेध पाया जाता है । और न मरणके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, फ्योंकि, क्षपकोंमें मरणका अभाव है । इसलिए यहा पर कषायोंका जघन्य काल निश्चयसे अन्तर्मुहूर्त ही होना चाहिए ।

१ × × द्वयो क्षपकयो केवळओमस्य च × सामायोक्त काल । व ति १, ८.

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ २५६ ॥

कमेण अतोमुहुत्तरेण सखमेहिं चडमाणउहुजीवे अस्मिदूण जहण्णकालादो
संखेज्जगुणकालुअलमा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५७ ॥

एदस्म अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ॥ २५८ ॥

एद पि सुगम ।

अकसाईसु चटुट्टाणी ओघं ॥ २५९ ॥

कुदो ? सव्वेण रि पयारेण जाणेगजीवजहण्णुस्सकालगदनिमेसाभावा ।

एव कमायमग्गणा समात्ता ।

जाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी
ओघं ॥ २६० ॥

उक्त जीवोंके उक्त कषायोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, कश्चि अंतमुहूर्तके अंतरसे क्षपकथेणी पर चडनेवाले थहुन जीवोंकी
अपेक्षा जघ प कालसे उत्कृष्ट काल सत्पातगुणा पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अरुपायी जीवोंमें अन्तिम चतुर्गुणस्थानी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २५९ ॥

क्योंकि, सर्व ही प्रकारसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट
कालगत कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कषायमागणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल
ओघके समान है ॥ २६० ॥

१ × × × अरुपायणी व सामायोल काल । स वि १, ८

२ ज्ञानाज्ञादेन मत्स्यज्ञानिश्रुताज्ञानियु मिथ्यादृष्टिसात्त्वजनसम्पद्यतो सामायवत् । स वि. १, ८

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्वा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्रपोगलपरियट्ट देखणमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा । अणादिअणिहण-अणादिसणिहण-अण्णाणेषु मदि सुदअण्णाणी नि अत्थि, किंतु तेहि एत्थ अणहियारो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६१ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणनिरहिदसामणाणमभावा ।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्वा ॥ २६२ ॥

कुदो ? विभगणाणिमिच्छादिट्ठीणि तिसु नि कालेसु सताणगेच्छेद्वाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥

कुदो ? असजदमम्मादिट्ठिस्स सजदासजदस्म वा दिट्ठमग्गस्स मिन्छत्त पडिवज्जिय सच्चजहण्णद्वमच्छिय गुणंतरं गदस्म अतोमुहुत्तमेत्तविभंगणाणकालुलमा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २६४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है । इस प्रकारसे ओघके कालसे कोई भेद नहीं है । यद्यपि अनादि अनन्त और अनादि सान्त अक्षानोंमें मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी भी जीव हैं, किन्तु उनका यहा पर अधिकार नहीं है ।

मति श्रुताज्ञानी सासादनसम्पग्घट्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६१ ॥

क्योंकि, मत्स्यज्ञान और श्रुताज्ञानसे रहित सासादनगुणस्थानी जीवोंका अभाव है ।

विभगज्ञानियांम मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २६२ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें विभगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके व्युत्पत्तेका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी अमत्यतसम्पग्घट्टि या सत्यतासत्यतके मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर और सर्व जघन्य काल तक वहा रह कर गुणस्थानान्तरको गये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण विभगज्ञानका काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तैत्तिस सागरोपम है ॥ २६४ ॥

१ विभगज्ञानियु मिथ्यादृष्टिनानाव वासुधया सर्वं काल । स मि १, ८

२ एकजीव प्रति जघन्यतातमुहूर्त । स मि १, ८

३ उक्कस्सेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स मि १, ८

उदाहरण- एवको मिच्छादिद्वी सत्तमाए पुढीए उववज्जिय छ पज्जतीओ समाणिय विभगणाणी जादो । अप्पणो आउट्टिदिमणुपालिय काल काऊण गिग्गयस्स णट्ट विभगणाण, अपज्जत्तद्वाए तस्म त्रिरोहा । एवमतोमुट्टुत्तणतेचीमसागरोपमाणि विभगणाणस्स उक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ २६५ ॥

णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असरेज्जमुणो, एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगममओ, उक्कस्सेण ठ आरलियाओ, इच्चेएण ओघादो भेदाभावादो ।

**आभिनिवोहियणाणि-सुदणाणि ओधिणाणीसु असजदसम्मादिद्वि-
पहुडि जाव खीणकसायवीदरागउट्टुमत्था ति ओघं ॥ २६६ ॥**

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि एदेसिं ओघादो तित्तेसाभावा । णरि ओधिणाणिसजदामजदेगजीवुक्कस्सकालमिह अतिथ तिसेमो^१ । त जहा- एवको अट्टावीस

उदाहरण- एक मिध्यादृष्टि जीव सातर्षो पृथिवीमें उत्पन्न होकर और छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके विभगज्ञानी हुआ । अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर और मरण करके निकला । तब उसका विभगज्ञान नष्ट हो गया, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें विभगज्ञानके होनेका विरोध है । इस प्रकार अतर्मुहूर्त कम तैतीस सागरोपम विभगज्ञानका उत्कृष्ट काल होता है ।

विभगवानी सासादनसम्पग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असख्यातगुणा, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण, इस प्रकार ओघ कालसे कोई भेद नहीं है ।

आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेरर क्षीणरूपायवीतरागउत्तस्य गुणस्थान तरु जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्यग्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इन सूत्रोक्त जीवोंके कालमें ओघसे कोई विशेषता नहीं है । केवल, अवधिज्ञानी सयतासयत गुणस्थानसम्यग्धी एक जीवके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । वह इस प्रकार है- मोहकर्मकी

१ सासादनसम्पग्दृष्टे सामायोक्त काल । स सि १, ८

२ आभिनिवोधिकश्रुतावयिमन पययकेवलज्ञानिनां सामायोक्त काल । स सि १, ८

३ भविष्यु ' अतिथ ति तिसेसा ' इति पाठ ।

सतकृमिओ मणिणसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उररण्णो । उहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विसंतेो
विसुद्धो संजमामंजम पेडिवज्जिय मदि सुदणाणी जादो । तदो अतोयुहुत्त- गत्तण ओधि-
णाणमुप्पादेदि' । एत्तिओ चेय विसेसो, णत्वि अणत्थ कत्थ वि ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
छट्टुमत्था ति ओघं ॥ २६७ ॥

बुदो? पमत्तापमत्तसंजदाणमुरसामगाण खणगाण च णाणेगजीमजहण्णुकस्मकालेहि
ओघादो भेदाभावा ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ २६८ ॥

बुदो? केवलणाणरिहिदसजोगि-अजोगिकेवलीणमभावा ।

एत्त णाणमग्गा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली
ति ओघं ॥ २६९ ॥

अद्वैतस प्रकृतियोंकी सत्ता रत्ननेवाला कोई एक जीव सदा, सम्मूर्च्छित, पर्याप्तकोंमें उत्पन्न
हुआ और उहाँ पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम करता हुआ, विमुक्त होकर, सयमासयमको
मात कर, मति श्रुतशानी हो गया । पुन अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् अवधिज्ञानको उत्पन्न करता
है । इतनी मात्र ही विशेषता है और कहीं भी कोई विशेषता नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतमे लेकर क्षीणकपायवीतरागद्वन्द्वस्थ गुणस्थान
तरु जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६७ ॥

पर्योकि, प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका तथा उपशामक और क्षयकोंका नाना जीव
और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ भोग्यरूपणाले कोई भेद नहीं है ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंका काल ओघके समान
है ॥ २६८ ॥

पर्योकि, वेचलज्ञानसे रहित सयोगिकेवली और अयोगिकेवलियोंका अभाव है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादमे संयतोंमें प्रमत्तसंयतमे लेकर अयोगिकेवली तरु
जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६९ ॥

१ प्रतिपु ' ओधिणाणीमुप्पादेदि ' इति पाठः ।

२ सयमासयमदेन सामायिक*उद्देश्यपर्यायपरिहारविशुद्धि*अन्तर्गम्यपर्यायपर्यायतदादिसंयतानां *X* धामा-

सामणसजमे अरुंनिदे रिमेमाणुलहीदो ।

सामाह्य च्छेदोवट्टावणसुद्धिसजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघ ॥ २७० ॥

हुदो ? पमत्तापमत्ताण णाणाणीय पटच्च सब्बद्धा, एगजीय पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उवस्सेण अतोमुहुत्त । दोण्हमुयसामगाणं जहण्णेण णाणेगजीय पडुच्च एगो समओ, उवस्सेण अतोमुहुत्त, दोण्ह ररगाण णाणेगनीय पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अतोमुहुत्तमिच्चेएण जोपादो भेदाभावा ।

परिहारसुद्धिमजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसजदा ओघं ॥ २७१ ॥

हुदो ? णाणाणीय पडुच्च सब्बद्धा, एगजीय पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगममओ, अतोमुहुत्तमिच्चेदहि रिसेमाभावा ।

सुहुमसांपराह्यसुद्धिसजदेसु सुहुमसांपराह्यसुद्धिसंजदा उवसमा खया ओघं ॥ २७२ ॥

हुदो ? सुहुमसांपराह्यसुद्धिसजदाणमुभयत्थ सजमभेदाभावा ।

क्योंकि, सयमसामान्यके अवलंबन करने पर ओघके कालसे कोई भेद नहीं पाया जाता ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिमयताम प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिरक्षण तरुके जीवोंका काल जोघके समान है ॥ २७० ॥

क्योंकि, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है । एक जीवकी अपेक्षा जघय काल एक समय है और उत्तृष्ट काल अतर्मुहूर्त है । आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों उपशामकोंका नाना आर एक जीवकी अपेक्षा जघय काल एक समय है, तथा उत्तृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । आठवें आर नवें गुणस्थानवर्ती दोनों क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघय और उत्तृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

परिहारनिशुद्धिसयतोंमें प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सघकाल, एक जीवका अपेक्षा जघय और उत्तृष्ट काल एक समय और अतर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विदोषता नहीं है ।

सुहुमसाम्परायिकशुद्धिसयतामें सुहुमसाम्परायिकशुद्धिसयत उपशामक और क्षपकोंका काल ओघके समान है ॥ २७२ ॥

क्योंकि, सुहुमसाम्परायिकशुद्धिसयतोंके दोनों श्रेणियोंमें सयमके भेदका अभाव है ।

जहाकखादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्टाणी ओघं ॥ २७३ ॥

कुदो ? ओघादेसेसु चदुण्ह गुणट्टाणाण सजमभेदाणुपलमा ।

संजदासजदा ओघं ॥ २७४ ॥

सुगमो एदस्स अत्थो ।

असंजदेसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्टि ति ओघं

॥ २७५ ॥

एदस्स वि अत्थो अपवारिओघट्टाण सुगमो ।

एउ सजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चसुदंसणीसु मिच्छादिट्टी केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सब्बद्धा ॥ २७६ ॥

कुदो ? चक्रबुदसणिमिच्छादिट्टिरिहिकालाभावा ।

यथारयातविहारशुद्धिमयतोमं अन्तिम चार गुणस्थाननाले जीवोंका काल ओघके
समान है ॥ २७३ ॥

क्योंकि, ओउ और आदेशमें चारों गुणस्थानोंके समयमें कोई भेद नहीं पाया
जाता है ।

सयतामयतोका काल ओघके समान है ॥ २७४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

असयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयतमम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
अमयतोका काल ओघके समान है ॥ २७५ ॥

जिन्होंने ओघसम्बन्धी कालको भलीभांति अवधारण किया है, ऐसे शिष्योंके लिए
इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार सयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादमें चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक
होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

१ ××× सयतामयतानां ×× सामा योन काल । स वि १, ८

२ ××× असयतानां च सामा योन काल । स वि १, ८

३ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शिन्यु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । स वि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७७ ॥

कुदो ? सम्भामिच्छादिद्विस्म अमजदसम्भामिद्विस्स सजदासजदस्स सजदस्स वा दिद्वमग्गस्म मिच्छत्त गतूण सच्चजहण्णद्वमच्चिउय गुणतर गदस्स अतोमुहुत्तकालुलभा ।

उक्खस्सेण वे सागरोवममहस्साणि ॥ २७८ ॥

उदाहरण— एगो अचरसुदसणी मिच्छादिद्वी चम्सुदमणीसु उवण्णो । चक्सुदसणी होदूण वे सागरोवममहस्साणि परिभमिय अचक्सुदसण गदो । लद्विअपज्जत्तेसु चक्सुदसण णिवत्तिअपज्जत्ताण ण किण्ण उच्चदे ? ण, तम्हि भये तत्थ चक्सुदसणुजजोगाभावा । णिवत्तिअपज्जत्ताण तम्हि भये णियमेण चम्सुदसणुजजोगुलभा ।

सासणसम्भामिद्विप्पहुडि जाव सीणकसायवीदरागल्लुमुत्था त्ति

ओघं ॥ २७९ ॥

कुदो ? चक्सुदसणभिरहिदसासणादीणमभावा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, इष्टमार्गी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या अमयतसम्यग्दृष्टि, या सयतासयत, या सयतके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहा पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल दो हजार सागरोपम है ॥ २७८ ॥

उदाहरण— कोई एक अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुआ, और चक्षुदर्शनी होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनको प्राप्त हो गया । (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ ।)

शका — निर्धृत्यपर्याप्तकोंके समान लब्धपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, लब्धपर्याप्तकोंके उसी भयमें चक्षुदर्शनोपयोगका अभाव पाया जाता है । किन्तु निर्धृत्यपर्याप्तकोंके तो उसी भयमें नियमसे ही चक्षुदर्शनोपयोग पाया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणरूपायवीतरागल्लुब्धस्थ गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवोंका काल औघके समान है ॥ २७९ ॥

क्योंकि चक्षुदर्शनसे रहित सासादनावि गुणस्थान नहीं पाये जाते हैं ।

१ एकजीव प्रति जवयेनात्तमुहूर्त । स ति १, ८

२ उत्तरेण द्वे सागरोपमसद्वे । स ति १, ८

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणरूपायातानां सामायीत्तं काल । स ति १, ८.

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
छदुमत्था ति ओघं ॥ २८० ॥

कुदो ? अचक्खुदसणनिरहिदसावरणजीवाणुवलमा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८१ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८२ ॥

एदाणि दोनि सुत्ताणि अग्रहारिदणाणाणुमादाण सुगमाणि ।

एउ दसणमगणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा-
दिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २८३ ॥

कुदो ? सव्वकाल तिलेस्सियमिच्छादिट्ठीण निरहाभारा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायत्रीतरागछन्नस्य गुण-
स्थान तकका काल ओघके समान है ॥ २८० ॥

फ्योंकि, अचक्षुदर्शनसे रहित सावरण जीव नहीं पाये जाते हैं ।

अवधिदर्शनी जीवोंका काल अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका काल केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८२ ॥

ज्ञानमार्गणाके कालानुवादका अवधारण करनेवाले शिष्योंके लिए ये दोनों ही सूत्र
सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें
मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ २८३ ॥

फ्योंकि, सर्वकाल ही तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ २८४ ॥

१ अचक्षुदर्शनेषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षाणकपायान्तानां सामान्योक्तं काल । स ति १, ८

२ अवधि कवलदंसनिनीरवाधि कवलसाणिवत् । स ति १, ८

३ लेश्यावादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टेनानाज्ञावापेक्षया सर्वं काल । स ति १, ८.

४ एकजीव प्रति जघयेनान्तमुहूर्तं । स ति १, ८

किण्डलेस्माए ताए अतोमुहुत्तरूपण कीरदे । त जघा- नीललेस्साए अच्छिदस्म
तिस्से अद्धारणण किण्डलेस्सा जादा । सब्बलहुमतोमुहुत्तमच्छिदूण नीललेस्मिओ
जादो । काउलेस्मिओ किण्ण होदि ? ण, किण्डलेस्माए परिणदस्स जीवस्म अणतरमेव
काउलेस्मापरिणमणसत्तीए जसभया ।

नीललेस्माए उच्चदे- हीयमाण-जडूमाणकिण्डलेस्साए काउलेस्माए वा
अच्छिदस्म नीललेस्सा आगदा । सब्बजहणमतोमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण काउलेस्म
किण्डलेस्स या गद्दो, अण्णलेस्सागमणासभया । के पि आइरिया हीयमाणेस्साए चेए
जहण्णकालो होदि ति भणति ।

काउलेस्साए पि उच्चदे- हायमाणनीललेस्साए तेउलेस्माए या अच्छिदस्स
काउलेस्सा आगदा । तत्थ सब्बजहणमतोमुहुत्तमच्छिय जदि तेउलेस्सादो आगदो, तो
नीललेस्स णेदब्बो । अह नीललेस्सादो आगदो तो तेउलेस्साए णेदब्बो, अण्णहा
सन्निेलम पिसेहीओ आउरतस्म जहण्णकालाणुवत्तीदो । एत्थ जोगस्मेव एगसमओ जहण्ण-

पहले वृष्णलेद्याके अतमुहूर्त कालकी प्ररूपणा की जाती है । यह इस प्रकार है—
नीललेद्यामें वतमान किसी जीवक उस लेद्याके काल क्षय हो जानेसे वृष्णलेद्या हो गई,
और यह उसमें सबलधु अतमुहूर्त नाल रह करके नीललेद्यायाला हो गया ।

शुका—वृष्णलेद्याके पञ्चान् कापोतलेद्यायाला क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वृष्णलेद्यासे परिणत जीवके तदनंतर ही कापोत
लेद्यारूप परिणमन शक्तिका होना असंभव है ।

अथ नीललेद्याके अतमुहूर्त कालकी प्ररूपणा करते हैं— हीयमान वृष्णलेद्यामें
अथवा वर्धमान कापोतलेद्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेद्या आगई । तब यह जीव
उसमें सब जघ य अतमुहूर्त काल रह करके जघय कालके अविरोधसे यथासंभव कापोत
लेद्याको अथवा वृष्णलेद्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, इन दोनों लेद्याओंके सिवाय उसके अन्य
किसी लेद्याका आगमन असंभव है । किन्तु ही आचार्य, हीयमान लेद्यामें ही जघन्य
काल होता है, ऐसा कहते हैं ।

अथ कापोतलेद्याके जघ य काउको कहते हैं— हायमान नीललेद्यामें अथवा
तेजोलेद्यामें विद्यमान जीवके कापोतलेद्या आगई । यह जीव उस लेद्यामें सबजघन्य
अन्तमुहूर्त काल रह करके, यदि तेजोलेद्यासे आया है तो नीललेद्यामें ले जाना चाहिए
और यदि नीललेद्यासे आया है तो तेजोलेद्यामें ले जाना चाहिए । अथवा सहेश और
विशुद्धिके आपूरण करनेवाले जीवके जघय काल नहीं बन सकता है ।

शुका—यहां पर योगपरावर्तनके समान एक समयरूप जघय काल क्यों नहीं

१ म प्रती ' हायमाण ' इत्यपि पाठः ।

कालो क्रिण्ह लब्धदे ? ण, जोग क्रमायाण व लेस्साए तिस्सा परावचीए गुणपरावचीए मरणेण वाघादेण ना एगसमयकालस्सामंभवा । ण ताव लेस्सापरावचीए एगसमओ लब्धदि, अप्पिदलेस्साए परिणमिद्विदियसमए तिस्से विणासाभावा, गुणंतर गदस्स विदियममए लेस्सतरगमणाभावादेो च । ण गुणपरावचीए, अप्पिदलेस्साए परिणद्विदियसमए गुणंतरगमणाभावा । ण च वाघादेण, तिस्से वाघादाभावा । ण च मरणेण, अप्पिदलेस्साए परिणद्विदियसमए मरणाभावा ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि'

॥ २८५ ॥

एदेसिमुदाहरणाणि । त जधा— णील्लेम्माए अच्छिदस्स क्रिण्हलेस्सा आगदा । तत्थ सञ्जुक्कस्समतोमुहुत्तमच्छिय जवो सत्तमीए पुढीए उपपणो । तत्थ तेत्तीसं सागरोवमाणि गमिय उपट्ठिदो । पच्छा वि अतोमुहुत्तकाल भावणवसेण सा चेव लेस्सा होदि । एव दोहि अतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि तेत्तीम सागरोवमाणि क्रिण्हलेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

पाया जाता है ?

समाधान—जहाँ, क्योंकि, योग और कपायोंके समान लेइयामें लेइयाना परिवर्तन, अथवा गुणस्थानका परिवर्तन, अथवा मरण और व्याघातसे एक समय कालना पाया जाना असंभव है । इसका कारण यह है कि न तो लेइयापरिवर्तनके द्वारा एक समय पाया जाता है, क्योंकि, विवक्षित लेइयासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें उस लेइयाके विनाशका अभाव है । तथा इसी प्रकारसे अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य लेइयामें जानेका भी अभाव है । न गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेइयासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानके गमनना अभाव है । न व्याघातकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, वर्तमानलेइयाके व्याघातका अभाव है । और न मरणकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेइयासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें मरणका अभाव है ।

उक्त तीनों अशुभ लेइयाओंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक्र तृतीस सागरोपम, साधिक्र सत्तरह सागरोपम और साधिक्र सात सागरोपम प्रमाण है ॥ २८५ ॥

इनके उदाहरण इस प्रकार है— नीलेइयामें विद्यमान किसी जीवके कृष्णलेइया आगर्ह । उसमें वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मरण कर नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहा यह तृतीस सागरोपम काल विताकर निकला । सो पीछे भी अन्तर्मुहूर्त काल नव भावनाके चक्रसे वही ही लेइया होती है । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक तृतीस सागरोपम कृष्णलेइयाका उत्कृष्ट काल होता है ।

णीलेस्ताए उच्चदे- काउलेस्ताए अच्छिदस्स णीलेस्ता आगदा । तत्थ दीह मतोमुहुत्तमच्छिदूण पचमीए पुढीए उवण्णो । तत्थ सत्तारस सागरोपमाणि ताए लेस्माए गमिय उवण्णिदो । उवण्णिदस्स पि अतोमुहुत्त सा चेव लेस्सा होदि । एव दोहि अतो मुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्तारस सागरोपमाणि णीलेस्ताए उक्कस्सकालो होदि ।

काउलेस्ताए उच्चदे- तेउलेस्ताए अच्छिदस्स मग्गदाए रीणाए काउलेस्ता आगदा । तत्थ दीहमतोमुहुत्तमच्छिदूण तदियाए पुढीए उवण्णो । तीए लेस्ताए सव सागरोपमाणि तत्थ गमिय उवण्णिदो । उवण्णिदस्स पि सा चेव लेस्सा अतोमुहुत्त होदि । एव दोहि अतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्त सागरोपमाणि काउलेस्ताए उक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघ' ॥ २८६ ॥

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण समीदो असखेज्ज गुणो पलिदोपमस्स असखेज्जदिभागो, एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण छ आपलियाओ, एदेहि तिलेस्तागदसासणाण तदो भेदामाना ।

अथ नीलेद्वयाका काल कहते हैं— कापोतलेद्वयमें वर्तमान जीवके नीलेद्वया का गई । उसमें उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त रह करके यह जीव पाचमीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां पर सत्तरह सागरोपम काल उस लेद्वयाके साथ बिताकर निकला । निकलने पर भी अन्तमुहूर्त तक यही ही लेद्वया होती है । इस प्रकार दो अन्तमुहूर्तोंसे अधिक सत्तरह सागरोपम नीलेद्वयाका उत्कृष्ट काल होता है ।

अथ कापोतलेद्वयाका उत्कृष्ट काल कहते हैं— तेजोद्वयमें विद्यमान किसी जीवके उस लेद्वयाके कालके क्षीण हो जाने पर कापोतलेद्वया आगई । उसमें उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त काल रह कर मरण करके तृतीय पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां पर उसी लेद्वयाके साथ सात सागरोपम काल बिताकर निकला । निकलनेके पश्चात् भी वही लेद्वया अन्तमुहूर्त तक रहती है । इस प्रकार दो अन्तमुहूर्तोंसे अधिक सात सागरोपम कापोतलेद्वयाका उत्कृष्ट काल होता है ।

उक्त तीनों अशुभ लेद्वयानाले सासादनसम्बन्धदि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २८६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अपनी राशिसे असम्पातगुणा पल्योपमका असम्पातवा भाग काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आबलीप्रमाण काल है । इस प्रकारसे तीनों अशुभ लेद्वयाओंको प्राप्त हुए सासादनसम्बन्धदि जीवोंके कालका ओघसे कोई भेद नहीं है ।

१ सासादनसम्बन्धदि सम्बन्धित्वात्तथा सामायोक्तः काल । स ति १, ८

सम्मामिच्छादिद्वी ओषं ॥ २८७ ॥

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्खसेण सगरासीदो असखेज्ज-
गुणो पलिदोमस्स असखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्खसेण अतोमुहुत्तमिचेदेदि
तदो भेदामाना ।

असंजदसम्मामिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च
सव्वदां ॥ २८८ ॥

सुगममेद सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ २८९ ॥

त जहा—एगो अमजदसम्मामिच्छादिद्वी वडुमाणणीललेस्साए अञ्चिदो किण्वहेस्सं गदो ।
तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमञ्चिय पुणो णीललेस्सामागदो । णीललेस्साए उच्चदे— हाय-
माणकिण्वहेस्सिओ णीललेस्सी जादो । ताए सव्वजहण्णमतोमुहुत्तमञ्चिय काउलेस्स गदो ।
काउलेस्साए उच्चदे— एगो सम्मामिच्छादिद्वी हायमाणणीललेस्सिओ काललेस्सं गदो । तत्थ

उक्त तीनों अशुभ लेइयागले सम्यग्निर्भावादि जीवोंका काल ओषके समान
है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे
असथ्यातगुणा पत्योपमका असथ्यातरा भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट
काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार इनका ओषकालसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त तीनों अशुभ लेइयागले असथतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २८८ ॥

यद्द सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८९ ॥

जैसे— वर्धमान नीललेइयामें विद्यमान कोई एक असथतसम्यग्दृष्टि जीव कृष्ण-
लेइयाको प्राप्त हुआ । वहा पर सर्वज्ञघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पुनः नीललेइयामें
मागया । अथ नीललेइयाका काल कहते हैं— हायमान कृष्णलेइयावाला कोई एक जीव
नीललेइयावाला होगया । उस लेइयामें सर्वज्ञघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर कापोत-
लेइयाको प्राप्त होगया । अथ कापोतलेइयाका काल कहते हैं— हायमान नीललेइयावाला

१ असथतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया सर्वे कालः । स वि १, ८

२ एकजीव प्राति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स वि १, ८,

सव्यनहण्णमनोमुहुत्तमच्छिय तेउलेस्सिओ जादो । पुव्व हायमाण वड्डमाणतेउ-काउलेस्सा-
हिंतो काउ णील्लेस्साणमागदाण जहण्णकालो उचो, सो सपहि एत्थ किण्ण उच्चदे ? ण,
पाएण तस्सुएमाभावा ।

उक्खस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त मागरोवमाणि देस्सूणाणि ॥२९०॥

किण्हलेस्साए देस्सूणाणि तत्तीस सागरोपमाणि, णील्लेस्साए देस्सूणसत्तारस सागरो-
पमाणि, काउलेस्सियाए देस्सूणसत्त सागरोपमाणि । 'जहा उद्देशो तथा णिद्देशो' ति
णायादो उदाहरणाणि उद्देशपरिवाडीए णिद्देशे । त जहा- एकौ अट्टाणीससत्तकम्मिओ
मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुट्ठीए किण्हलेस्साए सह उपगण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो
त्रिस्सतो त्रिसुद्धो होदूण सम्मत्त पडिगण्णो । अतोमुहुत्तणतेत्तीस सागरोपमाणि भवसम्भवेण
अपडिदाए किण्हलेस्साए गमिय अतोमुहुत्तापमेमे मिच्छत्त गत्तूग आउअ वधिय त्रिस्समिय
मदो, तिरिक्खो जादो । एउ छहि अतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीस सागरोपमाणि किण्ह-
लेस्साए उक्खस्सकालो हंदि ।

एक असयतमम्पग्घट्टि जीव कापोतलेदयाको प्राण हुआ । उसमें सर्वज्ञान्य अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके तेजोलेदयाको प्राप्त हुआ ।

शुक्रा—पहले हायमान तेजोलेदया और वर्धमान कापोतलेदयासे क्रमशः कापोत
और नीललेदयामें आये हुए जीवोंका जघन्य काल बहा है, सो वह अब यहा पर क्यों नहीं
बहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रायः आजकल उस प्रकारके उपदेशका अभाव है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम
और सात सागरोपम है ॥ २९० ॥

दृष्णलेदयामें कुछ कम तेतीस सागरोपम, नीललेदयामें कुछ कम सत्तरह सागरोपम
और कापोतलेदयामें कुछ कम सात सागरोपम काल है । सो 'जैसा उद्देश होता है, उसी
प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायानुसार इनके उदाहरण भी उद्देशकी परिपाटीसे निर्दिष्ट
किये जाते हैं । वे इस प्रकारसे हैं— मोहकमकी अट्टाईस प्रवृत्तियोंकी सत्तात्राला कोई एक
मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें दृष्णलेदयाके साथ उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त
होकर, विश्राम ले तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त
कम तेतीस सागरोपम भवसम्भन्वसे अवस्थित दृष्णलेदयाके साथ त्रिताकर, अन्तर्मुहूर्त
कालके अग्रशिष्ट रहने पर मिथ्यात्वको जाकर परभवकी आयु याचकर, विश्राम लेकर मरा
और तिर्थेच हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम दृष्णलेदयाका उत्कृष्ट
काल होता है ।

ए उक्खस्सेण त्रिसुद्धसत्तारससागरोपमाणि दशोनाणि । इ सि १, ६.

एगो अट्टापीससंतकम्मिओ णीललेस्साए पचमपुट्ठीए हेट्टिमपत्यडे उक्कसाउ-
ट्टिओ होदूण उअण्णो। तत्थ जहण्णिया किण्वलेस्सा चे ण, सव्वेसि णेरइयाण तत्थतण्णं
तीए चेव लेस्साए अभावा। एककम्मि पत्यडे मिण्वलेस्माण कथ सभओ ? विरोहाभावा। एसो
अत्थो सव्वत्थ जाणिदव्वो। छहि पज्जनीहि पज्जत्तयदो विस्सतो विसुट्ठो होदूण सम्मत्तं
पडिवण्णो। आउट्टिदिमणुपालिय मुदो मणुस्सो जादो। तत्थ पि अतोमुट्टुत्त तीए चेव
लेस्साए अन्निदूण लेस्सतर गदो। पच्छिल्लमतोमुट्टुत्त पुच्छिल्लत्तिसु अतोमुट्टुत्तेसु सोहिय
सुट्ठसेसेणं ऊणाणि सत्तारस सागरोअभाणि असज्जदसम्मादिट्टिस्स णीललेस्साए उक्कस्तकालो
होदि। एगो मिच्छादिट्ठी तदियाए पुट्ठीए उक्कस्साउट्टिदिओ काउलेस्साओ होदूण उअ-
ण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्सतो विसुट्ठो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय आउ-
ट्टिदिमणुपालिय मणुसो जादो। पच्छा पि अतोमुट्टुत्त सा चेव लेस्सा होदि। पच्छिल्ल

मोहकर्मनी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ताजाला कोई एक जीव नीललेश्याके साथ
पाचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके उत्कृष्ट आयुर्कर्मकी स्थितिवाला हो करके उत्पन्न हुआ।

शुक्रा—पाचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारमें तो जघन्य कृष्णलेश्या होती है ?

समाधान—नहीं, पाचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके समस्त नारकियोंके उसी
ही लेश्याका अभाव है।

शुक्रा—एक ही प्रस्तारमें दो भिन्न भिन्न लेश्याओंका होना कैसे संभव है ?

समाधान—एक ही प्रस्तारमें भिन्न भिन्न जीवोंके भिन्न भिन्न लेश्याओंके होनेमें
कोई विरोध नहीं है। (अर्थात् कुछ नारकियोंके उत्कृष्ट नीललेश्या ही होती है, और कुछके
जघन्य कृष्णलेश्या होती है।) यही अर्थ सर्वत्र जानना चाहिये।

इस प्रकार पाचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ वह जीव छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो,
निश्राम लेकर तथा विमुक्त होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। वहा अपनी आयुस्थितिका
परिपालन करके मरा और मनुष्य हुआ। वहा पर भी अन्तर्मुहूर्त तक उसी पूर्वलेश्याके साथ
रह कर अय लेश्याको प्राप्त हुआ। इस प्रकार पिछले अन्तर्मुहूर्तको पूर्वके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे
कम करके बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह सागरोपम असयतसम्यग्दृष्टिके नीललेश्याका
उत्कृष्ट काल होता है।

एक मिथ्यादृष्टि जीव तीसरी पृथिवीमें वहा की उत्कृष्ट आयुर्कर्मकी स्थितिवाला
तथा कापोतलेश्याजाला होकरके उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, निश्राम
ले, विमुक्त होकर सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अपनी आयुर्कर्मकी स्थितिको भोग करके
मनुष्य हुआ। पीछे भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है। इस पिछले अन्तर्मुहूर्तको

अतोमुहुत्त पुञ्चिल्लत्तिसु' अतोमुहुत्तेमु सोहिय सुद्धसेसेण ऊणाणि संत्त सागरोपमाणि काउलेस्माए उक्कस्मकालो होदि ।

तेउलेस्सिमय पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केव-
चिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ २९१ ॥

सुगममेद सुत्त ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं' ॥ २९२ ॥

त जथा— हायमाणपम्मलेस्माए अच्छिदस्म सगद्वाएएण तेउलेस्सा आगदा। तत्थ सव्वजहण्णमतोमुहुत्तमच्छिद्य काउलेस्म गदो । एवमसजदसम्मादिट्ठिस्म पि तेउलेस्साए जहण्णकालो वत्तवो । पम्मलेस्माए उच्चदे— एक्को सुक्कलेस्साए हायमाणाए अच्छिदो मिच्छादिट्ठी तिस्से अद्वाएएण पम्मलेस्सिमो जादो । सव्वजहण्णमतोमुहुत्तमच्छिदूण तेउ-
लेस्स गदो । एव जहण्णेण अतोमुहुत्त मिच्छादिट्ठी पम्मलेस्माए । एवमसजदसम्मादिट्ठिस्स पि जहण्णकालो वत्तवो ।

पहलेके तीन अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे घटा कर शेष बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम कापोतलेक्ष्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

तेजोलेक्ष्या और पद्मलेक्ष्यामालोंमें मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९२ ॥

जैसे— हायमाण पद्मलेक्ष्यामें विद्यमान किसी मिथ्यादृष्टि जीवके अपनी लेक्ष्याके काल क्षय हो जानेसे तेजोलेक्ष्या आगइ । उसमें सर्वज्ञ व अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह कापोतलेक्ष्याको प्राप्त हो गया । इस प्रकार असयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी तेजोलेक्ष्याका जघन्य काल कहना चाहिए ।

अथ पद्मलेक्ष्याका जघन्य काल कहते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव हायमाण सुक्कलेक्ष्यामें विद्यमान था । उस लेक्ष्याके कालके क्षय हो जानेसे वह पद्मलेक्ष्यावाला हो गया । वहाँ सर्वज्ञजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेक्ष्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक वह मिथ्यादृष्टि जीव पद्मलेक्ष्यामें रहा । इसी प्रकारसे असयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी जघन्य काल कहना चाहिए ।

१ प्रतिशु ' अतोमुहुत्त सा केव लेखा पुञ्चिल्लत्तिसु ' इति पाठः ।

२ तेज पद्मलेक्ष्यामिथ्यादृष्टयसयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजावैतया सर्व काठः । स वि १, -

३ पृष्ठव प्रति जघन्यकाल इति । स वि १, ८

उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ २९३ ॥

तं जधा- एको मिच्छादिट्ठी काउलेस्पाए अच्छिदो । तिससे अट्टारएण तेउलेस्मिओ जादो । तथ अंतोमुहुत्तमन्डिदूण मदे सोहम्मे उपपणो । वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्म अमरेज्जदिभागेणवमहियाणि जीविदूण चुदो णट्टलेस्सिओ जादो । लट्ठा सगट्ठिदो पुत्तिहत्तोमुहुत्तेण अब्भधिया । अतोमुहुत्तूणअट्टाडज्जसागरोवममेत्ता ट्ठिदी किण लवभदे ? ण, मिच्छादिट्ठि सम्मादिट्ठीहि उपरिमदेपेसु पद्धमाउअमोपट्टणाघादेण घादिय मिच्छादिट्ठी जदि सुट्टु महत्त करेदि, तो पलिदोवमस्स अमरेज्जदिभागेणवमधियपेसागरोवमाणि करेदि, सोहम्मे उपपज्जमाणमिच्छादिट्ठीण एदग्हादो अहियाउट्टरणे सत्तीए अभावा । अट्टाडज्जसागरोवमट्ठिदीए उपपणमम्मादिट्ठि मिच्छत्त णेदूण उक्कम्मकाल भणिस्सामो ? ण, अतोमुहुत्तूण-ट्टाडज्जसागरोवमेसु उपपणसम्मादिट्ठिस्स सोहम्मणिपामिस्स मिच्छत्तगमणे समवाभावा ।

तेजोलेइयाका उत्कृष्ट काल सातिरेक दो सागरोपम ओर पबलेइयाका उत्कृष्ट काल सातिरेक अठारह सागरोपम है ॥ २९३ ॥

जैसे— एरु मिथ्यादृष्टि जीव नापोतलेइयामें निचमान या । उस लेइयाके कालक्षयसे यह तेजोलेइयाकाला हो गया । उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा ओर सोधर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ । वहां पर पह्योपमके असत्थातयें भागसे अधिक दो सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ और उसकी तेजोलेइया नष्ट हो गई । इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक दो सागरोपम सौधर्मरूपकी मिथ्यादृष्टिमन्वरी उत्कृष्ट स्थिति तेजोलेइयाकी प्राप्त हो गई ।

शुक्रा—मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेइयाकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अट्टार सागरोपमप्रमाण क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा उपरिम देवोंमें धार्थी हुई आयुको उद्धर्तनाघातसे घात करके मिथ्यादृष्टि जीव यदि अन्ती तरह खूब बडी भी स्थिति करे, तो पह्योपमके असत्थातयें भागसे अभ्यारिक दो सागरोपम करता है, क्योंकि, सौधर्मकल्पमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके इस उत्कृष्ट स्थितिसे अधिक आयुकी स्थिति स्थापन करनेकी शक्ति अभाव है ।

शुक्रा—यदि हम अट्टार सागरोपम स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टिको मिथ्याधर्म ले जाकर तेजोलेइयाका उत्कृष्ट काल कहे तो ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कम अट्टार सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सौधर्मनिवासी सम्यग्दृष्टि देवके मिथ्याधर्ममें जानने की संभावना अभाव है ।

त पि कथ णचदे ? पलिदोमस्म अससेज्जदिभागवमाहियवेसागरोममेचा सोहम्मीसाणे मिच्छाडडि आउडिदी हांदि चि आइरियपरपरागदोउदेसा । अधया अण्णेषुवएमण अट्टाइज्जमागरोमणि देखणाणि मिच्छादिद्विस्त त्रि सभप्रति, भयणादिमहम्मरतदेवेसु मिच्छाडडिस्स दुयिहाउडिदिपस्सणणहाणुउवत्तीदो ।

असनदसम्मादिद्विस्स उचदे- एषो अमजदो सोहम्मीसाणेदेवेसु ने सागरोमणि अतोमुहुत्तण सागरोमस्म अद्द च आउउ करिय अतोमुहुत्त तेउलेस्सी होदूण क्रमेण काल कग्गिय मोहम्मे उरयण्णो । सगाडिदिमच्छिय पुणो मणुमेसुववजिय अतोमुहुत्तं तीए चेव लेस्साए परिणमिय पम्मडेस्म काउलेस्म वा गदो । लद्धाणि अतोमुहुत्तणअट्टाइज्जसागरो वमाणि मंपुण्णाणि । अहियाणि वा क्किण हाति चि उत्ते ण, पुव्वावरकालमिह लद्धअतो मुहुत्तादो अद्धसागरोममिह पडिदतोमुहुत्तस्म बहुत्तुपदेसा ।

पम्मलेस्साए उचदे- एको मिच्छादिद्वी वट्टमाणेउलेस्मिओ समद्वीए सीणाए

श्रुता— यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान— पल्योपमके असत्यातः भागसे अधिक दो सागरोपमप्रमाण सौधर्म ईशानकरपमें मिथ्यादृष्टि की आयुस्थिति होती है; इस प्रकारका आचार्यपरम्परागत उपदेश है अथवा अन्य उपदेशसे कुछ कम उदाई सागरोपमकाल सौधर्म ईशानरूपवासी मिथ्यादृष्टि देवके भी समान है, अथवा, भयानवासियोंसे लगानर सहस्रारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवके दो प्रकारकी आयुस्थितिकी प्रसूयणा हो नहीं सकती थी ।

अथ असत्यतसम्यग्दृष्टिके उ उष्ट तेजोलेद्याके कालको कहते हैं— एक असत्यत सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म पेशान देवोंमें दो सागरोपम और अतर्मुहूर्त कम सागरोपमके अर्थ भागप्रमाण आयुके बाध करके एक अतर्मुहूर्त तेजोलेद्यावाला हो करके और प्रमसे मर कर सौधर्मकरपमें उत्पन्न हुआ । पुनः अपनी आयुस्थिति तक चहा रह कर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अतर्मुहूर्त तक उलीं ह, लेद्यासे परिणत हो, पन्नलेद्या या कापोतलेद्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अ तर्मुहूर्त कम पूरा अदाई सागरोपमकाल प्राप्त हो गया ।

श्रुता— अतर्मुहूर्तसे कम अथाह सागरोपमकालसे अधिक काल क्यों नहीं होता है ?
समाधान— नहीं, क्योंकि, अथाई सागरोपमकालके आदि और अन्तमें लब्ध होनेवाले अतर्मुहूर्तसे अथ सागरोपम काठमें पतित अतर्मुहूर्तके बहुत्वका उपदेश पाया जाता है ।

अथ पन्नलेद्याके उत्कृष्ट कालको कहते हैं— वर्धमान तेजोलेद्यावाला कोई एक

१ प्रथियु ' दतीव ' इति पाठ ।

पम्मलेस्सिओ जादो । दीहमतोमुहुत्तद्धमच्छिय सदार सहस्साररुप्पनासियदेवेसु उववण्णो । तथ अट्टारह सागरोपमाणि पलिदोपमस्म अससेज्जदिभागेणभहियाणि जीविदूण चुदस्स णट्ठा पम्मलेस्सा । अमजदसम्मादिट्ठिस्म उच्चदे-एक्को सजदो पम्मलेस्साए अतोमुहुत्त-मच्छिउदो सदार सहस्सारदेवेसु अट्टारस सागरोपमाणि अतोमुहुत्तूणमद्वसागर च आउअ करिय क्रमेण काल करिय सहस्सारदेवेसु उरुपजिय सगट्ठिदिमच्छिय चुदो मणुसो जादो । तथ नि अतोमुहुत्त पम्मलेस्साए अच्छिय सुक्कलेस्म तेउलेस्सं वा गदो । लद्धाणि अतोमुहुत्तूणद्वसागरोपमेण अहियाणि अट्टारस सागरोपमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २९४ ॥

बुदो ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगममओ, उक्खसेण सगरासीदो अससेज्ज-गुणो पलिदोपमस्स अससेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उरुक्खसेण छ आरलियाओ, इच्चदेहि तेउ पम्मलेस्सियमासणाण ततो भेदाभावा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २९५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव अपने कालके क्षीण होने पर पद्मलेश्यावाला हो गया । और वहा उस लेश्यामें उत्पन्न अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके शतार सहस्रारकल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर पल्योपमके असरयातवें भागसे अधिक अट्टारह सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ, तब उसके पद्मलेश्या नष्ट हो गई ।

अथ असयतसम्यग्दृष्टि जीवके पद्मलेश्याका उत्पन्न काल कहते हैं— एक सयत पद्म लेश्यामें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा ओर शतार सहस्रार देवोंमें अट्टारह सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमकी आयुको बाध कर, क्रमसे मरण कर, सहस्रारकल्पके देवोंमें उत्पन्न होकर और अपनी स्थितिप्रमाण वहा रह करके च्युत हो मनुष्य होगया । वहा पर भी अन्तर्मुहूर्त तक पद्मलेश्याम रह करके शुद्धलेश्याको या तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम बाधे सागरोपम कालसे अधिक अट्टारह सागरोपम प्राप्त हुए ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यानाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९४ ॥

फ्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अपनी राशिले असरयातगुणा पद्योपमका असरयातवा भाग काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलिप्रमाण काल है । इस रूपसे तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघप्रमाणसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त दोनो लेश्यानाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९५ ॥

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असत्ते
ज्जदिभागो, एगजीव पडुच्च जहण्णुत्तस्सेण अतोमुहुत्तमिच्चेएहि तेउ पम्मलेस्सिय
सम्मामिच्छादिद्वीणं ततो भेदाभावा ।

सजदासंजद पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणा
जीवं पडुच्च सव्वदा' ॥ २९६ ॥

सुगममेद सुच ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय' ॥ २९७ ॥

तत्र ताव सनदासनदानमेगममयपरूत्रगा कीरदे- एकको मिच्छादिद्वी असत्तद
सम्मामिच्छी वा बहुमाणतेउलेस्मिओ एगममओ तेउलेस्साए अत्थि ति सजमासजम पडि-
वण्णो । एगसमय सजमामजम तेउलेस्साए सह दिट्ठ । विदियममए मजदामजदो पम्म
लेस्स भदो । एमा लेस्सापरावत्ती (१) । अथवा एकको सजदासजदो हायमाणपम्म
लेस्सिओ पम्मलेस्सद्वाए गीणाए एगममय मजमामजमगुणो अत्थि ति तेउलेस्सिओ
जादो । तेउलेस्साए सह सजमामजमो एगममय दिट्ठो । विदियममए तीए लेस्साए सह

पयोंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघ य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्पृष्ट काल पश्योपमका
असंख्यातया भागप्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षा जघय और उत्पृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इस
प्रकारसे तेजोलेख्या और पद्मलेख्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जोघमरूपणासे कोई भेद
नहीं है ।

उक्त दोनों लेख्यावाले सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत जीव कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २९७ ॥

इनमेंसे पहले सयतासयतको लेख्यासम्यग्धी एक समयकी प्ररूपणा की जाती है—
यद्यमान तेजोलेख्यावाला पद्म मिथ्यादृष्टि अथवा असयतसम्यग्दृष्टि जीव तेजोलेख्याके कालमें
एक समय अवशेष रह जाने पर सयमासयमको प्राप्त हुआ । एक समय सयमासयम तेजो
लेख्याके साथ दृष्टिगोचर हुआ । दूसरे समय वह सयतासयत पद्मलेख्याको प्राप्त हो गया ।
यह लेख्यापरिवर्तनसम्यग्धी एक समयकी प्ररूपणा है (१) । अथवा, हायमान पद्मलेख्यावाला
एक सयतासयत पद्मलेख्याके कालके क्षीण हो जाने पर एक समय सयमासयम गुणस्थानका
अवशेष रहने पर तेजोलेख्यावाला हो गया । तेजोलेख्याके साथ सयमासयम एक समय दृष्ट

१ प्रतिपु ' अतोमुहुत्तो मुहुत्त इति पाठ ।

२ प्रतिपु ' मिच्छादिद्वीण ' इति पाठ ।

३ सयतासयतमत्तप्रमत्तानां नानाभावापेक्षया सर्व काल । स ति १, ८

४ एकजीव प्रति जघयनेक समय । स ति १, ८

असंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिन्ठादिट्ठी वा जादो । एसा गुणपरावत्ती (२) । मरण-वाधादेहि एगसमओ ण लभदि ।

सपदि पम्मलेस्साए उच्चदे । तं जधा- एगो मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी वा बहुमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि ति सजमासजम पडिवण्णो । विदियसमए सजमासजमेण सह सुक्कलेस्स गदो । एसा लेस्सापरावत्ती (३) । अधवा बहुमाणतेउलेस्सिओ सजदासजदो तेउलेस्सद्वाए एण पम्मलेस्सिओ जादो । एगसमयं पम्मलेस्साए मह सजमासजम दिट्ठ, विदियममए अप्प-मत्तो जादो । एसा गुणपरावत्ती । अधवा सजदासजदो हायमाणसुक्कलेस्सिओ सुक्क-लेस्सद्वाएण पम्मलेस्सिओ जादो । विदियसमए पम्मलेस्सिओ चेय, किंतु असजद-सम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिन्ठादिट्ठी वा जादो । एसा गुणपरा-वत्ती (४) । मिच्छादिट्ठि-अमजदसम्मादिट्ठिगुणट्ठानेसु तेउ-पम्मलेस्साणं लेस्सा-गुणपरावत्तीओ अस्सिदूण एगसमओ किण्ण उच्चदे ? ण, तत्थ एगसमयसभवाभावा । बहुमाणतेउलेस्सादो

दुआ । द्वितीय समयमें उसी लक्ष्याके साथ असत्यतसम्यग्दृष्टि, या सम्याग्मिथ्यादृष्टि, या सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा हुई (२) । यहा पर मरण ओर व्याघातके द्वारा एक समय नहीं पाया जाता है ।

अथ पद्मलेक्ष्याके एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं । जैसे— वर्धमान पद्मलेक्ष्यावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि, अथवा असत्यतसम्यग्दृष्टि जीव, पद्मलेक्ष्याके फालमें एक समय अवशेष रहने पर सयमासंयमको प्राप्त हुआ । द्वितीय समयमें सयमासयमके साथ ही शुक्ललेक्ष्याको प्राप्त हुआ । यह लेक्ष्यापरान्तर्नसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (३) । अथवा, वर्धमान तेजोलेक्ष्यावाला कोई सयतासयत तेजोलेक्ष्याके फालके क्षय हो जानेसे पद्मलेक्ष्यावाला हो गया । एक समय पद्मलेक्ष्याके साथ सयमासयम दृष्टिगोचर हुआ । और वह द्वितीय समयमें अममत्तसयत हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई । अथवा, हायमान शुक्ललेक्ष्यावाला कोई सयतासयत जीव शुक्ललेक्ष्याके फालके पूरे हो जाने पर पद्मलेक्ष्यावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह पद्मलेक्ष्यावाला ही है, किंतु असत्यतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्याग्मिथ्यादृष्टि, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई (४) ।

शुद्धा— मिथ्यादृष्टि और असत्यतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानोंमें तेज और पद्म-लेक्ष्यावाले जीवोंकी लेक्ष्या और गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तनोंसे आशय करके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमें एक समयकी प्ररूपणाका होना समय नहीं है ।

पम्मलेस्मं गतूण विदियसमए उपरिमगुणद्वान गच्छताण मिन्डादिद्वि असजदसम्मादिद्वीणं
 पम्मलेस्ताए एगसमओ लब्भदि । हायमाणतेउलेस्माए एगममओ अत्थि चि मिच्छादिद्वि-
 असजदसम्मादिद्विगुणद्वाने पडिउण्णाण तेउलेस्साए एगममओ लब्भदि । एउ काउ-णील-
 लेस्साण वि एगसमओ लब्भदि चि उत्ते ण लब्भदि, जदो मिन्डादिद्वि-असजदसम्मा-
 दिद्वीण एगसमय लेस्माए परिणमिय विदियसमए अण्णगुण लेस्सतर ण गच्छति ।
 एदाणि गुणद्वानाणि पटिवज्जता वि लेस्माए एगो समओ अत्थि चि ण पडिउज्जति ।
 कुदो ? समापदो । हेद्विमगुणद्वानाणि लस्साए एगो ममओ अत्थि चि जहा सजमासजमगुण
 द्वान पडिवज्जति, पमत्तमजदो तथा सजमामजमगुणद्वान क्रिण्ण पडिउज्जदे ? सहावदो ।
 अधया णत्थि एत्थ पडिसेहो ।

पमत्तस्म उच्चदे- एकौ पमत्तो हायमाण पम्मलेस्साए जच्छिदो । तिससे अद्दा-
 राएण पमत्तद्वए एगो समो अत्थि चि तेउलेस्सिओ जादो एगसमओ दिद्वो । विदिय-

वर्षमान तेजोलेद्यासे पक्षलेद्याओ जाकर द्वितीय समयमें उपरिम गुणस्थानोंको
 जाने वाले मिथ्यादृष्टि ओर असत्यतस्म्यगृष्टि जीवोंके पक्षलेद्याके साथ एक समय पाया
 जाता है । इसी प्रकार हायमान तेजोलेद्यामें एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यादृष्टि या
 असत्यतस्म्यगृष्टि गुणस्थानका प्राप्त होनेवाले जीवोंके तेजोलेद्याके साथ एक समय पाया
 जाता है ।

शुक्रा—तेज ओर पक्षलेद्याके समान ही कापोत ओर नीललेद्याओंका भी एक
 समय पाया जाता है, (फिर उसे क्यों नहीं कहा) ?

समाधान—कापोत ओर नीललेद्याके साथ एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि,
 मिथ्यादृष्टि अथवा असत्यतस्म्यगृष्टि जीव एक समयमें विवक्षित लेद्याके द्वारा परिणत होकर
 द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानको, अथवा अन्य लेद्याको नहीं जते ह । तथा इन गुणस्थानोंको
 प्राप्त होनेवाले भी जीव विवक्षित धारण की गई लेद्याके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने
 पर उन उन गुणस्थानोंको नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है ।

शुक्रा—अपनी लेद्यामें एक समय रहने पर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले समय
 समय गुणस्थानको प्राप्त होते ह, उसी प्रकारसे प्रमत्तसत्यत भी समयमासयम गुणस्थानको
 क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है । अथवा, इस विषयमें कोई प्रतिषेध नहीं है ।

अत्र प्रमत्तसत्यतका काल कहते हैं—एक प्रमत्तसत्यत हायमान पक्षलेद्यामें विद्यमान
 था । उस लेद्याके कालक्षयसे तथा प्रमत्तसत्यत गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष
 रहने पर वह तेजोलेद्यागाला होगया । एक समय वह तेजोलेद्याके साथ प्रमत्तसत्यतके

समए तेउलेस्ता चेन, किंतु संजमामंजमं असंजमेण सह सम्भत्त सम्मामिच्छत्तं सासण-
सम्मत्त मिच्छत्तं वा गदे। एसा गुणपरावत्ती (१)। अधया, अप्पमत्तो तेउलेस्ताए अच्छिदो।
तिस्मे अप्पमत्तद्वाए सएण पमत्तो जादो। पमत्तो तेउलेस्ताए सह एगसमयं दिट्ठो।
विदियसमए मदो देवो जादो। एउ मरणेण (२)। पमत्तसजदो तेउलेस्ताए परिणमिय
विदियसमए जेण लेस्ततरं ण गच्छदि, पमत्तगुण पडिउज्जमाणो वि तेउलेस्मद्वाए
एगसमओ अत्थि त्ति ण पडिउज्जदि, तेण लेस्सापरावत्ती णत्थि। अप्पमत्तो हायमाण-
पम्पलेस्सिओ पम्पलेस्मद्वाए एगो समओ अत्थि त्ति पमत्तो जादो। विदियसमए वि
पमत्तो चेन, किंतु तेउलेस्सिओ जादो। एसा लेस्सापरावत्ती (३)। अधया पमत्तो तेउलेस्ताए
अच्छिदो। तिस्मे अद्वाएएण पम्पलेस्सा आगदा। पम्पलेस्साए सह पमत्तो एगसमय
दिट्ठो। विदियसमए पम्पलेस्सिओ चेन, किंतु अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावत्ती।
पम्पलेस्सद्वाए अच्छिदो पमत्तो तिस्से अद्वाएएण तेउलेस्साए परिणमिय विदियसमए
अप्पमत्तो किण्ण कीरेदे ? ण, हीयमाणलेस्साए अप्पमत्तगुणग्गहणाभारा। मिच्छत्तादिगुणं

रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें तेजोलेइया ही रही, किन्तु यह संयमा-
सयमको, अथवा असयमके साथ सम्यक्त्तको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्तको, अथवा सासादन-
गुणस्थानको, अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होगया। यह एक समयरूप गुणस्थान
परिवर्तन है (१)। अथवा, कोई एक अप्रमत्तसयत तेजोलेइयामें वर्तमान था। उसी लेइयामें
रहते हुए ही अप्रमत्तगुणस्थानके कालक्षयसे वह प्रमत्तसयत हो गया। वह प्रमत्तसयत
तेजोलेइयाके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मरा और देव होगया। इस
प्रकार मरणकी अपेक्षा एक समय उपलब्ध हुआ (२)। प्रमत्तसयत तेजोलेइयाके साथ
परिणमित होकर द्वितीय समयमें चूकि, दूसरी अन्य लेइयाको नहीं प्राप्त होता है, और प्रमत्त-
सयत गुणस्थानको प्राप्त होता हुआ भी तेजोलेइयाके कालमें एक समय शेष रहता है, इसी
लिए वह लेइयान्तरको नहीं प्राप्त होता है। इस कारणसे यहा पर लेइयाका परिवर्तन नहीं
है। हायमान पद्मलेइयावाला कोई अप्रमत्तसयत, पद्मलेइयाके कालमें एक समय अशिशु रहने
पर प्रमत्तसयत हो गया। द्वितीय समयमें भी वह प्रमत्तसयत ही रहा, किन्तु तेजोलेइया
वाला होगया। यह लेइयासम्बन्धी परिवर्तन है (३)। अथवा, कोई प्रमत्तसयत तेजोलेइयामें
विद्यमान था। उसके उस तेजोलेइयाके कालक्षयमे पद्मलेइया आगई। पद्मलेइयाके साथ वह
प्रमत्तसयत एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें वह पद्मलेइयावाला ही रहा, किन्तु
अप्रमत्तसयत हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तन हुआ।

शुद्धा—पद्मलेइयाके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसयत उस लेइयाके कालक्षयसे
तेजोलेइयासे परिणमित होकर द्वितीय समयमें अप्रमत्तसयत क्यों नहीं हो जाता ?

किण्ण पडिउज्जदि ? ण, तेउलेस्माए पडिय अतोमुहुत्तमणच्छिय हेट्टिमगुणग्गहणाभाया ।
अधया अप्पमत्तो पम्मलेस्माए अच्छिदो अप्पमत्तद्वाखएण पमत्तो जादो । विदियसमए
मदो देवत्त गदो ।

अप्पमत्तसजदस्स उच्चदे- मिच्छादिट्ठी अमजदसम्मादिट्ठी सजदासजदो पमत्त
सजदो वा वड्डमाणतेउलेस्मिओ तेउलेस्मद्दाए एगो समओ अत्थि ति अप्पमत्तो जादो ।
तेउलेस्माए सह एगसमय अप्पमत्तो दिट्ठो । विदियसमए पम्मलेस्सिगो जादो । एसा
लेस्सापरापत्ती (१) । अधया पमत्तो हायमाणपम्मलेस्सिगो एगसमयमप्पमत्तद्दा अत्थि ति
पम्मलेस्सद्दाए खएण तेउलेस्सिगो जादो । विदियसमए पमत्तगुण पडिउण्णो । एसा गुणपरा
वत्ती (२) । अधया पमत्तो वड्डमाणतेउलेस्सिओ अप्पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्त
गदो । एव मरणेण (३) । पमत्तो वड्डमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्दाए एगसमओ अत्थि

समाधान— नहीं, क्योंकि, हीयमान लेइयाके साथ अप्रमत्तगुणस्थानके ग्रहण
करनेका अभाव है ।

शंका— तो उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानको क्यों नहीं
प्राप्त हो जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, तेजोलेइयामें गिर करके अतर्मुहूर्त रहे बिना नीचेके
गुणस्थानोंके ग्रहण करनेका अभाव है ।

अधया, कोई अप्रमत्तसयत पद्मलेइयामें विद्यमान था । वह अप्रमत्तसयतगुणस्थानके
कालक्षयसे प्रमत्तसयत हो गया । वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ ।

अथ अप्रमत्तसयतके एक समयसम्ब धी लेइयादिपरिवर्तनको कहते हैं— वर्धमान
तेजोलेइयावाला कोई मिथ्यादृष्टि, अधया असयतसम्यग्दृष्टि, अधया सयतासयत, अधया
प्रमत्तसयत जीव, तेजोलेइयाके कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसयत हो
गया । यह तेजोलेइयाके साथ एक समय अप्रमत्तसयतरूपसे दृष्टिगोचर हुआ, और द्वितीय
समयमें पद्मलेइयावाला हो गया । यह लेइयापरिवर्तन है (१) । अधया, हायमान पद्मलेइया
वाला कोई प्रमत्तसयत, एक समय अप्रमत्तसयत कालके अवशेष रहने पर पद्मलेइयाके काल
क्षयसे तेजोलेइयावाला हो गया, और द्वितीय समयमें प्रमत्तसयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ ।
यह गुणस्थानपरिवर्तन है (२) । अधया, वर्धमान तेजोलेइयावाला कोई प्रमत्तसयत जीव
अप्रमत्तसयत हो गया । वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार
मरणसे एक समय लब्ध हुआ (३) । कोई वर्धमान पद्मलेइयावाला प्रमत्तसयत, पद्मलेइयाके

त्ति अप्पमत्तो जादो । विदियसमए अप्पमत्तो चेत्र, किंतु सुकलेस्स गदो । एसा लेस्सा-
परात्ती (१) । अधया अप्पमत्तो हायमाणसुकलेस्सिगो सुकलेस्सद्वास्सएण पम्मलेस्सिगो
जादो । विदियसमए पम्मलेस्साए सह पमत्तगुणं पडिण्णो । एसा गुणपरात्ती (२) ।
अधवा पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो पमत्तद्वाए खीणाए एगसमय जीविदमत्थि चि
अप्पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्त गदो । एवं मरणेण (३) ।

उक्कस्समतोमुहुत्तं ॥ २९८ ॥

तं जधा— संजदासजदो पमत्तसजदो अप्पमत्तसजदो वा तेउ पम्मलेस्सासु अप्पिद-
लेस्साए परिणमिय मब्बुक्कस्समतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदलेस्स गदो ।

**सुकलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होत्ति, णाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्धां ॥ २९९ ॥**

कुदो ? तिसु वि कालेसु सुकलेस्सियमिच्छादिट्ठीण निरहाभाया ।

कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसयत हो गया । यह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसयत
हो रहा, किन्तु शुक्ललेश्याको प्राप्त हो गया । इस प्रकार यह लेश्यापरिवर्तन हुआ (१) । अथवा,
हायमाण शुक्ललेश्यावाला कोई अप्रमत्तसयत जीव शुक्ललेश्याके कालक्षयसे पद्मलेश्यागला हो
गया । द्वितीय समयमें पद्मलेश्याके साथ प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थान
परिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (२) ।

अथवा, कोई प्रमत्तसयत पद्मलेश्यामें विद्यमान था । यह प्रमत्तकालके क्षीण हो
जाने पर, तथा एक समयप्रमाण जीवनके शेष रहने पर अप्रमत्तसयत हो गया, दूसरे समयमें
मरा और देवत्वको प्राप्त हो गया । यह मरणके साथ एक समयकी प्ररूपणा हुई (३) ।

**तेजोलेश्या और पद्मलेश्यागले सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयतोका
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९८ ॥**

जैसे— कोई सयतासयत, अथवा प्रमत्तसयत, अथवा अप्रमत्तसयत जीव तेजो-
लेश्या और पद्मलेश्याओंमें विवक्षित किसी एक लेश्यामें परिणत होकर और सवात्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित लेश्याको प्राप्त हो गया ।

**शुक्ललेश्यामें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तरु होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
सर्व काल होते हैं ॥ २९९ ॥**

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

१ उत्पन्नात्तमुहूर्त । स सि १, ८

२ शुक्लश्याना मिथ्यादृष्टेर्नानावापेक्षया सर्व काल । स सि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

त जघा- एको मिच्छादिद्वी बहुमाणपम्मलेस्सिओ सगट्ठाए सण्ण सुफलेस्सिओ जादो । सन्नजहणमतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्स गदो, अण्णलेस्सनागमणे सभयामारा ।

उक्कस्सेण एकतीसं सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ ३०१ ॥

त जघा-एकौ द्वयलिंगी द्वयमनममाहप्पेण उपरिमगेज्जेसु आउअ वधिय पम्मलेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अट्ठाएण सुक्कलेस्सा आगदा । तस्य अतोमुहुत्तमच्छिय काल करिय उपरिमगेज्जेसु उपरजिय सगट्ठिदि गमिय खुदो तक्कणे चेअ णट्टलेस्सिओ जादो । एव पढमिच्छतोमुहुत्तेण मादिरिगएकतीसं सागरोवममेत्तो ति मिच्छत्तसहिद-सुक्कलेस्सुक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ ३०२ ॥

सुक्कलेस्सेत्ति अनुवट्टदे । खुदो ओघत्त ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगो

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

जैसे—वधमान पद्मलेस्यावाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव अपनी लेस्याका काल समान हो जानेसे शुक्कलेस्यावाला हो गया । वह उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रद्द करके पद्मलेस्याको प्राप्त हुआ क्योंकि, उसका पद्मलेस्याके सिवाय अन्य किसी लेस्यामें जाना समय ही नहीं है ।

शुक्कलेस्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे—एक द्वयलिंगी साधु द्रव्यसयमके माहात्म्यसे उपरिम प्रेयेयकोंमें आयुको याघकर पद्मलेस्यामें विद्यमान था । उसके उस लेस्याके कालक्षयसे शुक्कलेस्या आगद । उसमें अन्तर्मुहूर्त काल रद्द कर, कालको करके, उपरिम प्रेयेयकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थितिको धिताकर च्युत हुआ और उसी क्षणमें ही नष्टलेस्यावाला होगया । इस प्रकार प्रथम अन्तर्मुहूर्तके साथ साधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण मिथ्यात्प्रसहित शुक्कलेस्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

शुक्कलेस्यावाले सासादनमम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०२ ॥

यहा पर 'शुक्कलेस्या' इस पदकी अनुवृत्ति होती है ।

शुका—सूत्रोक ओघपना कैसे समझ है ?

समाधान—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल

१ एकजाव प्रति जघन्यता तद्वृत्त । स ति १, ८

२ उक्कस्सेणैकविंशसागरोवमाणि सादिरियाणि । स ति १, ८

३ सासादनमम्यग्दृष्टिपादिसयोगव्यतानो X X सामापोतः काल । स ति १, ८

समओ, उक्त्सेण पलिदोमसस असलेज्जदिभागो, एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ,
उक्त्सेण उ आगलियाओ, इच्चेदेहि तदो भेदाभावा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३०३ ॥

कुदो ? पाणेगजीवजहण्णुककस्सकालेहि सह ओघसम्मामिच्छादिट्ठीहितो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०४ ॥

कुदो ? पाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्त्सेण
तेवीस सागरोमणि सादिरेयाणि, इच्चेदेहि त्रिसेसाभावा । णवरि पज्जगट्टियणए अवल-
विज्जमाणे अत्थि त्रिसेसो एत्थ । कुदो ? पच्छिममणुससहगदअतोमुहुत्तेण सादिरेगत्तुवलंभा ।
ओघमिह देसूणपुच्चकोडीए सादिरेगत्तंसणादो ।

सजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालदो होंति,

पाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०५ ॥

सुगममेद सुत्तं ।

पल्लोपमका असरयातवा भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट
काल छह आचलिप्रमाण है । इस प्रकार ओघसे इसके कालमें कोई भेद नहीं होनेसे ओघपना
बन जाता है ।

शुक्लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०३ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघ-
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे कोई भेद नहीं है ।

शुक्लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्त
मुहूर्त है, उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरोपम है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं
है । किन्तु केवल पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने पर यहा विशेषता है । घट्ट
इस प्रकार है— पिछले मनुष्यभवमें होनेवाली शुक्लेश्याके एक अन्तमुहूर्तके साथ उक्त
कालकी सातिरेकता पाई जाती है । किन्तु ओघमें देशोन पूर्वकोटीके साथ उक्त कालकी
सातिरेकता देखी जाती है ।

शुक्लेश्यावाले सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत जीव कितने काल तक
होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०५ ॥

यद्द सूत्र सुगम हे ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगममयं ॥ ३०६ ॥

त जघा- एको पमत्तसज्जदो हायमाणसुक्कलेस्सिगो एगो समआ सुक्कलेस्साए अत्थि ति सज्जदासज्जदो जादो । विदियसमए सज्जदासंजदो चेव, किंतु पम्मलेस्स गदो । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । सेसगुणद्वान्णैहिंत्तो संजमासज्जम पडिउज्जताण सुक्कलेस्साए एगसमओ ण लम्भदि । कुदो ? बहुमाणसुक्कलेस्साए सज्जमासज्जम पडिउण्णाण विदियसमए पम्मलेस्साए गमणाभावा । अथवा सज्जदासज्जदो बहुमाणपम्मलेस्सिगो तस्से अद्वाराएण संजमा सज्जमद्वए एगो समओ अत्थि ति सुक्कलेस्सिओ जादो । विदियसमए सुक्कलेस्सिओ चेव, किंतु अप्पमत्तभावेण सज्जम पडिउण्णो । एसा गुणपरावत्ती (२) ।

पमत्तस्म उच्चदे- एको अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्वए एगो समओ अत्थि ति पमत्तो जादो । विदियसमए पमत्तो चेव, किंतु लेस्सा परावत्तिदा । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । अथवा एको पमत्तो बहुमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्वए खएण सुक्कलेस्सिगो जादो । विदियसमए (सुक्कलेस्सिगो) चेव, किंतु अप्पमत्तो जादो ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जायोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३०६ ॥

जैसे- हायमान शुक्कलेस्सावाला एक प्रमत्तसयत्त जीव, शुक्कलेस्साके कालमें एक समय शेष रहने पर सयतासयत्त हुआ । द्वितीय समयमें वह सयतासयत्त ही है, किंतु पद्मलेस्साको प्राप्त हो गया । यह लेस्साका एक समयसम्बन्धी परिवर्तन है (१) । शेष गुण स्थानोंसे सयतासयत्तको प्राप्त होनेवाले जीवोंके शुक्कलेस्साका एक समय नहीं पाया जाता है क्योंकि, वर्धमान शुक्कलेस्साके साथ सयतासयत्तको प्राप्त होनेवाले जीवोंके द्वितीय समयमें पद्मलेस्सामें गमनका अभाव है । अथवा कोई सयतासयत्त वर्धमान पद्मलेस्सावाला है । उस लेस्साके कालक्षयसे और सयतासयत्तके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह शुक्कलेस्सावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह शुक्कलेस्सावाला ही है, किंतु अप्रमत्तभावके साथ सयत्तको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (२) ।

अथ प्रमत्तसयत्तके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं- हायमान शुक्कलेस्सावाला कोई एक अप्रमत्तसयत्त शुक्कलेस्साके कालमें एक समय अवशेष रहने पर प्रमत्तसयत्त हो गया । द्वितीय समयमें वह प्रमत्तसयत्त ही रहा, किंतु लेस्सा परिवर्तित हो गई । यह लेस्सापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (१) । अथवा, वर्धमान पद्मलेस्सावाला कोई एक प्रमत्तसयत्त जीव, पद्मलेस्साके कालक्षयसे शुक्कलेस्सावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह (शुक्कलेस्सावाला) ही

एसा गुणपराजची (२) । अधया अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्दाए सह पमत्तो जादो । त्रिदियसमए मदो देवत्त गदो (३) ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एको पमत्तो सुक्कलेस्साए अच्चिदो, सुक्कलेस्साए सह अप्पमत्तो जादो । त्रिदियसमए मदो देवत्त गदो (१) । अधया अपुच्चकरणो ओदरतो सुक्कलेस्सिगो अप्पमत्तो होदण मदो देतो जादो (२) । एत्थ एगममयमगपरूवणगाहा-

दो दो व तिण्णि तेऊ तिण्णि तिया होंनि पम्मउत्साए ।

दो तिग दुग च समया वोद्धवा सुक्कलेस्साए ॥ ४१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०७ ॥

कुदो ? सुक्कलेस्साए परिणमिय उक्कस्समतोमुहुत्तमन्ठिय पम्मलेस्सं गदाण-
सुक्कस्सकालुत्तभा ।

है, किन्तु अग्रमत्तसंयत हो गया । यह गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तन है (२) । अधया, हायमान शुक्कलेश्यावाला कोई अग्रमत्तसयत, शुक्कलेश्याके ही कालके साथ प्रमत्तसयत हो गया । पुन दूसरे समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (३) ।

अग्रमत्तसयतके परू समयकी प्ररूपणा करते हैं— शुक्कलेश्यामें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसयत जीव शुक्कलेश्याके साथ ही अग्रमत्तसयत हो गया । यह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (१) । अथवा, शुक्कलेश्यावाला श्रेणीसे उतरता हुआ कोई अपूर्व-करणसयत अग्रमत्तसयत होकर मरा और देव हो गया (२) । यहा पर एक समयके भगोंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथा इस प्रकार है—

तेजोलेश्याके दो, दो और तीन समयभग होते हैं । पञ्चलेश्याके तीन त्रिक अर्थात् तीन, तीन और तीन समयभग होते हैं । तथा, शुक्कलेश्याके दो, तीन और दो समयभग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ४१ ॥

विशेषार्थ— ऊपर जो एकसमयसम्बन्धी अनेक विकल्प यताये गये ह, उनका स्पष्टकरण इस प्रकार है— तेजोलेश्यासम्बन्धी देशसयतके दो भग, प्रमत्तसयतके दो भग, और अग्रमत्तसयतके तीन भग, इस प्रकार कुल (२+२+३=७) सात भग होते हैं । पञ्चलेश्यासम्बन्धी देशसयतके तीन भग, प्रमत्तसयतके तीन भग और अग्रमत्तसयतके तीन भग, इस प्रकार कुल (३+३+३=९) नौ भग होते हैं । शुक्कलेश्यासम्बन्धी देशसयतके दो भग, प्रमत्तसयतके तीन भग और अग्रमत्तसयतके दो भग, इस प्रकार कुल (२+३+२=७) सात भग जानना चाहिए ।

उक्त तीनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०७ ॥

क्योंकि, शुक्कलेश्यासे परिणत होकर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रद्द कर पञ्चलेश्याको प्राप्त हुए जीवोंके उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

१ उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त । व ति १, ८.

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघ ॥ ३०८ ॥

हुदो ? एदेसिमोघे नि सुकरुलेस्म गोत्तूण अण्णलेस्मामाणा ।

एव लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति,
णाणाजीव पडुच्च सब्वद्धा' ॥ ३०९ ॥

सुगममेद सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्ज-
वसिदो' ॥ ३१० ॥

त नहा- भरियत्त दुग्धि, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । पुव्वम
लद्धत्तम्मचत्त अणादिसपज्जवसिद । सम्मच लहिऊण मिच्छत्त गदस्म सादिसपज्जवसिद ।
अणादिदादो अरुद्धिमस्स ण विणासो चे ण, अण्णाणस्म कम्मपघस्स य अणादिस्म वि-

शुक्लेश्यामाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवलीका काल ओघके
समान है ॥ ३०८ ॥

पर्योकि, इन गुणस्थानवालोंके ओघमें भी शुक्लेश्याको छोड़कर अथ लेश्याका
भयान है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुरादसे भव्यमिद्विक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल
तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा अनादि सान्त और सादि-सान्त काल है ॥ ३१० ॥

जैसे— मय्यत्व हो प्रकारका है, अनादि सान्त और सादि सान्त । पूर्वमें नहीं प्राप्त
हुआ है सम्यक्त्व जिसको, ऐसे जीवके अनादि सान्त भव्यत्व होता है । सम्यक्त्वको प्राप्त
करके मिथ्यात्वको गये हुए जीवके सादि सान्त मय्यत्व होता है ।

शुक्ला— जो घस्तु अनादि है, वह अदृष्टिम होती है और उसका विनाश नहीं होता ।
(इसलिए मिथ्यात्वको अनादि होनेसे अदृष्टिमता सिद्ध है, फिर उसका विनाश नहीं होता
चाहिये ?)

समाधान— नहीं, पर्योकि, अज्ञानका और कर्मवन्धका, उनके अनादि होते हुए भी,

१ मयाववादेण मयपु मिथ्यादृष्टेनानाजीवापेक्षया सर्वः काल । स सि. १, ८

२ एगजीवपेक्षया वा भगी, अनादि क्षपर्यवसान, सादि सपर्यवसानय । स सि. १, ८

विणासुलंभा । अकारणत्वाद्दो ण तस्स विणासो चे ण, अणादिबधनवद्धरुम्मकारणत्वाद्दो ।
सिद्धाण मिच्छत्तासंजमरुमायजोगंरुम्मामप्रिरेहियाणं ण ससारे पदणमत्थि, तदो ण
सादि भवियत्त । ण पडिउण्णसम्मत्तस्स मि सादि भवियत्त होदि, पुच्च पि तत्थ भवि-
यत्तुवलभा ? एत्थ परिहारो बुच्चदे- ण ससारे णिउदिदमिद्धे अस्सिद्धं भवियत्त सादि
उच्चदे । ण च ते ससारे णिउदति, णट्ठासवत्तादो । किंतु गहिदसम्मत्तजीवस्स भवियत्तं
सादि उच्चदे । ण च त पुच्चमत्थि, सादिसातस्सेदस्स पुच्चिउण्णेण अणादि-अणतेण सह
एयत्तपरोहा । पुच्चिल्लमवि भवियत्त सात चे ण, सत्ति पडुच्च तस्स सातत्तुवएसा । ण
वत्ति पडुच्च सम्मत्तगहणेण विणा अणतससारस्स जीवस्स सात भवियत्त, विरोहा ।
अणादि-अणतेण मि भवियत्तेण होदच्च, अण्णाहा भवजीवोत्तेद्धेप्पसगादो ।

अत्थि अणता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।

भाउरुलरुद्धपउता णिगोदत्तास ण मुचत्ति ॥ ४२ ॥

विनाश पाया जाता है ।

शंका—कारणरहित वस्तुका विनाश नहीं होता है, इसलिए अज्ञान या कर्मबन्धका भी विनाश नहीं होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अज्ञान या कर्मबन्धका कारण अनादिबधनवद्ध कर्म ही है ।

शंका—मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योगके द्वारा कर्माक्षरसे विरहित सिद्ध जीवोंका पुन ससारमें पतन नहीं होता है, इसलिए भयत्व सादि सान्त नहीं है । और न प्रतिपन्नसम्यक्त्वी जीवके भी भयत्व सादि होता है, क्योंकि, सम्यक्त्वकी प्राप्तिके पूर्व भी उस जीवमें भयत्व पाया जाता है ?

समाधान—अर उक्त आशकाका परिहार कहते हैं—ससारमें पुन लौटकर आने वाले सिद्ध जीवोंकी अपेक्षासे भयत्वको सादि नहीं कह सकते, क्योंकि, कर्माक्षरोंके नष्ट हो जानेसे वे ससारमें पुन लौटकर नहीं आते । किंतु ग्रहण किया है सम्यक्त्वको जिसने, ऐसे जीवके भयत्वको सादि कहते हैं, तथा, वह पूर्वमें भी नहीं है, क्योंकि, इस सादि सान्त भयत्वके पूर्ववर्ती उस अनादि अनन्त भयत्वके साथ एकत्वका विरोध है ।

शंका—पहलेके भयत्वकी भी यदि सान्त मान लिया जाय, तो क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षासे उसके सान्तताका उपदेश किया गया है । व्यक्तिकी अपेक्षा सम्यक्त्वग्रहणके विना अनन्त ससारी जीवके सान्त भयत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है । अर्थात्, फिर तो भयत्वको अनादि अनन्त भी होना पड़ेगा, अन्यथा, भय जीवोंके थिच्छेदका प्रसंग प्राप्त होगा । तथा—
ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं कि जिन्होंने प्रसोंकी पर्याय अभी तक नहीं पाई है, और जो वृषित भावोंकी अति प्रचुरताके कारण कभी भी निगोदके वासको नहीं छोड़ते हैं ॥ ४२ ॥

एयणिगोदसरिरे जीया दव्वप्पमाणदेो दिहा ।

सिद्धेहि अणतगुणा सव्वेण त्तिदीदनालेण' ॥ ४३ ॥

इचादिसुचदसगादो य । ण च मोक्खमगच्छताण भन्निचत्त णत्थि च्चि चोत्तु जुत्त,
मोक्खमगणसत्तिमग्गमान पडुच्च त्तैसिं भन्निचत्तुदेसा' (३) । ण च सत्तिमताण सच्चेसिं पि
वच्चीए होदव्वमिदि णियमो अत्थि सव्वस्स त्ति हेमपासाणस्स हेमपज्जाएण परिणमण
प्पसगा' । ण च एव, अणुत्तलभा । णिव्वुइ गच्छमाणो वि ण चोच्छिज्जदि मव्वरासि च्चि
रुधमेद णच्चेदे ? तस्मान्णत्थियादो । सो रामी अणतो उच्चइ, जो सते त्ति चए ण णिद्धादि,
अण्णहा अणतत्तएसा अणत्थयो ह्वैज्ज । तम्हा त्तिदिहेण भन्निचत्तेण होदव्वमिदि । ण
च सुत्तेण सह निरोहो, सत्तिं पडुच्च सुत्ते अणादिसात्तुत्तएसा ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्धेसो' ॥ ३११ ॥

एक निगोदशरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीव सिद्धोंसे तथा समस्त अतीत कालके समयोंसे
अन तगुणे देखे गये हैं ॥ ४३ ॥

इत्यादि सूत्रोंके देखे जानेसे भी भय जीवोंके विच्छेदका अभाव सिद्ध है । तथा, मोक्षको
नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना नहीं होता है, ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, मोक्ष
समनधी शक्तिके सद्भावकी अपेक्षा उनके भव्यत्वके पाये जानेका उपदेश है । तथा यह भी
कोई नियम नहीं है कि भयत्वकी शक्ति रखनेवाले सभी जीवोंके उसकी व्यक्ति होना ही
चाहिये, अन्यथा, सभी स्वर्णपाषाणके स्वर्णपर्यायसे परिणमनका प्रसंग प्राप्त होगा ? किन्तु
इस प्रकारसे देखा नहीं जाना है ।

ज्ञाना—निर्धृति (मोक्ष) को जाननेके कारण नित्य-ययात्मक भव्यराशि विच्छेदको
प्राप्त नहीं होगी, यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, वह राशि अनन्त है । और वही राशि अनन्त कही जाती है,
जो व्ययके होते रहने पर भी समाप्त नहीं होती है । अन्यथा, फिर उस राशिकी अनन्त
सहा अनर्थक हो जायगी । इसलिए भयत्व तीन प्रकारका ही होना चाहिये । तथा सूत्रके
साथ भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षा सूत्रमें भयत्वके अनादि
सान्तताना उपदेश दिया गया है ।

उक्त तीन प्रकारोंमेंसे जो भव्यत्व सादि और सान्त है उसका निर्देश इस
प्रकार है ॥ ३११ ॥

१ जो जी १५६

२ अ प्रतो ' भवियत्तुलमदेसा ' इति पाठ ।

जो जी. ५५८

३ मध्यवृत्तस्य जोग्या जे जीवा त इवति भवतिद्धा । ण ह्म मलविगने णियमा तानं कणओवठाणमिधं ॥

४ तत्र सादि सपर्यवसानो जघयनान्तर्भवतीर्त्तः । स सि १, ८

तिष्ठं भवियाण मज्जे जो सादिसपज्जासिदो भवियो तस्म इमो णिहेसो परूपाणा पणवणा च्चि उच्च होदि । अथवा भवियाणं ज मिच्छत्तं तं दुविहं, अणादिसपज्जासिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । तत्थ जो सो सादियो सपज्जवसिदो मिच्छादिद्वी तस्स इमो णिहेसो च्चि वत्तव्व । पुच्चिल्लमिह पुण अत्थे जो सादियो सपज्जवसिदो भवियो तस्स मिच्छत्तस्स इमो णिहेसो परूपादव्वो ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१२ ॥

तं जघा- सम्मादिद्वी दिट्ठमग्गो मिच्छत्तं गत्तूण सच्चजहण्णमतोमुहुत्तमच्छिय अण्णगुण गदो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ठं देसूणं ॥ ३१३ ॥

तं जघा- एक्को अणादियमिच्छादिद्वी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्त पडिवण्णो । तेण सम्मत्तेण उत्पज्जमाणेण अणतो संसारे छिण्णो सत्तो अद्धपोग्गलपरियट्ठमेत्तो कदो । उत्तमसम्मत्तेण जहण्णमतोमुहुत्तमच्छिय उत्तमसम्मत्तद्वाए छागलियसेसाए आसाण गत्तूण मिच्छत्तं णेदव्वो । अह्मा उवसमसम्मादिद्वी चेव मिच्छत्तं गत्तूण अद्धपोग्गलपरियट्ठ

तीन प्रकारके भव्योंके मध्यमें जो सादि सान्त भव्य है, उसका यह निर्देश है, अर्थात् उसकी यह प्ररूपणा या प्रस्थापना की जाती है । अथवा, भव्य जीवोंके जो मिथ्यात्व है, वह दो प्रकारका होता है- (१) अनादि सान्त, और (२) सादि सान्त । उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्यादृष्टि है, उसका यह निर्देश है, ऐसा कहना चाहिए । तथा पहलेके अर्थमें जो सादि सान्त भव्य कहा है, उसके मिथ्यात्वका यह निर्देश है, ऐसा प्ररूपण करना चाहिए ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

जैसे- दृष्टमार्गों कोई सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

सादि सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल देशीन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ३१३ ॥

जैसे- कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्पन्न होनेके साथ ही उस सम्यक्त्वमें अनन्त ससार उत्रिप्त होता हुआ अर्धपुद्गल परिवर्तन कालमात्र कर दिया गया । उपशमसम्यक्त्वके साथ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आबलिया शेष रह जाने पर उसी जीवको सासादनगुण स्थानमें ले जाकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिए । अथवा, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ही मिथ्यात्वको जाकर देशीन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण करके

देहण मिच्छत्तेण परियट्ठिय अतोमुहुत्तामसे संमारे सम्मत्त घेत्तूण अणंताणुबधी विसजो
इय विस्ममिय दसणमोह रणिय पमत्तापमत्तपरात्तसहस्मं करिय अधापमत्तकरण काऊण
अपुव्वो अणियट्ठी सुहुमो खीणो सजोगी अजोगी होदूण सिद्धो जादो । जाद देसणमद्व-
पोग्गलपरियट्ठ ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥३१४॥

—कुदो ? सासणादीण भवियत्त मोत्तूण अण्णास्सासमया ।

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च

सव्वद्धा ॥ ३१५ ॥

कुदो ? अव्वयत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ ३१६ ॥

कुदो ? मिच्छत्त मोत्तूण तस्स गुणतरगमणाभाना ।

एव भवियमग्गणा समत्ता ।

अन्तर्मुहूर्तमात्र ससारके शेष रहने पर सम्यक्त्वको ग्रहण करके, पुन अनन्तानुबन्धी कषायका
विसयोजन करके, पश्चात् विधाम ले, दर्शनमोहको क्षपण कर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुण
स्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके, अध प्रवृत्तकरण कर अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण
सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी हो करके सिद्ध होगया । इस प्रकारसे
देशीन अधपुद्गलपरिवर्तन काल सिद्ध हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तरुका काल ओघके समान
है ॥ ३१४ ॥

क्योंकि, सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके भयत्वको छोडकर अयका होना,
अर्थात् अभव्यपना, असमय है ।

अभव्यसिद्ध जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, अभव्य जीवोंका व्यय ही नहीं होता ।

एक जीवकी अपेक्षा अमव्योंका अनादि और अनन्त काल है ॥ ३१६ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वको छोडकर अभयके अय गुणस्थानमें जानेका अभाव है ।

इस प्रकार भयमार्गणा समाप्त हुई ।

* सासादनसम्यग्दृष्टिप्रापयोगकेवस्य ताना सामायेत, काल । स सि १, <

२ अमय्यानामनापपर्ववसान । स सि १, <

सम्प्रदायवादेण सम्मादिद्वि-खड्यसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वि-
प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ३१७ ॥

कुदो? सच्चगुणद्व्याणमपणो णाणेगजीउजहण्णुक्कस्सकाले अस्सिदूण भेदाभावा ।
णपरि खड्यसम्मादिद्वि सज्जासज्जेसु अत्थि भेदो । त भणिस्सामो । ण चेतो भेदो सुत्तेण
अपरुविदो, सग्गहिद्विसेससामणमवलविय ओघमिदि णिद्वेसादो । त जहा- एगो देवो
णेरइओ वा सम्मादिद्वी मणुसेसुवज्जिय अतोमुहुत्तम्महियग्गभादिअट्टप्पस्से गमिय सज्जा-
सज्जम पडिवज्जिय अतोमुहुत्त निस्समिय अतोमुहुत्तेण दसणमोहणीयं रणिय खड्य-
सम्मादिद्वी जादो । च्चुदुहि अतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्टप्पस्सेहि ऊणिय पुच्चकोडिसंजमा-
संजममणुपालिय मदो देवो जादो । एत्थेव निसेसो, णत्थि अणत्थ कत्थ वि ।

वेदगसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा
ति ओघं ॥ ३१८ ॥

कुदो? णाणेगजीउजहण्णुक्कस्सकालेहि सच्चगुणद्व्याण ओघगुणद्व्याणेहिंतो भेदाभावा ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अपयोगिकेवली गुणस्थान तरुका काल ओघके समान है ॥३१७॥

क्योंकि, चौथे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सभी गुणस्थानोंका अपने अपने नाना
जात और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका आश्रय करके सम्यग्दृष्टि जीवोंके साथ
कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि सयतासयतोंके कालमें भेद है,
उसे कहते हैं । यह कहा जानेवाला भेद सूत्रके द्वारा न कहा गया हो, ऐसी बात नहीं है,
क्योंकि, सगृहीत है सामान्य और विशेष जिसमें, ऐसे द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके
'ओघ' ऐसा पद सूत्रमें निर्दिष्ट किया गया है । अब उक्त कालका स्पष्टीकरण करते हैं- कोई
एक देव, अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त अधिक, गर्भको
आदि लेकर आठ वर्ष बिताकर, सयमासंयमको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, एक
अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षापण कर, क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया । इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे
अधिक आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण सयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव
हुआ । यहा पर ही इतनी विशेषता है, और कहीं कुछ भी विशेषता नहीं है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान तरुका
काल ओघके समान है ॥ ३१८ ॥

क्योंकि, नाना जात और एक जीवसम्यग्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंकी अपेक्षा
सूत्रके सर्व गुणस्थानोंके कालका ओघ गुणस्थानोंके कालसे कोई भेद नहीं है ।

१ सम्यक्त्वावादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्ट्यापयोगिकस्यन्तानां सामा योक्त काल ।
४ ति १, ८ २ क्षायोपशमितसम्यग्दृष्टानां चतुर्णां सामा योक्त काल । ४ ति १, ८

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ३१९ ॥

त जहा— सत्तद्द जणा बहुआ वा मिच्छादिट्ठिणो उवसमसम्मत्त पडिवण्णा । उवसमसम्मत्तद्वाए छात्रलियसेसाए सव्वे आसाण गदा । अतर गदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ॥ ३२० ॥

त जहा— सत्तद्द जणा बहुआ वा मिच्छादिट्ठिणो उवसमसम्मत्त पडिवण्णा । तत्थ अतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्त सम्मामिच्छत्त सासणसम्मत्त मिच्छत्त वा गदा । एदस्स एगा सलागा णिन्निखिदव्वा । तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिट्ठिणो उवसमसम्मत्त पडि-
वज्जिय तत्थ अतोमुहुत्तमच्छिय चदुण्ह गुणट्ठाणाणमण्णदर गदा । विदियसलागा लद्धा होदि । एव तिण्णि चत्तारि आदिं गतूण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ लब्भति । त क्व णव्वदे ? आहरियपरपरागदुग्देसादो । एदाहि सलागाहि उवसमसम्मत्तद्द गुणिदे सगरासीदो असखेज्जगुणो अणंतरकालो होदि ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अमयतसम्यग्दृष्टि और संयत्तासयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ ३१९ ॥

जैसे— सात आठ जन, या बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए, और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलीप्रमाण कालके अवशिष्ट रहने पर सभीके सभी सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो गये और पुन अन्तरको प्राप्त हुए ।

उपशमसम्यग्दृष्टि असयत और सयतासयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भाग है ॥ ३२० ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । उसमें अन्तर्मुहूर्त रह करके वे सत्र वेदकसम्यक्त्वको, या सम्यग्मिथ्यात्वको, या सासादन सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इसकी एक शलाका स्थापित करना चाहिए । उसी समयमें ही अन्य भी मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उसमें अन्तर्मुहूर्त रह कर, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए । यह दूसरी शलाका प्राप्त हुई । इस प्रकारसे तीन चारको आदि लेकर पल्योपमके असख्यातवें भागमात्र शलाकाए प्राप्त होती हैं ।

शुको— यह कैसे जाना जाता है कि उपशमसम्यक्त्वकी शलाकाए पल्योपमके असख्यातवें भागमात्र होती हैं ?

समाधान— आचायपरम्परागत उपदेशसे यह जाना जाता है ।

इन लघु शलाकाओंसे उपशमसम्यक्त्वके कालको गुणा करने पर अपनी राशिसे असख्यातगुणा अन्तररहित उपशमसम्यक्त्वका काल होता है ।

१ आपश्चमिकसम्यक्त्वेषु असयतसम्यग्दृष्टिसयतासयतयानानाजीवापेक्षया जघन्येनात्तमुहूर्तं । स ति १, ८
२ वक्कयेण पल्योपमासम्भवेयमाण । स ति १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

त जहा- एको मिच्छादिष्टी उअसमसम्मत्त पडिवण्णो, अरो देससंजमेण सह तं चेव पडिवण्णो, सच्चजहणमद्वमच्छिय उवसमसम्मत्तद्वाए छाअलियाअसेसाए आसाणं गदा। एतो दोण्ह पि जहण्णकालो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

तं जहा- दो मिच्छादिष्टिणो। तत्थ एगो उवसमसम्मत्त, अरो देससंजम पडिवण्णो। सच्चुक्कस्समतोमुहुत्तद्वमच्छिय दोण्णि वि तिण्हमण्णदर गदा।

पमत्तसंजदण्हडि जाव उवसंतकसायवीदरागच्छदुमत्था ति केव-
चिरं कालादो हांति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ॥३२३॥

तं जहा-पमत्त-अपमत्ताणं ताअ उचदे। सच्चट्टजणा बहुआ वा उवसमसम्मादिष्टिणो उवसमसेदीदो ओदरिय पमत्तापमत्ता होदूण एगसमयमच्छिय काल करिय देवा जादा। अपुअकरणस अओदरमाणेहि, अणियट्टि सुहुमसापराइयाण चटणोयरणकिरियाअपदेहि, उवसतस्स चढतेहि अप्पिदगुणपडिवण्णैरिदियसमए मदेहि जीपेहि एगसमओ वत्तवो।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। दूसरा देशसंयमके साथ उसी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। दोनों ही जीव सर्वजघन्य काल अपने अपने गुण स्थानोंमें रह करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आधलिया अवशेष रह जाने पर सासाधन गुणस्थानको प्राप्त हुए। यह दोनों गुणस्थानोंका जघन्य काल है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

जैसे— दो मिथ्यादृष्टि जीव हैं। उनमेंसे एक उपशमसम्यक्त्वको थोर दूसरा देशसयमको प्राप्त हुआ। वहा वे दोनों ही जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके सम्य विप्रत्याप्त, मिथ्यात्व, अधवा वेदकसम्यक्त्व, इन तीनोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए।

प्रमत्तसयतसे लेकर उपशान्तरूपायनीतरागच्छअस्य गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥३२३॥

यह इस प्रकार है— उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंकी एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— सात आठ जन, अथवा बहुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणीसे उतर कर प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत होकर, वहा पर एक समय रह करके, मरण कर, देव हुए। अपूर्वकरण गुणस्थानवालेके उतरते हुए, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानवालोंके आरोहण और अउतरण, इन दोनों ही क्रियाओंमें लगे हुए, तथा उपशान्तरूपायके चढते हुए विचक्षित गुणस्थानको प्राप्त होकर द्वितीय समयमें मरे हुए जीवोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिये।

१ एकजीव प्रति जघन्यश्रेणीकालात्तर्मुहूर्त । स ति १, ८

२ प्रमत्तापमत्ताणाम्पुण्यसमकालां च नानाजीवपेक्षया एकजीवपेक्षया च जघन्येनैक समय ।

३ ति. १, ८.

३ प्रतिपु 'अपिदगुणपडिवण्ण' इति पाठ ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त' ॥ ३२४ ॥

पमत्तापमत्ताण ताव उच्चदे- सत्तद्दु जणा बहुआ वा दंसणमोहणीयउत्तसामगा चारित्तमोहणीयउत्तसामगा वा पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा। तेसु अतोमुहुत्तद्वमच्छिय अण्ण गुण गदा। तम्हि चेव समण अण्णे उत्तममम्ममादिट्ठिणो पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा। एवमेत्थ सखेज्जसल्लागा लब्धमति। एदाहि पमत्तापमत्तद्द गुणिदे वि अतोमुहुत्त चेव होदि। कुदो? अतोमुहुत्तमिदि सुत्ते उद्दिट्ठत्तादो। एव चेव च्चट्ठण्हमुत्तसामगाण वि वत्तव्व।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२५ ॥

उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ॥ ३२६ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि, णाणाजीवजहण्णुककस्मकालपरूत्तणाए परू विदत्तादो।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३२७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३२८ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३२९ ॥

उक्त गुणस्थानगतीं उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२४ ॥

उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसयतोंका काल कहते हैं— सात आठ जीव भयवा बहुतसे जीव, चाहे वे दर्शनमोहनीयजन्मके उपशामक हों, भयवा चाहे चारित्र्य मोहनीयकर्मके उपशमन करनेवाले हों, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुए। उन दोनों गुणस्थानोंमें अन्तमुहूर्त काल रह करके अय गुणस्थानको प्राप्त हुए। उसी ही समयमें अय भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रमत्त और अप्रमत्तसयत गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे यहाँ पर सरयात शलाकाए प्राप्त होती है। इन शलाकाओंसे प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयतके कालको गुणा करने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है, क्योंकि, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा पद कहा गया है। इसी प्रकारसे चारों उपशामकोंका भी काल कहना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३२५ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, क्योंकि, इनका अर्थ माना जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालको प्ररूपणामें प्ररूपण किया जा चुका है।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२९ ॥

१ उत्कृष्टकालमुहूर्त । स सि १, ८

२ सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि मिथ्यादृष्टिना सासाद्योक्तः काल । स सि १, ८.

ओषध्नि उचमासणादीणं सम्मत्ताणुनादग्निं उचसासणादितिहं गुणद्वानाण च
भेदाभावा ।

एव सम्मतमग्गणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो हांति,
णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३० ॥

सुगममेद सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३१ ॥

एद पि सुत्त सुगम चेय, बहुमो परुदित्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ३३२ ॥

त जधा— एगो असण्णी सण्णीसु उन्नण्णो सागरोवमसदपुधत्त तत्थेव भमिय पुणो
अमणित्त गदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागल्लहुमत्था त्ति
ओषं ॥ ३३३ ॥

ओषमें कहे गये सासादनसम्यग्दष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी कालपरुपणाका और
सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादमें कहे गये सासादनसम्यग्दष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी काल
परुपणाका परस्परमें कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

सज्जामार्गणाके अनुवादमें सजी जीवोंमें मिथ्यादष्टि जीव कितने काल तक होते
हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३० ॥

यह सज्ज सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा सजी मिथ्यादष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३१ ॥

यह सज्ज भी सुगम ही है, क्योंकि, पहले बहुत बार परुपण किया जा चुका है ।

एक जीवकी अपेक्षा सजी मिथ्यादष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोवमशत-
पृथक्त्व है ॥ ३३२ ॥

जैसे— कोई एक अक्षरी जीव सक्षियोंमें उत्पन्न हुआ और सागरोवमशतपृथक्त्वके
अन्त तक वह सक्षियोंमें ही भ्रमण करके पुनः जसक्षित्तको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दष्टिसे लेकर खीणरूपायवीतरागल्लभ्य गुणस्थान तक सक्षियोंकी
कालपरुपणा ओषके समान है ॥ ३३३ ॥

१ सज्जानुवादेन सक्षिपु मिथ्यादष्टयापानिशुत्तिवादरान्तानां पुनरेवम् । स वि १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्तं कालः । स वि १, ८

कुदो ? मिन्डादिद्वी णाणाजीव पडुच्च सच्चद्वं होंति, एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्मेण तिण्णि समया, सासणसम्मादिद्वी अमजदमम्मादिद्वी णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्मेण आपलियाए अससेज्जदिभागो, एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्मेण वे समया, मयोगिकेउलीण णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्मेण ससेज्जममया, एरुनीव पडुच्च जहण्णुकस्सेण तिण्णि समया इवेएहि अणाहारमिच्छादिद्विआदीण कम्मउयकायजोगिमिन्डादिद्विआदीहितो विमेषाभावा ।

अजोगिकेवली ओघ' ॥ ३४२ ॥

कुदो ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णुकस्सेण अतोमुहुत्त, एगजीव पडुच्च जहण्णुकस्सेण पचहरस्तवस्वरुन्चारणकालो इच्चेदेहि भेदाभावा ।

(एव आहारमार्गणा समत्ता ।)

एव कालाणिओगद्वार सम्मत्त' ।

फ्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होने हैं, एक जीवकी अपेक्षा जघ-यसे एक समय होते हैं, और उत्कपसे तीन समय होते हैं, अनाहारक सासादत सम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा जघ-यसे एक समय, उत्कर्षसे आवलीके असख्यातयें भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघ-यसे एक समय और उत्कपसे दो समय तक होते हैं, सयोगिकेउलीका काल नाना जावोंकी अपेक्षा जघ-यसे तीन समय और उत्कर्षसे सख्यात समय है, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है, इस प्रकारसे अनाहारक मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंका कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिसे विशेषताका अभाव है ।

अनाहारक अयोगिकेउलीका काल जोघके समान है ॥ ३४२ ॥

फ्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघ-य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है; एक जीवकी अपेक्षा जघ-य और उत्कृष्ट काल पाच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण कालके समान है, इस प्रकार ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

समया । सासादतसम्यग्दृष्टिसयतसम्यग्दृष्टोनानाजावापक्षया जघ-यनेक समय । उत्कपणावलिक्काया असरयेण माग । एकजीव प्रति जघ येनेक समय । उत्कपण द्वा समय । सयोगिकेउलीनो नानाजावापक्षया जघ-यन पच समय । उत्कर्षण सरयया समय । एकजीव प्रति जघ-यधोक्कृष्टय त्रय समय । स सि १, ८

१ अयोगिकेउलीनो सामायोत्त काल । स सि १, ८

२ कालो बाणत । स सि १, ८

परिशिष्ट

१ खेतपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	खेचाणुगमेण दुग्धो गिद्देशो, ओषेण आदेसेण य ।	२	१०	पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्म असखेज्जदिभागे ।	७३
२	ओषेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सच्चलोगे ।	१०	११	मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	७३
३	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जान अजोगिकेवली चि केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभाए ।	३९	१२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओषं ।	७५
४	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा मागेषु, सच्चलोगे वा ।	४८	१३	मणुमअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	७६
५	आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय-गदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्माइट्ठि चि केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	५६	१४	देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जान असजदसम्मादिट्ठि चि केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	७७
६	एवं सत्तसु पुढीसु णेरइया ।	६५	१५	एव भरणवासियप्पहुडि जाव उवरिम—उवरिमगेवज्जनिमाण—वासियदेवा चि ।	७७
७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेषु मिच्छा-दिट्ठी केवडि खेत्ते, सच्चलोए ।	६६	१६	अणुदिसादि जान सच्चइसिद्धि-निमाणवासियदेवा असजदसम्मा-दिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असखे-ज्जदिभागे ।	८१
८	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जान सजदा-संजदा चि केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	६७	१७	इदियाणुवादेण इंदिया वाटरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सच्चलोगे ।	८१
९	पंचिदियतिरिक्ख पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्त—पंचिदियतिरिक्खजोगिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जान सजदा-सजदा केवडि खेत्ते, लोगस्म अस-खेज्जदिभागे ।	६९	१८	वीडदिय-वीडदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	८४

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१९	पंचिदिय पंचिदियपञ्चत्तएसु मिच्छा- इट्टिप्पहुडि जाण अजोगिकेनलि चि केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदि- भागे ।		२७	सजोगिकेनली ओष ।	१०१
२०	सजोगिकेनली ओष ।		२८	तसकाइयअपञ्जत्ता पंचिदियअप- ज्जत्ताण भगे ।	१०१
२१	पंचिदियअपञ्जत्ता केनडि खेत्ते, लोगस्म असखेज्जदिभागे ।	८६	२९	जोगाणुनादेण पचमणजोगि पच- वचिजोगीसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाण सजोगिकेनली केनडि खेत्ते, लोगस्म अमखेज्जदिभागे ।	१०२
२२	कायाणुनादेण पुढनिकाइया आउ- काइया तेउकाइया वाउकाइया, वादरपुढनिकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवाउकाइया वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयमरीरा त स्सेव अपञ्जत्ता, सुहुमपुढनिकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्मेण पञ्जत्ता अपञ्जत्ता य केनडि खेत्ते, सच्च- लोगे ।	८६	३०	कायजोगीसु मिच्छाइट्टी ओष ।	१०३
२३	वादरपुढनिकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवणप्फदि- काइयपत्तेयसरीरा पञ्जत्ता केनडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	८७	३१	सासणसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव खीण कमायवीदरागछदुमत्था केनडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	१०३
२४	वादननाउकाइयपञ्जत्ता केनडि खेत्ते, लोगस्स सखेज्जदिभागे ।	९३	३२	सजोगिकेनली ओष ।	१०४
२५	वणप्फदिकाइयणिगोदजीरा वादरा सुहुमा पञ्जत्तापञ्जत्ता केनडि खेत्ते, सच्चलोगे ।	९९	३३	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्टी ओष ।	१०४
२६	तमकाइय तमकाइयपञ्जत्तएसु मि- च्छाइट्टिप्पहुडि जाण अजोगि- केवलि चि केनडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	१००	३४	सासणसम्मादिट्टिप्पहुडि जाण सजोगिकेनली लोगस्स असखेज्जदि- भागे ।	१०५
			३५	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिट्टी ओष ।	१०५
			३६	सासणसम्मादिट्टी असजदसम्मा- दिट्टी सजोगिकेनली केनडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	१०६
			३७	वेउन्वियकायनोगीसु मिच्छाइट्टि- प्पहुडि जाण असजदसम्मादिट्टी केनडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदि- भागे ।	१०८
			३८	वेउन्वियामिस्सकायजोगीसु मिच्छा- दिट्टी सासणसम्मादिट्टी असनद- सम्मादिट्टी केनडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	१०९

संख्या	सूत्र	पृष्ठ	संख्या	सूत्र	पृष्ठ
९	आहारकायजोगीसु आहारमिस्म- कायजोगीसु पमत्तसजदा केवडि खेत्ते, लोगस्म असखेज्जदिभागे ।	१०९	५१	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुद- ण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओष ।	११७
१०	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओष ।	११०	५२	सासणसम्मादिट्ठी ओषं ।	११८
११	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा- इट्ठी ओषं ।	११०	५३	विभगण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी सामण- सम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	११८
१२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जेसु भागेसु सचलोगे वा ।	१११	५४	आभिणिजोहिय सुद-ओहिणाणीसु अमजदमम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकमाययीदरागछट्टुमत्त्या के- वडि खेत्ते, लोगस्स अमखेज्जदि- भागे ।	११९
१३	वेदाणुवादेण इत्थियेद-पुरिसनेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असखे- ज्जदिभागे ।	१११	५५	मणपज्जणणीसु पमत्तसंजद- प्पहुडि जाव खीणकमाययीदराग छट्टुमत्त्या लोगस्म असखेज्जदि- भागे ।	११९
१४	णवुसपवेदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओष ।	११२	५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओष ।	१२०
१५	अपगदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	११३	५७	अजोगिकेवली ओष ।	१२०
१६	सजोगिकेवली ओष ।	११३	५८	संजमाणुवादेण सजदेसु पमत्त- संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओष ।	१२१
१७	कसायाणुवादेण कोधकसाइ माण- कसाइ-मायकसाइ--लोकसाईसु मिच्छादिट्ठी ओष ।	११३	५९	मजोगिकेवली ओषं ।	१२२
१८	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स अमखेज्जदिभागे ।	११४	६०	सामाहय-च्छेदोपट्ठाणसुद्विसजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओष ।	१२३
१९	णपरि विमेषो, लोककसाईसु सुहुममापराहयसुद्विसजदा उर- समा खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	११६	६१	परिहासुद्विसंजदेसु पमत्त-अप्प- मत्तमजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स अमखेज्जदिभागे ।	१२३
५०	अकसाईसु चट्टुवाणमोष ।	११६	६२	सुहुमसापराहयसुद्विसंजदेसु सुहुम- सापराहयसुद्विसजदउवसमा खवगा	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	केवडि खेत्ते, लोगस्त असखेज्जदि- भागे ।	१२३	७५	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागल्लदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्त असखे- ज्जदिभागे ।	१३०
६३	जहाक्खादिनिहारसुद्धिसजदेसु चट्ठ- ट्ठानमोघ ।	१२४	७६	सजोगिकेवली ओघ ।	१३१
६४	सजदासजदा केवडि खेत्ते, लोगस्त असखेज्जदिभागे ।	१२४	७७	भनियानुवादेण भनसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि- केवली ओघ ।	१३१
६५	असजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	१२४	७८	अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ।	१३२
६६	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी ओघ ।	१२५	७९	सम्मत्तानुवादेण सम्मादिट्ठि-सह्य- सम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठि- प्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघ ।	१३३
६७	दसणाणुवादेण चम्बुदसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण- कसायवीदरागल्लदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्त असखेज्जदिभागे ।	१२६	८०	सजोगिकेवली ओघ ।	१३४
६८	अचम्बुदसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	१२७	८१	वेदगमम्मादिट्ठीसु असजदसम्मा- दिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसजदा केवडि खेत्ते, लोगस्त असखेज्जदि- भागे ।	१३४
६९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागल्लदुमत्था त्ति ओघ ।	१२७	८२	उवसमसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मा- दिट्ठिप्पहुडि जाव उमत्तकसाय वीदरागल्लदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्त असखेज्जदिभागे ।	१३४
७०	ओहिदसणी ओहिणानिभगो ।	१२७	८३	सासणसम्मादिट्ठी ओघ ।	१३५
७१	केवलदसणी केवलणानिभगो ।	१२७	८४	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघ ।	१३५
७२	लेस्साणुवादेण ऋण्हेस्सिय णील- लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा- दिट्ठी ओघ ।	१२८	८५	मिच्छादिट्ठी ओघ ।	१३५
७३	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी ओघ ।	१२८	८६	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छा दिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय वीदरागल्लदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्त असखेज्जदिभागे ।	१३६
७४	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छा- दिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसजदा केवडि खेत्ते, लोगस्त असखेज्जदि- भागे ।	१२९	८७	असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ।	१३६

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
८८	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छा- दिट्ठी ओघ ।		९१	सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मा- दिट्ठी अजोगिकेवली केरडि खेत्ते, लोगस्म अमखेज्जदिभागे ।	१३८
८९	सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव सजोगिकेवली केरडि खेत्ते, लोगस्स असखेज्जदिभागे ।	१३७	९२	सजोगिकेवली केरडि खेत्ते, लोगस्म असखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ।	१३८
९०	अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	१२७			

फोसणपरूवणासुत्ताणि

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	पोसणाणुगमेण दुमिहो णिहेसो, ओषेण आदेसेण य ।	१४१		केरलीहि केरडिय खेत्त फोसिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	१७०
२	ओषेण मिच्छादिट्ठीहि केरडियं खेत्त पोसिदं, सव्वलोगो ।	१४५	१०	सजोगिकेवलीहि केरडियं खेत्त पोमिद, लोगस्म असखेज्जदिभागो, असखेजा वा भागा, मव्वलोगो वा ।	१७२
३	सासणसम्मादिट्ठीहि केरडिय खेत्त फोसिद, लोगस्स असखेज्जदि- भागो ।	१४८	११	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय- गदीए णेरडएसु मिच्छादिट्ठीहि केरडिय खेत्तं पोसिदं, लोगस्म असखेज्जदिभागो ।	१७३
४	अट्ठ वारह चौद्दसभागा वा देखणा ।	१४९	१२	छ चौद्दसभागा वा देखणा ।	१७३
५	सम्मामिच्छाडडि-असजदसम्मा- दिट्ठीहि केरडिय खेत्त पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	१६६	१३	सासणसम्मादिट्ठीहि केरडिय खेत्त पोसिद, लोगस्स असखेज्जदि- भागो ।	१७७
६	अट्ठ चौद्दसभागा वा देखणा ।	१६६	१४	पच चौद्दसभागा वा देखणा ।	१७७
७	सजदासजदेहि केरडिय खेत्त फोसिद, लोगस्स असखेज्जदि- भागो ।	१६७	१५	सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मा- दिट्ठीहि केरडिय खेत्त पोसिद, लोगस्स अमखेज्जदिभागो ।	१७८
८	छ चौद्दसभागा वा देखणा ।	१६८			
९	पमत्तसजदपहुडि जाव अजोगि-				

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	पठमाए पुढरीए णेरइएसु मिच्छा- इट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	१८२	१	फोसिद, लोगस्स असखेज्जदि- भागो ।	२०६
१७	विदियादि जाव छट्ठीए पुढरीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि सासणसम्मा दिट्ठीहि केवडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	१८८	२	असजदसम्मादिट्ठि-सजदासंजदेहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२०७
१८	एग वे तिण्णि चत्तारि पच चोदस भागो वा देखणा ।	१८८	३	छ चोदमभागो वा देखणा ।	२०७
१९	सम्माभिच्छादिट्ठि-असजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	१८९	४	पच्चिदियतिरिक्ख पच्चिदियतिरि- क्खपज्जत्त जोणिणीसु मिच्छा- दिट्ठीहि केवडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२११
२०	सत्तमाए पुढरीए णेरइएसु मिच्छा- दिट्ठीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	१९०	५	सच्चलोगो वा ।	२११
२१	छ चोदसभागो वा देखणा ।	१९०	६	सेसाणं तिरिक्खगदीण भगो ।	२१३
२२	सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा दिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केव- डिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	१९१	७	पच्चिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केव- डिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२१३
२३	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छा- दिट्ठीहि केवडिय खेच फोसिद, ओष ।	१९२	८	सच्चलोगो वा ।	२१४
२४	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदि- भागो ।	१९३	९	मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त- मणुमिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केव डिय खेच पोसिद, लोगस्स अस- खेज्जदिभागो ।	२१६
२५	सत्त चोदसभागो वा देखणा ।	१९३	१०	सच्चलोगो वा ।	२१६
२६	सम्माभिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेच		११	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्स असखेज्जदि- भागो ।	२१७
			१२	सत्त चोदसभागो वा देखणा ।	२१७
			१३	सम्माभिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२२०

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
३९	सजोगिकैवलीहि केवडियं खेत्त फोसिद, लोगस्त असखेज्जदि-भागो, असखेज्जा वा भागा, सच्च-लोगो वा ।	२२३	५०	सोवम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजद-सम्मादिट्ठि च्चि देवोघ ।	२३४
४०	मणुमअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्त पोसिद, लोगस्त असंखेज्जदि-भागो ।	२२३	५१	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहससारकप्पवासियदेवेसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव अमंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्त पोसिदं, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२३७
४१	सच्चलोगो वा ।	२२४	५२	अट्ट चोद्दसभागा वा देखणा ।	२३७
४२	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्त पोसिद, लोगस्त असखेज्जदि-भागो ।	२२४	५३	आणद जाव आरणच्चुदरूप-वासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अमजदसम्मादिट्ठीहि केव-डियं खेत्त पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२३८
४३	अट्ट णव चोद्दसभागा वा देखणा ।	२२५	५४	छ चोद्दसभागा वा देखणा पोसिदा ।	२३८
४४	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्त पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२२७	५५	णवगोवज्जनिमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अमजद-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्त पोसिदं, लोगस्त असखेज्जदि-भागो ।	२३९
४५	अट्ट चोद्दसभागा वा देखणा ।	२२७	५६	अणुद्दिस जाव सच्चट्ठिसिद्धिनिमाण-वासियदेवेसु असजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्त पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२४०
४६	मवणवासिय-वाणरंतर-जोदिसिय-देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्त पोसिदं, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२२८	५७	इदियाणुवाट्ठेण एइदिय-वाट्ठ-सुहुम पज्जत्तापज्जत्तएहि केव-डियं खेत्त फोसिदं, सच्चलोगो ।	२४०
४७	अट्टुट्ठा वा, अट्ट णव चोद्दसभागा वा देखणा ।	२२९	५८	वीइदिय-वीइदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि	
४८	सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्त पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२३३			
४९	अट्टुट्ठा वा अट्ट चोद्दसभागा देखणा ।	२३३			

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
	केवडिय खेच फोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२४२		खेच पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२५०
५९	सव्वलोगो वा ।	२४३	६८	सव्वलोगो वा ।	२५०
६०	पचिदिय पचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२४४	६९	वादरमाउपज्जत्तएहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्त सखेज्जदिभागो ।	२५२
६१	अट्ट चोइमभागा देखणा, सव्वलोगो वा ।	२४४	७०	सव्वलोगो वा ।	२५३
६२	सासणमग्गादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघ ।	२४५	७१	वणप्फदिकाइयणिगोदजीवनादर—सुहुम पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडिय खेच पोसिद, सव्वलोगो ।	२५३
६३	सजोगिकेवली ओघ ।	२४५	७२	तमकाइय—तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघ ।	२५४
६४	पचिदियअपज्जत्तएहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२४६	७३	तमकाइयअपज्जत्ताण पचिदिय-अपज्जत्ताण भगो ।	२५४
६५	सव्वलोगो वा ।	२४६	७४	जोगाणुमादेण पचमणजोगि-पच-वचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२५५
६६	कायाणुमादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय वाउकाइय-वादरपुढविकाइय वादरआउकाइय वादरतेउकाइय-वादरवाउकाइय-वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयमरीर-तस्सेव अपज्जत्त सुहुमपुढविकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमतेउकाइय-सुहुममाउकाइय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडिय खेच पोसिद, सव्वलोगो ।	२४७	७५	अट्ट चोइसभागा देखणा, सव्वलोगो वा ।	२५५
६७	वादरपुढविकाइय वादरआउकाइय-वादरतेउकाइय वादरवणप्फदिका-इयपत्तेयमरीरपज्जत्तएहि केवडिय		७६	सामणसग्गादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासजदा ओघ ।	२५६
			७७	पमत्तसजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडिय खेच पोसिद, लोगस्त असखेज्जदिभागो ।	२५७
			७८	कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	२५८

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि खीणरुमाययीदरागछदुमत्था ओघ ।	२५८	९३	सम्माभिच्छादिट्ठी असजदसम्मा-दिट्ठी ओघ ।	२६७
८०	सजोगिकेनेली ओघ ।	"	९४	पेउब्बियमिस्मकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठि-सासणमम्मादिट्ठि-असंजद-मम्मादिट्ठीहि केरडिय खेत्तं - पोसिद, लोगस्स असखेज्जदि-भागो ।	२६८
८१	ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	२५९	९५	आहारकायजोगि-आहारमिस्स-कायजोगीसु पमत्तसजदेहि केव-डिय खेत्त पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२६९
८२	सासणसम्मादिट्ठीहि केरडियं खेत्तं पोमिद, लोगस्स असखेज्जदि-भागो ।	२६०	९६	कम्मडयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	"
८३	सत्त चोद्दसभागा वा देखणा ।	"	९७	मासणसम्मादिट्ठीहि केरडिय खेत्त फोसिद, लोगस्स असखे-ज्जदिभागो ।	२७०
८४	सम्माभिच्छादिट्ठीहि केरडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदि-भागो ।	२६१	९८	एकररह चोद्दसभागा देखणा ।	"
८५	असंजदसम्मादिट्ठीहि सजदा-सजदेहि केरडिय खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"	९९	असजदसम्मादिट्ठीहि केरडिय खेत्त फोसिद, लोगस्स असखे-ज्जदिभागो ।	"
८६	ठ चोद्दसभागा वा देखणा ।	२६२	१००	छ चोद्दसभागा देखणा ।	"
८७	पमत्तसजदप्पहुडि जाय सजोगि-केरलीहि केरडिय खेत्तं पोमिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"	१०१	सजोगिकेनेलीहि केरडिय खेत्तं फोसिद, लोगस्स असखेज्जा भागा, सब्बलोगो वा ।	२७१
८८	ओरालियमिस्मकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठी ओघ ।	२६३	१०२	वेदाणुनादेण इत्थियेद-पुरिस-वेदणसु मिच्छादिट्ठीहि केरडिय खेत्तं फोमिदं, लोगस्स असखे-ज्जदिभागो ।	"
८९	सासणमम्मादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेनेलीहि केरडिय खेत्तं फोमिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२६४	१०३	अट्ठ चोद्दसभागा देखणा, सब्ब-लोगो वा ।	२७२
९०	पेउब्बियकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठीहि केरडियं खेत्तं पोमिद, लोगस्स असखेज्जदि-भागो ।	२६६			
९१	अट्ठ वेरह चोद्दसभागा वा देखणा ।	"			
९२	सासणसम्मादिट्ठी ओघ ।	२६७			

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०४	सासणसम्मादिट्ठीहि केणडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२७२	११७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघ ।	२७८
१०५	अट्ट णव चोइसभागा देसुणा ।	"	११८	अपगदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेणली त्ति ओघ ।	२७९
१०६	सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मा दिट्ठीहि केणडिय रोच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२७४	११९	सजोगिकेणली ओघ ।	२८०
१०७	अट्ट चोइसभागा वा देसुणा फोसिदा ।	"	१२०	कसायाणुवादेण कोधकसाइ माणकसाइ मायकसाइ-लोमकसाइसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघं ।	"
१०८	सजदासंजदेहि केवडि खेचं फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"	१२१	णरि लोमकसाइसु सुहुमसापराइयउत्तसमा खवा ओघ ।	"
१०९	छ चोइसभागा देसुणा ।	२७५	१२२	अकसाइसु चदुट्ठानमोघ ।	"
११०	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठिउवसामग-खवएहि केणडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"	१२३	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	२८१
१११	णउत्तयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।	२७६	१२४	सासणसम्मादिट्ठी ओघ ।	"
११२	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"	१२५	विभगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२८२
११३	बारह चोइसभागा वा देसुणा ।	२७७	१२६	अट्ट चोइसभागा देसुणा, सच्चलोगो वा ।	"
११४	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केणडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"	१२७	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	२८३
११५	असजदसम्मादिट्ठि-सजदासंजदेहि केणडिय खेच फोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२७८	१२८	आभिणिबोहिय—सुद—ओधिणाणीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्या त्ति ओघ ।	"
११६	छ चोइसभागा देसुणा ।	"	१२९	मणपञ्चवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्या त्ति ओघ ।	२८४
			१३०	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघ ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३१	अजोगिकेवली ओषं ।	२८५	१४४	ओधिदंसणी ओधिणाणिमंगो ।	२८९
१३२	संजमाणुवादेण सजदेसु पमच- सजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओष ।	"	१४५	केवलदंसणी केवलणाणिमंगो ।	२९०
१३३	सजोगिकेवली ओषं ।	"	१४६	लेस्ताणुवादेण किण्हलेस्सिय- णीलेस्सिय काउलेस्सियमिच्छा- दिट्ठी ओष ।	"
१३४	सामाहयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंज- देसु पमचसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओषं ।	२८६	१४७	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	२९१
१३५	परिहारसुद्धिसजदेसु पमच-अप्प- मचसंजदेहि केवडिय खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१४८	पच चत्तारि वे चोइसभागा वा देसणा ।	"
१३६	सुद्धमसापराइयसुद्धिसजदेसु सुहु- मसापराइय उवसमा खया ओष ।	२८७	१४९	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९२
१३७	जहाक्खादविहारसुद्धिसजदेसु च- दुट्ठणी ओषं ।	"	१५०	तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि- सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	२९४
१३८	सजदासजदा ओषं ।	"	१५१	अट्ठ णव चोइसभागा वा देसणा ।	२९५
१३९	असजदेसु मिच्छाहट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठि त्ति ओषं ।	२८८	१५२	सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१४०	दसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	"	१५३	अट्ठ चोइसभागा वा देसणा ।	"
१४१	अट्ठ चोइसभागा देसणा सच्च- लोगो वा ।	"	१५४	सजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	२९६
१४२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडिहि जाव खीणकसायवीदरागल्लुदुमत्था त्ति ओषं ।	२८९	१५५	दिवट्ठ चोइसभागा वा देसणा ।	"
१४३	अचक्खुदमणीसु मिच्छादिट्ठि- प्पहुडि जाव खीणकसाय- वीदरागल्लुदुमत्था त्ति ओषं ।	"	१५६	पमच-अपमचसंजदा ओष ।	२९७
			१५७	पम्मलेस्सिएसु मिच्छाहट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केव-	

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
	द्विय खेत्त पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२९७	१७१	वेदगमम्मादिट्ठीसु अमज्जदमम्मा-दिट्ठिप्पहुडि जाण अप्पमत्तमज्जदात्ति ओष ।	३०४
१५८	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसुणा ।	"	१७२	उवसमसम्मादिट्ठीसु असज्जदसम्मादिट्ठी ओष ।	"
१५९	सज्जदासज्जदेहि केवडिय खेत्त पोमिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	२९८	१७३	सज्जदासज्जदप्पहुडि जाण उवसत्तकसायवीदरागउदुमत्थेहि केवडिय खेत्त पोसिद, लोगस्स अमखेज्जदिभागो ।	३०५
१६०	पच चोद्दसभागा वा देसुणा ।	"	१७४	सासणसम्मादिट्ठी ओष ।	३०६
१६१	पमत्त अपमत्तसज्जदा ओष ।	२९९	१७५	सम्माभिच्छादिट्ठी ओष ।	"
१६२	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाण सज्जदासज्जदेहि केवडिय खेत्त पोमिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"	१७६	मिच्छादिट्ठी ओष ।	"
१६३	छ चोद्दसभागा वा देसुणा ।	"	१७७	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त पोमिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"
१६४	पमत्तसज्जदप्पहुडि जाण सज्जोगि केवलि त्ति ओष ।	३००	१७८	अट्ठ चोद्दसभागा देसुणा, सव्वलोगो वा ।	"
१६५	भनियाणुवादेण भनसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाण अज्जोगि केवलि त्ति ओष ।	३०१	१७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाण सण्णिकसायवीदरागउदुमत्था ओष ।	३०७
१६६	अभनसिद्धिएहि केवडिय खेत्त पोसिद, सच्चलोगो ।	"	१८०	असण्णीहि केवडिय खेत्त पोसिद, सच्चलोगो ।	"
१६७	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असज्जदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाण अज्जोगिकेवलि त्ति ओष ।	३०२	१८१	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओष ।	३०८
१६८	खड्यसम्मादिट्ठीसु असज्जदसम्मादिट्ठी ओष ।	"	१८२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाण सज्जदासज्जदा ओष ।	"
१६९	सज्जदासज्जदप्पहुडि जाण अज्जोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	३०३	१८३	पमत्तसज्जदप्पहुडि जाण सज्जोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त पोसिद, लोगस्स असखेज्जदिभागो ।	"
१७०	सज्जोगिकेवली ओष ।	३०४			

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१८४	अणाहारएसु कम्महयकायजोगि- भगो ।	३०९	केवडिय सेत्त पोसिद,	लोगस्स	३०९
१८५	णवरिविसेसा, अजोगिकेनलीहि-		अससेज्जदिभागो ।		

कालपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	कालाणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओघेण आदेसेण य ।	३१३	होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।		३४२
२	ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३२३	१० उक्कस्सेण पलिदोवमस्स अससे- ज्जदिभागो ।		३४४
३	एगजीव पडुच्च अणादिओ अपज- वमिदो, अणादिओ सपज्जमसिदो, सादिओ सपज्जममिदो । जो सो सादिओ सपज्जमसिदो तस्स इमो णिहेमो । जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	३२४	११ एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।		"
४	उक्कस्सेण अद्दपोग्गलपरियट्ठ देसणा ।	३२५	१२ उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।		३४५
५	सासणमग्गमाट्ठिदी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	३३९	१३ असज्जदसग्गमादिट्ठी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।		"
६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स अससे- ज्जदिभागो ।	३४०	१४ एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।		३४६
७	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समओ ।	३४१	१५ उक्कस्सेण तेचीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।		३४७
८	उक्कस्सेण छ आगलियाओ ।	३४२	१६ सज्जदासज्जदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।		३४८
९	सग्गामिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो		१७ एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।		३४९
			१८ उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसणा ।		३५०
			१९ पमत्त-अप्पमत्तसज्जदा केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।		"

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०	एगजीव पदुच्च जहण्णेण एग समय ।	३५०	३६	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघ ।	३५८
२१	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३५१	३७	असजदसम्मादिट्ठी केरचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च सव्वद्दा ।	"
२२	चउण्ह उवसमा केरचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च जहण्णेण एगसमय ।	३५२	३८	एगजीव पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३५९
२३	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"	३९	उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि देखणाणि ।	"
२४	एगजीव पदुच्च जहण्णेण एग समय ।	३५३	४०	पढमाए जान सत्तमाए पुढीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केरचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च सव्वद्दा ।	३६०
२५	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३५४	४१	एगजीव पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	"
२६	चदुण्ह खरगा अजोगिकेनली केर-चिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	"	४२	उक्कस्सेण सागरोवम तिण्णि सत्त दस सत्तारस वानीस तेत्तीस सागरो-वमाणि ।	"
२७	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"	४३	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघ ।	३६१
२८	एगजीव पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३५५	४४	असंजदसम्मादिट्ठी केरचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च सव्वद्दा ।	"
२९	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"	४५	एगजीव पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३६२
३०	सजोगिकेनली केरचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च सव्वद्दा ।	३५६	४६	उक्कस्स सागरोवम तिण्णि सत्त दस सत्तारस वानीस तेत्तीस सागरोवमाणि देखणाणि ।	"
३१	एगजीव पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	"	४७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छा-दिट्ठी केरचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च सव्वद्दा ।	३६३
३२	उक्कस्सेण पुच्चकोडी देखणा ।	"			
३३	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय-गदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केर-चिर कालादो होंति, णाणाजीवं पदुच्च सव्वद्दा ।	३५७			
३४	एगजीव पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	"			
३५	उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि ।	३५८			

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
४८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	३६३	६२	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं	३७०
४९	उक्कस्सेण अणतकालमसरोज्जा पोग्गलपरियट्ट ।	३६४	६३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसुणाणि ।	"
५०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	"	६४	सजदासजदा ओघं ।	३७१
५१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	३६५	६५	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केव चिर कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	"
५२	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो मुहुत्तं ।	"	६६	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभव ग्गहण ।	"
५३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि ।	"	६७	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३७२
५४	संजदासजदा केवचिर कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	३६६	६८	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त- मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"
५५	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	"	६९	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	"
५६	उक्कस्सेण पुच्चकोडी देसुणा ।	"	७०	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुच्चकोडिपुधत्तेणअभहियाणि ।	३७३
५७	पंचिंदियतिरिक्ख—पंचिंदिय— तिरिक्खपज्जत्त पंचिंदियतिरिक्ख- जोणिसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	३६७	७१	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	३७३
५८	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	"	७२	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
५९	उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुच्चकोडिपुधत्तेण अअभहियाणि ।	"	७३	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	"
६०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	३६९	७४	उक्कस्स छ आवलियाओ ।	३७५
६१	असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	७५	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
२०	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण एग समय ।	३५०	३६	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा दिट्ठी ओघ ।	३५०
२१	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३५१	३७	असजदसम्मादिट्ठी केवचि कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च सव्वद्दा ।	३५१
२२	चउण्ह उरसमा केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च जहण्णेण एगसमय ।	३५२	३८	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण अतो मुहुत्त ।	३५२
२३	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"	३९	उक्कस्सेण तेचीसं सागरोवमाणि देखणाणि ।	३५३
२४	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण एग समय ।	३५३	४०	पढमाए जाय सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च सव्वद्दा ।	३५४
२५	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३५४	"	४१	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण अतो मुहुत्त ।
२६	चदुण्ह खरगा अजोगिक्केमली केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	"	४२	उक्कस्सेण सागरोवम तिण्णि सत्त दस सत्तारस वारीस तेचीस सागरोवमाणि ।	३५५
२७	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"	४३	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा दिट्ठी ओघ ।	३५६
२८	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३५५	४४	असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च सव्वद्दा ।	३५६
२९	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"	४५	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३५६
३०	सजोगिक्केमली केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च सव्वद्दा ।	३५६	४६	उक्कस्सेण सागरोवम तिण्णि सत्त दस सत्तारस वारीस तेचीस सागरोवमाणि देखणाणि ।	३५७
३१	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	"	४७	तिरिक्खगदीए तिरिक्केसु मिच्छा-दिट्ठी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च सव्वद्दा ।	३५८
३२	उक्कस्सेण पुव्वफोडी देखणा ।	"			
३३	आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय-गदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पदुच्च सव्वद्दा ।	३५७			
३४	एगजीवं पदुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	"			
३५	उक्कस्सेण तेचीस सागरोवमाणि ।	३५८			

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०१	सासणसम्मादिद्धी सम्मामिच्छा- दिद्धी ओषं ।	३८६	११२	उकस्सेण अगुलस्स असखेज्जादि- भागो अमखेज्जामखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ।	३८९
१०२	अणुद्दिस--अणुत्तरविजय-वह- जयत-जयंत-अनराजिद्विमाण- वासियेदेसेसु असंजदसम्मादिद्धी केवचिर कालादो होंति, णाणा- जीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	११३	वादरेइंदियपज्जचा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३९०
१०३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण ए- चीसं, वचीस सागरोवमाण सादिरैयाणि ।	"	११४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	"
१०४	उकस्सेण वचीस, तेचीस सागरोवमाणि ।	"	११५	उकस्सेण सखेज्जाणि वाससह- स्ताणि ।	३९२
१०५	सच्चद्धिसिद्धिनिमाणवासियेदेसेसु असंजदसम्मादिद्धी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	३८७	११६	वादरेइंदियअपज्जचा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३९३
१०६	एगजीव पडुच्च जहण्णुक्कस्सण तेचीस सागरोवमाणि ।	"	११७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भग्गहणं ।	"
१०७	इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	"	११८	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
१०८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भग्गहण ।	"	११९	सुहुमएइंदिया केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३९४
१०९	उक्कस्सेण अणत्तकालमसखेज्ज- पोग्गपरियट्ट ।	"	१२०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भग्गहण ।	"
११०	वादरेइंदिया केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	३८८	१२१	उक्कस्सेण असखेज्जा लोमा ।	"
१११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा- भग्गहणं ।	"	१२२	सुहुमेइंदियपज्जचा केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	"
		"	१२३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	३९५
		"	१२४	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
		"	१२५	सुहुमेइंदियअपज्जचा केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	३९६

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
७६	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३७५	९१	असजदसम्मादिट्ठी केरचिरं कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	३८१
७७	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो मुहुत्त ।	३७६	९२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३८२
७८	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३७७	९३	उक्कस्म तेत्तीस सागरोवमाणि ।	३८३
७९	असजदसम्मादिट्ठी केरचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	३७८	९४	भयणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छा दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केरचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	३८४
८०	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३७९	९५	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो मुहुत्त ।	३८५
८१	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसुणाणि ।	३८०	९६	उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवम सादिरेय वे सत्त चोइस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरे-याणि ।	३८६
८२	संजदासजदप्पहुडि जाव अजोगि-केरलि त्ति ओघ ।	३८१	९७	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघ ।	३८७
८३	मणुसअपज्जत्ता केरचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभयग्गहण ।	३८२	९८	आणद जाव णयगेवज्जविमाण-वासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी अस जदसम्मादिट्ठी केरचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	३८८
८४	उक्कस्सेण पलिदोवमस्म अससे ज्जदिभागो ।	३८३	९९	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३८९
८५	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भयग्गहण ।	३८४	१००	उक्कस्सेण वीम वारीस तेवीम चउवीस पणवीस छंवीस सत्ता-वीस अट्ठवीस एग्गूणतीस तीस एकक्कीस सागरोवमाणि ।	३९०
८६	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३८५			
८७	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केर-चिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	३८६			
८८	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्त ।	३८७			
८९	उक्कस्सेण एकक्कीम सागरोवमाणि ।	३८८			
९०	सामणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघ ।	३८९			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	कालादो ह्येति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४०५	१६०	सासणमम्मादिट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि चि ओघ ।	४०८
१४१	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- भग्गहण	"	१६१	तसकाइयअपज्जत्ताण पचिंदिय- अपज्जत्तभगो ।	"
१५०	उक्कस्सेण अतोमुद्दुत्त ।	"	१६२	जोगाणुनादेण पंचमणजोगि-पच- वचिजोगीसु मिच्छादिट्टी अमंजद- सम्मादिट्टी सजदामजदा पमत्त- सज्जदा अप्पमत्तसज्जदा सजोगि- केवली केवचिर कालादो ह्येति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४०९
१५१	सुद्धमपुढविकाइया सुद्धमआउ काइया सुद्धमतेउकाइया सुद्धम- वाउकाइया सुद्धमणणफ्फदिकाइया सुद्धमणिगोदजीना तम्मैव पज्जचा- पज्जचा सुद्धमेइंदियपज्जत्त-अप- ज्जत्ताण भगो ।	"	१६३	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	"
१५२	वणफ्फदिकाइयाण एडदियाणं भगो ।	४०६	१६४	उक्कस्सेण अंतोमुद्दुत्तं ।	४१२
१५३	णिगोदजीना केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	"	१६५	सासणसम्मादिट्टी ओघं ।	"
१५४	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- भग्गहणं ।	"	१६६	सम्मामिच्छादिट्टी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	४१३
१५५	उक्कस्सेण अट्टाडजादो पोगगल- परियट्ट ।	"	१६७	उक्कस्सेण पलिदेवमस्स अमत्ते ज्जदिभागो ।	"
१५६	वादग्णिगोदजीयाणं वादरपुढवि- काइयाण भगो ।	४०७	१६८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	४१४
१५७	तमकाइय - तमकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्टी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	१६९	उक्कस्सेण अंतोमुद्दुत्तं ।	"
१५८	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुद्दुत्तं ।	"	१७०	चटुण्हमुनममा चटुण्ह स्वग्गा केवचिर कालादो ह्येति, णाणा- जीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	"
१५९	उक्कस्सेण वे सागरोवमहस्साणि पुञ्जकौटिपुधत्तेणम्महियाणि, वे सागरोवमहस्साणि ।	४०८	१७१	उक्कस्सेण अंतोमुद्दुत्तं ।	४१५
			१७२	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"
			१७३	उक्कस्सेण अंतोमुद्दुत्तं ।	"

श्लोक संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१२६	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- भग्गहण ।	३९६	१३९	कायाणुवादेण पुढाविकाइया आउ- काइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिर कालादो होंति, णाणा- जीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४०१
१२७	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३९७	१४०	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- भग्गहण ।	"
१२८	बीडदिया तीडदिया चउरिंदिया, बीडदिय-तीडदिय-चउरिंदिय-- पज्जत्ता केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	१४१	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"
१२९	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- भग्गहण, अतोमुहुत्त ।	"	१४२	वादरपुढाविकाइया वादरआउ- काइया वादरतेउकाइया वादर- वाउकाइया वादरवणप्फदिकाइय- पचेयसरीरा केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४०२
१३०	उक्कस्सेण सखेज्जाणि तामसह- स्साणि ।	"	१४३	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- भग्गहण ।	"
१३१	बीडदिय तीडदिय चउरिंदिया अ- पज्जत्ता केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	३९८	१४४	उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ।	"
१३२	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा भग्गहण ।	"	१४५	वादरपुढाविकाइय-वादरआउ- काइय-वादरतेउकाइय वादरवाउ- काइय- वादरवणप्फदिकाइय - पचेयसरीरपज्जत्ता केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४०३
१३३	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	३९९	१४६	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	४०४
१३४	पंचिंदिय पंचिंदियपज्जत्तएमु मि च्छादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	१४७	उक्कस्सेण सखेज्जाणि वास- सहस्साणि ।	"
१३५	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	"	१४८	वादरपुढाविकाइय-वादरआउ- काइय वादरतेउकाइय वादरवाउ- काइय -वादरवणप्फदिकाइय- पचेयसरीरपज्जत्ता केवचिर	
१३६	उक्कस्सेण सागरोनमसहस्साणि सुव्वरुओडिपुधत्तेणभहियाणि, सागरोनमसदपुधत्त ।	४००			
१३७	सासणमम्मादिट्ठिप्फट्ठि जाव अजोगिक्कएलि चि ओध ।	"			
१३८	पंचिंदियअपज्जत्ता बीडदिय- अपज्जत्तभंगो ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	केवचिरं कालादो ह्येति, णाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	४२६	२१६	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	४३३
२०२	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखे- ज्जदिभागो ।	४२७	२१७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छा दिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	"
२०३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	४२८	२१८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	"
२०४	उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।	४२९	२१९	उक्कस्सेण तिण्णि समय ।	४३४
२०५	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	"	२२०	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा- दिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	४३५
२०६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखे- ज्जदिभागो ।	"	२२१	उक्कस्सेण आपलियाए असखे ज्जदिभागो ।	"
२०७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समय	४३०	२२२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	४३६
२०८	उक्कस्सेण छ आपलियाओ सम- ऊणाओ ।	"	२२३	उक्कस्सेण वे समयं ।	"
२०९	आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो ह्येति, णाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	४३१	२२४	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जह- ण्णेण तिण्णि समय ।	"
२१०	उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।	"	२२५	उक्कस्सेण सखेज्जसमयं ।	"
२११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	"	२२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समय ।	"
२१२	उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।	४३२	२२७	वेदाणुमादेण इत्थियेदएसु मिच्छा दिट्ठी केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्दा ।	४३७
२१३	आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्त- संजदा केवचिरं कालादो ह्येति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	"	२२८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	"
२१४	उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।	"	२२९	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपृथत्तं ।	"
२१५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	४३३	२३०	सासणसम्मादिट्ठी ओध ।	४३८

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७४	कायजोगीसु मिच्छादिद्वी केव- चिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च मव्वद्दा ।		१८७	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समओ ।	४२०
१७५	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	४१५	१८८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ सम- ऊणाओ ।	४२१
१७६	उक्कस्सेण अणत्तकालमसखेज्जा पोग्गलपरियट्ठ ।	४१६	१८९	अमजदसम्मादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	"
१७७	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेयलि चि मणजोगि- भगो ।	"	१९०	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
१७८	ओरालियकायजोगीसु मिच्छा- दिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	४१७	१९१	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	४२२
१७९	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	"	१९२	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
१८०	उक्कस्सेण वारीस वासमहस्साणि देसूणाणि ।	"	१९३	सजोगिकेयली केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च जह- ण्णेण एगसमय ।	४२३
१८१	सामणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेयलि चि मणजोगिभगो ।	४१८	१९४	उक्कस्सेण सखेज्जसमय ।	४२४
१८२	ओरालियमिस्मकायजोगीसु मि- च्छादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	"	१९५	एगजीव पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।	"
१८३	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहण तिसमऊण ।	"	१९६	वेउच्चियकायजोगीसु मिच्छादिद्वी असजदसम्मादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्दा ।	४२५
१८४	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	४१९	१९७	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग समओ ।	"
१८५	सासणसम्मादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	"	१९८	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
१८६	उक्कस्सेण पलिदोमस्म असये- ज्जदिभागो ।	४२०	१९९	सासणसम्मादिद्वी ओघ ।	४२६
		"	२००	सम्माभिच्छादिद्वीण मणजोगि भगो ।	"
		"	२०१	वेउच्चियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिद्वी असजदसम्मादिद्वी	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२६१	सासनसम्मादिद्वी ओष ।	४४९	२७३	जहाकसादनहारसुद्विसंजदेसु चदुद्वणी ओष ।	४५३
२६२	विभगणाणीसु मिच्छादिद्वी केन- चिर कालादो ह्येति, णाणाजीरं पहुच्च सच्चद्धा ।	"	२७४	सजदामंजदा ओष ।	"
२६३	एगजीरं पहुच्च जहण्णेण अतो- सुहुत्त ।	"	२७५	असजदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असजदसम्मादिद्वि चि ओष ।	"
२६४	उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि देसुणाणि ।	"	२७६	दमणाणुवादेण चकसुदंसणीसु मिच्छादिद्वी केनचिर कालादो ह्येति, णाणाजीरं पहुच्च सच्चद्धा ।	"
२६५	सासनसम्मादिद्वी ओषं ।	४५०	२७७	एगजीरं पहुच्च जहण्णेण अंतो- सुहुत्त ।	४५४
२६६	आभिणिबोहियणाणि सुदणाणि- ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिद्वि- प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग- छदुमत्या चि ओषं ।	"	२७८	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्माणि ।	"
२६७	मणपञ्जवणाणीसु पमत्तसंजद- प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग- छदुमत्या चि ओषं ।	"	२७९	सासनसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्या चि ओष ।	"
२६८	केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओष ।	४५१	२८०	अचकसुदसणीसु मिच्छादिद्वि- प्पहुडि जाव खीणकसायवीद- रागछदुमत्या चि ओषं ।	४५५
२६९	मनमाणुवादेण सजदेसु पमत्त- सनदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि चि ओष ।	"	२८१	ओधिदमणी ओधिणाविभगो ।	"
२७०	सामाहय च्छेदोवट्टावणसुद्विसंज- देसु पमत्तमजदप्पहुडि जाव अणियद्वि चि ओष ।	४५२	२८२	केवलदसणी केवलणाणिगंगो ।	"
२७१	परिहारसुद्विसंजदेसु पमत्त अप्प- मत्तसंजदा ओष ।	"	२८३	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्मिय- णीललेस्सियकाउलेस्सिएसु मि- च्छादिद्वी केनचिर कालादो ह्येति, णाणाजीरं पहुच्च सच्चद्धा ।	"
२७२	सुदुममापराहयसुद्विमजदेसु सुदु- मशापराहयसुद्विमजदा उपममा सत्ता ओष ।	"	२८४	एगजीरं पहुच्च जहण्णेण अंतो- सुहुत्त ।	"
		"	२८५	उक्कस्सेण तेत्तीस मत्तागस सत्त सागरोवमाणि सादिरियाणि ।	४५७
		"	२८६	सामणसम्मादिद्वी ओष ।	४५८

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३१	सम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	४३८	२४६	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	४४३
२३२	असजदसम्मादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	२४७	उक्कस्सेण तेचीस सागरोममाणि देसणाणि ।	"
२३३	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो मुहुत्त ।	"	२४८	सजटासजदप्पहुडि जाव अणि- यट्टि त्ति ओष ।	"
२३४	उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसणाणि ।	४३९	२४९	अपमदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेनलि त्ति ओष ।	४४४
२३५	सजदामजटप्पहुडि जाव अणि- यट्टि त्ति ओष ।	"	२५०	कमायाणुवादेण कोधकमाइ- माणकमाइ-मायकसाइ-लोभ- कमाईसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तसजदा त्ति मणजोगि- भगो ।	"
२३६	पुरिसवेदएसु मिच्छादिद्वी केव- चिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४४०	२५१	दोणि त्तिणि उममा केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	४४६
२३७	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	"	२५२	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
२३८	उक्कस्सेण सागरोमसदपुधत्त ।	४४१	२५३	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	"
२३९	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओष ।	"	२५४	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	४४७
२४०	णवुसयवेदेसु मिच्छादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	२५५	दोणि त्तिणि खवा केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	"
२४१	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	४४२	२५६	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	४४८
२४२	उक्कस्सेण अणतकालमसंसेज- पोगलपरियट्ट ।	"	२५७	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	"
२४३	सार्वणसम्मादिद्वी ओष ।	"	२५८	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"
२४४	सम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	"	२५९	अकसाईसु चदुट्ठाणी ओष ।	"
२४५	असजदसम्मादिद्वी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	२६०	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि सुद- अण्णाणीसु मिच्छादिद्वी ओष ।	"

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
३१७	सम्मत्ताणुवादेण सइयसम्मादिट्ठीसु सम्मादिट्ठी असंजद- सम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि- केवलि चि ओधं ।	४८१	३३०	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छा- दिट्ठी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	४८५
३१८	वेदगसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मा- दिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तमंजदा चि ओध ।	"	३३१	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्त ।	"
३१९	उपसमसम्मादिट्ठीसु असजद- सम्मादिट्ठी सजदासंजदा केव- चिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ।	४८२	३३२	उक्कस्सेण सागरोपमसदपुघत्तं	"
३२०	उक्कस्सेण पलिदोपमस्स असखे- ज्जदिभागो ।	"	३३३	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था चि ओधं ।	"
३२१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	४८३	३३४	असण्णी केवचिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सच्चद्धा ।	४८६
३२२	उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।	"	३३५	एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुदा- मवग्गहण ।	"
३२३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंत- कमायवीदरागछदुमत्था चि केव- चिर कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	४८४	३३६	उक्कस्सेण अणंतकालमसखेज्ज- पोग्गलपरियट्ठ ।	"
३२४	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	"	३३७	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"
३२५	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"	३३८	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्त ।	४८७
३२६	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	४८४	३३९	उक्कस्सेण अगुलस्स असखे- ज्जदिभागो असखेज्जासखेज्जाओ ओसप्पिणि-उत्सप्पिणी ।	"
३२७	सासणसम्मादिट्ठी ओध ।	"	३४०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि चि ओध ।	"
३२८	सम्मादिट्ठी ओध ।	"	३४१	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगि- मगो ।	"
३२९	मिच्छादिट्ठी ओध ।	"	३४२	अजोगिकेवलि ओधं ।	४८८

सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र सख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८७	सम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	४५९	३०२	सासनसम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	४७२
२८८	असजदसम्मामिच्छादिद्वी केवचिर कालादो हैंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	३०३	सम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	४७३
२८९	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्त ।	"	३०४	अमजदसम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	"
२९०	उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसुणाणि ।	४६०	३०५	सजदासजदा पमत्त-अप्पमत्त- सजदा केवचिर कालादो हैंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"
२९१	तेउलेस्सिय पम्मलेस्सिएसु मि- च्छादिद्वी असजदसम्मामिच्छादिद्वी केवचिर कालादो हैंति, णाणा जीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४६२	३०६	एगजीव पडुच्च जहण्णेण एग- समय ।	४७४
२९२	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्त ।	"	३०७	उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।	४७५
२९३	उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरो- वमाणि सादिरैयाणि ।	४६३	३०८	चदुण्हमुनसमा चदुण्ह खवगा सजोगिकेवली ओष ।	४७६
२९४	सासनसम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	४६५	३०९	भवियाणुनादेण मजसिद्धिएसु मिच्छादिद्वी केवचिर कालादो हैंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"
२९५	सम्मामिच्छादिद्वी ओष ।	"	३१०	एगजीव पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्ज- वसिदो ।	"
२९६	सजदासजद-पमत्त-अप्पमत्त- सजदा केवचिर कालादो हैंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	४६६	३११	जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिदेसो ।	४७८
२९७	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्त ।	"	३१२	जहण्णेण अंतोमुहुत्त ।	४७९
२९८	उक्कस्समतोमुहुत्त ।	४७१	३१३	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ठ देसुण ।	"
२९९	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्वी केव- चिर कालादो हैंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"	३१४	सासनसम्मामिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओष ।	४८०
३००	एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतो मुहुत्त ।	४७२	३१५	अभवसिद्धिया केवचिर कालादो हैंति, णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।	"
३०१	उक्कस्सेण एककीस सागरो- वमाणि सादिरैयाणि ।	"	३१६	एगजीव पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ।	"

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा
१७	मुह भूमिप्रसेसमिह दु	५७		२३	सव्यमिह लोगखेत्ते	३३३	स सि २, १० गो जी ५६० टीका
	१ मुहसद्विदमूलमद्ध	१४६		२६	स जासि पगदीण अणु	३३४	"
१०	मूल मञ्जोण गुण	२१	ज प ११, ११०	१८	सज्वे नि पोग्गला खलु	३२६	"
१५	"	५१	"	२२	"	३३३	"
१३	रोहणो पलतामा च	३१८	"	१४	सावित्रो धुर्यसन्नश्च	३१९	"
१०	रौद्र श्वेतश्च भैरवश्च	३१८	"	१५	सिद्धार्थ सिद्धसेनश्च	"	"
७	लगो अकट्टिमो खलु	११	त्रि सा ४	२०	सुहुमट्टिमिजुत्त वास	३३१	गो जी ५६० टीका
८	लोयस्त य विस्त्रभो	११	जघू प ११, १०७	६	सोलह सोलसहिं गुणे	१९९	
	४ लोयायासपदेसेपकेके	३८५	गो जी ५८८	१२	सखो पुण वारह जोय-	३३	
१०	वर्तीस सोहमेम जडा	२३५		३०	सते वण ण णिट्टादि	३३८	
८	विस्त्रमवग्गदसगुण	२०९	त्रि सा ९३	६	हेट्टा मज्जे उवरिं वेत्ता	११	जघू प ११, १०६
११	वेदन कसाय वेडिय	२९	गो जी ६६७				
१३	व्यासताय कट्टया पदन	२५					
९	व्यास षोडशगुणित	४२					
१४	"	२८१					
४	सत्त णय सुण्ण पच य	१९४					
७	सभायसदावाण जीया	३१७	पचा गा २३				
८	समभो णिमिसो रुद्धा	३१७	पचा गा २५,				
१६	समयो रात्रिदिनयो	३१९					

गाथा-सूढ

रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गण	२००
रूपोनमादिसगुण	१५९, १९९, २०१
व्यासार्धट्टितिक्रिक	१६९

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	पृष्ठ	क्रम संख्या	पृष्ठ
१ अययेपु प्रवृत्ता शब्दा समुदायेपि पर्यन्ते इति न्यायात् ।		४ गौण मुख्ययोर्मुख्ये सम्प्रत्ययः इति न्यायात् ।	४०३
२ सारकुम्भस्त मधुकुम्भो ब्व ।	११६	५ जहा उद्देशो तद्वा णिद्देशो ।	१०, १४५, ३२३, ३७७, ४००.
३ विहङ्गकालयत्तछाहीय	२४ ३४०		

२ अवतरण गाथा-सूची



क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा
४२	अदिव अणता जीवा	४७७	गो जी १९७	३	छायट्टि च सदस्सं णय	१५२	अभिधा रा चद्राने
१	अपगयणियारणट्ट	२		४	जह गेण्हइ परियट्टे पुटि	३३४	
४	आगास सपदेस तु	७	अभिधा रा उद्वृत	९	णत्थि चिर चा मिय्य	३१७	पचा गा २६
३६	भावलिप अणागारे	३९१	कसायपाहुडे अक्षाप	३	ण य परिणमइ सय सो	३१५	गो जी ५७०
७	इट्टसलागाण्डुत्तो चत्तारि	२०१		३३	ण य मरइ णेय सजम	३४९	
१०	उच्छ्वासाना सहस्त्राणि	३१८		२	णाम ठवणा दविय ति	३ स त १, ६	
२९	उप्पज्जति प्रियति य भाजा	३३७	स त १, ११	२५	णिरआउआ जहण्णा	३३३	स सि १, १० गो जी टीका ५६
३१	उवसमसम्मनद्धा	२४१		३५	निणिण सया छत्तीसा	३९०	गो जी १२३
३२	उवसमसम्मत्तद्धा जइ	३४२		४१	दा हो य तिणिण तेज	४७५	
१९	एयक्खेतोगाढ सच्च	३२७	गो क १८५	१७	नदा भट्टा जया रिक्का	३१९	
४०	एकारस छ सत्त य	४१५		११	निमेपाणा सहस्त्राणि	३१८	
१४	एकारसय तिसु हेट्टिमेसु	२३६		१८	पणुवांस अमुराण	७९	त्रि सा २४९
३४	एकं तिय सत्त दस तह	३६१		१२	पण्णास तु सहस्सा	२३५	
४३	एयणिगोदसरिंटे जीवा	४७८	गो जी १९५	२७	परियट्टिदाणि वहसो	३३४	गो जी जी प्र ५६० (सस्सुत्त च्छाया)
२४	ओसप्पिणि उस्सप्पिणी	३३३	स सि, २, १० गो जी ५६० टीका	५	पल्लो सायर मूर्ह पदरोय	१०	ति प १, ९३ त्रि सा ९२
१	काले त्ति य ववपसो	३१५	पचा गा २४	६	पचत्थिया य छज्जीव	३१६	मूलावा ३९९
३	कालो परिणाममयो	३१५	पचा गा १०८	११	वम्हे कप्पे वम्होत्तरे य	२३५	
३७	केवल्लदसण णाणे कसा	३०१	कसायपाहुडे अक्षाप	५	वाहिरसूर्खग्गो अक्ख	१९५	ति प ५, ३६ त्रि सा ३१६ (अर्थममता)
३	खेत्त खल्लु आगास	७		१६	धीजे जोणीभूवे जीवो	२५१	गो जी १९०
२१	गहणसमपग्घि जीवो	३३२		३८	माणद्धा कोधद्धा मायद्धा	३९१	कसायपाहुडे अक्षाप
३९	गुण नोग परावत्तो वाघा	४११		९	मुह तलसमास अद्ध	२०	ति प १, १६५ ज प ११, १०८
१५	मेघज्जाणुपरिमया णव	२३६		१६			
२	चडाइच्च गहेहिं वेय	१५१					
१३	छवेव सहस्साइ सयार	२३६					
५	छप्पवणवविद्धान वत्था	३१५	गो जी ५६०	१६			

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा
१७	मुह भूमिविमेसमिह दु	५७		२३	सत्रमिह लोगच्छेत्ते	३३३	स सि २, १० गो जी ५६० टीका
१	मुहसहिदमूलमद्ध	१४६		२६	सत्रासि पगदीण अणु	३३४	"
१०	मूल मज्जेण गुण	२१	ज प ११, ११०	१८	सचे वि पोगमला खलु	३२६	"
१५	"	५१	"	२२	"	३३३	"
१३	रोहणो पलात्तामा च	३१८		१४	सावित्रो धुर्यसद्वध	३१९	
१२	रौद्र श्वेतश्च मेत्रश्च	३१८		१५	सिद्धार्थ सिद्धमेनश्च	"	
७	लोगो अकट्टिमो खलु	११	त्रि सा ४	२०	सुहुमट्टिदिसजुत्त वाम	३३१	गो जी ५६० टीका
८	लोयस्स य विन्खमो	११	जघू, प ११, १०७	६	सोलह सोलसाहिं गुणे	१९९	
४	लोयायासपदेसे पडेके	३१५	गो जी ५८८	१०	सत्तो पुण गरह जोय-	३३	
१०	बर्त्तास सोहमेम अट्टा	२३५		३०	सते घण ण णिट्ठादि	३३८	
८	विन्खमवग्गदसगुण	२०९	त्रि सा ९३	६	हेट्टा मज्जे उवरिं वेत्ता	११	जघू प ११, १०६
११	वेदण कसाय पेउत्तिय	२९	गो जी ६६७				
१३	व्यास तात्तत्त्वा उदन-	३५					
९	व्यास पोडशगुणित	४२					
१४	"	२२१					
४	सत्त णव सुण्ण पव य	१९४					
७	सभापसहायाण जीजा	३१७	पचा गा २३				
८	समभो णिमिसो रुट्टा	३१७	पचा गा २५,				
१६	समयो रात्रिदिनयो	३१९					

गाथा-रत्न

रूपेण गुणमर्थपु वर्गण	२००
रूपोपमादिसगुण	१५९, १९९, २०१
व्यासार्थकृतित्रिक	१६९

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	पृष्ठ	क्रम संख्या	पृष्ठ
१	अत्रयवेपु प्रवृत्ताः शब्दा समुदायेऽपि घर्तन्ते इति न्यायात्।	४	गोण मुख्ययोर्मुख्ये सम्प्र त्ययः इति न्यायात्।
२	खीरकुम्भस्स मधुकुम्भो व्व।	५	जहा उदेत्तो तद्वा णिदेत्तो।
३	गिग्गह सालयन्पछाहीव		

४ ग्रन्थोल्लेख

पृष्ठ

१ अप्पावहुगसुत्त

१ तत्तरासिमस्सिदूण वुत्त यधप्पावहुगसुत्तादो णज्जदे ।

१३२

२ करणाणिओगसुत्त

१ ण च सत्तरज्जुयाहल्ल करणाणिओगसुत्तयिद्वद्द, तस्स तत्थ विधिपडि
क्षेपाभावादो ।

३ कालसुत्त

१ 'ये सत्त दस चोदस सोलसद्वारस य धीस वावीसा' एदीए गाहाए सइ
एवस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । त
ज्जा- वुत्त सुत्त यधप्पडिद्वद्द । कालसुत्त पुण संतमवेक्खिय ट्टिदमिदि ।

२८४

४ खुदावधसुत्त

१ वदुज्जुमेदि पच्चिदियतिरिक्ख पज्जत्त जोणिणिजोदिसिय वैतरदेव अउ
हारकालेदि खुदावधसुत्तसिद्धेदि अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे एदाओ रासीओ
सछेदाओ होज्ज ? ण च एउ, जीवाण छेदाभावा ।

१८४

२ खुदावधम्मि उववादपरिणयसासणाणभेक्कारइचोइसभागपोसणपरूवय
सुत्तादो च णव्यदे ।

२०६

५ खेत्ताणिओगद्वार

१ एदेसिं चेष खेत्ताणिओगदारोवग्ग्हि उत्तपरूवणाए तुह्हा ।

२४५

६ गाहासुत्त (कसायपाहुड)

१ ' भावलिय अणामारे ' (३६-३८) इदि गाहासुत्तादो (कसायपाहुड)

३९१

७ जीवड्डाण

१ जीवड्डाणादिसु दव्वकाले ण वुत्तो ति तस्साभावो ण वोत्तु सक्किज्जदे,
एत्थ छदव्वपपुप्पायणे अदियारामावा ।

३१६

८ जीवसमास

१ जीवसमासाए वि उत्त- ' उप्पन्नधविहाण

३१५

९ गिरयाउन्नधसुत्त

१ ' एक तिय सत्त दस ' . . इदि गिरयाउन्नधसुत्तादो ।

३६२

१० तच्चत्थसुत्त (तत्रार्थसूत्र)

१ तद् गिद्धपिंछाहरियप्पयासिदत्तयत्थसुत्ते वि' वर्त्तनापरिणामक्रिया परत्ता परत्ते च कालस्य ' इदि दत्तकालो परत्तिदो ।

३१६

११ तिलोयपण्णत्ती

१ एसा तप्पाभोग्गसखेज्जकूपाहियज्जूदीपउदेणयसहिददीवसायरुयमेत्त एतुउदेपमाणपरिक्खाविदी ण जण्णाहरिओवदेसपरपराणुसारिणी, केवल तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारिजोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलत्तिजुत्तिलेण पदगच्छसाहणट्टमग्घेहि परत्तिदा, प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भरत्तविजुम्मितगुणप्रतिपत्त श्रुतिवद्वासक्येयात्तलिकात्तहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसस्थानोपदेशवत्ता ।

१५७

१२ दत्ताणिओगहार

१ किं च दत्ताणियोगहारचक्खाणग्घि उच्चद्वेष्टिम उवरिमावियप्पा अभावमुच हुक्के, अन्नगसमुद्धिदलोगत्तादो ।

२ दत्ताणिओगहारे वि तत्थ एगगुणट्टाणदत्तस्स पमाणपरुत्तादो च । १६२ ६३

१३ परियम्म

१ जत्तियाणि वीरसागररुवाणि जजूदीपउदेणाणि च कूपाहियाणि तत्तियाणि गुण्णेषणाणि त्ति परियम्मेण एद् चक्खाण किण्ण विरउदे ? एदेण सह विरउग्घदि, त्तिसुत्तेण सह ण विरउग्घदि । तेणेदस्स चक्खाणस्स गहण कायन्त, ण परियम्मस्स, तस्य सुत्तविरुद्धत्तादो । ण सुत्तविरुद्ध चक्खाण होदि, अहप्पसगादो ।

१५६

२ रत्तु मत्तगुणिदा जगसेदी, सा वग्गिदा जगपदर, सेदीप गुणिदजगपदर पालोयो होदि त्ति परियम्मसुत्तेण सत्ताहरियसम्मवेण विरोहप्पसगादो ।

१८४

३ के पि आहरिया कम्मद्विदीदो वादरद्विदी परियम्मे उप्पण्णात्ति कज्जे वाणोत्तारमत्तयिय वादरद्विदीप चय कम्मद्विदिसण्णमिच्छति, तज्ज घटते ।

४०३

४ कम्मद्विदिमावलिथाए असखेज्जदिभागेण गुणिवे वादरद्विदी जादा त्ति परिदम्भयणेण सह एद् सुत्त विरुद्धदि नि णेदस्स भोत्तत्त, सुत्ताणुत्तानि परियम्म-स्य ण होदि त्ति तस्सेय ओक्खत्तप्पसगा ।

३९०

१४ पचत्थिपाहुड

१ बुत्त च पचत्थिपाहुडे—' कालो त्ति य वज्जत्तो ' इत्यादि १-३ गाया
२ बुत्त च पचत्थिपाहुडे धवहारकालस्स अत्यत्त—स मावसद्धानाण ..

३१५

३१७

४ ग्रन्थोल्लेख

पृष्ठ

१ अप्पावहुगसुत्त

१ तस्सरासिमस्सिदूण बुत्तयधप्पावहुगसुत्तादो णज्जदे ।

१३२

२ करणाणिओगसुत्त

१ ण च सत्तरज्जुवाहल्ल करणाणिओगसुत्तविस्सुद्ध, तस्स तत्थ विधिप्पडि
क्षेधामावादो ।

३ कालसुत्त

१ 'ये सत्त दस चोदस सोलसट्टारस य वीस वावीसा' एदीए गाहाए सह
एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । त
जहा- बुत्त सुत्त धधप्पडिषद्ध । कालसुत्त पुण संतमवेक्खिय ट्टिदमिदि ।

२८४

४ खुदावधसुत्त

१ वदुज्जुम्मेहि पच्चिदियतिरिक्ख पज्जत्त जोणिणिजोदिसिय घेतरदेव अय
हारकालेहि खुदावधसुत्तसिद्धेहि अकदुज्जुम्मजगपदरे भागे दिवे पदाओ रासीओ
सछेदाओ होज्ज ? ण च एव, जीवाण छेदामावा ।

१८४

२ खुदावधम्मि उववादपरिणयसासणाणमेक्कारहचोदसभागपोसणपरुचय
सुत्तादो च ण चदे ।

२०६

५ खेत्ताणिओगद्दार

१ पदेसिं चेष खेत्ताणिओगद्दारोघमिह उत्तपरुचणाए तुहा ।

२४५

६ गाहासुत्त (कसायपाहुड)

१ ' भावलयि अणागारे ' (३६-३८) इदि गाहासुत्तादो (कसायपाहुड)

३९१

७ जीवट्टाण

१ जीवट्टाणादिसु दव्वकालो ण बुत्तो त्ति तस्सामावो ण धोत्तु सक्किज्जदे,
एएय छदव्वपदुप्पायणे अहियाराभावा ।

३१६

८ जीवसमास

१ जीवसमासाए वि उत्त- ' छप्पचणवविहाण

३१५

९ गिरयाउवधसुत्त

१ ' एक तिथ सत्त दस ' इदि गिरयाउवधसुत्तादो ।

३६२

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
भद्रा	३१८	अपनयनधुपराशि	
अर्धतृतीयक्षेत्र	३७, १६९	अपनयनराशि	२०१
अर्धतृतीयद्वीपसमुद्र	२१४	अपर्याप्त	२००
अधोलोक	९, २५६	अपराजित	९१
अधोलोकक्षेत्रफल	१६	अपरातससार	३८६
अधोलोकप्रमाण	३२, ४१, ५०	अपवर्तना	३३५
अध प्रवृत्तकरण	३३५, ३५७	अपवर्तनागत	३८, ४१ ४३, ४७, १०३, १०६, १३०
अध प्रवृत्तनिशोधि	३३६	अर्पित	४६३
अधस्नानाधिरूप	१८५	अपूर्वकरण	३९३ ३९८
अन्तरकाल	१७९	अपूर्वकरणक्षपक	३३५, ३५७
अन्तर्मुहूर्त	३२३, ३८०	अपूर्वकरणगुणस्थान	३३६
अनन्त	३३८	अप्रशस्नतैजसशरीर	३५३
अन त काल	३२८	अभिचित्	२८
अन त यपदेश	४७८	अभियाक्तिजनन	३१८
अन तानुग्रही	३३६	अभेद्	३२२
अनर्पित	३९३, ३९८	अमूर्त	१४४
अनग्रस्था	३२०	अयन	१४४
अनवस्थाप्रसंग	१६३	अयोगी	३१७, ३९५
अनाकारोपयोग	३९१	अयमन्	३३६
अनादि	४३६	अरुण	३१८
अनादिमिध्याह्ण	३३५	अलोकाकाश	३१९
अनाहारक	४८७	अल्पबहुत्वा	९, २२
अनिवृत्तिकरण	३३५, ३५७	अवक्षिप्तप्रसंग	२५
अनिवृत्तिकक्षपक	३३६	अवगाहना	३९०
अनुगृष्टि	३५५	अवगाहनागुणकार	१८५
अनुगम	९, ३२२	अवगाहनाविकल्प	८
अनुचरविमान	२३६, ३८६	अवगाहना	२५, ३०, ४५
अनुदिशविमान	८१, २३६, २४०, ३८६	अवगाहनाविकल्प	४४, ९८
अनुसचित्ताद्वा	३७६	अवगाह्यमान	१७६
अशैल्याभ्यस्त	१५९, १९६, २०२	अवधिक्षेत्र	२३
अवकर्षण	३३२	अवबोध	३८, ७९
अवक्रमणोपक्रमण	२६५	अवहारकाल	३२२
अवक्रमणनियम	१७९		१५७, १८५

१५ वग्गणसुत्त

- १ अगुलस्स असयेज्जदिभागमेत्तमाहल्लतिरियपदरग्गि सेढीए असयेज्जदि-
भागमेत्तभोगाहणवियप्पेद्धि गुणिदे तत्थ जत्ति ते रासी तत्तियमेत्ताओ गिरयगइपा
भागगणुपुग्गीए पयडीओ त्ति वग्गणसुत्तादे । १७५ १७६
- २ महामच्छोगाहणग्गि एगग्गणवग्गज्जीवणिनायाणमत्थित्त करणग्गदे ?
वग्गणग्गि उच्चअप्पाघहुगादे । २१५

१६ वेदणाखेत्तत्रिधाण

- १ 'एगग्गीवस्स जहण्णोगाहणा वि अगुलस्स असयेज्जदिभागमेत्ता' त्ति
वेदणाखेत्तत्रिधाणे पक्खविदत्तादे ।
- २ पत्तेयसरीरपज्जत्तजहण्णोगाहणादे थीइदियपज्जत्तजहण्णोगाहणा अस
खेज्जगुणा त्ति कुदो णग्गदे ? वेदणाखेत्तविहाणग्गि बुत्तभोगाहणदडयादे । ९४

१७ सताणिओगहार

- १ जदि सासणा परदिपसु उप्पज्जति, तो तत्थ देो गुणट्ठाणाणि होंति । ण
च पय, सताणिओगहारे तत्थ एक्कमिच्छादिट्ठिगुणप्पहुप्पायणादे ।
- २ एद पि घन्खाण सत दव्यसुत्तविरज्ज त्ति ण वेत्त व । १५६

५ पारिभाषिक शब्दसूची

सूचना—यहां शब्दोंके केवल उन्हीं पृष्ठोंका उल्लेख किया गया है जहाँ उनके विषयमें कुछ
निर्देश कहा गया पाया जाता है ।

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अ		अज्ञान	४७६
अकर्मभाव	३२७	अणुव्रत	३७८
अकृतयुग्मजगप्रतर	१८१	अतिप्रसंग	२३, २०८
अहृदिम	११, ४७६	अतीतकालविशेषितक्षेत्र	१४५
अक्षयराशि	३३९	अतीतानागतवर्तमान—	
अगृहीतप्रहणादा	३२७, ३२९	पालविशिष्टक्षेत्र	१४८
अचित्तद्रयरक्षण	१४३	अतीन्द्रिय	१५८
अच्युतकल्प	१६५, १७०, २३६, २६२, २०८	अर्थ	२००
		अर्थपद	१८७

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
बद्धा	३१८	अपनयनध्रुवराशि	
अर्धनृतीयक्षेत्र	३७, १६९	अपनयनराशि	२०१
अर्धनृतीयह्रीपसमुद्र	२१४	अपर्याप्त	२००
अघोलोक	९, २५६	अपराजित	९१
अघोलोकक्षेत्रफल	१६	अपरातलसार	३८६
अघोलोकप्रमाण	३२, ४१, ५०	अपवर्तना	३३५
अघ प्रवृत्तकरण	३३५, ३५७	अपवर्तनाघात	३८, ४१, ४३, ४७, १०३, १२६, १३०
अघ प्रवृत्तविशोधि	३३६	अपवर्तनाघात	४६३
अघस्ननविरूप	१८५	अपित	३९३, ३९८
अंतरकाल	१७९	अपूर्वकरण	३३५, ३५७
अतर्मुञ्चते	३२३, ३८०	अपूर्वकरणक्षपक	३३६
अनन्त	३३८	अपूर्वकरणगुणस्थान	३५३
अनन्तकाल	३२८	अप्रशस्नतेजसशरीर	२८
अनन्तयपदेश	४७८	अभिजित्	३१८
अनतानुबन्धी	३३६	अभिव्याक्तिजनन	३२२
अनर्पित	३९३, ३९८	अभेद	१४४
अनस्था	३२०	अमूर्त	१४४
अनस्थाप्रसंग	१६३	अयन	३१७, ३९५
अनाकारोपयोग	३९१	अयोगी	३३६
अनादि	४३६	अयमन्	३१८
अनादिमिथ्यादृष्टि	३३५	अरण	३१९
अनाहारक	४८७	अलोकाकाश	९, २२
अनिवृत्तिकरण	३३५, ३५७	अल्पबहुत्व	२५
अनिवृत्तिक्षपक	३३६	अवक्षिप्तप्रसंग	३९०
अनुवृष्टि	३५५	अवर्गलमुत्थितलोक	१८५
अनुगम	९, ३२२	अवगाहनलक्षण	८
अनुत्तरविमान	२३६, ३८६	अवगाहना	२५, ३०, ४५
अनुदिशविमान	८१, २३६, २४०, ३८६	अवगाहनागुणकार	४४, ९८
अनुसञ्चिताद्वा	३७६	अवगाहनाधिकत्व	१७६
अशान्याभ्यस्त	१५९, १९६, २०२	अवगाह्यमान	२३
अशर्कण	३३२	अवधिक्षेत्र	३८, ७९
अश्वमणोपक्रमण	२६५	अच्योच	३२२
अश्वमणपट्टनियम	१७९	अवहारकाल	१५७, १८५

पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
	२३ आयतचतुरस्रक्षेत्र	१३
वसनासन्न		
वसपिणी	३८९ आयतचतुरस्रलोकसस्थान	१५७
विभागप्रतिच्छेद	१५ आयाम	१३, १६५, १८१
विसर्वाद्	१५८ आरण	१६५, १७०, २३६
वृष्टमपृथिवी	९०, १६४ आवलिना	४३
प्रष्टाविंशतिसत्कर्मिक-	३४९, ३५९, ३६२, ३६६, आयली	३१७, ३४०, ३९१
मिथ्यादृष्टि	३५०, ३७५, ३७७, ४३९ आनास	७८
	४४३, ४६१ आहारकसमुदात्त	२८
असन्नानुस्थापनाकाल	३१४ आहारउर्गणा	२२२
असयम	४७७ आहारशरीर	४५
असयमबहुलता	२८	
असयतसम्बन्धदृष्टि	३५८	
असह्येयराशि	३३८ इच्छाराशि	५७, ७१, १९९, ३४१
	इन्द्र	३१९
आ	इन्द्रक	१७४, २३४
आकाश	८, ३१९	
आकाशप्रदेश	१७६	
आगमद्रव्यकाल	३१४ ईशान	२३५
आगमद्रव्यक्षेत्र	५ ईशानभारपृथिवी	१६२
आगमद्रव्यस्पर्शन	१४२	
आगमभाउकाल	३१६	
आगमभावक्षेत्र	७ उच्छ्रेणी	८०
आगमभावस्पर्शन	१४४ उत्तानशय्या	३७८
आज्ञाकनिष्ठता	२८ उत्पात्तक्षेत्र	१७९
आदित्य	१५० उत्पत्तिक्षेत्रसमानक्षेत्रान्तर	१७९
आदेश	१०, १४३, ३२२ उत्पाद्	३३६
आदेशनिर्देश	१३५, ३२० उत्तरकुह	३६५
आधार	८ उत्तराभिमुखकेवली	५०
आधेय	८ उत्सपिणी	३८९
आनुपूर्वीनामकर्म	३० उत्सोध	१३, २०, ५७, १८१
आनुपूर्वीप्रायोग्यक्षेत्र	१९१ उत्सेवदृष्टि	२१
आनुपूर्वाधिपाकाप्रायोग्यक्षेत्र	१७७ उत्सेघकृतिगुणित	५१
आराधा	३२७ उत्सेघगुणकार	२१०
आयत	११, १७२ उत्सेघयोजन	३४

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
रामेवागुल	२४, १६०, १८५	श्रजुनलन	१८०
रामेवागुलप्रमाण	४०	श्रतु	३१७, ३००
रदयादिनिषेक	३२७	ए	
रद्वतन	३८३	एकक्षेत्रावगात्र	३२७
रद्वय	१७	एकवधितर्कनवीचारशुद्ध्य्या	३९१
रपक्रमणकाल	७१, १६९	एकद्वड	२२६
रपक्रमणकालगुणकार	८५	एकनारकावासविष्कम्भ	१८०
रपपाद	२६, १६६, २०७	ऐ	
रपत्रार	२०४, ३३९	ऐ	
रपपादकाल	३२२	ऐरावत	४५
रपपादक्षेत्र	८७	ओ	
रपपादक्षेत्रप्रमाण	१६५	ओघ	०, १४४, ३०२
रपपादक्षेत्रायां	७९	ओघनिर्देश	१४५, ३२२
रपपादमघनसम्मुखवृत्तक्षेत्र	१७२	ओघप्ररूपणा	०९
रपपादयोग	३३२	औ	
रपपादराशि	३१	औदारिकशरीर	२४
रपपादस्पर्शन	१६५	औपचारिकनोर्कर्मद्रव्यक्षेत्र	७
रपमालोक	१८५	अ	
रपरिमउपरिमप्रैवेयक	८०	अ	
रपरिमाधिकल्प	१८५	अ	
रपशामधेनी	३५१, ४४७	अंगुल	५७
रपशामसम्यक्त्वगुण	४४	अंगुलगणना	४०
रपशामसम्यक्वादा	४४, ३३०, ३४१, ३४२, ३७४, ४८३	क	
रपशान्तकाल	३५३	कधन	१४४, ३२२
रपशामक	३५०, ४४६	कपाटगतत्रेयली	४९
रपार्थपुङ्गलपरिवर्तन	३३६	कपाटसमुदात	२८, ८३६
रपास	३०१	करण	३३७
ऊ		करणाया	२०३
ऊर्ध्वकपाटच्छेदननिष्पन्न	१७६	कर्ण	१४
ऊर्ध्वलोक	०, २०६	कणक्षेत्र	१५
ऊर्ध्वलोकक्षेत्रफल	१६	कणोकार	७८
ऊर्ध्वलोकप्रमाण	३२, ४१, ७१	कर्म	२३
ऊर्ध्ववृत्त	१७२	कर्मद्रव्यक्षेत्र	६
श्रु		कर्मवध	४७६
श्रुगति	६६, २०, ८०	कर्मभूमि	१४, १६५

शब्द	पृष्ठ	ग्रन्थ	पृष्ठ
कर्मभूमिप्रतिभाग	२१४	भोधाद्वा	३९१
कर्मपुद्गल	३३२	काडक	४३५
कर्मपुद्गलपरिवर्तन	३२२, ३२५	काडजुगति	७१, २१९
कर्माक्षय	४७७	कुडलपर्वत	१९३
कर्मस्थिति	३९०, ४०२, ४०७	क्षण	३१७
कर्मस्थितिकाल	३२२	क्षपक	३५४, ४४७
कल्प	३२०	क्षपकश्रेणी	३३५, ४४७
कल्पवासिदेव	२३८	क्षपकश्रेणीप्रायोग्यविशोधि	३४७
कथाय	३९१	क्षायिकसम्पद्दष्टि	३५७
कथायसमुदात्त	२६, १६६	क्षीणकपाय	३३६, ३५६
कापिष्ठ	२३५	क्षुद्रभव	३९०
कार्मणसर्गणा	३३२	क्षुद्रभवप्रद्वण	३७१, ३७९, ३८८, ३९१, ४०१, ४०६
कार्मणशरीर	२४, १६५	क्षेत्र	६, २३१
काययोग	३९१	क्षेत्रपरिवर्तन	३२५
कायस्थितिकाल	२३२	क्षेत्रपरिवर्तनकाल	३३४
कायोःसर्ग	५०	क्षेत्रपरिवर्तनधार	"
काल	३१८, ३२१	क्षेत्रफल	१८०
कालपरिवर्तन	३२५	क्षेत्रफलशलाका	१९५
कालपरिवर्तनकाल	३३४	क्षेत्रफलसकलना	२००
कालपरिवर्तनधार	३३४	क्षेत्रसत्ता	३३३
कालसत्ता	३३३	क्षेत्रस्पर्शन	१४१
कालस्पर्शा	१४१	क्षेत्रानुगम	२
कालानुगम	३१३, ३२२		
कालोदकसमुद्र	१५०, १९४, १९५		ख
काष्ठा	३१७	खातफल	१२, १८१, १८६
कुलशैल	१९३, २१८		ग
कृतयुग्म	१८४		
कृति	२३२	गगन	८
कृष्टीकरण	३९१	गच्छ	१५३, २०१
कृष्णादिभिध्यात्यकाल	३२४	गच्छराशि	१५४
केवलमान	३९१	गच्छसमीकरण	१५३
केवलदर्शन	३९१	गणित	३५, २०९
केवलिमुदात्त	२८	गर्भोपस्थात	१६३
कोटाकोटी	१५२	गुण	२००
कोटी	१४	गुणकार	७६
कोषकथायाज्ञा	४४४	गुणकारशलाका	१९६

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
गुणकारशलाकासकलना	२०१		
गुणपरावृत्ति	४०९, ४७०, ४७१	छिन्नायुष्ककाल	१६३
गुणस्थितिकाल	३२०		
गुणांतरसक्रमण	३२५	ज	
गुह्यकाचरित	८	जगप्रतर	१८, ५२, १५०, १५१,
गृहीतग्रहणाद्धा	३२८		१५५, १६९, १८०, १८४,
गृहीतग्रहणाद्धाशलाका	३२९	जगश्रेणी	१९९, २०९, २०२, २३३
गोमूत्रकृगति	२९	जघयावगाहना	१०, १८, १८४
गोमिहक्षेत्र	३४	जम्बूद्वीप	२२, ३३
गोपभाव	१४५	जम्बूद्वीपक्षेत्र	१५०
ग्रह	१५१	जम्बूद्वीपच्छेदनरु	१९४
ग्रहैपेक	२३६	जम्बूद्वीपशलाका	१५५
		जयन्त	१९६
		जया	३८६
		जाति	३१९
		जिह्वेन्द्रिय	१६३
		जीवसमाप्त	३०१
		ज्योतिष्कजीवराशि	३१
		ज्योतिष्कस्वस्थानक्षेत्र	१५५
		ज्योतिष्कसासादनसम्यग्दृष्टि	१६०
		स्वस्थानक्षेत्र	१५०
		श	
		श्लरीमस्थान	११, २१
		त	
		तद्भवसामान्य	३
		तद्दयतिरिक्तनोभागमद्रव्य	३१५
		तद्दयतिरिक्तनोभागमद्रव्यस्पर्शन	१४२
		तलयाद्वय	१३
		तारा	१५१
		तालप्रमाण	४०
		तालवृक्षसस्थान	११, २१
		तिथि	३१९
		तिर्यक्क्षेत्र	३६

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
तिर्यक्लोक	३७, १६९, १८३	दृडक्षेत्र	४८
तिर्यक्लोकप्रमाण	४१, १५०	दृडगतकेजली	"
तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७६	दृडसमुदात	२८
तियगप्रतर	२११	द्रव्य	३३१, ३३७
तिर्यग्स्थानस्वस्थानक्षेत्र	१९४, २०४	द्रव्यकाल	३१३
तिर्यक्	२२०	द्रव्यक्षेत्र	३
तृतीयपृथिवी	८९	द्रव्यत्व	३३६
तृतीयपृथिव्याअधस्तनतल	२२५	द्रव्यपरिवर्तन	३२५
तैजसशरीर	२४	द्रव्यलिङ्ग	२०८
तैजसशरीरसमुदात	२७	द्रव्यलिङ्गी	४२७, ४२८
तोरण	१६५	द्रव्यस्पर्शन	१४१
५५दा	१७८	द्रव्याधिक	"
त्रिकोणक्षेत्र	१३	द्रव्यार्थिकनय	३, १४५, १७०, ३२२, ३३७, ४४४
त्रिसमयाधिनाजली	३२२	द्रव्यार्थिकरूपण	२५९
त्रैराशिकक्रम	४८		
	द		ध
दशानमोदनीय	३३५	धन	१५९
दात्रक	३१९	धनुष	४७, ५७
दार्ष्टान्त	२१	धरणीतल	२३६
दिवस	३१७, ३९५	धर्म	३१९
दिशा	२२६	धातकीयड	१५०, १९५
द्वितीयदडस्थित	७२	धुर्य	३२९
द्वितीयपृथिवी	८९	धुयत्न	१४१
द्विसमयाधिकावली	३३२		न
दुःखम्भदुःखानुक्षेपफल	२१८	नक्षत्र	१५१
दृष्टा न	२२	नदा	३१९
देवकुरु	३६	नरभ्रगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७५, १९१
देवक्षेत्र	३६	नघप्रपेयस्विमान	३८५
देवता	३१९	नामकाल	३१३
देवपथ	८	नामक्षेत्र	३
देशामरीक	५७	नामस्पर्शन	१४१
देशोनलोक	५६	नारक	५७
दैत्य	३१८	नारकसवावास	१७९
दड	३०	नारकानास	१७७

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
तिर्यक्लोक	३७, १६९, १८३	दृडक्षेत्र	४८
तिर्यक्लोकप्रमाण	४१, १५०	दृडगतकेपली	"
तियग्गतिसायोग्यानुपूर्वी	१७६	दृडसमुद्धात	२८
तियगप्रतर	२११	द्र य	३३१, ३३७
तियग्स्त्रस्थानस्त्रस्थानक्षेत्र	१९४, २०४	द्रव्यकाल	३१३
तिर्यक्	२२०	द्रव्यक्षेत्र	३
तृतीयपृथिवी	८९	द्र-यत्व	३३६
तृतीयपृथिवीजघस्तनतल	२२५	द्रव्यपरिवर्तन	३०५
तजसशरीर	२४	द्र-यलिंग	२०८
तेजसशरीरसमुद्धात	२७	द्रव्यलिंगी	४२७, ४२८
तोरण	१६५	द्रव्यस्पर्शन	१४१
त्र्यश	१७८	द्रव्याधिक	"
त्रिकोणक्षेत्र	१३	द्रव्याधिकनय	३, १४५, १७०, ३२२,
त्रिसमयाधिनापली	३३२		३३७, ४४४
त्रैराशिकक्रम	४८	द्रव्यार्थिकप्ररूपणा	६५९
	द		ध
दशनमोहनीय	३३५	धन	१५९
दात्रक	३१९	धनुष	४५, ५७
दार्ढ्य त	२१	धरणीनल	५३६
दिवस	३१७, ३९५	धर्म	३१९
दिशा	२२६	धातमीखड	१५०, १९०
द्वितीयदृडस्त्रित	७२	धुष	३२९
द्वितीयपृथिवी	८९	धुप्तर	१४१
द्विसमयाधिकावली	३३२		
दुम्बलम्भदुवाहुक्षेत्रफल	२१८	नक्षत्र	१५१
दृष्टात	२२	न-दा	३१९
देवकुह	३६५	नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७५, १९१
देवक्षेत्र	३६	नयप्रैवेय-विमान	३८५
देवता	३१९	नामकाल	३१३
देवपथ	८	नामक्षेत्र	३
देशामशक	५७	नामस्पर्शन	१४१
देशानलोक	५६	नारक	५७
दैत्य	३१८	नारकसबावास	१७९
दड	३०	नारकावास	१७७

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
प्रतरसमुदात्त	२९, ४३६	प्रहोत्तर	२३५
प्रतराकार	२०४		
प्रतराघली	३८९	भ	
प्रतरागुल	१०, ४३, ४४, १५१, १६०, १७२	भद्रा भरत	३१९ ४१
प्रतरागुलभागद्वार	९८	भजनवासिउपपादक्षेत्र	८०
प्रतिभाग	८२	भजनवासिक्षेत्र	७८
प्रत्यक्ष	३३९	भवनवासिजगप्रणधि	"
प्रथमपृथिवी	८८	भवनवासिजगमूल	१६४
प्रथमपृथिवीरूपस्थानक्षेत्र	१८२	भवनवासिप्रायोगयानुपूर्वी	२३०
प्रत्यवस्थान	"	भवनवासी	१६२
प्रत्यासत्ति	३७७	भवनविमान	"
प्रत्यासन्नविपाकानुपूर्वाफल	१७५	भयपरिवर्तन	३२५
प्रधानभाव	१४५	भयपरिवर्तनकाल	३३४
प्रभापटल	८०	भयपरिवर्तनधार	"
प्रभत्तामसत्परावर्तसहस्र	३४७	भयस्थिति	३३३, ३९८
प्रमाण	३९६	भवस्थितिकाल	३२२, ३९९
प्रमाणघनागुल	३५	भव्यत्व	४८०
प्रमाणलोक	१८	भव्यद्रव्यस्पर्शन	१४२
प्रमाणराशि	७१, ३४१	भव्यनोभागमद्रव्यकाल	३१४
प्रमाणवाक्य	१४५	भयराशि	३३९
प्रमाणागुल	४८, १६०, १८५	भागद्वार	७१
प्रमेयत्व	१४४	मानु	३१९
प्रवेध	१९१	भार्ग्य	३१८
प्रशस्ततैजसशरीर	२८	भायकाल	३१३
प्रस्तार	५७	भायक्षेत्र	३
	फ	भायक्षेत्रागम	६
फलराशि	५७, ७१, ३४१	भायपरिवर्तन	३२५
	घ	भायपरिवर्तनकाल	३३४
घल	३१८	भायपरिवर्तनधार	"
घट्टायुष्कघात	३८३	भायसत्तार	"
घट्टायुष्कमनुष्यसम्पृष्टि	६९	भायस्थितिकाल	३२२
धादरनिगोदप्रतीष्ठित	२५१	भायस्पर्शन	१४१
धादरस्थिति	३९०, ४०३	भुज	१४
धाद्वय	१२, ३५, १७२	भूत	२३२
धाद्यपक्ति	१५१	भूमि	८
धघायली	३३२	भेद	१४४
प्रश्न	२३५		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
भेदप्ररूपणा	२५९	मिथ्रद्रव्यस्पर्शन	१४३
भोगभूमि	२०९	मुक्तमारणान्तिक	१७५, २३०
भोगभूमिप्रतिभाग	१६८	मुक्तमारणान्तिकराशि	७६
भोगभूमिप्रतिभागद्वीप	२११	मुख	१४६
भोगभूमिसंस्थानसंस्थित	१८९	मुखप्रतरागुल	४८
भग	३३६, ४११	मुखविस्तार	१३
भगप्ररूपणा	४७५	मुहूर्त	३१७, ३९०
भ्रमरक्षेत्र	३३	मूल	१४६
		मूलाग्रसमास	३३
		मृदगक्षेत्र	५१
मध्यमक्षेत्रफल	१३	मृदगमुखखरुदप्रमाण	"
मध्यमगुणकार	४१	मृदगसंस्थान	२२
मध्यमप्रतिपत्ति	३४०	मृदगाकार	११, १२
मध्यमविस्तार	११	मेरु	१९३
मध्यलोक	९	मेरुतल	२०४
मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७६	मेरुपर्यंत	२१८
मनुष्यलोकप्रमाण	४२	मेरुमूल	२०५
मनोयोग	३९१	मेश	११८
मरण	४०९, ४७०, ४७१	मदरमूल	५१
महामत्स्यक्षेत्र	३६		
महामत्स्यक्षेत्रस्थान	६६		
महागुफ	२३५	यम	११५
मागधप्रस्थ	३२०	यादृच्छिकप्रसंग	१५
मानाद्धा	३९१	युग	११५
मानुषक्षेत्र	१७०	योग	१५५
मानुषक्षेत्रव्यपदेशान्यथानुपपत्ति	१७१	योगनिरोध	४०९
मानुषोत्तरपर्यंत	१९३	योगपराशुनि	३१९
मानुषोत्तरशैल	१५०, २१६	योग्य	
मायाद्धा	३९१		
मारणान्तिककाल	४३	रज्जु	११, १३, १६५, १६७
मारणान्तिकक्षेत्रायाम	६६	रज्जुच्छेदगक	१५५
मारणान्तिकराशि	८५	रज्जुप्रतर	१५०, १६४
मारणान्तिकसमुद्धात	२४, १६६	रति	४५
मास	३१७, ३९५	राक्षस	२३२
माहेन्द्र	२३५	रिक्ता	३१९
मिथ्यात्व	३३४, ३५८, ४७७	दक्षकपर्यंत	१९३
मिथ्यात्वाविकारण	२४	रूप	२००
मिथ्रप्रहणाद्धा	३२८	रूपप्रक्षेप	१५०

म

य

१

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
रूपोनावलिका	४३	विशोभ	३१०
रोहण	३१८	त्रिगुवणादिश्रद्धिमास	१७०
रोद्र	"	विगुर्वमानपक्षेन्द्रियराशि	८२
रुद	१९	विग्रह	६४, १७५
	ल	विग्रहगति	२६, ३०, ४३, ८०
रुचिसम्पन्नमुनिघट	११७	विग्रहगतिनामकर्म	४३४
लयसप्तम	२५३	विजय	३१८, ३८६
रज	३१७	विदिशा	२२६
लघणसमुद्र	१५०, १०४	विदेह	४५
लघणसमुद्रक्षेत्रफल	१९५, १९८	विदेहसयतराशि	"
रान्तव	२३५	विनाश	३३६
लागलिकगति	२९	विन्यासक्रम	७६
लेख्यापरावृत्ति	४७०, ४७१	विमान	१७०
लोक	९, १०	विमानतल	१६५
लोकनाली	२०, ८३, १४८, १६४	विमानशिखर	२२७
	१७०, १९१	विरलन	२०१
लोकपूरणसमुदात	२९, ४३६	विरह	३९०
लोकप्रतर	१०	विशेष	१४५
लोकप्रमाण	१४६, १४७	विष्कम्भ	११, ४५, १४७
लोकाकाश	९	विष्कम्भचतुर्भाग	२०९
लोकालोकविभाग	२२	विष्कम्भवर्गगुणितरज्जु	८५
लोभाब्जा	३९१	विष्कम्भवर्गदशगुणकर्णी	२०९
	व	विष्कम्भसूचीगुणितध्रेणी	८०
वर्ग	२०, १४६	विष्कम्भाध	१२
वर्गण	२००	विसयोजन	३३६
वर्गमूल	२०२	विस्तार	१६५
वचनयोग	३९१	विस्त्रसोपचय	२५
वचमानविशिष्टक्षेत्र	१४५	विहायोगतिनामकर्म	३२
वचननुमारमिथ्यात्वकाल	३२४	विहारवत्स्वस्थान	२६, ३२, १६६
वर्धितराशि	१५४	वृत्त	२०९
वर्ष	३२०	वृद्धि	१९, २८
वपपृथक्स्व	३४८	वेप्रासन	११, २१
वपसद्वस्त्र	४१८	वेप्रासनसंस्थित	२०
वाच्यवाचकशक्ति	२	वेदनासमुदात	२६, ७९, ८७, १८६
वातयलय	५१	वेदान्तरसनाति	३६९, ३७३
वायु	३१९	वेध	२०
वाहन	३१८	वैलघर	२३२

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
वैकल्पिकसमुदात	२६, १६६	सत्य	१४४
वैजयन्त	३१९, ३८६	सदुक्त्वमदुवाह	१८७
वैरोचन	३१८	सद्भावस्थापनाकाल	३१४
वैश्वदेव	"	सप्तमपृथिवी	९०
व्यतरक्षेप	१६१	सप्तमपृथिवीनारक	१६३
व्यन्तरक्षेपराशि	"	समचतुरस्र	८३
व्यतरक्षेपसासादनसम्यदृष्टि	"	समपरिमडलस्थित	१७२
स्वस्थानक्षेत्र	"	समय	३१७, ३१८
व्यन्तराजस	१६१, २३१	समानजातीय	१६३
व्यभिचार	४६, ३२०	समीकरण	१७८
व्यषट्कारकाल	३१७	समीहृत	५१
व्याख्यान	७९, १४४, १६५, ३३१	समुदात	२६
व्याघात	४०९	समुदातकेयलिर्जम्भप्रवेश	४०
व्यापक	८	समुद्राभ्यन्तरप्रथमपक्ति	१५१
व्यास	२२१	सम्प्रदायविरोधाशका	१५८
व्यञ्जनपर्याय	३३७	सम्यक्त्व	३५८
		सम्यग्मिथ्यात्व	"
श		सम्यग्मिथ्यादाष्टि	"
शान	२३५	सयोगिकाल	३५७
शानसहस्र	"	सयोगी	३३६
शानार	२३६	सर्घलोकप्रमाण	४२
शलाका	४३५, ४८४	सर्वाकाश	१८
शलाकासकलना	२००	सर्घार्थसिद्धि	२४०, ३८७
शशिपरिहार	१५२	सर्घार्थसिद्धिविमान	८१
शास्त्रभजिका	१६५	सर्घात्ता	३६३
शुक	२६५	सदस्र	२३५
शस्त्रक्षेत्र	३५	सदस्रार	२३६
श्रेणी	७६, ८०	सद्धानयस्थानलक्षणविरोध	२५९, ४१२
श्रेणीवृद्ध	१७४, २३४	सागर	१०, १८५
श्वेत	३१८	सागरोपम	१०, १८५, ३१७, ३६०, ३८०, ३८७
श्रोत्रेन्द्रिय	३९१	सागरोपमशतपृथक्त्व	४००, ४४१, ४८५
		सातरोपममणवार	३४०
प		साष्टशसामाग्य	३
पञ्चश	१७८	साध्य	३९९
पट्टापक्रमनियम	२१८, २२६	साधन	"
पष्टपृथिवी	९०	सानन्नुमार	२१५
स			
सचित्तद्रव्यस्पर्शन	१४३		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
साम्प्रदायिक	३९१	सस्थाननामकर्म	३०
सारभट्ट	३१८	सस्थानविपाकी	१७६
सावित्र	३१९	स्वकप्रत्यय	२३४
सासादनकाल	३५१	स्तूपतल	१६२
सासादनमारणातिकक्षेत्रायाम्	१६२	स्थापना	३, ३१४
सासादनसम्पत्त्वपृष्टायत	३२५	स्थापनाकाल	३१३
सिद्ध	४७७, ३३६	स्थापनाक्षेत्र	३
सिद्धसेन	३१९	स्थापनास्पर्शन	१४१
सिद्धार्थ	"	स्थिति	३३६
सुगन्ध	"	स्पर्शन	२३२, १४४, १४१
सुदमक्षपक	३३६	स्पर्शानुगम	१४४
सुधीक्षेत्रफल	१६	स्पर्शनेन्द्रिय	३९१
सूच्यगुण	१०, २०३, २१२	स्वयम्प्रभपर्वत	२२१
सुपक्षेत्र	१३	स्वयम्प्रभपर्वतपरभाग	२१४
सूर्य	३१९, १५०	स्वयम्प्रभपर्वतपरभागक्षेत्र	१६८
सौधम	२३५	स्वयम्प्रभपर्वतोपरिमभाग	२०९
सौधमविमानशिलरज्जुर्दंड	२२९	स्वयम्भूरमणसमुद्र	१९४, १५१
सौधमर्दि	१६२	स्वयम्भूरमणक्षेत्रफल	१९८
सकलन	१४४, १९९	स्वयम्भूरमणसमुद्रविक्रम्भ	१६८
सकलना	१५९	स्वस्थान	२६, ९२, १२१
सख्येयराशि	३३८	स्वस्थानक्षेत्रमेलापनविधान	१६७
सयतराशि	४६	स्वस्थानस्वस्थान	२६, १६६
सयतासयतडत्सेय	१६९	स्वस्थानस्वस्थानराशि	३१
सयतासयतस्वस्थानक्षेत्र	"		ह
सयम	३४३	हस्त	५७
सयमासयम	३४३, ३५०	हानि	१९
सयोग	१४४	हुताशन	३१९
सयत्सर	३१७, ३९५	हेतुवाद	१५८
सयर्ग	१७	हेमपापान	४७८

